| वीर          | सेवा           | मन्दिर   |
|--------------|----------------|----------|
|              | दिल्ल          | ी        |
| •            |                |          |
|              |                |          |
|              | *              |          |
|              | ٠٠٠, مس        | _        |
| _            | 23             | (Z)      |
| क्रम संख्या  | 5 (.t.         | <i>i</i> |
| काल नं े     | 17 <b>V.1.</b> | 4417     |
| वण्ड<br>वण्ड |                |          |

प्रध्याप-१३ मन परम नी ने मन के मही के पर के भा १० मा के ने मा के मही के पर के मान के मही के पर के मान के मिन के मही के के किया मान के मिन के

४. १३३ में श्री पा हा ता ति गर - १ १ - १ ८ ८ १९२ में र्शात पा ए इत्ता में क तामेरे - १४ - १४ १. १० म ती बोगे सभी पारित के जीत की भार्ष गर्का है। १. १०० में माना पाते के स्मारी के से भारत के दें। १. १०० में भाग देव इसीत ने जा ने नाग दा पा कि स्थाप १२ - में - ४

(E

## यज्ञवेत भाषाभ

## अर्थात

एगमः सपिश्वात्रकावार्यं श्रीमह-यानग्द्रमग्भवतीम्वामिनिर्मित संस्कृतभाष्यं का । स्थान्य

> (५) भाग ज्यान्त्रालय कार्जनर भाग १५/२ विज्ञाहर

> > 一头沉默

्री सम्पानिः

होन' भागों कः पूज्य ६, सक्तायय (()

## त्र्रथ यजुर्वेदभाषासाष्यारम्भः क्रियते ॥

यो जीवेषु द्वाति सर्वेलुकुत्ज्ञानं गुणैरीः इवर स्तं नत्वा क्रियंत परोपकुत्ये तथाः एवं वास व ॥ ऋग्वेदस्य विधाय के गुण्युणिक्षान्यद्यत्वेरं भाष्यं काम्यमयो क्रियान्यवर्ज्वेदस्य भाष्यं मया ॥१॥ चतुस्त्रक्षेत्रं द्वेत्विक्यंद्वेतिकाससरे शुभे पौपे मासे सितद्लस्य द्वेतिकासिं ॥ गुरोबीरे प्रातः प्रतिपद्मतिष्टं सुविद्धां प्रमाणैनिर्वेदं स्तत्पर्यान्यकादि सिर्दाष् ॥ २ ॥ विद्यानि देव स्रवितद्वितानि पर्य सुव । यहादं तन्न आस्त्रेव ॥ १ ॥ यन २० । ३ ।

भापार्थं: - मब यजुर्वेद के साध्य का आरम्स किया जाता है ॥ जो निर्मुण गुमाअंज में देत सुकृत विज्ञान । प्रधातपाल जगरीद्दर्शंड करि प्रमामितिहि ध्यान ॥ १ ॥
अस्तिदापि ऋग्वेद का भाष्याभीए विधाय । एर उपकार विचारिकार शिक्ष सुनीध निधाय ॥ २ ॥ शतपथ आहाम् आदि पुनि निधेटु निर्धेक्त निहारि । यजुर्वेद जो किया पर वर्गी ताहि विचारि ॥ ३ ॥ एक सहस्र नवशत अधिक धिक्रमसर चीतीस ।
पीप शुक्र तेरिस निधी दिन अधीश वागीश ॥ ४ ॥ विक्रम के संवत् १९३४ पीप शुक्र तेरिस निधी दिन अधीश वागीश ॥ ४ ॥ विक्रम के संवत् १९३४ पीप शुद्धि १३ गुरुशर के दिन यजुर्वेद के भाष्य वनाने का आरम्भ किया जाता है ॥
(विश्वानि०) इस मन्त्र का मर्थ भूमिका में पर दिया है । ईश्वर ने ऋग्वेद में गुम्म विश्वा के विकान के प्रकाशकारा सब पदार्थ प्रसिद्ध किये हैं उन एनुष्यों हो ।
इस भूमी के जिस २ प्रकार यथायोग्य उपकार लेने के लिये किया कानी जादिये ।
पण उस किया के जो २ अङ्ग वा साधन हैं सो २ प्रवेद में प्रकाशित किये हैं ।
विश्वी के सब तक किया करने का हढ जान न हो तथ तक उस द्वाव से अष्ट सुधा भी नहीं हो सकता और विज्ञान होने के ये देत हैं कि जो क्रिया प्रकाश अविद्या

की निवृत्ति अधमे में अपवृत्ति तथा धमें और पुरुषार्थ का संयोग करता है। जो कर्मकांड है सो विज्ञान का निमित्त और जो विज्ञानकांड है सो किया से फल देने. वाला होता है कोई जीव ऐसा नहीं है कि जो मन प्राश्च वायु इन्द्रिय और शरीर के चलाय विना एक च्याभर भी रह सकंक्यों कि जीव मल्पन्न एकदेशवर्षों चेतन, है इस्तियों जो ईदवर ने ऋग्वेद के मन्त्रों से सब पदार्थों के गुग्रागुणी का ज्ञान और यजुर्वेद के मन्त्रों संक्ष्मब किया करनी प्रसिद्ध की है क्योंकि (ऋक्) और (यजुरे) हिन दाव्हों का अर्थ भी यही है कि जिस से मनुष्य लोग ईदवर से लेके पृथिवी प्रचेत पदार्थों के ज्ञान से भार्मिक विद्वानों का संग सब शिल्पिक्रया सहित विद्या की सिद्धि श्रेष्ठ विद्या श्रेष्ठ गुग्रा वा विद्या का दान यथायोग्य उक्त विद्या के व्याहार से सर्वोपकार के अनुकृत द्रव्यादि पदार्थों का सर्च करें इस्तिये इसका में यजुर्वेद है। और भी इन दाव्हों का अभिन्नाय स्मिका में प्रगट कर दिया है में वेत्र लेना चाहिये क्योंकि उक्त स्मिका चारों वेद की एक ही है ॥ इस यजुर्वेद्दे सब चालीस अध्याय है उन एक र अध्याय में कितन र मन्त्र है सो कोष्ठ का ति सब लिख दिया है सीर चालीसों अध्याय के सब मिल के १६९ उन्नीसी पचहत्ता सम्त्र है ॥

| अध्यायः | मंत्र:       | <b>M</b> o | म०         | अ० | सं० | अ०         | मं०        |
|---------|--------------|------------|------------|----|-----|------------|------------|
| 1 8     | <b>३</b> २   | 28         | <b>८</b> ३ | સર | ६१  | ३१         | <b>२</b> २ |
| ર       | ३४           | १२         | ११७        | २२ | 38  | ३२         | १६         |
| રૂ      | <b>£</b> 3   | १३         | 4-         | २३ | ६५  | ३३         | ९७         |
| ૪       | ąυ           | १४         | ३१         | રક | ४०  | ३४         | 95         |
| લ       | ४३           | 84         | ६५         | २५ | ४७  | 34         | २२         |
| \$      | ३७           | १६         | ६६         | २६ | २६  | ३६         | રઇ         |
| v       | 80           | १७         | ०,०        | २७ | 84  | रुड़       | २१         |
| <       | <b>\$</b> \$ | १८         | ૭૭         | २८ | ४६  | <b>३</b> ८ | २⊏         |
| ۹,      | 80           | १९         | و, ا       | २९ | Ęo  | <b>३</b> ९ | १३         |
| १०      | 38           | २०         | ९ ०        | 30 | २२  | ४०         | १७         |

इव त्वेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्म्मुषिः। सविता देवता। इव त्वेत्यारभ्य भागे-पर्य्यन्तस्य स्वराड्वृहतीछन्दः। मध्यमः स्वरः। अग्रे सर्वस्य ब्राह्मयुष्णिक्

छन्दः। ऋषभः खरः॥

अहरवेद के भाष्य करनेके पदचात यजुर्वेद के मंत्रभाष्य का बारम्भ किया आहा

## यजुर्देद भाष्ये -

है इसके प्रथम अध्याय के प्रथम गन्त्र में उत्तम २ कामी की सिद्धि के छिये मनुष्यों

को ईइयर की बार्यना करनी अवदय चाहिये इस बात का प्रधादा किया है। इषे त्योजर्जे त्यां वायर्थ स्थ देवो यः सञ्चिता पार्पेयतु श्रेष्ठत-माय कर्मण आ प्यांगध्यमध्न्या इन्द्रांग भागं प्रजावंतीरनमीवा अंग्रहमा मा बंस्तेन ईशात माघशंथ सो ध्रवा अस्मिन् गोर्पती स्यान बहीर्यजेमानस्य प्रशान्यांहि ॥ १ ॥

.. पदार्थान्वयभाषा:-हे मनुष्य खोगो ! जो (सचिता) सब जगत की उत्पत्ति करने वाला संपूर्ण पेश्वर्ययुक्त (देव:) सब सुर्खों के दंत और सब विधा के प्रसिद्ध करने वाला परमात्मा है। सो (वः) तुम इम और अपने मित्रों के जो (वायवः) सब कियामों के सिद्ध कराने हारे स्पर्श गुग्रावाले प्राग्रा अन्तःकरगा और इन्द्रियां (स्थ) हैं उनको (श्रष्टतमाय) अत्युत्तम (कर्मणे) करने योग्य सर्वोपकारक य-क्षादि कर्मों के लिये (प्रार्पयत् ) अच्छी प्रकार संयुक्त करे। इस लोग (इपे ) सन्न मादि उत्तम उत्तम पदार्थी और विज्ञान की इच्छा शीर (ऊर्ज) पराक्रम मर्थात उत्तम रस की प्राप्ति के लियं (भागं ) संवा करने योग्य धन और शाने के भरे हुए (त्या) इक गुणवालं भीर (त्या ) श्रेष्ठ पराक्रमादि गुणों के देनेहारे आपका सब प्रकार से प्राथय करते हैं। है मित्र जोगी तुम भी ऐसे होकर ( ब्राप्यायध्वम् ) उन्नति की प्राप्त हो तथा हम भी हों। हे भगवन् जगदी इवर! हम खोगों के (इन्द्राय) परम पेइवर्ष की प्राप्ति के लिये (प्रजायतीः) जिनके बहुत संतान हैं तथा जो (अतमीयाः) व्याधि और ( मयहमाः ) जिन में राजयहमा मादि रोग नहीं हैं वे (मध्न्याः) जो २ गौ झादि पशु वा उसति करने योग्य हैं जो कभी हिंसा करने योग्य नहीं कि जो इन न्द्रियां वा पृथिवी सादि लोंक हैं उन को सदैव ( प्रार्थयत् ) नियन की जिये । हे ज-गदीश्वर आपकी कृपा सं हम लोगों में सं दुःख देने के लिये काई (अघशंसः) पापी षा ( स्तेन: ) चोर डांक् ( मा ईशत ) मन उत्पन्न हो । तथा माप इस (यजमानस्य) परमेश्वर और सर्वोपकार धर्म के सेवन करने वाले गनुष्य के (पशृन् ) गी छे भीर द्वाची आदि तथा सक्सी भीर प्रजा की (पाहि) निरन्तर रखा की जिये जि इन पदार्थी के इरने को पूर्वीक कोई दुए मतुष्य समर्थ न हो (अस्मिन् ) इस थीं-र्मिक (गोपती )पूथियी झादि पदार्थी की रक्षा चाइने वाले सज्जन मनुष्य के समीप (वही: ) बहुतसे उक्त पदार्थ (अवाः ) निश्चल सुक के हेतु (स्पात ) हीं। इस मंत्र की स्याख्या शतपथ ब्राह्मसा में की है उसका ठिकाना पूर्व संस्कृत माध्य में खिख

दिया भीर आगे भी ऐसा ही डिकाना जिला जायगा जिसकी देखना हो वह उस ठिकाने से देख जेंगे ॥ १॥

भावार्थमाथा: निव्हान् महुन्यों को सदैन परमंदनर और धमंगुक्त पुरुषार्थ के आश्रय से ऋग्नेद को पहा के गुन्ना और गुन्ना को ठीक र जान कर सब पदार्थों के संवयंग से पुरुष्य की सिद्धि के जिने मह्मुत्तम क्रियाओं से युक्त होना चाहिये कि जिससे परमेश्वर की रूपापूर्वक सब मनुन्यों को सुख और पेदनर्थ की दृद्धि हो सब लोगों को चाहिये कि अन्छे अन्छे कामों से प्रजा की रक्षा तथा उक्तम उक्तम गुणों से पुत्रादि की शिक्ता सदैन करें कि जिस से प्रवल गोग विका और चोरों का अभाव हो कर प्रजा और पुत्रादि सब सुन्यों को प्राप्त हो यही श्रेष्ठ काम सब सुजों की जान है। हे मनुष्य लोगों! ब्रामों सपने गिरुके जिसने इस संसार में आश्चर्यकप पदार्थ रचे हैं उस जगदीहरर के लिये सदैय धन्यवस्य देवें। बही परमदयाल देश्वर अपनी रूपा से उक्त कामों को करते हुए प्रकृष्यों की अदैन रक्षा करता है॥ १॥

वसोः पवित्रमित्यस्य ऋषिः स्व एव । यहाँ देवतः । स्वराडार्षी त्रिष्टुण्कृत्दः । हेवतः । स्वराडार्षी त्रिष्टुण्कृत्दः ।

षद्द यह किस प्रकार का होत. है इस विश्व का उपदेश समसे मंत्र में किया है। बसें! प्रविश्वमां में कैरों के हिंदि हों कि मानुरिद्यं में घुमें सि बिद्वभी अस्ति। पुरुषेण घान्या हु अहं स्तु का ह्या ते युद्धपंति-क्रीपीत ॥ २॥

पदार्थः है विद्यायुक्त मनुष्य तू जो (वसी:) यह (पवित्रं) शुद्धिका हेतु (असि) है (द्यी:) जो विद्यानके प्रकाश का हेतु और सूर्य की किरशों में स्थिर होने वाला (असि) है। जो (विद्यान) वायु के साथ देशदेश करों में फैलने वाला (असि) है जो (मातिक्ष्यतः) वायु को (द्यानेः) शुद्ध करने वाला (असि) है। जो (विद्यानः) संमार का धारशा करने वाला (असि) है। तथा जो (परमेशा) कुम (धारतः) स्थान से (दक्षप्रस्त्र) सुख्या बढ़ाने वाला है इस यह का (मा)

हैं (ह:) त्याम कर। तथा (ते) तेम (यज्ञपति:) यह की रक्षा करने वाला व जमान भी उस को (मा) न (हार्शित्) त्यांगे। भारत्वर्थे के श्रमित्राय से यह दाश्य का अर्थ तीन प्रकार का दोता है अर्थात एक जो इस लोक और परलोक के सुल के जिये विद्या ज्ञान और धर्म के सेवन से बुद्ध अर्थात् यह र विद्वान् हैं उनका सत्कार करना। दूसरा अच्छी प्रकार पहार्थों के गुणी के सेत्र और विरोध के ज्ञान से दिश् व्यविद्या का प्रत्यच्च करना और तीमरा नित्य विद्वानों का समागम भद्यवा शुभगुग्रा विद्या सुख धर्म भीर सत्य का नित्यदान करना है ॥ २ ॥

भावार्थः-मनुष्य जांग अपनी विद्य और उत्तम कियामं जिस यहका संवन करते हैं उसमें पवित्रताका प्रकाश, पृथिवीका राज्य, वायुक्तपी प्रामाके तुरुष राज-नीति, प्रताप, सबकी रत्ता, इस लांक और परलाकों सुखकी वृद्धि, परस्पर कांग-स्रतासे वर्त्तना, और कुटिजताका त्याग इत्यादि श्रेष्ठ गुगा उत्पन्न होते हैं इस लिये सब मनुष्योंको परापकार नथा अपने खुखके लिये विद्या और पुरुषार्थके साथ गी-तिपूर्वक यहका भनुष्ठान नित्य करना चाहिये॥ २॥

वसंाः पवित्रमित्यस्य ऋषः स प्य। स्विता। देवता। सुरिग्जगती इत्दः। निपादः स्तरः॥

किर उक्त यज्ञ कैसा सुख करता है इस विषयका उपहेश अगले मंत्रमें किया है

वसीः प्रवित्रंमित शानधारं वसीः प्रवित्रंमिति सहस्रंवारम्। देशस्त्रां सिवृता पुनातु वसीः प्रवित्रंग शानधारंग सुप्वा कार्मधूक्षः॥३॥

पर्। शं-जो (वसोः) यश ( शतथारं ) असंख्यात संसारका धारण करने और (पिवत्रं) शुद्धि करनेवाला कर्म ( असि ) है तथा जो ( वसोः ) यश ( सहस्रवारं ) अनेक प्रकारके ब्रह्मांडको धारण करने और ( पिवत्रं ) शुद्धिका निर्मित्त सुख देनेवाला है (त्वा) उस यश्वको (द्वः) स्वयंप्रकाशस्त्र ( स-विता) वस्तु आदि तति स देवोंका उत्पत्ति करनेवाला परमेश्वर (पृनातु) पिवत्र करं। हे जगदीदवर! आप हम लोगों से सेवित जो (वसोः) यश्व है उस (पिति-त्रेण) शृद्धि के निर्मित्त वेदके विश्वान ( शत्यारणा) वहुत विद्याओं का धारण करनेवाले वंद भौर (सुःवा) अवली प्रकार पिवत्र करनेवाले यश्वसे हम जोगों को पिवत्र की जिये। हे विद्वान पुरुष वा जाननेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य! तू (कापूर्वं वेदकी श्रेष्ठ वाणियों में से कीन २ वाणिके अभियायको ( अधुद्धः) अपने सनमें विद्वान अर्था जानना चाहता है ॥ ३॥

भावार्थः — जो मनुष्य पूर्वोक्त यज्ञका सेवन करके पवित्र होते हैं उन्हीं को ज-गदीहवर बहुनसा झान देकर अनेक प्रकार के सुख देता है परन्तु जो लोग ऐसी कियाओं के करनेवाले वा परे। पकारी होते हैं वेही सुखको बास होते हैं भाखस्य क- रतेवा के कभी नहीं । इस मंत्रमें (कामधुद्धः ) इन पदों से वाशी के विषय में प्रदन है ॥ ३॥

> सा विद्वायुरित्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुरैवता । अनुपूर् ऋन्दः । गांधारः स्वरः ॥

जो पूर्वीक मंत्रमें तीन प्रदन कहे हैं उनके उत्तर अगले भेत्रमें क्रमसे प्रका-दीत किये हैं॥

सा विद्वायुः सा विद्वकं मां सा विद्वधांषाः । इन्द्रंस्य स्वा भागक सोमेना तंनच्मि विष्णों हुन्यक्षरंक्ष ॥ ४ ॥

पदार्थः — हे (विष्णों) व्यापक ईश्वर आप! जिस वाखीका धारमा करते हैं (सा) यह (विश्वायुः) पूर्ण मायुकी देनेवाली (सा) वह जिससे कि (विश्वकर्मा) संपूर्ण कियाकांड सिद्ध होता है और (सा) यह (विश्वधायाः) स- व जगत को विद्या और गुर्णों से धारण करनेवाली है। पूर्व मंत्र में जो प्रश्न है उस के उत्तरमें यही तीन प्रकारकी वाणी प्रहण करनेयोग्य है इसीसे में (इन्द्रस्य) परमेश्वरका (भागम्) संवा करने योग्य यहको (संमेन) विद्यासे सिद्ध किये रस मथवा आनंदसे (आतनिम) अपने हृदयमें दृढ करता हूं तथा हे परमेश्वर! (इव्यम्) पूर्णेक्तयक्षसंयन्धि देनेलनेयोग्य दृव्य वा विद्यानकी (रचक् ) निरन्तर रह्णा की जिये ॥ ४॥

भावार्थ: -तीन प्रकारकी वाणी होती है अर्थात् प्रयम वह जो कि ब्रह्मवर्थ में विद्या पढ़ने वा पूर्ण आयु होने के लिये संवन की जाती है। दूसरी वह जो गृहाश्रम में सनेक किया वा उद्योगों से सुखों की देने वाली विस्तारसं प्रकट की जाती है। सौर तीसरी वह जो इस संभारमं सब मन्ष्यों के दारीर और आत्माके सुखकी दु- जि वा ईदवर आदि पदार्थों के विज्ञानको दंनवाली वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में विद्वानों से उपदेश की जाती है इन प्रकारकी वाणी के विना किसी को सब सुख है। हो सकते। क्यों के इसी सं पूर्वोक्त यह तथा व्यापक ईदवरकी स्तुति प्रार्थना कर वा यांग्य है। ईदवरकी यह आहा है कि जो नियम से किया हुआ यह संसारमें रक्षाका हेतु और प्रेमसत्यमावसे प्रार्थनाको प्राप्त हुआ ईदवर विद्वानों की सर्वदा रक्षा करता है वही सबका अध्यक्त है परन्तु जो किया में कुदाल धार्मिक परोपकारी मनुष्य हैं वेही ईवर और धंमको जानकर मोक्ष और सम्यक् कियासा-धनों से इस लोक और परलोकके सुखको प्राप्त होते हैं॥ ४॥

स्रोत व्यतपतहत्त्वस्य ऋषिः स्र एव । सांग्रेदेवता । सार्चीविष्टुण् इत्दः । धैवतः स्वरः ।

उक्त वाणिका ब्रत क्या है इस विषय हा उपरेश भगले मत्रमें किया है। अरने ब्रतपत ब्रतं चेरिष्यामि तच्छेकेयं तन्में राध्यताम्। हुद् महमनृतात्मत्यमृतिमि ॥ ५ ॥

पदार्थः - हं ( व्रतपते ) सत्य भाषणा मादि धर्मों के पालन करने भीर ( अग्ने ) सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर में ( अनुतात् ) जो झूँउसे अलग ( सत्यम् ) वे-दिवा, प्रत्यच्च आदि प्रमाणा, सृष्टिकम विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि गादि प्रकारोंसे जो निर्भ्रम, सर्वदित, तस्त्व अर्थात् सिद्धांत के प्रकाश करानेहारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया ( व्रतम् ) सत्य बोजना सत्य मानना और सत्य करना है उसका ( उपीम ) अनुष्ठान अर्थात् नियम से प्रविण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूं ( मे ) मेरे ( तत् ) उस सत्य व्रतको आप ( राध्यताम् ) अच्छी प्रकार सिद्ध की जिये जिससे कि ( अरहम् ) में उक्त सत्य व्रतके नियम करने की ( शक्यम् ) समर्थ हो ऊं और में ( इदम् ) इसी प्रत्यच्च सत्य व्रतके आचरणा का नियम ( चिर्ण्यामि ) करूंगा ॥ ५॥

भावार्थ:-परमेश्वर ने सब मनुष्यों को नियम से संघन करने योग्य धर्म का उपदेश किया है जो कि न्याययुक्त परीक्षा किया हुआ सत्य लक्ष्यों से प्रसिद्ध और सन्
यका हितकारी तथा इस लोक अधीत संसारी और परलोक मधीत मोत्तसुखका
हेतु है यही सबकी आचरण करने योग्य है और उससे विरद्ध जो कि अभम कहाता है वह किसी को प्रहणा करने योग्य कभी नहीं हो सकता क्योंकि सर्वत्र
उसीका त्याग करना है इसी प्रकार इमको भी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि है परमेश्वर! हम लोग वेदों में आप के प्रकाशित किये सत्य धर्मका ही प्रहणा करें तथा है
परमात्मन्! आप हम लोगों पर पेसी रूपा की जिये कि जिससे हम लोग उक्त सत्य
धर्म का पालन करके अर्थ काम और मोक्षरूप फलों को सुगमता से प्राप्त हो सर्वे
जैसे सत्य व्रतके पालने से आप व्रतपित हैं वेसेही हम लोग भी आप की कृषा और
अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्य व्रतके पालनेवाले हों तथा भर्म कर्मकी इच्छा
से अपने सत्कर्म के द्वारा सब सुखोंको प्राप्त होकर सब प्राण्यियों को सुख पहुंचाने
वाले हों पेसी इच्छा सब मनुष्यों को करनी चाहिये। शतपथ ब्राह्मणाके बीच इस
मन्त्रकी व्याख्यों कहा है कि मनुष्यों का आचरणा हो प्रकारका होता है एक स-

त्य सीर दूमरा झूंडका अर्थात् जो पुरुष वार्धाः मन सीर दारीर से सत्यका आचर-या करते हैं वे देव कहाते और जो झूंडका आचर्या करनेवाले हैं वे असुर राक्षस आदि नामों के अधिकारी होते हैं ॥ ५॥

> कस्टेन्ट्यस्य ऋषिः स एव । प्रजापतिर्देवता आर्चीपंक्तिद्छन्दः। पंचमः खरः।

किस ने सत्य करने और असत्य छोड़ने की अक्षा दी है सो अगले मंत्र में उपदेश किया है॥

कस्त्रां ग्रुनिक्क स्र स्वां ग्रुनिक्क कस्में त्वा ग्रुनिक्क तस्में त्वा ग्रुनिक्क कर्मण वां वेषांच वाम् ॥ ६ ॥

पदार्थ — (कः) कीन (त्वाम) तुभका अच्छी २ कियाओं के संवन करने के लियं (युनक्ति) आहा देता है (सः) सं जगदीदवर (त्वा) तुम को विद्या आदिक द्वाम गुणों के प्रकट करने के लिये विद्वान् वा विद्यार्थी होनेको (युनक्ति) आज्ञा देता है (कस्मे) वह किन २ प्रयोजनके छिपे (त्वा) मुभ और तुभको (युनक्ति) युक्त करता है (तस्मे) पूर्वेक्त सत्य अतके आवरणक्रप यज्ञकं लिये (त्वा) अमेके प्रवार करने में उद्योगीको (युनक्ति) आज्ञा देता है (सः) वर्ही ईश्वर (क्रमंग्रें) उक्त अष्ठ कमें करने के लिये । वाम् ) कमें करने और करताविद्यां को नियुक्त करता है (विपाय) हाम गुणों और विद्यामों में व्याप्तिके लिये (वाम्) विद्या पहने और पढ़ाने वाले तुम लोगोंको उपदेश करता है ॥ ६॥

भागार्थ:—इस मन्त्र में प्रदन और उत्तरसे ईदनर जीवों के लिये उपदेश करता है जब कोई किसी से पूछे कि मुक्त सत्य कमीं में कीन प्रवृत्त करता है इसका उन्तर ऐसा दे कि प्रजापति अर्थात परमेदवरही पुरुषार्थ भीर अच्छी र कियामों के करने की तुद्धारे लिये वेदके द्वारा उपदेश की प्रेरगा करता है इसी प्रकार कोई विद्यार्थी किसी विद्वान् से पूर्क कि मेरे भारमा में अन्तर्थी मक्त से सत्य का प्रकाश कि करता है तो वह उत्तर देवे कि सर्व व्यापक जगदीदवर । किर वह पूछे कि अह इमको किस र प्रयोजन के लिये उपदेश करता और भाक्षा देता है। उस का उत्तर देवे कि सुख भीर सुखस्वक्त परमेदवर की प्राप्ति तथा सत्यविद्या और भर्म के बचार के लिये में भीर आप दोनों को कीन र काम करने के लिये वह ईदवर उपदेश करता है। इसका परस्पर उत्तर देवे कि यह करने के लिये। किर वह की-नर परार्थ की प्राप्ति के लिये भाक्ष है। इसका उत्तर देवे कि सब विद्यामों की

प्राप्ति और उनके प्रचार के लिये। मनुष्यों को दो प्रयोजनों में प्रवृत्त होना चाहिये अर्थात एक तो अत्यंत पुरुषार्थ और शरीर की आरोग्यता से चक्रवर्ती राज्यक श्मी की प्राप्ति करना भीर दूसरे सब विद्याओं को अच्छी प्रकार पहने उनका प्रचार करना चाहिये। किसी मनुष्य को पुरुषार्थको छोड़ के आलस्य में कभी नहीं रहना चाहिये॥ ६॥

प्रत्युष्टभित्यस्य ऋषिः सः एष । यक्षो देवता । प्राजापत्या जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सब मनुष्यों को उचित है कि दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यों का निवेध करें इस बात का उपदेश सगल मनत्र में किया है ॥ प्रत्युष्ट्र थे रक्षः प्रत्युष्ट्रा अर्गत्यो निष्ठंग्रथे रक्षां निष्ठंगा स्ररां-तयः । दुर्बुन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ७॥

पदार्थ:— मुक्त को चाहिये कि पुरुषार्थ के साथ ( रक्षः ) दुष्ट गुण मौर दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य को (प्रत्युष्टम्) निश्चय करके निर्मूल करूं तथा ( मरातयः ) जो राति अर्थात् दान आदि धर्म से रहित दयाहीन दुष्ट राष्ट्र हैं उनको (प्रत्युष्टाः ) प्रत्यच्च निर्मूल (रच्चः ) वा दुष्ट स्वभाव दुष्ट गुगा विचा विरोधी स्वर्थी मनुष्य और (निष्टप्तम्) (भरातयः ) द्वल युक्त होके विचा का प्रह्मा वा दान से रहित दुष्ट प्राण्यों को (निष्टप्ताः ) निरंतर संतापयुक्त करूं। इस प्रकार करके ( अन्तिरिक्षम् ) सुक्ष के सिद्ध करने वाले उत्तम स्थान और ( उद ) अपार सुख को ( अन्वेमि ) प्राप्त हों छो। ७॥

भावार्थः—ईश्वर माझा देता है कि सब मनुष्यों को अपना हुए स्वभाव कोड़कर विद्या और धर्म के उपदेश से मौरों को भी दुएता मादि सपर्म के व्यवहारों से अखग करना चाहिये तथा उन को बहु प्रकार का ज्ञान मौर सुख देकर सब मनुष्य आदि प्राश्चियों को विद्या भर्म पुरुषार्थ और नानाप्रकार के मुखों से युक्त करना चाहिये॥ ७॥

भूरिसीत्यस्य ऋषिः स पत्र । भगिर्देश्ता । भातित्रगती छन्दः । निपादः छरः ॥ सबके भारण करने वाले देश्वर और पदार्थ विद्या की सिद्धि हेतु भौतिक भगि का उपदेश भगले मन्त्र हैं किया है ॥

धूरं मि घूर्व धूर्वन्तं धूर्वतं यो असान्धूर्विति तं धूर्व यं वयं धृषीन्मः । देवानां मि विद्वितम् अस्तितम् प्रितम् जुर्दतमं देवहूर्न-मम् ॥ ८॥

पदार्थ:-हे परमेश्वर ! आप (भूः) सब दोषों के नाश और जगत की रक्षा करने बाखें (मिल) हैं इस कारण हम लोग इए बुद्धि से (देवानाम्) विद्वानों को विद्या मोक्ष भीर मुख में (बहितमम्) यथायोग्य पहुंचान (सास्नतमम्) आतेशय करके शुद्ध करने (पिततमम्) सब विद्या और आनन्द से संसार को पूर्ण करने (जुष्टतमम् ) धा-र्मिक अक्त जनों को सेवा करने योग्य और (देवहतमम् ) विद्वानों को स्ताति करने यांग्य आप की निख उपासना करते हैं ( यः ) जो कोई द्वेषी छली कपटी पापी कामको बादियुक्त मतुष्य ( अस्मान् ) धर्मारमा और सब को सुख से युक्त करने वाले इम छोगों को ( भूवेति ) दुःख देता ह और (यम्) जिस पापी जन को (वयम्) इम छोग ( धूर्वोम: ) दुःख देते हैं (तम्) उस को आप ( धूर्व ) शिक्षा कीजिये तथा जो सब से द्रोह करने वा सब को दुःख देता है उस को भी भाप सदैव ( धूर्व ) ताइना कीजिये ॥ है शिल्प विद्या को जानने की इच्छा करने वाले मनुष्य ! तू जो भौतिक अग्नि (धू:) सब पदार्थों का छेदन और अन्धकार का नाश करने वासा (असि) है तथा जो कला चलाने की चतुराई से यानों में विद्वानों को (बहितमम्) सुख पहुंचान (सहिनतमम्) शुद्धि होने का हेन् ( पवितमम् ) शिल्पविद्या का मुख्य साधन (जुष्टतमम्) कारीगर छोग जिस का सेवन करते हैं तथा जो (देवहतमम्) विद्वानों को स्तृति करने योग्य अग्नि है उस को ( वयम ) इस लोग ( धूर्वामः ) ताइते हैं और जिसका सेवन युक्ति से न किया जाय तो ( अस्मान् ) हम जोगों को ( धूर्वति ) पीड़ा करता है (तम्) उस (धूर्वन्तम्) पीड़ा करने वाले अग्नि को (धूर्व) यानादिकों में युक्त कर तथा है वीर पुरुष ! तुम (यः ) जो दुए शक्न ( अस्मानू ) हम लोगों को ( भूर्वित ) दुःख देता है (तम) उस को ( भूर्व ) नष्ट कर। तथा जो कोई चोर मादि है उस का भी ( घूर्व ) नाश कीजिये ॥ ८॥

भावार्थ:-जो ईरवर सब जगत को घारण कर रहा है वह पापी दुष्ट जीवों को उनके किये हुए पापों के अनुकूब दंड देकर दुःख युक्त और धर्मात्मा पुरुषों को उन्सम कर्मों के अनुसार फल देके उनकी रचा करता है वही सब सुखों की प्राप्ति गत्मा की शृद्धि कराने और पूर्ण विद्या का देनेवाला विद्वानों के स्तृति करने योग्य तथा प्रीति और दृष्ट दुद्धि से सेवा करने योग्य है दूसरा कोई नहीं। तथा यह प्रसन्त भौतिक अग्नि भी सम्पूर्ण शिल्पविद्याओं की कियाओं का सिद्ध करने तथा उनकी मुख्य साधन और पृथिवी आदि पदार्थों में अपने प्रकाश अथवा उनकी प्राप्ति से भ्रेष्ठ है। क्योंकि जिस से सिद्ध की हुई आग्नेय आदि उत्तम शस्ताका

विद्या से शतुमों का पराजय होता है इससे यह भी विद्या की वृक्तियों से होम मौर विमान मादि के सिद्ध करने के छिये सेवा करने के योग्य है ॥ ८ ॥ अन्दुतमसीसस्य ऋषिः स एव । विश्वहुँवता । निचृत त्रिष्ट्य छन्दः । धैवतः खरः ॥ अब यजमान भौर मौतिक भागि के कर्म का उपदेश अगन्ने मन्त्र में किया है ॥ ग्राप्टुंतमसि हिच्छानं हु छहंस्य माह्यामी ते युज्ञपंतिह्यां वित्यां ॥ ९ ॥ विद्यांस्त्वा कामतासुरु वातायापंहत् छ रक्षो यन्छन्तां पर्श्व ॥ ९ ॥

पदार्थः — हे ऋत्विग् मनुष्य तुम जो भिंग से बढ़ा हुआ (अष्डुतम्) कुटिखता रहित (हिवर्धानम्) होम के योग्य पदार्थों का धारम्य करना है उस को (इंहस्व) बढ़ाम्रो किन्तु किसी समय में (मा ह्याः) उसका त्याग मत करो तथा यह (ते) तुझारा (यञ्चपतिः) यजमान भी उस यह के अनुष्ठान को न को है। इस प्रकार तुम खोग (पंच) एक तो ऊपर को चेष्टा होना दूसरा नीचे को तीसरा चेष्टा से अपने अर्कों को संकोचना चौथा उनका फैलाना पांचमा चलना फिरना भादि इन पांच प्रकार के कर्मों से हवन के योग्य जो द्रव्य हो उस को अग्नि में (यच्छन्ताम्) हवन करो (त्वा) यह जो हवन किया हुमा द्रव्य है उसको (विध्याः) जो व्यापनशीस सूर्य्य है वह (अपहतम्) (रक्षः) हुर्गचादि दोषों का नाश करता हुआ (उस्वाताय) भत्यन्त वायु की शुद्धि वा सुख की वृद्धि के लिये (कमताम्) चढ़ा देता है ॥ ६॥

भाषार्थ: - जब मनुष्य परस्पर प्रीति के साथ कुटिजता को छोड़ कर शिक्षा देते, बाबे के शिष्य होके विशेष ज्ञान और फिया से भौतिक सिन की विद्या को ज्ञान कर उस का मनुष्ठान करते हैं तभी शिल्पविद्या की सिद्धि के द्वारा सब शत्रु दा-रिद्र मीर दुःखों से छूटकर सब सुर्खों को प्राप्त होते हैं इस प्रकार विष्णु अर्थात ब्यापक परमेश्वर ने सब मनुष्यों के लिये आहा ही है, जिस का पायन करना सब को उचित है। ९॥

देवस्य त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । स्विता देवता । भुरिग्वृहती छन्दः । मध्यमः खरः॥ उस यक्ष के फल का त्रह्या किस करके होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

हेबस्यं त्वा सिवितः प्रसिक्षेऽदिवनीविद्याः पूरुणो हस्तिभियाम्

अग्नचे जुर्छङ्गुहु।म्युग्नीषोमांभ्यां जुर्छङ्गुहु।मि ॥ १०॥

पदार्थ:-में (सवितुः) सब जगत के उत्पन्न कत्ती सकल पेश्वर्थ के दाता तथा (देवस्य) संसार का प्रकाश करने हारे झीर सब सुखदायक परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस संसार में (महिननीः) सूर्य और जन्द्रमा के (बाहुस्वास) बस और वीटर्य से तथा (पूच्याः) पृष्टि करने बाखे प्राया के (हस्ताश्र्यास) महत्व और व्याग से (मग्नये) मग्निविद्या के सिद्ध करने के बिये (जुएस) विद्या पद्ने वाखे जिस कर्म की सेवा करते हैं (स्वा) उसे गृह्यामि खीकार करता हूं। इसी मकार (मग्नियोमाश्याम) मग्नि मौर जल की विद्या कर के जुएस) विद्वामों वे जिस कर्म को खाहा है उस के फल को (गृह्यामि) स्तीकार करता हूं॥ १०॥

भावार्थ:—विद्वान् मनुष्यों को उचित है कि विद्वानों का समागम वा अच्छे प्रकार अपने पुरुषार्थ से परमेश्वर की उत्पन्न की हुई प्रस्थक्ष सृष्टि अधीत् संसार में सकल विद्या की खिद्धि के जिये सूर्य चन्द्र अग्नि और जल भादि पदार्थों के प्रकाश से सब के वर्ज वीर्य की वृद्धि के अर्थ अनेक विद्याओं की पद के उन का प्रखार करना चाहिये अर्थात् जैसे जगदीश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति और उन की धारणा से सब का उपकार किया है वैसे ही इम जांगों को भी नित्य प्रयक्ष करना चाहिये ॥ १०॥

भूनाय त्वेति श्रद्धिः स एव । श्रीनदेंवता । खराड्जगती छन्दः । निषादः खरः॥ खन यक्षशाला भाविक घर कैसे बनाने चाहिये इस विषय का उपदेश श्रमले मन्त्र में किया है॥

भूतार्य त्या नारांतछे स्वृरिभिष्ठिषेषुन्द शहरतां दुर्याः पृथि-व्यामुर्जुन्तिरिक्षमन्वीमि । पृथिव्यास्त्वा नाभी साद्यास्याद्देर्या जुपस्थेऽन्तेहुव्यक्षरं च ॥ ११ ॥

पदार्थः—में जिस यह को (भूताय) प्राधायों के सुख तथा (भरातये) दारिद्र आदि दोषों के नादा के लिये (अदिल्या) वेदवाणी वा विद्वात प्रकाश के (उपस्थे) गुणों में (सादयामि) स्थापन करता हूं और (स्वा) उस को कभी (न)
नहीं छोड़ता हूं। हे विद्वान लोगो! तुमको उचित है। के (पृथिव्याम) विस्तृत सूमि
से (उच्योः) अपने घर (इंहन्ताम) बढ़ाने चाहिये में (पृथिव्याः) (नाभी) पृथिने के बीच में जिन गुहों में (स्वः) जल आदि सुख के पदार्थों को (अभिविष्येपम) सब प्रकार से देखूं भीर (उर्वेन्तिरक्षम) उक्त पृथिवी में बहुतसा अवकाश देकर सुख से निवास करने के योग्य स्थान रच कर (भन्वोमे) प्राप्त होता हूं। है
(अग्ने) जगदी इवर! आप (इव्यम) हमारे देने लेने योग्य पदार्थों की (रख) सवेदा रखा की निवेश । यह प्रथम पक्ष हुआ। श्री सक्ष्य स्थान पक्ष के स्थान परमेहबर! में

( मुताय ) संसारी जीवों के सुख तथा ( बरातवे ) दरित का विनादा और दान आदि धर्म करने से लिये (पृथिन्या: ) प्रथिकी के (नामी) बीच में ईश्वर की सत्ता बौर उसकी उपासना से (स्थः) सुख स्वक्रप (श्वा ) आप को (अभिविच्येषम् ) प्रकाश करता हूं तथा आप की कृपा से मेरे घर आदि पदार्थ और उन में रहने वाले मनुष्य मादि प्रायो ( दुइन्ताम ) वृद्धि को प्राप्त हो और में ( पृथिव्याम् ) विश्तृत म्मि में ( उठ ) बहुनसं ( जन्तिरिक्षम् ) अवकाशयुक्त स्थान को निवास के खिये (भ-दिखा उपस्ये ) सर्वत्र व्यापक भापके समीप सदा ( मन्देमि ) प्राप्त होता हूं। क-दाखित (त्था) मापका खाग (न) नहीं करता हूं। हे जगदिवर ! आप मेरे (इच्यम्) प्रयोद उत्तम पदार्थीको सर्वदा ( रक्ष ) रक्षा की जिये । यह दूसरा पक्ष हुमा सया तीसरा और भी कहते हैं में-शिल्पविद्याका जानने नाला यहकी करता हुआ ( भूता-ब ) सांसारिक प्राणियोंके सुख और ( अरातवे ) दरिक्न प्रादि दोषोंके विनाश का सुखसे दान मादि धर्म करनेकी इच्छा से ( पृथिन्या नामी ) इस पृथिनीपर शिल्प-विद्याकी सिद्धि करनेवाला जो (अग्ने ) अग्निहै उसको हवन करने वा शिल्पविद्या की सिद्धिके बिये ( साद्यामि ) स्थापन करता हुं क्योंकि उक्त शिल्पविधा इसीसे सिंब होती है ( अदिखाः ) तथा जो अन्तरिक्वमें स्थित मेघमंडल में होमद्वारा पहुंचे हुए उत्तम उत्तम पदार्थोंकी रक्षा करनेवाला है इस जिये इस अग्निको ( पृथिव्याम् ) पृथिबीमें स्थापन करके ( उर्बन्तारिक्षम् ) बहु अवकाशयुक्त स्थान और विविध प्रकार के सुर्खोंको प्राप्त होता है अथवा इसी प्रयोजनके लिये इस अधिको पृथिवी में स्था-पन करता हूं इस प्रकार श्रेष्ठ कर्मीको करता हुआ (स्तः ) सनेक सुखोंको ( स्रीभ-विख्येषम् ) देखं तथा मरे ( दुर्याः ) घर भौर उनमें रहनेवाले मनुष्य ( द % हन्ताम् ) शुभ गुगा और सुखसे वृद्धिको प्राप्त हो इस खिये इस भीतिक अग्निका भीत्याग (न) नहीं करता हूं यह तीसरा अर्थ हुआ।। ११॥

भाषार्थः—इस मंत्रमें इलेवालंकार है भीर ईइवरने आहा दी है कि हे मनुष्य खोगो! में तुझारी रखा इसिखये करता हूं कि तुम लोग एथिवीपर सब प्राणियोंको सुख पहुंचाओं तथा तुमको योग्य है कि वेदविद्या धर्मके मनुष्ठान मौर अपने पुरुष पार्यक्कारा विविध मकार के सुख सदा बढ़ाने चाहिये तुम सब महतुओं में सुख देते के योग्य बहुत अनकारायुक सुन्दर घर बनाकर सर्वता सुख सेवन करों और मेरी सृष्टिमें जितने पदार्थ हैं उन से अच्छे अच्छे गुर्शोंको खोजकर अध्वा अनेक विद्यान्योंको प्रकट करते हुए फिर उक्त गुर्शोंका संसारमें अच्छे प्रकार प्रचार करते रही कि जिससे सब प्राणियोंको उत्तम सुख बहता रहे तथा तुमको चाहिये कि मुक्को

सब जगह व्याप्त सबका साल्वी सवका मित्र सब सुखोंका बढ़ानेहारा उपासनाके योग्व और सर्व राक्तिमान् जानकर सबका उपकार विविध विद्याकी वृद्धि धर्ममें प्रवृत्ति अधमेसे निवृत्ति क्रियाकुरालताकी सिद्धि भौर यहकियाके अनुष्ठान आदि कर्ने में सदा प्रवृत्त रही इस मंत्रमें महीधरने भ्रांतिसे (अभिविख्येषम् ) यह पद् (ख्या प्रकथने ) इस धातुका दर्शन अर्थमें माना है यह धातुक अर्थसेही विरुद्ध होने कर के अरुद्ध है ॥ ११ ॥

पवित्रे स्थ इत्यस्य ऋषिः स पव । अप्सवितारौ देवते । स्वराह् त्रिष्टुप्छन्दः । भैवतः स्वरः ॥

अग्निमें जिस द्रव्यका होम किया जाता है वह मेघमंडलको प्राप्त होके किस प्रका-रका होकर क्या गुणु करता है इस बातका उपदेश ईश्वरने भगले मंत्रमें किया है।

प्रित्रे स्थो बैच्छाव्यो सिव्तित्वेः प्रस्तव उत्पृताम्याच्छिद्रेश प्रिक् त्रेण स्ट्येस्य र्विमिनः । देवीरापो अग्रेगुवी अग्रेगुवीऽग्रं हुमम्-चा युज्ञत्रेयताग्रे युज्ञपंतिश्रसुधातुं युज्ञपंति देवयुवंम् ॥ १२ ॥

पदार्थः -हे विद्वान् खोगो! तुम जैसे (साबतुः ) परमेदवरके (प्रसंख ) उत्पन्न किये हुए इस संसार में (अव्छिद्रेशा) निर्दोष और (पिवत्रेशा) पांवत्र करने का हेतु जो (स्व्यंस्य) स्व्यंकी (रिश्मिक्षः) किरशा हैं उन से (वैष्णाव्यो ) यझसं बंधी प्राण और अपानकी गति (पिवत्रे )पदार्थों भी पिवत्र करने में हेतु (स्यः) हों और जैसे उक्त स्व्यंकी किरशों से (अप्रेगुवः ) आगे समुद्र वा अन्तरिच्नें खर्जे (अप्रेगुवः ) प्रथम पृथिवी में रहनेवाजी सोम ओषिक सेवन करने तथा (देवीः) दिव्यगुणयुक्त (आपः) जल पिवत्र हों वैसे (नयत) पिवत्र पदार्थों का होम अग्निमें करो वैसेही में भी (अद्य) आजके दिन (इमम्) इस (यझम्) पूर्वोक्त किया संबंधी यझको प्राप्त करके (अप्रे) जो प्रथम (सुधातुम्) अष्ठ मन आदि इन्द्रिक्त और सुवर्ण आदि धनवाजा (यझपतिम्) यझका नियमसे पालक तथा (देवयुक्त विद्वान् और अष्ठ गुशोंको प्राप्त होने वा उनको प्राप्त कराने (यझपतिम्) यझकी इच्छा करनेवाला मनुष्य है उसको (उत्पुनामि) पवित्र करता हूं ॥ १२ ॥

भावार्थ:-इस मंत्रमें लुत्रोपमालंकार है-जो पदार्थ संयोगसे विकारको प्राप्त हो-ते हैं वे मीप्रके निमित्तसे झान सूक्ष्म परमाणुरूप होकर बायुके बीच रहा करते हैं और कुक शुद्ध भी होजाते हैं परन्तु जैसी यक्षके अबुद्धादसे वायु और दृष्टि जब- की उत्तम शुक्ति और पृष्टि होती है वैसी दूलरे उपायस कभी नहीं हो सकती इस से विद्वानोंको चाहिय कि होमिक्रिया और वायु अग्नि जल आदि पदाय वा शिल्प-विद्यासे अच्छी सचछी सचारी बनाके अनेक प्रकारके लाग उठावें अर्थात् अपनी मनोकामना सिद्धि करके औरोंकी भी कामना सिद्धि करें लो जल इस पृथिवीने अन्तरित्तको चढ़कर वहांसे लौटकर किर पृथिवी आदि पदार्थोंको प्राप्त होते हैं वे प्रथम और जो मेघमें रहनेवाले हैं वे दूसरे कहांते हैं ऐसी श्त्यम आहाता में मेचका इन्न तथा स्वर्थका इन्द्र नामसे वर्षान करके युद्धकप कथाके प्रकाश से मेचिवचा विद्यलाई है। १२॥

युष्मा इन्द्रो वृक्षितित्यस्य ऋषिः पूर्विक्तः । इन्द्रो देवता । निचृतुष्णिक् ऋन्दः । ऋ-षभः स्तरः । झग्नये त्वेत्यस्य ऋषिः स एय । अग्निर्देवता । थिराङ्गायत्री ऋन्दः । षड्जः स्तरः । दैव्याय कर्माग्र इत्यस्य ऋषिः स एव । यद्वी देवता । भृरिगु-

ियाक् इन्दः। ऋषभः खरः॥

उक्त जल किस प्रकार के हैं वा इन्द्र और वृत्रका युद्ध कैसे होता है सो अगुले मंत्र में कहा गया है॥

युष्मा इन्द्री वृणीत वृत्रतूर्ये यूपिमन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रो-क्षिताः स्थ । अन्नये त्वा जुष्टम्प्रोक्षांम्यन्तीषोमांम्यां त्वा जुष्ट-म्प्रोक्षांमि । दैन्यां क्रमणे शुन्धध्वं देवयुष्याये यहोऽश्रुद्धाः प-राज्यस्तुरिदं वृत्तव्युन्धामि ॥ १३ ॥

पदार्थः —यह (इन्द्रः ) सूर्यकोक (इन्त्र्यं ) मेघके वध के लिये (युष्माः ) पूर्वोक्त जलों को ( महागित ) स्वीकार करता है जैसे जल (इन्द्रम् ) वायुको ( अन्हागिष्वम् ) स्वीकार करते हैं वैसे ही (यूयम् ) हे मनुष्यो तुम लोग उन जल ओष्धि रखों को शुद्ध करने के लिये (वृत्रनूर्ये ) मेघके शीव्रवेगमें (प्रोक्षिताः ) संसारी पदार्थों के सींचनेत्राले जलों को (महागिष्वम् ) स्वीकार करो मौर जैसे वे जल्ल शुद्ध (स्थ ) होते हैं वैसे तुम भी शुद्ध हो । इसलिये में यहका मनुष्ठान करने वाला (दैव्याय ) सबको शुद्ध करनेवाले (कमेग्रे ) उत्क्षेपगा—उल्लावना । मवचे विषय निवेश के कना । माइंचन-सिमेटना । प्रसारगा—केलाना । गमन-जलना मादि पांच प्रकार के कर्म हैं उनके भौर (देवयज्याये ) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों की दिव्य किया के लिये । तथा ( अग्नये ) भौतिक अग्नि से सुख के लिये (जुष्म् ) अच्छी कियाओं से सेवन करने योग्य (त्था ) उस यहको ( प्रोज्ञामि ) करता हूं तथा । (अग्नीयोमाश्याम्) अग्नि और सोमसे वर्षाके निमित्त (जुष्म् ) प्रीति देनेवाला भौर

भीति से संबते योग्य (त्वा ) उक्त यहको ( प्रोक्षामि ) मेक्कंडक में पर्वचाता है इ. स मकार यहसे शुद्ध किये हुये जल ( शुन्ध ध्वम् ) झच्छे मकार शुद्ध होते हैं ( यह) जिस कारण यहकी शुद्धि से ( बः ) पूर्वोक्त जरूरे के मशुद्धि मादि दोष (पराजध्नुः) निवस हो (तत् ) उन जलोंकी शुद्धिकों में (श्रेषामि ) मध्ये प्रकार शुद्ध करता हूं। यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ है। हे यज्ञ करने वाले मनुष्यो! ( यत्) जिल का-इण (इन्द्रः ) सूर्यबोक ( वृत्रत्य्ये ) मेघके बधके निमित्त ( युष्माः ) पूर्वोत्त जल भीर (इन्द्रम् ) पवन को ( अवृद्याति ) स्त्रीकार करता है तथा जिस कारता सूर्य ने ( बृत्रतृष्वें ) मेघकी शीव्रता के निमित्त ( युष्माः ) पूर्वोक्त जखाँको ( मोचिताः ) प-दार्थ सीचनेवाले (स्थ ) किये हैं इससे (यूयम् ) तुम (त्वा ) उक्त यह को सदा स्थीकार करके ( नवत ) सिद्धि को प्राप्त करो इस प्रकार हम सब खोग (दैव्याय ) क्षेत्र कर्म वा ( देवयज्याये ) विद्वान और दिव्य गुर्सो की श्रेष्ठ कियाओं के तथा (अ-मने ) परमेहबर की प्राप्ति के लिये ( ज़रम् ) प्रीति करानेवाले यक्को (प्रोक्षामि) सेवन करें तथा ( अग्नीपोमाप्रपाम ) अग्नि और सोमसे प्रकाशित होनेवाले (त्वा) उक्त यहाको ( प्रोक्षामि ) मेघमंडल में पहुंचार्थे हे मनुष्यो!इस प्रकार करते हुए तुम सब पदार्थ वा सब मनुष्यों को ( शुन्भध्वम् ) शुद्ध करो ( यत् ) भीर जिससे (वः) तुम लोगों के अशुद्धि भादि दोष हैं वे सदा ( पराजध्तु: ) निवृत्त होते रहें । वैसेही में वेदका प्रकाश करनेवाला तुम लोगों के शोधन अधीत शक्ति प्रकार की (शुन्धा-मि ) अच्छे प्रकार बढ़ाता हूं॥ १३॥

भावार्थ:-परमेदवर ने मिन और सूर्य को इस लिये रखा है कि वे सब पदायों में प्रवेश करके उनके रस भीर जलको किन्न भिन्न कर दें जिससे वे वायुमंडलमें जाकर फिर वहां से पृथिवीपर आके सबकों सुख और शुद्धि करनेवाले हों।
इससे मनुष्यों को उत्तम सुख प्राप्त होने के लिये मिन्न में सुगंधित पदार्थों के होम
से वायु मीर वृष्टि जलकी शुद्धिहारा श्रेष्ठ सुखबदाने के लिये प्रीतिपूर्वक नित्य यह
करना चाहिये जिससे इस संसार के सब रोग भादि दोष नष्ट होकर उसमें शुद्ध
गुण प्रकाशित होते रहें इसी प्रयोजनके लिये में ईश्वर तुम सभोको उक्त यह के
विभिन्न शुद्धि करने का उपदेश करता हूं कि हे मनुष्यो! तुम खोग परोपकार करने
के लिये शुद्ध करने का उपदेश करता हूं कि हे मनुष्यो! तुम खोग परोपकार करने
के लिये शुद्ध करने का उपदेश कर के अनेक यान आदि यंत्र कका बना कर अपने
युद्धवार्ध से सदैव सुखयुक्त हो। १३॥

शर्मासीत्यस्य पूर्वोक्त ऋषिः। यञ्जो तेवता । स्वरास् जगती छन्दः। निषादः स्वरः।। उक्त यञ्ज किस प्रकार का है और किस प्रकार से करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है।

श्चारियवंध्नथ रक्षोऽवंधृता श्वरात्योऽदित्यास्त्वगंसि पति त्वादितिवेसा । श्रद्धिरसि वानस्पत्यो ग्रावांसि पृथ्बंध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वावेसा ॥ १४॥

पदार्थ:— हे मनुष्यो नुम्हारा घर ( शर्म ) सुस देने वाला ( असि ) हो उस घर से (रक्षः) दुष्ट स्वभाव वाले प्राणी ( अवश्वम् ) अलग करो और ( अरातयः ) दान आदि धर्मरहित शत्रु ( अवश्वाः ) दूर हों उक गृह ( अदित्याः ) पृथिको की (त्वक्) त्वचा के तुन्य ( असि ) हों ( अदितिः ) ह्वानस्वरूप ईश्वर ही से उस घर को ( प्रतिवेत्तु ) सब मनुष्य जाने और प्राप्त हों तथा जो ( वानस्पत्यः ) वनस्पति के निमित्त से उत्पन्न होने (गृथुबुष्तः) अतिविस्तार्युक अन्तरिक्ष में रहने तथा (प्राचा) जल का प्रहण करनेवाला (अद्रिः) मेघ (असि ) है उस और इस विद्या को (अदितिः) जगदीश्वर तुम्हारे लिये ( वेत्तु ) रूपा करके जनातें । विद्वान पुरुष भो ( अदित्याः ) पृथिवो की (त्वक् ) त्वचा के समान (त्वा ) उक्त घर की रचना को ( प्रतिवेतु ) आने ॥ १४ ॥

भावार्थः कृष्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि तुम लोग शुद्ध और विस्तारयुक्त मृति के बीच में अर्थात् बहुत से अवकाश में सब ऋतुओं में सुख देने योग्य घर को बनाके उस में सुखपूर्वक वास करो। तथा उस में रहनेवाले दुष्ट स्वभावयुक्त मनुष्यादि प्राणी और दोषों को निवृत्त करो फिर उस में सब पदार्थ स्थापन और वर्षा कर हेतु जो यज्ञ है उस का अनुष्टान करके नाना प्रकार के सुख उत्पन्न करने चाहिथे क्यों- कि यज्ञ के करने से वायु और वृष्टिजल की शुक्तिद्वारा संसार में अत्यन्त एख लिख होता है।। १४।।

अग्नेस्तनृरित्यस्य ऋषिः स पव । यक्को देवता । निचृज्जगर्ता छन्दः । निषादः स्वरः । हविष्कृदिति याजुषा पङ्किश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

उक्त यह किस प्रकार का होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।
अग्नेस्त्रन्त्रेसि खाची विसर्जनन्देवधीतये त्या गृह्णामि बृहद्त्राबासि बानस्पत्येः स हुद्नदेवेभ्यों हुविः शंमीक सुशामि शमीब्व । इविब्कृदेहि हथिब्कृदेहिं॥ १४॥

पदार्थ:—में सब जनों के सहित जिस हिव अर्थात् पदार्थ के संस्कार के लिखें (बृहद्यावासि ) बड़े २ पत्थर (असि ) हैं और (बानस्पत्य:) काष्ठ के मुसल आदि पदार्थ (देवेभ्यः) विद्वान् वा दिव्य गुणों के लिखें उस यज्ञ को (देववीत्यें) श्रेष्ठ गुणों के प्रकाश और श्रेष्ठ विद्वान् वा विविध भोगों की प्राप्ति के लिखें (प्रतिगृह्णामि) प्रहण करता हूं। हे विद्वान् महुष्य तुम (देवेभ्यः) विद्वानों के सुल के लिखें (सुशमि) अच्छे प्रकार दुःख शान्त करनेवाले (हिवः) यज्ञ करने योग्य पदार्थ को (शर्मीष्व)(शर्मीष्व) अत्यन्त शुद्ध करो । जो महुष्य वेद आदि शास्त्रों को प्रीतिपूर्वक पहते वा पदार्थ हैं उन्हीं को यह (हिवच्हत्) हिवः अर्थात् होम में चढ़ाने योग्य पदार्थों का विधान करनेवाली जो कि यज्ञ को विस्तार करने के लिखें वेद के पढ़ने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैष्य और शुद्धों की शुद्ध सुशिक्षित और प्रसिद्ध वाणी है सो प्राप्त होती है ॥ १५ ॥

भावार्थ: जब मनुष्य वेद आदि शास्त्रों के द्वारा यज्ञकिया और उसका फल जान के शुद्धि और उत्तमता के साथ यज्ञ को करते हैं तब वह सुगन्धि आदि पदार्थों के होम द्वारा परमाणु अर्थात् अति सूक्ष्म होकर वायु और वृष्टि जल में विस्तृत हुआ सब पदार्थों को उत्तम करके दिव्य सुसों को उत्पन्न करता है। जो मनुष्य सब प्राण्यों के खुल के अर्थ पूर्वों तान प्रकार के यज्ञ को नित्य करता है उस को सब मनुष्य हिष्कृत् अर्थात् यह यज्ञ का विस्तार करने वाला, यज्ञ का विस्तार करनेवाला उन्तम मनुष्य है ऐसा वारं कर कह कर सत्कार करें ॥ १५॥

कुक्कुटोऽसीत्य ऋषिः स एव । वत्युदेवता । ब्राह्मी विष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । देवो वः सिवते यस्य ऋषिः स एव । सिवता देवता । स्वराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी यह यज्ञ कैसा है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है।
कुक्कुट्टोिम् मर्धु जिह्न इष्म् क्रमावंद त्वयां व्यथ संघातथ संघान
तं जेष्म वर्षवंद्यम्मि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत् पराप्तक रक्षः परांप्ता अरात्यांऽपंहत्क स्थीं वायुवां विविनक्त देवो बंः सिवता
हिरंग्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वि किन्ने पाणिनां॥ १६॥

पदार्थ:—जिस मारण यह यज्ञ (मधुजिहः) जिस में मधुर गुणयुक्त बाणी हो।
तथा (कुक्कुटः) चोर वा शत्रुओं का विनाश करने वाला (असि) है और (इषम्)
सम् आदि पदार्थं वा (ऊर्जम्) विद्या अदि वल और उत्तम से उत्तम रस को देता है
इसी से उस का अनुष्ठान सदा करना चाहिथे। हे विद्वान् लोगो तुम उक्त गुणों को देने

वाला जो तीन प्रकार का यह है उसका अनुष्ठान और हम छोगों के प्रति उस के गु-णों का ( आवद ) उपदेश करो जिस से (वयम्) हम लोग ( त्वया ) तुह्यारे साथ (सं-धातम्,संघ।तम्) जिनमें उत्तम रीति से शत्रु ऑ का पराजय होता है अर्थात् अति भारी संव्रामों को वारंवार आ ( जेष्म ) सब प्रकार से जीतें क्योंकि आप युद्धविद्या के जा-नने क हो ( असि ) हैं इसी से सब मनुष्य ( वर्षवृद्धम् ) शका और अस्वविद्या की व-र्षों को बढ़ाने वाले (त्वा) आप तथा ( वर्षवृद्धम् ) वृष्टि के बढ़ाने वाले उक बहु की (प्रतिवेत्) जाने इस प्रकार संप्राप्त करके सब मनुष्यों को (परापृतम्) पवित्रता आदि गुर्णों को छोड़ने बाले (रक्षः) वुष्ट मनुष्य तथा (परापृताः) शुद्धि को छोड़ने वाले और ( अरातय: ) दान आदि धर्म से रहित शत्रु जन तथा ( रक्ष: ) डाकुओं का जैसे (अ-पहतम् ) नाश हो सके बैसा प्रयक्त सदा करना च हिये जैसे यह (हिरण्यपाणि:) जि-सका ज्योति हाथ है ऐसा जो ( वायु: ) पवन है । वह ( अच्छिट्रेण ) एक रस ( पा-णिना ) अपने गमनागमन व्यवहार से यज्ञ और संसार में अग्नि और स्टर्म से अति सूक्ष्म हुए पदार्थीं को (प्रतिगृभ्णातु) प्रहण करता है (हिरण्यपाणि:) वा जैसे कि-रण हैं हाथ जिस के वह (हिरण्यपाणि:) किरण व्यवहार से (सविता) वृष्टि वा प्र-काश के क्षारा दिव्य गुणों के उत्पन्न करने में हेतु (देव:) प्रकाशमय सूर्य्यलोक (व:) उन पदार्थी को (विविनक्तु) अलग २ अर्थात् परमाणुरूप करता है वैसे ही परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष (अव्छिद्रेण ) निरन्तर (पाणिना ) अपने उपदेश रूप व्यवहार से सब विद्याओं को (विविनकु) प्रकाश करें बैसे ही रूपा कर के प्रीति के साथ (वः) तुम को अत्यन्त आनन्द करने के लिये (प्रतिगृस्णातु ) ग्रहण करते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है परमेश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि यज्ञ का अनुष्ठान संग्राम में शत्रुओं का पराजय अच्छे २ गुणों का ज्ञान विद्वानों की सेवा दृष्ट मनुष्य वा दृष्ट दोषों का त्याग तथा सब पदार्थों को अपने ताप से छित्र मिन्न करने वाला अग्नि वा सूर्य्य और उनका धारण करने वाला वायु है ऐसा ज्ञान और ईश्वर की उपासना तथा विद्वानों का समागम करके और सब विद्याओं को प्राप्त होके सब के लिये सब सुखों की उत्पन्न करने वाली उन्नति सदा करनी चाहिये ।।१ श्री धृष्टिरमीत्यस्य ऋषि: स एव । अग्निवेंवता । ब्राह्मी पङ्किश्छन्दः । पञ्चम: स्वरः ।।

अब अग्निशब्द से किस किस का प्रहण किया जाता और इस से क्या क्या कार्ब्य होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

धृष्टिरुस्परां ऽरने आरिनमामादं जहि निष्क्रच्यादं से सेषा देव-

वजै बह् । ध्रुवमंसि पृथिवी हंधह ब्रह्मबनि स्वा क्षत्रवनि सजात-बन्युर्वद्धामि आतृंब्यस्य ब्रुधार्ये ॥ १७ ॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) परमेश्वर ! आप (धृष्टिः) प्रगत्म अर्थात् अत्यन्त निर्मय (असि) हैं इस कारण (निष्कव्यादम्) पके हुए भस्म आदि पदार्थी को छोड़ के (आमादम्) क-ब्खे पदार्थ जलाने और (देवयज्ञम्) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुर्णो से मिलाप कराने वाले (अ-प्रिम्) भौतिक वा विद्युत् अर्थात् बिज्जली रूप अग्नि को आप (सेघ) सिद्ध कीजिये इस प्रकार हम लोगों के भंगल अर्थात् उत्तमर खुख होने के लिये शास्त्री की शिक्षा कर के दु:खॉ को (अपजिहि) दूर कीजिये और आनन्द को (आवह) प्राप्त कीजिये तथा हे पर-मेश्वर आप ( ध्रुवम् ) निश्चल सुख देने वाले (असि) हैं इस से ( पृथिवीम् ) विस्तृत भूमि वा उसमें रहने वाले मनुष्यां को (इंह ) उत्तम गुणों से वृद्धियुक्त की जिथे। हे (अप्ने) जगदीश्वर ! जिस कारण आप अलन्त प्रशंसनीय हैं इस से मैं (भृत्वव्यस्य ) **पुष्ट या शत्रुओं के ( वधःय ) विनाश के छिये ( ब्रह्मविन ) (क्षत्रविन ) (सजातविन)** ब्राह्मण क्षत्रिय तथा प्राणिमात्र के सुख वा दु:ख व्यवहार के देने वाले (त्वा) आप को ( उपद्धामि ) हृद्य में स्थापन करता है। यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ। तथा हे विद्वान् यजमान जिस कारण यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (भृष्टि:) अति तीक्ष्ण ( असि ) है तथा निरुष्ट पदार्थी को छोड़ कर उत्तम पदार्थी से ( देवयजम् ) विद्वार वा दिव्य गुणों को प्राप्त कराने व ले यज्ञ को (आ वह) प्राप्त कराता है इस से तुम (निष्मव्यादम्) पके हुए भस्म आदि पदार्थी को छोड के (आमादम्) कच्चे पदार्थ ज-लाने और (देवयजम्) विद्वान् वा दिव्य गुणां के प्राप्त कराने वाले (अग्निम्) प्रत्यक्ष वा बिज्जलीरूप अग्नि को ( आवह ) प्राप्त करो तथा उसके जानने की इच्छा करने वाले लोगों को शास्त्रों की उत्तम २ शिक्षाओं के साथ उसका उपदेश (सेघ) करो तथा उस के अनुष्ठान में जो दोष हों उन को (अपजिहि) विनाश करो जिस कारण यह अग्नि सुर्खेहर से (धुवम्) निश्चल (असि) है इसी कारण यह आकर्षण शक्ति से (पृथिवीम्) विस्तृत भूमि वा उस में रहने वाले प्राणियों को (इंह) दृढ़ करता है इसी से मैं उस 🤻 न्यापित ) ( क्षत्रपति ) ( सजातपति ) ब्राह्मण क्षत्रिय वा जीवमात्र के सुखदुःख को अलग २ कराने वाले मेंतिक अग्नि को ( भ्रातृव्यस्य ) दुष्ट वा शत्रुओं के ( वधाय ) विनाश के लिये हवन करने की येदी वा विमान अवि यानों में (उपद्धामि) स्था-पन करता हूं यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ १७॥

भावार्यः--- इस मंत्रमें के पालकार है और सर्वशक्तिमान ईम्बरने यह भौतिक अग्नि

बाम अर्थात् कच्चे पदार्थ जलाने बाला बनाया है इस कारण भस्म रूप पदार्थों के जलाने को समर्थ नहीं है जिस से कि मजुष्य कच्चे २ पदार्थी को पंकी कर खाते हैं तथा जिस कर के सब प्राणियों का खाया हुआ अस आदि द्रव्य पकता है और जिस कर के मजुष्यलोग मरे हुथे शरीर को जलाते हैं वह कुव्यात् अग्नि कहाता है और जिस से दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाली विद्युत् बनी है तथा जिस से पृथिवी का घारण और आकर्षण करनेवाला सूर्व्य बना है और जिसे वेदविद्यांके जाननेवाले बारण वा धनुयंदके जाननेवाले झित्रय वा सब प्राणीमात्र सेवन करते हैं तथा जो सब संसारी पदार्थों में वर्तमान परमेश्वर है वही सब मनुष्यों का उपास्त्र देव है तथा जो कियाओं की सिद्धिके लिये मौतिक अग्नि है यह भी यथायोग्य कार्ब्यहारा सेवा करने के योग्य है ॥ १७॥

भन्ने ब्रह्मे त्यस्य ऋषिः स एव । अमिद्वेवता सर्वस्य । पूर्वस्य ब्रह्मी उष्णिक् छन्दः । क्रिक्सः स्वरः । ध्वेवतः स्वरः । वि-श्वाभ्य इस्युत्तरस्याची पंकिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी अग्निशब्द से अगले मंत्रमें फिर दोनों अथों का प्रकाश किया है।
अग्ने ब्रह्मं गृभणी दव ध्रुक्षणेमस्यन्ति रिक्षन्द रह ब्रह्मविने त्वा क्षश्रुवनि सजान्व न्युपंद्धामि आतृं व्यस्य ब्रधार्य । ध्रुत्रमिनि दिवंन्द्द छेह ब्रह्मविने त्वा क्षश्रुवनि सजान्व न्युपंद्धामि आतृं व्यस्य ब्रधार्य । विद्यां भ्यस्त्वाद्यां भ्य वपंद्धामि बितं रथो ध्रुविचनो सृग्णामिक्षरमां तपंसा तप्य ध्यम् ।। १८ ।।

पदार्थ—है (अग्ने) परमेश्वर!आप (घरणम्) सबके धारण करनेवाले (असि) हैं इससे मेरी (ब्रह्म) वेदमंत्रोंसे की हुई स्तृतिको (गृश्णीष्व) प्रहण कीजिये तथा (अन्तिश्क्षम्) आत्मामें स्थित जो अक्षय ज्ञान हैं उसको (इंह) बढ़ाइये में (म्रातृब्यस्य) शत्र आंके (बधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मविन) सब मनुष्योंके सुबके निमित्त वेदके शास्त्रशासान्तरद्वारा विभाग करनेवाले ब्राह्मण तथा (क्षत्रविन) राजधर्म के प्रकाश करने हारे (सजातविन) जो परस्पर समान क्षत्रियों के धर्म और संसारी म्-र्तिमान पदार्थ हैं इन प्राणियोंके लिये अलग अलग प्रकाश करनेवाले (त्वा) आपको (उपद्धामि) हद्यके बीचमें धारण करता हूं हे सब के धारण करनेवाले परमेश्वर जो आप (धर्मम्) लोकों के धारण करनेवाले हैं इससे छपा करके हम लोगों में (दिवम्) अस्तुत्तम ज्ञानको (इंह्न) बढ़ाइये और में

( भ्रातृत्यस्य ) शत्रुओं के ( वघाय ) विनाश के लिये ( ब्रह्मवनि ) ( क्षत्रवनि ) ( स-जातविन ) उक्त वेद राज्य वा परस्पर समान विद्या वा राज्यादि व्यवहारी की यथा-योग्य विभाग करनेवाले ( त्वा ) आपको ( उपद्धामि ) वार्रवार अपने इदय में घारण करता हूं तथा मैं (त्वा) अत्वको सर्वव्यापक जानकर (विश्वाभ्यः) सब (आशाभ्यः) विशाओं से सुख होनेके निमित्त वारंवार ( उपद्धामि ) अपने मन में घारण करता हूं हे मनुष्यो तुम लोग उक्त व्यवहार को अच्छी प्रकार जानकर ( चित: ) विज्ञानी तथा ( ऊर्घ्यंचित: ) उत्तम ज्ञानवाले पृष्यों की प्रेरणा से कपालों को अग्नि पर घरते तथा ( मृगूणाम् ) जिनके विद्या आदि गुर्णोको प्राप्त होते हैं ऐसे ( अंगिरसाम् ) प्राणों के (तपसा ) प्रभावसे (तप्यध्वम् ) तपो और तपःओ यह इस मंत्रका प्रथम अर्थु हुआ। (अब दूसरा भी कहते हैं)हे विद्वान धर्मात्मा पुरुष जिस ( अम्रे ) भौतिक अग्नि से ( धरुणम् ) सबका धार्ण करनेवाला तेज (ब्रह्म) वेद और ( अन्तरिक्षम् ) आकाशमें रहनेव.ले पदार्थ प्रहण वा वृद्धियुक्त कियेजाते हैं (त्वा) उसको तुम होम वा शिल्प-विद्याकी सिद्धिके लिथे (गृभ्णीप्व) ग्रहण करो ( इंह ) वः विद्यायुक्त कियाओं से बढ़ाओ और मैं भी (भ्रातृव्यस्य ) शत्रु ऑके (बघाय ) विनाशके लिये (त्वा ) उस ( ब्रह्मवनि ) ( क्षत्रवनि ) ( सजातवि ) संसारी मृत्तिमान् पदार्थी के प्रकाश करने वा राजगुर्णों के दर्शातरूप से प्रकाश करानेवाले भौतिक अग्निको शिल्पविद्या आदि व्यवहारों में ( उपद्धामि ) स्थापन करता हूं ऐसे स्थापन किया हुआ अग्नि हमारे अनेक सुखों को धारण करता है इसी प्रकार सब छोगों का ( धत्र म् ) धारण करनेवा-ला क्यु ( असि ) है तथा ( दिवम् ) प्रकाशमय सृर्ख लोकको (इंह) इंढ करता है हे मनुष्यो ! जैसे उसको मैं (भ्रातृत्यस्य) अपने शत्रुओं के (बधाय) विनाश के लिये ( महावनि ) ( क्षत्रवनि ) ( सजातवनि ) वेद राज्य वा परस्पर समान उत्तम २ शिल्प-विद्याओं को यथायोग्य कार्य्यों में युक्त करने वाले उस भौतिक अग्निको ( उपद्यामि ) स्थापन करता हूं बैसे तुल भी उत्तम २ कियाओं में युक्त करके विद्याके बलसे ( इंह् ) उस को बढ़ाओ। हे विद्या चाहनेवाले पुरुष ! जो पवन पृथिवी और सूर्ख्य आदि लोकींको 🅦 🛲 रिण कर रहा है तैसे तुम अपने जीवन आदि सुख वा शिल्पविद्याकी सिद्धिके लिये यथासोम्य कार्यों में लगाकर उनकी विद्यास ( इंड ) वृद्धिकरी तथा जैसे इस अपने शत्रुओं के विनाश के लिये (ब्रह्मवनि ) (क्षत्रवनि ) (सजातवनि ) अग्निके उक्त गुणीं के समान पायुको शिल्पविद्या आदि व्यवहारोंमें ( उपद्वामि ) संयुक्त करते हैं वैसेही तुम भी अपने अनेक दु:सोंके दिनाशके लिये उसको यथायोंन्य कार्ब्यों में संयुक्त करो हे मनुष्यो जैसे मैं बायुनियाका जाननेवाला (स्वा) उस अग्नि वा वायुको (विष्टाभ्यः) सब

(आशाश्यः) दिशाओं से सुस्त होने के लिये यथायोग्य शिल्पन्यवहारों में (उपद्यामि) धारण करता हूं बैसे तुम भी धारण करो तथा शिल्पविद्या वा होम करने के लिये (खितः) ( अर्ध्विखतः ) पदार्थों के मरे हुए पात्र वा सवारियों में स्थापन किये हुए कछायन्त्रीको (भृगुणाम् ) जिनसे पदार्थों को एकाते हैं उन अंगारों के (तपसा ) तापसे (तप्यध्वम् ) उक पदार्थों को तपाओं ॥ १८॥

भाषार्थ: इस मन्त्र में श्लेषाल्झार है। ईश्वर का यह उपदेश है कि हे मनुष्यो तुम विद्वानों की उसति तथा मृर्जिपन का नाश का सब शत्रुओं की निवृत्ति से राज्य बढ़ने के लिथे वेदिविद्या को प्रहण करो तथा वृद्धि का हेतु अग्नि वा सब का धारण करने वाला वायु, अग्निमय सूर्व्य और ईश्वर इन्हें सब दिशाओं में व्याप्त जानकर यहा सिद्धि वा विमान अदि यानों की रचना धर्म के साथ करो तथा इन से इन को सिद्ध करके दु:खों को दूर करके शत्रुओं को जीतो ॥ १८॥

शर्माशीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता निवृद्बाह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । इसके अनन्तर ईश्वर ने यज्ञ का स्वरूपःऔर इस के अंग अगले

मंत्र में उपदेश किये हैं ॥

श्चामित्यवंधृत्यक्षरक्षोऽवंधृता अरांत्यपोदित्यास्त्वगंसि प्रति त्वां दितिवेसु । धिषणांसि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेसु दिवस्कं-म्मुनीरंसि धिषणांसि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेसु ॥ १९ ॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो तुम लोग जो यह ( शर्म ) सुस्न का देने वाला ( असि ) है और ( अदिति: ) नाश रहित है तथा जिस से (रक्ष: ) दुःस्व और दुष्ट स्वभाव युक्त मनुष्य (अवभूतम् ) विनाश को प्राप्त तथा (अरातयः ) दान आदि धर्मी से रिहत पुरुष (अवभूता: ) नष्ट (असि ) होते हैं और जो (अदित्याः ) अन्तरिक्ष वा पृथिकों के ( त्वक् ) त्वचा के समान ( असि ) है ( त्वा ) उसे ( वेसु ) जानो और जिस विद्या हप उक्त यह से (पर्वती ) बहुत द्वान वाली ( विवः ) प्रकाशमान स्वादि होकों की (स्कम्भनी: ) रोकनेवाली तथा (पार्शतेयी ) मेव की कन्या अर्थात् पृथिकों के तुल्य (धिषणा) येद वाणी ( अदित्या: ) पृथिवी के (त्वक् ) शरीर के तुल्य विस्तार को प्राप्त होती है (त्वा) उसे ( प्रतिवेसु ) यथावत् जानो और जिस सत्यातिकप यह से (पर्वती ) बस्तमर ब्रह्म द्वान प्राप्त करनेवाली (धिषणा) यो अधाँत् प्रकाशकपी बुद्धि प्राप्त होती है (त्वा) उसे भी (प्रतिवेसु ) जानो ॥ ११ ॥
भावार्थ:—सनुष्यों को अपने विद्वान से अष्ट्यी प्रकार पदार्थों को इक्दडा करके

उनसे यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये जो कि वृष्टि वा बुद्धि के बढ़ाने वाला है वह अग्नि और मनसे तिद्ध किया हुआ सूर्व्यके प्रकाश को त्वचा के समान सेवन करता है ॥ १९ ॥

धान्यमसीत्यस्य ऋषिः स पेव | समिता देवता | विराड् ब्राह्मी विष्टुप् छन्दः | धैवत: स्वर: ||

किस प्रयोजनके लिये उक्त यह करना चाहिये सो अगले मंत्रमें प्रकाश किय है ॥
श्वान्युमसि धिनुहि देवान् प्रासायं त्वोद्वानायं त्वा व्यानायं
वा । द्वीर्धामनुष्रसितिमार्थुंषेधान्देवो वंः सिवता हिरंण्यपाणिः
प्रतिगृश्णात्विच्छिद्रण पाणिना चक्षुंषे त्वा महीनां प्रयोसि ॥२०॥

पदार्थ: - जो (धान्यम् ) यज्ञ से शुद्ध उत्तम स्वभाववाला हुस का हेतु रोग का नाश करने तथा चावल आदि अस वा (पय:) जल (असि) हं वह (देवान्) वि-द्वान् वा जीव तथा इन्द्रियों को (धिनुहि) तृप्त करता है इस कारण हे मनुष्यों में जिस प्रकार (त्वा) उसे (प्राणाय) अपने जीवन के लिये वा (त्वा) उसे (उदानाय) स्फूर्ति बल और पराक्रम के लिये वा (त्वा) उसे (त्यानाय) सब शुप्त गुण शुप्त कर्म वा विद्या के अङ्कों के फैलाने के लिये तथा (दीर्घाम्) बहुत दिनों तक (प्रसितिम्) अस्युत्तम सुखबन्धनयुक्त (आयुषे) पूर्णं आयु के भोगने के लिथे ( धाम् ) धारण करता हुं यैसे तुम भी उक्त प्रयोजन के लिये उस को नित्य घारण करो जैसे हम विद्वान् लोगों को (हिरण्यपाणि:) जिस का मोक्ष देना ही व्यवहार है ऐसा सब जगत् का उत्पन्न करने हारा (सिवता) सब ऐश्वर्ख का दाता ईश्वर ( अच्छिट्रेण ) अपनी व्याप्ति वा उत्तम व्यवहार से ( महीनाम् ) वाणियों के प्रत्यक्ष ज्ञान को (प्रत्यनुगृभणातु ) अपने अनुप्रह से प्रहण करता है यसे ही हम भी उस ईश्वर को (अच्छिद्रेण) निर-न्तर (पाणिना) स्तुतियों से प्रहण करें और जैसे (हिरयण्यपाणि:) पदार्थों का प्रकाश करनेवाला (सविता) सूर्य्यं को (महीनाम्) लोकलोकांतरींकी पृथिवियों में नेजव्य-ब्रहार के लिये (अन्छिट्रेण ) निरन्तर तीव्रप्रकाश से ( पय; ) जल को (प्रतिगृम्-णातु) प्रहण करके अस आदि पदार्थी को पुष्ट करता है बैसे ही हम लोग भी उसे (अब्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) व्यवहार से (महीनाम्) पृथिवी के (वस् पे) पदार्थीं को दृष्टिगोचरता के लिये स्वीकार करते हैं ॥ २०॥

मावार्थः इस मंत्र में लुप्तोपमालकार है। जो यह से शुद्धकिये हुये अन्न जल भीर पवन आदि पदार्थ हैं वे सब की शुद्धि वल पराक्रमऔर हद वीर्घ आयु के बदाने के लिये समर्थ होते हैं इस से सब मनुष्यों को यह कर्म का अनुष्ठान नित्य करता खाहिये तथा परमेश्वर की प्रकाशित को हुई जो बेदचनुष्ठयों अर्थात् चारों बेद की बार्थ करना के प्रत्यक्ष करने के लिये ईश्वर के अनुप्रह की इच्छा तथा अपना पुरुषार्थ करना चाहिये और जिस प्रकार परोपकारी मनुष्यों पर ईश्वर हपा करता है वैसे ही हम लोगों को भी सब प्राणियों पर नित्य हुपा करनी चाहिये अथवा जैसे अन्तर्यान्मी ईश्वर वा सूर्य लोक संसार आता और वेदों में सत्य ज्ञान तथा मृतिमान पदार्थों का निरन्तर प्रकाश करता है बैसे ही हम सब लोगों को परस्पर सब के सुख के लिये संपूर्ण विद्या मनुष्यों को हिएगोचर कराके नित्य प्रकाशित करनी चाहिये और उन से हम को पृथिवी का चकवर्ति राज्य आदि अनेक उत्तम २ सुझों को उत्पन्न निरन्तर करना चाहिये ॥ २० ॥

देवस्य त्वेत्यस्यर्षि स एव । यज्ञो देवता सर्वस्य । आदी संवपामीत्यन्तस्य गायत्री स्वन्दः । षड्जः स्वरः । अन्त्यस्य विराट्पर्ङ्किम्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥ जिन ओषियर्गे से अन्न बनता है वे यज्ञादि करने से कैसे शुद्ध होती हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्यं स्वा सिवृतुः प्रंसिवेऽिइवनीर्बाहुभ्यां पूर्वो हस्तांभ्याम् । संवंपामि संमाप ओषषीभिः संमोषषणो रसेन सक्ष रेवतिर्ज्जः गंतीभिः पृष्यन्तार संमधुमतीर्मधुमतीभिः पृष्यन्ताम् ॥ २१ ॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो ! जैसे में (सिवतुः) सकल पेश्वर्यं के वेनेवाले (देवस्य) परमेश्वर के ( प्रसवे ) उत्पन्न किये हुए प्रत्यक्ष संसार में वा सूर्य्य लोक के प्रकाश में (अश्वनोः) सूर्य्य और भूमि के तेज की (बाहुभ्याम्) हढ़ता से (पृष्णः) पृष्टि कर्ने वाले वायु के (हस्ताभ्याम्) प्राण और अपान से (त्वा) पृष्ठिक तीज प्रकार के यहा का (संवपामि) विस्तार करता हूं बैसे ही तुम भी उस को विस्तार से सिद्ध करो। अथवा जैसे इस उत्पन्न किये हुए संसारमें वा सूर्य्य के प्रकाशमें (ओषधीमः) यवादि खेषिश्वर्यों से (आएः) जल और (ओषधयः) ओषधी ( रसेन ) आन्वकारक रस से तथा ( जगतीमः) उत्तम ओषधियों से ( रेवत्यः) उत्तम जल और जैसे ( मधुमतीभः) अत्यन्त प्रधुर रसयुक्त ओषधियों से ( मधुमतीः) अत्यन्त उत्तम रस-क्ष्य जल ये सब मिलकर वृद्धियुक्त होते हैं वैसे हम सब लोगों को भी ओषधियों से जल भीर ओषधियों से जलम रसयुक्त जल के तथा सब उत्तम ओषधियों से उत्तम रसयुक्त जल तथा अत्यन्तम मधुर रसयुक्त ओष्टिक्यों से सुमंतीय रसक्ष्य जल इन सर्वों को बथा-

योग्य परस्पर ( संवृच्यन्ताम् ) युक्ति से वैद्यक या शिल्प की शास्त्रराति से मेळ करमा चाहिये ॥ २१ ॥

मानार्थ:—इस मन्त्र में लुतीपमालक्कार है। विद्वान मनुष्यों को ईश्वर के उत्पक्ष किये हुए वा सूर्व्य से प्रकाश को प्राप्त हुए इस संसार में अनेक प्रकार से संप्रयुक्त कर रने योग्य पदार्थों को वर्थ मिलाने के योग्य पदार्थों से मेल करके उक्त तीन प्रकार के यक्त का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये जैसे जल अपने रस से ओपधियों को बढ़ाना है और वे उत्तम रसयुक्त जल के संयोग से रोग नाश करने से सुक्षदायक होती हैं। और जैसे ईश्वर कारण से कार्य्य को यथावत रस्ता है तथा सूर्य्य सब जगत को प्रकाशित करके और निरन्तर रस को भेदन करके पृथिवी आदि पदार्थों को पृष्ट करता है वैसे हम लोगों को भी यथावत संस्कारयुक्त संयुक्त किये हुए पदार्थों से विद्वानों का सक्क तथा विद्या की उन्नति से वा होम शिल्प कार्य्य क्षी यक्कों से वायु और वर्षा कल की शृद्धि सदा करनी चाहिये ॥ २१ ॥

जनयसैत्वेत्यस्यविं पूर्वोक्तः । प्रथतामितिपर्यान्तस्य यक्को देवता । स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । श्रेवतः स्वरः । अन्त्यसाग्निसिवतारौ देवते । गायत्रौ छन्दः । षड्जःस्वरः ॥ उक्त यक्क किस प्रयोजन को लिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

जर्नपत्ये त्वा सं घौमीदम्ग्नेरिदम्ग्नीषोमंगोरिषे स्वां धुर्मी सि बिद्यार्थं हर्द्यया बुरु प्रयस्त्रोरु ते युज्ञपंतिः प्रथताम्। श्विष्टे स्वयं मा दिशसीदेवस्त्वां स्रविता अंपपतु वर्षिष्ठेऽधिनाके ॥२२॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो जैसे में (जनयत्ये) सर्व हुल उत्दश्न करने वाली राज्यलक्ष्मी के लिये (त्वा) उस यह को (संयोमि) अग्नि के बीच में पदार्थों को छोड़ कर युक्त करता हूं बेसे ही तुम छोगों को भी अग्नि के संयोग से सिद्ध करना चाहिये। जो हम छोगों का (इदम्) यह संस्कार किया हुआ हिष (अग्नेः) अग्नि के बीच में छोड़ा जाता है (इदम्) वह विस्तार को प्राप्त हो कर (अग्नौषोप्तयोः) अग्नि और सोम के बीच प्रहु क कर (इषे) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के छिये होता है और जो (विश्वायुः) पूर्ण वायु और (उस्प्रथाः) बहुत सुल का देने वाला (धर्मः) यह (असि) है उस को जैसे मैं अनेक प्रकार विस्तार करता हूं बैसे (त्वा) उसको हे पुरुषो तुम भी (उरु प्रथस्व) विस्तृत करो इस प्रकार विस्तार करने वाले (ते) तुद्वारे लिये

( यञ्चपतिः ) यञ्च का स्वामी ( अग्निः ) यञ्चसम्बन्धी अग्नि ( ते ) (सवितः) अन्तस्यी-मी (देव:) जगदीम्बर (डरु प्रथताम्) अमेक प्रकार सुस्र को बढ़ावे (मा हिंसीत्) कमी नष्ट न करे तथा वह परमेश्वर (वर्षिन्छे) अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ ( अधिनाके ) जो मत्युक्तम सुख है उस में (त्वा ) तुम को ( श्रपयतु ) सुख से युक करे यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ। अब दूसरा कहते हैं। हे मनुष्य । जैसे मैं ओ ( विश्वायु: ) पूर्ण आयु तथा ( उदमधा: ) बहुत सुख का देने वाला ( घमैं: ) यहा ( असि ) है ( त्वा ) उस यद्ध को ( जनयत्यै ) राज्यस्थी तथा ( इवे ) अन्न आदि प-दायों के उत्पन्न करने के लिये ( संयोगि ) संयुक्त करता हूं तथा उसकी सिद्धि के लिये (इदम्) यह ( अग्ने: ) अग्नि के बीच में और ( इदम् ) यह ( अग्नीपोमयोः ) अग्नि और सोम के बीच में संस्कार किया हुआ हवि छोड़ता हूं वैसे तुम मी उस यह की ( उद मथस्य ) विस्तार को प्राप्त करो जिस कारण यह (अग्निः) भौतिक अग्नि (ते) तु-म्हारे (त्वचम्) शरीर को ( मा हिंसीत् ) रोगों से नष्ट न करे और जैसे (देव:) जगदी-न्वर ( सविता ) अन्तर्यामी ( वर्षिष्ठे ) अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुमाजो (अधि-नाके ) अत्युत्तम सुस है उसमें (त्वा ) उस यहा को अग्नि के बीच में परिपक्त करता है बैसे तुम भी उस यह को (श्रपयतु) परिपक्त करो और (ते) तुम्हारं (यह्नपति:) यज्ञ का स्वामी भी उस यज्ञ को ( उरुप्रथताम् ) विस्तारयुक्त करे ॥ २२ ॥

भावार्थ:—इस अंत्र में लुप्तोमालंकार जानना चाहिये—प्रतुष्पों को इस प्रकार का यह करना चाहिये कि जिससे पूर्ण लक्ष्मों सकल आयु अब आदि पदार्थ रोगनाश और सब छुकों का विस्तार हो उसको कभी नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि उसके विना वायु और वृष्टि जल तथा ओषधियों को शुद्धि नहीं हो सकती और शुद्धि के विना किसी प्राणी को अच्छो प्रकार छुक्ष नहीं हो सकता इसलिये ईम्बर ने उक्त यह करने की आहा सब मनुष्पों को दी है ॥ २२ ॥

मःभेमेंत्यस्यर्षिः स एव । अग्निरेंवता । वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

निशंक होकर उक्त यज्ञ सब को करना चाहिये इस विषय का

उपदेश अगले मंत्र में किया है।

मा भेर्मा सं विक्या अतमेरुर्वज्ञोऽतमेरुर्वजेमामस्य प्रजा भू-याक्रिमार्च त्वा क्षितार्च त्वैकतार्च त्वा ॥ २३ ॥

पदार्थः — हे विद्वान पुरुषो ! तुम ( अतमेरः ) श्रद्धालु होकर (यजमानस्य) यजमान के यह के अनुष्ठान से ( मा भेः ) भय मत करो और उस से ( मा संविक्धाः ) मत बळायमान हो इस प्रकार ( यहः ) यह करते हुए तुम को उत्तम से उत्तम (अतमेरः) कानिरहित श्रद्धावान (प्रजा) संतान (भूयात्) प्राप्त हो और मैं (त्वा) भौतिक अग्नि को (एकताय) (द्विताय) (त्रिताय) उक्त गुणयुक्त तथा सत्य सुख के लिये वायु तथा वृष्टि जल को शुद्धि तथा अग्नि कर्म और हिव के होने के लिये (संबीम) नि-अल करता हुं ॥ २३॥

भावार्थः — ईंग्वर सब मनुष्यों को आज्ञा और आशौर्वाद देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ सत्याचार और विद्या के प्रहण से डरना वा चलायमान होना कभी न चा-हिये क्योंकि मनुष्यों को उक्त यज्ञ आदि अच्छेर कामी से हो उत्तम र संतान शारीरिक वाचिक और मानस विविध प्रकार के निश्चल सुख प्राप्त हो सकते हैं ॥ २३॥ देवस्य खेलस्यिषः स पव । द्योविद्युती देवते । स्वराड ब्राह्मी पङ्किन्छन्दः ।

फिर भी उक्त यझ कैसा और क्यों उसका अनुष्ठान करना चाहिये सो अगले मंत्र में उपदेश किया है।

पञ्चमः स्वरः ॥

देवस्यं त्वा सिवृतः प्रंसिवृति दिवने विद्याः पूरणो हस्ति भयाम् । आदेदेऽध्वरकृतं देवेभ्य इन्द्रंस्य बाहुरंसि दक्षिणः सहस्रंभृष्टिः वाततेजा बाग्रुरंसि तिरमतेजा बिक्तो ब्याः ॥ २४ ॥

पदार्थ:—में (सिवतु:) अन्तर्यामी प्रेरणा करने (देवस्य) सब आनन्द के देनेवाले परमेश्वरकी (प्रसचे) प्रेरणामें (अश्विनी:) सूर्व्य चन्द्र और अध्वर्धुओं के बल और वीर्व्यंसे तथा (पूष्ण:) पृष्टिकारक वायुके (हस्ताभ्याम्) जो कि प्रहण और त्याग हेनु उदान और अपान हैं उनसे (देवेभच:) विद्वान् वा दिव्य सुर्खों की प्राप्तिके लिये (अध्वरकृतम्) यज्ञसे सुस्रकारक कर्म को (आददे) अच्छे प्रकार प्रहण करता हूं और मेरा किया हुआ जो यज्ञ हैं सो (इन्द्रस्य) सूर्व्यका (सहस्रभृष्टि:) जिसमें अनेक प्रकार के पदार्थोंके पचाने का सामर्थ्य वा (शततेजा:) अनेक प्रकारका तेज तथा (दक्षिण:) प्राप्त करनेवाला (बाहु:) किरणसमूह (असि) है और जिस (इन्द्रस्य) सूर्व्य वा मेघ-मंडल का (तिग्मतेजा:) तीक्ष्ण तेजवाला (वायु:) हेनु (असि) है उस से हमको अनेक प्रकार के सुल तथा (द्विपत:) शत्रुओं का (वध:) नाश करना चाहिये।। २४।।

भावार्थ:—ईश्वर आज्ञा करता है कि मनुष्योंको अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ यज्ञ जिसमें भौतिक अग्निके संयोगसे ऊपरको अच्छे २ पदार्थ छोड़े हैं वह स्व्यंकी किरणोंमें स्थिर होता है तथा पवन उसको धारण करता है और वह सबके उपकार के छिये हजारों खुब्बोंको प्राप्त करके दु:खों का विजाश करनेवाला होता है ॥ २४॥

पृथियोत्सस्य ऋषिः स एव । संविता देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्ठुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ कहाँ जाके क्या करनेवाला होता है इस विषयका उपदेश अगले मंत्रमें किया है |

पृथिषि देवप जन्में वंघासने मूल्मा हिं श्रेसिषं ब्रजर्ज च्छा गोष्ठानं वर्षते ने चौर्षेषान देव स्रवितः पर्मस्यां पृथिन्यार ज्ञातेन्त पार्शिन्यां देव स्रवितः पर्मस्यां पृथिन्यार ज्ञातेन्त पार्शिन्यां हे (देव) स्य्यादि जगत् के प्रकाश करने तथा (सिवतः) राज्य और पेश्वर्व्यके देने वाले परमेश्वर (ते) आप की छपा से मैं (देव यजिन) विद्वानों के यज्ञ करने की जगह (ते) यह जो (पृथिवी) भूमि है उस का (मूल्म्) बृद्धिकरने व.ले मूल को (मा हिश्विविषम्) नाश न कर्कः और मैं (पृथिन्याम्) अनेक प्रकार सुक्त । यस भूमि में (यः) जिस यज्ञ का अनुष्ठान करता हुं वह (ब्रजम्) जल वृष्टि कारक मेघ को (गच्छ) प्राप्तहो वहां जाकर (गाष्ठानम्) सूर्व्यकी किरणों के गुणे। से (वर्षतु) वर्षाता है वौरपुक्षो! अगप (अस्थाम्) इस पृथिवी में (यः) जो कोई अधर्मात्मा डांकू (अस्मान्) सब के उपकार करने व.ले धर्मात्मा सज्जन हम लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च) और (यम्) जिस दुष्ट शत्रु से (वयम्) धार्मिक श्रूर हम लोग (द्विष्मः) विरोध करें (तम्) उस दुष्ट (परम्) शत्रु को (शतेन) अनेक (पश्चैः) बन्धनों से (वधान) बांधो और उस को (अतः) इस बंधन से कमी (मा मौक्) मत छोड़ो ॥ २५॥

भावार्थ:— ईश्वर आहा। देता है कि विद्वान मनुष्यों को पृथिवी का राज्य तथा उसी पृथिवी में तीन प्रकार के यह और ओपियां इन का नाश कभी न करना चाहिये जो यह अग्नि में हवन किये हुए पदार्थी का धूम मेंघ मंडल की जाकर शुद्धि के द्वारा अलन्त सुख उत्पन्न करने वाला होता है इस से यह यह किसी पृश्व को कभी छोड़ने योग्य नहीं है तथा जो दुष्ट मनुष्य हैं उनको इस पृथिवीपर अनेक बन्ध-नॉसे बांधे और उनसे कभी न छोड़े जिससे कि वे दुष्ट कमों से निवृत्त हों और सब म-नुष्योंको चाहिये कि परस्पर ईपा द्वेषसे अलग होकर एक दूसरेकी सब प्रकार सुखकी उन्नति के लिये सदा यह करें ॥ २५॥

भपारकमित्यस्य सर्वस्य त्रस्विः स यव।सचितः देवता । पूर्वार्ग्रस्वराड् मार्सीपंकिरकृतः । उत्तराधे भुरिण्डार्सापंकिरकृतः । पश्चमः स्वरः ॥ फिर इस यहासे क्या २ कार्य्य सिद्ध होता है इस विषयका उपदेश अगले मंत्रमें किया है।

पदार्थ:-हे ( देव ) सर्वानन्द के देने वाले जगदीम्बर ( सवितः) सब प्राणि-यों में अन्तर्यामी सत्यप्रकाश करने हारे आप की कृपा से हम लोग परस्पर उपहेश कर कि जैसे यह सब का प्रकाश करने वाला सूर्य्य लोक और पृथियों में अनेक बन्ध-न के हेतु किरणों से खेंच कर पृथियी आदि सब पदार्थी को बांघता है यैसे तुम भी दुष्टों को बांघ कर अच्छे २ गुणोंका प्रकाश करो और जैसे मैं ( पृथिव्ये ) पृथिवी में ( देवयजनात् ) विद्वान् लोग जिस संप्राप्त से अच्छे २ पदार्थं वा उत्तम २ विद्वानों की संगति को प्राप्त होते हैं उस से (अरहम्) दुष्ट स्वभाव वाले शत्रु जनको (अपबच्यासम्) मारता हूं वैसे ही तुम लोग भी उस को मारो तथा जैसे मैं ( ब्रजम् ) उत्तम २ गुण ज-तानेव. छे सज्जनों के सङ्ग को प्राप्त होता हूं बेसे तुम भी उस को (गच्छ) प्राप्त हो जैसे मैं (गोष्टानम् ) पठन पाठन व्यवहार की बताने वाली मेघ की गर्जना के समतु-ल्य वेदवाणी को अच्छे २ शब्दरूपी ब्ंदों से वर्षाता हूं बेसे तुम भी ( वर्षतु ) वर्षाओ जैसे मेरी विद्या की ( दी: ) शोभा सब को दृष्टिगोचर है बैसे (ते) तुम्हारी भी विद्या सुशोभित हो है से मैं (य:) जो मूर्ख ( अस्मान् ) विद्या का प्रचार करने वाले हम छोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च) और (यम्) जिस विद्याविरोधि जन को ( वयम् ) विद्वान् हम लोग ( द्विष्मः ) दुष्ट समझते हैं ( तम् ) उस ( परम् ) विद्या के शत्रु को (अस्याम्) इस सब पदार्थों की घारण करने और (पृथिव्याम्) वि-विध दुख देने वाली पृथिवी में ( शतेन ) बहुत से (पाशैः) बन्धनों से नित्य बांघता हुं कभी उस से उसे को नहीं त्यागता बैसे हे वीर छागो ! तुम भी उस को ( बधान ) बांघो कभी उस को ( अतः ) उस बन्धन से ( मा मौक् ) मत छोड़ो और जो तुष्ट जन हम लोगों से विरोध करे तथा जिस दुष्ट से हम लोग विरोध करें उस को उस बन्धन से कोई मनुष्य न छोड़े इस प्रकार सब लोग उस को उपदेश करते रहें कि है ( अवरा )

दुष्ट पुरुष तृ (दिवम् ) प्रकाश उत्पति को (मापप्त: ) मत प्राप्त हो तथा (ते ) तेरा (द्रप्सः) आनन्द देने वाला विद्यारूपी रस ( द्याम् ) आनन्द को ( मास्कन् ) मत प्राप्त करे। हे अ छों के मार्ग चाहने वाले मनुष्यो जैसे में ( व्रजम् ) विद्वानी के प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ मार्ग को प्राप्त होता हूं यैसे तुम भी ( गच्छ ) उस को प्राप्त हो जैसे यह ( चौ: ) सूर्य का प्रकाश ( गोष्टानम् ) पृथिषी का स्थान अन्तरिक्ष को सी चता है वैसे ही ईश्वर का विद्वान पुरुष तुम्हारी कामनाओं को ( वर्षतु ) वर्षीयें अर्थात् क्रम में पूरी करें। जैसे यह (देव:) व्यवहार का हेतु ( सवित: ) सूर्व्य लोक ( अस्याम् ) इस बीज बोने योग्य ( पृथिव्याम् ) बहुत प्रजायुक्त पृथिवी में (शतेन) अनेक (पाशैः ) बम्धन के हेतु किरणों से आकर्षण के साथ पृथियों आदि सब पदार्थों को बांधता है षैसे तुम मी दुर्धों को बांघो और (यः ) जो न्यायविरोधी (असान् ) न्यायाधीश हम ळोगों से (द्वेष्टि) कोप करता है(च)और ( यम् ) अन्यायकारी जन पर ( क्यम् ) संपूर्ण हित संपादन करने वाले हम लोग (द्विष्मः ) कोप करते हैं (तम् ) उस ( परम् ) शत्रुको (अस्याम् ) इस (पृथिव्याम् ) उक्त गुण बाली पृथिवी में (शतेन ) अनेक (पारीः) साम दाम दण्ड और भेद आदि उद्योगीं से बांधता हूं और जैसे मैं उस को उस दण्ड से बांध कर कभी नहीं छोड़ता हैसे ही तुम भी ( बधान ) बांधो अर्थात् ब-न्धनरूप दण्ड सदा दो। कभी उस को (मा मौक्) मत छोड़ो॥ २६॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर आज्ञा देता है कि हं मनुष्यो! तुम लोगों को विद्या के सिद्ध करनेवाले कार्य्यों के नियमों में विद्याकारी दृष्ट जीवॉं को सदा मारना चाहिये और सज्जनों के समागम से विद्या की वृद्धि नत्य करनी चाहिये जिस प्रकार अनेक उद्योगों से श्रेष्टों की हानि दुष्टों की वृद्धि न हो सो नियम करना चाहिये और सदा श्रेष्ट सज्जनों का सत्कार तथा दुष्टों की दृष्ट देने के लिये उन का बन्धन करना चाहिये परस्पर श्रीति के साथ विद्या और शरीर का बल संपादन करके किया तथा कलायन्त्रों से अनेक यान बना कर सब को सुख देना ईश्वर की आज्ञा का पालन तथा ईश्वर की उपासना करनी चाहिये ॥ २६ ॥

गायत्र भेत्यस्य ऋषिः स एव । यङ्गो देवता । ब्राह्मीत्रिष्टुप् छन्दः । धेवतः स्वरः ॥ इक यङ्ग का प्रहण वा अनुष्ठान किस से करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है।

गायत्रेषं त्वा छन्दंसा परियुद्धामि त्रेष्टुंभेन त्था छन्दंसा प-रियुद्धामि जार्गतेन त्वा छन्दंसा परियुद्धामि । सुक्ष्मा चासि शिवा चांसि स्योना चासि सुवदां चास्यूजैस्वती चासि पर्यस्व-ती च ॥ २७ ॥

पदार्थ:—जिस यज्ञ से उत्तम पदार्थों के साथ (सुक्मा) यह पृथिषी शोमायमान (असि ) होतों है (च ) तथा जिस से सुस्कारक गुण (च ) अथवा मनुष्यों के साथ यह (शिवा) मङ्गल की देनेवाली (असि ) होती है (च) तथा जिसकरके उत्तम से उत्तम सुस्नों के साथ यह पृथिवी (स्योना) सुस्न उत्पन्न करनेवाली (असि) होती है (च) और जिस से उत्तम २ सुन्न करने वाले और चलने के साथ यह (सुषदा) सुन्न से स्थिति करने योग्य (असि ) होती है तथा जिन मत्तम यव गादि अर्जों के साथ यह ( ऊर्जस्वती ) अन्नवाली (असि ) होती है (च) और जिन उत्तम मधुर आदि रस वाले फर्लों करके यह पृथिवी (पयस्वती) प्रशंसा करने योग्य रसवाली (असि) होती है (त्वा) उस यज्ञ को में उस यज्ञ विद्याका ज्ञाननेवाला मनुष्य (गायत्रेण) गायत्री (छन्दसा ) जो कि चित्त को प्रफुल्लित करने वाला है उस से (परिगृह्णामि) सब प्रकार से सिद्ध करता हूं और में (त्रेण्डुभेन ) त्रिण्डुभ् (छन्दसा ) जो कि स्वन्तंत्रकार से आनन्द का देने वाला है उस से (त्वा) पदार्थसमूह को (परिगृह्णामि) सब प्रकार से इक्ट्या करता हूं तथा में (जागतेन ) जगती जो कि (छन्दसा ) अत्यन्त आनन्द का प्रकाश करने वाला है उस से (त्वा) उस मौतिक अग्नि को (परिगृह्णामि) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूं ।। २७ ।।

भाषार्थ:—वेदका प्रकाश करनेवाला ईश्वर हम लोगोंके प्रति कहता है कि हे मनुष्यो!तुम लोगोंको वेदमंत्रके विना पढ़ें और उनके अथों के विना जाने यहका अनुष्ठान षा सुस्करूप फलको प्राप्त होना और सब शुभ गुणयुक्त सुस्ककारी अस्न जल और वायु
आदि पदार्थ हैं उनको शुद्ध नहीं कर सकते इससे यह तीन प्रकारके यहकी सिद्धिः
यह्मपूर्वक संपादन करके सदा सुस्नहीं रहना चाहिये और जो इस पृथिवीमें वायुजल
तथा ओषधियोंको दूषित करनेवाले दुर्गंध अपगुण तथा दुष्ट मनुष्य हैं वे सर्वदा निवारण करने चाहिये ॥ २७॥

पुरा क्रस्य त्यस्य ऋषिः स पव । यहो देवता । विराड् आहाी पंकि-श्लन्तः । पंचमः स्वरः ॥

वे दोप कैसे निवारण करने और वहां मुख्योंको फिर क्या करना चाहिये इस विषयका उपदेश अगले भंत्रमें किया है।

पुरा कूरस्थं बिसपों विरिध्यष्ट्रादार्थ पृथिवीं जीवदानुम्।

## यामैर्थं <u>अ</u>न्द्रमंसि स्वाभिस्तामु वीरांसी अनुदिइयं यजन्ते । मोर्चणीरासदियविष्तो बुधोसि ॥ २८॥

पदार्थः है (विरक्षित्) महाशय महागुणवान् जगदीश्वर । आपने (याम् ) जिस ( स्वधािमः ) अन्न आदि पदार्थीं से युक्त और ( जीवदानुम् ) प्राणियीं को जीव देने बाले पदार्थं तथा ( पृथिभीम् ) बहुतसी प्रजायुक्त पृथिबी को ( उदादाय ) अपर उ-ठाकर ( चन्द्रमसि ) चन्द्रहोक के समीप स्थापन की है इस कारण उस पृथिकी को ( घीरासः ) घीर बुद्धिवाले पुरुष प्राप्त होकर आप के अनुकूल चलकर यहा का अनु-ष्ठान नित्य करते हैं जैसे ( चन्द्रमंसि ) आनन्द में वर्त्तमान होकर (धीरासः) बुद्धिमान् पुरुष ( याम् ) जिस्त,(जीवदानुम्) जीवों की हितकारक (पृथिवीम्) पृथिवी के आश्रित होकर सेना और शस्त्रों को (उदादाय ) कम से लेकर (विस्पः ) जो कि युद्ध करने वाले पुरुषों के प्रभाव दिखाने योग्य और ( क्रुरस्य ) शत्रुओं के अङ्क विदीर्ण करने भाले संप्राम के बीच में शत्रुओं को जीत कर राज्य को प्राप्त होते हैं तथा जैसे इस उक्त प्रकार से धीर पुरुष (पुरा ) पहिले समय में प्राप्त हुए जिन कियाओं से (प्री-क्षणी: ) अच्छी प्रकार पदार्थों को सींच के उन को सम्पादन करते हैं जैसे ही हे (विरिधान्) महा ऐश्वर्यं की इच्छा करने वाले पुरुष तू भी उस को प्राप्त होके ईश्वर का पुजन तथा पदार्थ सिद्धि करनेवाली उत्तम २ कियाओं का सम्पादन कर जैसे (द्वि-षतः ) शत्रुओं का ( बधः ) नाश ( असि ) हो वैसे कामों को करके नित्य आनन्द में वर्त्तमान रह ॥ २८ ॥

भावार्यः जिस इंस्वर ने कम से अन्तरिक्ष में पृथिवां पृथिवियों के समीप चन्द्रलोक, चन्द्रलोकों के समीप पृथिवी, एक दूसरे के समीप तारालोक और सब के बीच
में अनेक सूर्व्यलोक तथा इन सब में नानाप्रकार की प्रजा रचकर स्थापन की है
वहीं परमेश्वर सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य है। जब तक मनुष्य बल और
कियाओं से युक्त होकर शत्रुओं को नहीं जीतते तब तक राज्यसुख को नहीं प्राप्त ही
सकते क्योंकि विना युद्ध और बल के शत्रु जन कभी नहीं इरते। तथा विद्वान् लोग
विद्या न्याय और विनय के विना यथावत् प्रजा के पालन करने को समर्थ नहीं हो सकते इस कारण सब को जितेन्द्रिय हो कर उक्त पदार्थों का सम्पादन करके सब के
सुख के लिये उत्तम २ प्रयक्त करना चाहिये ॥ २८ ॥

भत्युष्टमित्यस्य ऋषिः सः एव । यज्ञो देवता सर्वस्य । पूर्वाईं सुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥ उत्तराईं त्रिष्टुए छन्दः । वैवतः स्वरः ॥ फिर उक्त संग्राम कैसे जीतना और यह का अनुष्ठान कैसे करना साहिये। इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

पर्युष्टश्च रक्षः प्रस्तुंष्टा अर्गत्यो निष्ठंत्रश्च रक्षो निष्ठंता अर्गन्तयः । सर्निकातोऽसि सपरम्किङ्गाजिनं स्वा बाज्रेष्याये सम्मानिका । प्रस्तुंष्ट्वश्च रक्षः प्रस्तुंष्टा सर्गत्यो निष्ठंत्रश्च रक्षो निष्ठंता अर्गतयः । अनिकातासि सपरमक्षिङ्गाजिनी स्वा बाज्रेष्याये सम्मानिका ॥ २९ ॥

पदार्थ:-मैं जिस अति विस्तृत शब् ओं के नाश करने वाले संप्राम से ( प्रत्युष्ट रक्षः ) विज्ञकारी प्राणी और (प्रत्युष्टा अरातयः ) जिस में सत्य विरोधी अञ्छी प्र-कार दाहदण्ड की प्राप्त होते हैं वा (निष्टतं रक्षः ) जिस बन्धन से बांधने योग्य (नि-ष्टता सरातय: ) विद्या के विद्या फरने वाले निरम्तर संताप को आप्त होते हैं ( त्या ) उस ( बाजिनम् ) वेग आदि गुणकाले संप्राम को ( बाजेध्याये ) जो कि अब आदि पदार्थीं से बलवान् करने के योग्य सेना है उस के लिये युद्ध के साधनों को (संमा-जिमें) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूं अर्थात् उनके दोषों का विनाश करता हूं और मैं जिस (सपक्षित्) शत्रु का नाश करनेवाले और ( अशिता ) अति विस्तार-युक्त सेना से (प्रत्युष्टें रक्षः) परसुख का न सहने वाला मनुष्य वा ( प्रत्युष्टा अरातयः ) उक्त अपगुण कले अनेक मनुष्य (निष्टतं रक्षः) जुआ खेळने और परस्रीगमन करने तथा ( निष्टता अरातयः ) औरों को सघ प्रकार से दुःख देने वाले मनुष्य अच्छी प्रकार नि-काछे जाते हैं (त्वा) उस ( वाजिनीम् ) बल और वेग आदि गुणवाली सेना को ( वा-जेच्याये ) बहुत साधनों से प्रकाशित करने के लिये (संगाजिमें ) जच्छी प्रकार उ-चम २ शिक्षाओं से शुद्ध करता हूं और जो कि (अनिशित:) बड़ी कियाओं से सिद्ध होने योग्य वा (सपक्षक्षित्) दोपों वा शत्रुओं के विनास करने हारे यहा वा युद्ध को ( वाजेक्याये ) अस आदि पदार्थों के प्रकाशित होने के लिये ( संमार्जि ) शु-इता सं सिद्ध करता हूं ॥ २१ ॥

भावार्थ:—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को विद्या और श्रुम मुणों के प्र-काश और दृष्ट शत्रुओं की निवृत्ति के लिये नित्य पुरुवार्य करना खाहिये तथा सदैव श्रेष्ठ शिक्षा शक्ष अल और सत्पुरुवयुक्त उत्तम से ना से श्रेष्ठों की रक्षा दुष्टों का वि-नाश करना खाहिये जिस करके अशुद्धि आदि दोषों के विनाश होने से सर्वेष शुद्ध गुणप्रवृत्त हो सकते हैं ॥ २१ ॥ अवित्या क्रयाम क विः स पर्य । यक्को देवता स्वराद्विष्टुप् छन्दः । वैवतः स्वरः ॥ फिर वक यक्क किस प्रकार का और कौन फल का देने वाला होता हैं सो अगळें मन्त्र में प्रकाशित किया है।

आदित्क्रेरास्त्रांसि विष्णों बुँच्यो स्यूचर्जे त्वा देखेन त्वा पक्षुवार्वपदयाः मि । अरने जिल्लासि सुदूर्वे भ्यो धासे धारने मे मब् वर्जुवे वर्जुवे ॥१०॥

पहार्थ: के जमदीम्बर । जो माप ( मदिखें ) पृथियों के ( रास्ता ) रक्ष आदि पदार्थी के उत्पन्न करने कछ ( असि ) है ( विष्णी: ) ( असि ) व्यापक ( वेश्यः ) ए-धिश्री बादि सब पदार्थी में प्रवर्तमान भी ( असि ) है तथा (अग्नेः ) भौतिक अग्नि के (जिह्ना ) जीमकर ( असि ) है वा ( देवेंमच: ) विद्वानों के लिये (घाने घाने जिन में कि वे विद्वान सुबक्त पहार्थी को प्राप्त होते हैं जो तीनों घाम अर्थात स्थान नाम और जन्म है उन धर्मी की प्राप्ति के तथा ( पजुषे पजुषे ) यजुषेंद के मंत्र २ का आ-शय प्रकाशित होने के छिये ( सुद्धः ) जो श्रेष्ठता से स्तुति करने के योग्य हैं इस प्र-कार के (त्वा ) आपको मैं ( अदब्धन ) प्रेम गुक्युक ( स्थर्या ) विज्ञान से (ऊर्जी) क्राक्रम ( बदित्ये ) पृथिवी तथा ( देवेमचः ) श्रेष्टगुणी वा (धान्ने धान्ने) स्थान नाम और जन्म भावि पतायों की प्राप्ति तथा ( यज्जुषे यज्जुषे ) यञ्जबंद के मन्त्र २ के भाशय जनाने के लिये ( अक्पम्यामि ) जानक्षी नेत्रों से देखता है अप भी स्पा करके मझ की विवित और मेरे पूजन को प्राप्त ( भव ) हुजिये यह इस मंत्र का प्रथम अर्थ हुआ। अब दूसरा कहते हैं जिस कारण यह यहा ( मदित्ये ) अन्तरिक्ष के ( रास्ना ) सम्बन्धी रसावि पदायों की क्रिया का कारण ( असि ) है ( विक्यो: ) धहुसम्बन्धी कार्यों का (बेच्य:) व्यापक (शिस) है ( अहे: ) भौतिक अप्ति का ( जिह्वा ) जिह्नाक्रप ( असि ) है ( देवेमच: ) तथा दिव्य गुण ( घासे घ:से ) फीर्चि स्थान और जन्म इन की प्रति वा ('बजुषे बजुषे ) यजुषेंद के मन्त्र २ का आशय जानने के लिये ( सुद्वः; ) अच्छी प्रकार प्रशंसा करने योग्य ( असि ) होता है इस कारण त्या उस यहा को मैं (अदब्धेन) छु-कपूर्वक (क्क्षूचा) प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ नेत्रों से (अवपश्यामि) वेखता हु तथा (त्वा ) उसे ( अदिखें ) पृथियों आदि पदार्थं ( देवेमच: ) उत्तम २ गुण (असे घ.से) ख्यान २ तथा (यञ्जूषे यञ्जूषे) यञ्जूषेत के मंत्र २ से हित होते के छिथे ( अवपश्यामि ) किया की कुशलता से बेखता हैं।। ३०॥

सारार्य: इस मन्त्र में म्लेपालकुर है सब मनुष्या को जसे यह जगरीधर प-पर द में कियत तथा वेद के मन्त्र २ में प्रतिपादित और सेपा करने योग्य है वेसे ही यह वह वेद के प्रति मंत्र से अच्छी प्रकार सिक्ट प्रतिपादित विद्वानों ने सेपित जिया हुया सब ज्ञाणियों के लिये पदार्थ पदार्थ में पराक्रम और वल के पहुंचाने के योग्य होता है || ३० ||

सिंतुस्तेत्वय ऋषिः स पव । यद्वो देवता सर्वयः । पूर्वार्वे अगती छनः ।
निवादः स्वरः । तेजोऽसीत्वयःऽतुष्टुप् छन्दः । गाम्बारः स्वरः ॥
दक्त यद्व से से पविष होता है सो अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥
सिंतुत्रस्वां प्रस्तव चरपुंनाम्य चिछन्नेण प्वित्रेण स्पर्यस्य रहिमभिः सिंतुत्रीः प्रस्तव चरपुंनाम्य चिछन्नेण प्वित्रेण स्पर्यस्य रहिमभिः । तेजोंसि शुक्रमंस्यस्तंमसि धाम नामांसि मिवन्द्वेवाताः
सनांष्ष्रं देव्यजनमसि ॥ ३१ ॥

पदार्थ:-जो यज्ञ ( अच्छिद्रेण ) निरन्तर ( पवित्रंण ) तथा पवित्र ( सूर्व्यस्य ) प्रकाशमय सूर्य की (रिप्पिभि:) किरणों के साथ मिल के सब पदायों को शुद्ध क-रता है (त्वा) उस यज्ञ वा यज्ञकर्त्ता को मैं ( उत्पुनामि ) उत्कृष्टता के साथ पवित्र करता हूं इसी प्रकार ( सिवतु: ) परमेश्वर के ( प्रसवे ) उत्पन्न किये हुए संसार में ( अच्छिद्रेण ) निरन्तर ( पवित्रेण ) शुद्धिकारक ( सूर्ख्य । जो कि पेन्यर्ख हेतुओं के प्रेरक प्राण के (रिम्मिभि: ) अन्तराशय के प्रकाश करने वाले गुण हैं उन से (व:) कुम कोर्गो को तथा प्रत्यक्ष पदार्थी को यज्ञ करके ( उत्पुनामि ) पवित्र करता हूं । हे मद्मन् ! जिस कारण आप ( तेजोसि ) स्वयम् प्रकाशवान् ( शुक्रमसि ) शुद्ध (मसृतम-सि ) नशरहित (धामासि ) सब पदार्थी का आधार (नामासि ) <mark>बंदना करने योग्य</mark> (देवानाम्) विद्वानों के (प्रियम्) प्रांतिकारक ( अनाधृष्टम् ) तथा किसी की भयता में न अ।ने के योग्य वा (देवयजनमित) विद्वानों के पूजा करने योग्य है इस से मैं(त्वा) आप का ही आश्रय करता हूं। यह इस मंत्र का प्रथम अर्थ हुआ। जिस कारण यह यह ( तेजोसि ) प्रकाश और (शुक्रमसि ) शुद्धि का हेतु ( समृतमसि ) मोस सुकका देने तथा ( भामासि ) सब अब आदि पदायों की पुष्टि करने वा ( नामासि ) जलका हेतु (देवानाम्) श्रेष्ठ गुर्णो की (प्रियम् ) प्रीति कराने तथा ( अनाधृष्टम् ) किसी की बा॰डन करने के योग्य नहीं अर्थात् अत्यंत उत्कृष्ट और (देवयजनम्) विद्वान् अनी को परमेश्वर का पूजन करने वाला (असि ) है इस कारण इस यहा से मैं (सिंध-तु: ) जगदीम्बर के ( प्रसमे ) उत्पन्न किये दुए संसार में ( अच्छिद्रेण ) निरंतर (प-विषेण) अति शुद्ध यज्ञ वा ( स्वर्धीस ) ऐश्वर्खी उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के सुव अथवा पेश्वर्य के उत्तक कराने वाले सूर्य की (रिमिनि:) विद्वानादि प्रकाश का किरणों से (पः) तुम कोग वा प्रत्यक्ष पदार्थी को ( उत्पुनामि ) पवित्र करता हू"। यह वृत्तरा अर्थ हुआ || ३१ ||

मानार्य:—इस मंत्रमें रहे वालंकार है-परमेश्वर यह विद्या के फलको जनाता है कि जो तुम लोगोंसे मनुष्टान किया हुआ यह है वह स्वांकी किरणों के साथ रहकर अपने निरंतर शुद्ध गुणसे सब पदायोंको पित्रत्र करता है तथा वह उसके द्वारा सब पदायोंको स्वांको स्वांको किरणों से तेजवान शुद्ध उत्तम रसवाले सुककारक मसवाता का है-तु हट और यह करानेवाले पदायोंको करके उनके भोजन वस्त्रसे शरीरकी पृष्टि बृजि और वल आदि शुद्ध गुणोंको संवादन करके सब जीवों को सुख देता है ॥३१॥

ईश्वरने इस अन्याय में मनुष्यांको शुद्ध कर्म के अनुष्ठान दांच और शत्रुओं की निवृत्ति यद्ग्रिक्या के फलको जानने, अच्छा प्रकार पृष्ठणार्य करने, विद्या के विस्तार करने, धर्म के अनुष्ठान में निर्मयता से स्थित होने, सब के साथ मित्रता से वर्तने, वेर्ों, से सब विद्याओं का प्रहण करने और कराने को शुद्धि तथा परोपकार के लिये प्रयक्त करने को आज्ञा दी है सो यह सब मनुष्यों को अनुष्ठान करने के योग्य है !!

यह प्रथम अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥



## त्र्राथ द्वितीयाध्यायारम्मः

## कों विद्यांनि देव स्ववितर्दुरितानि परां सुत्र । वहुतं तस्रकाः सुव ॥ १ ॥ य॰ ३० । ३ ।

रंखरेगेतत् सर्वमाचेंऽध्यत्ये विवायेशानी हितीयेऽध्यावे प्राणिनी सुवायोका-र्थस्य सिर्द्धिः कर्त्तुं विशिष्टा विचाः प्रकाश्यन्ते ॥

क्रमों इतीत्यस्वपरमेष्ठी प्रजापतिऋषिः।यज्ञो देवतः। निचृत्वंकिञ्छन्दः। पश्चमःस्वरः

अब दूसरे अध्याय में परमेश्वर ने उन विद्याओं की सिद्धि करने के लिये विशेष विद्याओं का प्रकाश किया है कि जो २ प्रथम अध्याय में प्राणियों के सुख के लिये प्रकाशित की हैं उन में से वेदि आदि पदायों के बनाने की हस्तक्रियाओं के सहित विद्याओं के प्रकार प्रकाशित किये हैं उन में से प्रथम मन्त्र में यहां सिद्ध करने के लिये साधन अर्थात् उन की सिद्धि के निमित्त कहे हैं।

कृष्णोऽस्यालारेष्ट्रोअनये त्वा जुष्टं प्रोक्षांमि बेदिरसि यहिँवे त्वा जुष्टां प्रोक्षांमि यहिंरसि सुम्ध्यस्त्वा जुब्दं प्रोक्षामि ॥ १ ॥

पदार्थ:—जिस कारण यह यह (आसरेष्ठ:) वेदी की रचना से खुरे हुए स्थान में स्थिर होकर (इन्ण:) मीतिक अग्नि से छिन्न अर्थात् स्क्ष्म कप और पनन के गुणों से आकर्षण को प्राप्त (असि) होता है इस से मैं (अग्नेथे) भौतिक अग्नि के बी-च में हवन करने के लिथे (जुहम्) भौति के साथ शुद्ध किथे हुए (त्वा) उस यह अर्थात् होमकी समात्री को (प्रोक्षामि) घी आदि पदार्थों से सी चकर शुद्ध करता हु' और जिस कारण यह वेदी अन्तरिक्ष में स्थित होती है इस से मैं (बर्हिषे) होम किये हुए पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुंचाने के लिथे (जुहाम्) प्रीति से संपादन की हुई (त्वा) उस वेदी को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार घी आदि पदार्थों से सी चता हुं तथा जिस कारण यह (बर्हिः) जल अन्तरिक्ष में स्थिर होकर पदार्थों की शुद्धि कराने बाला होता है इससे (त्वा) उसकी शुद्धि के लिथे जो कि शुद्ध किया हुआ (जुहम्) पृष्टि आदि गुणों को उत्पन्न करनेहारा हिन है उसको में (सुक्थः) सुवा आदि सा-धनों से अग्नि में खाइने के लिथे (प्रोक्षामि)शुद्ध करता हूं ॥ १॥ १॥

आवारी: क्षेत्रर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को वेड़ी बनाकर और पात्र आदि होम की सामग्री ले के उस हिंव को अच्छी प्रकार शुद्ध कर तथा अग्निमें होम करके किया हुआ यह चर्चा के शुद्ध जल से सब औपधियों को पृष्ठ करता है उस यह के अनुष्ठान से सब प्राणियों को नित्य सुख देना मनुष्यों का परम धर्म है ॥ १॥ अदित्या इत्यस्य ऋषि: स प्रव | यहा देवता | स्वराह्ण जगती छन्द: | निवाद:स्वर: ॥ इस प्रकार किया हुआ यहा क्या सिद्ध करानेवाला होता है सो अगले मंत्र में उपदेश किया है ।

अदिंश्ये क्युन्हॅनमास् विष्णोस्तुषुोऽस्य्र्णस्रदसं त्या स्तृणामि स्वासुस्थान् देवेथ्यो शुवंपतये स्वाहा शुवंनपतये स्वाहां सूताहाः स्वतंये स्वाहां ॥ २ ॥

पदार्थ:—जिस कारण यह यह ( अदिस्ते ) पृथिषों के (स्युन्दनम्) विविध प्रकार के ओषधी यादि पदार्थी का सी चनेवाला ( असि ) होता है इस से मैं उसका अनुष्टान करता हूं और ( विष्णों: ) इस यह की सिद्ध करानेहारा ( स्तुप: ) शिस्ताक्षप ( कर्णजदसम् ) उल्लाल ( असि ) है इस से मैं ( त्वा ) उस अस के खिलके दूर करने वाले परधर और उल्लाल को ( स्तुणामि ) पदार्थों से ढांपता हूं तथा वेदी (देवेम्प: ) विद्वान और दिन्य सुखों के हित कराने के लिये ( असि ) होती है इस से उस को मैं (स्वासस्थाम्) ऐसी बनाता हूं कि जिस में होम किये हुए पदार्थ अच्छी प्रकार स्थिर हों और जिस से संसार का पित भुवन वर्धात् लोकलोकान्तरोंका पित संसारी पदार्थों का स्वामी और परमेन्वर प्रसन्त होता है तथा भौतिक अन्तिसुझों का सिद्ध करानेवाला होता है इस कारण ( भुवपतये ) ( स्वाहा ) ( भुवनपतये ) ( स्वाहा ) उक्क परमेन्वर को प्रसन्त वा और आज्ञा पाळन के लिये उस वेदी के गुणोंसे जो कि सत्य भाषण अर्थात् अपने पदार्थोंको मेरे हैं यह कहना वा ओ- ह वाक्य आदि उत्तम वाणी युक्त वेद है उसके मंत्रों के साथ स्वाहा शब्दका अवेक प्रकार उच्चारण करके यह आदि को ह कामों का विधान किया जाता है इस प्रयोजकी लिखे भी वेदों को रचता हूं ॥ २ ॥

भाषार्थ: परमेश्वर सब मतुष्यों के लिये उपदेश करता है कि हे मतुष्यो। तुम की वेदी अहि यहां के साधनों का सम्पादन कर के सब प्राणियों के सुख तथा परमे-श्वर की प्रसक्ता के लिये अच्छी प्रकार किया युक्त यहा करना और सदा सत्य ही बोकना चाहिये और जेसे मैं नाय से सब विश्व का पालन करता है वैसे ही सुम कोगों को भी प्रश्नपात छोड़ कर सब प्राणियों के पालन से सुख संपादन करना बाहिये || २ ||

गम्बर्यस्त्वेद्धस्य ऋषिः स एष । अभिवर्षेत्रसः सर्वस्य । आश्वस्यभुरितार्थ्यां विष्टु प्रकृतः । धेवतः स्वरः ॥ मध्यभागस्यार्थ्यां पर्कतर्र्यस्य । अभ्यस्य पंचमः स्वरः ॥ अभ्यस्यपंकिर्द्छन्दः । उभयभ पंचमः स्वरः ॥ इक्त यज्ञ अभि आदि पदार्था से धारण किया जाता है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

ग्रम्थर्षस्यां बिद्दवावंसुः परि द्वातु विद्यस्यारिष्ट्ये पजमान् नस्य परिचिरंस्यग्निहिड ईडितः । इन्द्रंस्य बाहुरंसि दक्षिणो विद्यस्यारिष्ट्ये पर्जमानस्य परिविरंस्यग्निहिड ईडितः । मिन्ना-वर्षणीस्वोत्तरुतः परिवत्तान्भुवेण वर्षणा विद्यस्यारिष्ट्ये पर्जमान् नस्य परिविरंस्यग्निहिड ईडितः ॥ ३ ॥

पदार्थ:-विद्वान् छोगों ने जिस (गन्धर्व:) पृथिनो ना नाजी के धारण करने वाले (विश्वावसु:) विश्व को वसाने वाले (इड:) स्तुति करने योग्य ( अ-िमः ) सुर्यंद्रप अग्नि की (ईडित: ) स्तुति (असि ) की है, जो (विश्वस्य ) संसार के वा विशेष कर के (यजमानस्य) यहां करने वाले विद्वान के (अरिष्टचें) दु:स निवारण से सुस के लिये इस यज्ञ को (परिद्धातु) धारण करता है इस से विद्वान् उस को विद्या की सिद्धि के लिये ( परिद्धात् ) घारण करे और विद्वानों से जो वायु (इन्द्रस्य ) सुर्व्यका (वाहु: ) वल और (दक्षिण: ) वर्षा की प्राप्तिकराने अथवा (परिधिः) शिल्प विद्या का धारण कराने वाला तथा ( इड: ) दाह प्रकाश आदि गुण होने से स्तुति के योग्य (ईडित: ) खोजा हुआ और (अग्नि: ) प्रत्यक्ष अग्नि ( अखि ) है वे वायु वा अग्नि अच्छी प्रकार शिल्प विद्या में युक्त किये हुए (य-जमानस्य) शिल्प विचा के चाहने वाले वा (विश्वस्य) सब प्राणियों के (अरिष्टची) सुक के लिये ( असि ) होते हैं और जो ब्रह्माण्ड में रहने और गमन का आगमन स्व-भाव बाले ( मित्रावरुणी ) प्राण और अपान वायु हैं वे ( भ्रुवेण ) निस्नल ( धर्मणा ) अपनी धारण शक्ति से ( उत्तरतः ) पूर्वोक्त वायु और अम्नि से उत्तर अर्थात् उपराम्त समय में (विश्वस्य) चराचर जगत् वा (यजमानस्य ) सब से मित्र भाव में वर्तनी वाले सज्जन पुरुष के (अरिष्ट्यें) सुख के हेतु (त्वा) उस पूर्वोक्त यज्ञ को (परि-धसाम्) सब प्रकार से धारण करते हैं तथा जो विद्वानों से (इड: ) विद्या की प्राप्ति के लिये प्रशंसा करने के योग्य और (परिधिः) सब शिल्प विद्या की सिद्धि को घेर-ने से अवधि तथा (ईडित:) विद्या की इच्छा करने वालों से प्रशंसा को प्राप्त (अ-ग्नि:) बिद्धकों क्ष्म अग्नि (असि) है वह भी इस यज्ञ को सब प्रकार से घारण क-रता है इन के गुणों को मनुष्य यथावत् जान के उपयोग करे || ३ ||

भावार्थ: रंश्वर ने जो सूर्य्य विद्युत् और प्रत्यक्ष रूप से तीन प्रकार का अनि रचा है वह विद्वानों ने शिल्प विद्या के द्वारा यंत्रादिकों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ अनेक कार्य्यों को सिद्धकरने वाला होता है || ३ ||

षीतिहोत्रमित्यस्य ऋषिः स एव । अम्निदे वताः। गायत्री छन्दः। षड्जः न्वरः॥

अब अग्नि शब्द से अगले मंत्र में उक्त दे। अर्थों का प्रकाश किया है ॥

ब्रीतिहोत्रन्त्वा कवे युमन्त्थः सिंधीमहि । सम्ने बृहन्तं-मध्युरे ॥ ४॥

पदार्थ:—हैं (कवे) सर्वज्ञ तथा हर एक पदार्थ में अनुक्रम से विज्ञानवाले (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हम जोग ( अध्वरे ) मित्र भाव के रहने में ( बृहत्तम् ) सब के लिथे बढ़े से बढ़े अपार सुख के बढ़ाने और (शुमन्तम्) अत्यन्त प्रकाश वाले वा (वीतिहोत्रम् ) अग्निहोत्र आदि यहाँ को विदित कराने वाले (त्वा ) आप को (सिमधी-मिह) अच्छी प्रकार प्रकाशित करें । यह इस मंत्र का प्रथम अर्थ हुआ। हम लोग (अध्वरे ) अहिंसनीय अर्थात् जो कभी परित्याग करने योग्य नहीं उस उत्तम यहा में जिस में कि ( वीतिहोत्रम् ) पदार्थों की प्राप्ति कराने के हेनु अग्निहोत्र आदि किया सिद्ध होतां हैं और ( शुमन्तम् अत्यन्त प्रचण्ड उव लाल युक्त ( वृहन्तम् ) बढ़े २ कार्यों को सिद्ध कराने तथा ( कवे ) पदार्थों में अनुक्रम से दृष्टिगोचर होने वाले ( त्वा ) उस ( अग्ने ) भीतिक अग्नि को ( सिमधीमिह ) अच्छी प्रकार प्रज्वलित करें यह दूसरा अर्थ हुआ | | ४ ||

मावार्थ:—इस मन्त्र में ग्लेपालंकार है—संसार में जितने क्रियाओं के साधन का कियाओं से सिद्ध होनेवाले पदार्थ हैं उन सभों को ईश्वर हो ने रचकर अच्छी प्रकार बारण किये हैं महुच्यों को उचित है कि उनकी सहायता गुण ज्ञान और उसम २ किन्याओं की अनुकूलता से अनेक प्रकार उपकार लेने चाहियें || ४ ||

समिद्शीत्यस्य ऋषिः स एव । यद्भो देवता । निचृत्वाद्भी पृहतीखन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उक्त यह के साधनों का उपदेश अगळे मंत्र में किया है ॥

सामिदं सि स्टर्गेस्त्वा पुरस्तांत पानु कस्यां श्चिद्र मिद्रांस्त्ये सः

बितुर्बाह्मध्य प्रकर्ण मदस्य स्तृणामि स्वास्थ न्द्रे बेम्य म्या स्वास्थ के कहा मादित्याः संदन्त ॥ ५ ॥

पहार्थ:—(चित्) जैसे कोई मनुष्य छुझ के लिये किया से सिद्ध किये पदार्थीं की रक्षा करके आनन्द को प्राप्त होता है जैसे ही यह यह (सिमत्) वसन्त ऋतु के समय के समान अच्छी प्रकार प्रकाशित (असि) होता है (खा) उस को (सूर्य्यः) पेश्वर्यं का हेतु सूर्य्यं लोक (कस्याः) सब पदार्थों की (अभिशस्त्ये) प्रकटता करने के लिये (पुरस्तात्) पहिले ही से उनकी (पातु) रक्षा करने वाला होता है तथा जो कि (सिवतुः) सूर्य्यं लोक के (बाहु) बल और वीर्च्यं (स्थः) हैं जिन से यह यहा विस्तार को प्राप्त होता है (खा) जिस (ऊर्णम्रदसम्) सुझ के विद्यां को नाश करने (स्वासस्थम्) और श्रेष्ठ अन्तरिक्षक्षीं आसन में स्थित होने वाले यहा को (वसवः) अग्नि आदि आद वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवां, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य्यं, प्रकाश, चन्द्रमा और तारागण, ये वसु (कद्राः) प्राण, अपान, व्यानं, उदान, समान, नाक, कूर्मां, इकल, तेवदक्त, धनंजय, और जीवातमा, ये रुद्र (आदित्याः) बारह म-हिने (सदन्तु) प्राप्त करते हैं (त्वा) उसी (ऊर्णम्रदसम्) अत्यंत सुख बढ़ाने (स्वा-सम्थम्) और अन्तरिक्ष में स्थिर होने वाले यह को मैं भी सुझ की प्राप्ति वा (दे-वेम्यः) दिव्य गुणों को सिद्ध करने के लिये (आस्तुणामि) अच्छी प्रकार सामग्री से आच्छादित करके सिद्ध करता हूं ॥ ५॥

भावार्थ: - इस मन्त्र में उपमालक्कार है - ईश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश क-रता है कि मनुष्यों को वसु, कह, और आदित्य संज्ञक पदार्थों से, जो २ काम सिद्ध हो सकते हैं सो २ सब प्राणियों के पालन के निमित्त नित्य सेवन करने योग्य हैं। तथा अग्नि के बीच जिन२ पदार्थों का प्रश्लेष अर्थान् हवन किया जाता है सो २ सूर्य्य और वायु को प्राप्त होता है वे ही उन अलग हुए पदार्थों की रक्षा करके फिर उन्हें पृथिवी में छोड़ देते हैं जिस से कि पृथिवी में दिव्य ओषधी आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन से जीवों को नित्य सुख होता है इस कारण सब मनुष्यों को इस यक्न का अनुष्ठान सदैव करना चाहिये॥ ५॥

घृताच्यसीत्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुदंवता सर्वस्य । षट्षष्टि तमाक्षरपर्ख्यन्ते ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । अग्रे निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । सर्वस्य धैवतः स्वरः ॥ फिर उक्त यहा से क्या २ त्रिय सुख होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है । घृताच्यंसि जुहूनाम्ता सेद्मियेण धाम्तां प्रियक्ष सद् आसी-द् घृताच्यंस्युप्रमृत्राम्ता सेद्मियेण धाम्तां प्रियक्ष सद् आसीद् घृताच्यंसि श्रुषा नाम्ता सेदं प्रियेण धाम्तां प्रियक्ष सद् आसीद्। प्रियेण धाम्तां प्रियक्ष सद् आसीद् श्रुषा संसदन्तृतस्य योती ता विच्लो पाहि पाहि युक्तं पाहि यक्क्षंति पाहि मां यंज्ञन्तम् ॥६॥

पदार्थ:--जो ( जुडू ) हिंब अग्नि में डालने के लिये सुख की उत्पन्न करनेवाली (सूक्) ( घृताची ) घृतयुक्त ( असि ) होती है ( सा ) वह यज्ञ में युक्त की हुई सार प्रहण की किया है सो ( प्रियेण ) खुर्खों से तृप्त करने वाला शोनायमान ( धास्ता ) स्थान के साथ वर्रीमान होके (इर्म्) यह (जियम्) जिस में तृप्त करने वाले (सरः) उत्तम २ सुर्खों को प्राप्त होते हैं उन की (आसीव) सिद्ध करती है। जो (नाम्ना) प्रसिद्धी से (उपभृत्) समीप प्राप्त, हुए पदार्थीं को धारण करने तथा ( घृताची ) जल को प्राप्त कराने वाली हस्त किया (असि) है (सा) वह उस में युक्त की हुई ( त्रियेण ) प्रीति के हेतु ( धाम्ता ) स्थल से ( इदम् ) यह ओषधी आदि पदार्थी का समृह (प्रियम्) जो कि आरोग्य पूर्वक सुखदायक और ( सदः ) दुःसी का नाश करने वाला है उस को ( आसींद ) अच्छी प्रकार प्राप्त करती है तथा जो ( धुवा ) स्थिर सुखों वा (घृताची) आयु के निमित्त की देने वाली विद्या (असि )। होती है (सा) वह अच्छी प्रकार उत्तम कार्च्यी में युक्त की हुई ( विथेण ) प्रीति उ-त्पन्न करने वाळे स्थिरता के निमित्त से ( इदम् ) इस ( प्रियम् ) आनन्द कराने याळे जीवन वा ( सद: ) वस्तुओं को ( आसीद ) प्राप्त करता है। जिस किया करके (प्रि-येण ) प्रसम्नता के करने हारे ( थाझा ) इदय से ( प्रियम् ) प्रसम्रता करने वाला (सदः) ज्ञान (आसीद्) अच्छी प्रकार प्राप्त होता है (सा) वह विज्ञानरीति सव को नित्य सिद्ध करनी चाहिये। है (विष्णो) व्यापकंश्वर ! जैसे जो२ ( ऋतम्य योनी ) शुद्ध यह में ( भूवा ) स्थिर वस्तु (असदन्) हो सके बैसे ही उन की निरन्तर (पाहि) रक्षा कीजिथे तथा रूपा करके यज्ञ की (पाहि) रक्षा कीजिथे (यज्ञन्यम्) यज्ञ प्राप्तः करने (यक्कपतिम्) यज्ञ को पालन करने हारे यजमान की (पाहि) रक्षा करो और यज्ञ को प्रकाशित करने वाले (माम् ) मुझे ( च ) भी (पाहि ) पालिये ॥ ६॥

मावार्थ:—जो यह पूर्वोक्त मंत्र में वजु, रुद्र और आदित्य से सिद्ध होने के लिये कहा है वह बायु और जल की शुद्धि के द्वारा सब स्थान और सब वस्तुओं को मीति कराने हारे उत्तम सुख को बढ़ाने वाले कर देता है सब मनुष्यों को उन की वृद्धि वा रक्षा के लिये व्यापक ईश्वर की प्रार्थना और सदा अच्छी प्रकार पुरुषार्थं क-रमा चाहिये || ६ ||

भन्ने बाजजितित्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । भुरिक् प**क्**कि**श्वम्यः** । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह यह फैसा है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥ भाग्ने बाज जिहार्जनस्वा सरिष्यन्तवाज्ञजित्र्धं सम्बद्धिमा । मन

मों देवेम्पः स्वधा पितृभ्यः सुवमें मे भ्वास्तम् ॥ ७॥

पवार्य:—जिस से यह (अग्ने) अग्नि ( व.जजित् ) अर्थात् जो उत्कृष्ट अस की प्राप्त कराने वाला होके सब पदार्थों को शुद्ध करता है इस से मैं (त्वा ) उस ( वाजम् ) वेग व.ले ( सिरम्थन्तम् ) सब पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहु चाने और ( वाजजितम् ) अर्थात् युद्ध को जिताने व.ले मौतिक अग्नि को ( सम्मार्ज्यि ) अर्थ्छी प्रकार शुद्ध क-रता हू युद्ध में युक्ति किये हुए जिल अग्नि से (देवेमचः) सुखकारक पूर्वोक्त वयु आदि से सुख के लिये ( नमः ) अस्यन्त मधुर श्रेष्ठ जल तथा ( पितृभचः ) पाखने के हेतु जो वसन्त अन्व ऋतु हैं उनसे जो आरोग्य के लिये ( स्वधा ) अमृतात्मक अस्न किये जाते हैं वे ( सुयमे ) वल वा पराक्रम के देने वाले उस यद्ध से ( मे ) मेरे किये ( मृ-यास्तम् ) होवें ॥ ७॥

भावार्थ:— ईश्वर उपदेश करता है कि प्रथम मंत्र में कहे हुए यह का मुख्य सा-धन अग्नि होता है। क्योंकि जैसे प्रत्यक्ष में भी उसकी रूपट देखने में आती है पैसे अग्नि का ऊपर ही को चरुने जरुने का स्वमात्र है तथा सब पदधों के छिन्न मिन्न करने का भी उसका स्वभाव है। और यान वा अस्त्रशस्त्रों में अच्छी प्रकार युक्त कि-या हुआ शीच्च गमन वा विजय का हेतु हो कर वसंत आदि ऋतुओं से उसम उसम पदाधों का संपादन करके अन्न और जरु को शुद्ध वा सुख देने वाले कर देता है ऐसी जानना साहिये।। ७।।

अस्क समधेत्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुदंवता । विराट् पङ्किम्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा होकर क्या करता है सो बगले भन्न में प्रकाश किया है। चाहकं श्रमच देवेश्य आज्य असंभित्राम्म मं चिंणा विच्छो मा स्वार्व क्रिम चं वस्त्रमिनी माने ते छाया मुपस्थे चं विच्छो स्थान मसीत इन्द्रों

बीर्थ्य मक्तुणोदुध्विध्वर आस्थात्॥ ८॥

पहार्थः—में (देवेन्यः) उत्तम सुकों की प्राप्ति के लिये जो ( अस्कक्षम् ) विक्रांत्रं सुखदावक ( माज्यम् ) चृत आदि उत्तम उत्तम पदार्थं हैं उस को ( अफ्रिया ) पदार्थं पहुंचाने वाला अग्नि से ( अप ) आज ( संभियासम् ) धारण करूं और ( त्वा ) उस्तं का में ( माजक्रिमपम् ) कभी उल्लंबन न करूं। तथा हे ( अग्ने ) जगदोश्वर! ते आप के ( क्लुमतीम् ) पदार्थं देने व ले ( क्लायम् ) अग्निय को ( उपस्थेवम् ) प्राप्त होर्जं। जो वह (अग्ने) अग्नि ( विज्ञाः) के यह ( स्थानम् ) ठहरने का स्थान (असि) है उसे के भी (वल्लुमतीम्) उत्तम पदार्थं देने व ले (क्लायाम् ) आग्नय को में (उपस्थेवम् ) प्राप्तं होकर यह को सिक्ष करता ह तथा जो ( उपन्यं: ) आकाश और जो ( अपनरः ) यह अग्नि में उद्दरने वाला ( आ ) सब प्रकार से ( अस्थात् ) उहरता है उस को । ( इन्द्रः ) सूर्व्यं और वायु धारण करके ( वीर्च्यम् ) कर्म अथवा पराक्रम को ( अक्रुम्तो ) करते हैं ॥ ८ ॥

भाषार्थ:—ईश्वर उपदेश करता है कि जिस पूर्वोक यह से जल भीर वायु शुद्ध हो-कर बहुतसा अब उत्पन्न करनेवाले होते हैं उसकी सिद्ध करनेके लिये महुच्यों की बहुतसी सामग्री जोड़नी चाहिये। उसे मैं सर्गत व्यापक हूं मेरी आहा कभी उल्लंबन नहीं करनी चाहिये किन्तु जो असंत्यात सुकों का देनेवाला मेरा आश्रय है उनको स-दा प्रहण करके अग्नि में जो हवन किया जाता है तथा जिस को सूर्य अपनी किरणों से लेंच कर बायुक योगसे ऊपर मेघमंडल में स्थापन करता है और फिर वह उसको वहां से मेघदारा गिरा देता है और जिससे पृथिषापर बढ़ा सुक उत्पन्न होता है उ-स्न यह का अनुहान सब महाच्यों को सदा करना योग्य हैं।। ८।।

भन्ने वेरित्यक्षक्रियः स एव । भन्निरंबता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।।
फिर उस यह से स्या काम होता है सो अगक्षे मंत्र में प्रकाशित किया है ।।
आग्ने बेह्रों से वेर्दूरगुमवंतान्त्वान्यावां पृथिवी स्व त्वं यावांपृथिवी स्विष्टकृदेवेम् इन्द्र साउउवेन हविषां मृतस्वाहा संउयोतिषा उयोतिः ॥ ९ ॥

पदार्थ:—हे (अझे) परमेश्वर ! जो (यावापृधिकी) प्रकाशमय सूर्यलोक और पृधिकी बहु की (अवताम्) रक्षा करते हैं उनकी (त्वम्) आए (वे:) रक्षा करो तथा जैसे यह मौतिक अग्नि (होत्रम्) यह और (दूधम्) दूत कर्म को प्राप्त होकर (या-वापृथिकी) प्रकाशमय सूर्य्य लोक और पृथिकी की रक्षा करता है वैसे हे भगवन् ! (देवेश्व:) विद्वानों के लिये (स्वष्टकत्) उनकी इच्छा गुकुल अच्छे २ काम्बी को

करनेवाले आप इमलोगों की ( अव ) रक्षा की जिये जो यह (आज्येन) यह के निमित्त अग्नि में छोड़ ने योग्य धृत आदि उत्तम २ पदार्थ ( हिवचा ) संस्कृत अर्थात् अच्छी प्रकार शुद्ध किये हुए होम के योग्य कस्त्री केसर आदि पदार्थ वा (ज्योति-मा) प्रकाशयुक्त लोकों के साथ (ज्योति:) प्रकाशमय किरणों से (स्वष्टकृत्) अच्छे २ वांछित कार्च्य सिद्धि कराने वाला (इन्द्र:) सूच्य लोक भी (चावापृथिवी) हमारे न्याय वा पृथिवी के राज्यकी रक्षा करने वाला ( अभूत् ) होता है बैसे आप (ज्योति:) विज्ञानकृप ज्योति के दान से हम लोगों की ( अव ) रक्षा की जिये इस कर्म को (स्वाहा) वेदवाणी कहती है ॥ ९ ॥

भाषार्थः— ११ वर ने मनुष्यों के लिये वेदों में उपदेश किया है कि जो २ मिन्न पृधिन्नी सूर्य्य और वायु आदि पदार्थों के निमित्तों को जान के होम और दूतसम्बन्धी कर्मका अद्भुद्धान करना योग्य है सो २ उन के लिये वांख्रित सुख के देनेवाले होते हैं। अद्यम मंत्र से कहे हुए यह साधन का फल नवमे मंत्रसे प्रकाशित किया हं।। १।।
मबीदिमित्यस्य ऋषि: स एव। इन्द्रो देवता। भुरिष्माद्यो एकिश्छन्दः। एचमः स्वरः।।
अव अगले मंत्र में उक यहां से उत्पन्न होनेवाले फल का उपदेश किया है।
मधीदिमिन्द्र हिन्द्रयं दंधात्यस्मान् रायों मुघवानः सचन्ताम्।
अनुस्मार्क्षः सन्त्वाद्याद्यं मुश्या नंः सन्त्वाद्याद्य उपहुता पृथिवी
मात्रोपमां पृथिवी माता ह्रंधतामुग्निराग्नीश्रात्स्वाहां॥ १०॥

पदार्थ:—(इन्द्र:) परमेश्वर (मिय) मुझ में (इदम्) प्रत्यक्ष (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य की प्राप्ति के चिन्ह तथा परमेश्वर ने जो अपने ज्ञान से देशा वा प्रकाशित किया है और सब सुखों को सिद्ध करानेवाले जो विद्वानों को दिया है जिस को वे इन्द्र अर्थात् विद्वान् लोग प्रीति पूर्वक सेवन करते हैं उन्हें तथा (राय:) विद्या सुवर्ण वा चक्रवर्षि राज्य आदि धनों को (दधातु) नित्य स्थापन कर और उस की रूपा से तथा हमारे पुरुषार्थ से (अधवान:) जिन में कि बहुत धन विद्यमान राज्य आदि पदार्थ हैं जिन करके हम लोग पूर्ण केंश्वर्थयुक्त हों यैसे धन (न:) हम विद्वान् धर्मात्मा लोगों को (सचन्ताम्) प्राप्त हों नथा इसी प्रकार (अस्माकम्) हम परोपकार करनेवाले ध-मीत्माओं की (आशिष:) कामना (सत्या:) सिद्ध (सन्तु) हों और ऐसे ही (न:) हमारी (आशिष:) न्यायपूर्वक इच्छायुक्त जो किया हैं वे भी (सत्या:) सिद्ध (सन्तु) हों तथा इसी प्रकार (माता) धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि से मान्य करके हारी विद्या और (पृथिको) बहुत सुक्ष देनेवाली भूमि है (उपहृता) जिसको

राज्य आदि सुझ के लिये मनुष्य कम से प्राप्त होते हैं वह (माम्) सुझ की इच्छा करनेवाले मुझ को (उपह्नयताम्) अच्छी प्रकार उपदेश करती है तथा मेरा अनुष्ठान किया हुआ यह (अग्नि:) जिस भौतिक अग्नि को कि (आग्नीधात्) इन्धनादि से प्र- ज्वलित करते हैं वह वांछित सुझों का करनेवाला होकर (न:) हमारे सुझों का आगमन करावें क्योंकि ऐसे ही अच्छी प्रकार होमको प्राप्त होके चाहे हुए कार्यों को सिद्ध करनेह।रा होता है (स्वाहा) सब मनुष्यों के करने के लिये वेदवाणी इस कर्म को कहती है।। १०।।

भावार्थ:—जो मनुष्य पुरुषार्थी परोपकारी ईश्वर के उपासक हैं वेही श्रेष्ठज्ञान उत्तम धन और सत्य कामनाओं को प्राप्त होते हैं और नहीं जो सब को मान्य देने के कारण इस मंत्र में पृथिवा शब्द से भूमि और विद्या का प्रकाश किया है सो ये सब मनुष्यों को उपकार में लाने के योग्य हैं। ईश्वर ने इस वेदमंत्र से यहाँ प्रकाशित किया है तथा जो नवम मंत्र से अग्नि आदि पदार्थों से इच्छित सुख की प्राप्ति कहीं है वहीं बात दशम मंत्र से प्रकाशित की है।। १०।।

उपहूतेत्यस्य ऋषिः स एव । द्यावारृथिवी देवते । ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥ फिर भी अगले मंत्र में उक्त अर्थ को दृढ़ किया है ॥

वर्षहृतां चौष्ठिपतोषमां चौष्ठिपता ह्रंधताम् गिनराग्नी ब्रात्सवाहां । देवस्यं त्वा सञ्जितः प्रस्ति देवनी ब्राह्मचां पूरणो इस्तांभ्याम् । प्र-तिगृहणाम्युग्नेष्ट्वास्येन प्राश्चामि ॥ ११ ॥

पदार्थ: मुझ से जो ( थाँ: ) प्रकाशमय ( पिता ) सर्वपालन ईम्बर ( उपह्त: ) प्रार्थना किया हुआ ( माम् ) सुख मोगनेवाले मुझ को ( उपह्रयताम् ) अच्छी प्रकार स्वीकार करे इसी प्रकार जो ( थाँ: ) प्रकाशवान् ( पिता ) सब उत्तम क्रियाओं का पालने का हेतु सूर्य्य लोक मुझ से ( उपह्तः ) क्रियाओं में प्रयुक्त किया हुआ ( गाम् ) सब सुख मोगने वाले मुझ को विद्या के लिये ( उपह्रयताम् ) युक्त करता है तथा जो ( अग्नि: ) जाठराग्नि ( स्वाहा ) अच्छे मोजन किये हुए अस को ( आग्नीधात् ) उदर में अस के कोठे में पचा देता है उस से में ( देवस्य ) हर्ष देने ( सिवतु: ) और सब के उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर के उत्पन्न किये हुए ( प्रसवे ) संसार में विद्यमान और (त्वा ) उस उक्त भोग को ( अश्वनो: ) प्राण और अपान के ( बाहुभ्याम् ) आकर्षण और धारणगुणों से तथा ( पूष्ण: ) पृष्टि के हेतु समान वायु के ( हस्ताभयाम् ) शो-धन वा शरीर के अग २ में पहंचाने के गुण से ( प्रतिगृह्णामि ) अच्छी प्रकार प्रहण

करता हूं प्रहुष करके ( अग्नै: ) प्रत्यक्तित मंत्रि के बीच में पकाकर (त्वा ) इस मी-जन करने योग्य भवा को ( आस्येन ) अपने मुख से प्रारनामि मोजन करता हूं ॥

मावार्थ: इस मंत्र में ग्छेपार्छकार है मुनुष्यों को अपने आसा की शुद्धि के लिये अनंत विद्या के प्रकाश करनेवाळे परमेन्वर पिता का आहान अर्थात् अच्छी प्रकार नित्य सेवन करना खाहिये तथा विद्या की सिद्धि के लिये उदर की अप्रि को वीस कर और नवीं से अच्छी प्रकार देख के संस्कार किये हुए प्रमाणयुक्त अस का नित्य भोजन करना चाहिये सब भोग इस संसार में जो कि इंग्वर के उत्पन्न किये पर्वार्थ हैं उन से सिद्ध होते हैं वह भोग विद्या और धर्मयुक्त व्यवहार से भोगना चाहिये और पैसे ही औरों को वर्ताना चाहिये जो पूर्व मंत्र से पृथिवी में विद्या से प्राप्त होने वा मान्य के करानेवाले पदार्थ कहे हैं उन का भोग धर्म वा युक्ति के साथ सब मनुष्यों को करना खाहिये। ऐसा इस मंत्र से प्रतिपादन किया है।। ११।।

पतन्त इत्यस्य ऋषिः स पव । सिवता देवता । भुरिः बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

किस प्रयोजन के लिये और किस ने यह विद्या का प्रबंध प्रकाशित किया है सो अग-ले भंत्र में उपदेश किया है ||

एतन्ते देव सवितर्ध्यक्षं प्राहुर्वृहस्पतंथे हहाणे । तेने धक्षमंख तेने यक्षऽपंतिन्तेन मामंब ॥ १२॥

पदार्थ:—हें (देव) दिव्यसुत्त वा उत्तम गुण देने तथा (सिंदतः) सब ऐश्वर्यं का विधान करनेव छे जगदीश्वर वेद और विद्वान आप के प्रकाशित किये हुए (ए-तम्) इस पूर्वोक्त यद्ग को (प्राहु:) अच्छी प्रकार करते हैं कि जिस से (बृहस्पतये) बढ़ों में बड़ों जो वेदवाणी है उस के पालन करनेवाले (ब्रह्मणे )चारों वेदों के पढ़ने से ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त हुए विद्वान के लिये सुत्त और श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होते हैं इस (यद्मम्) यद्मसम्बन्धी धर्म से (यद्मपतिम्) यद्म को करने वा सब प्राणियों को सुत्त देनेवाले विद्वान और उस विद्या वा धर्म के प्रकाश से (मा) मेरी भी (अव) रक्षा की जिये ॥ १२ ॥

ा भावार्थ: - र्श्यूवर ने सृष्टि की सादि में दिव्यगुणवाले स्नित्त वायु रिव स्ट्रेंट स्निति-रा ऋषियों के द्वारा चारों वेद के उपदेश से सब मनुष्यों के लिये विद्या प्राप्ति के सा-थ यह के सनुष्टान की विधिका उपदेश किया है जिस से सब की रक्षा होती है क्यें-कि विद्या और शुद्धि किया के विना किसी को सुख वा सुख की रक्षा प्राप्त नहीं हो सकती इसिकिये हम सब को उचित है कि परस्पर मीति के साथ अपनी कृदि और रक्षा यहां से करनी चाहिये जो म्यारहंचे मंत्र से यहां का फल कहा है उसका मकाश परमेश्कर ही ने किया है पेसा इस मंत्र से विधान है || १२ ||

मनोज्तिरित्यस्य अविः स एव । वृहस्पतिहे वता । विराह् जगती छन्दः । निपाहः स्वरः जिससे यह किया जा सकता है सो विषय अगले मंत्र में प्रकाशित किया है।।

मनो जूनि जीवनामाज्यस्य वृहस्पति श्रेशासिमन्ते नोस्वरिष्ठं ग्रञ्जाधे सिमन्दं घातु । विहवे हेवासं हृह महियन्तामो हैस्पति छ ॥ १३॥

पदार्थं:—(जूति:) अपने वेग से सब जगह जाने वाला (मन:) विचारवान् ज्ञान का साधन मेरा मन (आज्यस्य) यज्ञ की सामग्री का (जुषताम्) सेवन करे (बृहस्पति:) बहें २ जो प्रकृति और आकाश आदि पदार्थ हैं उन का जो पित अधीत् पालन करने हारा रंखर है वह (रमम्) रस प्रकट और अप्रकट (अरिष्टम्) अहिंसनीय (यज्ञम्) सुझों के मोगद्वपी यज्ञ को (तनोतु) विस्तार करे तथा (रम्म्) रस (अरिष्टम्) जो छोड़ने योग्य नहीं (यज्ञम्) जो हमारे अनुष्ठान करने योग्य विज्ञान प्राप्ति रूप यज्ञ है रस को (संद्रधातु) अच्छी प्रकार धारण करावे | है (विश्वेदेवास:) सकल विद्वान् लोगों! तुम रन पालन करने योग्य दो यज्ञों का धारण्य वा विस्तार करके (रह) रस संसार वा अपने मन में (मादयनताम्) आनिवत होओ | हे (ओ३म्) ऑकार के अर्थ जगदीश्वर आप (बृहस्पति:) प्रकृत्यादि के धान्य करने हारे (रह) रस संसार वा विद्वानों के हृद्य में (मितिष्ठ) हुना करके रूस स यज्ञ वा बेद विद्यादि को स्थापन की जिये | १३ ||

भाषार्थ:— ग्रेम्बर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! नुद्धारा मन अच्छे ही कामों में प्रमुत्त हो तथा में ने जो संसार में यज्ञ करने की आज्ञा दी है उस का उक प्रकार से यथावत् अनुष्ठान करके सुस्ती हो तथा औरों को भी सुस्ती करों ( ओश्म् ) यह पर-मेन्बर का नाम है जैसे पिता और पुत्र का प्रिय सम्बन्ध है बेसे ही परमेश्वर के साथ ( ओश्म् ) ऑकार का सम्बन्ध है तथा अच्छे कामों के विना किसी की प्रतिष्ठा नहीं हो सकी इस लिये सब मनुष्यों को सर्वथा अधर्म छोड़ कर धर्म कामों का ही सेवन क-रमा थोच्य है जिससे संसार में निश्चय करके अविद्याहणी अन्धकार निवृत्त हो कर विद्याहणी सुद्यें प्रकाशित हो, नारहवें मन्त्र से जिस यह का प्रकाश किया था उसके

अनुष्ठान से सब मनुष्यों की प्रतिष्ठा व सुक्ष होते हैं यह इस में प्रकाशित किया हं ॥ १३ ॥ पषा ते इत्यस्य ऋषि: सण्व । अफ़िर्देवता सर्वस्य । पूर्वोऽनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । अग्ने वाजजिदित्यत्र निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

यह में अभि से कैसे उपकार लेना चाहिय सो अमले मंत्र में प्रकाश किया है।

पुषा में अग्ने स्मिन्नया वर्षस्य चार्चप्यायस्य । बर्धिषीमहिं
च व्यमा च प्यासिषीमहि । अग्ने बाजिक्रवाजे स्वा सस्वाछ
संवाजिक्रिश्रसंमां जिम ॥ १४॥

पदार्थ:-हे (अम्ने) परमेश्वर (ते) आपकी जो (एषा) यह (सिमत्) अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों की प्रकाश करनेवाली वेदविद्या है (तया) उससे हमलोगी की की हुई स्तुति को प्राप्त होकर अध्य नित्य (वर्धस्व) हमारे ज्ञान में वृद्धि को प्राप्त हु-जिये और (तथा) उस येद विद्या से हम लोगों की भी नित्य वृद्धि कीजिये इसी प्र-कार हे भगवन् । आप के पुणों को जाननेहारे हम लोगों से ( च ) भी प्रकाशित होकर आप (प्यायस्व) हमारे आतमाओं में वृद्धि को प्राप्त हृजिये इसी प्रकार हम को भी ब-ढाइये। हे भगवन् : ( अग्ने ) विज्ञानस्वरूप विजय देने और ( वाजजित् ) सब के वेग को जीतने वाले परमेश्वर हमलोग (वाजम्) जो कि ज्ञानस्वह्य ( सस्वांसम् ) अर्थात् सब को जाननंबार (स्वा) आपकी (वर्धिवीमहि) स्तुतियों से वृद्धि तथा प्राति करें ( ख ) और आप छपा करके हम को भी सब के वेग के जीतने तथा ज्ञानवान् अ-र्थात् सब के मन के व्यवहारों को जाननेषाले की जिथे। और जैसे हम लोग आप की (आप्यासिपीमहि) अधिक २ स्तृति कर वैसेही अप भी हम लोगी को सब उत्तम२ गुण् और सुखों से ( अव्यायस्व ) वृद्धि युक्त कीजिये । हम आप के आश्रय को प्राप्त हो कर तथा आप की आज्ञा के पालने से (समाज्ञिं) अच्छी प्रकार शुद्ध होते हैं ॥१॥ जो (एषा) यह (अर्न्स) मौतिक अग्नि है (ते) उसको (समित्) बढ़ाने अर्थात् अच्छी प्रकार प्रदीत करनेवाली लक्षड़ियों का समृह है (तया ) उससे यह अग्नि (व-र्धस्व ) बढ़ता और (आप्यायस्व ) परिपूर्ण भी होता है। हमलोग (त्वा ) उस ( या-जम् ) बेग और (सख्यांतम् ) शिल्पविद्या के गुणों को देने तथा ( वाजजितम् ) स-प्राप्त के जिताने के साधन अग्नि को विद्या की वृद्धि के लिये (वर्धिपीमहि) बहाते हैं (च ) आर ( आप्यासिषीमहि ) कलाओं में एरिपूर्ण भी करते हैं जिससे यह शि-रुपविद्या से सिद्ध किथे हुए विमान आदि यानों तथा वेगवाले शिल्पविद्या के गुणों की

प्राप्ति से संप्राप्त को जिताने वालै हम को विजय के साथ बढ़ाता है इससे (त्वा) उस अग्नि को हम (संमार्जि) अञ्छी प्रकार प्रयोग करते हैं || २ || १४ ||

भावार्थ:— इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। और एक २ अर्थ के दो २ किया पद आदर के लिये जानने चाहियें जो मनुष्य परमेश्वर की आक्का के पालने और किया की कुरालता में उस्रति की प्राप्त होते हैं वे विद्या और सुख में सब की आसन्दित कर और दुष्ट शत्रु ओं को जीतकर शुद्ध होके मुखी होते हैं जो आलस्य करनेत्राले के वे ऐसे कभी नहीं होसते। और चार चकारों से ईश्वर की धर्म युक्त आक्का स्कृत हा स्थूलता से अनेक प्रकार की और क्रियाकाण्ड में करने योग्य कार्य्य भी अनेक प्रकार के हैं ऐसा समझना चाहिये। जो तेरहवें मन्त्र में धेदविद्या कही है उस से सुख के लिये यहा का संधान तथा पुरुषार्थ करना चाहिये ऐसा इस मन्त्र में प्रतिपादन किया है।

अन्तीषोमयोरिति सर्वस्य ऋषि: स एव । अन्तीषोमी देवते । पूर्वार्के ब्राह्मीवृहतीः छन्दः । मध्यमः स्वरः । उत्तराई इन्द्राग्नी देवते । अतिजगती छन्दः ।

निषादः स्वर: ||

अब उस यह से क्या २ दूर करना चाहि यहचे विषय अगले मन्त्र में भकाशित किया है।

श्चरनीषोमें हो इंजितिमन्द जें बार्जस्य मा प्रस्वेत मोहां मि श्चरनीषोमी तमर्पनुद्तां द्वीऽस्मान्ते ष्टि यं च व्यं द्विष्मो बार्ज-स्पैनं प्रस्वेनापीहामि । इन्द्वारन्यो इंजितिमन्द जें बार्जस्य मा-प्रस्वेत प्रोहांमि इन्द्वारनी तमर्पनुद्तां द्वोऽस्मान्दे ष्टि यं च व्यं द्विष्मो बार्जस्यैनं प्रस्वेनापीहामि ॥ १५ ॥

पदार्थ:—में (अझीयोमयोः) प्रसिद्ध मौतिक श्रीय श्रीर चन्द्रहोक के ( उण्जिति-म्) दुःस से सहने योग्य शत्रुओं को (अन्जीपम्) यथा कम से जीत् श्रीर (वाजिस्य) युद्ध के (प्रसवेन) उत्पादन से विजय करने वाले (मा ) अपने आप को (प्रोहामि) अञ्छी प्रकार शुद्ध तकों से युक्त कके । जो मुझ से अञ्छी प्रकार विद्या से किया इशलता में युक्त किये हुए ( अमीयोमी ) उक्त श्रीत श्रीर चन्द्रजोक हैं वे (यः) ओकि अन्याय में वर्त्तनेवाला दुष्ट मनुष्य ( अस्मान् ) न्याय करने वाले हम लोगों को (हेष्टि) शत्रुभाव से वर्त्तता है (वंश्व) और जिल्ल अन्याय करने वाले से ( वंश्वन् ) न्यावाधीश हम लोग (हिप्पः) विरोध करते हैं (तम् ) उस शत्रु वा रोग

को ( अपनुवताम् ) दूर करते हैं और मैं भी ( पनम् ) इस बुष्ट शत्रु को ( बाजस्य ) वानवेगावि गुणों से युक्त सेना वाले संग्राम की मसबेन अध्यी मकार मेरणा से ( अ-पोहामि ) दूर करता हूं। मैं ( इन्द्रामयोः ) बायु और विद्युत्कप अग्नि की ( उजिजनित्म ) विद्या से अध्यी प्रकार उत्कर्ष को ( अन्जिपम् ) अनुक्रम से माप्त होऊं और मैं ( कामस्य ) ज्ञान की प्रेरणा के द्वारा वेग की माप्ति के ( मसबेन ) पेश्वर्य के अर्थ करवादन से बायु और विद्युती की विधा के जानने वाले ( माम् ) अपने आप को निक्ष ( प्रोहामि ) अच्छी मकार तर्कों से दुर्झों को माप्त होता हूं और मुझ से जो अ-स्थे मकार सिद्ध किये हुए ( इन्द्राम्नी ) वायु और विद्युत् अग्नि है वह ( यः ) जो मूर्य मनुष्य ( अस्तान् ) हम विद्वान् लोगों से ( द्वेष्ट ) अर्माति से वर्चता है ( ख ) और ( यम् ) जिस मूर्ख से ( वयम् ) हम विद्वान् लोग ( द्विष्टः ) अर्माति से वर्चते हैं ( तम् ) उस बैर करने वाले मूद को ( अपनुदताम् ) दूर करते हैं । तथा मैं भी ( एनम् ) इसे ( वाजस्य ) विद्वान के ( प्रसवेन ) प्रकाश से ( अपोहामि ) अध्यी २ शिक्षा दे कर शुद्ध करता हूं | १५ |।

भाषार्थ:—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को विद्या और युक्तियों से अ-ग्नि और जल के मेल से कलाओं की कुशलता करके वेगादि गुणों के प्रकाश से तथा व.यु और विद्युत् अग्नि की विद्या से सब दरिद्र के विनाश और शत्रुओं के पराज्ञय से श्रेष्ठ शिक्षा देकर अज्ञान को दूर कर और उन मृद् मनुष्यों को विद्वान करके अ-वेक प्रकार के सुख इस संसार में सिद्ध करने योग्य और औरों को सिद्ध कराने के योग्य हैं इस प्रकार अच्छे प्रयक्त से सब पदार्थविद्या संसार में प्रकाशित करनी यो-ग्य है पूर्व मन्त्र में जो कार्य प्रकाश किया उसकी पृष्टि इस मन्त्र से की है ॥ १५ ॥

बसुभ्यस्त्वेति सर्वस्य ऋषिः स एव । पूर्वासं द्यावापृथिवा मित्रावरुणी ख देवताः । निचुदार्चः पंकिच्छन्दः । पंचमः स्वगः । व्यन्तुक्य इत्यारम्या-

म्यपर्खं न्तस्याग्निसंवता । विराद् त्रिष्टुप् छन्दः । धैयतः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ से क्या होता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

बसुंभ्यस्त्वा क्रिभ्यंस्त्वादित्येभ्यंस्त्वा संज्ञांनाथां चाबावृधिबी
मिश्राबर्हणौ त्वा वृष्ट्यांवताम् । न्यन्तु बयोक्तः रिहांणा मुक्तां
पृषंतीर्गच्छ वृद्या पृहिनभूंत्वा दिवं गच्छ तती तो वृष्टिमावंह ।
चक्षुच्या अंग्नेऽसि चक्षुंमं पाहि ॥ १६ ॥

पदार्थ:-हम लोग ( वसुभ्यः ) अग्नि आदि आठ वसुओं से ( त्वा ) उस वह की

तथा ( क्ट्रेम्यः ) पूर्वोक पकादरा वहाँ से (का) पूर्वोक यह को और (आदिखंभ्यः) बारह महीनों से (का) उस कियासमृह को नित्य उसम तकों से जानें और यह से ये ( बाकापृथिषी ) सूर्व्य का प्रकाश और भूमि ( संज्ञानाथाम् ) जो उन से शिल्प- विद्या उत्पन्न हो सके उन के सिद्ध करने व.ले हों और ( मित्रावरुणी ) जो सब जीवों का बाहिर के प्राण और जीवों के शरीर में रहने वाला उदानव यु है वे ( वृष्ट्या ) शुद्ध जल की वर्षा से (का) जो संसार सूर्व्य के प्रकाश और भूमि में स्थित है उस की ( अवताम् ) रहा करते हैं ( वयः ) जैसे पक्षी अपने २ ठिकानों को रखते और ( व्यन्तु ) प्राप्त होते हैं जैसे उन छन्दों से ( रिहाणाः ) पूजन करने वाले हम लोग (का) उस बह्न का अनुष्ठान करते हैं और जो यह में हवन की आहृति ( पृश्चिः ) अन्तरिक्ष में स्थिर और ( वशा ) शोमित (भूका) होकर ( मक्ताम् ) पवर्गों के संग से ( दिवम् ) सूर्य के प्रकाश को ( गच्छ ) प्राप्त होती है वह ( ततः ) वहां से (नः) हम लोगों के लिये ( वृष्टिम् ) वर्षों को ( आवह ) अच्छे प्रकार वर्षोती है उस वर्षों का जल ( पृथ्वीः ) नाड़ों और निदयों को प्राप्त होता है । जिस कारणयह अग्नि ( व्यक्षुणाः ) नेवों को रक्षा करने वाला ( असि ) है इस से ( मे ) हमतरे ( चक्षुः ) नेवों के बाहिरले भीतरले विद्वान की ( पाहि ) रक्षा करता है ॥ १६ ॥

भावार्थ:—इस भंत्र में लुहोपमालक्कार है। मलुष्य लोग यह में जो आहुति देते हैं वह वायु के साथ मेघमंडल में जाकर सूर्य्य से किये हुए जल को शुद्ध करती है, फिर वहां से वह जल पृथियों में आकर ओषधियों को पृष्ट करता है वह उक आहुति वेदमन्त्रों से ही करनी चाहिये क्योंकि उसके फलको जानने में नित्य भ्रद्धा उत्पन्न होवे जो यह भिन्न सूर्य्य कर होकर सब को प्रकाशित करता है इसी से सब दृष्टि व्यवहार की पालना होती है थे जो वस्तु आदि देव कहाते हैं इनसे विद्या के उपकारपूर्वक तुष्ट गुण और दृष्ट प्राणियों को नित्य निवारण करना चाहिये यही सब का पूजन अर्थात् गतकार है जो पूर्व मन्त्र में कहा था उस का इस से विशेषता कर के प्रकाश किया है।। १६।।

वं परिविमित्यस्थ क्रम पिर्देवलः । अग्निरेवता । जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥ उक्त मग्नि कैसा है सो अगले मंत्र में प्रकाश किया है ॥

र्ष पेरिषि पूर्व्यवेत्वा अग्ने देवपुणि भिर्गुद्यमानः । तन्तं पुतम-भुजोर्षं अराक्ष्मेव मेरवर्षप्रकृतयाता आग्नेः (प्रवं पायोऽपीतम् ॥१७॥ पदार्थः—दे (सते) सर्वत्र स्वापक रूकर आप ( देवपणितिः ) दिस्य गुणवाके वि-

द्वानों की स्तुतियों से (गुहचमान: ) अच्छी प्रकार अपने गुणों के वर्णन को प्राप्त होते हुए (यम्) उन गुर्जी के अनुकूल (जोषम्) प्रीति से सेवन के योग्य (परिक्रिम्) प्रभुता को (पर्खे धत्था:) निरन्तर धारण करते हैं (तम्) आप की उसको (इत्) ही (एव:) मैं (अनुभरामि) अपने हुदय में धारण करता हूं। तथा मैं (तकत्) आप से (मा) (अपवेतयाते ) कभी प्रतिकृत न होऊं और (अग्ने ) हे जगदीव्यर! आप की सृष्टि में जो मैंने ( प्रियम् ) प्रीति बढ़ाने और ( पाथ: ) शरीर की रक्षा क-रने काला अबा (अपीतम्) पाया है उस से भी कभी (मा) (अपचेतयातै) प्रति-कुछ न होऊं || १ || हे जगदीश्वर (ते ) आपकी सृष्टि में (एष: ) यह ( अग्ने ) मी-तिक अग्नि ( देवपणिभि: ) दिव्य गुण वाले पृथिव्यादि पदार्थी के व्यवहारी से (गु-हचमान: ) अच्छी प्रकार स्वीकार किया हुआ (यम् ) जिस (परिधिम् ) विद्यादिगुणी से धारण (जोषम् ) और प्रांति करने योग्य कर्म को (पर्ख्य धत्था: ) सब प्रकार से भारण करता है (तिमत्) उसी को मैं (अनुभरामि) उसके पीछे स्वीकार करता हूं और उस से कभी (मा) ( अपचेतयाते ) प्रतिकृत नहीं होता हूं तथा मैंने जो (अप्ने;) इस अग्नि के सम्बन्ध से (प्रियम् ) प्रीति देने और (पाथ:) शरीर की रक्षा करने वाळा अस (अपीतम्) प्रहण किया है उस को मैं (जोपम्) अत्यंत प्रीति के साध निख ( अनुभरामि ) कम से पाता हूं ॥ २ ॥ १७॥

भावार्थ: इस मंत्रमें श्लेषालक्कार है - तथा पहिले अन्वय में अग्निशब्द से जगदीश्वर का ग्रहण और दूसरे में भौतिक अग्नि का है। जो प्रतिवस्तु में व्यापक होने से
सब पदार्थी का धारण करने वाला और विद्वानों के स्तुति करने योग्य ईश्वर है उस
की सब मनुष्यों को प्रीति के साथ नित्य सेवा करनी चाहिये जो मनुष्य उस की आज्ञा
नित्य पालते हैं वे प्रिय सुझ को प्राप्त होते हैं। तथा जो यह ईश्वर ने प्रकाश दाह और
वेग आदि गुण वाला मूर्त्तमान पदार्थी को प्राप्त होने वाला अग्नि रचा है उस से भी
मनुष्यों को किया की कुशलता के द्वारा उत्तम २ व्यवहार सिद्ध करने चाहियें जिससे
कि उत्तम २ सुख सिद्ध होर्चे। जो पूर्व मन्त्र से घृष्टि आदि पदार्थी का साधक कहा है।
उस की इस मन्त्र से व्यापकत्व प्रकाश किया है।। १७॥

संस्रवेतास्य परमेष्ठी प्रजापतिऋषिः । विश्वे देवा देवताः । स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

बह बब्र कैसे और किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है || स्य स्वभागा स्थेषा वृहस्तः प्रस्तरेष्ठाः परिषेषांस देषाः । हुमां वार्षम् भि विद्वे गृणन्तं आसद्यास्मिन्बहिषं माद्यस्य छं स्वाहा बाद् ॥ १८॥

पदार्थ:—हें (बृहन्तः) वृद्धि को प्राप्त होने (प्रस्तरेष्ठाः) उत्तम न्याय विद्यारूपी आसन में स्थित होने वाले (परिधंयाः) सब प्रकार से घारणावती बुद्धियुक्त और (इ-माम्) इस प्रत्यक्ष (वाचम्) चार वेदों की वाणी का उपदेश करने वाले (देवाः) विद्वानों तुम (इपा) अपने ज्ञानसे (संस्नवभागाः) घृतादि पदार्थों के होम में छो-इने वाले (स्था) हों तथा (स्वाहा) अच्छे २ वचनों से (वाट्) प्राप्त होने और खुख बढ़ाने वाली किया को प्राप्त हो कर (अस्मिन्) प्रत्यक्ष (वर्हिष) ज्ञान और कर्म-काए में (मादयस्वम्) आनन्दित हो यैसे हो औरों को भी आनन्दित करो। इस प्र-कार उक्त ज्ञान को कर्मकाण्ड में उक्त वेदवाणों की प्रशंसा करते हुए तुम लोग अपने विचार से उत्तम ज्ञान को प्राप्त होने वाली किया को प्राप्त होकर (वृहन्तः) बढ़ने और (प्रस्तरेष्ठाः) उत्तम कामों में स्थित होने वाले (विश्वे) सब देवाः) उत्तम २ पदा-र्थ (परिधेयाः) धारण करने वा औरों को धारण कराओ और उन को सहायता से उक्त ज्ञान वा कर्मकाण्ड में सदा (मादयध्वम्) हर्षित होओ ॥ १८॥

भावार्थ:—ईश्वर अङ्गा देता है कि जो धार्मिक पुरुषार्थी वेदविद्या के प्रचार वा उत्तम व्यवहार में वर्तमान हैं उन्हों को बड़े २ सुख होते हैं जो पूर्व भंत्रमें ईश्वर और भौतिक अर्थ कहे हैं उनसे एसे २ उपकार छेना चाहिये सो इस भंत्र में कैहा है ॥१८॥ घृताचीस्थ इत्यस्य ऋषि: स एव। अग्नीवायु देवते। भुरिक् पंकिश्खन्द:। पंचम:स्वर:॥

अब उक्त यज्ञ से क्या होता है सो अगले मंत्रमें प्रकाशित किया है। घृताची स्थो घुरोी पातर सुन्ने स्थंः सुन्ने मांघत्तम्। यज्ञ नर्म अत् उपं च यज्ञस्यं ज्ञिवे सन्तिष्ठस्य स्तिष्ठहें संतिष्ठस्य ॥ १८॥

पदार्थ:—जो अग्नि और वायु ( घुग्याँ ) यज्ञ के मुख्य अंग को प्राप्त कराने वाले ( च ) और ( सुम्ने ) सुलक्ष्प ( स्थ ) हैं तथा ( घृताची ) जल को प्राप्त करानेवाली कियाओं को करानेहारे ( स्थ: ) और सब जगत् को ( पातम् ) पालते हैं वे मुझ से अच्छी प्रकार उत्तम २ किया कुशलता में युक्त हुए ( मा ) मुझे यज्ञ करने वालों को ( सुम्ने ) सुलमें ( धत्तम् ) स्थापन करते हैं जैसे यह ( यज्ञ ) जगदीश्वर ( च ) और ( नम: ) नम्न होना ( ते ) तेरे लिये ( शिवे ) कस्थाण में ( उपसंतिष्ठस्व ) समीपस्थित होते हैं वे बैसेही ( मे ) मेरे भी लिये स्थित होते हैं इस कारण जैसे मैं यज्ञ का अनु-

ष्ठान करके (सुद्धे ) सुक्षमें स्थित होता हूं वैसे तुम भी उस में (संतिष्ठस्व ) स्थित हो ॥ १९ ॥

भाषार्थ:—इस मंत्र में लुत्तोपमालंकार है ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो ! रस के परमाणु करने जगत् के पालन के निमित्त सुख करने किया कांड के हेतु और ऊपर को तथा टेढ़े वा सूचे जानेवाले अग्नि वायु के गुणों से कार्च्यों को सिद्ध करो इस से तुमलोग सुखों में अच्छो प्रकार स्थिर हो तथा मेरी आज्ञा पालो और मुझको हो बारर नमस्कार करो || १: ||

भन्ने ऽद्रब्धायो एत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निसरस्वत्यौ देवते । भुरिज्ञाझी त्रिषु प् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

डक अप्रि कैसा और क्यों प्रार्थना करने योग्य है सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥ अग्नैं ऽद्व्यायोऽशीतमपाहिमां दियोः पाहि प्रसित्ये पाहि हुरिं-ष्ट्ये पाहि दुंरग्रन्या सां<u>विषक्षः पितुं क्</u>रुण सुषदायो<u>नी</u> स्वाहा बाह्य-ग्नयें संवेशपंतयं स्वाहा सरंस्वस्ये यशो<u>भ</u>गन्ये स्वाहां ॥ २०॥

पदार्थ:—हे ( अद्देश्यायो ) निर्विष्न आयु देने वा हे ( अग्ने ) जगदी न्वर ! आप ( अशीतमम् ) चराचर संतारमें व्यापक यक्कतो ( दुरिष्ट्ये ) दुष्ट अर्थात् वेद विरुद्ध यक्कसे ( पाहि ) रक्षा की जिये ( मा ) मुझे ( दियो: ) अति दुःखसे ( पाहि ) वचाइये तथा ( प्रसित्यें ) भारी २ वश्वनों से (पाहि) अलग रिलये ( दुरबान्यें ) जो दुष्ट भोजन करना है उस विपत्ति से (पाहि) वचाइये और (नः) हमारे लिये (अविषम्) विष आदि दोष र हित (पितुम्) अकादि पदार्थ (ए.णु) उत्पन्न की जिये तथा (नः) हलोगोंको (सुषदा) सुख से स्थिरताको देने वाले घरमें (स्वाहा ) ( वाद् ) बेदोक्त वाक्योंसे सिद्ध होने वाली उत्पन्न कियाओं में स्थिर ( इ.णु ) की जिये जिससे हम लोग ( यशोमिनन्ये ) सत्यवचन आदि उत्तम कर्मों की सेवन करनेवाली ( सरस्वत्ये ) पदार्थों के प्रकाशित कराने में उत्तम झानयुक्त वेदवाणी के लिये ( स्वाहा ) धन्यवाद वा ( संवेशपतये ) अध्यो प्रकार जिन पृथिन्यादि लोकों में प्रवेश करते हैं उनके पति अर्थात् पालन करने हारे जो ( अग्नये ) आप है उनके लिये धन्यवाद और ( नमः ) नमस्कार करते हैं | १ | १ हे मगवन जगदी न्वर ! आपने जो यह ( अदब्बायो ) निर्विष्त आयुक्ता निमित्त ( अग्ने ) भौतिक अग्नि बनाया है वह भी (अशीतमम् ) सर्वत्र व्यापक यक्नको (दुरिष्ट्ये) हुष्ट यक्कसे (पाहि) रक्षा करता है तथा (मा) मुझं (दिषाः) अति दुः कोसे (पाहि) बचाता है

(प्रसिखे) यहें र दारिख् के बन्धनों से (पाहि) बचाता है तथा (तुरक्षन्ये) दुष्ट भोजन कराने-बाली कियाओं से (पाहि) बचाता है और (नः) हमारे (पितुम्) अस आदि पदार्थ (अविषम्) विष बादि दोष रहित(रुणु) कर देता है वह (सुषदा) सुख से स्थिति देने वाले घर अथवा दूसरे जन्मों में (स्वाहा) ( वाट् ) वेदोक वाक्यों से सिद्ध होनेवाली कियाओं का हेतु है हम लोग उस (संवेशपतये) पृथिच्यादि लोकों को पालनेवाले (अग्नये) भौतिक अग्नि को प्रहण करके (स्वाहा) होम तथा उसके साथ (यशोमिनिये) (सरस्वत्ये, उक्त गुणवाली वेदवाणी की प्राप्ति के लिये ( स्वाहा ) परमात्मा का धन्यवाद करते हैं ॥ २०॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को जो सर्वव्यापक सब प्रकार से रक्षा करने उत्तम जन्म देने उत्तम कर्म कराने और उत्तम विद्या वा उत्तम भोग देने वाला जगदीश्वर है उसी का सेवन सदा करना योग्य है। तथा जो यह अपनी सृष्टि में परमेश्वर ने भौतिक अग्नि प्रत्यक्ष सूर्व्यलोक और विज्ञलों रूप से प्रकाशित किया है वह भी अच्छी प्रकार विद्या से उपकार लेने में संयुक्त किया हुआ सब प्रकार से रक्षा और उत्तम मोग का हेतु होता है। जिस की कीर्ति के विभिन्न सत्यलक्षणयुक्त वेदवाणी से उत्तम जन्म अथवा सब पदार्थी से अच्छी र विद्या प्रकाशित होती है वे सब विद्वानों के स्वीकार करने योग्य तथा और्ते को भी स्वीकार कराने योग्य हैं। इस मन्त्र में (नम:) और (यहा) थे दोनों पद पूर्व मन्त्र से लिथे हैं।। २०।।

वेदोऽसीत्यस्य वामदेव ऋषिः। प्रजापतित्रंवता । भुरिखाझी बृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः !!

सो जगदीन्वर कैसा है इस विवय का उपदेश भगके मन्त्र में किया है।

बेट्टोर्डिस घेन तवं देव बेद देवेभवी बेदो भंवस्तेन महाँ वेदो
भूगाः। देवां गातुबिदो गातुं वित्या गातुनित मनंसस्पत हुमं देव

यज्ञारी स्वाहा वाले घाः ॥ २१॥

पदार्थ:—हे (देव) शुभगुणों के देने हारे जगनिश्वर (त्वम्) आप (वेद:) च-राचर जगन के जानने वाले (असि) हैं सब जगन को (वेद ) जानते हैं तथा (येन) जिस विहान वा वेद से (देयेभ्यः) विद्वानों के लिये (वेद:) पदार्थों के जानने वाले (असकः) होते हैं (तेन) उस विद्वान के प्रकाश से आप (महाम्) मेरे किये जो कि मैं विशेष ज्ञान की इच्छा कर रहा हूं (वेद:) विद्वान देने वाले (भूयाः) हजिये हे (गातुविदः) स्तुति के जानने वाले (देवाः) विद्वानो ! जिस वेद से मृजुष्य सब विद्याओं को जानते हैं उस से तुम लोग (गातुम्) विशेष द्वान को (वित्वा) प्राप्त होकर (गातुम्) प्रशंसा करने योग्य वेद को (इत) प्राप्त हो।

है (मनसस्पते ) विज्ञान से पालन करने हारे (देव) सर्वजगत् प्रकाशक परमेश्वर आप! (इमम्) प्रत्यक्ष बतुष्ठात करने योग्य (यक्सम्) कियाकाण्ड से सिद्ध होनेवाले यक्कक्षप संसार को (स्टाहा) किया के अनुकृत (कते ) पवन के बीच (धाः) स्थित क्योंकिथे हे विज्ञानी! उस विज्ञान से विशेष ज्ञान देने वाले परमेश्वर ही की नित्य उपासना पारों !! २१ !!

भावार्य:—हे विद्वाल् मनुष्यो ! तुम छोग जिस वेद जानने वाछे परमेम्बर ने वेद विद्या प्रकाशित की है उस की उपासना पारके उसी की वेद विद्या को जान कर और क्रियाकाण्ड का अनुष्ठान फरके सब का हित संपादन करना चाहिये क्योंकि वेदों के विज्ञान के विना तथा उस में जो २ कहे हुए काम हैं उन के किये विना मनुष्यों को कभी सुख नहीं हो सकता वेदविद्या से जो सब का साक्षी ईम्बर देव है उसको सब जगह व्यापक मान के नित्यधर्म में रहो ॥ २१ ॥

संबर्हिरित्यस्य वामदेव ऋषि: । इन्द्रो देवता । विराद्त्रिष्टुप्छन्द: । धैवतः स्वर: || यज्ञ में चढ़ा बुआ पदार्थं अन्तरिक्ष में ठहर कर किस के साथ रहता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।

संबाहिरंकाथ हविषां घृतेन समाहित्यैर्वसुंभिः सम्महिद्धेः। समिन्द्रों बिद्दवेनेनिरंक्तां दिव्यं नभी गच्छतु यसवाहां॥ २२॥

पदार्थः—हे मनुष्य! तुम (यत्) जब हवन करने योग्य द्रव्य को (हिषया) होम करने योग्य (घृतेन) बी आदि इसन्यियुक्त पदार्थ से संयुक्त करके हवन करोगे तब वह (आ-दिखेः) बारहमहीनों (वहिमः) अग्नि आदि आतें निवास के स्थान और (मरुद्धिः) प्रजा के जनों के साथ मिल के सुख को (समंकाम्) अच्छी प्रकार प्रकाश करेगा (वृद्धः) सूर्व्यं लोक जो यहां में छोड़ा हुआ (स्वाहा) उत्तम किया से सुगन्ध्यादि पदार्थयुक्त हिव (संग्र्डछतु) पहुंचाता है उस से (सम्) अच्छी प्रकार मिश्रित हुए (विश्वदेषेभिः) अपनी किरणों से (दिव्यम्) जो उस के प्रकाश में इकट्ठा होने वाला (नभः) जल को (समंकाम्) अच्छी प्रकार प्रकट करता है ॥ २२ ॥

भावार्य:—जो हिन अच्छी प्रकार शुद्ध किया हुआ बङ्क के निमित्त अग्नि में छोड़ा जाता है वह अन्तरिक्ष में वायु जल और सूर्य्य की किरणों को साथ मिल कर इधर उभर फैल कर आकाश में टहरने वाले सब पदार्थों को दिव्य करके अच्छों प्रकार प्रजा को सुकी करता है इस से मनुष्यों को उत्तम सामग्री और उत्तमर साधनों से उक्त तीन प्रकार के यह का नित्य अनुष्ठान करना चाहिये || २२ || कस्त्वेत्यस्य ऋषिः स पत्र । प्रजापितवंत्रता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥ अग्नि में किस लिये पदार्थं छोड़ा जाता है सो अग्नि मन्त्र में प्रकाश किया है ॥ करत्वा विमुंज्विति स त्वा विमुंज्विति करमें त्वा विमुंज्विति नरमें त्वा विमुंज्विति । पोषाय रक्षंसां आग्नोऽसि ॥ २३ ॥

पदार्थ:—(कः) कीन सुख चाहने बाळा यह का अनुष्ठाता पुष्ठ (त्वा) इस यह को (विमुंचित) छोड़ता है अर्थात् कोई नहीं और ओ कोई यह को छोड़ता है (त्वा) इस को (सः) यह का पाछन करने हारा परमेश्वर मी (विमुंचित) छोड़ देता है ओ यह का करने बाळा मनुष्य पदार्थ समृह को यहा में छोड़ता है (त्वा) इस को (कस्मे) किस प्रयोजन के छिबे अग्नि के बीच में (विमुंचित) छोड़ता है (तस्मे) जिस सब को सुख प्राप्त हो तथा (पोषाय) पृष्टि आदि गुणों के छिथे (त्वा) इस पदार्थ समृह को (विमुंचित) छोड़ता है। जो पदार्थ समृह को (विमुंचित) छोड़ता है। जो पदार्थ सब के इपकार के छिथे यह के बीच में नहीं युक्त किया जाता वह (रक्षसाम्) वृष्ट प्राणियों का (भागः) अंश (भित्र) होता है। २३।।

भाषार्थ:—जो मनुष्य ईश्वर के करने कराने वा आहा देने के योग्य व्यवहार की छोड़ता है वह सब सुझों से हीन हो कर और वृष्ट मनुष्यों से पौड़ा पाता हुआ सब प्रकार दु: शौ रहता है। किसी ने किसी से पूछा कि जो यहा को छोड़ता है उस के छिये क्या होता है वह उत्तर देता है कि ईश्वर भी उस को छोड़ देता है। फिर वह पूछता है कि ईश्वर उस को किस छिये छोड़ देता है? वह उत्तर देने वाळा कहता है कि दु: स भोगने के छिये। जो ईश्वर को आहा को पाळता है वह सुझों से युक्त होने योग्य है और जो कि छोड़ता है वह राक्षस हो जाता है। २३।।

संवर्ष्ण से स्व कि स्व । त्वष्टा देवता । विराध् त्रिष्टुप् छन्दः । धैक्तः स्वरः ॥ वक्त यञ्च से इम कोग किस किस पदार्थं को प्राप्त होते हैं सी अगळे मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

संबर्धमा पर्यसा सं तृत्भिरगंनमाहि मनेमा सक्षशिवेनं । स्व-ष्टांसुद्द्रो विदेषातु रायोऽनुमार्छ तृत्त्वो यहिलिछ्य ॥ २४॥

पदार्थः— इम छोग पुरुषाची हो कर ( कर्ज्यंसा ) जिस में सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं इस बेद का पदना वा ( पपसा ) जिससे पदार्थों को जानते हैं उन झान (मनसा ) जिससे सब व्यवहार विचारे जाते हैं उस अन्तः करण (शिवेन) सब सुख और ( तन्मिः ) जिनमें विपुछ सुख प्राप्त होते हैं । उन शरीरों के साथ ( राय: ) अह विद्या और वकवर्तिराज्य वादि भगें को (समगन्महि) अच्छी प्रकार प्राप्त हों। सो (सुद्य:) अच्छी प्रकार सुझ देने और (त्यष्टा) दु:खों तथा प्रलय के समय सब प-दार्थी को स्ट्रम करने वाला ईम्बर कृपा करके हमारे लिये (राय:) उक्त विद्या आदि पदार्थी को (संविद्धातु) अच्छी प्रकार विभाग करे और हमारे (तम्य:) शरीर को (यत्) जितनो (विलिष्टम्) व्यवहारों को सिद्धि करने को परिपूर्णता है उसे (स-मनुमार्ष्ट) सच्छी प्रकार निरन्तर शुद्ध करें ॥ २४॥

भाषार्थ:—मनुष्यों को सब कामना परिपूर्ण करने वाले परमेश्वर की आहा पाछन करके और अच्छी प्रकार पुरुषार्थ से विद्या का अध्ययन, शरीर का बल, मन की शुद्धि, कश्याण की सिद्धि तथा उत्तम से उत्तम छश्मी की प्राप्त सदेन करनी चाहिये इस सं-पूर्ण यह की धारणा वा उत्तति से सब शुकों को प्राप्त होके औरों को हुल प्राप्त करना खाहिये। तथा सब व्यवहार और पदार्थी को नित्य शुद्ध करना चाहिये॥ २४॥ विद्यीत्स्य अधि स पव। सबस्य विद्युप्तिता। दिवीत्सारम्य ग्रिष्म इत्यन्तस्य निष्कृत्वाची तथाऽन्तरस्मित्यारम्य ग्रिष्म इत्यन्तस्य निष्कृत्वाची तथाऽन्तरस्मित्यारम्य ग्रिष्म एक्समः स्वरः।

पृथिक्यामित्यारभद्यान्तपर्व्यन्तस्य जगतीछन्दो निपादः स्वरक्ष ||
वह यज्ञ तीमाँ लोक में विस्तृत हो कर कीन २ छुल का साधन होता है सो
भगले मंत्र में प्रकाशित किया है ||

दिष बिष्णुब्धीकश्तम जागतेन छन्दंमा तनो निर्भेको छोऽ-स्मान्देष्टि यं चं व्यं ब्रिब्मोऽन्तिरिक्षे बिष्णुब्र्यकश्तम क्षेष्ट्रंभेन छ-न्दंसा तनो निर्भेको छोऽस्मान्देष्टि यं चं व्यं ब्रिब्मः । पृंधिब्यां बिष्णुब्र्धिकश्तम गाय्वेण छन्दंसा तनो निर्भेक्तो छोस्मान्देष्टि यं चं व्यं ब्रिब्मोऽस्माद्द्रांद्रस्य प्रतिष्ठापां क्षरांन्स स्वः संख्योतिषा-भूम ॥ २५ ॥

पदार्थ:—(जागतेन) सब लोकों के लिये सुख देने व ले ( छन्दसा ) आख्दाद-कारक जगतो छन्द से हमारा अनुष्ठान किया हुआ यह ( विष्णु: ) अन्तरिक्ष में ठइ-रने वाले पदार्थों में व्यापक यद्म ( दिवि ) सूर्व्य के प्रकाश में ( व्यक्तंस्त ) जाता है यह फिट (तत: ) वहां से ( निर्भक्त: ) विभाग अर्थात् परमाणुरूप हो के सब जगत् को दक्ष करता है (य:) जो विरोधी शत्रु ( अस्मान् ) यद्म के अनुष्ठान करने वाले हम लोगों से ( द्रेष्टि ) विरोध करता है ( क ) तथा ( यम् ) दण्ड दे कर शिक्षा करने

योग्य जिस दुष्ट प्राणी से ( वयम् ) हम लोग यज्ञ के अनुष्टान करने वाले ( द्विप्य: ) क्योति करते हैं उस को उसी यज्ञ से दूर करते हैं। इस छोगों ने जो यह (विष्णु:) यज्ञ ( भे प्ट्रभेन ) तीन प्रकार के हुख करने और ( छन्दसा ) स्वतंत्रता देने वाले जि-दुप् छन्द से अग्नि में अच्छी प्रकार संयुक्त किया है वह (अन्तरिक्षे) आकाश में ( व्यक्तंस्त ) पहुंचता है वह फिर ( ततः ) उस अन्तरिश्च से ( निर्मकः ) अलग हो के बायु और वर्षी जल की शुद्धि से सब संवार को हुख पहु चाता है (य:) जो क्ष: स देनेवाला प्राणी ( अस्मान् ) सब के उपकार करनेवाले इस लोगों को ( द्वेष्टि ) दुः स देता है ( च ) तथा ( यम् ) सब कं अहित करनेवाले दुष्ट को ( वयम् ) इम लोग सब के हित करनेवाले (द्विष्म: ) पीड़ा देते हैं उसे उक्त यज्ञ से निवारण करते हैं। हम लोगों से जो ( विष्णु: ) यज्ञ ( गायत्र ण ) संसार की रक्षा सिद्ध करने और (छ-म्दसा ) अति भानम्द करनेवाले गायत्री छम्द से निरंतर किया जाता है (पृथिव्या-म् ) विस्तारयुक्त इस पृथिवो में (व्यकंस्त) विविध सुखों की प्राप्ति के हेतु से विस्तृ-त होता है (ततः) उस पृथिवी से (निर्मकः) अलग होकर अन्तरिक्ष में जाकर पृ-थिबी के पदार्थीं की पृष्टि करता है (य:) जो पुरुष हमारे राज्य का विरोधी (अ-स्मान् ) हम लोग जो कि न्याय करनेवाले हैं उन से (द्वेष्टि) घैर करता है (च) तथा (यम् ) जिस शत्रुजन से (वयम् ) इम लोग न्यायाधीश (द्विष्म: ) घैर करते हैं उसका इस उक्त यहां से मित्य निषंध करते हैं हम लोग (अस्मात् ) यहां से शोधा हुआ प्रत्यक्ष (अन्नात् ) जो भोजन करने योग्य अन्न है उस से (स्व: ) सुक्षरूपी स्व-र्गं को ( अगन्म ) प्राप्त हों तथा ( अस्ये ) इस प्रत्यक्ष प्राप्त होने वार्ली ( प्रतिष्ठाये ) प्र-तिष्ठा अर्थात् जिस में सत्कार को प्राप्त होते हैं उस के लिये (ज्योतिषा ) विद्या और धर्म के प्रकाश से संयुक्त ( समभूम ) अच्छो प्रकार हीं || २५ ||

भावार्थ:—जो २ मनुष्य लोग सुगन्धि अदि पदार्थ अभि में छोड़ते हैं वे अलग २ होकर सूर्य्य के प्रकाश तथा भूमि में फेलकर सब हुआं को सिद्ध करते हैं तथा जो वायु, अभि, जल, और पृथिवां आदि पदार्थ शिल्पविद्या सिद्धकला यंत्रों से विमान आदि यानों में युक्त किये जाते हैं वे सब सूर्य्य प्रकाश वा अन्तरिक्ष में सुखसे विहार करते हैं। जो पदार्थ सूर्य्य की किरण वा अग्नि के द्वारा परमाणुक्तप हो के अन्तरिक्ष में जाकर फिर पृथिवों पर आते हैं फिर भूमि से अन्तरिक्ष वा वहां से भूमि को आते जाते हैं वे भी संसार को सुख देते हैं मनुष्यों को उच्चित है कि इसी प्रकार वार २ पुरुषार्थ से दोष दुःस और शत्रु ऑं को अच्छी प्रकार निवारण करके सुख भोगना सुग-वान खाह्ये तथा यह से शुद्ध वायु जल ओषि और अन्न की शुद्ध के द्वारा आरो-

ग्य बुद्धि और शरीर के बल की वृद्धि से अत्यन्त सुख को प्राप्त हो के विद्या के प्रकाश से नित्य प्रतिष्ठा को प्राप्त होना चाहिये || २५ ||

स्वयंभूरिस्यस्य ऋषिः स पव । ईश्वरो देवताः । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥ अब अगले मंत्र में सूर्य्य शब्द से ईश्वर और विद्वान् मनुष्य का उपदेश किया है। स्<u>वयं भूरी में शेष्ठों राईमर्थ रुचीं दा स्रोसि</u> वसीं में देहि । सूर्ये स्वानमन्वासंतें ॥ २६ ॥

पदार्थ:—हे जगदीश्वर ! आप विद्वन्वा ( श्रेष्ठ: ) अत्यन्त प्रशंसनीय और (रिष्मः) प्रकाशमान वा ( स्वयंभू: ) अपने आप होनेवाले ( असि ) हैं तथा ( वच्चोंदा: ) विद्या देनेवाले ( असि ) हैं इसी से आप ( मे ) मुझे ( वच्चें: ) विद्वान और प्रकाश ( देहि ) दीजिये में ( सूर्व्यंस्य ) जो आप सरासर जगत् के आत्मा हैं उन के ( आवु-तम् ) निरंतर सज्जन जन जिस में वर्तमान होते हैं उस उपवेश को (अन्वावर्से) स्वी-कार कर के वर्त्तता हूं ॥ २६॥

भावार्थ:—परमेश्वर और जीव का कोई माता वा पिता नहीं है किंतु यहां सब का माता पिता है तथा जिस से बढ़ के कोई विद्वान प्रकाश की विद्या देनेवाला नहीं है। जैसे सब मनुष्यों को इस परमेश्वर ही की आज्ञा में वर्त्तमान होना चाहिने बेसे ही जो विद्यान भी प्रकाश वाले पदार्थों में अवधिकप और व्यवहार विद्या का हेतु है जिस के उपदेशकप प्रकाश को प्राप्त होकर प्रकाशित होते हैं वह क्यों न सेवना चाहिंगे।। २६।।

भग्ने गृहपत इसस्य ऋणि: स एव । सर्जस्याम्निर्देवता । पूर्वार्डे निचृत्यंकिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । उत्तरार्डे गायत्रीछन्दः । पड्जः स्वरः ॥

गृहस्थ लोगों को इस के अनुष्ठान से क्या २ सिख करना चाहिये सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥

भागे गृहपते सुगृहप्तिस्त्वयांऽग्रेहं गृहपंतिना भ्यास्थ सु-गृहप्तिस्त्वं मर्याऽग्ने गृहपंतिना भ्याः । अस्पूरि णौ गाईपत्याः नि सन्तु शात्थ हिमाः सूर्यस्यावृत्तमन्वार्थते ॥ २७॥।

पदार्थ:—हे ( गृहपते ) घर के पालन करने हारे ( अग्ने ) परमेश्वर और विद्धान् (त्यम् ) आप ( ुगृहपति: ) ब्रह्मांड शंरीर और निवासार्थं घरों के उत्तमता से पालन करने वाले ( असि ) हैं उस ( गृहपतिना ) उक्त गुणवाले ( त्यया ) आप के साथ में ( सुगृहपति: ) अपने घर का उत्तमता से पालन करने हारा ( भूयासम् ) हो अं हे पर-

मंश्वर विद्वान् वा ( मया ) जो में श्रेष्ठ कर्म का अनुष्टान करनेवाला ( गृहपतिना ) धर्मातमा और पृहपार्थी मनुष्य हूं उस सुद्ध से आप उपासना को प्राप्त हुए मेरे घर के पालन करनेहारे ( भूया: ) हुजिये इसी प्रकार ( नौ ) जो हम स्क्री पृहप घर के पति हैं सो हमारे ( गाईपत्यानि ) अर्थान् जो गृहपति के संयोग से घर के काम सिद्ध होते हैं वे ( अस्थूरि ) जैसे निरालस्थता हो जैसे सिद्ध ( सन्तु ) हो इस प्रकार अपने वर्तमान में वर्तते हुए हम स्क्री वा पृहप ( सूर्य्यस्थ ) आप और विद्वान् के ( आवृतम् ) वर्तमान अर्थात् जिस में अच्छी प्रकार राश्व वा दिन होते हैं उस में ( शतंहमा: ) सौ वर्ष वा सौ से अधिक भी वर्तों ॥ २७ ॥

भावार्य:—इस भंत्र में ऋ पालंकार है हम दोनों खीपुरूप पुरुषार्थी होकर को इस सब पदार्थी की स्थित के योग्य संसारह्णी घरका निरंतर रक्षा करने वाला जगदी- श्वर और विद्वान है उसका भाश्रय करके भौतिक अग्नि अ.दि पदार्थी से स्थिर सुझ करनेवाले सब काम लिख करते हुए सी वर्ष जीवें तथा जितेन्द्रियतासे सी दर्ष से अ- धिक भी सुखपूर्वक जीवन भोगें ॥ २७ ॥

भगने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः स पव । अग्निर्वेचता । भुरिगुण्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । अव जो सत्याचरण से सुस्न होता है सी अग्ने मंत्र में प्रकाशित किया है । अग्ने <u>व्र</u>तपते व्रतमंचारिष् तद्दाकं तन्भेऽराधि । <u>इद्म</u>हं य एवा-स्मि सोऽस्मि ॥ ८२ ॥

पदार्थ:—है (ब्रापते) न्याययुक्त नियत कर्म के पालन करने हारे (अग्ने) सत्य-स्वरूप परमेश्वर अपने जो हपाकरके मेरे लिये (अतम्) सत्यलक्षणसे प्रसिद्ध निय-मींसे युक्त सत्याचरण अत को (अराधि) अच्छो प्रकार सिद्ध किया है (तत्) उस अ-पने आचरण करने योग्य सत्य नियम को (अशकम्) जिस प्रकार में करने को समर्थ होऊं (अचारिषम्) अर्थात् उसका आचरण अच्छो प्रकार कर सक् वैसामुझको की-जिये जो मैंने उत्तम वा अधम कर्म किया है उसी को भोगता हूं अब भी जो मैं जैसा कर्म करनेवाला (अस्मि) हूं वैसे कर्म के फल भोगनेवाला (अस्मि) होता हूं ॥ २८॥

भावार्य:—मनुष्य को यहाँ निश्चय करना चाहिये कि मैं अब जैसा कर्म करता हूं वैसाही परमेश्वर को व्यवस्था से फल मोगता हूं और मोगूंगा सब प्राणी अपने कर्मसे विकद्ध फलको कभी नहीं प्राप्त होते इससे सुख मोगने के लिये धर्मयुक कर्म हो करना चाहिये कि जिससे कभी दु:ख नहीं हो ॥ २८ ॥ २ ई। बोर्री मास हारि प्राप्त होते हिंदी हो ।

अन्तये इत्यस्य ऋषि: स पव । अग्निर्वे बता । स्वराष्ट्राष्ट्री अतुष्टु प् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।। अव संसारी अग्नि और चन्द्रमा कैसे गुणवाले हैं सो अगले मंत्र में प्रकाश किया है । अग्रनचे कन्यवाहंनाय स्वाहां सोमांय पितृमते स्वाहां। अपहं-ता अस्रा रक्षांशिस वेदिवदंः॥ २९॥

पदार्थ:—मनुष्यों को उचित है कि ( कव्यवाहनाय ) विद्वानों को हित देने कमों की प्राप्त कराने तथा ( अग्नथे ) सब पदार्थों को अपने आप एक स्थानसे दूसरे स्थान को पहुंचाने वाले भौतिक अग्निका प्रहण करके सुक्क लिये ( स्वाहा ) बेदवाणी से ( पितृमते ) जिस में वसंत आदि कतु पालन के हेतु होने से पितर वे संयुक्त होते हैं ( सोमाय ) जिससे ऐश्वयों को प्राप्त होते हैं उस सोमलताको लेके ( स्वाहा ) अपने पदार्थों को धारण करने वाले धर्म से युक्त विधान करके जो ( धेदिषद: ) इस पृश्यि में रमण करने वाले ( रक्षांस ) औरों को दु:खदायी स्वार्थं जन तथा (असुरा: ) दुष्ट स्वभाववाले मूर्ल है उनको ( अपहता: ) विनष्ट करदेना चहिये ॥ २९ ॥

भावार्थ:—विद्वानों ने युक्ति के साथ शिल्पविद्या में संयुक्त किया हुआ यह अग्नि उन-के लिये उत्तम २ कार्यों की प्राप्ति करनेवाला होता है मनुष्यों को यह यत्न नित्य क-रना चाहिये कि जिससे संसारके उपकार से सब सुख और पृथिवों के वुष्ठजन वा दोषों की निवृत्ति होजाय ॥ २९॥

येकपाणीत्यस्य ऋषिः स पव । अग्निवंवता । भुरिक्पंकिन्छन्दः। पंचमः स्वरः । उक्त असुर के से उक्षणांवाले होते हैं सो अगले मंत्रमें प्रकाश किया है । ये स्वपाणि प्रतिमुद्भवमाना अस्रेराः सन्तेः स्युध्या चर्रन्ति । पुरापुरो निपुरो ये भर्रन्त्याग्निष्टां ल्लोकात्प्रणुदात्यसमात् ॥ ३०॥

पदार्थ:—(ये) जो दृष्ट मनुष्य (कपाणि) झान के अनुकूल अपने अन्त:करणों में विचारे हुए भावों को (प्रतिमंचमानाः) दूसरे के सामने छिपाकर विपरीत भावों के प्रकाश करनेहारे (असुराः) धर्मको ढांपते (सन्तः) हैं (स्वध्या) पृथिषी में जहां तहां (चरन्ति) जाते आते हैं तथा जो (परापुरः) संसार से उल्लेट अपने सुखकारी कामों को नित्य सिद्ध करने के लिये यक्त करने (निपुरः) और दुष्ट स्वभावों को परिपूर्ण करने वाले (सन्तः) हैं अर्थात् जो अन्याय से औरों के पदार्थों को धारण करते हैं (तान्) उन दुष्टों को अग्न जगदी न्वर (अस्मात्) इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लोक से (प्रणुदाति) दूर करे ॥ ३०॥

भावार्य: — जो दृष्ट मनुष्य अपने मन वजन और शरीर से झूटे आचरण करते हुए अन्याय से अन्य प्राणियों को पौड़ा देकर अपने सुख के लिये औरों के पदार्थों को प्रह-ण कर लेते हैं प्रेंश्वर उनको दु:खयुक्त करता और नीख योनियों में जन्म देता है कि बे अपने पापों के फल को भोगको फिर भी मलुष्य देह को थोग्य होते हैं इस से सब म-तुष्यों को योग्य है कि ऐसे दुष्ट मलुष्य वा पापों से बलकर सर्वेष धर्म का ही सेवन किया करें ॥ ३०॥

अत्र पितरइत्यस्पर्विः स पव । पितरो देवताः । वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । मजुष्य छोगों को धर्मात्मा ज्ञानी विद्वाद पुरुषों का कैसा स्वरकार करना योग्य है सो अगले मंत्र में कहा है ॥

अर्थ पितरो माद्यध्वं यथा आगमार्वृष्यय्वस् । असीमद्रन्त पितरी यथा आगमार्वृषायिषत ॥ ३१ ॥

पदार्थ:— हे (पितर:) उत्तम विद्या वा उत्तम शिक्षाओं और विद्यादान से पालन करनेवाले विद्वान लोगो ! (अत्र ) हमारे सत्कारयुक्त व्यवाहार अथवा स्थान में ( यथामागम् ) यथायोग्य पदार्थों के विभाग को (अलुपायध्वम् ) अच्छी प्रकार जैसे कि आनन्द देनेवाले बैल अपनी घास को चरते हैं देसे पाओ और (मादयध्वम् ) आनन्दित भी हो तथा आप हम लोगों के जिस प्रकार (यथाभागम्) यथायोग्य अपनी २ बुद्धि के अनुकूल गुण विभाग को प्राप्त हों बैसे (आशुपायिपत ) विद्या और धर्म की शिक्षा करने वाले हो और (अमीमदन्त ) सब को आनन्द दो || ३१ ||

भावार्थ:—ईश्वर आङ्का देता है कि मनुष्य लोग माता और पिता आदि धार्मिक सज्जन विद्वानों को समीप आधे हुए देखजर उनकी सेवा करें प्रार्थना पूर्वक वावय कहें कि हे पितरो! आप लोगों का आना हतारे उत्तम भाग्य से होता है सो आओ और जो अपने व्यवहार में यथायोग्य और भोग आसन आदि पदार्थों को हम देते हैं उन को स्वीकार करके सुख जो प्राप्त हो तथा जो २ आप के प्रिय पदार्थ हमारे लाने योग्य हों उस २ की आज्ञा दीजिये क्योंकि सत्कार को प्राप्त होकर आप प्रश्लोत्तर विधान से हम लोगों को स्थूल और सूक्ष्म विद्या वा धर्म के उपदेश से यथायत् बुद्धियुक्त की जिये आप से बुद्धि को प्राप्त हुए हम लोग अच्छे २ कामों को करके सथा ओरों से अच्छे काम कराके सब प्राणियों का खुद्ध और विद्या को उन्नित नित्य करें ॥ ३१ ॥

नमो व इत्यस्यिः स पव । पित्ररो देवताः । प्रत्यव पर्यन्तस्य ब्राह्मीबृहती । अग्रे निसृद्बृहती च छन्दः । पश्चमः स्वरः ॥ अब पितृयज्ञ किस प्रकार से और फिस प्रयोजन के लिये किया जाता है

इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है || नमों व पितरो रसांच नमों वः पितरः शोषांच नमों वः पितरो खीवार्ष नेमों वः पितरः स्व्याये नमीं वः पितरा छोराय नमीं वः पितरो मुन्यते नमीं वः पितरः पितरो नमीं वो गृहान्नः पितरो दत्त मुनो वेः पितरा देख्ये तन्नेः पितरो वासः॥ ३२॥

पदार्थ:—ह ( पितर: ) विद्या के शानन्द को देने वाले विद्यान लोगो!( रसाय ) विज्ञान कपो आनन्द की प्राप्ति के लिये ( व: ) तुम की इमरा ( नम: ) नमस्कार हो हे (पितर: ) पु:स का विनाश और रक्षा करने वाले विद्वानी ! (शोपाय) दु:स और शत्रुओं की निवृत्ति के लिये ( व: ) तुम को हमारा ( नमः ) नमस्कार हो । हे (पि-तरः ) धर्मयुक्त जीविका के विज्ञान कराने वाले विद्वानी ! ( जीवाय ) जिस से प्राण का स्थिर धारण होता है उस जीविका के लिये ( घः ) तम को हमारा (नमः ) शील धारण विदित हो। हे (पितर: ) विद्या अन आदि भोगी की शिक्षा करने हारे वि-द्वानी ! ( स्वधाये ) अन्न पृथियी राज्य और न्याय के प्रकाश के लिपे ( द: ) तुम को हमारा ( नम: ) नश्रीसाव विदित हो । हे ( पितर: ) पाप और आपत्काल के निवा-रक विद्वान लोगो ! (घोराय) दु:ख विनाशक दु:ख समृह की निवृत्ति के लिये (वः) तुम को हमारा ( तम: ) कोध का छोड़ना विदिश हो । हे ( पितर: ) श्रेष्ठों के पा-छन करने हारे विद्वानो ! (सन्यवे) दुष्टाचरण करने वाले वृष्ट जीवों में क्रोध करने के लिथे ( वः ) तुम को हमारा ( नमः ) सत्कार विदित हो ! हे ( पितरः ) ज्ञानी वि-हानो ! (वः ) तुम को विद्या के लिये ( तम: ) हमारी विज्ञान प्रहण करने की इच्छा विदित हो। हं (पित्रद: ) प्रीति के साथ रखा करने वाले विद्वानी ! (व: ) तुम्हारे सत्कार होने के लिये हमारा (नम्:) सत्कार करना तुम को विदित हो। आप लोग (न:) हमारे ( गृहात् ) घरों में नित्य आओ और आफो रहो । हे (पितर:) विद्या देने वाले विद्वानो ! ( न: ) हमारे लिये शिक्षा और विद्या निख ( दत्त ) देते रही । हे पिता मता आदि विद्वान् पृथ्वी ! हम लोग (व:) तुम्हारे लिये जो २ ( सत: ) विद्य-मान पदार्थ हैं थे नित्य ( देव्स ) हमें देवें । हे (पितर:) संवा अरने योग्य पितृ लोगो ! हमारे दिये ( वासः ) इत वस्त्रादिको प्रहण कीजिथे | ) ३२ ।।

आवार्थ:— इस मंत्र में अने अवार (नमः) यह एवं अनेक शुभगुण और सत्कार प्रकाश करने के लिये घरा है जैसे वसन्त प्रीषा वर्षा शरद हेमन्त और शिशिर ये छः अस्तु। रस शोप जीव अस कठिनता और कोध के उत्पन्न करने वाले होते हैं वैसे ही पितर भी अनेक विद्याओं के उपदेश से मतुष्यों को निरन्तर सुख देते हैं। इस से मतुष्यों को चाहिये कि उक्त पितरों को उत्तर २ एदार्थी से संनुष्ट करके उन से विद्या के उपदेश का निरन्तर प्रहण करें।। ३२।।

आधत्त इत्यस्य ऋषिः स पत्र । पितरो देवताः । गायत्री छन्दः । षड् तः स्वरः ॥
उक्त पितरों को क्या २ करना चाहिये सो अगले मन्त्र में उपदेशः किया है ॥
आर्थस पितरो गर्भे कुमारं पुष्करस्राजम् । प्रचेह पुक्षोऽसंत् ॥३३॥
पदार्थः—हे (पितरः) विद्यादान से रक्षा करने वालो विद्वान् पुढ्षो । आप (यथा)
जैसे यह ब्रह्मचारी (इह) इस संसार वा हमारे कुल में अपने शरीर और आत्मा के
बल को प्राप्त होके विद्या और पुद्धार्थयुक्त मनुष्य (असत्) हो वैसे (गर्भम्) गर्भ
के समान ( पुष्करस्राजम् ) विद्या प्रदण के लिये फूलों की माला घारण किये हुए
(कुमारम्) ब्रह्मचारी को (आधत्त) अच्छी प्रकार स्वीकार की जिये ॥ ३३॥

भावार्थ:—इस मंत्र में छुतोपमालक्कार है—ईश्वर आक्वा देता है कि विद्वान् पृष्ठष और स्त्रियों को चाहिये कि विद्वार्थी कुमार वा कुमारी को विद्या देने के लिये गर्भ के समान घारण करें। जैसे कम २ से गर्भ के बीच देह बदता है बैसे अध्यापक लोगों को चाहिये कि अच्छी २ शिक्षा से ब्रह्मचारी कुमार वा कुमारी को श्रेष्ठ विद्या में वृद्धियुक्त करें तथा पालन करने योग्य हैं वे विद्या के योग से धर्मात्मा और पुरुषा-र्थ युक्त होकर सना खुकी हों यह अदुष्ठान सन्देव करना चाहिये || ३३ ||

कर्जमित्यस्यिष्टिः स एव । आपी देवता । सुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋष्यः स्वरः ॥ उक्त पितर कौन २ पदाधी से करने योग्य हैं सी अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥ अजर्जी वहंन्तीर्मृतं घृतं पर्यः क्षीलातं परिस्तृतंम् । स्वषा स्थं नुपंयंत मे पितृन् ॥ ३४ ॥

पदार्थ:—है पुतादिको! तुम (मे) मेरे (पितृत् ) पूर्वोक गुण कले पितरों को (कजम् ) अनेक प्रकार के उत्तम २ रस (वहन्तीः ) सुल प्राप्त करने वाले स्वादिष्ठजल (अमृतम् ) सब रोगों को दूर करने वाले ओषधि मिछादि पदार्थ (पपः ) दूध (पृतम्) वी (कीलालम् ) उत्तम२ रीति से पकाया हुआ अन्न तथा (परिस्तुतम् ) रस से
च्वते हुए एके फलों को दे के (तर्थयत) तृप्त करो इस प्रकार तुम उन के सेवन से
विद्या को प्राप्त होकर (स्वधाः) पर धन का त्यान कर के अपने धन के सेवन करमे
वाले (स्थ ) होओ ॥ ३४॥

भावार्थ:—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मतुष्यों के पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिये कि तुम को हमारे पितर अर्थात् पिता माता आदि वा वि-षा के देने वाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं जैसे कि उन्हों ने बल्यावस्था वा चि-षा दान के समय हम और तुम पाले हैं बैसे हम लोगों को भी वे सब काल में सतकार करने योग्य हैं जिस से हम लोगों के बीच में विद्या का नाश और इतस्मता आदि दोष कभी न प्राप्त हों || ३४ ||

इंश्वर ने इस दूसरे अध्याय में जो २ वेदि आदि यह के साधनों का बनाना, यहा का फल गमन वा साधन, सामग्री का धारण, अम्न के दूतपन का प्रकाश, आत्मा
और इन्द्रियादि पदार्थों की शुद्धि, सुखों का भोग, वेद का प्रकाश, पृष्ठपार्थ का संघान, युद्ध में शत्रुओं का जीतना, शत्रुओं का निवारण, द्वेष का त्याग, अन्न आदि
पदार्थों को सवारियों में युक्त करना, पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार छेना, इंश्वर
में ग्रीति, अच्छे २ गुणों का विस्तार और सब की उन्नति करना, वेद शब्द के अर्थ
का वर्णन, वायु और अग्नि आदि का परस्पर मिलाना, पृष्ठपार्थ का ग्रहण, उत्तम २
पदार्थों का स्वीकार करना, यज्ञ में होम किये हुचे पदार्थों का तीनों लोक में जाना
आना) स्वयंभु शब्द का वर्णन, गृहस्थों का कर्म, सत्य का आचरण, अग्नि में होम,
दुष्टों का निवारण, और जिन जिन का सेयन करना कहा है उन २ का सेयन मनुष्यों
को ग्रीति के साथ करना अवश्य है इस प्रकार से प्रथमाध्याय के अर्थ के साथ द्वितीयाध्याय के अर्थ की संगति जाननी चाहिये।

यह द्सरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥



### ओ३म्

## त्र्राय तृतीयोध्यायः प्रार्भ्यते॥

*ञ्यग्नाधात वेमंत्र* 

विद्यांनि देव सवितर्दुरितानि परांसुव । यहितं तहा आसुंव ॥ १ ॥ तत्र समिषेत्यस्य प्रथममन्त्रस्यांगिरसं ऋषिः । अग्निवेंवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब तीसरे अध्याय के पहिले मंत्र में भौतिक अग्नि का किस २ काम में उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

सिम्धाग्निन्दुंबस्पत घृतैबाँधयतातिधिम् । आस्मिन्ह्च्या र्जु-होतन ॥ १ ॥

पदार्थ:—हे विद्वान लोगो! तुम (सिमधा) जिन इन्धनों से अच्छे प्रकार प्रकाश हो सकता है उन लकड़ी घी आदिकों से (अग्निम्) भौतिक अग्नि को (बोधयत) उदी-पन अर्थात् प्रकाशित करो तथा जैसे (अतिथिम्) अतिथि को अर्थात् जिस के आने जाने वा निवासका कोई दिन नियत नहीं है उस संन्यासी का सेवन करते हैं बैसे अग्नि का (वृवस्यत) सेवन करो और (अस्मिन्) इस अग्नि में (हव्या) मुगंध कस्त्री केसर आदि, मिष्ट गुड़ शक्कर आदि पुष्ट घी दृध आदि रोग को नाश करने वाले सोमलता अर्थात् गुड़्ची आदि ओपधी इन चार प्रकार के शाकल्य को (आजुहोतन) अच्छे प्रकार हवन करो ॥ १॥

भाषार्थ:—इस मंत्र में वासकलुप्तोमालंकार है जैसे गृहस्थ मनुष्य आसन अन्न जल वस्त्र और प्रियवसन आदि से उत्तम गुण वाले संन्यासी आदि का सेवन करते हैं वैसे ही विद्वान लोगों को यक्त, वेदी, कलायंत्र और यानों में स्थापन कर यथायोग्य इन्धन भी, जलादि से अग्नि को प्रश्वलित करके वायु वर्षाजल की शुद्धि वा यानों की रखना नित्य करनी चाहिये ॥ १॥

सुसिमद्वायेत्यस्य सुश्रुत ऋषि:। अग्निदेंबता। गायत्रीख्नदः। षड्जः स्वरः॥
फिर वह भौतिक अग्नि कैसा है किस प्रकार उपयोग करना चाहिये
इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है॥
सुर्समिद्धाय द्वोचिषे घृतन्ति। अञ्चले सुरुनये जात्रेब्से॥२॥

• पदार्थ:—हं मनुष्य लोगो ! तुम ( खुसिमदाय ) अच्छे प्रकार प्रकाशक्तप (शोचिषे) शुद्ध किये हुप दोषों को निवारण करने वा ( जातवेदसे ) सब पदार्थों में विद्यमान ( अम्बेथे ) कप, दाह, प्रकाश, छेदन, आदि गुण स्वभाव वाले अग्नि में ( तीवम् ) सब दोषों को निवारण करने में तीक्षण स्वभाव वाले ( घृतम् ) घी मिष्ट आदि पदार्थों को ( खुदोतन ) अच्छे प्रकार गेरो ॥ २॥

भावार्थ:-- मनुष्यों को इस प्रज्वलित अग्नि में जल्दी दोषों को दूर करने वा शुद्ध किथे हुए पदार्थीं को गेर कर इष्ट सुझों को सिद्ध करना चाहिथे।। २॥

तंत्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषि:। अग्निकेंचता | गायर्जा छम्दः। षड्जः स्वरः ॥
मनुष्यों को उक्त अग्नि की नित्य वृद्धि करनी च।हिथे इस विषय का
उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तन्त्वां मिसिद्धरिङ्गरो घृतेनं वर्द्धयामिस । बृहच्छोंचाधविष्ठध॥३॥ पदार्थः—हम छोग जो (अङ्किरः) पदार्थों को प्राप्त कराने वा (यविष्ठध) प-हार्थों के भेद करने में अतिबछवान् (बृहत्) बड़े तेज से युक्त अग्नि (शोच) प्रका-ध करता है (त्वा) उस को (सिमिद्धिः) काष्टादि वा (धृतेन) वी आदि से (व-र्द्धयामिस) बढ़ाते हैं ॥३॥

भावार्य: मनुष्यों की जो सब गुणों से बलवान पूर्व कहा हुआ अग्नि है यह होम मौर शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये लकड़ी हो आदि साथनों से सेवन करके निर-म्तर वृद्धि युक्त करना चाहिये || ३ ||

ड्यत्वेत्यस्य प्रजापितऋषिः । अग्निवंवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर षद् अग्नि कैसा है सो अग्र मन्त्र में कहा है ॥

छपं स्वारने हिवदमंत्रीधृताचीर्यन्तु हर्यतः । जुणस्यं मुसिधो

समं ॥ ४॥

पदार्थ:—है मनुष्यो जो (अग्ने) प्रसिद्ध अग्नि (प्रम) यज्ञ कर्म करने हे प्रयु-ष्यो जो (इब्बंत) प्राप्ति का हेतु वा कामना के योग्य (अग्ने) प्रसिद्ध अग्नि (प्रम) यज्ञ करने वाळे नेरे (सिप्तधः) लकड़ी द्यो आहि पदार्थों को (ज्ञुषस्व) सेवन करता है जिस प्रकार (तम्) उस अग्नि को वी आदि पदार्थ (यन्तु) प्राप्त हों वैसे तुम (हिक्यनतीः) श्रेष्ठ हिवयुक्त (घृतन्तीः) घृत आदि पदार्थों से संयुक्त आहुति वा काष्ठ आदि सामग्री प्रतिदिन संचित करो ॥ ४॥

भाषार्थ: मनुष्य लोग जब इस अग्ति में काष्ठ वी अरदि पदार्थों की आहुति छो-

इते हैं सब वह उन को अति स्क्ष्म कर के वायु के साथ देशांतर को प्राप्त कर के दु-गिन्धादि दोषों के निवारण से सब प्राणियों को खुख देता है ऐसा सब प्रतुष्यों को जा-नना चाहिये ॥ ४॥

भूभुं व:स्वरित्यस्य प्रजापतिऋंषि: । अग्निवायु सूर्यो देवता: । देवी बृहती छन्द: । देवी बृहती छन्द: । उभयत्र मध्यमः स्वर: ।।

फिर इस अग्निका किस लिये उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।।

भूर्श्वेदः स्तुर्धौरिव भूम्ना पृथितीर्थं वरिम्णा । तस्यस्ति प्राधिवि दंवधजनि पृष्ठेऽग्निमं सुरहम् साद्यायादं थे ॥ ६ ॥

पदार्थ:—में (अन्नाद्याय) महाण योग्य अन्न के लिये (भूना) विशु अर्थात् ऐश्वर्त्य से (दौरिव) आफाश में सूर्य के समान (विरम्णा) अच्छे र गुणों से (पृथिवाव) विस्तृत भूमि के तृत्य (ते) प्रत्यक्ष वा (तस्याः) अप्रत्यक्ष अर्थात् आकाश
युक्त लोक में रहने वाली (देवयज्ञान) देव अर्थात् विद्यान् लोग जहां यज्ञ करते हैं
या (पृथिवा) भूमि के (पृष्ठे) पृष्ठ के ऊपर (भूः) भूमि (भुवः) अन्तरिक्ष (स्वः)
दिव अर्थात् प्रकाशस्त्रकप सूर्यलोक उन के अन्तरीत रहने तथा (अन्नादम्) यव आदि
सन्न अन्नां को मक्षण करने वाले (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (आद्ये) स्थापन करता हुं ॥ ५॥

भाषार्थ:--इस अंत्र में दो उपमार्क्षकार हैं। हे बनुष्य लोगो ! तुम ईम्बर से तीन लोकों के उपकार करने वा अपनी व्यक्ति से सूर्य प्रकाश के समान तथा उसम २ गुणों से पृथिकों के समान अपने २ लोकों में निकट रहने वाले रखे हुए अग्नि को कार्य की सिद्धि के लिये यन्त के साथ उपयोग करो ॥ ५॥

आयमित्यस्य सर्प्यराज्ञी कद्र्ऋषि:। अ<u>ग्निर्देषता।</u> गायत्रीछन्द:। पड्ज: स्वर:॥ अब अग्नि के निमित्त से पृथिवी का भ्रमण होता है इस विषय को अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

आपक्रीः पृक्षिरक्<u>षमि</u>। द्संदन् मातरंमपुरः। पितरंश्व प्रयन्तर्वः।।६॥ पदार्थः — (अयम् ) यह प्रत्यक्ष (गीः ) गोलक्षपी पृथिवी (पितरम् ) पालन क-रनेवाले (स्वः ) स्व्यंलोक के (पुरः ) आगे २ वा (मातरम् ) अपनी योनिकप जलों के साथ सहवर्तमान (प्रयन् ) अच्छी प्रकार चलती हुई (पृश्निः) अंतरिक्ष अर्थात् आकाश में (आक्रमीत् ) चारों तरफ धूमती है ॥ ६॥

भाषार्थ:—मनुष्यों को जानना चाहिये कि जिस से यह भूगोल पृथिषी जल और अग्नि के निमित्तसे उत्पक्ष हुई अंतरिक्ष वा अपनी कक्षा अर्थात् योनिक्ष जल के सिहत्त आकर्षणक्षी गुणोंसे सब की रक्षा करनेवाले सूर्य के चारों तरफ क्षण २ घूमती है इसी से दिनरात्रि शुक्ल वा कृष्ण पक्ष ऋतु और अयन आदि काल विभाग कम से संभव होते हैं ॥ ६॥

अन्तरित्यस्य सर्पराज्ञी कद्र्ऋषि: । अग्निवंबका । गायत्री छण्दः । पड्जः स्वरः ॥ वह अग्नि के सा है इस विषयका उपदेश अग्ले भंत्र में किया है ॥

अन्तइचरित रोचनास्य प्राणादेपानती। व्यंख्यनमहिषो दिवेम्॥७॥ पदार्थ:—जो (अस्य ) इस अग्नि की (प्राणात् ) ब्रह्माण्ड और शरीर के बीच में ऊपर जानेवाले वायु से (अपानती ) नीचे को जानेवाले वायु को उत्पन्न करती हुई (रोचना) दीप्ति अर्थात् प्रकाशक्षपी विद्धली (अन्तः ) ब्रह्माण्ड और शरीर के मध्य-में (चरति) चलती है वह (महिषः ) अपने गुणों से बड़ा अग्नि (दिवम् ) सूर्यं लोक को (व्यख्यत् ) प्रगट करता है ॥ ७॥

भाषार्थ: -- मनुष्यों को जाना चाहिये कि जो बिद्युत् नाम से प्रसिद्ध सब मनुष्यों के अंत:करण में रहनेवाली जो अग्निकी कांति है वह प्राण और अपान वायु के सा-थ युक्त होकर प्राण अपान अग्नि और प्रकाश आदि खेष्टाओं के व्यवहारों को प्रसिद्ध करती है। । ७॥

त्रिशंक्षामेत्यस्य सर्पराज्ञी कत्र्क्षिवः।अग्निर्वेषता।गायत्री छन्दः। षड्जः । स्वरः॥
फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है॥
च्रिशंका साम विराजिति वाक्षेत्रकार्यधीयते। प्रति वस्तोर-

पदार्थ: — मनुष्यों को जो अग्नि ( घुनि: ) प्रकाश आदि गुणों से ( प्रतिवस्तो: ) प्र-तिदिन ( त्रिंशत् ) अंतरिक्ष आदित्य और अग्नि को छोड़ के पृथिवी आदि जो तीस ( धाम ) स्थान हैं उनको (विराजित) प्रकाशित करता है उस ( पतंगाय ) चलने च-लाने अन्दि गुणों से प्रकाशयुक्त अग्नि के लिथे (प्रतिवस्तो:) प्रतिदिन विद्वानों को (अह) अच्छे प्रकार ( वाक् ) वाणी ( धीयते ) अवश्य धारण कनरी चाहिये ॥ ८॥

भावार्थ:—जो वाणी प्राणयुक्त शरीर में रहनेवाले विजुलीहर अग्नि से प्रकाशित होती है उसके गुणों के प्रकाश के लिये विद्वानों को उपदेश वा श्रवण नित्य करना चाहिये || ८ || अग्निरित्यस्य पाज्यभी वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
ज्योतिरित्यस्य पाज्यभी वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
अग्नि और सूर्य्यं कैसे हैं इस विषयका उपदेश अगले मंत्र में किया है॥
अग्निर्व्याति ज्ञोतिर्गिनः स्वाहा मूर्यो ज्योति ज्व्योतिः सूर्यः
स्वाहां । अग्निर्ववर्षे ज्योति वर्षेः स्वाहा सूर्योवरुषे ज्योतिः
वर्षेः स्वाहां । ज्योतिः मूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहां ॥ ९ ॥

पदार्थ:-( अग्नि: ) परमेश्वर ( स्वाहा ) सत्य कथन करने वाली वाणी को (ज्यो-ति: ) जो विज्ञान प्रकाश से युक्त करके सब मनुष्यों के लिये विद्या की देता है इसी प्रकार (अग्नि:) जा प्रसिद्ध अग्नि (ज्याति:) शिल्पविद्या साधनां के प्रकाश को देता है (सुर्य:) जो चराचर सब जगत् का आत्मा परमेश्वर (उये।ति:) सब के आत्माओं में प्रकाश वा ज्ञान तथा सब विद्याओं का उपवेश करता है कि (स्वाहा) मनुष्य जैसा अपने हृद्य से जानता हो बेसा ही बोले। तथा जे। (सूर्यः) अपने प्रकाश से प्रेरणा का हेतु सूर्यलोक ( ज्ये।ति: ) मृर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करता है (अग्नि:) जो सब विद्याओं का प्रकाश करने वाला परमेश्वर मनुष्यों के लिये (वर्ष्य:) सब विद्याओं के अधिकरण चारों वेदों को प्रकट करता है। तथा जा (ज्याति:) बिज-लीक्प से शरीर वा ब्रह्माण्ड में रहने वाला अग्नि ( वर्ष्य: ) विद्या और वृष्टि का हेत् है ( सूर्य: ) जे। सब विद्याओं का प्रकाश करने बाला जगदीम्बर सब मनुष्यां के लिये (स्व.इ।) वेदवाणी से (वर्ष्व:) सकल विद्याओं का प्रकाश और (ज्याति:) बिज़ु-लो, सूर्यं, प्रसिद्ध और अग्नि नाम के तेज का प्रकाश करता है तथा जो ( सूर्यं: ) सू-र्यंक्षेक भी ( वर्ष्यं: ) शरीर और अत्माओं के बल का प्रकाश करता है तथा जो (स-र्य: ) प्राणवायु (वर्ष्य:) सफल विद्या के प्रकाश करने वाले ज्ञान को बढ़ाता है और (ज्योति: ) प्रकाशस्वरूप जगदीश्वर अच्छे प्रकार से हवन किये हुए पदार्थी को अपने रचे हुए पदार्थों में अपनी शक्ति से सर्वत्र फैळाता है वही परमातमा सब मनुष्यों का उपास्य देव और भौतिक अप्नि कार्य्यामाद्धे का साधन है ॥ १॥

भावार्थ:— स्वाहा शब्द का अर्थ निरुक्तकार की रीति से इस मंत्र में प्रहण किया है अग्नि अर्थात् ईश्वर ने सामर्थ्य करके कारण से अग्नि आदि सन जगन् को उत्पन्न करके प्रकाशित किया है उन में से अग्नि अपने प्रकाश से आप वा और सब पदार्थों का प्रकाश करता है का प्रकाश करता है तथा परमेश्वर बेद के द्वारा सब विद्याओं का प्रकाश करता है इसी प्रकार अग्नि और सूर्य भी शिल्पविद्याविका प्रकाश करते हैं ॥ १ ॥ सज्रित्यस प्रजापितऋषिः । पूर्वीर्द्धस्यामिष्ठत्तरार्द्धस्य स्पृथं देवते । पूर्वार्द्धः स्प्रायन्त्र्यस्य भिग्गायत्री च छन्दः । षड्जः । स्वरः ॥ मौतिक अग्नि और सूर्यं चे दोनी किस की सत्ता से वर्तमान हैं इस विषय का उपदेश अगळे मंत्र में किया हो॥

सज्देवेन सिवित्रा सज्राराज्येन्द्रवत्या। जुषाणो आग्निवेतु स्वा-हां। सज्देवेन सिवित्रा सज्यपसेन्द्रवत्या । जुषाणाः स्ट्यी वेतु स्वाहां॥ १०॥

पदार्थ:—(अक्षि:) जो मैंतिक अक्षि (देवेन) एव जगत् को ज्ञान देने वा (स-वित्रा) सब जगन् को उत्त्व कर नेयाले ईश्वर को उत्त्व किये हुए जगत् को साथ (सज्:) तृत्यवर्तमान (ज्ञुपाण:) सेवन करता वा (इन्द्रवयाः) बहुत बिजुली से युक्त (राज्या) अंधकार एप रात्रि को साथ (स्वाहा) वाणी को सेवन करता हुआ (बेतु) सब पदार्थों में व्याप्त होना है इसो प्रकार (स्वृदं:) जो सूर्यलोक (देवेन) सब को प्रकाश करने वाले वा (सिवत्रा) लव के अंतर्यामा परमेश्वर को उत्पन्न वा धारण किये हुए जगत् को साथ (सज्:) तृत्य पर्धमान (जुपाण:) सेवन करता वा (इन्द्रवया) सूर्यप्रकाश से युक्त (उपस्त) दिन के प्रकाश को हेतु प्रात:काल को साथ (स्वाहा) अक्षि में होम की युद्ध आहुतियों को (जुपाण:) सेवन करता हुआ व्याप्त होकर हवन किये हुए पदार्थों को (चेतु) देशांतरों में पहुं चाता है उसी से सब व्यव-हार सिद्ध करें ॥ १०॥

भाषार्थ:—ह मनुष्यो ! तुमलोग जो भीतिक अग्नि ईश्वर ने रचा है वह इसी की सन्ता से अपने अपने रूप को धारण करता हुआ दोएक आदि रूपसे रात्रि के व्यवहारों को सिद्ध करता है इसी प्रकार ओ प्रात:काल को प्राप्त होकर सब मूर्तिमान द्रव्यों के प्रकाश करने को समर्थ है वही काम सिद्ध करने हारा है इसकी जानों ॥ १९॥

डपेत्यस्य गोतम ऋषि:। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्रीछन्द:। पड्जः स्वर:॥

अब अगले मंत्र में इंग्वर ने अपने स्वरूप का प्रकाश किया है।।

<u> चप्रमयन्तोऽध्वरं मन्त्रं बाचेमारनये । आरे अस्मे च प्र</u>रु

पदार्थ:—( अध्वरम् ) कियामय यज्ञ को ( उपप्रयन्तः ) अच्छे प्रकार जानते हुए हम छोग ( अस्मे ) जो हम छोगों के (आरे) दूर वा ( च ) निकट में ( शृण्वते ) यथार्थ स-त्यासत्य को सुननेपाले ( अग्नये ) विज्ञानस्वरूप अंतर्यामा जगदीश्वर है इसी के छिये (मन्त्रम् ) ज्ञान को प्राप्त कराने वाले मंत्रों को (वोचेम) नित्य उच्चारण वा विचार करें ।११। भाषार्थ: मनुष्यों को वेदमन्त्रों के साथ ईश्वर की स्तुति वा यज्ञ के अनुष्टान को करके जी ईश्वर भीतर वाहर सब जगह व्याप्त होकर सब व्यवहारों को लुनता वा जानता हुआ वर्समान है इस कारण उससे भय मानकर अधर्म करने की इच्छा भी न करनी चाहिये जब मनुष्य परमात्मा को जानता है तब समीपस्थ और जब नहीं जानता ता तब दूरस्थ है ऐसा निश्चय जानना चाहिये ॥ ११॥

श्रिमं ब्रेंटास्य विक्ष ऋषि:। श्रिश्वंवता। निवृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥ श्रव अगले मंत्र में श्रिश शब्द से क्वर और भौतिक श्रिश प्रकाश किया है ॥ अारिनर्मू को दिवः ककुत्पातीः पृथिच्याऽअप्यम् । अपार रेतां र सि जिन्दाति॥ १२॥

पदार्थ:—(अयम्) जो यह कार्यकारण से प्रत्यक्ष (ककुत्) सब से बड़ा (मूर्जा) सब के ऊपर विराजमान (अग्नि:) जगदीश्वर (दिव:) प्रकाशमान सूर्य थादि लोक और (पृथिव्या:) प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों का (पति:) पालन करता हुआ (अपाम्) प्राणों के (रेतिसि) वीर्यों की (जिन्वति) रचना को जानता है उसी को पृज्य मानो ॥ १॥ (अयम्) यह अग्नि (ककुत्) सब पदार्थीं से बड़ी (दिव:) प्रकाशमान पदार्थों के (मूर्जा) ऊपर विराजमान (पृथिव्या:) प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों के (पति:) पालन का हेतु होकर (अपाम्) जलों के (रेतिसि) वीर्यों को (जिन्वति) प्राप्त करता है॥ २॥ १२॥

भावार्थ:— इस मन्त्र में श्लेपालंकार है—जो सन्दीश्वर प्रकाश वा अप्रकाशक्ष्य दो प्रकार का जगत् अर्थात् प्रकाशव न्स्यूर्थ आदि और प्रकाशरहित पृथिषी अदि लो-को को रचकर पालन कर के प्राणों में बल को घारण करता है तथा जो भौतिक अ-िन, पृथिषी आदि जगत् के पालन का हैत होकर बिहुली आहर आदि क्रप से प्राण वा जलों के बीयों को उत्पन्न करता है। १२॥

उभा वामिन्द्राम्नी इत्यस्य भरद्वाज ऋषि: । इन्द्रान्ती वेवते । स्वराट् त्रिष्टु-प्छन्द: । धेवत: स्वर: ||

अगले मंत्र में भौतिक अग्नि और वायु का उपहेश किया है।।

जुभा वामिन्द्रार्गिऽआहुवध्यांऽजुभा रार्धसः सह मांद्रयद्भौं।

जुभा दातारांविषा रंग्रीणामुभा वाजंस्य सातयें हुवे वाम्॥१३॥

पदार्थ:—मैं जो (उभा) दो (दातारी) सुख देने के हेतु (इन्द्राम्नी) वायु और

अग्नि हैं (वाम्) उन को (भाहुवध्ये) गुण जानने के लिथे (हुवे) प्रहण करता हैं,

(राधस:) उत्तम सुझयुक्त राज्यादि धनों के भोग के (सह) साथ (मादयच्ये) आन-न्द के लिये (वाम्) उन (उभा) दोनों को (दुवे) प्रहण करता हूं सथा (इषाम्) सब को इष्ट (रयीणाम्) अत्यन्त उत्तम चक्रवर्ति राज्य आदि धन वा (वाजस्य) अ-त्यन्त उत्तम अन्न के (सातये) अच्छे प्रकार भोग करने के लिथे (उभौ) उन दोनों को (दुवे) प्रहण करता हूं || १३ ||

भावार्थ: — जो मनुष्य इंश्वर की सृष्टि में अग्नि और वायु के गुणों को जानकर कार्यों में संप्रशुक्त करके अपने २ कार्यों को सिद्ध करते हैं वे सब भूगोल के राज्य-आदि धनों को प्राप्त होकर भानन्द करते हैं इन से भिक्त मनुष्य नहीं ॥ १३ ॥ अयन्त इत्यस्य देववातभरतावृषी । अग्निईवता । स्वराडनुष्टुष् छन्द: ।

गान्धारः स्वरः ॥ गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी अगले मंत्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥ अग्रमने यो निर्म्भातिवयो यहाँ जाहोऽभरोंचथाः । हज्जानकंग्नुऽ-

आरोहार्थां नो बर्फया रुपिम् ॥ १४ ॥

पदार्थ:—है (अपने) जगदीश्वर! (ते) आपकी सृष्टि में जो (ऋत्वियः) ऋतु आदतु में प्राप्ति कराने योग्य अग्नि और जो वायु से (जातः) प्रसिद्ध हुआ (आरीच-धाः) सब प्रकार प्रकाश करता है वा जो सूर्य आदि हुए सं प्रकाशवाले लोकों की (आरोह) उस्रति को सब ओर से बढ़ाता है और जो (नः) हमारे (रियम्) राज्य आदि धन को बढ़ाता है (तम्) उस अग्नि को (जानन्) जानते हुए आप उस से (नः) हमारे (रियम्) सब भूगोल के राज्यआदि से सिद्ध हुए धन को (वर्डय) बृद्धियुक्त कीजिये ॥ १४॥

भावार्थ:—मनुष्यों को जो सब काल में यथावत् उपयोग करने योग्य वा जो वायु के निमित्त से उत्पन्न हुआ तथा जो अनेक कार्यों की लिद्धिक्ष कारण से सब को सुख देता है उस अग्नि को यथावत् जानकर उसका उपयोग कर के सब कार्यों की सिद्धि करनी चाहिये || १४ ||

अयिग्रहेत्यस्य वामदेव ऋषि: । अग्निवेंवता । भुरिक विष्टुण्डन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि केसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अयि मिह प्रथमो धांधि धाति भिहांता यि छि।ऽअध्यरेष्वी छ्यः ।

यमप्तंवानो भृगंवो विरुक्तवृर्वनेषु चित्रं सिभ्यं विद्यो विद्यो ॥१५॥

पदार्थं:-(अप्रवाम:) विद्या सन्तान अर्थात् विद्या पढ़ाकर विद्वान् कर देनेवाले

(मृगवः) यज्ञविद्या के जानने वाले विद्वान् लोग (इह) इस संसार में (वनेषु) अच्छे प्रकार सेयन करने योग्य (अध्वरेषु) उपासना अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त और शिल्पविद्यामय यज्ञों में (विशेषिशे) प्रजा २ के प्रति (विभ्वम्) व्या- स स्वभाव वा (चित्रम्) आक्षर्यगुणवाले (यम्) जिस ईश्वर और अग्नि को (वि- रुख्यः) विशेष कर के प्रकाशित करते हैं (अयम्) वही (धातृभिः) यज्ञकिया के धारण करने वाले विद्वान् लोगों को (ईड्यः) खोज करने योग्य (प्रथमः) यज्ञ- क्रिया का आदि साधन (होता) यज्ञ का प्रहण करने वाला (यज्ञिष्ठः) उपासना और शिल्पविद्या का हेतु है। उस को (इह) इस संसार में (धायि) धारण करते हैं ॥ १५॥

भावार्थ:—इस मंत्र में श्लेपालङ्कार है—विद्वान् लोग यज्ञ की सिद्धि के लिये मु-स्य करके उपास्यदेव और साधन भीतिक अग्नि को ग्रहण करके इस संसार में प्रजा के सुखों को नित्य सिद्ध करें || १५ ||

अस्य प्रकामित्यस्यःऽवत्सार ऋषिः । अग्निर्वेवता । गायत्री छन्दः । पड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अस्य प्रत्नामनुगुर्वाक्षं शुक्रन्दुं दुहे ऽअव्हेवः । पर्यः सहस्रसाम्-विम् ॥ १६॥

पदार्थ:—(अन्हय:) सब विद्याओं को व्याप्त कराने वाले विद्वान् लोग (अस्य) इस भौतिक अग्नि की (सहस्रसाम्) असंख्यात कार्यों को देने वा (ऋषिम्) कार्यंसिद्धि के प्राप्ति का हेतु (प्रक्राम्) प्राचीन अनादिस्वरूप से नित्य वर्त्तमान (युत्तम्) कारण में रहने वाली दीप्ति को जान कर (शुक्रम्) शुद्ध कार्यों को सिद्ध करने व ले (पय:) जल को (अनु, दृतुन्हे) अच्छे प्रकार पूष्ण करते हैं अर्थात् अग्नि में हवनादि करके वृष्टि से संसार को पूरण करते हैं ॥ १६॥

भाव र्थः — मनुष्यां को जैसे गुणसहित अग्नि का कारणरूप वा अनः दिपन से नित्यपन जानना योग्य है वैसे हा जगत् के अन्य पदार्थां का भी कारणरूप से अनादि-पन जानना चाहिथे इनको जानकर कार्यों में उपयुक्त करके सब व्यवहारों की सिद्धि करनी चाहिये || १६ ||

तन्पः इयस्यावत्सारऋषि: । अग्निर्देवता । त्रिष्टुत् छन्दः । घेवतः स्वरः ॥ अव ईश्वर और भौतिक अग्नि क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है । तुपा अंग्नेऽसि तुन्त्ममे पाद्यायुदी अंग्नेस्यायुंमें देहि बच्ची-दा अंग्नेऽसि बच्ची से देहि । अग्ने यन्से तुन्तु।ऽक्रनन्तन्स्ऽभा-पंण ॥ १७ ॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) जगर्दाश्वर ! (यत्) जिस कारण आप (तनूपा: ) सब मु-र्तिमान् पदार्थी के शरीरों को रक्षा करने वाले (असि) हैं इस से आप (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा की जिये। हे (अग्ने) परमेश्वर जैसे आप (अयुदी: ) सब की आयु के देने वाले (अति ) हैं पैसे (मे ) मेरे लिये (आयु: ) पूर्ण अ:यु अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन ( देहि ) दीजिये | हे ( अग्ने ) सर्व विद्यामय ई-श्वर! जैसे आप ( वर्चांदा: ) सब मनुष्यों को विज्ञान देने व छे (असि) हैं दैसे ( मे ) मेरे लिये भी ठीक २ गुण ज्ञान पूर्वक ( वर्च: ) पूर्ण विद्या को (देहि) दीजिये । हे (अझे) सब कामों को पूरण करने वाले परमेश्वर ! (मे) मेरे ( तन्वा:) शरीर में ( यत् ) जि-तना ( जनम् ) बुद्धिचल और शोर्य आदि गुण कम है ( तत् ) उतना अङ्क (मे ) मेरा ( आपूण ) अच्छे प्रकार पूरण की जिथे || १ || ( अग्ने ) यह भौतिक अग्नि ( यत् ) जैसे (तनूपा:) पदार्थी की रक्षा का हेतु (असि) है दैसे जाउराक्षि रूप से (मे) मेरं (तन्वम् ) शरीर की (पाहि) रक्षा करता है (अप्ने ) जैसे ज्ञान का निमित्त यह अग्नि ( आयुर्दाः ) सब के जीवन का हेतु ( अति ) है ऐसे ( मे ) मेरं लिये भी ( आयु: ) जीवन के हेतु क्षुधा आदि गुणें को (देहि ) देता है (असे ) यह असि जैसे (वर्जी-दा: ) विज्ञानप्राप्ति का हेनु ( असि ) है यैसे ( मे ) मेरे लिये भी ( वर्ज्यः ) विद्याप्रा-प्ति के निमित्त बुद्धिबलादि को (देहि) देता है तथा (अग्ने) जो कामना के पूरण क-रने में हेतु भौतिक अग्नि है वह (यन्) जितना (मे) मेरे (तन्याः) शरीर में बुद्धि अ:दि सामर्थ्य ( उत्नम् ) कम है ( तत् ) उतना गुण ( आपृण ) पूरण करता है।। २।। १७ ॥

भावार्थ: इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है - जिस कारण परमेश्वर ने इस संसार में सब प्राणियों के लिये शरीर के आयुनिमित्त विद्या का प्रकाश और सब अङ्कों की पूर्रणता रची है इसी से सब पदार्थ अपने २ स्वरूप को धारण करते हैं इसी प्रकार परमेश्वर को सृष्टि में प्रकाश आदि गुणवान् होने से यह अग्नि भी सब पदार्थों के पालवन का मुख्य साधन है ॥ १७ ॥

इन्धानास्त्वेत्यस्याऽवत्सार ऋषि: । अग्निदेवता । निचृत्वाद्यौ पङ्किश्छन्दः । पञ्चम: स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में परमेश्वर और भौतिक अग्नि का प्रकाश किया है ॥

इन्धांनास्त्वा शातकं हिमां चुमन्तकं समिधीमहि वर्धस्वन्तो वयुस्कृतकं सहंस्वन्तः सहस्कृतम् । अग्नें सपत्तद्वममेनमद्ब्धास्रो ब्रद्विभ्यम् । चित्रांवसो स्वस्ति ते पुरसंशीय ॥ १८ ॥

पदार्थ:--हे ( चित्रावसो ) आधार्यसप धनवाले ( अग्ने ) परमेश्वर ! (अभव्धासः) दम्भ अहङ्कार और हिंसादि दोपरहित (पयस्वन्तः) प्रशंसनीय पूर्ण अवस्थायुक्त (स-हरूवन्तः) अत्यन्त सहन स्वभावसहित ( अदाव्भयम् ) प्रानने योग्य ( सपत्नद्रम्यनम् ) शत्रुओं के नाश करने ( वयस्कृतम् ) अवस्था की पृति करने ( सहस्कृतम् ) सहन करने वराने तथा ( द्युमन्तम् ) अनन्त प्रकाशवाले ( त्या ) आप का ( इन्धानाः ) उपदेश और श्रवण करते हुए हम छोग (शतम्) सौ वर्ष तक या सौ से अधिक (हिमा:) हेमन्त क्तुयुक्त (सिमधीमहि ) अच्छे प्रकार प्रकाश करें वा जीवें इस प्रकार करता हुआ मैं भो जो (ते) अ.प की कृपा से सब दुःशों से (पारम्) पार होकर (स्वस्ति) दुख को ( अशीय ) प्राप्त होऊं ॥ १ ॥ ( अदत्थासः ) दम्म अहङ्कार हिंसादि दोषर-हित ( वयस्वन्तः ) पूर्वे अवस्थायुक्त ( सहस्वन्तः ) अखन्त सहन करने वाछे ( त्वा ) उस ( अदास्यम् ) उपयोग करने योग्य ( सपत्तद्म्मनम् ) अञ्जेयादि शस्त्र अस्त्रविद्या में हेतु होने से शत्रुओं को जिताने (वयस्यतम् ) अवस्था को बढ़ाने (सहस्वतम्) सहन का हेतु ( चुमन्तम् ) अच्छे प्रकार प्रकाश युक्त(अग्ने ) कार्यों को प्राप्त कराने वाले मौतिक अग्निको ( इन्धानाः ) प्रज्वलित करने हुए हम लोग (शतम् ) सौ वर्ष्ययन्त (हिमा:) हेमन्तऋतुयुक (सिमधीमहि) जीवें इस प्रकार करता हुआ मैं भी जो यह ( चित्रावसो ) आश्चर्यरूप धन कं प्राप्ति का हेनु अग्नि है ( ते ) उस के प्रकाश से दारिद्र आदि दुःखीं से (पारम्) पार होकर (स्वस्ति) अत्यन्त सुख को ( अशीय ) प्राप्त होऊं || १८ ||

भावार्थ:—इस मन्त्र में श्लेपालङ्कार है—मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ ईश्वर की उ-पासना तथा अग्नि आदि पदार्थों से उपकार लेके दुःखों से पृथक् होकर उत्तम २ सु-खों को प्राप्त होकर सौ वर्ष जीना चाहिये अर्थात् क्षण भर भी आलस्य में नहीं रहना किन्तु जैसे पुरुषार्थ की वृद्धि हो बैसा अनुष्ठान निरन्तर करना चाहिये ॥ १८॥

सन्विमत्यस्यावत्सार ऋषिः । अग्निर्वेषता । जगती छन्दः । निषावः स्वरः ॥

फिर भी परमेश्वर अग्नि कैसे हैं सो अगले मंत्र में प्रकाशित किया है ॥ सन्त्वमंग्र<u>ने</u> सूर्येस्य वर्ज्यसाग्रथाः समृषीणा स्तुतेनं । स म्<u>ञियेण धारता सम</u>हमा<u>ग्रंषा संवर्ष्या सम्</u>प्रज्ञा सक्ष राय-स्पोषेया गिमषीय ॥ १९॥

पदार्थ:— हे (अग्ने ) जगदीश्वर जो आप (सूर्यस्य) सबके अन्तर्गत प्राण वा (ऋपीणाम् ) वेद प्रत्यों के अर्थों को देखने व ले विद्वानों की जिस (संस्तुतेन) स्तुति
करने (संप्रियेण) प्रसन्नता से मानने (संवर्चसा) विद्याध्ययन और प्रकाश करने
(धःम्ना ) स्थान (समायुपा ) उत्तम जीवन (सम्प्रजया) सन्तान वा राज्य और (रायस्पोषेण) उत्तम धनों के भोग पृष्टि क साथ (समगथाः) प्राप्त होते हो । उसी के
साथ (अहम् ) मैं भी सब ुकों को (संग्मिपीय) प्राप्त होऊं ॥ १ ॥ जो (अग्ने )
भौतिक अग्नि पूर्व कहे हुए सर्वों के (समगथाः) सङ्गत होकर प्रकाश को प्राप्त होता
है उस सिद्ध किथे हुए अग्नि के साथ (अहम् ) मैं व्यवहार के सब सुखों को (संग्मिपीय) प्राप्त होऊं ॥ ११ ॥

भावार्थः इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है - मनुष्य लोग ईश्वर की आङ्का का पालन अपना पुरुवार्थ और अग्नि आदि पदार्थों के संप्रयोग से इन सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

अंधस्थेत्यस्य याज्ञवत्क्य ऋषि: । आषो देवताः । भुरिग्बृहसीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥ अब अगले मंत्र में यज्ञ से शुद्ध किये औषधो आदि पदार्थों का उपदेश किया है ॥

अन्ध्रश्याम्धी वो भक्षीय महीत्य महीवो भक्षीयोज्ज्रीस्थोज्जी-वो भक्षीय रायस्पोषस्य रायस्पांचै वो भक्षीय ॥ २० ॥

पदार्थ:—जो (अन्धः) बलवान् बृक्ष वा ओपधी आदि पदार्थ (स्थः) हैं (वः) उन के प्रकाश से मैं (अन्धः) वीर्य को पृष्ट करने वाले अकों को (अक्षीय) प्रहण करूं। जो (महः) बड़े २ वायु अग्नि आदि वा विद्या आदि पदार्थ (स्थ ) हैं (वः) उन से मैं (महः) बड़ी २ कियाओं को सिद्धि करने वाले कर्मों का (अक्षीय) सेवन करूं जो (ऊर्जः) जल, दूध, धी, मिष्ट वा फल आदि रस वाले पदार्थ (स्थ) हैं (वः) उन से मैं (ऊर्जम्) पराक्रमयुक्त रस का (अक्षीय) भोग करूं और जो (रायस्पोषः) अनेक गुणयुक्त पदार्थ (स्थ ) हैं (वः) उन सक्षवर्ति राज्य और श्री आदि पदार्थों के मैं (रायस्पोपम्) उत्तम २ धनों के भोग का (अक्षीय) सेवन करूं ॥ २०॥

भावार्थः — मनुष्यों को जगत् के पदार्थं के गुण ज्ञान पूर्वंक किया की कुशलता से उपकार को प्रहण करकें सब सुर्खों का भोग करना चाहिये || २० || रेवतीरित्यस्य याज्ञवत्क्य ऋ पि: । विश्वे देवा देवता: । उप्णिक्छन्दः । कपभः स्वर: ||

अब विद्वानों के सत्कार के लिये उपदेश अध्ले मंत्र में किया ॥
रेत्रे<u>त</u>ी रमेध्यम्हिमनन्योनो<u>त्र</u> किम् गोष्ट्रेहिमँ ल्लुहेकेस्मिन् चिये ।
हुई व स्त मार्पगात ॥ २१ ॥

पदार्थ: — है मनुष्यों ! जो (रंवती:) विद्या धन इन्द्रिय पशु और पृथिषी के राज्य आदि से युक्त श्रंष्ठ नीति (स्त ) हैं वे (अस्तिर्) इस (योती) जन्मस्थल (अस्मिन्सीष्ठें ) इन्द्रिय का पशु आदि के रहने के स्थान (अस्मिलीष्ठें) सेतार का (अस्मिन्सिये) अपने रखे हुए घरों में (रमध्वन् ) रमण करें ऐसी इच्छा करते हुए तुम लोग ( इहैव ) इन्हीं में प्रवृत्त होओ। अर्थात् ( मापनान ) इन से दूर कभी मत जाओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—जहां विद्वान् लीग निवास पारते हैं वहां प्रजाविद्या उत्तम शिक्षा और धनवाली होकर निरन्तर छुखों से युक्त होशी है। इस से मगुष्यों को ऐसी इच्छा कर् रनी चाहिये कि हमारा और विद्वानों का नित्य समागम बना रहे अर्थात् कभी हम स्रोग विरोध से पृथक् न होयें ॥ २१॥

सः हितेत्रस्य येथ्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवताः । पूर्वार्डस्य भुरिगासुरी गायत्री । उपत्वेत्यन्तस्य गायत्री च छन्दः । पड्जः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से बिजुली के कमीं को उपदेश किया है।।
स्र हितासि विद्ववरूप्यूजी मा विदागीपृत्येन । उप त्वारने दि-

वे दिंबे दोषांबस्तर्फिया ब्यम् । नमोभरंन्त एमंसि ॥ २२ ॥

पदार्थ:— (नमः) अन्न को (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) अपनी बुद्धि वा कर्म से जो (अग्ने) अग्नि विजलों क्य से सब पदार्थों के (संहिता) साथ (जर्जा) बेग वा पराक्रम आदि गुण्युक (विश्वक्ष्पी) सब पदार्थों में क्यगुण्युक (गौपत्येन) इन्द्रिय वा पशुओं के पालन करने वाले जीव के साथ वर्तमान से (मा) मुझ में (आविश) प्रवेश करता है (त्वा) उस (दोषावस्तः) रात्रि को अपने तेज से दूर करने वाले (अग्ने) विद्युद्र्य अग्नि को (दिवेदिवे) झान के प्रकाश होने के लिथे प्रतिदिन (उपमित) समीप प्राप्त करते हैं ॥ २२ ॥

भावार्थ:—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिथे कि जिस ईश्वर ने सब जगह मूर्ति-मान् द्रव्यों में विज्ञलीरूप से परिपूर्ण सब रूपों का प्रकाश करने चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु विचित्र गुण वाला अग्नि रचा है उसी की उपासना नित्य करनी चाहिथे॥२२॥ राजन्तमित्यस्य पैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषि:। अग्निटेंवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः फिर ईश्वर और अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है !!

राजैतमध्वराणों गो।पामृतस्य दीदिं विम् । वर्छमान् १ स्वे दमें ।।२३॥

पदार्थ:—(नमः) अन्न सं सत्कार पूर्वक (भरन्तः) धारण करते हुए इम लोग
(धिया) बुद्धि वा प्रमें से (अध्वराणाम्) अग्निहोत्र से लेकर अश्वमधपर्यन्त यज्ञ

वा (गोपाम्) इन्द्रिय पृथिव्यादि की रक्षा करने (राजन्तम्) प्रकाशमान (ऋतस्य)
अनादि सत्य स्वरूप काशण के (दीदिविम्) व्यवहार को करने वा (स्वे) अपने (दमे)
मोक्षक्रप स्थान में (वर्धमानम्) वृद्धि को प्राप्त होने वाले परमात्मा को (उपमित्तः)
नित्य प्राप्त होते हैं ॥१॥ जिस परमात्मा ने (अध्वराणाम्) शिल्पविद्या साध्य यज्ञ

वा (गोपाम्) पश्वादि की रक्षा करने (ऋतस्य) जल के (दीदिवम्) व्यवहार
को प्रकाश करना वा (स्वे) अपने (दमे) शान्तस्वरूप में (वर्धमानम्) वृद्धि को
प्राप्त होता हुआ अग्नि प्रकाशित किया है उस को (नमः) सित्कया से (भरन्तः) धारणकरते हुए हमलोग (धिया) बुद्धि और कमें से (उपमित्त) नित्य प्राप्त होते हैं।। स्था

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और नमः, भरन्तः, धिया, उप, आ, इमिस, इन छः पदों की अनुवृत्ति पृर्व मन्त्र से जाननी चाहिये। परमेश्वर आदि रहित सत्य कारणहर से सम्पूर्ण कार्यों को रचता और भौतिक अग्नि जल की प्राप्ति के द्वारा सब व्यवहारों को सिद्ध करता है ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये॥ २३॥

स न इत्यस्य मैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्रो छन्दः ।

#### षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र से ईश्वर ही का उपदेश किया है।

सनं पितेषं सूनवे ऽग्नें सूपायनो भंव। सर्चस्वा नःस्वस्तये ॥२४॥ पदार्थः — हे (अग्न) जगर्नाश्वर! जो आप हपा करके जैसे (सूनवे) अपने पुत्र के लिये (पितेष) पिता अच्छे २ गुणों को सिखलाता है बैसे (नः) हमारे लिये (सूपायनः) श्रेष्ट ज्ञान के देने वाले (भष) हैं बैसे (सः) सो आप (नः) हम लोगों को (स्वस्तये) सुख के लियं निरन्तर (सचस्व) संयुक्त की जिये ॥ २४॥

भावार्थ: इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे सब के पालन करने वाले परमेश्वर! जैसे रूपा करने वाला कोई विद्वान मनुष्य अपने पुत्रों की रक्षा कर भ्रेष्ठ २ शिक्षा दे- कर विद्या धर्म अच्छे २ स्वभाव और सत्य विद्या आदि गुणों में संयुक्त करता है बैसे ही बाप हम लोगों की निरन्तर रक्षा करके श्रेष्ठ २ व्यवहारों में संयुक्त की जिये ॥२४॥

अग्ने त्वमित्यस्य सुबन्धुऋषि: । अग्निदेंवतः । सुरिम्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥ फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥ अरने त्वक्नोऽअन्तंमऽउत क्राता शिको भंवा बर्ध्धः।
वस्तुरिनर्वस्तुत्रवाऽअच्छां निक्ष चुमलंमछं रुधिन्दाः॥२५॥
पदार्थः—हं (अग्ने) सब की रक्षा करने वाले जगदीश्वर! जो (त्वम्) आप (व-सुश्रवः) सब को सुनने के लिये श्रेष्ठ कानों को देने (वसुः) सब प्राणा जिस में वास करते हैं वा सब प्राणियों के बीच में वसने हारे और (अग्नः) विज्ञान प्रकाशयुक्त (निक्ष) सब जगह व्याप्त अर्थात् रहने वाले हैं सो आप (नः) हम लोगों के (अन्त-मः) अन्तर्यामो वा जीवन के हेतु (त्राता) रक्षा करने वाले (वर्ष्थ्यः) श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभाव में होने (शिवः) तथा मङ्गलमय मङ्गल करने वाले (भव) हजिये और (उत्र) भी (नः) हम लोगों के लिये (धुमसमम्) उत्तम प्रकाशों से युक्त (रियम्) विद्या चक्रवर्ति आदि धनों को (अच्छ दाः) अच्छे प्रकार दीजिये ॥ २५॥

भावार्थः -मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि परमेश्वर को छोड़कर और हमारी रक्षा करने वा सब सुर्खों के साधनों का देने वाला कोई नहीं है क्योंकि वही अपने सामर्थ्य से सब जगह परिपूर्ण हो रहा है ॥ २५॥

तन्त्वेत्यस्य सुबन्धुऋंषिः। अग्नि<u>दंवता</u>। स्वराड् षृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥
फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥
तन्त्वां शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नार्य नूनमीमहे सिवंभ्यः।
स नो बोधि श्रुधी हर्वसुरुष्णाणोऽघागृतः संमस्मात्॥ २६॥

पदार्थ:—है (शोचिष्ठ) अत्यन्त शुद्धस्वरूप (दीदिव:) स्वयं प्रकाशमान आनन्द के देने वाले जगदीश्वर! हम लोग वा (नः) अपने (सिल्भ्यः) मित्रों के (सुझ.य) सुल के लिये (तन्त्वा) आप से (ईमहे) याचना करते हैं तथा जो आप (नः) हम को (बोधि) अच्छे प्रकार विज्ञान को देते हैं (सः) सो आप (नः) हमारे (हवम्) सुनने सुनाने योग्य स्तुतिसमूह यज्ञ को (श्रुधि) दृषा करके श्रवण की जिथे और (नः) हम को (समस्मात्) सब प्रकार (अधायतः) पापाचरणों से अर्थात् दृसरे को पीड़ा करने रूप पापों से (उठ्छ्य) अलग रिल्ये ॥ २६॥

भाषार्थ:—सब मनुष्यों को अपने मित्र और सब प्राणियों के हुन के लिये परमे-श्वर की प्रार्थना करना और बैसा ही अ.चरण भी करना कि जिस से प्राधित किया हुआ परमेन्वर अधर्म से अलग होने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को अपनी सचा से पापों से पृथक् कर देता है वैसे ही उन मनुष्यों को भी पापों से वच कर धर्म के करने में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये || २६ || इड पहादित इत्यस्य श्रुतबन्धुऋषि: । अग्निवंवता । विराड् गायत्री छन्दः । पड्ज: स्वरः ॥

फिर उस की प्रार्थना किस लिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

इड एखदिन ऽएहिं काम्या ऽएतं। मचिं वः कामधरंणम्भ्यात्॥२७॥

पदार्थ:—हं परमेश्वर ! आपकी ह्या से (इडे) यह पृथिवी मुझ की राज्य करने के लिये ( एहि ) अवश्य प्राप्त हा । तथा अदिते सब सुखों को प्राप्त कराने वाली ता-शरहित राजनीति ( एहि ) प्राप्त हो इसी प्रकार हे भगवन् ! अपनी पृथिवी और राजनीति के हारा ( काम्या: ) इष्ट २ पदार्थ ( एत ) प्राप्त हो तथा ( मिय ) मेरे बीच में ( व: ) उन पदार्थों की ( कामधरणम् ) स्थिरता यथावत् हो ॥ २७ ॥

भाषार्थ: — मनुष्यों को उत्तम २ पदार्थी की कामना निरन्तर करनी तथा उन की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना और सदा पुरुषार्थं करना चाहिये कोई मनुष्य अञ्ची वायुरी कामना के विना क्षणभर भी स्थित होने को समर्थ नहीं हो सकता इस से सब मनुष्यों को अधर्मयुक्त व्यवहारों की कामना को छोड़ कर धर्मयुक्त व्यवहारों की जितनी इच्छा बहु सके उतनी बहानी चाहिये ॥ २७ ॥

सोमानमित्यस्य प्रबन्धुऋंषिः । वृहस्पतिदंवता । विराड् गायश्री छन्दः ।पड्जः स्वरः। फिर उस जगदीश्वर की फिमलिये प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपवेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सोमान् र स्वरंगङ्कुणुहि बंह्मणस्पते । क्रचीवंन्तं य श्रीशि-जः ॥ २८ ॥

पदार्थ:—हे (ब्रह्मणस्पने) सनातन बंदश स्त्र के पालन करने वाले जगदीश्वर आप (य:) जो में (ब्रह्मिज:) सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले विद्यान के पुत्र के तृत्य हूं उस मुझ को (कक्षीवातम्) विद्या पटने में उत्तम नीतियों से युक्त (स्वरणम्) सब विद्याओं का कहने और (सोमानम्) ओषधियों के रसों का निकालने तथा विद्या की सिद्धि करने वाला (इ.णुहि) कीजिये। ऐसा ही व्याख्यान इस मन्त्र का निक्ककार यास्क मुनि जी ने भी किया है सो पूर्व लिखे हुए संस्कृत में देख लेना || २८ ||

भावार्थ:-इस मन्त्र में दुत्तोपमालंकार है-पुत्र दो प्रकार के होते हैं एक तो औ-रस अर्थात् जो अपने वार्थ से उत्पन्न होता और दूसरा जो विद्या पढ़ाने के लिये वि-द्वान किया जाता है। हम सब मनुष्यों को इसल्थि ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये कि जिस से हम लोग विद्या से प्रकाशित सब कियाओं में कुशल और प्रांति से विद्या के पढ़ाने बल्ले पुत्रों से युक्त हों ॥ २८ ॥

यो रेकानित्यस्य मेघातिथिऋषि:। बृहस्पितिदेवता । गायत्री छन्दः । पट्जः स्वरः ॥ फिर वह ईश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यो <u>रे</u>बान्योऽग्रंमी<u>व</u>हा वंसुवित्पुंष्टित्रद्धेनः। स नंः सिषक्तु यः स्तुरः॥ २९॥

पदार्थ:—(य:) जो वेदशास्त्र का पालन करने (रेवान्) विद्या आदि अनन्त भनवान् (अग्रीवहा) अविद्या आदि रोगों को दूर करने वा कराने (वञ्चवित्) सब वस्तुओं को यथावत् जानने (पृष्टिवर्द्धन:) पृष्टि अर्थात् शरीर वा आत्मा के बल को बढ़ाने और (तुर:) अच्छे कामों में जल्दी प्रवेश करने वा कराने वाला जगदीश्वर है (स:) वह (न:) हम लोगों की उत्तम २ कमें वा गुणों के साथ (सिपक्:) सं- युक्त करे ॥ २:॥

भावार्थ:—जो इस संसार में घन है सी सब जगदे श्वर का ही है महुप्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें बैसा ही उन की पृष्ठपार्थ भी करना जैसे विद्या आदि घनवाला परमेश्वर है पेसा विशेषण ईश्वर जी कह वा अनकर कोई मनुष्य इतहरा अर्थात् विद्या आदि घनवाला नहीं होसका किन्तु अपने पृष्ठपार्थ से विद्या आदि रोगों को घन की बृद्धि वा रक्षा निरन्तर करनी चाहिये जैसे परमेश्वर अविद्या आदि रोगों को दूर करने वाला है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि आप भी अविद्या आदि रोगों को निरन्तर दूर करें जैसे वह वस्तुओं को यथावन जानता है वैसे मनुष्यों को भी उनित है कि अपने सामर्थ्य के अनुसार सब पदार्थ विद्याओं को बयावन जाने जैसे वह सब की पृष्टि को बदाता है वैसे मनुष्य भी सब के पृष्टि आदि गुणों को निरन्तर बदावें जैसे वह अच्छे २ कार्यों को बनाने में शीवता करता है वैसे मनुष्य भी उनम्म २ कार्यों को त्वरा से करें और जैसे हम लोग उस परमेश्वर की उत्तम कर्मों के लिये प्रार्थना निरन्तर करते हैं बैसे परमेश्वर भी हम सब मनुष्यों को उत्तम पृष्ठपार्थ से उनसम २ गुण वा कर्मों के आवरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ॥ २ शार्थ मा कर्मों के आवरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ॥ २ शार्थ मा कर्मों के आवरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ॥ २ शार्थ मा स्वां मा स्वां मा स्वां मा स्वां मा प्रार्थ से उनसम २ गुण वा कर्मों के आवरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ॥ २ शार्थ मा स्वां मा स्वां मा स्वां मा स्वां मा सुक्यार्थ से उनसम २ गुण वा कर्मों के आवरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ॥ २ शार्थ मा स्वां मा स्वां मा स्वां मा स्वां मा स्वां मा सुक्यार्थ से उनसम २ गुण वा कर्मों के आवरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ॥ २ शार्थ

मान इत्यस्य सप्तधृतिर्वादिण ऋषिः । इद्याणस्पतिदेवता । नियुद्गायत्री छन्दः । पड्जः स्वरः ॥

फिर भी उस परमेश्वर की प्रार्थना किसिलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है || मा नः राथ सोऽअरंक्षो धूर्तिः प्रणुङ्मत्वस्य। रक्षां णो ब्रह्मण-स्पते ॥ ३०॥

पदार्थ:—हे (ब्रह्मणस्पते ) जगदीश्वर ! आप की रूपा से (न:) हमारी वेदवि-द्या (मा) (प्रणक्) कभी नष्ट मत हो और जो (अरुक्पः) दान आदि धर्मरहित प-रधन ग्रहण करने वाले (मर्त्यस्य) मनुष्य की (धूर्ति:) हिंसा अर्थात् द्रोह है उस से (न:) हम लोगों की निरन्तर (रक्ष) रक्षा कीजिये || ३० ||

भावार्थ:—मनुष्यों को सदा उत्तम २ काम करना और बुरे २ काम छोड़ना तथा किसी के साथ द्रोह वा दुष्टों का संग भी न करना और धर्म की रक्षा वा परमेश्वर की उपासना स्तुति और प्रार्थना निरन्तर करनी चाहिये || ३० ||

महित्रीणामित्यस्य सप्तथृतिर्वारुणिऋिषः । आदित्यो देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उस को प्रार्थना किस किये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

महिं श्रीणामवोऽस्तु सुक्षाम्मन्नस्यार्ग्यम्णः। दुराधर्षे वर्सणस्य॥३१॥ पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते ) जगदीश्वर ! आप की छपा से (मिन्नस्य ) बाहिर वा भीतर रहने वाला जो प्राणवायु तथा (अर्थम्णः ) जो आकर्षण सं पृथिवी आदि पदा-थों को धारण करने वाला सूर्यलोक और (वहणस्य ) जल (त्रीणाम् ) इन तीनों के प्रकाश से (नः ) हम लोगों के (धुक्षम् ) जिस में नोति का प्रकाश निवास करता है वा (दुराधर्षम् ) अति कष्ट से प्रहण करने याग्य दृद् (महि ) वड़े वेद विद्या की (अवः ) रक्षा (अस्तु ) हो ॥ ३१॥

भावार्थ:--इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र सं (ब्रह्मणस्पते) (नः) इन दो पदां की अनु-वृत्ति ज्ञाननी चाहिये। मनुष्यों को सब पदार्थों से अपनी वा औरों की न्यायपूर्वक रक्षा कर के यथावत् राज्य का पाळन करना चाहिये॥ ३१॥

निह तेवामित्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिऋषः । आदित्यो देवता । निनृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ||
निह तेषाममा चन नाध्यंमु वार्णेषुं | ईशें रिपुर्घशंथ सः॥३२॥
पदार्थ:—जो ईश्वर की उपासना करने वाले मनुष्य हैं (तेषाम्) उनके (अमा) गृह
(अध्वसु) मार्ग और (वारणेषु) चोर, शत्रु, डांकू, व्यायू आदिके निवारण करने वाले

संग्रामों में (चन) मी (अघशंस:) पापरूप कमों का कथन करने वाला (रिपु:) शत्रु ( नहि ) नहीं स्थित होता और ( न ) न उन को क्लेश देने को समर्थ हो सकता उस ईश्वर और उन धार्मिक विद्वानों के प्राप्त होने को मैं (ईशे) समर्थ होता हूं [,३२]]

भावार्थ: — जो धर्मात्मा वा सब को उपकार करने वाले मनुष्य हैं उन को भय कहो नहीं होता और शत्रुओं से रहित मनुष्य का कोई शत्रुभी नहीं होता ॥ ३२॥ ते हीत्यस्य वारुणि: सप्तश्रृतिऋषि: । अहित्यो देवता । विराड्गायत्री

छन्द:। पड्ज: स्वर:॥

आदित्यों का क्या २ जर्म है इन विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है। ते हि पुत्रासो आदितः म जीवसे मत्यीय । उद्योतिपेच्छुन्त्य-जीसम् ॥ ३३ ॥

पदार्थ:—जो (अदिते:) नाशरिहत कारणरूपी शक्ति के (पुत्रास:) बाहिर भीतर रहने वाले प्राण सूर्यलोक पवन और जल आदि पुत्र हैं (ते) वे (हि) ही (मर्त्याय) मनुष्यों के मरने वा (जीवसे) जीने के लिये (अजस्त्रम्) निरंतर (ज्योति:) तेज वा प्रकाश को (यच्छन्ति) देते हैं ॥ ३३॥

भावार्थ:—जो ये कारण रूपी समर्थ पदार्थों से उत्पन्न हुए प्राण सूर्यलोक वायुवा जल आदि पदार्थ हैं वे ज्योति अर्थात् तेज को देते हुए सब प्राणियों के जीवन वा मरने को लिये निमित्त होते हैं ॥ ३३ ॥

कदा चनेत्यस्य मधुच्छन्द। ऋषि: । इन्द्रो देवता । पथ्या वृहती छन्द: । मध्यम: स्वर: ||

वह इन्द्र केंसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

कदा चन स्नरीरं सि नेन्द्रं सक्षासि दाशुषे। उपोपेन्नु मंघबुनभूग्रुडह्मु ने दानें देवस्यं देवस्यं पृच्यते ॥ ३४ ॥

पदार्थ:—हे (इन्द्र) सुख देनेवाले ईश्वर! जो आप (स्तरी:) सुखों से आच्छादन करने वाले (असि) हैं और (दाशुषे) विद्या आदि दान करने वाले मनुष्यके लिये (कदाचन) कभी (इत्) ज्ञान को (नु) शीध (सक्ष्यसि) प्राप्त (न) नहीं करते तो उस कालमें हे (मघवन्) विद्यादि धनवाले जगदीश्वर! (देवस्य) कभी फल के देने वाले (ते) आपके (दानम्) दिये हुप (इत्) ही ज्ञान को (दाशुषे) विद्यादि देने वाले के लिये (भूय:) फिर (नु) शीध (उपोपपृच्यते) प्राप्त (कदाचन) कभी (न) नहीं होता ॥ ३४॥

भाषार्थं: जो जगदीश्वर कर्म के फल को देनेवाला नहीं होता तो कोई भी प्राणी व्यवस्था के साथ किसी कर्म के फल को प्राप्त नहीं हो सकता || ३४ || तत्सिव तुरित्यस्य विश्वाभित्र ऋषि: । सविता देवता | निचृद्गायत्री छन्दः | पड ज: स्वर: ||

उस जगदीश्वर को कैसी स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

तत्संचितुर्वरेणयम्भगी देवस्यं धीमहि । धियो यो नैः प्रची-दर्पात् ॥ ३५ ॥

पदार्थ:—हम लोग (सिवतु:) सब जगत् के उत्पन्न करने वा (देवस्य) प्रकाश-मय शुद्ध वा खुन्न देने वाले परमेश्वर का जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ (भर्गः) पापक्षप दु:खों के मूल को नष्ट करनेवाला (तेज:) स्वरूप है (तत्) उसको (धामिह) धार-ण करें और (य:) जो अन्तर्यामी सब खुन्नों का देनेवाला है वह अपनी करणा करके (न:) हमलोगों की (धिय:) बुद्धियों को उत्तम २ गुणकर्मस्वभावों में (प्रचोदयात्) धेरणा करें ॥ ३५॥

भावार्थ:—मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि इस सब जगत् के उत्पन्न करने वा सब में उत्तम सब दोषों के नाश करने तथा अयंत शुद्ध परमेश्वरही की स्तुति प्रार्थना और उपासना करें किय प्रयोजन के लिखे जिससे वह धारण वा प्रार्थना किया हुआ हम लोगों को छोटे २ गुण और कमों से अलग करके अच्छे २ गुण कमें और स्वभावों में प्रवृत्त करे इस लिखे और प्रार्थना का मुख्य शिद्धांत यहाँ है कि जैसी प्रार्थना करनी येसा ही प्रवार्थ में कमी का आचरण भी करना चाहिये ॥ ३५ ॥

परित इत्यस्य वामदेव ऋषि: । अग्निदंवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥ वह परमेश्वर कोसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है । परि ते दूडमो राधेऽस्मा २ ॥ स्रोशोतु विद्वतः । धेन रचिसि हाशुषंः ॥ ३६ ॥

पदार्थ:—हे जगदोश्वर! आप (थेन) जिस ज्ञान से (दाशुष:) विद्यादि दान क-रनेवाले विद्वानों को (विश्वत:) सब ओर से (रक्षसि) रक्षा करते और जो (ते) आपका (द्रुम:) दु:खसे भी नहीं नष्ट होने योग्य (रथ:) सब को जानने योग्य वि-ज्ञान सब ओर से रक्षा करने के लिथे है वह ( अस्मान् ) आपकी आज्ञा के सेवन करने व.ले हम लोगों को (परि) सब प्रकार (अश्नोत्) प्राप्त हो ॥ ३६ ॥ भाषार्थ: मजुष्यों को सब की रक्षा करने वाले परमेश्वर वा विज्ञान की प्राप्ति के लिये प्रार्थना और अपना पुरुपार्थ नित्य करना चहिए। किया से हम लोग अविद्या अधर्म आदि दोषों को त्याग करके उत्तम २ विद्या धर्म आदि शुक्ष्णणों को प्राप्त होकें सदा सुखी होतें ॥ ३६॥

भूभुँवरित्यस्य वामदेव ऋषि: । प्रजापतिदेवता । ब्राह्मचुष्णिक् छन्दः । ऋषभ: स्वरः॥
फिर <mark>उस जगदीस्वर की प्र</mark>ार्थना किस छिथे करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले सन्त्र में किया है ॥

भू भृंदः स्वः सुप्रजाः प्रजाि नः स्पार सुविरों विहे सुपंषः पंषिः। नधे प्रजाम्भे पाद्धि वास्यं प्रजाम्भे पाद्धि वास्यं प्रजाम्भे पाद्धि । ३७॥ पदार्थः — हे (नर्यं) नोतियुक्त मनुष्यों पर स्पा करने वास्रे परमेश्वर आप स्पा करके (मे) मेरी (प्रजाम्) पुत्र आदि प्रजा की (पाहि) रक्षा जीजिये वा (मे) मेरे (पश्च् ) गौ घोड़े हाथी आदि पशुओं की (पाहि) रक्षा कीजिये हे (अथर्यं) सन्देह रहित जगदीश्वर ! आप (मे) मेरे (पिनुम्) अस्र कीजिये हे (अथर्यं) सन्देह रहित जगदीश्वर ! आप (मे) मेरे (पिनुम्) अस्र की (पाहि) रक्षा कीजिये । हे (शंख्य) सनुति करने योग्य क्रंबर ! आप की स्पा से में (भू भू वा स्वः) जो प्रिय स्वरूप प्राण, वल का हेतु उदान तथा सब चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु व्यान वायु है उन के साथ युक्त हो के (प्रजािमः) अपने अनुकुल स्त्रो, पुत्र, विद्या, धर्म, मित्र, मृत्य, पशु आदि पदार्थों के साथ (सुप्रजाः) उत्तम विद्या धर्म युक्त प्रजा सहित वा (वारेः) शौर्यं केयें विद्या शत्रु मों के निवारण प्रजा के पालन में कुशलों के साथ (सुपीरः) उत्तम श्रूर वार्युक्त और (पोषेः) पृष्टिकारक पूर्ण विद्या से उत्पन्न हुए व्यवहारों के साथ (सुपीरः) उत्तम पृष्ट उत्पादन करने वाला (स्थाम्) नित्य होनं।। ३७॥

भावार्थ:-मनुष्यों को ईश्वर को उपासना वा उस की आज्ञा से पालन का आश्वयं लेकर उत्तम २ नियमों से वा उत्तम प्रजा श्र्रता पृष्टि आदि कारणों से प्रजा का पाल-न करक निरन्तर सुखों को सिद्ध करना चाहिये॥ ३७॥

आगन्मेत्यस्यासुरिऋष्यः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ अब अग्नि शब्द से ईश्वर और मौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥ आगेरम विद्ववर्षेदसमूसमभ्यं वसुवित्तंमम् । अग्ने सम्राद्धिमः सुम्मम्भि सष्टु आ यंच्छस्य ॥ ३८॥

पदार्थः—है ( सम्राट् ) प्रकाशस्त्ररूप ( अग्ने ) जगदीश्वर ! आप ( असम्यम् ) उ-पासना करने वाले हम लोगों के लिये ( सुम्नम् ) प्रकाशस्त्रहण उत्तम यश**्वा** (सह) उत्तम बल की ( अभ्यायच्छन्त ) सब ओर से विस्तारयुक्त करते ही इसलिये हम लोग (वशुवित्तमम् ) पृथिवी आदि लोकों के जानने वा (विश्ववेदसम् ) सब सुझां के जानने वाले आप को (अभ्यागन्म ) सब प्रकार प्राप्त होवे ॥ १॥ जो यह (स-म्न.ट्) प्रकाश होने वाला (असे ) भौतिक अग्नि (असम्यम् ) यज्ञ के अनुष्टान करने वाले हम लोगों के लिखे (युम्म ) उत्तम २ यश वा (सहः) उत्तम २ वल को (अभ्यायच्छन्व) सब प्रकार विस्ततार युक्त करता है उस (वशुवित्तमम्) पृथिवी आदि लोकों को सूर्य रूप से प्रकाश कर के प्राप्त कराने वा (विश्ववेदसम्) सब शुक्षों को जानने वाले अग्नि को हम लोग (अभ्यागन्म) सब प्रकार प्राप्त होवे ॥ २॥ ३०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेपालङ्कार है—शतुष्यों को परमेश्वर वा भौतिक अग्नि के गुणों को जानने वा उस के अनुसार अनुष्ठान करने से कीर्ति यश और बल का विस्तार करना चाहिये ॥ ३८॥

भयमग्निरित्यस्य। सुरिजर्मि । अग्निर्देवता । भुरिग्वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥ अव अगले सन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्निका उपदेश किया है ॥

अयम्गिनगृहर्वित्याद्वितत्यः प्रजायां वसुवित्तमः। अग्नै गृहपः तेऽभिद्युग्नम्भि सह आर्यच्छस्य ॥ ३९ ॥

पदार्थ:—हैं (गृहपते ) घर के पालन करने वाले (अग्ने) परमेश्वर जो ! (अयम्) यह (गृहपितः ) स्थानविशेषों के पालन हेतु (गाईपत्यः) घर के पालन करने वालों के साथ संयुक्त (प्रजाया युविक्तः) प्रजा के लिथे सब प्रकार धन प्राप्त कराने वाले हैं सो आप जिस कारण (युझार) हुन्य और प्रकाश से युक्त धन को (अभ्यायच्छस्व) अच्छी प्रकार दीजिये तथा (सहः ) उत्तम वल पराक्रम (अभ्यायच्छस्व) अच्छी प्रकार दीजिये तथा (सहः ) उत्तम वल पराक्रम (अभ्यायच्छस्व) अच्छी प्रकार दीजिये ॥ १ ॥ जिस कारण जो (गृहपितः ) उत्तम स्थानों के पालन का हेतु (प्रजायाः) पृत्र मित्र स्त्री और शृत्य आदि प्रजा को (वसुविक्तमः) ह्व्यादि को प्राप्त कराने वा (गाईपत्यः ) गृहों के पालन करने वालों के साथ संयुक्त (अयम्) यह (अग्ने ) बिज्ञली सूर्य वा प्रत्यक्षरूप से अग्नि है इस से वह (गृहपते ) धरों का पालन करने वाला (अग्ने ) अग्नि हम लोगों के लिये (अभिचुम्नम् ) सब ओर से उत्तम २ धन वा (सहः ) उत्तम २ वलों को (अभ्यायच्छस्व ) सब प्रकार से विस्तारयुक्त करता है ॥ ३९ ॥

भावार्य: --इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है-गृहस्थ लोग जब ईश्वर की उपासना और उस की आज्ञा में प्रवृत्त होके कार्य्य की सिद्धि के लिये इस अग्नि को संयुक्त करते हैं तब वह अग्नि अनेक प्रकार के धन और वर्ली को विस्तार युक्त करता है। क्योंकि यह प्रजा में पदार्थी की प्राप्ति के लिथे अत्यन्त खिद्धि करने हारा है। ३१॥ अयमग्नि: पुरीष्य इत्यस्या दुरिऋषि:। अग्निवेंवता। निचृदनुष्टुष् छः ३:। गान्धारः स्वरः।

किर भौतिक भन्नि केसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥
अथमानिः पुरीष्यो रियमान् पुष्टिवर्द्धनः। अन्ते पुरीष्याभिसुनम्मि सह उभा यंच्छस्य ॥ ४०॥

पदार्थ: हे (पुरीष्य) कर्मों के पूरण करने में अति कुशल (अग्ने) उत्तम से उत्तम पदार्थों के प्राप्त कराने वाले विद्वान आप जो (अयम्) यह (पुरीष्य:) सब खु- लों के पूर्ण करने में अलुत्तम (रियमान्) उत्तम र धनयुक्त (पुष्टिवर्धन:) पुष्टि को बढ़ाने वाला (अग्नि:) भौतिक अग्नि है उससे हम लोगों के लिथे (अभियुद्धम्) उत्तम र ज्ञान को सिद्ध करने वाले धन वा (अभिसह:) उत्तम र शरीर और आत्मा के वलों को (आयच्छस्व) सब प्रकार से विस्तोर्युक्त को जिये।। ४०।।

भाषार्थ:-- मनुष्यों को परमेश्वर की रूपा वा अपने पुरुषार्थ से अग्निविद्या को सं-पादन करके अनेक प्रकार के धन और वलों को विस्तार्युक्त करना चाहिये॥ ४०॥

गृहा मेत्यस्यास्त्रिरिप्रदेषिः । वास्तुरिप्तवेवता । आर्था पङ्किश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अव अगले मन्त्र में गृहस्थाश्रम के अनुष्टान का उपदेश किया है।। गृहा मा विभीत मा वैपध्यम्दर्ज विश्चंत एमंसि। ऊर्ज विश्चं-

द्रः सुनर्नाः सुमेषा गृहानैमिननंसा मोदंमानः ॥ ४१ ॥

पदार्थ:—हे ब्रह्मचर्याश्रम से क्व विद्याओं को ब्रहण किये गृहाश्रमी तथा (कर्जम्) शौर्यादि पराक्रमों को (विस्तः) धारण किये और (गृहाः) ब्रह्मचर्याश्रम के अनन्तर अर्थात् गृहस्थाश्रम को प्राप्त होने को इच्छा करते हुए मनुष्योः तुम गृहस्थाश्रम को यथावत् प्राप्त होओ उस गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से (मा विभोत) मत उरो तथा (मा वेपच्चम् ) मत कंपो तथा पराक्रमों को धारण किथे हुए हम लोग (गृहान् )गृहस्था-श्रम को प्राप्त हुए तुम लोगों को (पमिस ) नित्य प्राप्त होते रहें और (वः) तुम लोगों में स्थित होकर इस प्रकार गृहस्थाश्रम में वसंभान (सुमनाः) उत्तम ज्ञान (सुमेधाः) उत्तम बुद्धियुक (मनसा) विज्ञान से (मोध्मानः) हभ उत्ताह्युक (कर्जम् ) अनेक प्रकार के बलों को (विस्त् ) धारण करता हुआ में अत्यंत सुद्धों को (पिम) निरन्तर प्राप्त होऊं ॥ ४१ ॥

भावार्ष:--मनुष्यों को पूर्ण ब्रह्मचर्याश्रम को सेवन कर के युवावस्था में स्वयंवर के विधान की रीति से दोनों के तुन्य स्वभाव विद्यारूप बुद्धि और बल आदि गुणों को देख कर विवाह कर तथा शरीर आत्मा के बल को सिद्ध कर और पुत्रों को उत्पन्न कर के सब साधनों से अच्छे २ व्यवहारों में स्थित रहना चाहिथे तथा किसी मनुष्य को गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से भय नहीं करना चाहिथे क्योंकि सब अच्छे व्यवहार वा सब आश्रमों का यह गृहस्थाश्रम मूल है इससे इस गृहस्थाश्रम का अनुष्ठान अच्छे प्रकार से करना चाहिथे और इस गृहस्थाश्रम के विना मनुष्यों की वा राज्यादि व्यव-हारों की सिद्धि कभी नहीं होती ॥ ४१ ॥

वेषामित्यस्य शंयुक्रिषिः । वास्तुपतिरिम्निर्देवता । अनुप्दुन् छन्दः । गाधारः स्वरः ॥
फिर वह गृहरुथः श्रम कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥
चेषां मुख्योति प्रवस्न नेपेषुं सीमनुस्ता बहुः । गृहानुपं ह्वयामह ने
नो जामन्तु जानुनः ॥ ४२ ॥

पदार्थ:—( प्रसवत् ) प्रवास करता हुआ अतिथि ( धेनाम् ) जिन गृहस्थां का ( अध्येति ) स्मरण करता वा ( धेषु ) जिन गृहस्थां में ( बहु: ) अधिक (सीमनसः) प्रीतिभाव है उन ( गृहान् ) गृहस्थां का हम अतिथि छोन ( उपह्रयामहे ) निस्य प्रति प्रश्ता करते हैं जो प्रीति रखने वाले गृहस्थ छोग हैं ( ते ) थे ( जानतः ) जानते हुए वार्मिक ( नः ) हम अतिथि छोनों को ( जानंतु ) यथावत् जानें ॥ ४२ ॥

भावार्थ: शृहस्थां को सब धार्मिक अतिथि लोगों के वा अतिथि लोगों को गृहस्थां के साथ अत्यन्त प्रीति रखनी चाहिये और दुष्टां के साथ नहीं तथा उन विद्वानों के सङ्घ से परस्पर वार्चालाप कर विद्या की उन्नति करनी चाहिये और जो परोपकार करने व ले विद्वान अतिथि लोग हैं उन को संवा गृहस्थां के निरन्तर करनी
चाहिये औरों की नहीं ॥ धर ॥

उपद्वता इत्यस्य शंयुर्वोर्हस्यस्य ऋषिः । व.स्तुपतिर्देवता । भुरिग्जगती छन्दः । दियादः स्वरः ॥

फिर उस गृहस्थाश्रम को कैसे सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपंद्वताऽद्वह गाबुऽउपंद्वताऽअजावर्यः । अधोअसंस्य कीलालुऽ उपंद्वतो गृहेषुं नः । क्षेमांय बः श्लात्ये प्रपंचे श्लावक श्लामक श्लो-र्याः श्लोपोः ॥ ४३ ॥ पदार्थ:—(इह) इस गृहस्थाश्रम वा संसार में (व:) तुम लोगों के (शान्त्यें) हुल (क:) हम लोगों की क्षे माय रक्षा के (गृहेलु) निवास करने योग्य स्थानों में जो (गाव:) हुम देने वाली गी आदि पशु (उपहृता:) समीप प्राप्त किये दा (अ-जावय:) भेड़ बकरी अदि पशु (उपहृता:) समीप प्राप्त हुए (अथो) इस के अनन्तर (अकस्य) प्राण धारण करने वाले (कीलाल:) अज अदि पदःचों का समृह (उपहृता:) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ हो इन सब की रक्षा करता हुआ जो में गृहस्थ हूं सो (शंयो:) सब सुखों के साधनों से (शिवम्) कल्याण वा (शम्मम्) उत्तम दुखों को (प्रपद्यों) प्राप्त होऊं ॥ ४३॥

भाषार्थ: गृहस्थों को योग्य है कि ईश्वर की उपासना वा उस की आज्ञा के पालने से गौ हाथी बोड़े आदि पशु तथा भोजन पाने योग्य स्वादु पदार्थों का संब्रह कर अपनी वा औरों की रक्षा कर के ज्ञान धर्म विद्या और पुरुष से इस लोक वा परलोक के खुलों को सिद्ध करना चाहिये किन्तु किसी पुरुष थीं को आलस्य में नहीं रहना चाहिये किन्तु सब मनुष्य पुरुपार्थ वाले होकर धर्म से चक्रवर्ति राज्य आदि धर्नों को संब्रह कर उन की अच्छे प्रकार रक्षा कर के उत्तम र खुलों को प्राप्त हों इस से अन्यथा मनुष्यों को वर्तना न चाहिये क्योंकि अन्यथा वर्तने वालों को खुल कभी नहीं होता ४३ प्रधासिन इत्यस्य प्रजापतिक्रीय: | मरुतो देवता | गायत्री छन्दः | पहुजः स्वरः ॥

प्रधासिन इत्यस्य प्रजापातऋषः । मस्ता दवता । गावजा छन्दः । पड्जः स्वरः ॥ गृहस्थ मनुष्यों को क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है।

प्रशासिनों हवामहं मुरुनेश्च रिशार्ट्सः । कर्श्मणं मुजार्षसः।४४। पदार्थः—हम लोग (कर्श्मण ) अविद्यार्द्धाः दुःख होने सं अलग हो के (सजोप-सः ) बराबर प्रांति के सेवन करने (रिशाद्सः ) दोष वा शत्रुआं को नष्ट करने और

(प्रधासिन: ) पके हुए पदार्थों के भोजन करने वाले अतिथि लोग और ( महत: ) यज्ञ करने वाले विद्वान लोगों को (हवामहे) सत्कारपूर्वक नित्य प्रति बलाते रहें ।४४।

भावार्थ: - गृहस्थों को उचित है कि वैद्यक श्र्रवारता और यह की सिद्ध करने वाले मनुष्यों को बुलाकर उनकी यथावत् सत्कारपूर्वक संवा कर के उन से उत्तम २ विद्या वा शिक्षाओं को निरन्तर ब्रहण करें।। ४४।।

यद्प्राप्त इत्यस्य प्रजापतिऋषिः । मस्तो देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर अगले मन्त्र में गृहस्थों के कर्मों का उपदेश किया है ॥ चढ्यामे चढ्रं <u>ग्ये चरमाणां</u> चिद्दि निहुषे। चढ्ने अकृमा <u>चयमि</u>-दन्तद्वं चजामहे स्वाहां॥ ४५ ॥ पदार्थ:—(वयम्) कर्म के अनुष्ठान करने वाले हम लोग (यत्) (झामे ) जो गृहस्थों से सेवित झाम (यत्) (अरण्ये) वानप्रस्यों ने जिस वन की सेवा की हो (यत्सभायाम्) विद्वान लोग जिस सभा की सेवा करते हों और (यत्) (इन्द्रिये) योगी लोग जिस मन वा श्रोत्रादिकों की सेवा करते हों उस में स्थित होके जो (एन:) पाप वा अधर्म (चक्रम) करा वा करेंगे सो सब (अवयजामहे) दूर करते रहें तथा जो २ उन २ उक्त स्थानों में (स्वाहा) सत्य वाणी से पुण्य वा धर्माचरण (चक्रम) करना योग्य है (तत्) उस २ को (यजामहे) प्राप्त होते रहें ॥ ४५॥

भाषार्थ:—चारों आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों को मन वाणी और कमीं से सत्य कमीं का आचरण कर पाप वा अधमीं का त्याग कर के विद्वानों की सभा विद्या तथा उत्तम २ शिक्षा के प्रचार कर के प्रजा के खुलों की उन्नति करनी चाहिये। ४५ ॥ मोषूण इयस्यागस्त्य ऋषि: । इन्द्रमास्ती देवते । भुरिक् एकिंग्छन्द: । एचम: स्वर: ॥ ईश्वर और शूर्वार के सहाय से युद्ध में विजय होता है इस विषय का उप-

देश अगले मन्त्र में किया है ॥

मो ष्यंऽहरद्वात्रं पृत्सु देवैरस्ति हिष्माते श्राष्ट्रमञ्ज्याः। मह हिचचस्यं मीढ्षे। युव्या हविष्यंतो मुक्तो वर्दते गीः॥ ४६॥

पदार्थ:—है (इन्द्र) शूरविर !आप (अत्र) इस लोक में (इत्सु) युद्धों में (दे वें:) विद्वानों के साथ (न:) हम लोगों की (स्तु) अच्छे प्रकार रक्षा काजिये तथा (मो) मत हनन क.जिये। है (शुष्मन्) पूर्ण बल्युक शूरवीर ! (हि) निश्चय कर के (चित्) जैसे (ते) आप की (मह:) वड़ी (गो:) वेद प्रमाण्युक वाणी (मीढ्यः) विद्या आदि उत्तम गुणों के सी चने वा (हविष्मत:) उत्तम २ हिव अर्थात् पदार्थ युक्त (महत:) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले विद्वानों के (यन्दते) गुणों का प्रकाश करती है जैसे विद्वान् लोग आप के गुणों का हम लोगों के अर्थ निरन्तर प्रकाश कर के आनन्दित होते हैं वेसे जो (अवया:) यज्ञ करने वाला यज्ञमान है वह आप की आज्ञा से जिन (यव्या) उत्तम २ यव आदि अन्नों को अग्नि में होम करता है वे पदार्थ सब प्राणियों को सुख देने वाले होते हैं ॥ ४६ ॥

भावार्थ: इस मन्त्र में उपमालंकार है। जब मगुष्य लोग परमेश्वर की आराधना कर अच्छे प्रकार सब सामग्री को संग्रह करके युद्ध में शत्रुओं को जीतकर चक्रवर्ति राज्य को प्राप्त कर प्रजा का अच्छे प्रकार पालन करके बड़े आनन्द को सेवन करते हैं तब उत्तम राज्य होता है। ४६॥

अक्रक्रित्यस्यागस्य ऋषि: । अग्निरंवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ कौन २ मनुष्य यज्ञ युद्ध आदि कर्मों के करने की योग्य होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भक्रन् कमें कर्मकृतः सह बाचा मंग्रोभुवां । देवेभ्गः कमें कृत्वास्तं प्रेतं सचाभुवः ॥ ४७॥

पदार्थ:—जो मनुष्य लोग ( मयोभुवा ) सत्यित्रय मंगल के कराने वाली (वाचा) वेदवाणी वा अपनी वाणी के ( सह ) साथ ( सचाभुव: ) परस्पर संगी होकर ( क- मैंकृत: ) कर्मों को करते हुए ( कर्म ) अपने अभीष्ट कर्म को ( अक्रन् ) करते हैं वे (देवेभयः विद्वान वा उत्तम २ गुण खुखाँ के लिये ( कर्म ) करने योग्य कर्म का (कृत्वा) अनुष्टान करके ( अस्तम् ) पूर्ण खुखाँ कर को ( प्रेत ) प्राप्त होते हैं ॥ ४७॥

भावार्थ:—मनुष्यां को योग्य है कि सर्जथा आलस्य को छोड़कर पुरुपार्थ ही में निरंतर रह को मूर्जपन को छोड़कर वेद विद्या से शुद्ध किई हुई वाणी को साथ सदा वतें और परस्पर प्रीति करके एक दूसरे का सहाय करें जो इस प्रकार के मनुष्य हैं वेही अच्छे र सुख युक्त मोश्च वा इस लोक को खुखों को प्राप्त हो कर आनिन्दत होते हैं अन्य अर्थान् आलसी पुरुष आनन्द को कभी नहीं प्राप्त होते ॥ ४७ ॥

अवसृथेत्रस्यौर्णवाभ ऋषि: । यज्ञो देवता । ब्राह्मचनुष्टुप् छन्द: । गान्धारः स्वरः ॥ अव अगले मंत्र में यज्ञ को अनुष्ठान करने व.ले यजमान को कर्मों का उपदेश किया है ॥

अर्वभृथनिचुम्पुण निचंहरसि निचुम्पुणः। अर्व देवेदेवक्रंत्रमे-नीयासिष्यम्य मर्त्येर्मर्त्यकृतम्पुरुराव्णी देव रिषस्पाहि॥ ४८॥

पदार्थ:—हे (अवभृथ) विद्या वा धर्म के अनुष्ठान से शुद्ध (निचुम्पुण) धेर्य से शब्दविद्या को पढ़ाने वाला विद्वान मनुष्य जैसे मैं (निचुम्पुण:) ज्ञान को प्राप्त कराने वा (निचेह:) निरंतर विद्याका संप्रह करने वाला (देवै:) प्रकाश स्वरूप मन आदि इन्द्रियों से (देवहतम्) किया वा (मर्थै:) मरणधर्मवाले (मर्थेहतम्) शरीरों से किये हुये (एन:) पापों को (अवायासिषम्) दूर कर शुद्ध होता हूं वैसे तू मी (असि) हो हे। (देव) जगदीरवर! आप हम लोगों की (पुरुराव्या:) बहुत दु:ख देने वा (रिष:) मारने योग्य शत्रु वा पाप से (पाहि) रक्षा की जिये अर्थात् दूर की जिये ॥ ४८ ॥

भावार्थ:---इस मंत्र में वाचकलुत्तोपमालंकार है--- मनुष्यों को उचित है कि पापकी

100

निवृत्ति धर्म की वृद्धि के लिये परमेश्वर को प्रार्थना निरन्तर कर के जो मन याणी वा शरीर से पाप होते हैं उन से दूर रह के जो कुछ अज्ञान से पाप हुआ हो उसके दु:ख कप फल को जान कर फिर दूसरी वार उस को कमी न करें किन्तु सब काल में शुद्ध कर्मी के अनुष्ठान ही की वृद्धि करें || ४८ ||

पूर्णादर्विरित्यस्पें जीवाभ ऋषि:।यहा देवता। अनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥ यहा में हवन किया हुआ पदार्थं केसा होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पूर्वा देखि पर्रा पन सुर्पृष्णी पुन्रापेत । बस्नेब विक्रीणावहाऽ-इषुमुर्जि ७ रातकतो ॥ ४९ ॥

पदार्थ:—जो (दिर्घ) पक हुए होम करने योग्य पदार्थों को ग्रहण करने वाली (पूर्णी) द्रव्यों से पूर्ण हुई आहुती (परापत) होम हुए पदार्थों के अंशों को ऊपर प्राप्त करती वा जो आहुति आकाश में जाकर वृष्टि से (सुपूर्णी) पूर्ण हुई (पुनरापत) फिर अच्छे प्रकार पृथिवी में उत्तम जल रस को प्राप्त करती है उस से हे (शतकती) असंख्यात कर्म या प्रद्वा वाले जगदीश्वर! आपकी छ्या से हम यज्ञ कराने और करने वाले विद्वान होता और यजमान दोनों (इपम्) उत्तम २ अन्नादि पदार्थ ( ऊर्जम् ) प्राक्रम्युक वस्तुओं को (वस्नेव) बेश्यों को व्यवहारों को समान (विक्रीणावहें) दें वा ग्रहण करें ॥ ४३ ॥

भावार्थ:—इन्त मंत्र में उपमालंकार है। जय मनुष्य लोग सुगन्ध्यादि पदार्थ अग्नि में हवन करते हैं तय ये उत्पर जाकर वायु वृष्टि जल को शुद्ध करते हुए पृथियों को आते हैं जिस से यव आदि ओपघो शुद्ध हो कर सुख और पराक्रम के देने वाली हो-तो हैं जैसे कोई वेश्यलोग रूपया आदि को दे ले कर अनेक प्रकार के अवादि पदार्था को ख्रांदित बावेंचते हैं वेसे सबहम लोग मो अग्नि में शुद्ध द्रव्यों को छोड़ कर वर्षा वा अनेक सुखी को खरीदते हैं खरीद कर फिर वृष्टि और सुखी के लिये अग्नि में हवन करते हैं ॥ ४ ॥

देशि म इत्यस्यौर्णवाभ ऋषि:। इन्द्रो देवता। सुरिगनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

अव सगले मंत्र में सब आश्रमां में रहने वाले मनुष्यों के व्यवहारों का उपवेश किया है॥

देहि में द्दांमि ते नि में थेहि नि ते द्धे। निहार च हरांसि में निहार शिहराणि ते स्वाहां॥ ५०॥ पदार्थः है मित्र ! तुम (खाहा) जैसे सत्यवाणी हृदय में कहे बैसे (मे) मुझको यह वस्तु (देहि) दे वा मैं (ते) तुझ को यह वस्तु (दरामि) देऊं वा चेऊंगा तथा तू (मे) मेरा यह वस्तु (निघंहि) धारण कर मैं (ते) तुःहारा यह वस्तु (निद्धे) धारण करता हूं और तू (मे) मुझ को (निहारम्) मोल से खरीदने योग्य वस्तु को (हरासि) ले मैं (ते) तुझ को (निहारम्) पदार्थों का मोल (निहराणि) निश्चय करके देऊं (स्वाहा) ये सब व्यवहार सत्यवाणी से करें अन्यथा ये व्यवहार सिद्ध नहीं होते हैं ॥ ५०॥

भावार्थ:—सब मनुष्यों को देना लेना पदार्थों को रखना रखवाना वा धारण करना आदि व्यवहार सत्यप्रतिज्ञा से ही करने चाहिये जैसे किसी मनुष्य ने कहा कि यह वस्तु तुम हम को देना में यह नहीं देता तथा देऊंगा ऐसा कहे तो वहां वैसा ही करना तथा किसी ने कहा कि मेरा यह वस्तु तुम अपने पास रख लेओ जब में इन्छा करूं तब तुम दे देना इसी प्रकार में तुम्हारा यह वस्तु रख लेता हूं जब तुम इन्छा करोगे तब देऊंगा वा उसी समय में तुम्हारा यह वस्तु रख लेता हूं जब तुम इन्छा करोगे तब देऊंगा वा उसी समय में तुम्हारे पास आऊंगा वा तुम आकर ले लेना इत्यादि ये सब व्यवहार सत्यवाणी ही से करने चाहिये और ऐसे व्यवहारों के विना किसी मनुष्य की प्रतिष्ठा वा कार्यों की सिद्धि नहीं होतों और इन दोनों के विना कोई मनुष्य सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ५०॥

अक्षित्रित्यस्य गोतम ऋषि: । इन्द्रो देवता । विराट् पंकिश्छन्दः । पंचम: स्वर: ॥ उस यज्ञादि व्यवहार से क्या२ होता है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ग्रक्षन्नमी मदन्त्वार्व प्रियाऽअध्यत । अस्तीयत् स्वभानवी

विप्रा नविष्ठया मुनी योजान्विन्द्र ते हरी :: ५१॥

पदार्थ:—हे (इन्द्र) सभा के स्वामी जो (ते) आप के सम्बन्धी मनुष्य (स्व-भानवः) अपनी ही दीप्ति से प्रकाश होने वा (अविध्याः) औरों को प्रमन्न कराने वाले (विधाः) विद्वान् लोग (निवष्टया) अत्यन्त नवीन (मती) बुद्धि सं (हि) निश्चय करके परमात्मा की (अस्तोषत) स्तुति और (अल्नेन) उत्तम २ अमादि प्रवायों को भक्षण करते हुए (अमीमदन्त) अनन्द को प्राप्त होने और उसीसे वे शबु वा दुःखीं को (न्वव्यत) शीध कीपत करते हैं वेसं हो इस यज्ञ में (इन्द्र) हे सभापते! (ते) आप के सहाय से इस यज्ञ में निपुण हों और दू (हरी) अपने वल और पराक्रम को हम लोगों के साथ (योज) संयुक्त कर ॥ ५१॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है-मनुष्यों को उचित है कि प्रतिदिन नवीन २ ज्ञान वा किया की वृद्धि करते रहें जैसे मनुष्य विद्वानों के सत्सक्त वा शास्त्रों के प- द्ने से नवीन २ बुद्धि नवीन २ किया को उत्पन्न करते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को अ-जुष्टान करें ॥ ५१ ॥

सुसंदर्शमित्यस्य गीतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराद् पङ्किश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥ वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥ मु<u>मं</u>दद्यीत्वा <u>व</u>यं मर्घवन्वन्दिष्यिमिहिं । प्र नूनं पूर्णवन्धुर स्तुतो यांसि व<u>ञाँ</u>र॥ ग्रमु योजान्दिन्द्र ते हरीं ॥ ५२ ॥

पदार्थ:—है (मधवन्) उत्तम २ विद्यादि धनयुक्त (इन्द्र) विद्वान तू (वयम्) हम लोग ( झुसंदशम् ) अच्छे प्रकार व्यवहारों के देखने वाले ( ते ) आप की (नूनम्) विद्यय कर के (वंदिषीमहि ) स्तुति करें तथा हम लोगों से (स्तुतः ) स्तुति किये हुए आप (वशान् ) इच्छा किये हुए पदार्थों को (यासि ) प्राप्त करते हो और (ते) अपने (हरी ) यल पराक्रमों को अप (अनुप्रयोज ) हम लोगों के सहाय के अर्थ युक्त कीजिये ॥ १॥ (वयम् ) हम लोग ( सुसंदशम् ) अच्छे प्रकार पदार्थों को दिखाने वा ( मधवन् ) धन को प्राप्त कराने तथा ( पूर्णवन्धुरः ) सब जगत् के बन्धन के हेतु (त्वा ) उस सूर्यलोक की ( नूनम् ) निश्चय करके ( वन्दिपीमहि ) स्तुति अर्थात् इस के गुण प्रकाश करके ( स्तुतः ) स्तुति किया हुआ यह हम लोगों को ( वशान् ) उत्तम २ व्यवहारों की सिद्धि कराने वालो कामनाओं को ( यासि ) प्राप्त कराता है ( तु ) जैसे ( ते ) इस सूर्य के (हरी) धारण आकर्षण गुण जगत् में युक्त होते हैं बैसे आप हम लोगों को विद्या को सिद्धि करने वाले गुणों को ( अनुप्रयोज ) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये ॥ ५२ ॥

भावार्थ: इस मन्त्र में श्लेष और उपमालक्कार है मजुष्यों को सब जगत् के हित करने वाले जगदीश्वर ही की स्तृति करनी और कीसी की न करनी चाहिये। क्योंकि जैसे सूर्यलोक सब मूर्तिमान द्रव्यों का प्रकाश करता है बेसे उपासना किया हुआ ईश्वर भी भक्त जनों के आत्माओं में विज्ञान को उत्पन्न करने से सब सत्यव्यवहारों को प्रकाशित करता है इस में ईश्वर को छोड़ कर और किसी की उपासना कभी नहीं करनी चाहिये॥ ५२॥

मनोन्वित्यस्य बन्धुर्ऋषः । मनोदेषता । अतिपादिनिचृदगायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥ इस के आगे मन के लक्षण का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥ मनो न्वाह्वां महे नारा <u>घां छे सेन</u> स्तो मेंन <u>पितृ</u>षां <u>च</u> मन्मं भिः॥५३॥ पदार्थः —हम लोग ( नाराशंसेन ) पुरुषा के अत्यन्त प्रशंसनीय ( स्तोमेन ) स्तु-

तियुक्त व्यवहार और (पितृणाम्) पालना करने वाले ऋ तु वा ज्ञानवान् मनुष्यों के ( ग्रन्मिन: ) जिन से सब गुण जाने जाते हैं उन गुणों के से ( ग्रनः ) संकल्पविकहपा- त्मक चित्त को ( अन्वाह्नामहे ) सब ओर से हटा के हढ़ करते हैं ॥ ५३॥

भावार्थ:—मनुष्यों को मनुष्य जन्म की सफलता के लिये विद्या शादि गुणों से युक्त मन को करना चाहिये जैसे ऋतु अपने २ गुणों को कम २ से प्रकाशित करते हैं तथा जैसे विद्वान लोग कम २ से अनेक प्रकार की अन्य २ विद्याओं को साक्षात्कार करते हैं वैसा ही पुरुषार्थ करके सब मनुष्यों को निरन्तर विद्या प्राप्ति करनी खानिहिये ॥ ५३ ॥

आनपत्वित्यस्य बन्धुऋषिः । मनो देवता । विराड् गायत्री छन्दः । वह्तः स्वरः ॥

फिर वह मन फैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भ्रा नंऽएतु मनः पुनः ऋत्वे दक्षांच जीवसे ज्वोक् च म्पे दृशे॥५४॥

पदार्थ:—(म न:) जो स्मरण कराने वाला चित्त (ज्योक्) निरंतर (सूर्यम्) परमेश्वर सूर्यलोक वा प्राण को (हशे) देखने वा (कत्वे) उत्तम विद्या वा उत्तम क-में। की स्मृति वा (जीवसे) सो वर्ष से अधिक जीने (च) और अन्य शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये हैं वह (न:) हम लोगों को (पुनः) वारम्वार जन्म २ में (आ) सब प्रकार से (पतु) प्राप्त हो ॥ ५४॥

भाषार्थ:—मनुष्यों को उत्तम कमी के अनुष्ठान के लिये चित्त की शुद्धि था जन्मर में उत्तम चित्त की प्राप्ति ही की इच्छा करें जिस से मनुष्यजन्म को प्राप्त होकर ईश्वर की उपासना का साधन करके उत्तम २ धर्मों का सेवन कर सके ॥ ५४॥

पुनर्न इत्यस्य बन्धुऋषि:। मनो देवता। निचृद्गायश्री छन्दः। षड् जः स्वरः॥ फिर मन शब्द से बुद्धि का उपदेश अगले मन्त्र में कियः है॥

पुनर्नः पितरो मनो ददांतु दैन्छो जनः। जीवं बातंश सचे-महि॥ ५५॥

पदार्थ:—हे (पितर:) उत्पादक वा अश्व शिक्षा वा विद्या को देकर रक्षा कर-ने व.ले पिता आदि लोग आप की शिक्षा से यह (वैच्य:) विद्वानों के बीच में उ-त्यश्व हुआ (जन:) विद्या वा धर्म से दूसरे के लिये उपकारों को प्रकट करने वाला विद्वान पुरुष (न:) हम लोगों के लिये (पुन:) इस जन्म वा दूसरे जन्म में (मन:) धारणा करने वाली बुद्धि को (ददातु) देवे जिससे (जीवम्) ज्ञानसाधन युक्त ज्ञी-वन वा (ब्रातम्) सत्य बोलने आदि गुण समुदाय को (सच्चेमहि) अच्छे प्रकार प्रा-स करें || ५५ || भावार्थ:—विद्वान् माता पिता आचार्थ्यों की शिक्षा के विना मनुष्यों का जम्म सफल नहीं होता और मनुष्य भी उस शिक्षा के विना पूर्ण जीवन वा कर्म के संयुक्त करने का समर्थ रहीं हो सकते इस से सब काल में विद्वान् माता पिता और आचार्यों को उचित है कि अपने पुत्र आदि को अच्छे प्रकार उपदेश से शरीर और आतमा के बल्ल करें।। ५५ ॥

वयमित्यस्य बन्धुऋषिः । सोमो देवता । गायत्रो छन्दः । पर्जः स्वरः ॥ अय सोम शब्द से ईश्वर और ओषधियों के ग्रहों का उपदेश अग्रहे मन्त्र में किया है ॥ व्ययक्षसीम ज्ञते तव मनंस्तृतुषु विश्रंतः । प्रजार्थन्तः सबेमहि॥५६॥

पदार्थ:—हं (सोम) सब जगत् को उत्पन्न दारने व.ळे जगवीश्वर (तव) आपको (जूते) सत्यभाषण आदि धर्मों को अनुष्ठान में वर्त्तमान हो के (तन् शु) बढ़े र सुक्षयुक्त शरीरों में (मन:) अन्तः करण की अहङ्कारादि वृत्ति को (विश्वतः) धारण करते
हुए और (प्रजावन्तः) बहुत पुत्र आदि राष्ट्र आदि धन वाले हो के हम लोग (सचेमहि) सब सुकों को प्राप्त होवें ॥ १॥ (तव) इस (सोम) सोमलता आदि ओषधियों के (इते) सत्य २ गुण ज्ञान से संघन में (तन् शु) सुखयुक्त शरीरों में (मन:) चिक्त की वृत्ति को (विश्वतः) धारण करते हुए (प्रजावन्तः) पुत्रराज्य आदि धन वाले होकर (वयम्) इम लोग (स्वेमहि) सब रुक्षों को प्राप्त होवें ॥२॥५६॥

भावार्थ:--इस मन्त्र में श्लेपालङ्कार है--ईश्वर की आज्ञा में वर्षमान हुए मतुष्य लोग शरीर आत्मा के रुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार युक्ति से सोम आदि ओषधियों के सेवन से उन रुखों को प्राप्त होते हैं परन्तु आलसी मतुष्य नहीं।। ५६॥

पव त इत्यस्य बन्धुऋषिः । सद्रो देवता । निचृदतुप्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
मन के लक्षण कहने के अनन्तर प्राण के लक्षण का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

एव ते रह आगः सह स्वस्नाध्यिकणा तं जुंबस्य स्वाहां। एव ते रह आग आखुस्ते एशः॥ ५७॥

पदार्थ:—हे ( रुद्र ) अन्यायकारी मनुष्यों को रुलाने वाले विद्वान् जो ( ते ) तेरा ( एष: ) यह ( भागः ) सेवन करने योग्य पदार्थं समृह है उसको तू ( अभ्विकया ) वेदवाणी वा ( स्वल्ला ) उत्तम विद्या वा किया के ( सह ) साथ (ज्ञुषस्व) सेवन कर तथा हे ( रुद्र ) विद्वान् ! जो ( ते ) तेरा (एषः) यह ( भागः ) धर्मं से सिद्ध बंधा वा ( स्वल्ला ) वेदवाणी है उसका सेवन कर और हे (रुद्र) विद्वान् ! जो (ते) तेरा (एषः)

यह (आणु:) स्रोदने योग्य शस्त्र वा (पशु:) भोग्यपदार्थ है (तम्) उस को (छ-थस्व) सेवन कर ॥ १॥ जो (एष:) यह (स्द्र) प्राण है (ते) जिसका (एष:) यह (भाग:) भाग है जिस को (अग्विकया) वाणी वा (स्वला) विद्या क्रिया के (सह) साथ (छुषस्व) सेवन करता वा जो (ते) जिस का (स्वाहा) सत्य वा-णीरूप (भाग:) भाग है और जो इसके (आलु:) स्रोदने वाले पदार्थ वा (पशु:) दर्शनीय भोग्य पदार्थ हैं। जिसका यह (छुषस्व) सेवन करता है उसका सेवन सब मतुष्य सदा करें॥ ५७॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में श्लेपालक्कार है—जैसे भाई पूर्ण विद्यायुक्त अपनी बहिन के साथ वेदादि शब्द विद्या की पढ़ कर आनन्द को भोगता है जैसे विद्वान भी वि-द्या की प्राप्त हो कर सुखी होता है। जैसे यह प्राण श्रेष्ठ शब्द विद्या से प्रिय आनन्द वायक होता है वैसे सुशिक्षित विद्वान भी सब को सुख करने वाला होता है इन दोनों के विना कोई भी मनुष्य सत्यज्ञान वा सुख भोगों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ५७॥

भव रुद्रमित्यस्य बन्धुऋषि: । रुद्रो देवता । विराट् एंकिश्छन्द: । पंचम: स्वर: ॥ भव भगले मन्त्र में रुद्रशब्द से ईश्वर का उपदेश किया है ॥

भावं हृद्रमंद्रीमुद्धावं हेवन्त्रवेम्बकम् । यथां नो वस्त्रेमुस्करचर्याः नः । श्रेर्यमुस्करुचर्याः नो व्यवमुख्यांत् ॥ ५८ ॥

पदार्थ:—हम लोग ( ज्यम्बकम् ) तीनों काल में एक रस क्वानयुक्त ( देवम् ) देने वा ( ठद्रम् ) दुर्धों को कलाने वाले जगदीश्वर् की उपासना कर के सब दुःखों को ( अवादीमिष्टि ) अच्छे प्रकार नष्ट करे ( यथा ) जैसे परमेश्वर ( नः ) हम लोगों को ( वस्यसः ) उत्तम २ वास करने व.ले ( अवाकरत् ) अच्छे प्रकार करे ( यथा ) जैसे ( नः ) हम लोगों को ( श्रेयसः ) अत्यन्त श्रेष्ठ ( करत् ) करे ( यथा ) जैसे ( नः ) हम लोगों को ( व्यवसाययात् ) निश्चय वाले करे यैसे सुखपूर्वक निवास कराने वा वस्तम गुणयुक्त तथा सत्यपन से निश्चय देने वाले परमेश्वर ही को प्रार्थना करें ॥५८॥

भाषार्थ:—कोई भी मनुष्य ईश्वर की उपासना वा प्रार्थना के विना सब दु:खों के अन्त को नहीं प्राप्त हो सकता। क्योंकि वहीं परमेश्वर सब सुख पूर्वक निवास वा उ- तम २ सत्य निश्चयों को कराता है इस से जैसी उस की आज्ञा है उसका पालन वैसा हो सब मनुष्यों को करना योग्व है ॥ ५८॥

भेगजमसोत्यस्य बन्धुऋष्तिः । बहो देवता । स्वराङ् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
फिर वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

# भेषु जर्मास भेषु जङ्गबे ऽइवां य पुरुषाय भेषु जम् । मुखम्मेषायं मेडवै ॥ ५९ ॥

पदार्थ:— हं जगदौश्वर! जो आप (भेषजम्) शरीर अन्तः करण इन्द्रिय और गाय आदि पशुओं के रोग नाशं करने वाले (असि) हैं (भेषजम्) अविद्यादि होशों को करने वाले (असि) हैं सो आप (नः) हम लोगों के (गये) गौ आदि (अश्वा-य) घोड़ा आदि (पुरुषाय) सब मनुष्य (मेषाय) मेढ़ा और (मेष्ये) भेड़ आदि की स्त्रियों के लिथे (सुख्य) उत्तम र सुखों को अच्छी प्रकार दीजिथे ॥ ५९॥

भावार्थ: किसी प्रमुख का परमेश्वर की उपासना के विना शरोर आत्मा और प्रजा का दु:ख दूर हो कर सुख नहीं हो सकता इस से उस की स्तुति प्रार्थना और उपासना अदि के करने और ओपधियों के सेवन से शरीर आत्मा पुत्र मित्र और पशु आदि के दु:खों को यक्ष से निवृत्त कर के सुखों को सिद्ध करना उचित है ॥ ५९ ॥

त्र्यम्बकमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। रहो देवता । विराड् ब्रह्मी विष्टुप् छन्दः ।

#### धेवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।
इयंग्वकं यजामहे मुग्रान्धि पुष्टिवधीनम् । उर्वाहकि मिव बन्धनानमृत्योमुँचीयमाऽस्तांत् । इयंग्वकं यजामहे सुग्रान्धि पंतिवेदंनम्।
बुर्वाहकिमिव बन्धनादितो सुंक्षीय मामृतः॥ ६०॥

पदार्थ:—हम लोग जो (सुगन्धिम्) शुद्ध गन्धयुक्त (पृष्टिवर्धनम्) शरीर आत्मा और समाज के बल को बढ़ाने वाला (ज्यम्बक्रम्) कद्रक्ष्य जगदोश्वर है उस की (य-जामहे) निरन्तर स्तुति करें इस की हपा से (उर्वाक्किमिव) जैसे खर्ब जा फल पक कर (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से छूठकर अमृत के तुल्य होता है बेसे हम लोग भी (मृत्यो:) प्राण वा शरीर के वियोग से (मुक्षीय) छूट जार्बे (अमृतात्) और मोक्षक्ष्य सुख से (मा) श्रद्धारहित कभी न होर्वे तथा हम लोग (सुगन्धिम्) उत्त-म गन्धयुक्त (पतिवेदनम्) रक्षा करने हारे स्वामी को देने वाले (ज्यम्बक्तम्) सब के अध्यक्ष जगदीश्वर का (यजामहे) निरन्तर सत्कार पूर्वक ध्यान करें और इस के अध्यक्ष जगदीश्वर का (यजामहे) निरन्तर सत्कार पूर्वक ध्यान करें और इस के अध्यक्ष जगदीश्वर का (यजामहे) विरन्तर सत्कार पूर्वक ध्यान करें और इस के अध्यक्ष जगदीश्वर को समान मिष्ट होता है। बैसे हम लोग भी (इत:) इस शरीर से (मु-क्षीय) छूट जार्बे (अमुत:) मोक्ष और अन्य जन्म के सुख और सत्यधर्म फल से (मा) पृथक न होतें ॥ ६०॥

भाषार्थ:— इस मन्त्र में उपमालक्कार है— मनुष्य लोग ईश्वर को छोड़ कर किसी का पूजन न करें क्योंकि वेद से अविहित और दु: खका फल होने से परमात्मा से भिन्न दूसरे किसी की उपासना न करनो चाहिये जैसे खर्च जा फल लता में लगा हु-(जा अपने आप पकर कर समय के अनुसार लता से छूट कर सुन्दर स्वादिष्ट हो जाता है वैसे ही हम लोग पूर्ण आयु को भोग कर शरीर को छोड़ के मुक्ति को प्राप्त होयें कभी मोल्ल की प्राप्त के लिये अनुष्ठान वा परलोक की इच्छा से अलग न हे। वें और न कभी नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर भी करें जैसे व्यवहार के सुखों के लिये अन्न जल आदि की इच्छा करते हैं वैसे ही हम लोग ईश्वर, वेद, वेदोक्तधर्म, और मुक्ति होने के लिये निरन्तर श्रद्धा करें || ६० ||

पतत्त इत्यस्य विसष्ठ ऋषिः में भुरिगास्तारपंक्ति श्लन्दः । पंचमः स्वरः ॥ अव अगले मन्त्र में रुद्रशब्द से श्र्योर के कमों का उपदेश किया है ॥ प्रतत्तें रुद्राव्यसं तेने प्रो मूर्जवतोतीहि। अर्व ततधन्वा पिनां-कावसः कृत्तिवासा अहिंश्रसन्नः श्रिवोऽतीहि ॥ ६१॥

पदः थैं:—हें ( रुद्र ) शत्रुओं को रुलाने व ले युद्ध विद्या में कुशल सेनाध्यक्ष विद्यान् ! (अवततधन्त्रा) युद्ध के लिये विस्तार पूर्वक धनुको धारण करने (पिनाकाषसः) पिनाक अर्थात् जिस शस्त्र से शत्रुओं के बल को पीस के अपनी रक्षा करने ( रुक्ति-वासाः ) चमड़े और कवचों के समान दृद्ध वस्त्रों के धारण करने (शिवः) सब सुखों के देने और ( परः ) उत्तम सामर्थ्य व ले शूरवोर पुज्य ( मूजवतः ) मूंज धास आदि युक्त पर्वत से दूसरे देश में शत्रुओं को ( अतोहि ) प्राप्त की जिये ( एतत् ) जो यह ( ते ) आपको ( अवसम् ) रक्षण करना है ( तेन ) उस से ( नः ) हम लोगों को ( अहिसन् ) हिंसा को छोड़ कर रक्षा करते हुए आप ( अतोहि ) सब प्रकार से हम लोगों का सत्कार की जिये ॥ ६१ ॥

भावार्थ:—हे मनुष्यो तुम को धन्नुओं से रहित हो कर राज्य को निष्कंटक करके सब अस्त्र शस्त्रों का संपादन कर के दुष्टों का नाश और श्रेष्टों की रक्षा करो कि जिस से दुष्ट शत्रु सुखी और सज्जन छोग दु:खी कदापि न होवें || ६१ ||

ज्यायुषिमत्यस्य नारायण ऋषिः। रुद्रो देवता । उष्णिक्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

मतुष्य को कैसी आयु भोगने के लिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये इस

विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है।

ह्यायुषं ज्ञमद्ंग्नेः क्र्इयर्षस्य ह्यायुषम् । यहेषेषुं श्वायुषं तस्रो अ-स्तु ह्यायुषम् ॥ ६२ ॥

पदार्थ:—हे जगदीश्वर आप (यत्) जो (देवेषु) विद्वानों के वर्तमान में (उपायुषम्) ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमों का परोपकार से युक्त आयु
वर्तता जो (जमदम्र:) चक्षु आदि इद्रियों का (उपायुषम्) शुद्धि बल और पराक्रम
युक्त तीन गुण आयु और जो (कश्यपस्य) ईश्वर प्रेरित (उपायुषम्) तिगुणी अर्थीत् तीन सौ वर्ष से अधिक भी आयु विद्यमान है (तत्) उस इस शरीर आत्मा और
समाज को आनन्द देने वाले (ज्यायुषम्) तीनसौ वर्ष से अधिक आयु को (न:) हम
लोगों को प्राप्ति कीजिये ॥ ६२ ॥

भावार्थ:—इस मंत्र में चक्षु सब इन्द्रियों का और परमेश्वर सब रचना करने हारों में उत्तम है ऐसा सब मनुष्यों को समझना चाहिये और (ज्यायुषम्) इस पदवी की चारवार आवृत्ति होने से तीनसी वर्ष से अधिक चारसी वर्ष पर्यन्त भी आयु का प्रहण किया है इसकी प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना कर के और अपना पृष्ठपार्थ करना उचित है। प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये हे जगदीश्वर! आपकी हुणा से जैसे विद्वान लोग विद्या धर्म और परोपकार के अनुष्ठान से आनन्द पूर्वक तोनसी वर्ष पर्यन्त अनु को भोगते हैं वसे हो तीन प्रकार के ताय से शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारक्ष्य अन्तः करण इन्द्रिय और प्राण अन्ति को रहित सुख करने व ले विद्या विद्वान सहित आयु को हम लोग प्राप्त हो कर तीनसी वा चारसी वर्ष पर्यन्त सुक पूर्वक भागों। इस ।।

शिवोनामासीत्रयः नारायण ऋषिः। रुद्रो देवता । सुरिग्जगती छन्दः । निपादः स्वरेः ॥

अव अगले मंत्र में रुद्र शब्द से उपदेश करने हारे के गुणों का उपदेश किया है ॥

श्विनो नामां सि स्वधितिस्ते पिता नर्मस्ते अस्तु मामां हिश्वसीः।

निवंत्ति ग्राम्वार्युषेऽन्ना चांय प्रजनंनाय रायस्पोषांय सुप्रजास्त्वार्य
सुवी स्पर्धि ॥ ६३॥

पदार्थ: —हे जगदीश्वर ! और उपदेश करने हतरे विद्वान जो आप (स्वधितिः) अ-विनाशी होने से वज्रमय (अति ) हैं जिस (ते ) अत्यक्ता (शिवः ) सुख स्वरूप वि-ज्ञान का देने वाला (नाम )नाम (असि ) है सो आप मेरे (पिता) पालन करने वाले (असि ) हैं (ते ) आप के लिये मेरा (नमः ) सत्कार पूर्वक नमस्कार (अस्तु ) वि- विदित हो तथा आप ( मा ) मुझे ( मा ) मत (हि॰ सी: ) अल्पमृत्यु से युक्त कीजिये और में आप को ( आयुषे ) आयु के भोगने ( अकाद्याय ) अक्र आदि के भोगने (सु-प्रजास्तवाय) उत्तम २ पुत्र आदि वा चक्रवर्ति राज्य आदि की प्राप्ति होने (सुवीर्य्याप) उत्तम शरीर आत्मा को बल पराक्रम होने और (रायस्पोषाय) विद्या वा ुवर्ण आदि धन की पृष्टि के लिपे (वर्त्तयामि) वर्त्ताता और वर्त्तता हूं इन प्रकार वर्त्तने से सब दु:सों को छुड़ा के अपने आत्मा में उपास्प्रक्षप से निश्चय कर के अन्तर्यामीक्षप आप का आश्चय कर के सभों में वर्त्तता हूं ॥ ६३ ॥

भावार्थ:—कोई भी मनुष्य भंगलमय सबर्की पालना करने वाले परमेश्वर की आ-हा पालन के विना संसार वा परलोक को लुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं होता न कदापि किसी मनुष्य को नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर करना चाहिये जो नास्तिक होकर ईश्वर का अनादर करना है उस का सर्वत्र अनादर होता है इस से सब मनुष्यों को आस्तिक बुद्धि से ईश्वर की उपासना करनी योग्य है ॥ ६३॥

इस तीसरे अध्याय में अग्निहोत्र आदि यज्ञां का वर्णन, अग्नि के स्वभाव वा अर्थ का प्रतिपादन, पृथिवो के भ्रमण का लक्षण, अग्नि शब्द से इंग्यावा भौतिक अर्थ का प्रतिपादन,
अग्निहोत्र के भंत्रों का प्रकाश, ईश्वर का उपस्थान, अग्नि का स्वरूप कथन, ईश्वर की
प्रार्थना, उपासना वा इन दोनों का फल, ईश्वर के स्वभाव का प्रतिपादन, सूर्व्य के किरणों के वार्य का वर्णन, निरन्तर उपासना, गायत्रों भंत्र के अर्थ का प्रतिपादन यज्ञ
के फल का प्रकाश, भौतिक अग्नि के अर्थ का प्रतिपादन, गृहस्थाश्रम के आवश्यक
कार्यों के अनुष्ठान और लक्षण, इन्द्र और पत्रनों के कार्य का वर्णन, पृहपार्थ का आवश्यक फरना, पापों से निवृत्त होना, यज्ञ की राजानि आवश्यक करनी। साय से
लेने देने आदि व्यवहार करना, विद्वाद वा क्र्युआं के स्वयन का वर्णन चार, प्रकार
के अन्तः करण का लक्षण, स्ट्र शब्द के अर्थ का प्रतिपादन, जिन्हों वर्ध अवश्य अग्रु
का संपादन करना और धर्म से अग्रु आदि पदार्थों का ग्रहण का वर्णन किया है इस
से दूसरे अध्याय के अर्थ के साथ इन तीसने अध्याय के अर्थ को राज्ञति जाननी
चाहिने ॥

यह तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

### ओ३म्

# ऋष चतुर्थाऽध्यायः प्रार्भ्यते॥

विद्यांनि देव सवितदुरितानि परांसुय । यह्न तं तथा स्थासुंव ॥ १ ॥ तत्र दमगन्मेत्यत्य प्रजापितऋ पिः । अवोषध्यौ देवते । विराड् बाह्योजगती छन्दः । निषदः स्वरः ॥

अब चौथे अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है इस के प्रथम मन्त्र में जल के गुण, स्वभाव और इस्य का उपदेश किया है।

एरमंगनम दंख्यजंनम्मृश्वित्या यत्रं देशामो अर्जुवन्त विद्वे । श्वक्सामाभ्यां समन्तरन्तो यर्जुर्भी ट्रायरपंथिण साम्रवा मंदेम । हुमा ज्ञापः शर्मं मे सन्तु देशी । श्रीषंत्रे ज्ञायंस्व स्वधिते मैनंध हिस सी: ॥ १ ॥

पदार्थः—है विद्वन् ! जैसे (पृथिव्याः ) सूमि पर मनुष्य जन्म को प्राप्त होके जो (इदम्) यह (देवयजनम् ) विद्वानों का यजन पूजन वा उन के लिये दान हैं उस को प्राप्त होके (यत्र ) जिस देश में (क्ष्रक्सामान्याम् ) ऋग्वेद, सामवेद, तथा (यज्ज-भिं: ) यज्ज्जंद के मन्त्रों में कहं कर्म (रायस्पोपेण) धन की पृष्टि (सिमपा) उत्तम २ विद्या आदिकी इच्छा वा अन्न आदि से दुःखों के (सन्तरन्तः) अन्त को प्राप्त होते हुए (विश्वे) सब (देवासः ) विद्वान् हम लोग हुखों को (अगन्म ) प्राप्त हों (अज्जपन्त) सब प्रकार से सेवन करें (भदेग ) खुखों रहें (उ) और भी (मे ) मेरे छुनियम विद्या उत्तम शिक्षा से सेवन किये हुए (इमा: ) थे (देवीः ) शुद्ध (आप: ) जल हुख देने वाले होते हैं जैसे वहां तू मो उन को प्राप्त हो (जुनस्व ) सेवन और आन्तन्द कर वे जल आदि पदार्थ भी तुझ को (शम्) सुख कराने वाले (सन्तु ) होवें जैसे (ओपधे) सोमलता आदि ओपधिगण सब रोगों से रक्षा करता है यसे तू भी हम लोगों को (जायस्व ) रक्षा कर (स्वधित ) रोग नाश करने में वज्र के समान होकर (पनम्) इस यजमान वा प्राणी मात्र को (मा हिश्सीः ) कभी मत मार ॥शी भावार्थः—इस मन्त्र में छुप्तोपमालङ्कार है—जैसे मनुष्य छोग ब्रह्मचर्य पूर्वक अङ्ग और उपनिषद्दित चारों वेदों को पढ़ कर औरों को पढ़ा कर विद्या को प्रकाशित

कर और विद्यान होके उत्तम कमीं के अनुष्ठान से सब प्राणियों को खुकी करें बैसे ही इन विद्यानों का सत्कार कर इन से बैदिक विद्या को प्राप्त होकर शरीर वा आत्मा की पृष्टि से धन का अत्यन्त संचय करके सब मनुष्यों को आवित्वत होना चाहिये॥१॥ आपो अस्मानित्यस्य प्रजापतिऋषि:। आपो देवताः। स्वराष्ट्र ब्राह्मी विष्टुप् छन्दः। धैवत: स्वर: ॥

फिर उन जलों से क्या २ करना च हिये इव विषय का उपदेश बगले मन्त्र में किया है।

श्रापीं अस्मान्मातरंः शुन्धवन्तु धृतनं नो धृतप्तः पुनन्तु।

विद्वश्र हि रिपम्प्रवर्हन्ति देवीः। उदिद्रिप्तः शुचिरापूत एमि।

देक्षित्तपसीस्तुन्रोस्त तान्त्वां शिवाद शुग्माम्परि द्धे भूदं वर्षे

पुरुषंनु ॥ २ ॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो! जैसे (भट्टम्) अति सुन्दर (वर्णम्) प्राप्त होने योग्य रूप को (पुष्पन्) पृष्ट करता हुआ में जो (पृतष्व:) यृत को पिवत्र करने! (देवा:) दिव्य-गुणयुक्त (मातरः) माता के समान पालन करने व.ले (आप:) जल (रिप्रम्) व्यक्तवाणों को प्राप्त करने वा जानने योग्य (विश्वम्) सब को (प्रवहन्ति) प्राप्त करते हैं जिन से विद्वान् लोग (अस्मान्) हम मनुष्य लोगों को (शुन्धुयन्तु)व हा देश जो पिवत्र करें और जो (पृतेन) यृत से पुट करने योग्य जल हैं जिन से (नः) हम लोगों को कर सकें उन से (पृतन्तु) पिवत्र करें। जैसे में ( उत् ) अच्छे प्रकार (इत् ) भी (आभण्य:) इन जलों से (शुन्तुः) पवित्र तथा (अप्यूतः) शुद्ध होकर (दौक्षात-पसोः) प्रवाचर्यं आदि उत्तम २ नियम सेवन से जो धर्मानुष्ठान के लिये (तन्दः) शर्रार (असि) है जिस (शिवःम्) कल्याणकारी (शग्माम्) सुल स्वरूप शरीर को (पित्र) प्राप्त होता और (परिवधे) सब एकार धरण करता हूं यैसे तुम लोग भी उन जल और (ताम्) उस (त्वाम्) अयुत्तम शरीर को धारण करो॥ २ ॥

भावार्थ:—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालक्कर है—मनुष्यों को उचित है कि जो सब सुक्षों को प्राप्त करने प्राणों को धारण कराने तथा माला के स्पान पालन को हेतु जल हैं उन से सब प्रकार पवित्र होके इनको शोध कर उनुष्यों को नित्य सेवन करने चाहिये जिससे सुन्दरवर्ण रोगरहित शरीर को संपादन कर निरन्तर प्रयत्न के साथ धर्म का अनुष्ठान कर पुरुषार्थ से आनन्द भोगना चाहिये | २ | १

महीनामित्यस्य प्रजापतिऋषिः । मेघो देवता । शुरिक् त्रिप्टुर् छम्दः । श्रेषतः स्वरः ॥ फिर इस जल समृह से उत्पन्न तुप भेघ का क्या निभिन्त है इस विषय का उपदेश अगले भेत्र में किया है ॥

मुहीनाम्पयोऽसि वर्चोदा असि वर्ची से देहि। वृत्रस्यांसि क-नीनंकअध्युदी असि वर्धुंसे देहि॥ १॥

पदार्थ:—जो यह (महीनाम् ) पृथिषां आदि के (पयः) जल रस का निमित्त (असि) है (वन्नोंदाः) दीसि का देने बाठा (असि) है जो (मे) मेरे लिये (वर्चः) प्रकाश को (देहि) देता है जो (बुत्रस्य) मेघ का (कनीनकः) प्रकाश करने वाला (असि) है वा (नश्चुदाः) नेत्र के व्यवहार का सिद्ध करने वाला (असि) है वह सूर्व्य (मे) मेरे लिये (नश्चः) नेत्रां के व्यवहार को (देहि) देता है।। ३।।

भाषार्थ:—मनुष्यों को जानना उचित है जिस सूर्व्य प्रकाश के विना वर्षा की उ-त्पत्ति वा नेत्रों का व्यवहार सिद्ध कभी नहीं होता। जिसने इस सूर्व्य छोक को रचा है उस परमेश्वर को कोटि असंख्यात धन्यवाद देते रहें ॥ ३॥

चित्पतिर्मेत्यस्य प्रजापतिऋषिः । परमात्मा देवता । निचृद्वाद्या पङ्किश्छन्दः । पत्रचमः स्वरः ॥

जिस ने सूर्य्य अति सब जगत् को बनाया है वह परमातमा हमारे लिये क्या २ करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

श्चित्पतिमी पुनातु बाक्पतिमी पुतातु देवो मी सिब्ता पुंताः स्विचिष्ठदेण पुविचेण सूर्व्यस्य र्वाइमिनः । तस्यं ते पविचयते प्रविचेप्तस्य पत्कांमः पुनेतच्छेकायम् ॥ ४॥

पदार्थ:-हे (पिवत्रपते) पिवत्रता के पालन करने हार परमंध्वर! (चित्रपत्तिः) विज्ञान के स्वामी (वावपतिः) याणी को निमेल के और (सिवता) सब जगत् को
उत्पन्न करने वाले (देवः) दिव्यस्वरूप आप (पिवत्रण) शुद्ध करने वाले (अच्छिदेण) अविनाशी विज्ञान वा (स्व्यस्य) स्वयं और प्रमाण के (रिक्रिमिः) प्रकाश और गमनागमनों से (मा) मुझ और मेरे चित्त को (पुनातु) पिवत्र कीजिथे (मा)
मुझ और मेरी वाणी को (पुनातु) पिवत्र कीजिथे (मा) मुझे तथा मेरी प्रजा को (पुनातु) पिवत्र कीजिथे जिस (पिवत्रपूतस्य) शुद्ध स्वाभाविक विज्ञान अदि गुणों से पिवत्र (ते) आप की छपा से (यत्कामः) जिस उत्तम कामल्युक्त में (पुने) पिवत्र होता हुं। जिस (ते) आपकी उपासना से (तत्) उस अयुक्तम कर्म के करने को (शक्यम्) समर्थं होऊं उस आपकी सेवा मुझ को क्यों न करनी चाहिये ॥ ४॥ भाषार्थ:—मनुष्यों को उचित है कि जिस वेद के जनने वा पालन करने वाले परमेश्वर ने वेदिवचा, पृथिवी, जल, वायु और सूर्य्य अदि शुद्धि करने वाले पदार्थ प्रकाशित किये हैं उसकी उपासना तथा पिषत्र कर्मों के अनुष्टान से मनुष्यों को पूर्ण करमा और पिषत्रता को संपादन अवश्य करना चाहिये || ४ ||

था वो देवास इत्यस्य प्रजापतिऋषिः । निसृदार्ष्यं हुप्टुम् छन्दः । गत्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस २ प्रकार का पृष्ठपार्थ करना चाहिने इस विषय का उपदेश

थगले मन्त्र में किया है ॥

भा वी देवास ईमहे बामम्बंगुत्युध्यरं। या वी देवास आधिः वी यक्षियांसी हवामह ॥ ५ ॥

पदार्थ:—हे (देवासः) विद्यादि गुणां से प्रकाशित होने वाले विद्वान् लोगी! जैसे हम लोग (व:) तुम को (प्रयति) ुख युक्त (अध्वरे) हिंसा करने अयोग्य यज्ञ के अनुष्ठान में (व:) तुद्धारे (वामम्) प्रशंसनीय गुण समृह की (ईमहे) अ-च्छे प्रकार याचना करते हैं। हे (देवास:) पिद्धान् लोगी! जैसे हम लोग इल संलार में आप लोगों से (यज्ञिया:) यज्ञ को सिद्ध करने योग्य (आशिप:) इच्छाओं को (आ हवामहे) अच्छे प्रकार स्वाकार कर सकें घैसे ही हम लोगों के लिये आप लोग सदा प्रयत्न किया कीजिये॥ ५॥

भावार्थ:—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम विद्वानों के प्रसङ्ग से उत्तम २ विद्याओं का संपादन कर अपनी इच्छ.ओं को पूर्ण कर के इन विद्वानों का संग और सेवा सदा करना चाहिथे।। ५।।

स्वाहःयज्ञमित्यस्य प्रजाँपतिऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदार्ष्यंतुष्टुण् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किस २ प्रयोजन के लिये इस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

स्वाहां ग्रज्ञम्मनंसः स्वाहोरोर्न्तिरिक्षात् स्वाहा चार्वाष्टिषीः म्ग्राथस्वाहा बानादारं <u>भे</u>स्वाहां ॥ ६ ॥

पदार्थ:—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं (स्व हा ) वेदोक्त (स्व हा ) उत्तम शिक्षा स-हित (स्वाहा ) विद्याओं का प्रकाश (स्वाहा ) सत्य और सब जीवों के कल्याण क-रने हारी वाणी और (स्वाहा ) अच्छे प्रकार प्रयोग की हुई उत्तम किया से (उरो:) बहुत (अन्तिरिक्षात् ) आकाश और (वातात् ) वायु की शुद्धि कर के (द्यावाष्ट्रिय- वीभ्याम् ) शुद्ध प्रकाश और भूमिस्थ पदार्थ ( मनसः ) विज्ञान और ठोक २ किया से ( यज्ञम् ) यज्ञ को पूर्ण करने के लिये पुरुषार्थ का ( आरभे ) नित्य आरम्भ करता हु' यैसे तुम लोग भो करो ॥ ६॥

भावार्थ:—मनुष्यों ने जो वेद की रीति और मन वचन कर्म से अनुष्टान किया हुआ यज्ञ है वह आकाश में रहने वाले वायु आदि पदार्थों को शुद्ध कर के सब को हुआं करता है || ६ ||

अक्तूत्यै प्रयुजद्ञस्य प्रजापतिऋषिः । अम्यकृहस्पतयो देवताः । पृत्रीर्धस्य धंकिष्छ-न्दः । धंचमः स्वरः । आपो देवारित्युत्तरस्यान्व्यं। कृहतो छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किस लिथे उस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

आर्क्त्ये प्रयुक्तेऽरन्ये स्वाहां मेघाये मनंसेऽरन्ये स्वाहां दक्षिरः ये तर्पस्ऽरन्ये स्वाहा सरंस्वत्ये पूर्वोऽरन्ये स्वाहां । आपो देवी-र्यृहतीर्विद्यवद्यांश्चवो चावांपृथिवी उरो अन्तरिक्ष बृहस्पतंये हवि-षां विधेम् स्वाहां॥ ७॥

पदार्थ:—है मनुष्यो! जैसे हम लोग (अक्त्ये) उत्साह (प्रयुजे) उत्तम २ धर्मयुक्त कियाओं (अग्नये) अित के प्रदीपन (स्वाहा) चेदवाणों के प्रचार (सरस्वये) विकास वाणों (पूर्णे) पृष्टि करने (षृहस्पत्ये) बड़े २ अधिपतियों के होने (अग्नये) बिज्ञलों की विद्या के प्रहण (स्वाहा) पढ़ने पढ़ाने से विद्या (मेधाये) बृद्धि की उन्नति (मनसे) विज्ञान की वृद्धि (दीक्षाये) धर्म नियम और आचरण की रीति (तपसे) प्रताप (अग्नये) जाठराग्नि के शोधन (स्वाहा) उत्तम स्तुतियुक्त वाणीं (ष्ट्रितोः) महागुण सहित (विश्वशंभुवः) सब के लिये सुख उत्पन्न कराने वाले (देवीः) दिव्यगुण सम्पन्न (आपः) प्राण वा जल से (स्वाहा) सत्य भापण (द्यावानुधिवी) भूमि और प्रकाश की शुद्धि के अर्थ (उरो) बहुत खुख सम्पादक (अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष में रहने वाले पदार्थों को शुद्ध और जिस (स्वाहा) उत्तम किया वा चेद वाणी से यह सिद्ध होता है उन सर्वों को (हिवजा) सत्य और प्रमभाव से (विधेमा) सिद्ध करें बैसे तुम भी किया करो॥ ॥

भावार्य: -- यह के अनुष्ठान से विना उत्साह बुद्धि सत्यवाणी धर्मीचरण की रीति तप धर्म का अनुष्ठान और विद्या की पुष्टि का सम्भव नहीं होता और इन के विना कोई भी मनुष्य परमेश्वर को आराधना करने को समर्थ नहीं हो सकता इस से सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान कर के सब के लिये सब आनन्द करने चहिये ||७|| विश्वोदेवस्थेत्यस्यात्रेय ऋषि: । ईश्वरो देवता । आर्थनुष्टुण् छन्दः । गान्धारः स्वरः || मनुष्यों को परमेश्वर के आश्रय से क्या २ करना चाहिथे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ||

विद्यों देवस्यं <u>नेतु</u>र्मत्तौ वुरीत स्रक्ष्यम् । विद्यों राय हंबुध्यः ति सुम्नं वृंबीत पुष्प<u>मे</u> स्वाहां ॥ ८॥

पदार्थ:—जेसे (विश्व:) सब (मर्त्त:) मनुष्य (नेतु:) सब को प्राप्त वा (दे-वस्य) सब का प्रकाश करने व ले परमेश्वर के साथ (सख्यम्) मित्रता और गुण कर्म समृद्द को (तुरीत) स्वोकार और (राथ) धन को प्राप्ति के लिये (इबुध्य-ति) ब णों को धारण करे वह (द्युम्नम्) धन को (वृणीत) स्वीकार करे बेसे हे मनुष्य इस सब का अनुष्ठान करके (स्वाहा) सत्किया से तू भी (पुष्यसे) पृष्ट हो ॥ ।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—सब मनुष्यों को परमेश्वर की उ-पासना कर के पररूपर मित्रपन को सम्पादन कर युद्ध में दुर्धों को जात के राज्यल-क्ष्मी को प्राप्त होकर सुद्धी रहना चाहिये॥ ८॥

ऋक्सामयोरित्यस्यांगिरस ऋषि: | विद्वान् देवता । आर्पी ५ किश्छन्द: | ५ चम: स्वर:|| मनुष्यों को शिल्पविद्या को सिद्धि कैसे करनी चतिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ||

मत्मामणोः शिल्पे स्थस्ते वामार्भे ते मां पात मास्य ग्रज्ञस्योः ह्यंः श्रम्पों स्था श्रम्पे मे यच्छ नमस्तेऽस्तु मा मां हि छसीः ॥ ९॥ पदार्थः — हे विद्वन् । आप जो में (ऋक्सामणोः) ऋग्वेर और सामवेर के पढ़ने के पीछे (उद्दवः) जिस में अच्छे प्रकार ऋचा प्रत्यक्ष की जाती है (अस्य) इस (यज्ञस्य) शिल्पविद्या से सिद्ध हुए यज्ञ के संबन्धो (व.म्) थे (शिल्प) मन वा प्र-सिद्ध कियासे सिद्ध की हुई कारीगरी विद्याओं को (अरभे) आरम्भ करता हूं तथा जो (मा) मेरी (पातम्) रक्षा करते हैं (ते) वे (स्थः हैं उनको विद्यानों के सकाश से प्रहण करता हूं। हे विद्यन् ! मनुष्य (ते) उस तेरे लिये (मे) मेरा (नमः) अक्षादि सत्कार पूर्वक नमस्कार (अस्तु ) विदित हो तथा तुम (मा) मुझ को चलायमान मत करो और (यत्) जो (शर्म) सुख (असि) है उस (शर्म) सुख को (मे) मेरे लिये (यच्छ) देओ ॥ ।॥

भावार्थ:—मनुष्यों को चाहिये कि विद्यानों के सकाश से वेदों को पदकर शिल्प विद्या वा हस्तकिया को साक्षात्कार कर विमान आदि यानों की सिद्धिक्रप कार्यों को सिद्ध करके सुखों को उन्नति करें ॥ १॥

ऊर्गसीत्यस्यांगिरस ऋषि: । यज्ञो देवता । इधीत्यन्तस्य निचृदार्था जगती छन्दः । नियादः स्वरः । उच्छ्रयस्वेयस्य साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ यह शिल्पविद्या यज्ञ कैसा है इस विश्य का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥ ऊर्गस्य। ङ्गिरस्पूर्णम्ब्रदा ऊर्ज्जि मधि धेहि । सोमंस्य नीविरंसि

जगस्याङ्गरस्यूणम्द्रद्वा जज्ज माय घाह । सामस्य नावसास विष्णोः शम्मीसि शर्म यर्जमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीस्क्वीधि । उच्छ्रीयस्य वनस्पत कृष्यों मां पृष्ट्यक्ष हंस आस्य यज्ञ-स्योहसी ॥ १०॥

पदार्थ:—हे (वनस्पते) प्रकाशनीय विद्याओं का प्रचार करने वाले विद्वान् मनुष्य त् जो (अिक्ट्रिस्त) अि अिह पदार्थों से किद की हुई (ऊर्णम्द्रदः) आच्छादन का प्रकाश वा (ऊर्ज् ) पराक्रम तथा अकादि को करने वालो शिल्पविद्या (अित) है अथवा जो (ऊर्जम् ) पराक्रम वा अकादि को धारण करती (अित) है जो (सोमस्य) उत्पन्न पदार्थ समृह का (नीवि ) संवरण करने वालों (अित) है जो (विष्णों) शिल्पविद्या में व्यापक बुद्धि (यज्ञान या) शिल्पिता को जानने वालों (इन्द्रस्य ) परमेश्वर्य युक्त मनुष्य का (योनि: ) निमित्त (अित) है जो (अस्य) इत (उद्यान सः) अस्वाओं के प्रस्थक करने वाले (यज्ञस्य ) शिल्पित्या को जानने की इच्छा करने वालों (अित) है उस को (मिय) शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करने वालों (अित) है उस को (मिय) शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करने वालों (अित) है उस को (मिय) शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करने वाले मुझ में (आ घेहि ) अच्छे प्रकार घारण कर (सुसस्याः) उत्तम २ घान्य उत्तम करने वा (हम्पोः) खेतो वा रोंचने वालों कियाओं को (हिष्य) सिद्ध कर (ऊर्घ्य:) उपरस्थित होने वाला (मा ) मुझको (उच्छ्यस्य ) उत्तम घान्य वालों खेती का सेवन करावों और (अंहस:) पाप वा दु:खाँ से (पाहि ) रक्षा कर जो विमान आदि यानों और यज्ञ में (वनस्पते ) वृक्षकों शाखा ऊर्चों स्थापन की जाती है उस को भो (उच्छ्यस्य ) उपयोग में लावो ॥ १०॥

भावार्थः -- मनुष्यों को विद्वानों के सकाश से साक्षात्कार और प्रचार करके सव मनुष्यों को समृद्धि युक्त करना चाहिये || १० ||

वृतं छणुतेत्यस्याङ्किरस ऋषयः । अग्निदंवता । पूर्वस्य स्वराड् ब्राह्मचनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ये देवा इत्युत्तरस्यार्ष्युंष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥ अब अनिक अर्थवाले अग्निको जान कर उस से क्या २ उपकार लेना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है।

त्रतं कृष्णुतारिनर्ज्ञह्यारिनर्श्वको वत्तरपतिर्श्वक्रियः। देखीन्धर्यम्मन्त्रामहे सुमुद्धीकाम् मिं छेपे वद्धांषां ग्रज्ञवाहस्थ सुनीर्था नो असु-द्रशे पे देवा मनीजाता मनोग्रुजो दर्च ऋत्वस्तेनोऽवन्तु ते नेः पान्तु तेभ्यः स्वाहो ॥ ११ ॥

पदार्थ:—हम लोग जो ( अझ ) ब्रह्मपदयाच्य (अग्निः) अग्नि नाम से प्रसिद्ध ( असत् ) है जो ( यहाः ) अग्निसंज्ञक और जो ( वनस्पतिः ) वनों का पालन करनेवाला यहा ( अग्निः ) अग्निनामक है उस की उपासना कर वा उस से उपकार लेकर ( अगि- एये ) इष्ट सिद्धि के लिये जो ( सुतीर्था ) जिस से अत्युक्तम दुःखों से तारने वाले वेदाध्ययनादि तीर्थ प्राप्त होते हैं उस (सुमुडीकाम्) उत्तम सुख युक्त (वर्चोधाम्) विद्या वा तीप्ति को धारण करने तथा ( देवीम् ) दिव्यगुणसंपन्न ( धियम् ) बुद्धि वा किया को ( मनामहै ) जानें ( ये ) जो ( दक्षकतवः ) शरीर आत्मा के वल प्रजा वा कर्म से युक्त ( मनोजाताः ) विद्यान से उत्पन्न हुए ( मनोयुजः ) सत् असत् के ज्ञान से युक्त ( देवाः ) विद्यान लोग ( वशे ) प्रकाशयुक्त कर्म में वर्त्तमान हैं वा जिन से (स्वाहा) विद्यायुक्त वाणी प्राप्त होती हैं ( तेम्यः ) उन से पूर्वोक्त प्रज्ञा को ( मनामहे ) याचना करते हैं ( ते ) वे ( नः ) हम लोगों को ( अवन्तु ) विद्या उत्तम किया तथा शिक्षा आदिकों में प्रवेश और ( नः ) हम लोगों की निरन्तर ( पान्तु ) रक्षा करें ॥ ११ ॥

भावार्थं:—मनुष्यों को जिस की शक्त संज्ञा है उस ब्रह्म को जान और उस की उपारमा करके उसम बृद्धि को प्राप्त करना चाहिये। विद्वान लोग जिस बृद्धि से यज्ञ को सिद्ध करते हैं उस से शिल्प विद्या कारक यज्ञां को सिद्ध करके विद्वानों के सङ्ग से विद्या को प्राप्त हो के स्वतन्त्र च्यवहार में सदा रहना चाहिये। क्योंकि बृद्धि के विना कोई भी मनुष्य सुख की नहीं बदा सकता। इस से विद्वान मनुष्यों को उचित है कि सब मनुष्यों के लिये ब्रह्मविद्या और पदार्थविद्या की बृद्धि की शिक्षा करके निरन्तर रक्षा करें। और वे रक्षा को प्राप्त हुए मनुष्य परमेश्वर वा विद्वानों के उसम २ प्रियक्षमीं का भाचरण किया करें। ११ ॥

श्वात्रा इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः । आपी देवताः। ब्राह्मचतुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ इस का अनुष्टान करके आगे मनुष्यों को क्या २ करना साहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥ र्वात्राः पीता भवत यूपमांपी अस्माकंमन्तरुद्रे सुद्रोवाः । ता अस्मभ्यंमयुक्षमा अनमीवा अनांगमः स्वदंन्तु देवीगुस्तां ऋ-तावुर्धः ॥ १२ ॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो ! जो हम ने (पीताः) पिथे ( अस्माकम् ) मनुष्यों के (अन्तः) मध्य वा ( उदरे ) शरीर के भीतर स्थित हुए ( अस्मभ्यम् ) मनुष्यादिकों के लिथे ( सुशेवः ) उत्तम सुख युक्त ( अनमीवाः ) ज्वरादि रोग समृह से रहित नाश ( अय-स्माः ) क्षयी आदि रोगकारक दोषों से रहित ( अनागसः ) पाप दोष निमित्तों से पृथ्यक् ( ऋतावृधः ) सत्य को बढ़ाने वा (अमृताः) नाश रहित अमृत रस युक्त (देवीः) दिव्य गुण संपन्न ( आपः ) प्राण वा जल हैं ( ताः ) उन को आप लोग ( स्वदन्तु ) अच्छे प्रकार सेवन किया करो । इस का अनुष्ठान करके ( यूया ) तुम सब मनुष्य सुखों को भोगने वःले ( भवत ) नित्य हो ॥ १२ ॥

भावार्थः-मनुष्यों को विद्वानों के सङ्क वा उत्तम शिक्षा से विद्या को प्राप्त होकर अच्छे प्रकार परीक्षित शुद्ध किये हुए शरीर आत्मा के बल को बढ़ाने और रोगों को दूर करने वाले जल आदि पदार्थों का सेवन करना चाहिये क्योंकि विद्या वा आरोग्यता के विना कोई भी मनुष्य निरन्तर कर्म करने को समर्थ नहीं हो सकता। इस से इस का कार्य्य का सर्वदा अनुष्ठान करना चाहिये ॥ १२ ॥

इयन्त इत्यस्याङ्किंग्स ऋष्यः। आपो देवताः। भुरिगार्षः पंक्तिश्छन्दः पञ्चमः स्वरः॥

फिर वे जल कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।। हुएं तें ग्रुज्ञियां तुनूरुपो मुंज्ञामिन प्रजाम् । अध होमुचः स्वा-

हांकृताः पृथ्वि माविदात पृथ्विया सम्भव ॥ १३॥

पदार्थः — हे विद्वान् सनुष्य ! जैसे (ते) तेरा जो (इयम्) यह (यिज्ञ्या) यज्ञ के योग्य (तन्ः) शरीर (अपः) जल प्राण वा (प्रजाम्) प्रजा की रक्षा करता है जिस को त् नहीं छोड़ता में भी अपने उस शरीर को विना पूर्ण आयु भोगे प्रमाद से वीच में (न मुञ्चामि) नहीं छोड़ता हूं। हे मनुष्यो ! जैसे तुम (पृथिव्या) भूमि के साथ विभवयुक्त होते (अस्होमुचः) दुःखों को छुड़ाने वा (स्वाहाछताः) वाणी से सिद्ध किये हुए (अपः) जल और (पृथिवीम्) भृमि को (आविशत) अच्छेप्रकार विज्ञान से प्रवेश करते में इन से पेश्वर्यसहित और इन में प्रविष्ट होता हूं बेसे तू भी (सम्भव) हो और प्रवेश कर ॥ १३॥

भावार्थ;— मनुष्यों को चाहिये कि विद्या से परस्पर पदार्थी का मेल और सेवन कर रोगरहित शरीर तथा आत्माकी रक्षा करके सुखी रहना चाहिये ॥ १३ ॥ अम्तेत्विमत्यस्याङ्गिरस ऋष्यः । अग्निर्देवता । स्वराडाण्युंष्णिक् छन्दः । ऋष्यभः स्वरः । फिर अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अर्गे त्वक्ष मु जांगृहि व्ववक्ष मु मंन्दिषीमहि । रक्षांणो अप्रेयु-च्छन प्रबुधे दः पुनस्कृषि ॥ १४ ॥

पदार्थ:—(अग्ने) जो अग्नि (प्रबुधं) जगने के समय (सुजागृहि) अब्छे प्रकार जगाता वा जिस सं (वयम्) जग के कर्मानुष्टान करने वाले हम लोग (सुमन्दिषी-मिह) आनन्द पूर्वक सोते हैं जो (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित हो के (न:) प्रमादरहित हम लोगों की (रक्ष) गक्षा तथा प्रमाद सहितों को नष्ट करता और जो (न:) हम लोगों के साथ (पुन:) वार २ इसी प्रकार (हिष्ध) व्यवहार करता है उस को युक्ति के साथ सब मनुष्यों को सेवन करना चाहिये॥ १४॥

भावार्थ:—मनुष्यों को जो अग्नि सोनं, जागने, जीने, तथा भरने का हेतु है उस का युक्ति से सेवन करना चाहिये || १४ || पुनर्भन इत्यस्याङ्गिरस ऋष्यः अग्निरंचता | भुरिज्याङ्की वृहतीस्रहः । मध्यमः स्वरः ||

जीव अग्नि वायु आदि पदार्थों के निमित्त से जगने के समय वा दूसरे जन्म में प्रसिद्ध मन आदि इन्द्रियों को प्राप्त होते हैं इम विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है।

पुनर्भनः पुनरायुंर्म आग्नन् पुनः प्राणः पुनरात्मा मुआग्नन् पुनः इचक्षुः पुनः श्रोत्रम्म स्रागन् । वैद्यान्ररोऽदंब्धस्तन्तुपा अग्निनैः पातु दुश्तिादंब्द्यात् ॥ १५॥

पदार्थ:— जिस के सम्बन्ध वा रूपा से (में) मुझ को जो (मन:) विज्ञानसाध-क मन (आयु:) उमर (पुन:) फिर २ (आगन्) प्राप्त होता (में) मुझ को (प्राण:) शरीर का आधार प्राण (पुन:) फिर (आगन्) प्राप्त होता (आगन्) प्राप्त हो-क सब के भीतर की सब वातों को जानने वाले परमानमा विज्ञान (आगन्) प्राप्त होन ता (में) मुझ को (चक्षु:) देखने के लिये नेत्र (पुन:) फिर (आगन्) प्राप्त होते और (श्रोत्रम्) शब्द को श्रहण करने वाले कान (आगन्) प्राप्त होते हैं वह (अद्व-ध:) हिंसा करने अयोग्य (तन्पा:) शरीर वा आत्मा की रक्षा करने और (बैश्वा-नर:) शरीर को प्राप्त होने वाला (अग्नि:) अग्नि वा विश्व को प्राप्त होने वाला पर-मेश्वर (न:) हम लोगों की (अवद्यात्) निन्दित (दुरितात्) पाप से उत्पन्न हुए दु:ख वा दुष्ट कर्मों से (पानु) पालन करता है ॥ १५ ॥ भाषार्थ:—इस मन्त्र में श्लेषालक्कार है। जब जीव सोने वा मरण आदि व्यव-हार। की प्राप्त होते हैं तब जी २ प्रन आदि इन्द्रिय नाश हुए के समान हो कर फिर जगने वा जन्मान्तर में जिन कार्च्य करने के साधनों को प्राप्त होते हैं वे इन्द्रिय जिस विद्युत् अग्नि आदि के सम्बन्ध परमेश्वर की सत्ता वा व्यवस्था से शरीर वाले हो कर कार्च्य करने को समर्थ होते हैं। मनुष्यों को योग्य है कि जो अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ जाठराग्नि सब की रक्षा करता और जो उपासना किया हुआ जगदीश्वर पापक्षप कर्मों से अलग कर धर्म में प्रवृत्त कर वारंवार मनुष्य जन्म को प्राप्त कराकर बुष्टाचार वा दु:खों से पृथक् कर के इस लोक वा परलोक के सुखों को प्राप्त कराता है वह क्यों न उपयुक्त और उपास्य होना चाहिये।। १५ ।।

त्वमग्ने व्रतपा इत्यस्य वत्स ऋषि: । अग्निवंवता । भुरिगार्षा पंकिश्छन्द: । पंचमः स्वर: ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।। त्वमंग्ने बतुषा असि देव आमर्त्येष्या। त्वं युक्तेष्वीड्यों रा-स्वेयंत्सोमाभूयों भर देवो नंः सिब्बिता वसोद्वीता वस्वंदात् ॥१६॥

पदार्थ:—हे (सोम) ऐश्वर्य के देने वाछे (अग्ने) जगदीश्वर! जो (त्वम्) आप (मर्ल्यंषु) मनुष्यों में (बृत्पाः) सत्य धर्माचरण की रक्षा (सिवता) सब जगत् को उत्पन्न करने (यज्ञंषु) सत्कार वा उपासना आदि में (ईड्यः) स्तुति के योग्य (नः) इम लोगों के लिये (वसोः) धन के (दाता) दान करने वाछे (वसु) धन को (अदात्) देते हैं सो (इयत्) प्राप्त करते हुए अप (भूयः) वारंवार अत्यन्त धन (आरास्व) दीजिये (आभर) सब सुखों से पोषण कीजिये ॥ १॥ (त्वम्) जो (अग्ने) अग्नि (मर्ल्येषु) मरण धर्म वाले मनुष्यों के कार्यों में (बृत्पाः) नियम्माखरण का पालन (देवः) प्रकाश करने (यज्ञेषु) अग्निहोत्रादि यज्ञों में (ईड्यः) खोजने योग्य (सोम) ऐश्वर्य्य को देने (सिवता) जगत् को प्रेरणा करने (देवः) प्रकाशमान अग्नि है वह (नः) हम लोगों के लिये (वसोः) धन को (दाता) प्राप्त (इयत्) कराता हुआ (भूयः) अत्यन्त (वसु) धन को (अदात्) देता और (आराख्य) धन को देने का निमित्त हो के (आभर) सब प्रकार के सुखों को धारण करता है ॥ २॥ १६॥

भावार्थ:- इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब मनुष्यों को उचित है कि जैसे स-त्यस्बरूप सब जगत् को उत्पन्न करने और सकल सुन्नों के देने वाले जगदीश्वर ही की उपासना को कर के सुखा रहें इसी प्रकार कार्व्य सिद्धि के लिये अग्नि की संप्र-युक्त कर के सब सुखा को प्राप्त करें || १६ ||

एषा त.इत्यस्य वत्स ऋषि: । अग्निरंवता । आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ इन को सेवन कर के मनुष्यों को कैसे वर्तना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

पुषा ते शुक्र तुन्रेनहर्श्वस्त्या सम्भंतु भ्राजंङ्गच्छ। ज्रांसि धृता मनंसा जुष्टा विष्णंवे॥ १७॥

पदार्थ:—हे (शुक्र) बीर्य्य पराक्रम वाले विद्वान् मनुष्य! (ते) तेरा जो (विष्णवे) परमेश्वर वा यज्ञ के लिये तैनें जिस को (धृता) धारण किया है (तया)
उस से तू (जू:) ज्ञानी वा वेग वाला होकें (पतत्) इस (वर्च:) विज्ञान और तेजयुक्त (सम्भव) संपन्न हो अच्छे प्रकार विज्ञान करने के लिये (तन्:) शरीर
(असि) है उस से तू (भ्राजम्) प्रकाश को (गच्छ) प्राप्त और (धृता) धारण
किये (मनसा) विज्ञान से पुरुषार्थं को प्राप्त हो ॥ १७॥

भावार्थ:—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की आज्ञा का पालन कर के विज्ञान युक्त मन से शरीर वा आत्मा के आरोग्य पन को बढ़ाकर यज्ञ का अनुष्टान करके सुखी रहें || १७ ||

तस्यास्त इत्यस्य बत्स ऋषि:। वाग्विचुद्देवते।स्वराडार्पा बृहती छन्द:।मध्यम: स्वर:। वह वाणी और बिज्जली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

तस्यास्ते सत्यसंबसः प्रस् वे तन्त्रो युन्त्रमंद्रीय स्वाहां । शुक्रमंसि चन्द्रमंस्युस्तंमसि वैदवदेवमासि ॥ १८॥

पदार्थ:—हे जगदीश्वर! (सत्यसवस: ) सत्यपेश्वर्य्य युक्त वा जगत् के निमित्त कारण रूप (ते) आपके (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में आपकी रूपा से जो (रुवाहा) वाणी वा विज्ञली है (तस्या:) उन दोनों के सकाश से विद्या कर के युक्त में जो (शुक्रम्) शुद्ध (असि) है (चन्द्रम्) आल्हाइ कारक (असि) है (अमृतम्) अमृतात्मा के व्यवहार वा परमार्थ से सुक्त को सिद्ध करने वाला (असि) है और (यैश्वदेवम्) सब देव अर्थात् विद्वानों को सुक्त देने वाला (असि) है (तत्) उस (यंत्रम्) संकोचन विकाशन वालन भीवण करने वाले यंत्र को (अशीय) प्राप्त होऊं ॥ १८॥

भावार्थ:—इस मंत्र में को पालक्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उत्पन्न की हुई इस छछि में विद्या से कला यंत्रों को सिद्ध करके अग्नि आदि पदार्थों से अच्छे प्रकार पदार्थों का ग्रहण कर सब सुखों को प्राप्त करें || १८ ||

चिद्भीत्यस्य वत्स ऋषि:। वाग्वियुतौ देवते। भुरिग्ब्रह्मो पंकिश्छन्द:। पंचम: स्वर: ॥

फिर वे वाणी और विज्ञुळी किस प्रकार को हैं इस विषय का उपदेश अले मंत्र में किया है।

चिदंसि मनासि धीरंसिद्धिणासिक्षित्रियासि याज्ञियास्यदि-तिरस्युभयतः श्रीव्या सा नः सुप्रांची सुप्रंतीव्येधि मित्रस्त्वां पदि बंधनीतां पूषाऽध्वंनस्यात्विन्द्वायाध्यांक्षाय ॥ १९ ॥

पदार्थ:—हे जगदीश्वर! (सत्यसवस:) सत्य पेश्वर्ध्य युक्त (ते) आप के (प्रसंवे ) उत्पन्न किये हुए संसार में जो (चित् ) विद्या व्यवहार को चिताने वाली (असि) है जो (मनः) ज्ञान साधन कराने हारी (असि) है जो (धो:) प्रज्ञा और कर्म को प्राप्त करने वाली (असि) है (दक्षिणा) विज्ञान विजय को प्राप्त करने (क्षित्र्या) राज्य के पुत्र के समान वर्ताने हारी (असि) है जो (यिज्ञ्या) यज्ञ को कराने योग्य (असि) है जो (उभयत:शीष्णी ) दोनों प्रकार से शिर के समान उत्तम गुण युक्त और (अदिति:) नाश रहित वाणी वा बिजुली (असि) है वह (नः) हम लोगों के लिये (सुप्राची) पूर्व काल और (सुप्रतीची) पश्चिम काल में मुख देने हारी (पिष्ठ) हो जो (पूषा) पुष्टि करने हारा (मित्रः) सब का मित्र हो कर मनुष्यपन के लिये उस वाणी और बिजुली को (पित्र) प्राप्ति योग्य उत्तम व्यवहार में (अध्यक्षाय) अच्छे प्रकार व्यवहार को देखने (इन्द्राय) परमेश्वर्य वाले परमातमा अध्यक्ष और श्रेष्ठव्यवहार के लिये (बर्ध्नीताम्) बन्धन युक्त करे सो आप (अध्यनः) व्यवहार और परमार्थ की सिद्धि करने वाले मार्ग के मध्य में (नः) हम लोगों की निरन्तर (पातु) रक्षा की जिये ॥ १९॥

भावार्थ:—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है। और पूर्व मन्त्र से (ते) (सत्यसवसः) (प्रसवे) इन तीन पर्दों की अनुवृत्ति भी आती है मनुष्यों को जो वाह्य अभ्यन्तर की रक्षा करके सब से उत्तम वाणी वा विज्ञली वर्तती है वही भूत, भविष्यत् और वर्त्तना काल में सुखों की कराने वाली है ऐसा जानना चाहिये जो कोई मनुष्य प्रीति से परमेश्वर सभाष्यक्ष और उत्तम कामों में आज्ञा के पालन के लिये सत्य वाणी और उत्तम विद्या को ग्रहण करतो है वही सब की रक्षा कर सकता हैं ॥ १९॥

अनुत्वेत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। पूर्वार्द्धस्य साम्नी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। उत्तरार्द्धस्य भुरिगाध्यु पिणक् छन्दः। ऋषभः स्वरः।। फिर वे वाणी और बिजुली कैसी हैं इस विषय का उपदेश अगले सन्त्र में किया है।।

अर्नु त्वा माता मन्यतामनुं पिताऽनु आता सग्रभ्योऽनु सखा सर्यूथ्यः। सा देवि देवमच्छेहीन्द्रांय सोमेथ क्द्रस्त्वा वंत्तेयतु स्वस्ति सोमसखा पुन्रेहिं॥ २०॥

पदार्थ:—हे मनुष्य! जैसे ( हद्रः ) परमेश्वर वा ४४ चवालीस वर्ष पर्व्यन्त अखण्ड ब्रह्मचर्व्याश्रम सेवन से पूर्ण विद्या युक्त विद्वान् ( त्वा ) तुझ को जिस वाणी वा बिद्ध-लो तथा ( सोमम् ) उत्तम पदार्थ समूह और ( स्वस्ति ) सुख को ( इन्द्राय ) परमंश्वर्य की प्राप्ति के लिये (आवर्त्तेयतु) प्रवृत्त करें और जो ( देवि ) विद्या प्रकाश युक्त वाणी और दिव्यगुणयुक्त बिद्धली ( देवम् ) उत्तम धर्मात्मा विद्वान् को प्राप्त होतो है वैसे उस को त् ( पुनः ) वार २ ( अच्छ ) अच्छे प्रकार ( इहि ) प्राप्त हो और इस को प्रहण करने के लिये (त्वा) तुझ को (माता) उत्पन्न करने वाली जननी (अनुमन्यताम्) अनुमति अर्थात् आज्ञा देवे इसी प्रकार (पिता) उत्पन्न करने वाली जनक (सगमर्थः) तुल्य गर्भ में होने वाला ( ध्राता ) भाई और (सय्थ्यः) समूह में रहने वाला (सखा) प्रित्र ये सब प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा देवें उसको त् ( पुनरेहि ) अत्यन्त पुरुपार्थ कर के बारंबार प्राप्त हो ॥ २० ॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है-प्रश्न-मनुष्यां को परस्पर किस प्रकार वर्त्तना चाहिथे ? (उत्तर ) जैसे धर्मात्मा विद्वान् माता पिता भाई मित्र आदि सत्यव्यवहार में प्रवृत्त हों | वैसे पुत्रादि और जैसे विद्वान् धार्मिक पुत्रादि धर्मयुक्त व्यवहार में वर्त्त वैसे माता पिता आदि को भी वर्त्तना चाहिथे ॥ २०॥

वस्वीत्यस्य वत्स ऋषि: । वाग्विद्युतौ देवते । विराडार्पा बृहती छन्द: । मध्यम: स्वर: ||

फिर वह वाणी या बिजुली किस प्रकार की है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है !!

वस्त्र्यस्विदित्रस्याद्वित्यासि कृद्रासि <u>च</u>न्द्रासि । बृह्स्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु कृद्रो वसुंभिराचंके ॥ २१ ॥ पदार्थ:—है विद्वान मनुष्य ! जैसे जो ( वस्वी ) अग्नि आदि विद्या सम्बन्धी जिस की संवा २४ जीवीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करने वालों ने की हुई ( असि ) है जो (अवितः ) प्रकाश कारक ( असि ) है जो ( रुद्रा ) प्राण वायु-संबन्धवाली और जिस को ४४ चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे प्राप्त हुए हों बैसी ( असि ) है जो (आदि-त्या ) सूर्व्यवत् सब विद्याओं की प्रकाश करने वाली जिस का गृहण ४८ अवृतालीस वर्ष पर्व्यन्त ब्रह्मचर्य सेवी मनुष्यों ने किया हो बैसी ( असि ) है जो ( चन्द्रा ) आहित करने वाली ( असि ) है जिसको ( बृहस्पति: ) सर्वोत्तम ( कद्रः ) दृष्टों को इन्लाने बाला परमेश्वर वा विद्वान् ( सुझे ) सुख में ( रम्णानु ) रमण युक्त करता और जिस ( वसुभि: ) पूर्ण विद्यायुक्त मनुष्यों के साथ वर्षमान हुई वाणी वा बिज्ञली की ( आचके ) निर्माण वा इच्छा करता अथवा जिस की में इच्छा करता है बैसे तू मी ( त्या ) उस को ( रम्णानु ) रमणयुक्त वा इस को सिद्ध करने की इच्छा कर।। २१ ॥

भावार्थ: - इस मन्त्र में श्लेष और वाचक लुप्तोपमालक्कार है - जैसे वाणी विज्ञली और प्राण पृथिवी आदि और विद्वानों के साथ वर्त्तमान हुए अनेक व्यवहार की सिद्धि के हेतु है और जिनकी सेवा जितेन्द्रियादि धर्म सेवन पूर्वक होके विद्वानों ने की हो बैसी वाणी और विज्ञली मलुप्यों को विद्वान पूर्वक कियाओं से संप्रयोग की हुई बहुत शुखों के करने वाली होती है ॥ २१॥

अदित्यास्त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्वियुतौ देवते । ब्राह्मी पङ्क्तिम्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे वाणी और बिज्जली कैसी हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अदित्यास्त्वा मूर्जन्ना जिंघिनि देश्वयजंने पृथिक्या हडांचास्प्रदमंसि घृतवृत् स्वाहां। अस्मे रंमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे राष्ट्रों मे राष्ट्रों
मा व्यक्ष रायस्पोबेण वि घौंच्म तोता रार्यः॥ २२॥

पदार्थ:—हे विद्वान मनुष्य! तू जैसे (देवयजने) विद्वानों के मजन वा दान में इस (अदित्या:) अन्तरिक्ष (पृथिव्या:) भूमि और (इड़ाया:) वाणी को (स्वाहा) अच्छे प्रकार यह करने वाली किया के मध्य जो (मूर्जन्) सब के ऊपर वर्त्तमान (घृतवत्) पृष्टि करने वाले भृत के तुख्य (पदम्) जानने वा प्राप्त होने योग्य पदवी (असि) है वा जिस को में (जिद्यमिं) प्रदीप्त करता हु बैसे (त्वा) उस को प्रदीप्त कर और जो (अस्मे) हम लोगों में विभूति रमण करती है वह तुम लोगों में भी (रमस्व) रमण करे जिसको में रमण करता हु उस को तू भी (रमस्व) रमण करा जो (अस्मे) हम लोगों का (बन्धु:) भाई है वह (ते) तेरा भी हो जो (राय:) विद्यादि भन

समृह (त्ये) तुझ में है वह (मे) मुझ में भी हो, जो (तोतः) जानने प्राप्त करने योग्य (रायः) विद्या धन मुझ में है सो तुझ में भी हो (रायः) तुझारी और हमारी समृद्धि हैं वे सब के सुख के लिये हीं इस प्रकार जानते निश्चय करते वा अनुष्ठान करते हुए तुम हम और सब लोग (रायस्पोपेण) धन की पुष्टि से कभी (मावियौध्म) अलग न होयें || २२ ||

भाषार्थ: - इस मन्त्र में वाचक लुहोपमालकार है - मनुष्यों को सत्य विद्या धर्म से संस्कार की हुई वाणी वा शिल्पविद्या से संप्रयोग को हुई विज्ञली आदि विद्या को सब मनुष्यों के लिये उपदेश वा प्रहण और लुक दु: क की व्यवस्था को भी तुल्य ही जान के सब पेश्वर्च्च को परोपकार में संयुक्त करना चाहिये और किसी मनुष्य को इस प्रकार का व्यवहार कभी न करना चाहिये कि जिस से किसी की विद्या धन आदि पेश्वर्य की हानि होवे ॥ २२ ॥

समक्य इत्यस्य कत्स ऋ षि:। वाग्विद्युतौ देवते। आस्तारपंकिश्छन्दः। पंचमः स्वरः।।
इन दोनों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले

मन्त्र में किया है ॥

सर्मरूपे देन्या धिया सन्दक्षिण ग्रोरुचंश्वसा मा म आयुः प्र-मोषीमों अहन्तर्व शीरं विदेश तर्व देवि संदक्षि॥ २३॥

पदार्थ:-है विद्वान् मनुष्य! जैसे (अहम्) में (दक्षिणया) ज्ञान साधक अज्ञान नाश-क (उरुचक्षसा) बहुत प्रकट बचन वा दर्शन युक्त (देव्या) देदीप्यमान (धिया) प्रज्ञा वा कर्म से (तव) उस (देवि) सर्घोत्छ गुणां से युक्त, वाणी वा विज्ञली के (सं-हिश ) अच्छे प्रकार देखने योग्य व्यवहार में जीवन की (समरूचे) कथन से प्रकट करता हूं वह (मे) मेरे (आयु:) जीवन की (मा प्रमोपी:) नाश न करे उस की में अविचा से (मो) नष्ट न कर्क (तव) है सब के मित्र! अन्याय से आप के (बीरम्) श्र्वीर की (मासंविदेय) प्राप्त न होर्ज वैसे ही तू भी पूर्वीक सब कर के अन्याय से मेरे श्रूरवीरों की प्राप्त मत हो ॥ २३॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वासकलुतोपमालङ्कार है—म्बुष्यं को योग्य है कि शुद्ध कम वा प्रज्ञा से वाणी वा विज्ञली की विद्या को प्रहण, उमर को बढ़ा और विद्यादि उत्तम २ गुणों में अपने सन्तान और वीरों को सम्पादन करके सदा सुखी रहें ॥२३॥ एवत इत्यस्य वत्स ऋषि । यज्ञो देवता । पूर्यस्य प्राह्मी जगती छन्दः । निपाद: स्वर: ॥

अम्यस्य दशाक्षरस्य याजुषौ पङ्किश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किस के प्रतिपादन के लिये ज्ञान की इच्छा करने हारा विद्वानों को पूछे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

एष ते गायत्रो भाग इति में सोमांच ब्रुतादेष ते बैष्डुंभो भाग इति में सोमांच ब्रुतादेष ते जार्गतो भाग इति में सोमांच ब्रुता-च्छन्दोतामाना सम्बोज्यङ्गुच्छेति में सोमांच ब्रुतात्। आस्मा-

क्रोंडिस शुक्रस्ते गृद्धीं विचित्तंस्या वि चिन्बन्तु ॥ २४ ॥

पदार्थः - हे विद्वान् मनुष्य ! तू कौन इस यज्ञ का (गायत्र:) घेद्रध्य गायत्री छन्द युक्त मन्त्रों के समृहों से प्रतिपादन ( भाग: ) सेवने योग्य भाग है ( इति ) इस प्रकार विद्वान् से पूछ जैसे वह विद्वान् (ते) तुझ को उस यह का यह प्रत्यक्ष भाग है ( इति ) इसी प्रकार से ( सोमाय ) पदार्थं विद्या सम्पादन करने वाले ( में ) मेरे लिये ( बृतात् ) कहे तु कौन इस यज्ञ का ( अ प्टुभः ) त्रिष्टुप्छन्द से प्रतिपादित ( भाग: ) भाग है ( इति ) इसी प्रकार विद्वान से पूछ जैसे वह ( ते ) तुझ को उस यद्भा का ( एप: ) यह भाग है ( इति ) इसी प्रकार प्रत्यक्षता से समाधान ( सोमाय ) उत्तम रस के सम्पादन करने।वाले (में) मेरे लिये (ब्रृतात्) कहे। तू कौन इस यज्ञ का (जागतः) जगती छन्द से कथित (भागः) अंश है ( इति ) इस प्रकार आप्त से पूछ जैसे वह (ते) तुझ को उस यज्ञ का (एपः) यह प्रसिद्ध भाग है (इति) इसी प्रकार ( सोमाय ) पदार्थ विद्या को सम्पादन करने वाले ( मे ) मेरे लिये उत्तर ( ब्र-तात्) कहे जैसे आप ( छन्दोनामानाम् ) उप्णिक् अः दि छन्दों के मध्य में कहे हुए यद्भ के उपदेश में (साम्राज्यम् ) भले प्रकार राज्य को (गच्छ) प्राप्त हों (इति ) इसी प्रकार (सोमाय) पेश्वर्य्य युक्त (मं) मेरे लिये सार्वभौम राज्य की प्राप्ति होने का उपाय ( ब्रूतान् ) कहिये और जिस कारण आप ( आसाक: ) हम लोगों को (शुक्रः) पिवत्र करने वाले उपदेशक (असि ) हैं वैसे में (ते ) अप के (गृह्यः) प्रहणकरने योग्य (विचित:) उत्तम २ धनादि द्रव्य और गुणों से संयुक्त शिष्य हूं। आप मुझ को सब गुणों से बढ़ाइये इस कारण में (त्वा ) आप को वृद्धि युक्त करता हूं। और सब मनुष्य (त्वा) आप वा इस यज्ञ तथा मुझ को (विचिन्वन्तु) वृद्धियुक्त करें ]]२४]]

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालक्कार है-मनुष्य लोग विद्वानों से पूछ कर सब विद्यार्थों का ग्रहण करें तथा विद्वान् लोग इन विद्याओं का यथावत् ग्रहण करा-यें। परस्पर अनुग्रह करने वा कराने से सब वृद्धियों को प्राप्त होकर विद्या और च-कवर्ष्ति आदि राज्य का सेवन करें। २४। अभि त्यभित्यस्य वत्स ऋषि:। सविता देवता । पूर्वस्य विराट् ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। सुक्रतुरित्युक्तरस्य निचृदार्षा गायत्री छन्दः। पड्जः स्वरः॥ फिर अगले मंत्र में कृष्वर राजसभा और प्रजा के गुणों का उपदेश किया है।

अभि त्यं देव असंबितारं मोण्योः क्विकंतुमचीमि मत्यसंव अ रत्न धाम्मि प्रियं मृति क्विम् । ऊक्षी यस्यामित्रभा सदिगुत्रः रस्रवीमिन् हिरंण्यपाणिरमिमीत । सुक्रतः कृपा स्वः प्रजाभ्यंस्त्वा प्रजास्त्वां उनुप्रार्थानतु प्रजास्त्वमेनुपाणि हि ॥ २५ ॥

पदार्थ:—मैं (यस्य) जिस सिन्नदानन्दादि लक्षणयुक परमेश्वर धार्मिक सभापित और प्रजाजन के (सर्वामिन) उत्पक्ष हुए संसार में (ऊज्र्बा) उत्तम (अमित:)
स्वरूप (भा:) प्रकाशमान (अदिद्युतत्) प्रकाशित हुआ है जिस की (कृपा) करुणा (स्व:) सुक को करतो है (हिरण्यपाणि:) जिस ने सूर्व्यादि ज्योति व्यवहार
में उत्तम गुण कर्मी को युक किया हो (सुक्रतु:) जिस उत्तम प्रज्ञा वा कर्म युक ईश्वर सभा स्वामी और प्रजाजन ने (स्व:) सूर्व्याभीर सुझ को (अमिर्मात) स्थापित
किया हो (स्वम्) उस (ओण्यो:) द्यावापृथिवी वा (सिवतारम्) अप्ति आदि को
उत्तक और संप्रयोग करने तथा (किवक्रतुम्) सर्वद्भ वा कांत वर्शन (रक्षधाम्)
रमणीय रलें। को धारण करने (सत्यसवम्) सत्य पेश्वर्व्ययुक (प्रियम्) प्रीतिकारक
(मितम्) वेदादि शास्त्र वा विद्वानों के मानने योग्य (किवम्) वेदविद्या का उपदेश
करने तथा (देवम्) सुख देने वाले परमेश्वर सभाध्यक्ष और प्रजा जन का (अर्चामि) पूजन करता है वा जिस (त्वा) आप को (प्रजाभन्दः) उत्पक्ष हुई सृष्टि से
पूजित करता है उस आप की सृष्टि में (प्रजा:) मनुष्य आदि (अनुप्राणन्तु) आयु
का भोग करें (त्वम्) और आप कृपा करके (प्रजा:) प्रजा के उत्पर जीवों के अनुकृल (अनुप्राणिहि) अनुग्रह कीजिये ॥ २५॥

भावार्थ: इस मंत्र में ग्लेपालक्कार है मनुष्यों को सब जगत् के उत्पन्न करने वाले निराकार सर्वव्यापी, सर्वशिक्तमान, सिच्चद:नम्दादि लक्षणयुक्त परमेश्वर, धा-मिक सभापित और प्रजाजन समृह ही का सत्कार करना चाहिये उन से भिन्न और किसी का नहीं। विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि प्रजा पुरुषों के सुक्क के लिये इस परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना और श्रेष्ट सभापित तथा धार्मिक प्रजाजन के सत्कार का उपदेश नित्य करें जिससे सब मनुष्य उनकी आज्ञा के अनुकूल सदा बत्ति

रहें और जैसे प्राण में सब जीवां की प्रीति होती है वैसे पूर्वोक्त परमेश्वर भादि में भी अत्यन्त प्रेम कर || २५ ||

शुक्तं त्वेत्यस्य कत्स ऋ पि:। यक्को देवता। भुरिग्झाक्की पङ्किम्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥
मनुष्यों को क्या २ साधनों करके यक्क को सिद्ध करना चाहिये इस विषय
का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

शुक्तं त्यां शुक्रेणं क्रीणामि खन्द्रज्खन्द्रेणामृतंम् मृतेन । सग्मे ते गोर्स्मेते खन्द्राणि तर्पसस्तन्रेसि प्रजार्यतेर्वेषीः प्रमेषं प्रशुनां क्रीयसे सहस्रपोषं पृषेयम् ॥ २६ ॥

पदार्थ:—जैसे (सग्मे) पृथिवो के साथ वर्त्तमान यज्ञ में (तपसः) प्रताप युक्त अग्नि वा तपस्थी अर्थात् धर्मात्मा विद्वान् का (तन्ः) शरीर (असि) है उस को शिल्पविद्या वा सत्योपदेश की सिद्धि के अर्थ (पशुना) विकय किये हुए गौ आदि पशुन्मों करके धन आदि सामग्री से ग्रहण करके (प्रजापतेः) प्रजा के पालन हेतु सूर्य्य का (वर्णः) स्वीकार करने योग्य तेज (कीयसे) कय होता है उस (सहस्रपोषम्) अस्वयात पृष्टि को प्राप्त होके में (पृषेयम्) पृष्ट होऊं हे विद्वान् मनुष्य ! जो (ते) आस्वयात पृष्टि को प्राप्त होके में (पृषेयम्) पृष्ट होऊं हे विद्वान् मनुष्य ! जो (ते) आपको (गोः) पृथिवी के राज्य के सकाश से (चन्द्राणि) सुवर्ण आदि धातु प्राप्त हैं वे (अस्मे) हम लोगों के लिये भी हों जैसे में (परमेण) उत्तम (शुक्रेण) शुद्ध भाव से (शुक्रम्) शुद्धि कारक यज्ञ (चन्द्रेण) सुवर्ण से (चन्द्रम्) सुवर्ण और (अमु-तेन) नाश रहित विद्वान से (अग्रतम्) मोक्ष सुक्ष को (कीणामि) प्रहण करता हुं वैसे तू भी (रवा) इसका ग्रहण कर १। २६।।

भावार्थ:— मनुष्यों को योश्य है कि शरीर मन वाली और धन से परमेश्वर की उपासना आदि सक्षण युक्त यद्भ का निरश्तर अनुष्टान करके असंस्थात अनुस्र पृष्टि को प्राप्त करें ॥ २६॥

मित्रो न इत्यस्य वरस ऋ पि: | विद्वान् देवता । भुरिष् ब्राह्मी पङ्किण्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ||

मनुष्यों को विद्वान् मनुष्य के साथ और विद्वान् को सब मनुष्यों के संग कैसे बर्सना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

मित्रो न एडि सुर्मित्रध्रहन्द्रंस्योरुमाविश दक्षित्रमुश्रमुशन्तेथ स्योतः स्योनम् । स्वान भ्राजाङ्यारे वन्भारे हस्त सुहंस्त क्षशां-नवेते वेः सोमक्रपंणास्तान्च ध्यम्मावो दभन् ॥ २७॥ पदार्थ:—है (स्वान) उपदेश करने (भ्राज) प्रकाश को प्राप्त होने ( अधारे ) छल के शत्र (बस्मारे ) विचार विरोधियों के शत्र (हस्त) प्रसन्न (हहस्त) अच्छे प्रकार हस्त किया को जानने और (हशानो ) वृष्टों को हश करने (हिमप्रधः ) उत्तम मित्रों को धारण करने (मित्रः) सब के मित्र (स्योनः) छल को (उशन्) कामना करने हारे समाध्यक्ष आप (नः) हम लोगों को (पिह्र) अच्छे प्रकार प्राप्त हिजिये तथा (दक्षिणम्) उत्तम अंगयुक्ता (उसम्।) बहुत उत्तम पदार्थों से युक्त वा स्वीकार करने योग्य (उशतम्) कामना करने योग्य (स्योनम्) छल को (आविश) प्रचेश कीजिये | हे समाध्यक्षो ! जो (इन्द्रम्य) परमेश्वर्य युक्त प्रजा और भृत्य आदि मनुष्य (बः) तुम लोगों की रक्षा करें और आप लोग भी उनकी (रक्षध्वम्) रक्षा सदा किया करो जैसे वे शत्र लोग (तान्) उन (वः) तुम लोगों की हिंसा करने में सम्मर्थ (मा दमन्) न हों बैसे ही सम्यक प्रांति से परस्पर मिलके वर्तो ॥ २७॥

भावार्थ: —राज्य और प्रजा पुरुषों को उचित है कि परस्पर प्रांति उपकार और धमयुक्त ब्यवहार में यथावत् वर्त्त शत्रुओं का निवारण अविद्या वा अन्याय रूप अंधिकार का नाश और चक्रवर्ति राज्य आदि का पालन करके सदा आनंद में रहें ॥२७॥

परिमाग्न इत्यस्य वत्स।ऋषि:। अग्निदंवता। पूर्वार्डस्य साम्नीबृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः ॥उत्तरार्डस्य साम्त्युष्णिक् छन्दः। ऋपमः स्वरः॥
सब मनुष्यों को उचित है कि सब करने योग्ब उत्तम कर्मी के आरम्भ मध्य
और सिद्ध होने पर परमेश्वर की प्रार्थना सदा किया करें इस
विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है॥

परिमाग्ने दुर्श्वारिताद्वाधस्यामा सुर्वारते भजाउदार्युषा स्तुः युषोर्दस्थामुमृतुँर॥ अर्नु ॥ २८ ॥

पदार्ध:—हे (अग्ने) जगदीश्वर! आप हपाकर के जिस कमें से मैं (स्वायुपा) उ-समता पूर्वक प्राण घारण करने वाले (आयुपा) जीवन से (असृतान्) जीवन मुक और मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् वा मोक्षरूपी आनन्दों को (उदस्थाम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं उससे (मा) मुझ को संयुक्त करके (दुश्चरितात्) दुष्टाचरण से (उद्वा-घस्व) पृथक् करके (मा) मुझ को (सुचरिते) उत्तम २ धर्माचरण युक्त व्यवहार में (अनुभज) अच्छे प्रकार स्थापन की जिये ॥ २८॥

भावार्थ: मनुष्यों को योग्य है कि अधर्म के छोड़ ने और धर्म के ग्रहण करने के लिये सत्य प्रेम से प्रार्थना करें कि प्रार्थना किया हुआ परमात्मा शीव्र अधर्मी से छुड़ा कर धर्म ही में प्रवृत्त कर देता है परन्तु सब मनुष्यों को यह करना अवश्य है कि जब तक जीवन है तब तक धर्माचरण ही में रह कर संसार वा मोक्ष रूपी सुर्खों को सब प्रकार से सबन करें || २८ ||

प्रतिपन्धामित्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निवेवता। निचृदार्प्येतुषु प् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उस परमेश्वर को प्रार्थना किस लिये करनी चाहिये इस विषय का उपदे-श अगले मंत्र में किया है ॥

प्रतिपन्थां मपदाहि स्वस्तिगार्म<u>ने</u>हसंम् । ये<u>न</u> विद्<u>वाः परि</u>-क्रिको वृगक्ति <u>वि</u>न्दते वसुं ॥ २९ ॥

पदार्थः — हे जगदीश्वर ! आप के अनुग्रह से युक्त पुरुपार्थी होकर हम लोग (येन) जिस मार्ग से विद्वान मनुष्य (विश्वा:) सब (द्विप:) शत्रु सेना वा दु:ख देनेवाली भोग कियाओं को (परिवृणिक ) सब प्रकार से दूर करता और (वसु) सुख करने व ले धन को (विन्दते) प्राप्त होता है उस (अनेहसम्) हिंसा रहित (स्वस्तिगाम्) सुख पूर्वक जाने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (प्रत्यपद्महि) प्रत्यक्ष प्राप्त होवें ॥ २९ ॥

भावार्थ: -- मनुष्यों को उचित है कि द्वेपादित्याग विद्यादि धन की प्राप्ति और धर्ममार्ग के प्रकाश ित्ये प्रेंग्वर की प्रार्थना धर्म और धार्मिक विद्यानों की सेवा निर्त्तर करें || २९ ||

अदित्यास्त्वगतीत्यस्य वत्त ऋषिः। वरुणो देवता । पूर्वस्यस्वराङ्याज्ञयो विष्ठु यू छन्दः । अस्तभादित्यन्तस्य विराडार्याविष्ठु पू छन्दः । धेवतः स्वरः ॥ अगले मत्र में कृष्यर सूर्य्यं और वायु कं गुणों का उपदेश किया है ॥ अदित्यास्त्वग्रस्यदित्ये सद ग्रासीद् । अस्तंभ्नाद्यां वृष्यभोऽ अन्तरिक्षमिमीत विर्माणम्प्रध्यिच्याः । आसीद्विद्यम् सुर्वनानि सम्माद्विद्येक्तानि वर्ष्यस्य ब्रुतानि ॥ ३० ॥

पदार्थ:—हे जगदीश्वर! जिस से आप (अदित्या:) पृथिवी के (त्वक्) आच्छा-दन करने वाले (असि) है (वृषभ:) श्रेष्ठगुण युक्त आप (अदित्ये) पृथिवी आदि सृष्टि के लिये (सद:) स्थापन करने योग्य (आसीद) व्यवस्था को स्थापन करते वा (धाम्) सूर्य्य आदि को (अस्तभ्नात्) धारण करते (वरिमाणम्) अत्यन्तः उत्तम (अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष को (अमिमीत ) रचते और (सम्राट्) अच्छे प्रकार प्रकाश को प्रोप्त हुए सब के अधिपति आप (पृथिव्या:) अन्तरिक्ष के बीच में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (आसीव्त्) स्थापन करते हो इस से (तानि) ये (विश्वा) सब (वरुणस्य) श्रेष्ठकप (ते) आपके (इत ) ही (बृतानि) सत्य स्वभाव और कर्म हैं ऐसा हम लोग (अपचाहि) जानते हैं ॥१॥ जो (वृप्पभः) अत्युत्तम (सम्राट्) अपने आप प्रकाशमान सूर्य और वायु (अदित्याः) पृथिवी आदि के (त्वक्) आच्छादन करने वाले (असि) हैं वा (आदित्याः) पृथिवी आदि छि के लिये (सदः) लोकों को (आसीद्) स्थापन (द्याम्) प्रकाश को (अस्तभ्नात्) धारण (विग्माणम् ) श्रेष्ठ (अन्तरिक्षम् ) आकाश को (अमिमीत्) रचना और (पृथिव्याः) आकाश के मध्य में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (आसीद्त्) स्थापन करते हैं (तानि) वे (विश्वा) सब (ते) उस (वरुणस्य) सूर्या और वायुके (इत्) हो (ब्रतानि) स्वभाव और कर्म हैं एसा हम लोग (अपव्यक्षि) जानते हैं ॥ २॥ ३०॥

भावार्थ:—इस मंत्र में श्लेषालंकार और पूर्व मंत्र से (अपर्मिह) इस पद की अनुवृत्ति जाननी चाहिथे। जैसा परमेश्वर का स्वभाव है कि सूर्य और वायु आदि को सब प्रकार व्यक्त होकर रच कर धारण करता है इसी प्रकार सूर्य और वायुका भी प्रकाश और स्थूल लोकों के धारण का स्वभाव है ॥ ३०॥

वनेष्वित्यस्य वत्स ऋषि: । वरुणो देवता । विराडार्षः त्रिप्टुप् छन्दः। धैवत: स्वरः।।

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है।। वनेषु व्यान्तरिक्षन्ततान् वाज्ञमधीत्सु पर्य छिस्रियांसु । हृत्सु कतुं वर्डणो विश्वनुगिनन्दिषि सूर्यमदिधात् सोम्ममहौं॥ ३१॥

पदार्थ:—जो (वरुण:) अत्युक्तम परमेश्वर स्य वा प्राण वायु हैं वे (वनेषु) किरण वा वनों में (अन्तिरिक्षम्) आकाश को (विततान) विस्तार युक्त किया वा करता (अर्वत्यु ) अत्युक्तम वेगादि गुण युक्त विद्युत् आदि पदार्थ और घोड़ आदि पशुओं में (वाजम्) वेग (उक्षियासु ) गौओं में (पय:) दूध (हृत्सु) हृदयों में (क्षतुम्) प्रज्ञा वा कर्म (विक्षु) प्रजा में अग्निम्) अग्नि (दिवि ) प्रकाश में (सूर्य) आदित्य (अद्रौ) पर्वत वा मेघ में (सोमम्) सोमचर्छी आदि ओपधी और श्रेष्ठ रस को। (अद्धात्) धारण किया करते हैं उसी कृष्वर की उपासना और उन्हीं दोनों का;उपयोग करें ॥ ३१॥

भावार्थ:-इस मंत्र में श्लेपालंकार है-जैसे परमेश्वर अपनी विद्या का प्रकाश

और जगत् की रचना से सब पदार्थों में उनके स्वभाव युक्त गुर्णों को स्थापन और वि-ज्ञान आदि गुणों।को नियत करके पवन सूर्य आदि को विस्तार युक्त करता है वैसे सूर्य और वायु भी सब के लिये सुखों का विस्तार करते हैं ॥ ३२॥

सूर्यं स्य चक्षुरित्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निरंवता । निचृदार्ष्यंतुष्टु प्

छन्द: । गान्धार: | स्वर: ||

फिर वे कैसे हैं इस विश्य का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥ मूर्योस्य चक्षुरारोहाग्नेर्थ्यः क्नीनेकम्। पन्नैतंशिम्रीर्थसे भ्राजमाना विषुश्चितां॥३२॥

भावार्थ:—है परमेश्वर! (यत्र) जहां आप (एतशेमि:) विज्ञान आदि गुणों से (भ्राजमान:) प्रकाशमान (विपश्चिता) मेथावी विद्वान् से (ईयसे) विज्ञान्त होते हो वा जहां प्राण वायु वा बिजुली (एतशेभि:) वेगादि गुण वा (विपश्चिता) विद्वान् से (भ्राजमान:) प्रकाशित होकर (ईयसे) विज्ञात होते हैं और जहां भाष प्राण तथा यिजुली (सूर्यस्य) सूर्य वा बिजुली और (अग्ने:) भौतिक अग्नि के (अश्ण:) देखने के साधन (कनीनकम्) प्रकाश करने वाले (चक्षु:) नेशों को (आरोह) देखने के लिये कराते वा कराती है वहीं हम लोग आप की उपासना और उन दोनों का उपयोग करें ॥ ३२॥

भावार्थ:—इस मंत्र में श्लेपारंकार है—मनुष्यों की उचित है कि जैसे विद्वान् लोग ईश्वर प्राण और बिजुली के गुणों को जान उपासना वा कार्य्य सिद्धि करते हैं वैसे ही उनको जानकर उपासना और अपने प्रयोजनों को सदा सिद्ध करते हैं ॥३३॥

> डस्रावेतमित्यस्य वत्स ऋषि: । सूर्य्यविद्वांसौ देवते । पूर्वस्य भुरिगार्षा पंकिम्बन्द: । पञ्चम: स्वर: । स्वस्तीत्यम्तस्य

> > याजुपी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब सूर्य्य और विद्वान् कैसे हैं और उन से शिल्पविद्या के जानने वाले क्या करें सी अगले मंत्र में कहा है।

उख्रावेतं ध्राही युज्येथामन्दश्र सर्वीरहणी ब्रह्मचोदंनी।स्ब-स्ति यजमानस्य गृहान् गंच्छतम्॥ १६॥

पदार्थ:—है मनुष्यो जैसे विद्या और शिल्प किया को प्राप्त होने की इच्छ करने वाले ( ब्रह्मचोदनी ) अन्त और विज्ञान प्राप्ति के हेतु ( अन्त्र्यू) अव्यापी ( अकोरहणी ) कीरों का रक्षण करने ( उस्ती ) ज्योति युक्त और निवास के हेतु (धू-र्चाही) पृथिकी और धर्म के भार को धारण करने वाले विद्वान ( एतम् ) सूर्ध्य और वायु को प्राप्त होते वा ( युक्येधाम् ) युक्त करते और ( यजप्रानस्य ) धार्मिक यज-मान के ( गृहान् ) घरों को ( स्वस्ति ) सुख से ( गच्छतम् ) गमन करते हैं बैसे तुम भी उन को युक्ति से संयुक्त करके कार्यों को सिद्ध किया करो ॥ ३३॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालक्कार हैं-जैसे सूर्व्य और विद्वान सब पदार्थी को धारण करने हारे सहन युक्त और प्राप्त होकर सुर्कों को प्राप्त कराते हैं बैसे ही शिल्पविद्या के जानने वाले विद्वान से यानों में युक्ति से सेवन किये हुए अग्नि और जल सवारियों को चला के सर्वत्र सुर्क पूर्वक गमन कराते हैं ॥ ३३॥ मद्रो में इसीत्यस्य वत्स ऋषिः। यजमानो देवता। पूर्वस्य भुरिगार्थी गायत्री छन्दः।

पड्जः स्वरः । मात्वेत्यस्य भूरिगार्ची वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । श्येनोभुत्वेत्यस्य विराडार्घ्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
उस यान से विद्वान् को क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश

अगले मध्य में किया है।

भहो में असि प्रच्यंबस्य अवस्पते विद्यानियमिषामानि । मा स्वां परिपरिणों विद्युत्त मा स्वां परिपृत्थिनों विद्युत्त मा स्था दक्षां अञ्चायवो विद्युत्त । इयेनो भूत्वा परापत्त यर्जमानस्य गृहान् गंच्छ-नक्षीं संश्कृतम् ॥ ३४ ॥

पदार्थ:—हैं ( भुषस्पते ) पृथिषों के पालन करने वाले विद्वान् मनुष्य ! त् ( में ) मेरे ( भद्रः ) कल्याण करने वाला बन्धु ( असि ) है सो त् ( नौ ) मेरा और तेरा ( संस्कृतम् ) संस्कार किया हुआ यान है ( तत् ) उस से (विश्वानि) सब (धामानि) स्थानों को ( धामप्रस्था अच्छे प्रकार जा जिस से सब जगह जाते हुए ( त्वा ) तुझ को जैसे (परिपरिणः ) छल से रात्रि में दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करने वाले ( दूकाः ) चोर ( मा विदन् ) प्राप्त न और परदेश को जानने वाले ( त्वा ) तुझ को जैसे (परिपन्धिनः ) मार्ग में लूटने वाले डांकू ( मा विदन् ) प्राप्त न होवें जैसे परमेश्वर्य युक्त ( त्वा ) तुझ को ( अधायवः ) पाप की इच्छा करने वाले दुष्ट मनुष्य ( मा विदन् ) प्राप्त न हो वें के समान वेग बल युक्त ( भूत्वा ) होकर उन दुष्टों से ( परापत ) दूर रह और इन दुष्टों को भी दूर कर ऐसी किया कर के ( यजमानस्य ) धार्मिक यजमान के ( गृहान् ) घर वा देश देशान्तरों को ( गच्छ ) जा कि जिस से मार्ग में कुछ भी दुःख न हो ॥ ३४ ॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है-मतुष्यों को योग्य है कि उत्तम २ विमान आदि यानों को रच उन में बैठ उन को यथायोग्य चला श्येन पक्षी के समान द्वीप वा देश देशान्तर को जा धनों को प्राप्त करके वहां से आ और वृष्ट प्राणियों से अलग रह कर सब काल में स्वयं सुखों का भोग करें और दूसरों को कराबें ॥ ३४॥

नमी मित्रस्येत्यस्य वत्स ऋषिः। सूर्य्यो देवता। निचृदार्षो जगती छन्दः। निपादः स्वरः॥

फिर ईश्वर और सूर्य्य कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।। नमीं मित्रस्य वर्षणस्य चर्चसे महो देवाय तहुत असंपर्यत । दूरे दशें देव जांताय केतवें दिवस्पुत्राय स्र्यीय शक्षसत ॥ १५॥

पदार्थ:—हे मलुष्यो! जैसे हम लोग (यत्) जो (मित्रस्य) सब के सुद्धत् (व-रुणस्य) श्रेष्ठ (दिवः) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर का (ऋतम्) सत्यस्वरूप है (तत्) उस चेतन की सेवा करते हैं । येसे तुम भी उस का सेवन सदा (सपर्खात) किया करों और जैसे उस (महः) यड़ें ( दूरें हशे ) दूर स्थित पदार्थों को दिखानें (चक्षसे) सव को देखनें (देवजाताय) दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (केतवे) विद्वान स्वरूप (देवाय) दिव्यगुण युक्त (पृत्राय) पित्रत्र करने वाले (स्पूर्याय) चराचरात्मा परमेश्वर को (नमः) नमस्कार करने हैं वसे तुम भी (प्रशंसत) उस की सतुति किया करों ॥ १ ॥ हे मनुष्यो! जो (मित्रस्य) प्रकाश (वरुणस्य) श्रेष्ठ (दिवः) प्रकाश स्वरूप सूर्यालोक का (ऋतम्) यथार्थ स्वरूप है (तत्) उस प्रकाश स्वरूप को तुम भी विद्या से (सपर्यंत) सेवन किया करो । जैसे हम लोग जिस (चक्ष से) सच के दिखानें (देवजाताय) दिव्यगुणों से प्रसिद्ध (केतवे) ज्ञान कराने अग्नि के (पृत्राय) पुत्र (दूरेहशे) दूर स्थिर हुए पदार्थों को दिखानें (महः) बड़ें (देवाय) दिव्यगुण वालें (सृर्थाय) स्वर्यं के लिये प्रवृत्त हों वैसे तुम भी प्रवृत्त होनों ॥३५॥

भाषार्थ:-इस मन्त्र में १छेप और वाचकलुक्षोपमालङ्कार है—सब मनुष्यों को जिस की छपा वा प्रकाश से चोर डांकू आदि अपने कार्थ्यों से निवृत्त हो जाते हैं उसी की प्रशंसा और गुणों की प्रसिद्ध करनी और परमंश्वर के समान समर्थ वा सूर्य्य के स-मान कोई लोक नहीं है ऐसा जानना चाहिये || ३५ ||

वरुणस्येत्यस्य वत्स ऋषिः । सूर्व्यां देवता । विगाड् ब्राह्मी वृहसी छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वे कैंसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वर्षणस्योत्तरभंतमसि वर्षणस्य स्कर्मसिनीस्थो वर्षणस्य अत्सद्न्यसि वर्षणस्य अतुसद्नमसि वर्षणस्य अतुसद्नमा-सीद् ॥ ३६ ॥

पदार्थ:—हे जगदीश्वर! जिस से आप (वरुणस्य) उत्तम जगत् के (उत्तम्भनम्) अच्छे प्रकार प्रतिबन्ध करने वाले (असि) हैं जो (वरुणस्य) वायु के (स्कम्भसर्जनी) आधारकपी पदार्थी के उत्पन्न करने (वरुणस्य) सूर्व्य के (ऋतसदनी) जलों का गमनागमन कराने वाली किया (स्थ:) हैं उन को धारण किये हुए हैं (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) पदार्थी का स्थान (असि) हैं (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) सत्यक्षपी बोधों के स्थान को (आसीद्) अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं इस से आप का आश्रय हम लोग करते हैं ॥ १॥ जो (वरुणस्य) जगत् का (उत्तम्भनम्) धारण करने वाला (असि) है जो (वरुणस्य) वायु के (स्कम्भसर्जनी) आधारों को उत्पन्न करने वा जो (वरुणस्य) सूर्व्य के (ऋतसदनी) जलों का गमनागमन कराने वाली किया (स्थ:) हैं उनका धारण करने तथा जो (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) सत्य पदार्थी का स्थान कप (असि) हे वह (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) पदार्थी के स्थान को (आसीद्) अच्छे प्रकार प्राप्त और धारण करता है उस का उपयोग क्यों न करना चाहिये ॥ २॥ ३६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में श्लेपालङ्कार है—कोई परमेश्वर के विना सब जगत् के रचने वा धारण पालन और जानने को समर्थ नहीं हो सकता और कोई सूर्ख के विना भूमि।आदि जगत् के प्रकाश और धारण करने को भी समर्थ नहीं हो सकता इस से सब मनुष्यों को ईश्वर की उपासना और सूर्ख का उपयोग करना चाहिये।|३६॥

याते धामानीत्यस्य गोतम ऋषि: । यज्ञो देवता । निचृदार्पी त्रिष्टुप् छन्दः ।

#### धैवतः स्वरः ॥

फिर ये केसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ||

याने घामांनि ह विषा घर्जान्त ता ने विद्यां परिभूरंस्तु गुज्ञ
म् । गुग्रस्कानं: गुन्तरंणः सुवीरोऽषीरहा प्रचरा सो मुदुधाने ॥ ३७॥

पदार्थ:—हे जगदीश्वर जैसे विद्वान लोग (या) जिन (ते) आप के (धामानि)
स्थानों को (हविषा) देने लेने योग्य द्रव्यों से (यजन्ति) सत्कार पूर्वक ब्रहण करने
हैं वैसे हमलोग भी (ता) उन (विश्वा) समों को ब्रहण करें जैसे वह यज्ञ विद्वानां

को (ते) आप का (गयस्कान:) अपत्य धन और घरों के बढ़ाने (प्रतरण:) बु:लां से पार करने (सुवीर:) उत्तम वीरों का योग कराने (अवीरहा) कायर दरिइता युक्त अवीर अर्थात् पुरुषार्थ रहित मनुष्य और शत्र आं को मारने तथा (परिभू:) सब प्रकार से सुख कराने वाला है वैसे वह आपकी छपा से इम लोगों के लिये (अस्तु) हो वा जिसको विद्वान लोग (यजन्ति) यजन करते हैं उस (यज्ञम्) यज्ञ को इम लोग भी करें। हे (सोम) सोमविद्या को संपादन करने वाले विद्वान ! जैसे हम लोग इस यह को करके घरों में आनन्द करें जाने इस में कर्म करें वैसे तू भी इस को कर के (दुर्ख्यान्) घरों में (प्रचर) सुख का प्रचार कर जान और अनुष्ठान कर ॥३॥।

भाषार्थ:—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालक्कार हैं—जैसे विद्वान लोग ईम्बर में प्रीति संसार में यह के अनुष्ठान को करते हैं वैसा ही सब मनुष्यों को क-करमा उचित है ॥ ३७ ॥

इस अध्याय में शिल्पविद्या, वृष्टि की पवित्रता का संपादन, विद्वानों का संगयक्त का अमुष्ठान, उत्साह आदि की प्राप्ति, शिल्पविद्या की स्तुति, यक्त के गुणों का वर्णन सराब्द्रत का भारण, अग्नि जल के गुणों का वर्णन, पुनर्जन्म का कथन, ईश्वर की प्रार्थना, बक्तानुष्ठान, माता पिता और पुत्राविकों कामापस में अनुकरण, यक्त की व्यावया, दिव्य बुद्धि की प्राप्ति, परमेन्वर का अर्चन, सूर्व्यं गुण वर्णन, पदार्थी के कथ विक्रय का उप-देश, मित्रता करना धर्म मार्ग में प्रचार करना, परमेन्वर वा सूर्व्य के गुणों-का प्र-काश चोर आदि का निवारण ईन्वर सूर्व्यादि गुण वर्णन और यक्त का फल कहा है इस से इस अध्यायार्थ की तीसरे अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जानमी चाहिये। जबर और महीधर आदि वे इस अध्याय का भी शब्दार्थ विरुद्ध ही वर्णन किया है ॥

यह बौधा अध्याय समाप्त हुआ ॥



## ओ३म्

## त्र्रथ पञ्चमाध्यायारम्भः॥

अब चौथे अध्याय की पूर्त्ति के पद्धात् पांचवें अध्याय के भाष्य का आरम्भ किया जाता है ॥

विद्यांनि देव सवितर्देशितानि परांसुव । यञ्जदं तञ्च आसुव ॥ १ ॥

भग्नेस्तन्रिखस्य गोतम ऋषि:। विष्णुरंवता। स्वराङ्बाद्यां वृद्दतीछन्दः। मध्यमः स्वरः।।

किस २ प्रयोजन के लिये यहां का अनुष्ठान करना योग्य है इस विषय का इपदेश अगले मन्त्र में किया है ]]

आग्नेस्त्रनूरंसि विद्यांचे त्या सोमस्य तनूरंसि विद्यांचे त्याऽ-तिथरातिध्यमंसि विद्यांचे त्या इग्रेनायं त्या सोम्रभृते विद्यांचे त्याऽग्नये त्या रायस्यो<u>य</u>दे विद्यांचे त्या ॥ १ ॥

पदार्थ:—है मनुष्यो ! तुम लोग जैसे मैं जो हिंब (अग्नेः) बिजुली प्रसिद्ध रूप अगिन के (तन्ः) शरीर के समान (असि) है (त्वा) उस को (विष्णवे) यज्ञ की
सिद्धि के लिये स्वीकार करता हूं जो (सोमस्य) जगत् में उत्पन्न हुए पदार्थ समृह
की (तन्ः) विस्तार पूर्वक सामग्री (असि) है (त्वा) उस को (विष्णवे) वायु
की शुद्धि के लिये उपयोग करता हूं जो (अतिथेः) सन्यासी आदि का (आतिथ्यम्) अतिथिपन वा उन को सेवा रूप कर्म (असि) है (त्वा) उस को (विष्णवे) विद्धान यज्ञ की प्राप्ति के लिये प्रहण करता हूं जो (श्येनाय) श्येन पक्षी के समान शौन्न जाने के लिये (असि) है (त्वा) उस द्रव्य को अग्नि आदि में छोड़ता
हूं जो (विष्णवे) सब विद्या कर्म युक्त (सोमभृते) सोमों को बारण करने वाले यजमान के लिये सुख (असि) है (त्वा) उस को प्रहण करता हूं जो (अन्तये) अगिन बढ़ाने के लिये काष्ट आदि है (त्वा) इस को स्वीकार करता हूं जो (रायस्पोयवे) धन की पृष्टि देने वा (विष्णवे) उक्तम गुण कर्म विद्या की व्यप्ति के लिये समर्थ पदार्थ है (त्वा) इस को प्रहण करता हूं बैसे इस स्रव का सेवन तुम भी किया
करों | १ |

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुत्तोपमालक्कार है—मनुष्यों को उचित है कि पू-वॉक फल की प्राप्ति के लिये तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करें ॥ १॥ अग्नैर्जनित्रमित्यस्य गीतमऋषि:। विष्णुर्यक्को देवता। पूर्वस्यार्थी गायत्रीछन्दः। वड्जः

स्वर: । गायत्र रयुत्तरस्याची त्रिष्टुप् छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

फिर वह यह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥
अगने जिनिश्रंमिस वर्षणी स्थ खर्वहर्यस्या युरिस पुरूरवां ग्रासि
गायुत्रेणं त्वा छन्दंसा मन्थासि श्रेष्ठंभेन त्वा छन्दंसा मन्थांसि
जार्गतेन त्वा छन्दंसा मन्थामि ॥ २ ॥

पदार्थ:—है मनुष्य ! लोगो जैसे मैं जो (अग्ने) आग्नेय वस्त्रादि की सिद्धि करने हारे अग्नि के (जिन्मम्) उत्पन्न करने नाला हिन (असि) है (वृपणौ) जो वर्षा कराने नाले सूर्व्य और नायु (स्थ:) हैं जो (उर्वशी) बहुत सुक्यों के प्राप्त कराने वाली किया (असि) है जो (आयु:) जीवन (असि) है जो (पुरुरवा:) बहुत शास्त्रों के उपदेश करने का निमित्त (असि) है (त्वा) उस अग्नि (गायत्रेण) गायत्री (छम्बसा) आनम्ब कारक स्वच्छन्द क्रिया से (मन्थामि) विलोडन करता हूं (त्वा) उस सोम आदि ओपधी समृह (त्रेप्टुमेन) त्रिप्टुए (छन्दसा) छन्द से (मन्थामि) विलोडन करता हूं (त्वा) और उस शत्रु दु:ख समृह को (जागतेन) जगती (छन्दसा) छन्द से (मन्थामि) ताड़न कर के निवारण करता हूं वैसे ही तुम भी किया करो ॥ २॥

भाषार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालक्कार है—सब मनुष्यों को योग्य है कि इस प्रकार की रीति से प्रतिपादन वा सेवन किये हुए यहा से दूसरे मनुष्यों के लिये परोपकार करें || २ ||

भवतम इत्यस्य गोतम ऋषि:। यहोदेवता। आर्थीयंकिम्छन्द:। पञ्चम: स्वर: || यज्ञमान और यहा की सिद्धि करने वाले विद्वान् कैसे होने चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ||

भवंतन्नः समंनम्हो सर्वेतसावरेपसी मा ग्रन्न हिंधसिष्टं मा ग्रन्नपंतिं जातवेदसी शिवी भवतमुख नः ॥ ३ ॥

पदार्थ:—जो ( अरेपसौ ) प्राकृत मनुष्यों के भाषा कपी वस्त्रन से रहित ( समन-सौ ) तुल्य विज्ञान युक्त ( सस्त्रेतसौ ) तुल्य ज्ञान ज्ञापन युक्त ( जातवेदसौ ) वेद और उप विद्यार्थी को सिद्ध किये हुए पढ़ने पढ़ाने वाले विद्वान् ( न: ) हम लोगों के लिये उपवेश करने वाले (भवतम्) होवें जो (यज्ञम्) पढ्ने पढ्ने रूप यज्ञ वा (यज्ञप-तिम्) विधा प्रद यज्ञ के पालन करने वाले यजमान को (मा हिंसिएम्) न पीड़ित करें वे (अद्य) आज (न:) हम लोगों के लिये (शिवों) मक्कल करने वाले (भव-तम्) होषें ॥ ३॥

भावार्थ:—मनुष्यों को उचित है कि विद्या प्रचार के लिये पढ़ना पढ़ाना वा स-कुलाचरण को न छोड़े क्योंकि यहाँ सर्वोत्तम कर्म है ॥ ३॥

अग्नाविग्निरित्यस्य गोतम ।ऋपि: । अग्निवंवता । आर्थीत्रिष्टु प् छन्दः । धैवतः

स्वर: । अत्र महीधरेण विराडित्यशुद्धं व्यख्यातम् ॥

विद्युत् और विद्वान् अग्नि फैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है।

अग्रनाविग्निद्चंरित प्रविष्टाश्वषीयाम्युत्रो अभिदास्ति पार्वा । सर्नः स्योनः सुपर्जा यजेह देवेभ्यो हुन्यर्थ सद्मप्रयुच्छन् स्वाहां॥४॥

पवार्थ:—जो (अभिशस्तिपावा) सब प्रकार हिंसा करने वालों से रहित (अग्नी) विद्युत् अग्नि की विद्या में (प्रविष्ट:) प्रवेश करने कराने (ऋषीणाम्) वेदादि शास्त्रों के शब्द अर्थ और संबन्धों को यथावन् जनाने वालों का (पृत्र:) पढ़ा हुआ (स्थोन:) सर्वधा सुखकारी (सुयजा) विद्याओं को अच्छी प्रकार प्रत्यक्ष संग कराने हारा (अश्वः) प्रकाशात्मा (अपयुच्छन्) प्रमाद रहित अध्यापक विद्वान् (चरित) जो (न:) हम छोगों के लिये (इह) इस संसार में (देवेश्य:) विद्वान् वा दिव्य गुणों से (ह-व्यम्) लेने देने योग्य पदार्थ वा (सदम्) झान और (स्वाहा) हवन करने योग्य उत्तम अक्नादि को प्राप्त करता है (स:) सो आप (यज्ञ) सब विद्याओं को प्राप्त कराइये ॥ ४॥

भाषार्थ:—मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि कार्य्य कारण के भेद से दो प्रकार का निश्चत अर्थात् जो कर्व्य कप से स्यादि और कारण कप से विद्युत् अग्नि सब म्र्तिमःन् द्रव्यों में प्रवेश कर रहा है उसका इस संसार में विद्या से संप्रयोग कर कार्यों में उपयोग करना चाहिये ॥ ४॥

भापतयेत्वेत्यस्य गोतम ऋषि: | विद्युद्देवता । पूर्वस्याच्युं प्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । अनाधृष्टमित्यप्रस्य भुरिगार्षा पंकिरछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥ मनुष्यों को किस २ प्रयोजन के छिये परमातमा की प्रार्थना बिज्जुर्छा का स्वी-कार करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ।

आर्थतये त्या परिपतये गृह्णाम् तत् नत्रेशाक्रराय शर्कन्डओ-जिष्ठाय सर्नाषृष्ठमस्यनाषृष्यं देवानामोजोऽनंभिशस्यभिशस्ति-पांऽसंनभिशस्त्रेन्यमंजंसा सत्यमुपंगेष् स्विनेमां थाः ॥ ५॥

पदार्थ:—मैं हे परमात्मन्! जिस से आप हिंसा क्रप कर्मों से अलग रहने और र-क्षमे वाले हैं इस से (त्वा) अपको (आपतये) सब प्रकार से स्वामी होने (परि-पतये) सब ओर से रक्षा (शाक्षराय) सब सामर्थ्य की प्राप्ति (शक्षने) शूरवीर युक्त सेना (ओजिष्ठाय) जिस में सर्वोत्हृष्ट पराक्षम होता है उस विद्या के होने और (त-नूनप्त्रे) जिस से उत्तम शरीर होता है उस के लिये (गृह्णामि) प्रहण करता हूं आप अपनी छपा से उस (देवानाम्) विद्वानों का (अनाधृष्टम्) जिसका अपमान कोई नहीं कर सकता (अनाधृष्यम्) किसी के अपमान करने योग्य नहीं है (अनिभशस्ति) किसी के हिंसा करने योग्य नहीं है (अनिभशस्ति) किसी के हिंसा करने योग्य नहीं हैं। (अभिशस्तेन्यम्) अहिंसाक्ष्प धर्म की प्राप्ति कराने हारा (सल्यम्) अविनाशी (ओज:) तेज है उसका प्रहण कराके (स्विते) अच्छे प्रकार जिस व्यवहार में सब सुख प्राप्त होते हैं उस में (मा) मुझ को (धा:) धारण करें कि जिस से (सल्यम्) सल्य व्यवहार को (उपगेयम्) जान कर कर्के ।। १।।

मैं जो (अनाधृष्टम्) न हटाने (अगाधृष्यम्) न किसी से नष्ट करने (अनिभश-क्ति) न हिंसा करने (अनिभश्स्तेन्यम् ) और हिंसारहित धर्म प्राप्त कराने योग्य (देवानाम्) विदान् वा पृथवी आदिकों के मध्य में (सत्यम्) कारणक्रप नित्य (ओ-जः) पराक्रम स्वक्रप वालों (अभिशस्तिपाः) हिंसा से रक्षा का निमित्त क्रप बिज्जलों (असि) है, जो (मा) मुझे (स्विते) उत्तम प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (धाः) धरण करती है (अअजसा) सहजता से (ओजिग्राय) अन्यन्त तेजस्वी (आपतये) अच्छे प्रकार पालन करने योग्य व्यवहार (परिपतये) जिस में सब प्रकार पालन करने वाले होते हैं (तन्नविष्टे) जिस से उत्तम शरीरों को प्राप्त होते हैं (शाक्कराय) शक्ति के उत्पन्न करने और (शक्तने) शक्ति वाली वीरसेना की प्राप्ति के लिये है (त्वा) उसकी (गृहणामि) प्रहण करता हूं कि जिस से उन सत्य कारण क्रप पदार्थों को (उपोषम्) जान सक् ॥ २॥ ५॥

भाषार्थ: मनुष्यों को परमेश्वर के विद्वान के विना सत्य सुख और बिजुली आ-वि षिद्या और कियाकुशलता के विना संसार के सब सुख नहीं हो सकते, इस लिये यह कार्च्य पुरुषार्थ से सिद्ध करना चाहिये || ५ ||

अप्ने ब्रह्मपा इत्यस्य गोतम ऋषि:। अप्निर्देषता। विराड् ब्राह्मी पङ्किश्छन्दः। पञ्चम: स्वरः॥

फिर षष्ट परमातमा और विज्ञली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

भागों वतपासने वंतपा या तनं तुन्रियः सा मण् यो मर्म तुन्रेषा सा त्वियं। सह नी वतपते व्यतस्यनं मे दीचान् दीक्षा-पेतिमेन्यंतामनु तप्रतपंरपतिः॥६॥

पदार्थः—जिस लिये हैं (अग्ने) ( प्रतपते ) जगदीश्वर ! आप वा विज्ञली सत्यधर्मीद नियमों के ( प्रतपा: ) पालन करने वाले हैं इसलिये (त्वे) उस आप वा
विज्ञली में मैं ( प्रतपा: ) पूर्वोक्त वृतों के पालन करने वाली किया वाला होता हूं
(या) जो ( इयम् ) यह (तव ) आप और उस की (तन्ः ) विस्तृत व्यक्ति हैं (सा)
वह (मिय) मुझ में (यो) जो (एपा) यह (मम) मेरा (तन्ः ) शरीर हैं (सा)
सो (त्विय) आप वा उस में हैं ( प्रतानि ) जो अह्मचर्थ्यादि प्रत हैं वे मुझ में हों
और जो ( मे ) मुझ में हैं वे (त्विय ) तुम्हारे में हैं जो आप वा वह ( तपस्पति: )
जितेन्द्रियत्वादिपूर्वक धर्मानुष्ठान के पालक नियित्त हैं सो ( मे ) मेरे लिये (तपः )
पूर्वोक्त तप को ( अनुमन्यताम् ) विज्ञापित कीजिथे वा करती है और जो आप वा
वह ( दोक्षापति: ) यूतोपदेशों के रक्षा करने वाले हैं सो ( मे ) मेरे लिये (दीक्षाम्)
पूर्तोपदेश को ( अनुमन्यताम् ) आज्ञा कीजिथे वा करती है इसलिये भी ( नी ) मैं
और आप पढ़ने पढ़ाने हारे दोनों प्रीति के साथ वर्त्त कर विद्वान् धार्मिक हों कि
जिस से दोनों की विद्यानुद्धि सदा होवें।।। ६।।

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेपालङ्कार है—मनुष्यों को परस्पर प्रेम वा उपकार वृद्धि से परमात्मा वा विज्ञली आदि का विज्ञान कर वा कराके धर्मानुष्टान से पुरुषा-र्थं में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये || ६ ||

अक्षशुरित्यस्य गोतमऋषिः । सोमो देवता । आद्यसार्वी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । आप्यायेत्यन्तस्यार्थी जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

फिर वह ईश्वर विज्ञुली और विद्वान कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मनत्र में किया है ॥

अर्थ शुरं छ शुष्टे देव सोमाप्यांयतामिन्द्रांचैकथत्विदें। आतु-भ्यमिन्द्रः प्यार्थतामात्वमिन्द्रांय प्यायस्व। आप्यांययास्मान्तसस्ती- रत्मरम्या मेघर्या स्वस्ति ते देव स्रोम सुत्यामंत्रीय । एष्टा राष्ट्रः प्रेषे भगांचऽत्रातस्त्रत्वादिभ्यो नमो चार्वापृध्विभयोम् ॥ ७ ॥

पदार्थः - है (सोम) पहार्थ विद्या को जानने था (देघ) दिव्य गुणसंपम्न जगदीश्वर! विद्यत्र! विद्युद्धा जिस से (ते) आप वा इस विद्युद्धा सामध्य (अंशुरंशुः)
अवयव २ अङ्ग २ को (आध्यायताम्) रक्षा से बढ़ा अधवा वढ़ातों है (इन्द्रः) जो
आप या विद्युत्धी (एकधनविदे) अर्थात् धर्मिवज्ञान से धन को प्राप्त होने वाले (इन्द्राय) परमेश्वर्य्ययुक्त मेरे लिखे (आध्यायताम्) बढ़ावे वा बढ़ाती है (आध्यायस्व)
वृद्धियुक्त कीजिये वा करती है। वह आप विज्ञुली अदि एदार्थ के ठीक २ अर्थों को
प्राप्ति को (सन्न्या) प्राप्ति कराने वाली (सेधया) प्रज्ञा से (अस्मान्) हम (सस्वीन्)
सव के मित्रों को (आध्यायस्व) वढ़ाइये वा वढ़ावे जिल से (स्वस्ति) सुख सदा
बढ़ता रहे (सोम) छे एदार्थ विद्या को जानने वाले ईश्चर वा विद्वन्! आप की
शिक्षा वा विद्वर्श की विद्या से युक्त होकर में (खुलान्) उत्तम २ उत्पन्न करने
वाली किया में कुशल होके (इरे) सिद्धि को इच्छा चा अन्नादि (भगाय) ऐम्वर्यं के लिथे (एएः) अभीष्ट खुखों को प्राप्त कराने वाले (रायः) धनसमूहों को (अ-शीय) प्राप्त होर्ज । और (ऋतवादिभ्यः) सन्यवन्ती विद्वानों को यह धन देके सस्य विद्या और (द्यावापुथियोभ्याम् ) प्रकाश वा स्वित्य से ( ऋतम् ) अन्न को प्राप्त होर्ज ॥ ७॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में श्लेपालङ्कार है—मनुष्यों की चाहिये कि परमेश्वर की उपासना, विद्वान की सेवा और विद्युत् विद्या का प्रचार करके शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाली ओए विद्यों और अनेक प्रकार के वनों का प्रहण करके चिकित्सा शास्त्र के अनुसार सब आन्ध्यों को भोगें ॥ ७॥

यात इत्यस्य गोतम ऋगिः । अग्निरंचता । पूर्वस्य विराडाणी बृहती छन्दः । यात इति द्वितीयस्य निचृदाणी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह विजुलो कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।। या तेंऽअरनेऽयः श्राया तुनुवेधिंछा गहरेखा। उग्रं बच्चोऽअपांव-धीरवेषं वच्चोऽअपांवधीरस्वाहां। या तेंऽग्ररने रजः श्राया तुनुवे-धिष्ठा गहरेखा। उग्नंवचोऽअपांवधीरवेषं वच्चोऽअपांवधीत् स्वाहां। या तेंऽअग्ने हरिशाया मुन्वेविष्ठा गहरेष्ठा । द्वर्ध वची अयांवधीः त्वेषं वची अपांवधीत्स्वाहां ॥ ८॥

पदार्थः है मनुष्य लोगो! तुम को (या) जो (ते) इस (अग्ने) विज्ञली क्रप अग्नि का (अयः शया) सुवर्णादि में सोने (वर्षिष्ठा) अत्यन्त बड़ा (गह्व-रंप्डा) आभयन्तर में रहने वाला (तन्ः) शरीर (उग्रम्) कर् भयङ्कर (वचः) वचन को (अपावधीत्) नष्ट करता और (त्येपम्) प्रदीम (ययः) शब्द वा (स्वाहा) उत्तमता से हवन किये हुए अब को (अपावधीत्) दूर करता और जो (ते) इस (अग्ने) विज्ञलीक्षप अग्नि का (वर्षिष्ठा) अत्यन्त विस्तीर्ण (गहरेष्ठा) आभयन्तर में स्थित होने (रजः शया) लोकों में सोने वाला (तन्ः) शरीर (उग्रम्) क्रूर (वचः) कथन को (अपावधीत्) नष्ट करता है (त्वेप्रम्) प्रदीप (वचः) द्रथन या (स्वाहा) उत्तम वाणी को (अपावधीत्) नष्ट करता है उसको जानके उस से कार्यं लेना चाहिये || ८ ||

सावार्थ:—मनुष्यों को योग्य है कि सब स्थुल और सक्ष्म पदाधी में रहने वाली जो बिजुली की व्याप्ति है उसको अच्छे प्रकार जान कर उपयुक्त कर के सब दु:खों का नाश करें || ८ ||

तप्तायनीत्यस्य गोतमऋ पिः। अग्निर्देवता । प्रथमस्य भुरिगार्पः नायत्रो छन्दः पड्जः स्वरः । विदेदसिरित्यस्य भुरिग् प्रह्यो एहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । नाम्नेहीत्यस्य निचृद्वाह्यां जगती छन्दः । निपाः स्वरः । अनुत्वेत्यस्य याजुष्यनुपदुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ अनुत्वेत्यस्य याजुष्यनुपदुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ और किसलिये अग्नि आदि से यज्ञ का अनुष्टान करनः वाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नुप्ताचंनी मेऽसि विक्ताचंनी मेऽस्ययंतानमा नाधितादवंतानमा न्यथितात् । विदेविगनेमें।नामाग्नेंऽअद्भिष्ट आधुंना नाग्नेहि-ग्रें।ऽस्यां पृथिन्यामसि यक्तेनांधृष्टक्कामं यक्तियं तेम त्वा दंधे विदे-विगनेमोनामाग्ने अङ्गिर आधुंना नाम्नेहि योखितीयंस्याम्य-थिन्यामसि यक्तेऽनांधृष्टकामं यक्तियन्तेम त्वा दंधे विदेविगनेमो नामाग्नेंऽस्रक्तिय आयुंना नाम्नेहि यस्तृतीयंस्याम्य्थिन्यामसि यक्तेनांधृष्टकामं यक्तियन्तेम त्वा दंधे। स्रानुं त्वा देवधीतये॥ ६॥

पदार्थ: — हे विद्या के प्रहण करने वाले विद्वान् ! जैसे में ( यत् ) जो (तप्तायनी ) स्थापनीय वस्तुओं के स्थान वाळी विद्युत् ज्वाळा (असि ) है वा जो (वित्तायनी ) भोग्य वा प्रतीत पदार्थी को प्राप्त कराने वाली विजुर्ला (असि ) है (त्वा ) उसकी विद्या को जानता हूं वैसे तू भी इस को (मे ) मुझ से (पहि ) प्राप्त हो । जैसे यह (यत्) जो (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (नभः) जल वा प्रकाश को प्राप्त कराता हुआ (मा) मुझ को (व्यथितात्) भय से (अवतात्) रक्षा करता वा (नाधितात्) पेश्वर्य से (अवतात्) रक्षा करता है वैसे तुझ से सेवन किया हुआ यह तेरी भी र-क्षा करेगा | जैसे में (तेन ) उस साधन से जो ( अग्ने ) जाठर रूप ( अक्निर: ) अक्नों में रहने बाला अग्नि (आयुना) जीवन वा (नाम्ना) प्रसिद्धि से (अस्याम्) इस ( पृथिव्याम् ) पृथिवी में ( नाम ) प्रसिद्ध है (त्वा ) उसको जानता हूं वैसे तू भी इसको (मे) मुझ से (एहि) अच्छे प्रकार जान जैसे मैं (तेन) उस झान से (यत्) जो ( अनाधृष्टम् ) नहीं नष्ट होने योग्य ( यज्ञियम् ) यज्ञाङ्क समृह ( नाम ) प्रसिद्ध तेज है (त्वा ) उसको (देववीतये ) दिव्यगुणीं की प्रति के लिये (त्वा) उस यज्ञ को ( आद्धे ) धारण करता हूं वैसे तू उससे इसको उत्तम गुर्णो की प्राप्ति के लिये धा-रण कर और वैसे सब मनुष्य भी उससे इसको (विदेत्) प्राप्त होवें जैसे मैं (तेन) जो (द्वितीयस्याम् ) दूसरी (पृथिव्याम् ) भृमि में (अव्रे ) (अङ्किर: ) अङ्कारों में रहबे वाला अग्नि ( आयुना ) जीवन वा ( नाम्ना ) प्रसिद्ध से ( नाम ) प्रसिद्ध है वा (य:) जो (नभ:) सुख को देता है (तेन) (त्वा) उस सं उस को प्राप्त हुआ हूं वैसे तू उस से इस को ( एहि ) जान और सब मनुष्य भी उससे इस को ( विदेत् ) प्राप्त हों जैसे मैं (तेन) पुरुषार्थ से जो (अनाधृष्टम् ) प्रगतनगुण सहित (यिज्ञयम् ) यज्ञ सम्बन्ध (नाम ) प्रसिद्ध तेज है (त्वा ) उसे भोगों की प्राप्ति के लिये (आदधे) धारण करता हूं तथा तू उस के लिये धारण कर और सब मनुष्य भी (विदेत् ) धा-रण करें जैसे मैं (तेन) उस कियाकौशल से जो (अग्नि:) अग्नि (आयुना) जीवन षा प्रसिद्धि से (अक्निर: ) अक्नों का सूर्व्यक्रप से पोपण करता हुआ (नाम ) प्रसिद्ध है वा जो (नभः) आकाश को प्रकाशित करता है (त्वा) उस को धारण करता हू बैसे तू उस को धारण कर वा सब लोग भी (अनुविदेत्) उस को ठौक २ जोन के कार्ख सिद्ध करें। जैसे मैं (तेन) इन्धनादि सामग्री से जो (अनाधृष्टम्) प्रगल्म स-हित ( यज्ञियम् ) शिल्पविद्यासम्बन्धी ( नाम ) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उस को विद्वानी की प्राप्ति के लिये ( आद्धे ) धारण करता हूं यैसे तू उस से उस की प्राप्ति के लिये ( अन्वोह ) क्रोज कर और सब मनुष्य भी विद्या से संप्रयोग करें ॥ ९ ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलुत्तोपमालक्कार है—जो प्रसिद्ध सूर्य्य विज्ञली रूप से तान प्रकार का अग्नि सब लोगों में वाहिर भीतर रहने वाला है उस को जान और जनाकर सब मनुष्यों को कार्य्य सिद्धि का संपादन करना कराना चाहिये ॥ १॥ सिश्च हासीत्यस्य गोतम ऋषि:। वाम्देवता। ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥ अब अगले मन्त्र में सब विद्याओं की मुख्य सिद्धि करने वाली वाणी के गुणों का उपदेश किया है॥

सि श्वासि सपत्नसाही देवेभ्धः कल्पस्य सि श्वासि सपत्न-साही देवेभ्धः। शुन्धस्यं सि श्वासि सपत्नसाही देवेभ्धः शुम्भ-स्व ॥ १० ॥

पदार्थ:—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जो (सपलसाही) जिस से शत्रुओं को सहन करते हैं वह (देवेभ्य:) उत्तम गुण श्रूरवारों के लिथे (कल्पस्व) पढ़ा और उपदेश कर के प्राप्त कर (सिंही) जो दोषों को नए करने वा शब्दों का उच्चारण करने वाली वाणी (असि) है उस को (देवेभ्य:) विद्वान् दिव्यगुण वा विद्या की इच्छा वाले मनुष्यों के लिये (शुन्धस्व) शुद्धता से प्रकाशित कर जो (सपलसाही) दोषों को हनन वा (सिंही) अविद्या के नाश करने वाली वाणी (असि) है उस को (देवेभ्य:) धार्मिकों के लिये (शुन्धस्व) शुद्ध कर और जो (सपलसाही) नुष्ट स्वभाव और (सिंही) नुष्ट दोषों को नाश करने वाली वाणी (असि) है उस को (देवेभ्य:) सुशील विद्वानों के लिये (शुन्भस्व) शोभा युक्त कर ॥ १०॥

भावार्थ:—मनुष्यों को अति उचित है कि जो इस संसार में तीन प्रकार की वा-णी होती है अर्थात् एक शिक्षा विद्या से संस्कार की हुई, दूसरी सत्यभाषणयुक्त और तीसरी मधुरगुण सहित उन का स्वीकार करें || १० ||

इन्द्रघोषस्त्वेत्यस्य गोतमऋषिः । वाग्देवता । निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा और कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ड्रान्ट्र्योषस्त्वा वसुंभिः पुरस्तांत्पातु प्रचेतास्त्वा कुद्रैः पुरुचास्पांतु मनोजवास्त्वा पितृभिद्दक्षिणतः पांतु विश्वकंमी स्वादित्यैकंसर्तः पांत्विद्महन्त्रः वाबीहिकी युज्ञाकिःस्रंजामि ॥ ११ ॥

पदार्थः—है विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (प्रचेताः ) उत्तम ज्ञान युक्त ( इन्द्र्योषः ) परमातमा वेद विद्या और विज्ञली का घोष अर्थात् शब्द अर्थ और सम्बन्धों के बोधवाला

(विश्वकर्मा) सब कर्म वाला में (यहात्) पढ़ना पढ़ाना वा होम कप यह से (इन्स्म्) आभ्यन्तर में रहने वाले (तसम्) तस जल (बिहर्षा) वाहर धारण होनेवाले शीतल (वा:) जल को (िन:सजािम) संपादन करता वा िन:श्रेप करता हुं वैसे आप भी कीजिये। जो (वल्लिम:) अग्नि आदि पदार्थ वा चौवांश वर्ष ब्रह्मचर्य किये हुए मनुष्यों के साथ वर्तमान (इन्ह्र्योप:) परमेश्वर जीव विज्ञलों के अनेक शब्द सम्बन्धी वाणी है उस को (पुरस्तात्) पूर्वदेश से जैसे में रक्षा करता हुं येसे आप भी (पातु) रक्षा करों जो (क्ष्ट्रे:) प्राण वा चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्या किये हुए विह्नानें के साथ वर्त्तमान (प्रचेता:) उत्तम ज्ञान कराने वाली वाणी है उस की (प्रधात्) पश्चिम देश से रक्षा करता हुं वैसे आप भी (पातु) रक्षा करें जो (पितृिम:) ज्ञानी वा ऋतुओं के साथ वर्त्तमान (मनोजवा:) मन के समान वेग वाली है उसका (दिश्वणत:) दिश्वण देश से पालन करता हुं वैसे आप भी (पातु) रक्षा करें जो (आदित्य:) बारह महीनों वा अड़तालीश वर्ष ब्रह्मचर्य किये हुए विद्वानों के साथ वर्त्तमान (विश्वकर्मा) सब कर्मयुक्त वाणी है उस की (उत्तरत:) उत्तर देश से पाल्ली करता हुं वैसे आप भी (पातु) रक्षा करें हिए विद्वानों के साथ वर्त्तमान (विश्वकर्मा) सब कर्मयुक्त वाणी है उस की (उत्तरत:) उत्तर देश से पाल्ली करता हुं वैसे आप भी (पातु) रक्षा करें हिए विद्वानों के साथ वर्त्तमान (विश्वकर्मा) सब कर्मयुक्त वाणी है उस की (उत्तरत:) उत्तर देश से पाल्ली करता हुं वैसे आप भी (पातु) रक्षा करें ॥ ११ ॥

भावार्थ:—इस.मन्त्र में वाच० हैं—मनुष्यों को योग्य है कि जो वसु रुद्र आदित्य और पितरों से सेवन किई हुई वा यज्ञ को सिद्ध करने वाली वाणी वा जल को से-वन विद्या वा उत्तम किया के साथ विज्ञली है उस के सेवन में निरन्तर वसें ॥११॥ सिश्रहासीत्यस्य गोतमश्रमिशः। वाग्देवता। भुरिग्शाह्मी पंकिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर वह कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥
सि र ख़्सि स्वाहां सि र ख़्स्पांदित्यविनः स्वाहां सि र ख़ुसि ब्रझ्रावनिः क्षत्रविनः स्वाहां सि र ख़्सि सुप्रजावनीरायस्पोषविनः
स्वाहां सि र ख़्स्पावंह देवान्यजीमानाय स्वाहां भूतेभ्यंस्त्वा ॥१२॥

पदार्थ:—मैं जो (आदित्यवितः) मासां का सेवन और (सिंही) क्रूरत्व आदि दोपों को नाश करने वाली (स्वाहा) ज्योति:शास्त्र से संस्कार युक्त वाणी (असि) है, जो (ब्रह्मवितः) परमात्मा घेद और वेद के जानने वाले मनुष्यों के सेवन और (सिंही) बल से जाडचपन को दूर करने वाली (स्वाहा) पहने पढ़ाने ध्यवहार युक्त वाणी (असि) है, जो (क्षत्रवितः) राज्य धनुर्विद्या और शूरवीरों का सेवन और (सिंही) चोर डांकू अन्याय को नाश करने वाली (स्वाहा) राज्य ध्यवहार में कुश्ल वाणी (असि) है, जो (रायस्पोपवितः) विद्या धन की पृष्टि का सेवन और

(सिंही) अविद्या को दूर करने वाली (स्वाहा) वाणी (असि) है, जो (सुप्रजाव-नि:) उत्तम प्रजा का सेवन और (सिंही) सब दुएँ। का नाश और (स्वाहा) व्यव-हार से धन को प्राप्त कराने वाली वाणी (असि) है और जो (यजमानाय) विद्वा-नों के पूजन करने वाले यजमान के लिये (स्वाहा) दिव्य विद्या सम्पन्न वाणी (देवान्) विद्वान् दिव्यगुण वा भोगों को (आवह) प्राप्त करती है (त्वा) उसको (भूतेभ्यः) सब प्रोणियों के लिये (यज्ञात्) यज्ञ से (नि:सज्जामि) संपादन करता हुं ॥ १२॥

भावार्थ: - इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (यज्ञात्) (ति:) ( एजामि ) इन तीन पदों की अनुवृत्ति है मनुप्यों को उचित है कि पढ़ना पढ़ाना आदि से इस प्रकार लक्षण युक्त वाणी प्राप्त कर इसे सब मनुष्यों को पढ़ाकर सदा आनन्द में रहें ॥ १२॥ भ्रु वोऽसोत्यस्य गोतमऋषि:।यज्ञो देवता। भुरिगार्ष्यंनुष्टु प्छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

फिर यह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया ॥

भुवुोऽसि एथिवीन्दं थह भुविचिदं स्यन्तरिक्षन्द १ हाच्युत क्षिन्

दंशि दिवंन्ह रहाग्नेः पुरीषमसि ॥ १३॥ पदार्थः —हे विद्वान् मनुष्यो ! जो यह ( भ्रुवः ) निश्चल ( पृथिवीम् ) भूमि को वढ़ाता ( अति ) है उस को नुप्त ( हंह ) बढ़आं जो ( भ्रुवक्षित् ) निश्चल सुख और शास्त्रों का निवास कराने वाला (अति ) है वा ( अन्तरिक्षन् ) आकाश में रहने वाले पदार्थों को पृष्ट करता है उसको नुम ( हंह ) बढ़ाओं जो ( अच्युतक्षित् ) नाश रहित पदार्थों को निवास कराने वाला (अति ) है वा ( दिवम् ) विद्यादि प्रकाश को प्रकाशित करता है उसको नुम (हंह) बढ़ाओं जो (अञ्चेत आदि अदि वा (पुरीषम्) पशु औं की पूर्ति करने वाला यह (अति ) है उसका अनुष्टान नुम किया करो ॥ १३॥

भाषार्थ:—मजुष्यों को योग्य है कि विद्या किया से सिद्ध वा त्रिलोक्ती के पदार्थों को पृष्ट करने वाले विद्या कियामय यज्ञ का अनुष्टान करके सुखी रहें और सब की रक्तें || १३ ||

युञ्जते मन इत्यस्य गोतम ऋषि: । सविता देवता । स्वराडार्षी जगतीछन्दः । निपादः स्वरः ॥

अव अगले मन्त्र में योगो और ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है।।

गुज्जते मनं जुत युंज्जते घिछो विमा विमंस्य बृहतो विंपुः

श्वितः। विहोन्नांदघे वयुना विदेक्ऽइन्मही देवस्यं सिवतः परि
श्वितः स्वाहां॥ १४॥

पदार्थ:—जैसे जो (विहोशाः) देने छेने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् मनुष्य हैं वे जिस ( इहतः ) सब से बढ़ें ( विप्रस्य ) अनन्त ज्ञान कर्म युक्त ( विपश्चितः ) सब विद्या सहित ( सिवतुः ) सकल जगत् के उत्पादक ( देवस्य ) सब के प्रकाश करने वाले महेश्वर की ( मही ) बड़ी ( परिष्टुतिः ) सब प्रकार की स्तृति रूप ( स्वाहा ) सत्य वाणी को जान उस में ( मनः ) मन को ( युण्जते ) युक्त करते हैं (उत) और ( धियः ) बुद्धियों को भी ( युज्जते ) स्थिर करते हैं वैसे ( वयुनिवत् ) उत्तम कर्मीं को जानवे वाला ( एकः ) सहाय रहित में उसको जान उस में अपना मन और बुद्धिको (विद्धे) सदा निश्चल विधान कर रखता हूं ॥ १४ ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है— मनुष्यों को उचित है कि पर्मेश्वर में हाँ मन वृद्धि को युक्त कर विद्वानों के संग से विद्या को पा सुखी हो अन्य मनुष्यों को भी इसी प्रकार आनन्दित करें ॥ १४॥

इदं विष्णुरित्यस्य मेधातिधिऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्यी गायत्री छन्दः । पड्जः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।
इदं विष्णुर्विचंक्रमे श्रेषा निदंधे पुदम् । समूहमस्य पार्स्सुरे
स्वाहां ॥ १५ ॥

पदार्थ:—(विष्णु:) जो सव जगत् में व्यापक जगदीश्वर जो कुछ यह जगत् हैं उस को (विचक्रमे) रचता हुआ (इदम्) इस प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् को (प्रेधा) तीन प्रकार का धारण करता है (अस्य) इस प्रकाशवान् प्रकाश रहित और अदृश्य तीन प्रकार के परमाणु आदि रूप (स्वाहा) अ<u>च्छे प्रकार देखने और दिखलाने यो</u>न्य जगत् का प्रहण करता हुआ (इदम्) इस (समूदम्) अच्छे प्रकार विचार कर ने कथन करने योग्य अदृश्य जगत् को (पांसुरे) अन्तरिक्ष में स्थापित करता है वहीं सब मनुष्यों को उत्तम रांति से सेवने योग्य है ॥ १५॥

भावार्थ: परमेश्वर ने जिस प्रथम प्रकाश वाले सूर्योदि दूसरा प्रकाशरहित पृथिवी आदि और जो तीसरा परमाणु आदि अदृश्य जगत् है उस सब को कारण से
रचकर अन्तरिक्ष में स्थापन किया है उन में से ओपिश आदि पृथिवी में प्रकाश आदि
सूर्य लोक में और परमाणु आदि आकाश और इस सब जगत् को प्राणों के शिर में
स्थापित किया है इस लिखे हुए शतपथ के प्रमाण से गय शब्द से प्राणों का प्रहण
किया है इस में महीधर जो कहता है जिविकम अर्थात् वामनावतार को धारण करके
जगत् को रचा है यह उसका कहना सर्बंथा मिथ्या है ॥ १५ ॥

इरावतीत्यस्य विसष्ठ ऋषिः। विष्णुर्देवता स्वराडाणी विष्टुप् छन्दः ।धैवतः स्वरः ॥ अगले मन्त्र में ईश्वर और सूर्यं के गुणीं का उपदेश किया है ॥

इरांबती घेनुमती हि भूतश्र सूंयव्सिती मनेवे दश्स्या। व्यंस्त्रभ्ता रोदंसी विष्णवेते दाघत्थे पृथिशीमिती मृण्वैः स्वाहां॥ १६॥

पदार्थ:-हे (विष्णो) सर्वन्यापी जगदीश्वर जो आप जिस (इरावती) उत्तम अब युक्त (धेनुमती) प्रशंसनीय बहुत वाणीयुक्त प्रजा वा पशु युक्त (स्प्यविसनी) बहुत मिश्रित अमिश्रित वस्तुओं से सहित भूमि वा वाणी (पृथिवीम्) भूमि (हि) निश्चय करके (स्वाहा) वेद वाणी वा (भूतम्) उत्पन्न हुर सब जगत् को (मयुले:) ज्ञानप्रकाशकादि गुणों से (अभित:) सब ओर से (दाधर्थ) धारण और (रोदसी) प्रकाश वा पृथिवी छोक का (व्यक्काना:) सम्यक् तम्मन करते हो उन (मनवे) विज्ञान युक्त (दशस्या) दंशन अर्थात् दांतों के बीच में स्थित जिह्ना के समान आचरण करने वाछे आप के छिथे (पते) ये हम छोग सबजगत् को निवेदन करते हैं ॥१॥ जो (विष्णो) व्यापनशीछ प्राण जो (इरावती) उत्तम अबयुक्त (धेनुमती) पशु सहित (स्यविसनी) बहुत मिश्रित अमिश्रित पदार्थ वाछी भूमि वा वाणी है उस (पृथिवीम्) भूमि (स्वाहा) वा इन्द्रिय को (मयुजे:) किरणों अपने वछ आदि (अभित:) सब प्रकार (दाधर्थ) धारण करता वा (रोदसी) प्रकाश भूमि को (व्यस्कमना:) तंभन करता है उस (दशस्या) दशन और दान्त के समान अत्वरण करने वा (मनवे) विज्ञापन युक्त सूर्य के छिथे (भूतं हि) निश्चय करके सब जगत् को करने के छिथे ईश्वर ने दिया है ऐसा (पते) ये सब हम छोग जानते हैं ॥ २ ॥ १६ ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचा — जैसे सूर्य अपनी किरणों से सब भूमि आदि जगत् को प्रकाश आकर्षण और विभाग करके धारण करता है बैसेही परमेश्वर और प्राण के अपने सामर्थ्य से सब सूर्य आदि जगत् को धारण करके अच्छे प्रकार स्थापन किया है।। १६।।

देवश्रुतावियस वशिष्ठऋषिः । विष्णुर्देवता । स्वराङ् द्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वे प्राण और अपान कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है।। देवश्रुतीं देवेष्याघोषन्म्याची प्रेतमध्यरङ्करूपयन्तीऽक्रध्व ग्रज्ञन्नंयतम्मा जिह्नरतम् । स्वं ग्रोष्ठमवंदतन्देशी दुर्ग्येऽआयुर्मा निषीदिष्ठम्प्रजाम्मा निषीदिष्टमत्रं रमेश्रां वर्ष्मेन्वृश्वित्याः॥ १७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम जैसे जो (देवेषु) विद्वान वा दिव्यगुणों में (देवश्रुती) विद्वानों से श्रवण किये हुए प्राण अपान वायु (घोषतम्) व्यक्त शब्द करें और जो (प्राची) प्राप्त करने वा (कल्पयन्ती) सामर्थ्य वालो प्रकाश भूमि (ऊर्ध्यम्) उत्तम गुण युक्त (यन्त्रम्) विद्वान वा शिल्पमय यज्ञ को (प्रेतम्) जनाते रहें (नयतम्) प्राप्त करें (माजिह्ररतम्) कृटिल गति वाले न हों जो (देवी) दिव्यगुण सम्पन्न (वृर्ये) गृहरूप (स्वम्) अपने (गोष्टम्) किरण और अवयवों के स्थान के (आवदतम्) उपदेश निमित्तक हों (आयु:) आयु को (प्रा निर्वादिष्टम्) नष्ट न करें (प्रजाम्) उत्पन्न हुई सृष्टि को (मानिर्वादिष्टम्) न नष्ट करें और वे (पृथिव्या:) आकाश के मध्य (अत्र) इस (वर्ष्मन्) सुख से सेवन युक्त जगत् में (रमेथाम्) रमण करें तथा किया करो ॥ १७॥

भावार्थ:-- मनुष्यों को जितना जगत् अन्तरिक्ष में वर्त्तता है उतने से बहुत २ उ-त्तम सुर्खों का सम्पादन करना चाहिये॥ १७॥

विष्णोर्नु कमित्यस्यौतथ्योदार्धतमा ऋषः । विणुदेवता ।स्वराडार्पात्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में त्थापक ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है।। विष्णोर्नुक बुधिणि प्रवीचं यः पार्त्थिवानि विम्रमेरजाँ सि। यो अस्कंभाग्रदृत्तंर ७ सुधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोर्गु।यो विष्णं-वे त्या।। १८॥

पदार्थ:—हे सनुष्यो । तुम (य:) जो (विचक्रमाण:) जगत् रचने के लिये कारण के अंशों को युक्त करता हुआ ( उस्माय: ) बहुत अर्थां को वेद झरा उपदेश करने वाला जगदीश्वर (पार्थिवानि) गृथिवों के विकार अर्थात् पृथिवों के गुणों से उत्पन्न होने वाले वा अन्तरिक्ष में विदित (त्रेधा) तीन प्रकार के (रजांसि) लोकों को (विममे) अनेक प्रकार से रचता है जो (उत्तरम्) पिछले अवयवों के (सधस्थम्) साथ रहने वाले कारण को (अस्कमायत्) रोक रखता है (य:) जो (विष्णवे) उपासनादि यज्ञ के लिये आश्रय किया जाता है उस (विष्णो:) अ्यापक परमेश्वर के (वीर्याणि) पराक्रम युक्त कर्मों का (प्रवोचम्) कथन कर्क और हे परमेश्वर! (त्रु) शीघ ही (कम्) सुखस्वरूप (त्वा) आप का आश्रय करता हूं ॥ १८॥

भावार्थ:—सब मनुष्यों को जिस परमेश्वर ने पृथिवी सूर्य और त्रसरेणु आदि

भेर से तीन प्रकार के जगत् को रचकर धारण किया है उसी की उपासना करनी चाहिये || १८ ||

दिषोवेत्यस्यौतथ्यो दीर्धतमा ऋषि: । विष्णुदेवता । निचृदार्षा जगतीछन्दः । निपादः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

दिवो वां विष्ण उत वां पृथिच्या महो वां विष्ण उरोर्न्तरिक्षात् । उभा हि हस्ता वसुना पृणस्त्रा प्रयंच्छ दक्षिणादोत
मच्याद्विष्णंवे त्वा ॥ १९॥ हस्ता- रुप्रोरेन

पदार्थ:—है (विष्णो) सर्वव्यापी परमेश्वर ! आप इ.पा कर के हम लोगों को (दिव:) प्रसिद्ध वा विद्धली रूप अग्नि से (वसुना) द्रव्य के साथ (आशणस्व) दुः खों से पूर्ण की जिये और (पृथिव्या:) भूमि से उत्पन्न हुए पदार्थ (उत) भी (वा) अथवा (मह:) महत्तत्व अव्यक्त और (उत) भी (उरो:) वहुत (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से द्रव्य के साथ सुखों को (हि) निश्चय कर के पूर्ण की जिये (विष्णो) सव में प्रविष्ट ईश्वर आप (दक्षिणात्) दक्षिण (उत) और (सव्यात्) वामपार्थं से सुखों को दी जिये (त्वा) उस आप को (विष्णवे) योग विद्वान यद्व के लिये पू-जन करते हैं ॥ १९॥

भाषार्थ:—सब मनुष्यों की योग्य है कि जिस व्यापक परमेश्वर में महत्तव सूर्य भूमि अन्तरिक्ष वायु अग्नि जल आदि पदार्थ वा उन में रहने वाले ओपथी आदि वा मनुष्यादिकों को रच धारण कर सब प्राणियों के लिये दुखों को धारण करता है उसी की उपासना करें ॥ १९ ॥

प्रतद्विष्णुरित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । विराडार्षः त्रिष्टुप् छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

फिर वह कै सा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ||

प्र तिद्वर्णुस्तवते विर्धृण मृगो न भीम कुंचरो गिरिष्ठाः । पस्योक्षुं श्रिषु विक्रमंणेष्वधिचियन्ति भ्रुवनाति विद्वां ॥ २०॥
पदार्थः—(यस्य) जिस के (उरुषु) अत्यन्त (त्रिषु) (त्रिविक्रमणेषु) विविध
पकार के कर्मो में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक (अधिक्षयन्ति) निवास करते
हैं और (वीर्येण) अपने पराक्रम से (भीमः) भय करने वाले (कुचरः) निन्दित
प्राणिवध को करने और (गिरिष्ठाः) पर्यंत में रहने वाले (मृगः) सिंह के (न)

समान पापियों को स्रोज दु:स देता हुआ (प्रस्तकते) उपदेश करता है (तत्) इस से उस को कभी न भूलना चाहिये || २० ||

भाषार्थ:—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे सिंह अपने पराक्रम से अपनी इ-च्छा के समान अन्य पशुओं का नियम करता किरता है बैसे जगदीश्वर अपने पराक्रम से सब लोकों का नियम करता है ॥ २०॥

विष्णोरराटमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुदेवता । भुरिगार्षाः पङ्किश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगळे मन्त्र में किया है ॥ विष्णों रुरारंमिस विष्णोः अप्त्रें स्थो विष्णोः स्यूरंसि विष्णों स्यापेसि विष्णों स्यापेसि विष्णों स्यापेसि विष्णों स्था ॥ २१ ॥

पदार्थ:—जो यह अनेक प्रकार का जगत् है वह (विष्णो:) व्यापक परमेश्वर के प्रकाश से (रराटम्) उत्पन्न होकर प्रकाशित है (विष्णो:) सर्व सुख प्राप्त करने वाले ईश्वर से (स्यः) विस्तृत (असि) है। सब जगत् (विष्णवम्) यज्ञ का साधन (असि) है और (विष्णो:) सब में प्रवेश करने वाले जिस ईश्वर के (श्वरं ) जड़ जेतन के समान दो प्रकार का शुद्ध जगत् है उस सब जगत् के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर! हम लोग (त्वा) आप को (विष्णवे) यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये वाश्रय करते हैं।। २१।।

भाषार्थ:—मनुष्यों को उचित है कि इस सब जगत् का परमेश्वर हो रचने और धारण करने वाला व्यापक इष्ट देव है ऐसा जान कर सबकामनाओं की सिद्धि करें २१ देवस्यत्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्धतमाऋषिः । यज्ञोदेवता । पूर्वार्द्धस्य साम्नी पंक्ति-

श्कुन्द:। पञ्चम: स्वर:। आदद इत्युत्तरस्य भुरिगार्षी घृहती छन्द:। मध्यम: स्वर: ।)

फिर यह यज्ञ किसिलिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्यं त्वा सिंबुतुः प्रसिव्हेऽदिवनीबिंहुभ्यांम्यूष्णो इस्तांभ्या-स् । आदंदे नार्थेसिद्महथं रक्षंसां ग्रीवा अपि कुन्तामि। बृहर्ष-सि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्रांग्य वार्चं वद् ॥ २२ ॥

पदार्थ:—है विद्वान मनुष्य! जैसे में (देवस्य) सब को प्रकाश करने आनन्द देने वा (सवितु:) सकल जगत् को उत्पन्न करने वाले ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में जिस यज्ञ को (आददे) प्रहण करता हूं बैसे तू भी (क्षा) उसको प्रहण कर जैसे में (नारी) यज्ञ किया वा (इदम्) यज्ञ के अनुष्ठान का प्र-हण करता हूं बैसे तू भी प्रहण कर जैसे (अहम्) में (रक्षसाम्) दुए स्वभाव वाले शत्रुओं के (प्रीवा:) शिरों को भी (अपिरुन्तामि) छेदन करता हूं बैसे तुम भी छे-दन करो। जैसे में इस अनुष्ठान से (बृहद्रवा:) बड़ाई पाया बड़ा होता हूं बैसे तू भी हो और जैसे में (इन्द्राय) परमेश्वर्थ्य की प्राप्ति के लिये (बृहतीम्) बड़ी (वाचम्) वाणी का उपदेश करता हूं बैसे तू भी (वद) कर ॥ २२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुत्तीपमालङ्कार हैं—जैसे विद्वान लोग ईश्वर की ए-ष्टि में विद्या से पदार्थों की परीक्षा करके कार्च्यों में उपयोग कर सुद्धों में प्राप्त कर ते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्टान कर सब सुद्धों को पहुंचना चा-हिये ॥ २२ ॥

रक्षोहणिमत्यस्थौतथ्यो दाँ र्घतमा ऋषि: | यज्ञो देवता । आद्यस्याज्ञपाँ बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः । मध्यमस्य स्वराड्याह्यचुप्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
यम्मेसवन्धुरित्युत्तरस्य स्वराड् ब्राह्यचुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
स्विष्टं से मनुष्यों को किस प्रकार का उपकार प्रहण करना चाहिये इस विषय का
उपनेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रुष्टोहणं बलगृहनं वैष्णुवीमिद्महन्तं बेलुगमुर्त्विरामि यम्मे निष्ट्यो यममात्यो निच्खानेद्महन्तं बेलुगमुर्त्विरामि यम्मे स-मानो यमसमानो निच्खानेद्महन्तं बेलुगमुर्त्विरामि यम्मे सर्व-न्युर्वमसंबन्धुर्निच्खानेद्महन्तं बेलुगमुर्त्विरामि यम्मे सजातो य-मसंजातो निच्खानोत्कृत्याङ्किरामि ॥ २३ ॥

पदार्थ:—हे विद्वान मनुष्य ! जैसे (अहम् ) मैं (वलगहनम् ) वलों को बिडोलने और (रक्षोहणम् ) राक्षसों के हनन करने वाले कर्म और (वैष्णवीम् ) व्यापक ई-ध्वर की वेदवाणी का अनुष्ठान कर के (यम् ) जिस (वलगम् ) वल प्राप्त कराने वाले यज्ञ को (उत्करामि ) उत्कृष्टपन से प्रेरित अर्थात् इस संसार में प्रकाशित करता हुं (तम् ) उस यज्ञ को वैसे ही तू भी (इदम् ) इस को प्रकाशित कर और जैसे (मे ) मेरा (निष्य: ) यज्ञ में कुशल (अमात्य: ) मेधावी विद्वान मनुष्य (यम् ) जिस यज्ञ वा (इदम् ) भूगर्भ विद्या की परीक्षा के लिये स्थान को (निचलान ) निःसन्देह क-रता है वैसे (तम् ) उसको तेरा भी भृत्य खोदे जैसे (अहम् ) भूगर्भ विद्या को जानने

वाला में (यम्) जिस (बलाम्) बल प्राप्त कराने वाले खेती आदि यज्ञ वा (इदम्) खननरूपों कर्म को (डिक्करामि) अच्छे प्रकार संपादन करता हुं येसे (तम्) उस की त् भी कर, जैसे (मे) मेरा (समानः) सहश वा असहश मनुष्य (यम्) जिस कर्म को (निचलान) खनन करता है येसे तेरा भी खोदे, जैसे (अहम्) पढ्ने पढ़ाने वाला में (यम्) जिस (बलाम्) आत्मवल प्रत्म करने वाले यज्ञ वा (इदम्) इस पढ्ने पढ़ाने रूपी कर्म को (डिक्करामि) सम्पन्न करता हुं बसे (तम्) उसको त् भी कर, जैसा (मे) मेरा (सब्द्युः) तुल्य वन्धु प्रित्र वा (अस्वन्धुः) तुल्य वन्धु रहित अमित्र (यम्) जिस पालनरूपी यज्ञ वा इस कर्म को (निचलान) निःस्वेह करता है येसे उसको तेरा भी कर, जसे (अहम्) सब का मित्र में (यम्) जिस (बलगम्) राज्य वल प्राप्त कराने वाले यज्ञ वा (इदम्) इस कर्म को (उत्करामि) संपादन करता हुं बेसे (तम्) उस को त् भी कर, जसे (में) मेरा (सजातः) साथ उत्पन्न हुआ (अस्जातः) साथ से अलग उत्पन्न हुआ मनुष्य (यम्) जिस यज्ञ वा (इस्यम्) उत्तम किया को (निचलान) निःसन्देह करता है येसे तेरा भी इस यज्ञ वा इस किया को निःसन्देह करे। जसे में इस सब कर्म को (डिक्करामि) संपादन करता हुं बेसे तेरा भी इस यज्ञ वा इस किया को निःसन्देह करे। जसे में इस सब कर्म को (डिक्करामि) संपादन करता हूं बेसे तेरा भी इस यज्ञ वा इस किया को निःसन्देह करे। जसे में इस सब कर्म को (डिक्करामि) संपादन करता हूं बेसे तेरा भी इस

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है—मनुष्यों को ईश्वर की इस सृष्टि में विद्वानों का अनुकरण सदा करना और मूर्खों का अनुकरण कभी न करना चाहिये ॥ २३ ॥

स्वराडसीत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । सूर्व्यविद्वांसौ देवते । भुरिगार्ष्य-तुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य्य और समाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है।।
स्वरार्डिस सपत्नहा संघरार्डस्यिमगिन्हा जेन्द्रार्डिस रक्ष्रोहा संर्वरार्डस्यिमग्रहा ॥ २४॥

पदार्थ:—हे विद्वान मनुष्य ! जिस कारण आप ( स्वराट् ) अपने आप प्रकाश-मान ( असि ) हैं इस से ( सपत्नहा ) शत्रुओं के मारने वाले होते हो, जिस कारण तुम ( सत्रराट् ) यज्ञों में प्रकाशमान हो इस से ( अभिमातिहा ) अभिमान युक्त म-नुष्यों को मारने वाले होते हो, जिस से ( जनराट् ) धार्मिक विद्वानों में प्रकाशित हैं इस से ( रक्षोहा ) राक्षस दुर्धों को मारने वाले होते हैं जिस से आप ( सर्वराट् ) सब में प्रकाशित हैं इस से ( अमित्रहा ) अमित्र अर्थात् शत्रुओं के मारने वाले होते हैं | १ | जिस कारण यह सूर्य लोक (स्वराट्) अपने आप (असि) प्रकाशित है इस में (सपत्नहा) मेघ के अवयवों को काटने वाला होता है जिस कारण यह (सप्रराट्) यज्ञों में प्रकाशित (असि) है इस से (अभिमातिहा) अभिमानकारक चोर आदि का हनन करने वाला होता है जिस कारण यह (जनराट्) धार्मिक विद्वानों के मन में प्रकाशित (असि) है इस से (रक्षोहा) राक्षस वा दुखों का हनन करने वाला होता है जिस से यह (सर्वराट्) सब में प्रकाशमान (असि) है इस से (अ-मित्रहा) दुखों को दण्ड देने का निमित्त होता है | २४ |

भावार्थ:—इस मन्त्र में श्लेपालङ्कार है—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे सूर्यं अपने प्र-काश से चोर व्याघ्र आदि प्राणियों को भय दिखा कर अन्य प्राणियों को सुखी करता है वैसे ही तू भी सब शत्रुओं को निवारण कर प्रजा को सुखी कर || २४ || रक्षोहण इत्यस्मैतथ्यो दीर्घतमा ऋषि: । यज्ञी देवता । आद्यस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः ।

मध्यम: स्वर: । बलगहनाउपेत्युत्तरस्यार्पा पङ्क्तिश्छन्द: । पञ्चम: स्वर: ॥
यज्ञमान सभा आदि के अध्यक्ष यज्ञानुष्टान करने वाले मनुष्यों को यज्ञ सामग्री
का ग्रहण करायें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रक्षोहणों वो बलगहनः प्रोचांमि वैद्यावानं क्षोहणों वो बलगहनोऽवं स्तृखामि वैद्यावानं क्षोहणों वो बलगहनोऽवं स्तृखामि वैद्यावानं क्षोहणों वो बलगहनो उपद्यामि वैद्यावी रंक्षोहणीं वां बलगहनो उपद्यामि वैद्यावा स्थं ॥२५॥ वां बलगहनो पर्युहामि वैद्यावी वैद्यावमं सि वैद्यावा स्थं ॥२५॥

पदार्थ:—हे सआध्यक्ष आदि मनुष्यो! जैसे तुम (रक्षोहणः) दुःखों का नाश करने वाले हो वैसे शत्रु ऑं के वल को अस्तव्यस्त करने हारा में (वेष्णवान्) यज्ञ देवता वाले (व:) आप लोगों का सत्कार कर युद्ध में शस्त्रों से (प्रोक्षामि) इन घमंडी मनुष्यों को शुद्ध करूं जैसे आप (रक्षोहणः) अधर्मात्मा दुए दस्युओं को मारने वाले हैं वैसे (बलगहन:) शत्रु सेना की थाह लेने वाला में (वेष्णवान्) यज्ञ सन्वन्धी (घ:) तुम को सुखों से मान्य कर दुएों को (अवनयामि) दूर करता हूं, जैसे (बलगहन:) अपनी सेना को व्यूहों को शिक्षा से विलोडन करने वाला में (रक्षोहणः) शत्रु औं को मारने वा (वेष्णवान्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले (व:) तुम को (अवस्तृणामि) सुख से आच्छादित करता हूं, वैसे तुम मी किया करो, जैसे (रक्षोहणी) राक्षसों के मारने वा (बलगहनी) बलों को विलोडन करने वाले (वाम्) यज्ञपति वा यञ्चकराने वाले विद्वान् का धारण करते हो वैसे में भी (उपद्धामि)

धारण करता हूं जैसे (रक्षोहणों) राक्षसों के मारने (बलगहनों) बलों को विलो-डने वाले (वाम्) प्रजा सभाध्यक्ष आप (बैष्णवी) सब विद्याओं में व्यापक विद्वानों की किया वा (बैष्णवम्) जो विष्णुसम्बन्धों ज्ञान है इन सब को तर्क से जानते हैं बैसे मैं भी (पर्यृहामि) तर्क से अच्छे प्रकार जानू और जैसे आप सब लोग (बैष्ण-वाः) व्यापक परमेश्वर की उपासना करने वाले (स्थ) हैं बैसा मैं भी होऊं ॥ २५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार हैं—मनुष्यों को परमे-श्वर की उपासना युक्त व्यवहार से शरीर और आत्मा के वल को पूर्ण करके यद्ग से प्रजा की पालना और शत्रुओं को जीतकर सब भूमि के राज्य की पलना करनी चाहिये || २५ ||

देवस्यत्वेतस्यौतथ्यो दीर्धतमाऋषिः । यज्ञो देवता । आद्यस्य निचृदार्षी पङ्किम्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । यवोसीत्युत्तरस्य निचृदार्षी त्रिष्टु प्छन्दः । धेवतः स्वरः ।।

किस लिये इस यज्ञ को करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

हेवस्यं त्वा सिवितः प्रमित्तेऽदिवनीं ब्राह्मियां स्पूष्णो हस्तां भवाम्। धादंदे नार्धसीदमहर्थ रक्षंसाङ्ग्रीवा अपि कृन्तामि पवीं शिस यवग्रासमद्वेषों ग्रवधारां त्ति हिंवे त्वा जन्तरि चाय त्वा प्रश्चिच्ये त्वा शुन्धंन्ता होकाः पितृषदंनाः पितृषदंनमसि ॥ २६ ॥

पदार्थ:—है विद्वान् मनुष्य! जैसे में (सिवतुः) सय जगत् के उत्पन्न करने और (देवस्य) सब आनन्द के देने वाले परमेश्वर के (प्रस्ते ) उत्पन्न किये हुए संसार में (अश्विनोः) प्राण और अपान के (वाहुश्याम्) वल और वार्च्य तथा (पूष्णः) अति पृष्ट वीर के (हस्ताभ्याम्) प्रवल प्रतापयुक्त भुज और दण्ड से अनेक उपकारों को (आवदे ) लेता वा (इदम्) इस जगत् की रक्षा कर (रक्षसाम्) दुष्टकर्म करने वाले प्राण्यों के (प्रीवाः) शिरों का (अपि) (हन्तामि) होदन ही करता हूं तथा जैसे पदार्थों का उत्तम गुणों से मेल करता हूं वैसे तू भी उपकार ले और (यवय) उत्तम गुणों से पदार्थों का मेल कर जैसे में (ह्रेपः) ईपी आदि दोष वा (अरातीः) शब्धों को (अस्मत्) अपने से दूर कराता हूं वैसे तू भी (यवय) दूर करा । हे विद्वन्! जैसे हमलोर्ग (दिवे) पेश्वर्थीद गुण के प्रकाश होने के लिये (त्वा) तुझ को (प्रिथिव्यै)

पृथियों के पदार्थों की पृष्टि होने के लिये (त्वा) तुझ को सेवन करते हैं बैसे तुम लोग भी करो। जैसे (पितृपदनम्) विद्या पढ़े हुए ज्ञानी लोगों का यह स्थान (अ-िस) है और जिस से (पितृपदनाः) जैसे ज्ञानियों में ठहर पितृत्र होते हैं यसे मैं शुद्ध होऊं तथा सब मनुष्य (शुन्धन्ताम्) अपनी शुद्धि करें और हे स्त्री! तू भी यह सब इसी प्रकार कर || २६ ||

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलुक्षोपमालङ्कार है-मलुप्यों को योग्य है कि ठाँक २ कियाक्रमपूर्वक विद्वानों का आश्रय और यज्ञ का अनुष्टान कर के सब प्रकार से अ-पनो शुद्धि करें || २६ ||

उद्दिवमित्यस्यौतथ्यो दीर्वतमा क्रापि: । यद्यो देवतम । आह्यी जगती छन्दः । निपादः स्वयः ॥

अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ समाएति और अनुगत क्या हुआ यज्ञ क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले एवन में किया है।

उद्दिवंशतमानान्तरिक्षं एण हळहं स्वर्ण्यव्यां खुंतानस्त्वां का-क्तो मिनोतु मित्रावरंखौ भुवेण धर्मणा । ब्रह्मवनि त्वा क्षञ्चवनि रायस्पोष्टवित पर्यूहामि । ब्रह्मं दृथहाधुंई छंह प्रजान् हं छह ॥ २७॥

पदार्थ:—हे परमिवहन्! जैसे (त्वा) आप को (मास्तः) वायु (ध्रुवेण) निश्चल (धर्मणा) धर्म से (मिनोनु) प्रजुक्त करे (जित्रावहको ) प्रण और अपान भी धर्म से प्रयुक्त करते हैं वैसे आप उक्षा करके हर लोगों के लिये (दिवम्) विद्या गुणों के प्रकाश को (उत्तभान) अज्ञान से उद्याङ दें ओ तथा (अन्तरिक्षम्) सब पदा-यों के अवकाश को (पृण) परिपूर्ण की जिये (पृथिव्याम्) भूमि पर (द्युतानः) स-दिद्या के गुणों का विस्तार करते हुल आप पृथ्वों को (हंहस्त्व) वदाइथे (ब्रह्म) वेद विद्या को (हंह) वदाइथे (क्षत्रम्) राज्य को वदाइथे (आयुः) अवस्था को (हंह) वदाइथे और (प्रजाम्) उत्पन्न हुई अज्ञा को (हंह) धृद्धियुक्त की जिथे इसी लिथे में (ब्रह्मविन) ब्रह्मविद्या को धृत्विन करने वा कराने (क्षत्रपनि) राज्य को सेवन करने कराने (रायस्पोपविन) और धनसमूह की पृष्टि को लेजने वा सेवन कराने वाले आप को (पर्यूहामि) सब प्रकार के तकों से निश्चय करता है वैसे आप मुझ को सर्वथा सुखदायक हुनिये और आप को सव मनुष्य तकों से जाने। १० ॥

मावार्थ:-इस मन्त्र में ग्लेप और वाचकलुक्षीपमालङ्कार हैं - हे मनुष्यो ! आप

लोग जैसे जगदीश्वर सत्य भाष से प्रार्थित और सेवन किया हुआ अत्युत्तम विद्वान् सब को सुख देता है जैसे यह यज्ञ भी विद्या गुण को बढ़ा कर सब जीवों को सुख देता है, यह जानो ॥ २७॥

ध्रुवासीत्यस्पातथ्यो दार्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । आर्षा जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

फिर उस यज्ञ से क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है।

ी भ्रुवासि भ्रुतुरेऽयं घर्जमा<u>नोऽस्मिन्नायत्तेने प्रजयां प्रज्ञु</u> मिर्भ्यात् । घृतेनं चावाष्ट्रधिवी पूर्वे<u>धामिन्त्रंस्य छ</u>दिरंसि विङ्वजनस्यं छाया॥२८॥

पदार्थ:—हे यज्ञ करने वाले यजमान की स्त्री! जैसे तू (प्रजया) राज्य वा अ-पने सन्तानों और (पश्मिः) हाथी घोड़े गाय आदि पशुक्तं के सहित (अस्मिन्) इस (आयतने) जगत् वा अपने स्थान वा सबके सकार कराने के योश्य यज्ञमें (धुवा) ह-द सङ्कल्प (असि) है बेसे (अयम्) यह (यजगानः) यज्ञ करने वाला तेरा पति य-जमान भी (धुवः) हद सङ्कल्प है। तुम दोनों (चृतेन) चृत् आदि सुगन्धित पदार्थों से (चावावृथिवी) आजाश और भूमि को (पूर्यधाम्) परिपूर्ण करो। हे यज्ञ करने वालो स्त्री! तू (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वय्ये को भी अपने यज्ञ से (छदिः) (असि) है अव त् और तेरा पति यह यजमान (विश्वजनस्य) संसार का (छाया) सुख छा-या करने वाला (भूयात्) हो ॥ २८॥

भावार्थ:—मनुष्यों को चाहियं कि जिन यज्ञ करने वाले यजमान की पत्नी और यजमान से तथा जिस यज्ञ से छढ़ विद्या और शुक्षों को पाकर दु:खाँ को छोड़ें उन का सत्कार तथा उस यज्ञ का अनुष्टान सदा ही करते रहें ॥ २८ ॥

परित्वेत्यस्पैतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । ईश्वरसमाध्यक्षी देवते । अनुष्टुप् छन्दः ॥
गान्धारः स्वरः ॥

ईश्वर ऑर सभाष्यक्ष से क्या २ होने को योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है !!

परि त्वा गिर्वणो गिरंऽड्डमा भंवन्तु विश्वतः । वृद्धायुमनु रु-र्द्धणो जुष्टां भवन्तु जुष्टंपः ॥ २६ ॥

पदार्थ:—हे (गिर्वणः) स्तुतियों से स्तुति करने योग्य ईश्वर वा सभाष्यक्ष (इमाः) ये मेरी किई हुई (विश्वतः ) समस्त (गिरः ) स्तुतियें (परि ) सब प्रकार से (भ-वन्तु ) हों और उसी समय की ही न हों किन्तु (बृद्धायुं ) वृद्धों के समान आंचरण

करने वाले आप के (अनु) पश्चात् (वृद्धयः) अत्यन्त वदती हुई और (जुष्यः) प्रीति करने योग्य (जुष्टाः) प्यारी हीं ॥ २३॥

भावार्थ:—इस मंत्रमें श्लेषा उद्धार हैं —हे गतुष्यो ! जैसे संपूर्ण उत्तम गुण कर्मां के साथ वर्त्तमान जगदीश्वर और समापति स्तुति करने योग्य हैं वैसे ही तुम लोगों को भी दोना च।हिथे || २९ ||

इन्द्रस्थेत्यस्य मधुरुछन्दा ऋषिः । ईश्वरसमाध्यक्षौ देवते । अन्द्र्युं प्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।। इन्द्रंस्य स्यूर्यसीन्द्रंस्य भ्रुवोऽसि एन्द्रमंसि वैद्वदेवमंसि ॥३०॥

पदार्थः — हे जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष ! जैसे ( वेश्वदेवम् ) समस्त पदार्थों का निवासस्थान अन्तरिक्ष है वैसे आप ( ऐन्द्रम् ) सब का आधार हैं इसी से हम लोगों को ( इन्द्रस्य ) परमेश्वर्य का ( स्यू: ) संयोग करने व ले ( असि ) हैं और (इन्द्रस्य) स्र्यं आदि लोक वा राज्य को ( ध्रुव: ) निश्चल करने वाले ( असि ) हैं ॥ ३० ॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में श्लेश और उपमालङ्कार है—जैसे सकल ऐश्वर्य का देने बाला जगदीश्वर है वैसे समाध्यक्षादि मनुष्यों को भी होना चाहिये॥ ३०॥

विभूरसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निवेंवतः। विराडार्ष्यनुष्टुष् छन्दः।

गान्धार: स्वर: ||

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥ विभूरंसि प्रवाहणो षिह्नंरसि हञ्चवाहनः । इवाह्योऽसि प्रचे तास्तुषोऽसि विद्ववेदाः ॥ ३१॥

पदार्थ:—हे जगदीश्वर वा विद्वन ! जिस से आप जैसे व्यापक आकाश और पेश्वर्य युक्त राजा होता है वैसे ( विभू: ) व्यापक और पेश्वर्ययुक्त ( असि ) हैं ( विह: ) जैसे होम किये पदार्थों को योग्यस्थान में पहुंचाने वाला अग्नि है वैसे ( हव्यवाहनः ) हवन करने के योग्य पदार्थों को सम्पादन करने वाले ( असि ) हैं जैसे जीवों में प्राण है वैसे ( प्रचेता: ) चेत करने वाले ( श्वाप्तः ) विद्वान ( असि ) हैं जैसे स्वात्मा पवन सब में व्याप्त है वैसे ( विश्ववेदा: ) विश्व को जानने (तुथ:) ज्ञान को बदाने वाले ( असि ) हैं इस से आप सत्कार करने योग्य हैं ऐसा हम लोग जानते हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेप और उपमालङ्कार हैं-सब मनुष्यों को उचित है कि

ईश्वर और विद्वान् का सन्कार करना कभी न छोड़ें पर्योक्ति अन्य किसी से विद्या और सुख का लाभ नहीं हो सकता है इसलिये इन को जानें || ३१ || उशिगसीत्यस्य मधुन्छन्दा ऋषिः । अग्निश्चिता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत: स्वर: ||

फिर वे कैसं है इन विषय का उपदेश अन्छे मंत्र में किया है ॥

निश्चित्र कि विषय का उपदेश अन्छे मंत्र में किया है ॥

निश्चित्र कि विषय का उपदेश अन्छे मंत्र में किया है ॥

निश्चित्र कि विषय का उपदेश अन्छे मंत्र में किया है ॥

निश्चित्र कि विषय का उपदेश अन्य स्वाद्य स्वाद्य

पदार्थ:—हे जगदीश्वर! जिल कारण आप (उशिक्) कान्तिमान् (असि) हैं (अंघारि:) छोटे चलन के जीवों के शब् घर (अधि:) कारतप्रज्ञ (असि) हैं (बम्मारि:) बन्धन के शब् चर साराहि कन्तुओं के विस्तार करने वाले (असि) हैं (वम्मारि:) बन्धन के शब् चर साराहि कन्तुओं के विस्तार करने वाले (असि) हैं (वृष्ट्यान्) प्रशंसनीय से वर युक्त स्वरम् (शृष्ट्याः) श्वूष्ट्र (अलि) हैं (मार्जीलीय:) सब को शोधने वरले (सझाट्) और अर्थे प्रकार प्रमासकान (असि) हैं (इश्रानु:) पदार्थों को अदिस्वक्ष (प्रमान:) प्रियं और (परिषद्यः) सभा में कल्याण करने वरले (असि) हैं जैसे (अतका) हिन्ति और (ननः) हुसरे) के पदार्थ हरलेने वालों को मारने वरले (असि) हैं (हव्यस्वृद्धः) जैसे होम के द्रव्य को यथायोग्य व्यवहार में लाने वरले और (मृष्टः) सुख बुख को सहने करने और कराने वाले (असि) हैं जैसे (स्वर्थीतः) अन्तरिक्ष को प्रकाश करने वरले और (श्रव्यामा) सत्यधाम युक्त (असि) हैं वैसे हो उक्त गुणों से प्रसिद्ध आप सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य हैं, ऐसा हम लोग जानने हैं ॥ ३२ ॥

भावार्थ:—इस मंत्र में उपमालङ्कार है-जिस परमेशवर ने समस्त गुण वाले जगत् को रचा है उन्हीं गुणों से प्रसिद्ध उसकी उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये ॥३२॥ समुद्रोऽसीत्यस्य मधुच्छन्दा कपि: । अग्निदेवता । ब्राह्मी पङ्किष्छन्द: । पञ्चम: स्वर: ॥

फिर जैसा ईश्वर है वैसा विद्वानों को भी होना अवश्य है इस विषय का उपदेश अपने मंत्र में किया है ॥

सुमुद्वोऽसि विद्यव्यंचा अज्ञोऽस्यंकंपादहिरसि बुध्न्यो वार्ग-स्यैन्द्रमंसि सदोस्यृतंस्य द्वारी मा मासं तांप्त्रमध्वंनामध्वपते प्र मां तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पृथि देव्याने भूयात् ॥ ३३ ॥ पदार्थ:-जैसे परमेश्वर! (समुद्रः) सब प्राणियों का गमनागमन कराने हारे (वि-श्वयवा:) जगत् में व्यापक और (अजः) अजन्मा (असि) है (एकपात्) जिस के एकपाद विश्व है (अहि:) वा व्यापनशील (बुक्र्यः) तथा अन्तरिक्ष में होने वाला (असि) है और (वाक्) वार्णाक्ष्य (असि) है (ऐन्द्रम् )परमेश्वर्यं का (सदः) स्थानक्ष्य है और (ऋतस्य) सत्य के (द्वारों) हुक्कों का (मासंताप्तम्) संताप कराने वाला नहीं है (अध्वपते) है धर्म व्यवहार के मार्गों को पालन करने हारो विद्वानो ! वैसे तुम भी संताप न करो। हे ईश्वरः! (मा) मुझ को (अध्वनम् ) धर्मशिला के मार्ग से (प्रतिर) पार कोजिये और (मे) मेरे (अस्मिन्) इस (देवयाने) विद्वानों के जाने आने योग्य (पिथ) मार्ग में जैसे (स्वस्ति) हुख (भूयात्) हो बैसा अनुमह कीजिये ॥ ३३॥

भावार्थ:— इस मन्त्र में उपमालङ्कार है - ईश्वरं वा जगत् के कारण रूप जीव को अनादित्व होने वा जन्म न होने से अविनाशीपन है । परमेश्वर की हृपा उपासना सृष्टि की विद्या वा अपने पुरुषार्थ के लाथ वर्तमान हुए महुप्यों को विद्यानों के मार्ग की प्राप्ति और उस में सुख होता है और आलस्ता महुष्यों को नहीं होता ॥ ३३॥

मित्रस्थेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अन्तिदंवता । स्वराड्बाह्यी वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर विद्वान कैसे हैं इस विषय का उपदेश अग्ले मन्त्र में किया है।।

मित्रसर्थ मा चर्श्वंबक्षध्वमग्नेयः सगराः सगरास्थ सगरण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पातमांग्नयः पिपृतमांग्नयां गोपायतं मा
नमी चोऽस्तु मा मां हिछसिष्ट ॥ ३४॥

पदार्थ:—है (सगरा:) अन्तरिक्ष अवकाश युक्त (अग्नय:) अच्छे २ पदार्थों को प्राप्त करने वाले विद्वान लोगो तुम (मा) मुझ को (मित्रस्य) मित्र को दृष्टि से (ई-क्षच्चम्) देखिये आप (सगरा:) विद्योपदेश अवकाशयुक्त (स्थ) हृजिये और जैसे आप (अग्नय:) संसाधित विद्युत् आदि अग्नियों की रक्षा करते हैं बैसे (सगरेण) अन्तरिक्ष के साथ वर्त्तमान (रोद्रेण) शत्रुओं को रोदन करने वाली (नाम्ना) प्रसिद्ध (अनीकेन) सेना से (मा) मुझे (पात) पालिथे (अग्नय:) जैसे ज्ञानी लोग सब प्रकार सब को गुख देते हैं बैसे (पिपृत) इसों से पूरण कीजिथे (गोपा-यत) और सब ओर से पालन कीजिथे और कभी (मा) मुझ को (माहिसिष्ट) नष्ट मत कीजिथे (वः) इस से आप के लिथे (मे) मेरा (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो ॥३४॥

भावार्थ:-इस प्रन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है-जैसे विद्या देने से विद्वान् लोग सब मनुष्यों को सुर्खी करते हैं वैसे इन विद्यानों को कार्यों के करने में चतुर और विद्या युक्त होकर विद्यार्थी लोग सेवा से सुर्खी करें || २४ ||

ज्योतिरसीत्यस्य मनुच्छन्दा ऋषिः । अग्निदंबता । निचृद्बाह्या पङ्किण्छ-न्दः । पञ्चमः स्वगः ॥

ईश्वर केला है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

ज्योतिराम् चिद्वसंपुं विद्वेषान्द्वानांश्ममित् त्वथ सोमत-नूकृद्भ्यांद्वेषोभ्योऽन्यकृतिभ्य युरु युन्तामि वर्र्ध्यश्स्वाहां । जुषा-गो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहां ॥ ३५ ॥

पदार्थ:— है (सोम) एश्वर्या देन वाले जगदीश्वर! आप (विश्वेपाम्) सब (दे-वानाम्) विद्वानों के (विश्वरूपम्) सब रूप्युक्त (ज्योतिः) सब के प्रकाश करने वाले (सिमत्) अच्छे प्रकाशित (असि) हैं (तन्तृद्वम्यः) शरीरों को सम्पादन करने (हेपोभ्यः) और हेप करने वाले जीवों तथा (अन्यहतेभ्यः) अन्य मनुष्यों के किथे हुए दुए कम्मों से (यन्ता) नियम करने वाले (असि) हैं उन से (उरु) बहुत (वरूथम्) उत्तम गृह (स्वाहा) वाणी (अमुः) व्यापक (आव्यस्य) विद्वान न को (ज्ञुपाणः) सेवन करता हुआ मनुष्य (स्वाहा) चेदवाणी को (चेतु) जाने ॥३५॥

भावार्थ:—जिस से परमेश्वर सब लोकों का नियम करने वाला है इससे ये नि-यम में चलते हैं ॥ ३५॥

अग्नेनयेत्यस्यागस्त्य ऋषिः। अग्निर्देवता । निवृदार्षः त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ फिर ईश्वर प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले सन्त्र में किया है॥

अग्<u>ने</u> नर्ष सुपर्था <u>राये अ</u>स्मान्विइवानि देव <u>व</u>युनानि <u>विद्वान्।</u> यु<u>योष्युस्मरुजंहरासमेनो</u> भूयिष्ठान्<u>ने</u> नर्मऽउक्ति विषेम ॥ ३६॥

पदार्थ:—है (अग्ने) सब को अच्छे मार्ग में पहुंचाने (देव) और सब आनन्दों को देने वाले (विद्वान्) समस्त विद्यान्वित जगदोंश्वर! आप छपा से (राये) मो- क्ष कप उत्तम धन के लिये (सुपथा) जैसे धार्मिक जन उत्तम मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) उत्तम कर्म विज्ञान वा प्रजा को प्राप्त होते हैं वैसे (अस्मान्) हम लोगों को (नय) प्राप्त की जिये और (जुहुराणम्) कृटिल (एन:) दु:ख फल-क्ष्पी पाप को (अस्मान्) हम लोगों से (युयोधि) हुर की जिये हम लोग (ते) आप

को (भूयिष्टा) अत्यन्त (नम उक्तिम्) नमस्काररूप वाणी को (विधेम) कहते हैं ॥ ३६ ॥ भावार्थ: अत्रोपमा० जैसे सत्य प्रेम से उपासना किया हुआ परमेश्वर जीवों को दुष्ट मार्गों से अलग और धर्म मार्ग में स्थापन कर के इस लोक के सुखों को उन के कर्मानुसार देता है जैसे ही न्याय करने हतं भी किया करें ॥ ३६ ॥

अयस इत्यस्यागरुत्रऋषिः । अग्निर्देवता । आर्पीत्रिष्टु प् छन्दः । धंवतः स्वरः ॥
फिर ईश्वर की उपातना करने हारे श्र्वीर के गुणीं का उपदेश किया है ॥
अयसी अग्निर्वित्विस्कृणीत्वयं सूर्धः पुरऽएंतु प्रश्निन्दन् । अयं
वार्जाञ्जयतु वार्जसाताय्यधं दास्रूञ्जयतु जहीषाणः स्वाहां॥३०॥

पदार्थ:—यह (अग्न:) परमेश्वर का उपासक जन (न:) हम प्रजास्थ जीवों की (विरव:) निरन्तर रक्षा (कणोतु) करे जैसे कोई वीर पुरुप अपनी सेनाको लेकर संग्राम में निन्दित बुध्य वैरियों को पहिले ही जा बेरता है बेसे (अयं) यह शुद्ध करने में कुशल सेनापित (वाजसातों) संग्राम में दुध्य शत्रुओं को (पुर:) पहिले ही (एतु) जा घेरे और जैसे (अयं) यह वीरों को हवें देने वाला सेनापित दुए शत्रुओं को (प्रमिन्दन्) छिन्न भिन्न फरता हुआ (वाजान्) संग्रामों को (जयतु) जीते (अयं) यह विजय कराने वाला सेनापित (जह पाण:) निरन्तर प्रसन्न हो कर (स्वाहा) युद्ध के प्रवंध की श्रंष्ट बोलियों को वीलता हुआ (जयतु) अच्छी तरह जोते ॥ ३७॥

भावार्थ:—जो लोग परमेश्वर की उपासना नहीं करते हैं उनका विजय सर्वत्र न हीं होता जो अच्छी शिक्षा देकर द्रार्गिर पुरुपों का सत्कार करके सेना नहीं रखते हैं उनका सब जगह सहज में पराजय हो जाता है इस से मनुष्यों को चाहिये कि दो प्रबंध अर्थान् एक तो परमेश्वर की उपासना और दूसरा वीरों की रक्षा सदा करते रहें || ३७ ||

उरुविष्णवित्यस्यागस्त्य ऋषिः । विष्णुदेवता । भुरिगार्ष्यंनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वर: ।

फिर वे कैसे हैं यह उपदेश अगले मंत्र में किया है।।

जुरु विंच्णो विकामस्योद्धसर्याय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिव प्रप्रं
युज्ञपंतिन्तिरु स्वाहां॥ ३८॥

पदार्थ:—जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सब जगत् की रचना करता हुआ जगत् के कारण को प्राप्त हो सब को रचता है चैसे हे विद्यादि गुणों में व्याप्त होने वाले वीर पुरुष ! अपने विद्या के फल को (उद्य) बहुत (वि) अच्छी तरह (कमस्व) पहुंच

(क्षयाय) निवास करने योग्य गृह और विज्ञान की प्राप्ति के योग्य (न:) हम लोगों को (कृषि) की जिये है! (घृतयोने) विद्यादि सुशिक्षा युक्त पुरुप! जैसे अग्नि घृत पौ के प्रदीप्त होता है बैसे तूं भी अपने गुणों में (घृतम्) घृत को (प्रप्र पिव) बार्यवार पौके शरीर बलादि से प्रकाशित हो और ऋत्विज् आदि विद्वान लोग (यज्ञपतिम्) यजमान की रक्षा करने हुए उसे यज्ञ से पार करते हैं वैसे तूं भी (स्वाहा) यज्ञ की किया से (यज्ञम्) यज्ञ के (तिर) पार हो ॥ ३८॥

भावार्थ:—जैसे परमेश्वर अपनी व्यापकता से कारण को प्राप्त हो सब जगत् के रचने और पालने से सब जीवों को खुख देता है जैसे आनन्द में हम समों को रहनां उचित है जैसे अजि काष्ट आदि इन्धन वा धृत आदि पदार्थों को प्राप्त हो प्रकाशमान होता है वैसे हम लोगों को भी शत्र आँ को जीत प्रकाशित होना चाहिये और जैसे होता आदि विद्वान् लोग धार्मिक यज्ञ करने वाले यजमान को पाकर अपने कामों को सिद्ध करते हैं वैसे प्रजास्थ लोग धर्मात्मा समापित को पाकर अपने २ सुखों को सि-द्ध किया करें ॥ ३८ ॥

देव बिवतरित्यस्यागस्त्यऋषिः । सोप्रसिवतारी देवते । आद्यस्य साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । पतत्विमस्युत्तरस्यापी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥ किर वे कैसे हैं यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवंसिवतरेष ते सोमस्तथ रक्षस्य मा त्वां दभन्। एतश्वं देव सोम देवो देवाँ२॥ उपागा इदमहम्मंनुष्यान्तमह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वर्शणस्य पाद्यांन्मुच्ये ॥ ३९ ॥

पदार्थ:—हे (देव) सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले ऐश्वर्यं वान् विद्वान् समाध्यक्ष ! जैसे मैं आप के सहाय से अपने ऐश्वर्यं को रखता हूं वैसे तूं जो (एष:)
यह (ते) तेरा (सोम:) ऐश्वर्यं समृह है (तम्) उस को (रक्षस्व ) रख जैसे मुझ
को शब्रुजन दु:ख नहीं दे सकते हैं वैसे (त्वाम्) नुझे भी (मा दमन्) न दे सकें
हे (देव) सुख के देने और (सोम) सज्जनों के मार्ग में चाउने हारे राजा! (त्वम्)
तू (पतत्) इस कारण समाध्यक्ष और (देव:) परिपूर्ण विद्या प्रकाश में स्थित हुआ
(देवान्) श्रेष्ट विद्वानों के (उप) समीप (अगा:) जा और में भी जाउँ जैसे (इदं)
इस आचरणको कर के (राय:) अत्यन्त धन को (पुष्ट्या) पृष्टताई के साथ (मनुष्यान)
विचारवान् पुष्ट्य और (देवान्) विद्वानों को प्राप्त हो कर (वर्षणस्य) दु:ख से तिरस्कार करने वाले दुष्ट जन को (पाशान्) बन्धन से (मुच्ये) छुट्टं वैसे त् भी (नि:) निरंतर छूट ॥ ३९ ॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं-सब मनुष्यों को योग्य है कि जिस अन्नास ऐश्वर्य्य की पुरुषार्थ से प्राप्ति हो उस की रक्षा और उन्नति धार्मिक मनुष्यों का सङ्ग और इस से सज्जनों का सत्कार तथा धर्म का अनुष्ठान कर विज्ञान को बढ़ा के दु:सबन्धन से,छूटें || ३९ ||

अग्ने बृतपा इत्यस्यागस्त्य ऋपि:। अग्निदेवता। निचृद्बाह्यीत्रिष्टुप् छन्द:।
गान्धार:स्वर:॥

फिर वे कैसे वर्ते यह अगले मन्त्र में किया है।। अरने वतपास्ते बंतपा या तर्व तुर्भ्य्यभूदेषा सान्त्विष्य यो मर्म तुन्स्वय्यभूदिवक्षसा मर्थि। ग्रथाग्रथन्नी वतपते ब्रतान्यनुं मे दक्षिान्दक्षिापंतिरम्थस्तानु तपुस्तपंस्पतिः॥ ४०॥

भावार्थ:—जैसे पहिले विद्या पढ़ाने वाले अध्यापक लोग हुए वैसे हम लोगों को भी होना चाहिये। जब तक मतुष्य सुख दु:ख हानि और लाम की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुस्य दूसरे को न जानते तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होता रस से मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार हो किया करें || ४० ||

उरुविष्णवित्यस्यागस्त्य ऋषिः । विष्णुर्वेवता । भुरिगार्ष्यंतुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः॥

किर वे कैसे क्तें इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है।।

जुरु विष्णो विक्रमस्योरुचयांच नस्कृषि। घृतं घृतयोने पिब
प्रंत्र युज्ञपंतिनितर् स्वाहां॥ ४१॥

पदार्थ:—जैसे सब पदार्थों में व्याप्त होने वाला पवन चलता है वैसे हे विद्या गुणों में व्याप्त होने वाले विद्वान्! (उह ) अत्यन्त विस्तार युक्त (क्षयाय ) विद्योश्वित के लिये (विक्रमस्व ) अपनी विद्या के अङ्गों से परिपूर्ण हो और (नः ) हम लोगों को सुखी (कृषि ) कर जैसे जल का निम्ति बिद्धली है वैसे हे पदार्थ प्रहण करने वाले विद्वान्! बिद्धली के समान (पृतम्) जल (पिब) पी और जैसे में यह्मपित को दुःख से पार करता हूं वैसे तूं भी (स्वाहा ) अच्छे प्रकार हवन आदि कम्मों को से वन करके (प्रप्रतिर ) दुःखीं से अच्छे प्रकार पार हो ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुने।पमालङ्कार है—जैसे पवन सब के। सुख देता हुआ सब के रहने का स्थान हे।रहा है वैसे ही विद्वान को हे।ना चाहिये || ४१ || अत्यन्यानित्यस्यागस्त्य ऋषिः। अग्निरंवता। स्वराड्वाद्वीत्रिष्टुप् छन्दः।

धेवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को उक्त व्यवहारों से विरुद्ध सनुष्य न से वने चाहिये यह उपदेश अगले मंत्र में किया है ||

अत्युन्याँ २॥ अगुः ज्ञान्याँ २॥ उपांगामुर्वाकत्वा पर्यभ्योऽ वि-दम्प्रोऽषरेभ्यः । तं त्वां जुषामहे देव वनस्पते देवगुज्याये देवास्त्वां देवगुज्याये जुषन्तां विष्णंवे त्वा । ओषंये श्रायंस्त् स्विधिते मैनेध हिछसीः ॥ ४२ ॥

पदार्थ:—हे (वनस्पते) सब बूंटियों के रखने वाले (दंव) विद्वान् जन! जैसे तूं (अन्यान्) विद्वानों के विरोधी मूर्य जनों को छेड़ के (अक्ष्यं) मूर्यों के विरोधी विद्वानों के समीप जाता है वैसो मैं भी विद्वानों के विरोधियों को छेड़ (उप) समीप (अगाम्) जाऊं। जे। तू (परेभ्यः) उत्तमों से (परः) उत्तम और (अवरेभ्यः) छेटों से (अर्वाक्) छेटे हो (तम्) (त्वाम्) उन्हें में (अविदम्) पाऊं जैसे (देवाः) विद्वान् लेग (देवयज्याये) उत्तम गुण देने के लिथे (त्वा) तुझ को चाहते हैं बैसे हम लेग (त्वा) नुझे ( जुपामहे ) चाहें और जैसे हम लेग (देवयज्याये) अच्छे २ गुणों का सङ्ग होने के लिथे (त्वा) तुझ चाहते हैं वैसे और भी थे लेग चाहें | जैसे ओपधियों का समृह (विष्णवे) यज्ञ के लिथे सिद्ध होकर सब की रक्षा करता है वैसे हे रोगों की दूर करने और (स्विधते) दुःखों का विनाश करने वाले

विद्वान् जन ! हम लोग (त्वा) तुझे यज्ञ के लिये चाहते हैं । श्रेष्ठ विद्वान् जन जैने में इस यज्ञ का विनाश करना नहीं चाहता वैसे त्र्ंभी (गनम्) इस यज्ञ का ( मा ) मत ( हिंसी: ) विगाइं ॥ ४२ ॥

भावार्थ: यहां वाचक अप्तोपमाल द्वार है — मजुष्यों को चाहिये कि नीच व्यव-हार और नीच पुरुषों को छोड़ के अच्छे २ व्यवहार तथा उत्तम विद्वानों को तिख चाहें और उत्तमों से उत्तम तथा न्यूनों से न्यून शिक्षा का ग्रहण करें। यहां और यहां के पदार्थों का तिरस्कार कभी न करें तथा सब को चाहिये कि एक दूसरे के मेल से सुखी हों।। ४२।।

द्यास्मालेखोरित्यस्यागस्त्य ऋषि: । यज्ञो देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को योग्य है कि यज्ञ को सिद्ध कराने वालो जो विद्या है उस का नित्य सेवन करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

द्यास्मा लेखीर्न्तरिक्षमाहिं असीः पृथिका संभंव। अयथं हि त्या स्विधित्तितिजानः प्रणिनायं महते सीभंगाय। अतुस्त्वन्दैव वनस्पते शातवंत्शो विरोह सहस्रंवत्शा विवयधं सहस्म। ४३॥

पदार्थ:—हे विद्वन ! जैसे में सूर्य्य के सामने होकर ( चाम् ) उस के प्रकाश को हिएगोचर नहीं करता हूं बैसे तूं भी उसकी ( मा ) ( छेखी: ) हिएगोचर मत कर जैसे में ( अन्तरिक्षम् ) यथार्थ पदार्थों के अवकाश को नहों विगाइना हूं वैसे तूं उस को ( मा ) ( हिंसी: ) मत बिगाइ। जैसे में ( पृथिच्या ) पृथिवी के साथ होता हूं वैसे तूं भी उस के साथ ( सम् ) (भव) हो ( हि ) जिस कारण जैसे ( तेतिजान: ) अत्यन्त पैना ( स्वधित: ) वज्र शत्रुओं का विनाश कर के ऐस्वर्च्य को देता है ( अत: ) इस कारण ( अयम् ) यह ( त्वा ) तुझे ( महने ) अत्यन्त थे छ ( सीभगाय ) सीभाग्यपन के लिये सम्पन्न करे । और भी पदार्थ जैसे ऐस्वर्च्य को ( प्रणिनाय ) प्राप्त करने हैं येसे तुझे ऐस्वर्च्य पहुंचावे । हे ( देव ) आनन्दयुक्त ( वनस्पने ) वनों की रक्षा करने वाले विद्वान ! जैसे ( शतवल्शः ) सेकड़ों अंकुरों वाला ऐड़ फलता है वैसे तृ भी इस उक्त प्रशंसनीय सीभाग्यपन से ( वि ) ( रोह ) अच्छी तरह फल और जैसे (सहस्रवल्शाः) हज़ारों अंकुरों वाला ऐड़ फल बौर जैसे (सहस्रवल्शाः)

भावार्थ:—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं — इस संसार में किसी मनुष्य को विद्या के प्रकाश का अभ्यास अपनी स्वतन्त्रता और सब प्रकार से अपने कामों की उन्जित की न छोड़ना चाहिये ॥ ४३॥

इस अध्याय में यज्ञ का अनुष्ठान, यज्ञ के स्वक्षण का सम्पादन, विद्वान् और पर-मात्मा की प्रार्थना, विद्या और विद्वान् की व्यक्षि का निरूपण, अग्नि आदि पदार्थों से यज्ञ की सिद्धि, सब विद्या निमित्त वाणी का व्याख्यान, पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ का वि-वरण, योगाभ्यास का लक्षण, सृष्टि की उत्पत्ति, ईरवर और सूर्व्य के कर्म का कहना, प्राण और अपान की किया का निरूपण, सब के नियम करने वाले परमेश्वर की व्यक्षि का कहना, यज्ञ का अनुष्ठान, सृष्टि से उपकार लेना, सूर्व्य और समाध्यक्ष के गुणों का कहना, यज्ञ के अनुष्ठान की शिक्षा का देना, सविता और समाध्यक्ष के कर्म का उ-पदेश यज्ञ से सिद्धि, ईरवर और समाध्यक्ष से काव्यों की सिद्धि तथा उन के स्वक्ष्यऔर कर्मों का वर्णन, ईश्वर और विद्वानों का वर्त्ताव और उनके लक्षण, शूरवीरों के गुणों का कहना, ईश्वर और विद्वानों के गुणों का वर्णन, ईश्वर की उपासना करने वाले के गुणों का प्रकाश, सब बन्धन से छूटना, परस्पर की चर्चा, दुष्टों से छूटने का श्रकार इन अधीं के कहने से पञ्चमाध्याय में कहे हुए अधीं की संगति चनुर्थाध्याय के अधीं से जाननी चाहिये !!

यह पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ॥



## ओ३म्

## **त्र्रथ** षष्ठाध्यायस्यारम्मः ॥

विश्वांनि देव सवितर्दुरितानि परांसुव । यद्भवं तन्न ग्रासुंव ॥ १ ॥ अथ देवस्य त्वेत्यस्यागस्त्य ऋषिः । सिवता देवता । पङ्क्तिरुज्दः । धैवतः स्वरः । यवोऽसीत्यस्यासुरी दिवेत्यस्य च भुरिगाप्युं णिक् जन्दसी । ऋषभः स्वरः ॥

अब पांचवें अध्याय के पश्चात् ६ पष्ठाऽध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मंत्र में राज्याभिषेक के लिथे अच्छी शिक्षायुक्त सभाध्यक्ष विद्वान् को आचा-र्च्यादि विद्वान् लोग क्या २ उपदेश करें यह उपदेश किया है।। देवस्यं त्वा सिवृतुः प्रमुव्हेऽदिवनोर्च्। हुम्यांम्पूरणो हस्तांम्याः मादंदे नार्धेसीदमहर्थः रक्षंसाङ्ग्रीवा आपि कृत्तामि । यवोऽसि यवग्रास्मद् क्षेषों ग्रवयारांतीर्दिवे त्वाऽन्तरिंचाय त्वा पृथि्व्यै त्वा भान्नंन्तांल्ल्लोकाः पितृषद्ंनाः पितृषदंनमसि ॥ १॥

पदार्थ: हे सभाध्यक्ष ! जैसे (पितृषद्माः ) पितरों में रहने वाले विद्वान् लोग (देवस्य ) प्रकाशमय और (सिवतुः ) सब विद्वव के उत्पन्न करने वाले जगदीद्वर के (प्रस्तवे ) उत्पन्न किये हुए संसार में (अदिवनोः ) प्राण और अपान के (बाहुभ्या-म्) बल और उत्तन विद्ध से तथा (पूष्णः) पृष्टि का निमित्त जो प्राण है उस के (हस्ताभ्याम् ) धारण और आकर्षण से (त्वा ) तुझे प्रहण करते हैं वैसे ही मैं (आ-दे ) प्रहण करता हूं जैसे मैं (इक्षसाम् ) दुष्ट काम करने वाले जीवों के (प्रीवाः ) गुले (इन्तामि ) काटता हूं वैसे (त्वम् ) तुं (अपि) भी काट । हे सभाध्यक्ष ! जिस का-रण दू (यवः ) संयोग विभाग करने वाला (असि ) है इस कारण (अस्मत् ) मुझ से (द्वेषः ) द्वेष अर्थात् अप्रीति करने वाले वैरियों को (यवय ) अलग कर और (अ-रातीः ) जो मेरे निरन्तर शत्रु हैं उन को (यवय ) पृथक् कर । जैसे में न्याय व्यवहार से रक्षा करने योग्य जन (दिवे) विद्या आदि गुणों के प्रकाश करने के लिये (त्वाम् ) न्याय प्रकाश करने वाले तुझ को (अन्तरिक्षाय ) आभ्यन्तर व्यवहार में रक्षा करने के लिये (त्वाम् ) तुझ सत्य अनुष्ठान करने का अवकाश देने वाले को तथा (पृथिव्यै)

भूमि के राज्य के लिये (त्वा) तुझ राज्य विस्तार करने वाले को पवित्र करता हूं बैसे ये लोग भी (त्वा) आप को (शुन्धन्ताम्) पवित्र करें जैसे तू (पितृपदनम्) विद्वानों के घर के समान (असि) है पिता के सदृश सब प्रजी को पाला कर | हे स-भापति की नारि स्त्री! तू भी ऐसा ही किया कर | १ ।

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलुप्तीपमालङ्कार है—जो विद्या में अति विचक्षण पुरुष ईश्वर की सृष्टि में अपनी और औरों की दुष्टता को छुड़ाकर राज्य सेवन करते हैं वे सुख संयुक्त होते हैं ॥ १॥

अग्रेणीरित्यस्य शाकल्य ऋषि:। सिवता देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। देवस्त्वेत्यस्य स्वराट् पङ्किङ्छन्दः। धेवतः स्वरः॥ फिर वह तिलक किया हुआ समाध्यक्ष कैसे वसें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्रेणीरंसि स्वावेशऽउन्नेतृणामेतस्यं वितादिधं त्वा स्थास्य-ति देवस्त्वां सिवता मध्यांनक्त सुपिष्यलाभ्यस्त्वौषंधीभ्यः। द्या-मग्रेणास्पृक्ष आन्तरिक्षम्मध्येनात्राः पृथिवीसुपंरणाद्यक्रीः॥२॥

पदार्थ:--हे सभाध्यक्ष ! जैसे (अग्रेणी:) पढ़ाने वाला अपने शिष्यों को वा पिता अपने पुत्रों को उन के पठनारम्भ से पहिले ही अच्छी शिक्षा से उन्हें सुशील जितेन्द्रिय धार्मिकता युक्त करता है वैसे हम सभों के लिये तू (असि) है (उन्नेतृणाम्) जैसे उत्कर्षता पहुंचाने वालों का राज्य हो वैसे (स्वावेश:) अच्छे गुणों में प्रवेश करने वाले के समान होकर तू (एतस्य) इस राज्य के पालने को (वित्तात्) जान । हे राज्य ! जैसे (त्वा) नुझे सभासद् जन (सुपिष्पलाभ्यः) अच्छे २ फलों वाली (ओषधींभ्यः) ओपधियों से (मध्वा) निष्पन्न किये हुए मधुर गुणों से युक्त रसों से (अनक्तु) सीचे वैसे प्रजाजन भी नुझे सीचें तू इस राज्य में अपने (अग्रेण) प्रथम यश से (चाम्) विद्या और राजनीति के प्रकाश को (अस्पृक्षः) स्पर्श कर (मध्यमेन) मध्य अर्थात् तदन्तर बढ़ाए हुए यश से (अन्तरिक्षम्) धर्म के विचार करने के मार्म को (आप्रा:) पूरा कर और (उपरेण) अपने राज्य के नियम से (पृथिवीम्) इस भूमि के राज्य को प्राप्त होकर (अद्यक्षही:) इद्ध कर बढ़ता न जा और (देव:) समस्त राजाओं का राजा (सविता) सब जगत् को अन्तर्यामी पन से प्रेरणा देने वाला जगदीश्वर (त्वा) नुझ को राजा कर के तेरे पर (स्थास्यति) अधिष्ठाता होकर रहेगा ॥ २॥

भावार्थ:—प्रजा पुरुषों के स्वीकार किये विना राजा राज्य करने को योग्य नहीं होता तथा राजा आदि सभा जिस को आदर से न चाहे वह मन्त्रो होने को वा कोई पुरुष अपनी कीर्सि की उत्तरीत्तर हदता के विना सोना का ईश्वर यथायोग्य व्याय से दण्ड करने अर्थात् न्यायाधीश होने और राज्य के मण्डल की ईश्वरता के योग्य नहीं हो सकता ॥ २॥

या ते धामानीत्यस्य दीर्धंतमा ऋषि: । विष्णुदेवता । आच्युं प्णिक्छन्द: । अन्ना-हेति साम्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ब्रह्मवनित्वेत्यस्य निचृत्या-जापत्या बृहती छन्द: । मध्यमः स्वरः ।।

फिर वाणिज्य कर्म करने वाले मनुष्य उस को कैसा जानकर आश्रय करते हैं यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या ते धामांन्युइमि गर्मध्ये वश्च गावो भूरिशृङ्गा अयासेः। अत्राह्म तद्वंश्मायस्य विष्णोः परमम्पद्मवं भारि भूरि । ब्रह्मविनं स्वा क्षत्रविनं रायस्पोष्पवित् पर्योहामि ब्रह्मंहथ ह क्षत्रन्द्वथंहाधुं- र्दथह प्रजान्द्वथंह ॥ ३॥

णदार्थ:—हे समाध्यक्ष ! (या) जिन में (ते) तेरे (धामानि) धाम अर्थात् जिन में प्राणी सुखपाते हों उन स्थानों को हम (गमद्ध्ये) (उश्मिस ) प्राप्त होने की इच्छा करते हैं वे स्थान कैसे हैं कि जैसे सूर्य का प्रकाश है जैसे (यत्र) जिन में (उद्गायस्य)
स्तुति करने के योग्य (विष्णो; ) सर्व व्यापक परमेश्वर की (भूरिशृङ्गाः) अव्यत्त प्रकाशित (गाव:) किरणों चैतन्यकला (अयास:) फैली हैं (अत्र) (अह) इत्ही में (तत्) उस परमेश्वर का (परम्म्) सब प्रकार उत्तम (पदम् ) और प्राप्त
होने योग्य परमपद विद्वानों ने (भूरि) (अव) (भारि) बहुधा अवधारण किया है इस
कारण (त्वा) तुझे (ब्रह्मवि) परमेश्वर वा वेद का विद्वान (क्षत्रवि) राज्य और
वीरों की चाहना (रायस्पोपविन) धन की पृष्टि के विभाग करने वाले आप की में
(पर्युहामि) विविध तर्कों से समझाता हूं कि तूं (ब्रह्म) परमात्मा और वेद को
(इंह) इद्ध कर अर्थात् अपने चित्त में स्थिर कर बढ़ (क्षत्रम्) राज्य और धनुबंदचेत्रा
क्षत्रियों को (इंह) उन्नति दे (आयु:) अपनी अवस्था को (इंह) बढ़ा अर्थात्
ब्रह्मचर्य्य और राज्यधर्म से हढ़ कर तथा (प्रजाम्) अपने सन्तान वा रक्षा करने योय प्रजाजनों को (इंह) उन्नति दे ॥ ३॥

भावार्थ: सभाष्यक्ष के रक्षा किये हुए स्थानों की कामना के विना कोई भी पु-रुष सुख नहीं पासकता न कोई जन परमेश्वर का अनाद्र करके चक्रवर्ती राज्यभो-गने के योग्य होता है नहीं कोई भी जन विज्ञान सेना और जीवन अर्थात् अवस्था संतान और प्रजा की रक्षा के विना अच्छो उन्नति कर सकता है || 3 ||

विष्णोः कर्म्माणीत्यस्य मेघातिथिऋषिः । विष्णुदेवता । निचृदार्षा गायत्री-छन्दः।षड्जः स्वरः ॥

अब सभापति अपने सभासद् आदि को क्या २ उपदेश करे यह अगले मंत्र में कहा है।

विष्णोः कम्मीणि पद्यत् यतौ व्यतानि पस्पद्यो । इन्द्रंस्य युज्यः सर्वा ॥ ४ ॥

पदार्थ:—हे सभासदो! जैसे ( इन्द्रस्य ) परमेश्वर का ( युज्य: ) सदाचार युक्त ( सखा ) मित्र ( विष्णो: ) उस न्यापक ईश्वर के ( कर्माणि ) जो संसार का बनाना पालन और सहार करना सत्यगुण है उन को देखता हुआ में ( यत: ) जिस ज्ञान से ( व्रतानि ) अपने मन में सत्यभापणादि नियमों को ( परुपशे ) बांध रहा अर्थात् नियम कररहा हूं वैसे ज्ञान से तुम भी परमेश्वर के उत्तम गुणों को ( पश्यत ) हदता से देखों कि जिस से राज्यादि कामों में सत्य व्यवहार के करने वाले होओ | | ४ ||

भावार्थ:—परमेश्वर से प्रीति और सत्याचरण के विना कोई भी मनुष्य इश्वर के गुण कर्म और स्वभाव को देखने के योग्य नहीं हो सकता वैसे हुए विना राज्यकर्मों को यथार्थ न्याय से सेवन कर सकता है न सत्य धर्माचार से रहित जन राज्य बढ़ाने को कभी समर्थ हो सकता है ॥ ४॥

तिह्रणोरित्यस्य मेघातिथिऋपः । विष्णुरंवता । निचृदार्पा गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

उक्त मन्त्र के विषय में जो अनुष्ठान कहा है उस से क्या सिद्ध होता है यह अगले मन्त्र में कहा है ||

तिहरणोः पर्मम्पद्धं सदां पर्यन्ति सूर्यः । दिवृश्वि चक्षु-रात्तेतम् ॥ ५ ॥

पदार्थ:—हे सभ्यजनो ! जिस पूर्वोक्त कर्म से (सूरय:) स्तुति करने वाले वेद-वेसा जन (विष्णी:) संसार की उत्पत्ति पालन और संहार करनेवाले परमेश्वर के जिस (परमम्) अत्यन्त उत्तम (पदम्) प्राप्त होने योग्य पद को (दिनि) सूर्य राधी षुरुष को (शेपे) उलाहमें देता हूं (तस्मात्) उस उक्त (एनसः) पाप से (मा) मुझे अलग रक्को (च) और जैसे (पयमानः) पवित्र व्यवहार (मा) मुझ को पाप व्यवहार से अलग रखता है वैसे (च) अन्य महुष्यों का भी रक्के ॥ १७॥

भाषार्थ:—जैसे जल सांसारिक पदार्थों का शुद्धि निदान है वेसे विद्वान लेग सुधार का निदान हैं इस से वे अच्छे कार्सों को करें महुष्यों को चाहिथे कि ईश्वर की उपा-सना और विद्वानों के संग से दुष्टाचरणों को छोड़ सदा धर्म में प्रवृत्त रहें ॥ १७॥

सन्तरस्यस्य दीर्थतमा ऋषिः अग्निर्देषता । प्रजापस्यानुष्टुप्छन्दः । गान्धारः

स्वरः । रेडसीत्यस्य दैवीपङ्किङ्क्तः । पञ्चमः स्वरः ॥ अव रण में युद्ध करने वाला शिष्य कैला है। यह अगले मंत्र में कहा है।। सन्ते मनो मनंसा सम्पाणः प्राणेनं गच्छताम् । रेडंस्युग्निष्ट्वां श्रीणात्वापंस्त्वा समेरिणन्वातंस्य त्वा आउथै पूष्णो रशंसांऽक- इमणों च्यथिषत्प्रयंत्रन्द्वेषंः॥ १८॥

पदार्थ;-हे युद्धशील शूर्वीर! संश्राम में (ते) तेरा (मनः) मन (मनसा) घियावल और (प्राणः) प्राण (प्राक्तेन) प्राण के साथ (सम्) (गच्छताम्) संगत
हो। हे वीर! त् (रेट्) शत्रुओं का मारने वाला (अस्) (ग्वा) तुझे (अग्निः)
युद्ध से उत्पन्न हुए क्षीय का अग्नि (श्रीणानु) अच्छे पदाये त् (प्रयुत्तम्) करोड़ी प्रकार के शत्रुओं की सेना को प्राप्त होता है नुझ को तज्जन्य (ऊष्ण्णः) गरमी का (द्वेषः)
द्वेष मत (व्यथिपन्) अत्यन्त पीड़ायुक्त करे जिस से (वातस्य) (प्राज्ये) पवन की गति
के नुल्य गति के लिथे वा (पूष्णः) पुष्टिकारक सूर्य के (रंह्ये) येग के तुल्य येग के
लिथे अर्थान् यथार्थता से युद्ध करने में प्रवृत्ति होने के लिथे (आपः) अच्छे २ जल
(सम्) (अरिणन्) अच्छे प्रकार प्राप्त हों।। १८।।

भावार्थ:—मनुष्यों को चाहिये कि अपने वल के बढ़ाने वाले अन्न जल और शस्त्र अस्त्र आदि पदार्थों को इकट्ठा करके शत्रुओं को मारकर संग्राम जीतें ॥ १८॥ घृतं घृतपावान इत्यस्य दीर्धतमा ऋषि: । विश्वेदेवादेवता: । ब्राह्मचनु-

ष्टुप् छन्दः । गात्यारः स्वरः ॥
फिर युद्धकर्म में क्या होना चाहिये यह अगले नन्त्र में कहा है ॥
चृतङ्कृंतपावानः पियतः वसां वसापावानः पियतान्तरिक्षस्य
हिवरंसि स्वाहां । दिकाः प्रदिशंऽआदिशों विदिशः उहिशो दिरभ्यः स्वाहां ॥ १९॥

पदार्थ:—है (घृतपावान:) जल के पाने वाले बीर पुरुषो ! तुम (घृतम्) अमृतात्मक जल को (पियत) पिओ है (वसापावान:) नीति के पालने वाले वीरो! तुम (बसाम्) जो वीररस की वाणी अर्थात् शत्रुओं को स्तंभन करने वाली है उस को (पियत) पिओ, हे सेनाध्यक्ष चकव्यृहादि सेना रचक प्रत्येक वीर को तू !जिस सं (अन्तरिक्षस्य) आकाश की (हिवः) रुकावट अर्थात् युद्ध में बहुतों के बीच धत्रुओं को घेरना (असि) है उस (स्वाहा) शोभन वाणी से जो (दिशः) पूर्व पिश्चम उत्तर दक्षण (प्रदिशः) आग्नेयी नैऋति वायवी और ऐशानी उपदिशा (आदिशः) आमने सामने मुहाने की दिशा (विदिशा) पीछे की दिशा और (उद्दिशः) जिस ओर शत्र लक्षित हो चे दिशा है उन सब (दिग्भ्यः) दिशाओं से यथायोग्य वीरों को बांट के शत्रुओं को जीत ॥ १९ ॥

भाषार्थ:—संनाध्यक्षां को उचित है कि अपनी २ सेना के वीरों को अत्यन्त पुष्टकर युद्ध के समय चक्रव्यृह श्येनव्य ह तथा शक्रद्यव्यूह आदि रचनादि युद्ध कमों से सब विशाओं में अपनी सेनाओं के भागों को स्थापन कर सब प्रकार से शत्रुओं को घर घार जीतकर न्याय से प्रजापालन करें ॥ १९ ॥

ऐन्द्रः प्राण इत्यस्य दीर्घतमः ऋषिः । त्वण्टा देवता । ब्राह्मचनुष्टुप् छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

फिर संग्राम में वीर पुरुष आपस में कैसे वर्तें यह उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

णेन्द्रं प्राणोऽअङ्गे ऽस्रङ्के निद्धिष्यदैन्द्रऽउदानोऽस्रङ्गे अङ्गेनिधीतः। देवंत्वष्टभूरि ते संक्षसमेतु सलंक्ष्मा यहिषुंक्षप्रभवाति । देवना पन्तर्भवसे सखायोत्तं त्वा माताप्तिरो मदन्तु ॥ २० ॥

पदार्थः-हे (त्वष्टः) शत्रुवलविदारक (देव) दिव्यविद्यासंपन्न सेनापित ! आप (अवसे) गक्षा आदि के लिये (अङ्गे अङ्गे ) जेंसे अङ्ग अङ्गे में (ऐन्द्रः) इन्द्र अर्थात् जीव जिस का देवता है वह सब शरीर में उहरने वाला प्राणवायु सब वायुओं को तिरस्कार कर्ता हुआ आपही प्रकाशित होता है वैसे आप संप्राम में सब शत्रुओं का तिरस्कार करते हुए (निदीध्यत्) प्रकाशित हुजिये अथवा (अङ्गे अङ्गे) जैसे अङ्ग अङ्गे में ( उदानः ) अञ्च आदि पदार्थों को ऊर्ध्व पहुंचाने वाला उदानवायु प्रवृत्त है वैसे अपने विभव से सब वीरों को उद्यति देते हुए संप्राम में ( निधीतः ) निरंतर स्थापित किये हुए के समान प्रकाशित हुजिये (यत्) जो (ते) आप का (विश्वस्पम्)

विविध रूप (सलक्ष्म) परस्पर युद्ध का लक्षण (भवति) हो वह (संप्रामे) संप्राम में (भूरि) विस्तार से (संसम्) (पतु) प्रवृत्त हो। हे सेनाध्यक्ष! तेरी रक्षा के लिये सब शूरकोर पुरुष (सलाय:) मित्र होके वर्तें (माता) माता (पितर:) पिता, चाचा, ताऊ, भृत्य और शुभिचन्तक (देवत्रा) देवों अर्थात् विद्वानों, धर्मयुक्त युद्ध और व्यवहार को (यंतम्) प्राप्त होते हुए (त्वा) तेरा (अनुमदन्तु) अनुमोदन करें ॥ २०॥

भावार्थ:—सेनापित सब प्राणियों का मित्र भाव वर्त्तने वाला जैसे प्रत्येक अक्स में प्राण और उदान प्रवर्त्तमान हैं बैसे संप्राम में विचरता हुआ सेना और प्रजा पुरुषों को हिर्षित करके शत्रुओं को जीते ॥ २०॥

समुद्रं गच्छेत्यादेर्द् र्धितमा ऋषि: । सेनापनिर्देवता । याजुष्य उण्णिश्छन्दांसि। ऋषम: स्वर: ॥

अब राज्य कर्म करने योग्य शिष्य को गुरु क्या २ उपदेश करे यह अगर्छ भंत्र में कहा है।

समुद्रई च्छ स्वाहाऽन्ति रिक्षक्तच्छ स्वाहां द्वेव थ संवितारं क्राच्छ स्वाहां । मित्रावर्ठणौ गच्छ स्वाहां ऽहोरात्रे गंच्छ स्वाहा छन्दां- थिस गच्छ स्वाहा द्यावां पृथिवी गंच्छ स्वाहां एकं गंच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहां दिव्यक्तभों गच्छ स्वाहां गिन वैद्वान् रक्ष्गंच्छ स्वाहा मनों मे हािंदै यच्छ दिवन्ते धूमो गंच्छतु स्वुज्ज्यों तिः पृ-थिबीम्भस्मना पृण् स्वाहां ॥ २१ ॥

पदार्थ: हे धर्माद राज्यकर्म करने योग्य शिष्य ! तू (स्वाहा) वहें २ अभ्वतरी नाव अर्थात धुआंकस आदि बनाने की विद्या से नौकादि यान पर बैट (समुद्रम्) समुद्र को (गच्छ) जा (स्वाहा) खगोलप्रकाश करने वाली विद्या से सिद्ध किये हुए विमानादि यानों से (अन्तरिक्षम्) आकाश को (गच्छ) जा (स्वाहा) वेद वाणी से (देवम्) प्रकाशमान (सिवतारम्) सब को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेद और सज्जनों के सङ्ग से शुद्ध संस्कार को प्राप्त हुई वाणी से (मिन्नावदणी) प्राण और उदान को (गच्छ) जान (स्वाहा) ज्योतिपवि- ह्या से (अहोरान्ने) दिन और रात्रि वा उन के गुणों को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेदाई विद्याह विद्याह सहित वाणी से (छन्दांसि) ऋग्यद्ध: साम और अथर्ष इन चारों वेदों को (गच्छ) अच्छे प्रकार से जान (स्वाहा) भूमियान आकाश मार्ग विमान और भू-

गोछ वा भूगर्म आदि यान बनाने की विद्या से (द्यावापृथियों) भूमि और सूर्यंप्रकाशस्थ अभीए देश देशान्तरों को (गच्छ) जान और प्राप्त हो (स्वाहा) संस्कृत
वाणी से (यज्ञम्) अग्निहोत्र कारीगरी और राजनीति आदि यज्ञ को गच्छ प्राप्त हो
(स्वाहा) वैद्यक विद्या से (सोगम्) ओषित्रसमृह अर्थात् सोमलतादि को (गच्छ)
जान (स्वाहा) जल के गुण और अवग्णों को बोध कराने वाली विद्या से (दिव्यम्)
व्यवहार में लाने योग्य पवित्र (नमः) जल को (गच्छ) जान और स्वाहा बिजुली
आग्नेयास्त्रदि तारवरकी तथा प्रसिद्ध सब कलायन्त्रों को प्रकाशित करने वाली विद्या से (अग्निम्) विद्युत् कप अग्नि.को (गच्छ) अर्च्छी प्रकार जान और (मे) मेरे
(मनः) मन को (हार्हि) प्रीतियुक्त (गच्छ) सत्यधर्म में स्थित कर अर्थात् मेरे उपदेश के अनुकृल वर्त्तीय वर्त्त और (ते) तेरे (धूमः) कलाओं और यज्ञ के अग्नि का
धूंआं (दिवम्) सूर्य्य प्रकाश को तथा (ज्योतिः) उसकी लपट (स्वः) अन्तरिक्ष
को (गच्छनु) प्रस्त हो और त् यन्त्रकला अग्नि में (स्वाहा) काछ आदि पदाधों को
मस्म कर उस (भस्मना) अस्म से (पृथिवीम्) पृथिवी को (आप्रण) डाप दे॥ दि॥ दि॥

भावार्थ:—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, राज्य, और विनज व्यापार चाहने वाले पुरुष भूमियान, अन्तरिक्षयान और आकाशमार्थ में जाने को विमान आदि रथ वा नाना प्रकार के कलायबाँ को बनाकर तथा सब सामग्री को जोड़ कर धन और राज्य का उपार्जन फरें।। २१।।

माप इत्यसदीर्धतमा ऋषिः । वरणो देवता । आहाो स्वराडुण्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । सुमित्रियानइत्यस्य विराड् गायत्री छन्दः । षड्तः स्वरः ॥ अव विति व्यापार करने के लिथे राज्य प्रवन्ध अगले मन्त्र में कहा है ॥ मापो मोवंघी हिंधमी द्धीमनी प्राम्नो राज्ञंस्तती वरुण नो सुड्य । यहाहुर्यप्टन्याऽइति वरुणिति द्यापां महे तती वरुण नो मुड्य । मु मिश्रिया न आप ओपंधयः सन्तु दुर्मिश्चियास्तस्मै सन्तु ग्रोऽस्मान्देष्टि यञ्चं व्यं द्विष्मः ॥ २२ ॥

पदार्थ:-हे (राजन्) सभापति ! आप अपने प्रत्येक स्थानों में (आप:) जल और (ओपशी:) अस पान पदार्थ तथा किराने आदि वनज के पदार्थों को (मा) मत (हिंसी:) नए करो अर्थात् प्रत्येक जगह हम लोगों को सब चहिते पदार्थ मिलते रहें न केवल यही करो किन्तु (तत:) उस (धाम्नः) (धाम्नः) स्थान २ से (नः) हम लोगों को (मा) मत मुडच त्यागो हे (वहणः) न्याय करने वाले सभापति! किये हुए

न्याय में (अच्या: ) न मारने योग्य गी अदि पशुओं की शपथ है (इति) इस प्रकार जो आप कहते हैं और हम लोग भी (शपामहे) शपथ करते हैं आप भी उस प्रतिज्ञा की मत छोड़िये और हम लोग भी न छोड़ेंगे। हे वहण ! आप के राज्य में (न:) हम लोगों को (आप:) जल और ओपधियां (सुमुत्रिया:) श्रेष्ठ मित्र के तुल्य (सन्तु) हों तथा (य:) जो (अस्मान्) हम लोगों से (ह्रेष्टि) वैर रखता है (च) और (वयम्) हम लोग (यम्) जिस से (ह्रिप्म:) वैर करते हैं (तस्मै) उस के लिये वे ओपधियां (दुर्मित्रिया:) दु:ख देने वाले शत्रु के तुल्य (सन्तु) हों।। २२।।

भावार्थ:—राजा और राजाओं के कामदार छोग अनीति से प्रजाजनों का धन न छेत्रें किन्तु राज्य पालन के लिथे राज पुरुष प्रतिज्ञा करें कि हम छोग अन्याय न करेंगे अर्थात् हम सर्वदा तुम्हारी रक्षा और डांकू चोर लम्पट लवाड़ कपटी कुमार्ग अन्या-यी और कुकर्मियों को निरन्तर दण्ड देवेंगे ॥ २२॥

हिषप्मतीरित्यस्य दीर्धतमा ऋषि: । अय्, यज्ञ, सृर्यी, देवता: । निचृदार्प्यंजु-ष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर परस्पर मिल कर राजा और प्रजा किस संक्या २ करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

हुविद्मंतीरिमा आपों हुविद्माँ २॥ त्राविवासति । हुविद्मां-न्देवो अध्वरो हुविद्माँ २॥ त्रस्तु सूर्यः ॥ २३ ॥

पदार्थ:— है विद्वान् छोगो ! तुम उन कामों को किया करो कि जिन से (इसा:)
ये (आप:) जल (हविष्मती:) अच्छे २ दान और आदान किया शुद्धि और मुख देने वाले हीं अर्थात् जिन से नाना प्रकार का उपकार दिया लिया जाय (हविष्मान्)
पवन उपकार अनुपकार को (आ) अच्छे प्रकार (विवासित) प्राप्त होता है (देव:) सुख का देने वल्ला (अध्वर:) यज्ञ भी (हविष्मान्) परमानन्दपद (स्थ्य:)
तथा सूर्यस्थोक भी (हविष्मान्) सुगन्धादियुक्त होके सुखदायक (अस्तु) ही ॥ २३॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलुतोपमालङ्कार है—जिस वायु जल के संयोग से अनेक सुख सिद्ध किये जाते हैं, जिन से देश देशान्तरों में जाने से उत्तम वस्तुओं का पहुंचाना होता है उन अग्नि जल आदि पदार्थों से उक्त काम को क्रियाओं में चतुर ही पुरुष कर सकता है और जो नाना प्रकार की कारीगरी आदि अनेक क्रियाओं का प्रकाश करने वाला है वहीं यहा वर्षों आदि उत्तम २ सुख का करने वाला होता है।। २३।।

अन्तर्वद्रत्यस्य मेधातिथिऋषिः। भार्चात्रिष्टुप् छन्दः। धेवतः स्वरः। अस् य्यंत्यस्य त्रिपाद्गायत्री छन्दः। जड्जः स्वरः॥ अत्र गुरुपत्ती ब्रह्मचर्च्य के अनुकूल जो कन्याजन हैं उन को क्या २ उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्नेबों अंत्रगृहस्य सदंसि साद्यामी न्द्राग्न्यो भी गुधेवी स्थ मित्राबर्डणयो भी गुधेवी स्थ विद्वेषां देवानां भागुधेवी स्थ । अन् मूर्या डपु सूर्ये याभिवी सूर्यः सह ता नो हिन्बन्त्वध्वरम् ॥२४॥

पदार्थ:—है ब्रह्मचारिणीं कन्याओ ! (अम्:) वे (या:) जो स्वयंवर विवाह से पितयों को स्वीकार किये हुए हैं उन के समान जो (इन्द्राग्न्यो:) सूर्य और विज्ञली के गुणों को (भागधेयो:) अलग २ जानने वाली (स्थ) हैं (मित्रावरुणयो:) प्राण और उदात के गुणों को (भागधेयो:) अलग २ जानने वाली (स्थ) हैं (विश्वेषाम् ) विद्वान और पृथिवी आदि पदार्थों के सेवने वाली (स्थ) हैं उन (व:) तुम समों को (अपन्नगृहस्य) जिस को गृहदृत्य नहीं प्राप्त हुआ है उस ब्रह्मचर्य धर्मानुष्ठान करने वाले और (अग्ने:) सब विद्यादि गुणों से प्रकाशित उत्तम ब्रह्मचर्य धर्मानुष्ठान करने वाले और (अग्ने:) सब विद्यादि गुणों से प्रकाशित उत्तम ब्रह्मचर्य की (सदिस) सभा में में (साद्यामि) स्थापित करती हूं और जो (या) (उप) (सूर्यें) सूर्यलोक गुणों में उपस्थित होती हैं (वा) अथवा (याभि:) जिन के (सह) साथ (सूर्य:) सूर्यलोक वर्त्तमान जो मूर्य के गुणों में अति चतुर है (ता:) वे सब (न:) हमारे (अध्वरम्) घर के काम काज को विवाह कर के (हिन्वन्तु) ब-इावें ॥ २४॥

भाषार्थ:—ब्रह्मचर्य धर्म को पालन करने वाली कन्याओं को अविवाहित ब्रह्मचा-री और अपने तुल्य गुण कर्म स्वमाय युक्त पुरुषों के साथ विवाह करने की थोग्यता है इस हेतु से गुरुजनों की स्त्रियां ब्रह्मचारिणी कन्याओं को पैसा हो उपदेश करें कि जिस से वे अपने प्रसन्नता के तुल्य पुरुषों के साथ विवाह कर के सदा सुखी रहें और जिस का पति वा जिस की स्त्री मरजाय और सन्तान की इच्छा हो वे दोनों नियोग करें अन्य व्यभिचारादि कर्म कभी न करें ॥ २४ ॥

हदेत्वेत्यस्य मेघातिथिऋपि: । सोमोदेवता । आर्षावराडनुण्डुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे क्या २ उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है।। हुदे त्वा मनेसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वसिमंसध्वरं दिवि देवेषु होत्रां यच्छ ॥ २५॥ पदार्थ:—हे ब्रह्मचारिणी कन्या! तूं जैसे हम सब (देवेषु) अपने सुख देने पाले पतियों के निकट रहने और अग्निहोत्र आदि कर्म का अनुष्टान करने वाली हैं बैसी हो और जैसे हम (हदे) सौहार्ड खुख के लिथे (त्वा) तुझे वा (मनसे) मला खुरा विचारने के लिथे (त्वा) तुझे वा (दिवे) सब दुखों के प्रकाश करने के लिथे (त्वा) तुझे वा (स्व्यीय) सूर्व्य के सहश गुणों के लिथे (त्वा) तुझे शिक्षा करती हैं बैसे तूं भी (दिवि) समस्त खुखों के प्रकाश करने के निमित्त (इमम्) इस (अध्वरम्) निरन्तर सुख देने वाले गृहाश्रम कर्पा यज्ञ को (अङ्बीम्) उक्षति (य-च्छ) दिया कर।। २५॥

भावार्थः-जैसे अपने पतियाँ की सेवा करती हुई उन के समीप रहने वाली पति-वृता गुरुपत्नी अग्निहोत्रादि कर्मों में स्थिर बुद्धि रखती है वैसे विवाह के अनन्तर ब्रह्मचारिणी कन्याओं और ब्रह्मचारियों को परस्पर वर्त्तना चाहिये।। २५।।

सोमराजिश्वस्य मेघातिथिऋ पिः। गायत्रोछन्दः। षड्जः स्वरः। शृणोत्व-

त्यस्यापी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब गुरुजन क्षत्रिय शिष्य और प्रजाजन को उपदेश करता है यह अगले मन्त्र में कहा है ||

सोमं राज्यन्विश्वास्त्वम् प्रजा उपार्षरोहः विश्वास्त्वाम्यजा उपार्वरोहन्तु । शृणोत्यप्तिः समिधा हर्वम्मे शृण्वन्त्वापौ धिष-णांश्च देवीः । श्रोतां प्रावाणो विदुष्टो न युज्ञ ॐ शृणोत् देवः सं-विता हर्वम्मे स्वाहां ॥ २६ ॥

पदार्थ:—हे (सोम) श्रेष्ठ ऐश्वर्ययुक्त (राजन्) समस्त उत्हृष्ट गुणों से प्रकाश-मान सभाध्यक्ष!तू पिता के नुल्य (विश्वा:) समस्त (प्रजा:) प्रजा जनों का (उपा-विरोह) समीप वर्त्ता होकर रक्षा कर और (त्वा) नुझे (प्रजा) प्रजा जन के पुत्र स-मान (उपावरोहन्तु) आश्रित हों हे सभाध्यक्ष! आप जैसे (सिमधा) प्रदीत करने वाले पदार्थ से (अग्नि:) सर्वगुण वाला अग्नि प्रकाशित होता है वैसे (मे) मेरी (हवम्) प्रगल्भवाणी को (शृणोतु) सुन के न्याय से प्रकाशित हुजिथे (च) और (आप:) सब गुणों में व्याप्त (धिषणा:) विद्या बुद्धि युक्त (देवी:) उत्तमोत्तम गुणों से प्रकाशमान तेरी पत्नी भी माताओं के समान स्त्री जनों के न्याय को (शृण्वन्तु) सुनें। हे (प्रावाणः) सत् असत् के करने वाले विद्वान् सभासदो! नुम हम लोगों के अभिप्राय को हमारे कहने से (श्रीत) सुनो। तथा (देव:) विद्या से प्रकाशित (स- विता ) ऐश्वर्ध्य वान् सभापति ( विदुप: ) विद्वानों के ( वज्ञम् ) यज्ञ के ( न ) समान ( मे ) हवार प्रजा लोगों के ( इवम् ) निवेदन को (स्वाहा) स्तुतिहर वाणी जैसे हो वैसे ( शृणोतु ) जुन ॥ २६ ॥

भावार्थ:—राजा और प्रजा जन परस्पर सम्मति से समस्त राज्य व्यवहारीं की पालना करें || २६ ||

देवीराप इयस्य मेघातिथिऋषिः । आपोदेवताः । निसृदार्पात्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा कैसे वर्त्ताव को वर्ते यह अगले मन्त्र में कहा है ॥ देवीरापो अपानपाद्योवं क्रिमिहैं विष्टु इनिद्वपादां स् मृदिन्तं-सः । तं देवेभ्यों देवजा दंत्त शुक्तपेभ्यो येषांस्भागस्य स्वाहां॥२७॥

पदार्थ:--हे (आप:) श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त (देशी:) शुभकमों से प्रकाशमान प्रजालोगी! तुम राज लेवी (स्थ) हो (शुक्रपेभ्य:) शरीर और आत्मा के पराक्रम के रक्षक (देवेभ्य:) दिव्यगुण युक्त विद्वानों के लिये (धेषाम्) जिन (व:) तुद्धारा वलीक्षप विद्वानों का (य:) जो (अपो नणत्) जलों के नाशरहित स्वामाविक (ऊर्मि:) जल तरंग के सहश प्रजा रक्षक (इन्द्रियावान् ) जिस में प्रशंसनीय इन्द्रियां होती हैं और (मिदन्तम:) आनन्द देने वाला (हिवष्य:) भोग के योग्य पदार्थों से निष्पक्ष (भाग:) भाग है वे तुम सव (तम्) उस को (स्वाहा) आदर के साथ प्रहण करो जैसे राजादि सभ्यजन (देवत्रा) दिव्य भोग देते हैं यैसे तुम भी इन को भानन्द (दत्त) देओ।। २७॥

भावार्थ: -- प्रजाजनों को यह उचित है कि आपस में सम्मति कर किसी उत्हृष्ट गुणयुक्त युक्त सभापति को राजा मान कर राज्य पाछन के लिथे कर देकर न्याय की प्राप्त हों ॥ २७॥

कार्षिरसीत्यस्य मेघातिथिऋंपिः । प्रजा देवतः । निचृदार्ष्यंतुष्टुप् छन्दः । गान्यारः स्वरः ॥

अव अध्यापक जन प्रत्येक जन को क्या २ उपदेश करे यह अगले मंत्र में कहा है।। कार्षिरिस समुद्रस्य त्वा चिंत्या उर्श्नयामि । समापी आदिरं-गमत समोर्षधी भिरोर्षधीः ॥ २८॥

पदार्थः — हे जैक्यजन ! तू (कार्षिः ) हल जोतने योग्य (असि ) है (त्वा ) तुझे (समुद्रस्य ) अन्तरिक्ष के (अक्षित्ये ) परिपूर्ण होने के लिथे (उत्, यामि ) अच्छे राधी पुरुष की (शेपे) उलाहने देता हूं (तस्मात्) उस उक्त (पनसः) पाप से (मा) मुझे अलग रक्को (च) और जैसे (पषमानः) पवित्र व्यवहार (मा) मुझ को पाप व्यवहार से अलग रखता है बैसे (च) अन्य मनुष्यों की भी रक्के ॥ १७ ॥

भाव थैं: — जैसे जल सांसारिक पदार्थों का शुद्धि निदान है पैसे विद्वान लेग सुधार का निदान हैं इस से वे अच्छे कामों को करें महुष्यों को चाहिथे कि ईश्वर की उपा-सना और विद्वानों के संग से दुष्टाचरणों को छोड़ सदा धर्म में प्रवृत्त रहें ॥ १७॥

सन्तर्यस्य दीर्घतमा ऋषिः अग्निर्देषता । प्रजापत्यागुष्टुप्छन्दः । गान्धःरः

स्वरः । रेडसीत्यस्य देवीपङ्किद्द्यन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
अव रण में युद्ध करने वाला शिष्य कैसा है। यह अगले मंत्र में कहा है ॥
सन्ते मनो मनंसा सम्याणः प्राचीनं गच्छताम् । रेडस्युरिनष्ट्राः
श्रीणात्वापंस्त्वा समेरिणन्वातंस्य त्वा धाउँयै पूर्णो रिष्धांऽकहमगाँ व्यथिषुतप्रयुत्तन्द्वेषंः ॥ १८ ॥

पदार्थ:-हे युद्धशील शूरवोर! संग्राम में (ते) तेरा (मनः) मन (मनसा) विह्यायल और (प्राणः) प्राण (प्राणेन) प्राण के साथ (सम्) (गच्छताम्) संगत
हो। हे वीर! त् (रेट्) शत्रुओं की मारने वाला (असि) (ग्वा) तुझे (अग्निः)
युद्ध से उत्पन्न हुए कीघ का अग्नि (श्रीणातु) अच्छे पद्मवे त् (प्रयुतम्) करोड़ों प्रकार के शत्रुओं को सेना को प्राप्त होता है तुझ को तज्जन्य (अप्मणः) गरमी का (द्वेपः)
द्वेप मत (व्यथिपत्) अत्यन्त पीड़ायुक्त करे जिस से (वातस्य) (भ्राज्ये) पवन की गति
के तुल्य गति के लिथे वा (पूष्णः) पृष्टिकारक सूर्य के (रंह्ये) वेग के तुल्य वेग के
लिथे अर्थात् यथार्थता से युद्ध करने में प्रवृत्ति होने के लिथे (आपः) अच्छे २ जल
(सम्) (अरिणन्) अच्छे प्रकार प्राप्त हों।। १८।।

भावार्थ: मनुष्यों को चाहिये कि अपने बल के बढ़ाने वाले अन्न जल और शस्त्र अस्त्र आदि पदार्थों की इकट्ठा करके शत्रुओं को मारकर संप्राम जीतें ॥ १८॥ म्यू घृतं घृतपावान इत्यस्य दीर्घतमा ऋषि: । विद्वेदेवादेवता: । ब्राह्मचनु-

षुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर युद्धकर्मं में क्या होना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

घृतङ्खृतपाचानः पिवतं वसां वसापावानः पिवतान्तरिक्षस्य

हिवरेसि स्वाहां । दिशोः प्रदिशेष्ठआदिशो विदिशंः उद्दिशो दि
गर्भवः स्वाहां ॥ १९ ॥

पदार्थ:—हे (घृतपावान:) जल के पींच बाले वीर पुरुषो ! तुम (घृतम्) अमृतातमक जल को (पिवत ) पिओ हे (वसापावान:) नीति के पालने वाले वीरो ! तुम (वसाम्) जो वीररस की वाणी अर्थात् शत्रुओं को स्तंभन करने वाली है उस को (पिवत ) पिओ, हे सेनाध्यक्ष चक्रव्यृहादि सेना रचक प्रत्येक वीर को तू ! जिस से (अन्तरिक्षस्य ) आकाश की (हिव:) रकावट अर्थात् युद्ध में बहुतों के बीच शत्रुओं को घेरना (असि) है उस (स्वाहा) शोभन वाणी से जो (दिश:) पूर्व पिश्चम उत्तर दक्षिण (प्रदिश:) आक्रेयी नैक्टीत वायवी और ऐशानी उपदिशा (आदिश:) आमने सामने मुहाने की दिशा (विदिशा) पींछे की दिशा और (उद्दिश:) जिस ओर शत्र लक्षित हो वे दिशा है उन सव (दिक्य:) दिशाओं से यथायोग्य वीरों को वांट के शत्रुओं को जीत ॥ १९ ॥

भावार्थ:—से नाध्यक्षां को उचित है कि अपनी २ सेना के वीरों को अत्यन्त पृष्टकर युद्ध के समय चक्रव्यृह १थेनच्यूह तथा शकटच्यूह आदि रचनादि युद्ध कमों से सब दिशाओं में अपनो सेनाओं के भागों को स्थापन कर सब प्रकार से शत्रुओं को घर घार जीतकर न्याय से प्रजापालन करें ॥ १९ ॥

ऐन्द्र: प्राण इत्यस्य दोर्धतमा ऋषि:।त्वष्टा देवता । ब्राह्मचनुष्टुप् छन्द: । धैवत: स्वरः ॥

फिर संब्राम में बीर पुरुष आपस में कैसे वर्त्त यह उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ऐन्द्रं पाणोऽअङ्गे ऽत्राङ्गे निर्दोष्यहैन्द्र ऽउदानोऽग्रङ्गे अङ्गेनिर्धातः। देवत्वष्टभूरि ते संक्षसमेतु सर्वक्ष्मा यहिषुरूप्मवाति । देवत्रा यन्त्रमेवसे सखायोतुं त्वा मातापितरो मदन्तु ॥ २०॥

पदार्थः -हे (त्वप्:) शत्रुवछिवदारक (देव) दिव्यविद्यासंपन्न सेनापित! आप (अवसे) रक्षा आदि के छिये (अक्ने अक्ने ) जैसे अक्न अक्न में (ऐन्द्रः) इन्द्र अर्थात् जीव जिस का देवता है वह सब शरीर में ठहरने वाला प्राणवायु सब वायुओं को तिरस्कार कर्त्ती हुआ आपही प्रकाशित होता है यसे आप संप्राम में सब शत्रुओं का तिरस्कार करते हुए (निदीध्यत्) प्रकाशित हुजिये अथवा (अक्ने अक्ने) जैसे अक्न अक्न में ( उदानः ) अन्न आदि पदार्थों को ऊर्ध्व पहुंचाने वाला उदानवायु प्रवृत्त है वैसे अपने विभव से सब वीरों को उन्नति देते हुए संप्राम में ( निधीत: ) निरंतर स्थापित किये हुए के समान प्रकाशित हुजिये (यत्) जो (ते) आप का (विश्वक्रपम्)

विविध रूप (सलक्ष्म) परस्पर युद्ध का लक्षण (भवति) हो वह (संग्रामे) संग्राम में (भूरि) विस्तार से (संसम्) (एतु) प्रवृत्त हो। हे सेनाध्यक्ष ! तेरी रक्षा के लिये सब शूरवीर पुरुष (सलाय:) मित्र होके वर्ते (माता) माता (पितर:) पिता, चाचा, ताऊ, भृत्य और शुभचिन्तक (देवत्रा) देवों अर्थात् विद्वानों, धर्मयुक्त युद्ध और व्यवहार को (यंतम्) प्राप्त होने हुए (त्वा) तेरा (अनुमदन्तु) अनुमोदन करें ॥ २०॥

भावार्थः —सेनापति सब प्राणियां का भित्र भाव वर्त्तने वाला जैसे प्रत्येक अङ्क में प्राण और उदान प्रवर्तमान हैं वैसे संप्राम में विचरता हुआ सेना और प्रजा पुरुषों को हिर्षित करके शत्रुओं को जीते ॥ २०॥

समुद्रं गरुष्टेखादेर्द्धितमा ऋषि: । सेनापतिर्धेषता । याजुष्य उण्णिश्छन्दांसि। ऋष्यः स्वरः ॥

अब राज्य कर्म करने योग्य शिष्य को गुरु क्या २ उपदेश करे यह अगले भंत्र में कहा है।

स्मुद्ग ईच्छ स्वाहाऽन्ति रिक्ष इच्छ स्वाहां देव थे संवितारं ङ्गच्छ स्वाहां । मित्रावर्दणौ गच्छ स्वाहां ऽहोरात्रं गंच्छ स्वाहा छन्दां- थिस गच्छ स्वाहा द्यावां पृथिवी गंच्छ स्वाहां युक्षं गंच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहां दिव्यक्षभों गच्छ स्वाहां गित्र वैद्वान्रङ्गंच्छ स्वाहा मनों मे हाहि यच्छ दिवन्ते घूमो गंच्छतु स्वुज्ज्योंतिः पृ-थिवीमभस्मना पृण स्वाहां ॥ २१ ॥

पदार्थ:—हे धर्मादि राज्यकर्म करने योश्य शिष्य ! तृ (स्वाहा) बहुं र अश्वतरी नाव अर्थात् धुआंकस आदि बनाने की विद्या से नौकादि यान पर बैठ (समुद्रम्) समुद्र को (गच्छ) जा (स्वाहा) खगोलप्रकाश करने वाली विद्या से सिद्ध किथे हुए विमानादि यानों से (अन्तरिक्षम्) आकाश को (गच्छ) जा (स्वाहा) वेद वाणी से (देवम्) प्रकाशमान (सवितारम्) सब को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेद और सज्जनों के ्या सं शुद्ध संस्कार को प्राप्त हुई वाणी से (मित्रावरणी) प्राण और उदान को (गच्छ) जान (स्वाहा) ज्योतिपित्रिया से (अहोरात्रे) दिन और रात्रि वा उन के गुणों को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेदाक्व विद्याक्व विद्यान सिहत वाणी से (छन्दांसि) ऋग्यजु: साम और अथर्ष इन चारों वेदों को (गच्छ) अच्छे प्रकार से जान (स्वाहा) भूमियान आकाश मार्ग विमान और भू-

गोल वा भूगर्म आदि यान बनाने की विद्या से (द्यावापृथियों) भूमि और सूर्खंप्रकाशस्थ अभीष्ट देश देशान्तरों को (गच्छ) जान और प्राप्त हो (स्वाहा) संस्कृत
वाणी से (यज्ञम्) अग्निहोत्र कारीगरी और राजनीति आदि यज्ञ को गच्छ प्राप्त हो
(स्वाहा) बैद्यक विद्या से (सोमम्) ओषधिसमृह अर्थात् सोमलतादि को (गच्छ)
जान (स्वाहा) जल के गुण और अवगुणों को बोध कराने वाली विद्या से (दिव्यम्)
व्यवहार में लाने योग्य पवित्र (नभः) जल को (गच्छ) जान और स्वाहा बिजुली
आग्नेयास्त्रादि तारबरकी तथा प्रसिद्ध सब कलायन्त्रों को प्रकाशित करने वाली विद्या से (अग्निम्) विद्युत् कप अग्नि को (गच्छ) अच्छी प्रकार जान और (मे) मेरे
(मनः) मन को (हार्ह्ष) प्रीतियुक्त (गच्छ) सत्यधर्म में स्थित कर अर्थात् मेरे उपदेश के अनुकृल वर्त्ताव वर्त्त और (ते) तेरे (धूमः) कलाओं और यञ्च के अग्नि का
धूंआं (दिवम्) सूर्व्य प्रकाश को तथा (ज्योतिः) उसकी लपट (स्वः) अन्तरिक्ष
को (गच्छनु) प्राप्त हो और तू यन्त्रकला अग्नि में (स्वाहा) काष्ठ आदि पदार्थों को
भस्म कर उस (भस्मना) भस्म से (पृथिवीम्) पृथिवी को (आपृण) ढांप दे।।२१॥

भाषार्थ:—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, राज्य, अंर विनज व्यापार चाहने वाले पुरुष भूमियान, अन्तिरिक्षयान और आकाशमार्ग में जाने आने के विमान आदि रथ वा नाना प्रकार के कलायत्रों को बनाकर तथा सब सामग्री को जोड़ कर धन और राज्य का उपार्जन करें ॥ २१ ॥

माप इत्यस्यदीर्धंतमा ऋपिः । वरुणो देवता । ब्राह्मी स्वराडुण्णिक् छन्दः । ऋपसः स्वरः । सुमित्रियानइत्यस्य विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अव विनिज्ञ व्यापार करने के लिये राज्य प्रवश्य अगले मन्त्र में कहा है।।

मापो मौषंधीर्हि असीर्ज्ञास्त्रों धाम्नो राज्ञंस्तती बरूण नो सुञ्च।

/ यहाहरू दृष्टन्याऽइति बर्जेणित द्वापांमहे तती बरूण नो सुञ्च। सु

सिश्चिया न स्राप् ओषंधयः सन्तु दुर्मिश्चियास्तस्मैं सन्तु ग्लोऽस्मानदेष्टि यञ्चं वयं हिष्मः॥ २२॥

पदार्थ:-हे (राजन्) समापित ! आप अपने प्रत्येक स्थानों में (आप:) जल और (ओषधी:) अस पान पदार्थ तथा किराने आदि बनज के पदार्थों को (मा) मत (हिंसी:) नष्ट करो अर्थात् प्रत्येक जगह हम लोगों को सब चहिते पदार्थ मिलते रहें न केवल यही करो किन्तु (तत:) उस (धाम्नः) (धाम्नः) स्थान २ से (नः) हम लोगों को (मा) मत मुठच त्यागो हे (वरुणः) न्याय करने वाले समापित ! किये हुए

न्याय में (अध्या:) न मारने योग्य गी आदि पशुओं की शपथ है (इति) इस प्रकार जो आप कहते हैं और हम लोग भी (शपामहे) शपथ करते हैं आप भी उस प्रतिज्ञा को मत छोड़िये और हम लोग भी न छोड़िंगे। हे वरुण! आप के राज्य में (तः) हम लोगों को (आप:) जल और ओषधियां (सुमुत्रिया:) श्रेष्ठ मित्र के तुल्य (सन्तु) हों तथा (य:) जो (अस्मान्) हम लोगों से (द्वेष्टि) येर रखता है (च) और (वयम्) हम:लोग (यम्) जिस से (द्विष्मः) बैर करते हैं (तस्मै) उस के लिये वे ओपधियां (दुर्मित्रिया:) दु:ख देने वाले शत्रु के तुल्य (सन्तु) हों || २२ ||

भावार्थ:—राजा और राजाओं के कामदार लोग अनीति से प्रजाजनों का धन न लेबें किन्तु राज्य पालन के लिथे राज पुरुष प्रतिज्ञा करें कि हम लोग अन्याय न करेंगे अर्थात् हम सर्वदा तुम्हारी रक्षा और डांकू चोर लम्पट लवाड़ कपटी कुमार्गा अन्या-यो और कुकर्मियों को निरन्तर दण्ड देवेंगे॥ २२। (जानिकोमीय प्रयूपिण संपूर्ण)

हिषप्पतीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषि:। अय्, यज्ञ, सूर्या, देवता:। निचृदार्प्यंतु-ष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर परस्पर मिल कर राजा और प्रजा किस से क्या २ करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

हृविष्मंतीरिमा आपों हृविष्माँ २॥ ग्राविवासित । हृविष्मां-न्देवो अध्वरो हृविष्मां २॥ ग्रस्तु सूधैः ॥ २३॥

पदार्थ:—है विद्वान् लोगो ! तुम उन कामां को किया करो कि जिन से (इमा:) ये (आप:) जल (हविष्मती:) अच्छे २ दान और आदान किया शुद्धि और हुल देने वाले हों अर्थात् जिन से नाना प्रकार का उपकार दिया लिया जाय (हविष्मान्) पवन उपकार अनुपकार को (आ) अच्छे प्रकार (विवासित) प्राप्त होता है (देन्दः) सुख का देने वाला (अध्वरः) यज्ञ भी (हविष्मान्) परमानन्दप्रद (सूर्य्यः) तथा सूर्यलोक भी (हविष्मान्) सुगन्धादियुक्त होके सुखदायक (अस्तु) हो ॥ २३॥ भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जिस वायु जल के संयोग से अनेक सुख सिद्ध किये जाते हैं, जिन से देश देशान्तरों में जाने से उत्तम वस्तुओं का पहुंचाना होता है उन अग्नि जल आदि पदार्थों से उक्त काम को क्रियाओं में चतुर ही पुरुष कर सकता है और जो नाना प्रकार की कारीगरी आदि अनेक क्रियाओं का प्रकाश करने वाला है वहीं यञ्च वर्षा आदि उत्तम २ सुख का करने वाला होता है ॥ २३॥

163

## षष्ठोऽध्यायः ॥

अग्नेवंद्दयस्य मेधातिथिऋषिः अर्चितिष्टुप् छन्दः । धेवतः स्वरः । अस् य्येत्यस्य त्रिपाद्गायत्री छन्दः । जड्जः स्वरः ॥ अव गुरुपत्नी ब्रह्मचर्च्य के अनुकूल जो कन्याजन हैं उन को क्या २ उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नेबांऽपंत्रगृहस्य सद्सि साद्यामीन्द्राग्न्योभीगुधेयी स्थ मित्रावरंणयोभीगुधेयी स्थ विद्वेषां देवानां भागुधेयी स्थ । अ-मुर्यो उप सुर्ये याभिन्धां सुर्थैः सुद्द ता नी हिन्बन्त्वध्नुरम् ॥२४॥

पदार्थ:—हे श्रह्मचारिणां कन्याओ ! (अम्:) वे (या:) जो स्वयंवर विवाह से पितयों को स्वीकार किये हुए हैं उन के समान जो (इन्द्राग्न्यो:) सूर्य और विजुली के गुणों को (भागधेयो:) अलग र जानने वाली (स्थ) हैं (मिन्नावरुणयो:) प्राण और उदाल के गुणों को (भागधेया:) अलग र जानने वाली (स्थ) हैं (विश्वेपाम् ) विद्वान और पृथिवा आदि पदार्थों के सेवने वाली (स्थ) हैं उन (व:) तुम समों को (अपन्नगृहस्य) जिस को गृहरूत्य नहीं प्राप्त हुआ है उस ब्रह्मचर्य धर्मानुष्टान करने वाले और (अग्ने:) सव विद्यादि गुणों से प्रकाशित उत्तम ब्रह्मचारी की (सदिस) सभा में में (सादयामि) स्थापित करती हूं और जो (या) (उप) (स्यं) सूर्यलोक गुणों में उपस्थित होती हैं (वा) अथवा (याभि:) जिन के (सह) साथ (सूर्य:) सूर्यलोक वर्त्तमान जो सूर्य के गुणों में अति चतुर है (ता:) ये सब (न:) हमारे (अध्वरम्) धर के काम काज को विवाह कर के (हिन्वन्तु) व- हाचें ॥ २४॥

भावार्थ: - ब्रह्मचर्य धर्म को पालन करने वाली कन्याओं को अविवाहित ब्रह्मचा-री और अपने तुल्य गुण कर्म स्वभाव युक्त पुरुषों के साथ विवाह करने की योग्यता है इस हेतु से गुरुजनों की स्त्रियां ब्रह्मचारिणों कन्याओं को बैसा ही उपदेश करें कि जिस से वे अपने प्रसन्नता के तुल्य पुरुषों के साथ विवाह कर के सदा खुखी रहें और जिस का पित वा जिस की स्त्री मरजाय और सन्तान की इच्छा हो वे दोनों नियोग करें अन्य व्यक्तिचारादि कर्म कभी न करें ॥ २४ ॥

हदेत्वेत्यस्य मेघातिथिऋिषः । सोमोदेवता । आर्पः विराउनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे क्या २ उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है।। हुदे स्वा मनंसे स्वा दिवे स्वा सूर्याय स्वा। कुर्ध्वमिसंसध्वरं दिवि देवेषु होत्रां यच्छ ॥ २५॥ पदार्थ:—हे ब्रह्मचारिणी कत्या! तूं जैसे हम सब (देवेषु) अपने सुख देने वाले पितयों के निकट रहने और अग्निहोत्र आदि कर्म का अनुष्टान करने वाली हैं वैसी हो और जैसे हम (हदे) सौहार्द सुख के लिये (त्वा) तुझे वा (मनसे) मला बुरा विचारने के लिये (त्वा) तुझे वा (व्वा) तुझे वा (स्व्यीय) सूर्य्य के सहश गुणों के लिये (त्वा) तुझे शिक्षा करती हैं वैसे तूं भी (दिवि) समस्त सुखों के प्रकाश करने के निमित्त (इमम्) इस (अध्वरम्) निरन्तर सुख देने वाले गृहाश्रम हपी यज्ञ को (ऊड्यंम्) उन्नति (य-च्छ) दिया कर ॥ २५॥

भावार्थ:-जैसे अपने पितयों की सेवा करती हुई उन के समीप रहने वाली पित-जूता गुरुपत्नी अग्निहोत्रादि कर्मों में स्थिर वुद्धि रखती है जैसे विवाह के अनन्तर ब्रह्मचारिणी कन्याओं और ब्रह्मचारियों को परस्पर वर्त्तना चाहिये। १५ ॥

सोमराजिकत्यस्य मेधातिथिऋषिः ६ गायत्रोछन्दः। पड्जः स्वरः । शृणोत्व-त्यस्यापी त्रिष्टुप् छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

अब गुरुजन क्षत्रिय शिष्य और प्रजाजन को उपदेश करता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोमं राज्यन्विश्वास्त्वम् प्रजा उपावरोहः विश्वास्त्वाम्प्रजा उपावरोहन्तु । शृणोत्विग्निः समिधा हर्वम्मे शृण्वन्त्वापौ धिष-णांश्च देवीः । श्रोतां ग्रावाणो विदुष्यो न यञ्च श्र शृणोतुं देवः सं-विता हर्वम्मे स्वाहां ॥ २६ ॥

पदार्थ:—हे (सोम) श्रेष्ट पेश्वर्ययुक्त (राजन्) समस्त उत्हृष्ट गुणों से प्रकाश-मान सभाध्यक्ष!तू पिता के तुल्य (विदवाः) समस्त (प्रजाः) प्रजा जनों का (उपा-विरोह) समीप वर्ती होकर रक्षा कर और (त्वा) तुझे (प्रजा) प्रजा जन के पुत्र स-मान (उपावरोहन्तु) आश्रित हों हे सभाध्यक्ष! भाप जैसे (सिमधा) प्रदीत करने बाले पदार्थ से (अग्निः) सर्वगुण वाला अग्नि प्रकाशित होता है वैसे (मे) मेरी (हवम्) प्रगल्भवाणी को (शृणोतुः) सुन के न्याय से प्रकाशित हृजिये (च) और (आपः) सब गुणों में व्याप्त (धिषणाः) विद्या बुद्धि युक्त (देवीः) उत्तमोत्तम गुणों से प्रकाशमान तेरी पत्नी भी माताओं के समान स्त्री जनों के न्याय को (शृण्वन्तु) सुनें। हे (श्रावाणः) सत् असत् के करने वाले विद्वान् सभासदो! तुम हम लोगों के अभिप्राय को हमारे कहने से (श्रोत) सुनो। तथा (देवः) विद्या से प्रकाशित (स-

गहीं त

विता ) ऐश्वर्ध्य वान् सभापति (विदुप:) विद्वानों के (यज्ञम्) यज्ञ के (न) समान (मे) हमारे प्रजा लोगों के (हवम्) निवेदन को (स्वाहा) स्तुतिरूप वाणी जैसे हो वैसे (शृणोतु) छुन ॥ २६॥

भावार्थ:—राजा और प्रजा जन परस्पर सम्मिति से समस्त राज्य व्यवहारीं की पालना करें || २६ ||

देवोराप इत्यस्य मेधातिथिऋष्पः। आपोदेवताः। निचृदार्षा त्रिप्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर राजा और प्रजा कैसे वर्ताव को वसें यह अगले मन्त्र में कहा है।। देवीरापो अपान्नपाद्योवंक्रिमिहीविष्ट्रऽहन्द्रियावांन् ध्रहिन्त-मः। तं देवेभ्यों देवत्रा दंस शुक्रपेभ्यो येषांस्सागस्थ स्वाहां॥२०॥

पदार्थ:—हे (आप:) श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त (देवी:) शुभकमों से प्रकाशमान प्रजालोगी! तुम राज सेवी (स्थ) हो (शुक्रपेश्य:) शरीर और आतमा के पराक्रम के रक्षक (देवेश्य:) दिव्यगुण युक्त विद्वानों के लिये (येषाम्) जिन (व:) तुद्वारा वलीक्ष्प विद्वानों का (य:) जो (अपां नपात्) जलों के नाशरहित स्वामाविक (किमी:) जल तरंग के सहश प्रजा रक्षक (इन्द्रियावान् ) जिस में प्रशंसनीय इन्द्रियां होती हैं और (मिदिन्तम:) आनन्द देने वाला (हिवष्य:) भोग के योग्य पदार्थों से निष्पन्न (भाग:) भाग है वे तुम सब (तम्) उस को (स्वाहा) आदर के साथ प्रहण करो जैसे राजादि सभ्यजन (देवना) दिव्य भोग देते हैं वैसे तुम भी इन को आनन्द (दत्त) देओ है। २७ ॥

भावार्थ:—प्रजाजनों को यह उचित है कि आपस में समाति कर किसी उत्हृष्ट गुणयुक्त युक्त सभापति को राजा मान कर राज्य पालन के लिये कर देकर न्याय को प्राप्त हों ॥ २७ ॥

कार्षिरसीत्यस्य मेघातिथिऋषिः । प्रजा देवतः । निचृदार्ष्यंनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अध्यापक जन प्रत्येक जन को क्या २ उपदेश करे यह अगले मंत्र में कहा है ॥ कार्षिरिस समुद्रस्य त्वा चित्या उर्श्वयामि । समापी आद्गर्र-रमत समोर्षधी भिरोर्षधीः ॥ २८ ॥

पदार्थ:—हे बैइयजन ! तू (कार्षि: ) हल जोतमे योग्य (असि ) है (त्वा ) तुझे (समुद्रस्य ) अन्तरिक्ष के ( अक्षित्ये ) परिपूर्ण होने के लिथे (उत्, यामि ) अच्छे प्रकार डत्कर्ष देता हूं तुम सब लोग ( शद्धि: ) यज्ञ शोधित जलों से ( श्राप: ) जल और (ओपधाभि:) ओपधियों से ओपधियों को (सम्) (अग्मत) प्राप्त होओ ॥ २८॥

भाषार्थ:—क्षेत्र आदि स्थानों में अनेक ओषधी उत्पन्न होती हैं ओपिषयों से अ-ब्रिहोत्र आदि यहां यहां से शुद्ध हुए जो जल के परमाणु उंचे होते हैं उन से आका-श भरा रहता है इस कारण विद्वाद लोग िर्द्ध द्वारों को खेती वारी ही के कामों में रखते हैं क्योंकि वे विद्या का अध्यास करने को समर्थ ही नहीं होते हैं ॥ २८॥

यमम इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि:। अग्निजेवता । भुरिगार्था गायत्रीछन्दः।

षड्ड: स्वर: !!

अब वह अध्यापक को क्या कहता है यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है।।

यमेंग्ने पृत्सु मर्श्यम्बा बाज़ेंषु यञ्जुनाः। स यन्ता श्राइवंतीरिष्यः स्वाहां॥ २६॥

पदार्थ:—है (अग्ने) जब कभी विवेद के करने वाले आप! (पृत्तु) संप्रामों में (यम्) जिस मनुष्य की (अवाः) रक्षा करते और (बाजेषु) अब मादि पदार्थों की सिद्धि करने के निमित्त (यम्) जिस की (जुनाः) नियुक्त करते हो (सः) वह (शश्वतीः) निरंतर अनादिक्ष (इयः) अपनी प्रजाओं का (यन्ता) निर्वाह करने हारा होता है अर्थात् उन के नियमों को पहुंचता है।। २१।।

भाषार्थः-गुरु जनों की शिक्षा से सब का मुख बढ़ता ही है।। २९।। देवस्य खेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि:। स्विता देवता। स्वराष्ट्रार्था पङ्किद्दछन्दः। पञ्चम: स्वरः॥

अब सभापति कर धन देने बाले प्रजाजनों को कैसे स्वीकार करे यह गुरु जन का उपदेश अनले मन्त्र में कहा है।

देवस्यं स्वा सा<u>वितः प्रमावे दिवनो यो हुम्यांम्यूच्यो हस्तांभ्याम् ।</u> आदंदे रावांसि गर्भाराभ्यममध्यरङ्क्ष्यीन्द्रांय सुष्तंसम् । <u>उत्त</u>-मेनं प्रविनो जीस्वन्त्रमधुंसन्त्रम्ययंस्वन्ति श्रियाञ्च्या स्थ देख्रश्रुतं-स्त्रप्रयंत सा ॥ ३०॥

पदार्थ:—सब सुख देने (सिवतः) और समस्त ऐश्वर्णं के उत्पन्न करने व.हे ज-गवीदवर के (प्रस्तये) उत्पन्न किये हुए संसार में (अदिवतोः) सूर्य और चन्द्रमा के (बाहुम्याम्) बह और पराक्रम गुणों से (पूष्णः) पृष्टि करने वाहे सोम आदि भी- षिगण के (हस्ताभ्याम्) रोग नाश करने और धातुओं की समता रखने वाले गुणों से (त्वा) तुझ कर धन देने वाले को (आवदे) स्वीकार करता हूं तू (इन्द्राय) पर्मेश्वर्च्च वाले मेरे लिये (उत्तमेन) उत्तम अर्धात् सभ्यता की (पविना) वाणों से (इमम्) इस (गभीरम्) अत्यन्त समझने योग्य (सुष्तमम्) सव पदार्थों से उत्पन्न हुए (ऊर्जस्वन्तम्) राज्य को धलिष्ठ करने वाले (मधुमन्तम्) समस्त मधु गादि श्रेष्ठ पदार्थ युक्त (पयस्वन्तम्) वृग्ध आदि सहित कर धन को (अध्वरम् ) निष्कपट (छिष्ठ) कर दे (देवश्रुतः) श्रेष्ठ राज्य गुणों को सुन ने वाले तुम मेरे (निष्ठाभ्यः) निरंतर स्वीकार करने के योग्य (स्थ) हो (मा) मुझं इस करके देने से (तर्ण्यत) तृप्त करो ॥ ३०॥

भावार्थ:—प्रजा जनों की योग्यता है कि सभाष्यक्ष को प्राप्त हो कर उसके लिये अपने समस्त पदार्थों से यथायोग्य भाग दें जिस कारण राजा, प्रजा पालन के लिये संसार में उत्पन्न: हुआ है इसी से राज्य करने वाला यह राजा संसार के पदार्थों का अंश लेने वाला होता है ॥ ३०॥

मनोम इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषि: । प्रजासभ्यराजानी देवताः । उष्णिक्छन्दासि । ऋषभः स्वरः ॥

अब राजा अपने सभासदों और सभा राजा को क्या उपदेश करे यह अगले मंत्र में उपदेश किया है ||

मनों में तर्पयत वार्चम्में तर्पयत प्राणम्में तर्पयत वक्षुंमें त-र्पयत श्रोत्रंम्में तर्पयतात्मानंम्में तर्पयत प्रजाम्में तर्पयत प्र-ज्ञान्में तर्पयत गुणान् में तर्पयत गुणा में मा वितृंषन् ॥ ३१॥

पदार्थ:—हे सभ्यजने।! और प्रजाजने।! तुम अपने गुणों से (मे) मेरे (मनः) मन को (तर्प्यत) तृप्त करें। मेरी (व्यम्) वाणी को (तर्प्यत) तृप्त करें। (मे) मेरे (प्राणम्) प्राण को (तर्प्यत) तृप्त करें। (मे) मेरे (प्राणम्) प्राण को (तर्प्यत) तृप्त करें। (मे) मेरे (प्राणम्) कानों को (तर्प्यत) तृप्त करें। (मे) मेरे (आत्मानम्) आत्मा को (तर्प्यत) तृप्त करें। (मे) मेरी (प्रजाम्) संतानादि प्रजा को (तर्प्यत) तृप्त करें। (मे) मेरे (प्रान्) गी, हाथी, घोड़े आदि प्रशुकों को (तर्प्यत) तृप्त करें। (मे) मेरे (गणान्) सेवकों को (तर्प्यत) तृप्त करें। जिस से (मे) मेरे (गणाः) राज्य वा प्रजा कर्माधिकारी वा सेवक जन कामों में (मा) मत (वितृषन्) उदास हों। ३१॥

भाषार्थ:--राज्य का प्रबन्ध समाधीन ही होने के येग्य है जिस से प्रजाजन राज सेवक और राज पुरुष प्रजा की सेवा करने हारे अपने २ कामों में प्रवृत्त होके सब प्रकार एक दूसरे की आनन्दित करते रहें || ३१ ||

इन्द्रायेखेत्यस्य मधुच्छन्दाऋषिः । सभापती राजादेवता । पञ्चपाज्ज्योतिष्यः

ती जगतीछन्द:। निपाद: स्वर: !!

जो राज्य व्यवहार सभा के ही आधीन हो तो किस लिथे प्रजाजनों को सभापति का स्वीकार करना चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है।

इन्द्रीय त्वा बसुमते क्द्रबंत ऽइन्द्रीयत्वादित्यवंत इन्द्रीय त्वाः

भिमातिष्टने । इयेनार्यं त्वा सोमुभृतेग्नये त्वा रायस्पोष्टदे ॥ ३२ ॥

पदार्थ:-हे समापते! (वसुमते) जिस कमें में जीवीस वर्ष ब्रह्मचर्ळ से बन कर अच्छे २ विद्वान होते हैं (इद्रवते) जिस में चवालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्ळ सेवन करते हैं उस (इन्द्राय) परमेश्वर्ळ्युक पुरुप के लिये (त्वा) आप को ब्रह्मण करते हैं (आ-वित्यवते) जिस में अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्ळ बन कर सूर्ळ सहश परम विद्वान होते हैं उस (इन्द्राय) उत्तम गुण पाने के लिये (त्वा) आप के (अभिमातिष्ने) जिस कमें में बड़े २ अभिमानी शत्रुजन मारे जांय उस (इन्द्राय) परमोत्छ शत्रु विदारक काम के लिये (त्वा) आप (सोममृते) उत्तम पेश्वर्ळ धारण करने हारें (इयेनाय) युद्धाद्दि कामों में इयेनपक्षों के तुल्य लपट झपट मारने वाले (त्वा) (आप) (राय-स्पोपदे) अन को हदता देने के लिये और (अग्नये) विद्युत् आदि पदार्थों के गुण प्र-काश कराने के लिये (त्वा) आप को हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ ३२ ॥

भाषार्थ:—जो इन्द्र अग्नि यम सूर्य्य वरुण और धनाढच के गुणों से युक्त विद्वानों का प्रिय विद्या का प्रचार करने वाला सब को सुख देखे उसी को राजा मानना चा-हिये || ३२ ||

यतात्यस्य मधुच्छन्दाऋषिः । सोमो देवता । भुरिगार्षः वृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पेसा सभापति प्रजा को क्या लाभ पहुंचा सकता है यह अगले मंत्र में कहा है ॥ यसे सोम दिविज्ज्योतिर्यार्थिक्यां यदुरावन्तरिक्षे । तेनास्मै

यर्जमानाग्रोदराये कृद्ध्यधि द्वात्रे वीचः ॥ ३३ ॥

पदार्थ:—हे (सोम) समस्त ऐश्वर्ष्यं के निमित्त प्रेरणा करने हारे समापित ! (ते) तेरा (यत्) जो दिवि सूर्व्यं छोक में (पृथिव्याम्) पृथिवी में और (यत्) जो

( उरी ) विस्तृत ( अम्तिरिक्षे ) आकाश में (ज्योति:) जैसे ज्योति हो वैसा राजकर्म है ( तेन ) उस से तू ( अस्मै ) इस परोपकार के अर्थ ( यजमानाय ) यज्ञ करते हुए य-जमान के लिये ( उह ) ( इधि ) अत्यन्त उपकार कर तथा (राये) धन वढ़ने के लिये ( अधि, वोच: ) अधिक २ राज्य प्रयन्ध कर ॥ ३३ ॥

भावार्थ:— इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—सभापित राजा अपने राज्य के उत्कर्ष से सब जनों को निरालस्य करता रहे जिस से वे पुरुपार्थी हो कर धनादि प- दार्थों को निरम्तर बढ़ावें || ३३ ||

इवात्रास्थ इत्यस्य मधुरुछन्दाऋषिः । यङ्गोदेवता । स्वराडार्थापथ्याबृहती-रुछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अप उक्त सभाध्यक्षादिकों की स्त्री कैसे कर्म करने वाळी हों यह अगले मन्त्र में कहा है ||

इबान्नाः स्थं वृत्रतुरा राधी गृत्तीऽश्रमृतंस्य पत्नीः। ता देवीर्दे-बन्नेमं यञ्जन्नेयतोपंदृताः सोमंस्य विवत ॥ ३४॥ ♦

पदार्थ:—हे (देवी:) विद्या युक्त स्त्रियो ! तुम (वृत्रतुर:) विजुली के सहश मे-घ की वर्षों के तुत्र्य सुखदायक की गति के तुन्य खलने (राधोगुर्त्ताः) धन का ड-घोग करने (पत्न्य:) और यह में सहाय देने वाली (स्थ) हो (देवत्रा) तथा अ-घंठे २ गुणों से प्रकाशित विद्वान् पतियों में प्रीति से स्थित हों (इदम्) इस यह को (नयत) सिद्धि को प्राप्त किया कीजिये और (उपद्वृता:) बुलाई हुई अपने पतियों के साथ (अमृतस्य) अति स्वाद युक्त सोम आदि ओपधियों के रस को (पिवत) पीमो ॥ ३४॥

भाषार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलुक्षोपमालङ्कार है—कैसे विद्वानों की पत्नी स्त्रीजन स्वधर्म व्यवहार से अपने पतियों को प्रसद्ध करती हैं उसी प्रकार पुरुष उन अपनी स्त्रियों को निरन्तर प्रसद्ध करें ऐसे परस्पर अनुमोद से गृहाश्रमधर्म को पूर्ण करें।३४।

माभेर्मेत्यस्य मधुण्छन्दाऋषिः । द्याचारृथिवः देवते । भुरिगार्धंतुष्टुप्छन्दः ।

गान्धार: स्वर: ||

किर स्ती पुरुष परस्पर कैसा बर्ताव वर्ते यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

माओमी संविक्धाऽऊर्जीन्धत्स्व धिर्षणे बीड़ी सुती धीडयेश्वामूज्जीन्द्वाथाम् । पाप्मा हुतो न सोमेः ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे स्ती ! तू (वीक्बी) शरीरात्मवल युक्त होती हुई पति से (मा, भेः)

मत डर (मा संविष्धाः) मत कंप और (ऊर्ज्जम्) देह और अतमा के बल और पराक्रम को (धरस्व )धारण कर । हे पुरुष ! तू भी बैसे ही अपनी की से वर्त । तुम दोनों स्त्री पुरुष (धिषणे ) सूर्य्य और भूमि के समान परोपकार और पराक्रम को धारण करो जिस से (बीडथेथाम्) इढ़ बल वाले हों ऐसा वर्त्ताव वर्तते हुए तुम दोनों का (पा-प्मा) अपराध (हतः) नष्ट हो और (सोमः) चन्द्र के तुल्य आनन्द शान्त्यादि गुण बढ़ा कर एक दूसरे का आनन्द बढ़ाते रहो ॥ ३५॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वालकलुप्तीपमालङ्कार है—स्त्री पुरुष ऐसे व्यवहार में व-त्तं कि जिस से उन का परस्पर भय और उद्देग नष्ट हो कर आत्मा की हदता, उत्सा-हता और गृहाश्रम व्यवहार की सिद्धि से ऐइवर्ष्य बढ़ और वे दोष तथा दु:स को छोड़ चन्द्रमा के तुल्य आल्हाहित हों ॥ ३५॥

अव उन के पुत्र क्या २ करें और वेपुत्रों को कैसे पार्लेयह अगले मन्त्र में कहा है ||

प्रागपुरगधुराक्मव्यतिस्ता दिशाऽआधांवन्तु । स्रम्य निष्यं-रसम्रोविदाम् ॥ ३६ ॥

पदार्थ: —है (अम्ब ) प्रेम से प्राप्त होने वाली मता ! जो तेरी (अरी:) सन्ता-मादि प्रजा (प्राफ्) पूर्व (अपाक्) पश्चिम (उदक्) उत्तर (अधराक्) दक्षिण और भी (सर्वत:) सब (दिश:) दिशाओं से (त्वा) तुझे (आ) (धावन्तु) धाय धाय प्राप्त हों उन्हें (नि:) (पर) निगन्तर प्यार कर और वे भी तुझे (सम्) अच्छे भाव से जानें ॥ ३६॥

भावार्थ:—माता और पिता को योग्य है कि अपने सन्तानों को विद्यादि अच्छे २ गुणों में प्रवृत्त कराकर अच्छे प्रकार उन के शरीर की रक्षा करें अर्थात् जिस से वे नीरोग शरीर और उत्साह के साथ गुण सीखें और उन पुत्रों को योग्य है कि माता पिता की सब प्रकार से सेवा करें ॥ ३६ ॥

वमङ्ग इत्यस्य गौतमऋषि:। इन्द्रो देवता । भुरिगार्ष्यं नुष्टुष्छन्द:। गान्धार: स्वर:॥
अब प्रजाजन किथे हुए सभापति की प्रशंसा कैसे करें यह अगले मन्त्र में

उपदेश किया है ॥

स्वमङ्क प्रश्नां असिषोद्धेवः श्रांविष्ट्रमत्येम् । न स्वद्रस्यो मंघवन्न-स्ति मर्द्धितेन्द्व ब्रवीमि ते वर्षः ॥ ३७ ॥

पदार्थ:—हे (अङ्ग ) (शविष्ठ ) अत्यन्त वल युक्त ( मधवन् ) महाराज के समान

( इन्द्र ) ऋ दि सिद्धि देने हारे सभापते ! (त्वम् ) आप (मर्त्यम् ) प्रजास्थ मनुष्य को ( प्रशंसिष: ) प्रशंसायुक्त कीजिये आप (देव: ) देव अर्थात् शत्रुओं को अब्छे प्रकार जीतने वाले हैं ( न ) नहीं (त्वदन्य: ) तुम से अन्य ( मर्डिता ) सुख देने वाला है ऐसा मैं ( ते ) आप को ( वख: ) पूर्वोक्त राज्यप्रवन्ध के अनुकूल वचन ( ब्रवीमि ) कहता है | ३७ | |

भावार्थ:—इस मन्त्र में उपमालक्कार हैं—जैसे ईदवर सर्व सृष्टत् पक्षपात रहित है वैसे सभापति राज्य घम्मीनुवर्ता राजा होकर प्रशंसनीय की प्रशंसा निन्दनीय की निन्दा वृष्ट को वृष्ट श्रेष्ट की रक्षा कर के सब का अभीष्ट सिद्ध करें || ३७ ||

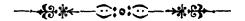
इस अध्याय में राज्य के अभिषेक पूर्वक शिक्षा, राज्य का कृत्य, प्रजा को राजा का आश्रय, सभाष्यश्रादिकों का काम, विष्णु का परम पद वर्णन, सभाध्यक्ष को देशवरी-पासना करनी, राजा प्रजा का आपस में इत्य/गृह को शिष्य का स्वीकार और उस शिष्य को शिक्षा करना) यह का अनुष्ठान, होम किये द्रव्य के फल का वर्णन, विद्वानों के लक्षण. मनुष्यद्वारा, मनुष्यों का परस्पर वर्समान, दुए दोष निवृत्ति फल, ईश्वर से क्या क्या प्रार्थना करनी चाहिये, रण में घोद्या का वर्णन, युद्धहत्य निरूपण, युद्ध में परस्पर क्लींच का प्रकार, वीरों को उत्साह देना, राज्यप्रवन्ध का कारण और साध्य साधन, राजा के प्रति ईश्वरोपदेश, राज्यकर्म का अनुष्टान, राजा और प्रजा का कुछ. राजा और प्रजा की सभाओं का परस्पर वर्त्ताव, प्रजा से सभापति का उत्कर्प करना. प्रजाजन के प्रति सभापति की प्रेरणा, प्रजा को स्वीकार करने के योग्य, सभापति की लक्षण, प्रजा और राज सभा की परस्पर प्रतिक्वा करनी, सभापति के स्वीकार करने का प्रयोजन, प्रजा सुख के लिये सभापति के कर्तव्य कार्मी का भनुष्टान, सभापत्यादि-कों को पश्चिमों को क्या करना चाहिये, स्त्री पुरुषों का परस्पर वर्साव, माता पिता के प्रति सन्तामी का काम और समापति के प्रति प्रजाजनों का उपदेश वर्णन है. इस से पंचम अध्याय में कहे हुए अथों के साथ इस छठे अध्याय के अथों की सङ्गति है, ऐसा जानना चाहिये।

पह इठा अध्याय समाप्त हुआ।

- COLORS

## ओ३म्

# त्राथ सप्तमाध्यायस्यारम्भः॥



अव सप्तम अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है ॥

विद्वांनि देव सवितर्दुरितानि परांसुव । यद्भव्रं तम् आसुंव ॥ १॥

वाचस्यतय इत्यस्य गोतम ऋषि: । प्राणो देवता । भुरिगार्प्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

इस सप्तम अध्याय के प्रथम मन्त्र में सृष्टि के निमित्त बाहर और भौतर के व्यवहार का उपदेश हैं।

बार्चस्पतंचे पवस्य वृष्णोऽअक्षश्चाङ्गर्भस्तिपूतः । देवो देवे-भ्यः पवस्य वेषाम्भागोऽ।सिं॥ १॥

पदार्थ:—हे मनुष्य ! तू ( वाच: ) वाणी के ( पतये ) पालने हारे ईइवर के लिये ( पवस्व ) पवित्र हो (वृष्णः) बलवान् पुरुप के ( अंशुभ्याम् ) भुजाओं के समान बाहर भीतर का व्यवहार होने के लिये जैसे ( गभस्तिपूतः ) सूर्य्य की किरणों से पदार्थ पित्र होते हैं वैसे शास्त्रों से ( देव: ) दिव्य गुण युक्त विद्वान् होकर ( येपाम् ) जिन विद्वानों को ( भागः ) सेवन करने के योग्य है उन ( देवेभ्यः ) देवों के लिये ( पवस्व ) पवित्र हो ॥ १ ॥

भाषार्थ:—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—सब जीवों को याग्य है कि वेदों की रक्षा करने वाले नित्य पवित्र परमात्मा की जान और विद्वानों के संग से विद्या-दि उत्तम गुणों में निष्णात होकर सत्यवाणी के बोलने वाले हों ॥ १॥

मधुमतीरित्यस्य गोतम ऋषि: । सोमोदेवता । निचृदार्थापंकिरछन्द: । पंचम: स्वर: ॥

मनुष्य लोग परस्पर व्यवहार में कैसे वर्त्तें यह अगले मंत्र में कहा है ॥

मर्चुमती के इर्षस्कृष्टि यत्तें सो माद्यं भ्यक्षाम जार्गृष्टि तस्मैं ते
सो स सो माय स्वाहा स्वाहो कुन्ति रिक्षमन्वें मि ॥ २ ॥

पदार्थः -हे (सेाम) ऐइवर्य्यं युक्त विद्वन् ! आप (न;) हम लोगों के लिये (म-धुमती;) मधुरादिगुणसहित (इप;) अस आदि पदार्थों को (कृषि) की जिये तथा हे (सोम) शुभकमों में प्रेरणा करने वाले विद्यन् में (यत्) जिससे (ते) आप का (अदाश्यम्) अहिंसनीय अर्थात् रक्षा करने के योग्य (जागृवि) प्रसिद्ध (नाम) नाम है (तस्मै) उस (सामाय) ऐदवर्य की प्राप्ति और (ते) आप के लिये अर्थात् अप की आज्ञा वर्त्तने के लिये (स्वाहा) सत्यधार्म युक्त किया (स्वाहा) सत्य वाणी और (उक्) (अन्तरिक्षम्) अवकाश का (एमि) प्राप्त होता हूं || २ ||

भावार्थ:—मनुष्य जैसे अपने खुल के लिये अम्र जलादि पदार्थों को संपादन करें वैसे ही औरों के लिये भी दिया करें और जैसे के ई मनुष्य अपनी प्रशंसा करें वैसे ही औरों को आप भी किया करें जैसे विद्वान लोग अच्छे गुण व ले होते हैं वैसे आप भी हों ॥ २॥

स्वाञ्चत इत्यत्य गोतमऋ पि: | विद्वांसी देवता: । विराट्घाद्यी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ||

फिर अगले मंत्र में आत्मिकिया का निरूपण किया है।

स्वाङ्कृतोऽसिविद्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मर्न-स्त्वाष्टु स्वाहां त्वा सुभव सुरुर्धय देवेभ्यंस्त्वा मरीचियेभ्यो दे-बांश्<u>यो</u> यस्मै त्वे<u>डं तत्स</u>त्यस्परियुतां <u>भ</u>ङ्गनं <u>इत्</u>रोऽसी फड् प्राणा-यं त्वा व्यानायं त्वा ॥ १ ॥

पदार्थ:-हे (अंशो ) स्थ्यं के तुल्य प्रकाशमान ! जो तू ( दिखेश्य: ) दिव्य ( विहवेश्य: ) समस्त ( पार्थिव: ) पृथिवी पर प्रसिद्ध ( इन्द्रिथेश्य: ) इन्द्रियों और ( मरीविपेश्य: ) किरणों के समान पित्र करने व.लं ( देवेश्य: ) विद्वानों और वायु आदि
पदार्थों के लिथे ( स्वाङ्ह्त: ) स्वयं सिद्ध ( असि ) है उस ( त्वा ) तुझ को (मनः)
विद्वान और ( स्वाहा ) वेद वाणी ( अष्टु ) प्राप्त हों । हे (खुभव) श्रेष्ठ गुणवान होने
वाले में (सूर्य्याय) सर्व प्ररक चराचरातमा परमेश्वर के लिथे (त्वा ) तेरी (इडे) प्रशंसा करता हूं तू भी ( तत् ) उस प्रशंसा के योग्य ( सत्यम् ) सत्य परमातमा का प्रांति
से प्रहण कर ( उपरिप्रुता ) सब से उत्तम उत्कर्ष पाने हारे तूने ( भंगन ) मर्दन से
( असी ) यह अज्ञान कप शत्रु ( फट् ) झट ( हत: ) मारा उस ( त्वाम् ) तुझे ( प्राणाय ) जोवन के लिये प्रशंसित करता और ( व्यानाय ) विविध प्रकार के सुख प्राप्त
करने के लिये (त्वा ) तुझे प्रशंसा देता हूं || ३ ||

भाषार्थ-जीव आप ही स्वयं सिद्ध अनादिक्ष है इस से इन की चाहिये कि देह प्राण इन्द्रियों और अंत:करण को निर्मल धार्मयुक्त ज्यवहारों में प्रवृत्त हो कर परमेश्वर

की उपासना में स्थिर हो तथा पुरुषार्थ से दुष्टों को झट पट मार और भलों की रक्षा करके आनन्दित रहें || ३ ||

उपयामगृहीत इत्यस्य गोतमऋषि: । मघवा देवता । भाष्युं िष्णक् छन्द: । ऋषभ: स्वरः ॥

फिर मन से आत्मा के बीच में कैसे प्रयक्त करें यह उपदेश अगले मंत्र में किया है।।

<u>उपग्रामगृहीतोऽस्यन्तरपैच्छ मध्यन् प्राहि सोमंम्। उरु</u>ष्य राग्य

एषी यजस्य ॥ ४॥

पदार्थ:—है योग चाहने म.ले! जिल से तू (उपयामगृहीत:) योग में प्रवेश कर्म माले नियमों से प्रहण किये हुए के समान (असि) है इस कारण (अंत:) भी-तरले जो प्राणादि पवन मन और इन्द्रियां हैं इन की (यच्छ) नियम में रख। है (म-घवन्) परम पूजित धनों के समान! तू (सोमम्) योगविद्या सिद्ध ऐम्बर्च्य की (पाहि) रक्षा कर (उरुप्य) और जो अविद्या आदि होश हैं उन की अत्यन्त योग विद्या के बल से नष्ट कर जिस से (राय:) ऋद्धि और (इप:) इच्छा सिद्धियों की (आयजस्व) अच्छे प्रकार प्राप्त हो || ४ ||

भावार्थ:—इस मन्त्र में वासकतुत्तीय तलक्कार है—योग जिज्ञासु पुरुप को साहिये कि यम नियम आदि योग के अक्कों से चिन्त आदि अन्तः करण की वृत्तियों को रोक और अविद्यादि देखों का निवारण करके संयम से ऋदि सिद्धियों का सिद्ध करें ॥॥॥ अन्तस्त इत्यस्य गातम ऋषि:। ईश्वरें। देवता । आर्थीपङ्किण्छन्दः। पंचम: स्वरः। अव ईश्वर जें। योग में प्रथम ही प्रवृत्त होता है उस के लिये विज्ञान का उपदेश अगले मंत्र से करता है।।

अन्तस्ते चार्वापृथिकी दंत्राम्यन्तर्देषाम्युक्तेन्तरिचम् । सज्देवे भिरवेरैः परैश्चान्तर्यामे संघवन् मादयस्य ॥ ५ ॥

पदार्थ:-हे (मधवन्) थे।गी!में परमेश्वर (ते) तेरे (अंतः) हृदयाकाश में (धावा-पृथिवी) सूर्य्य भूमि के समान विज्ञानादि पदार्थीं का ( दधामि ) स्थापित करता हं तथा (उरु) विस्तृत (अंतरिक्षम्) अवकाश का (अंतः) शरीर के भीतर (द-धामि) धरता हूं (सजूः) मित्र के समान त् (देवेभ्यः) विद्वानों से विद्या का प्राप्त हो के (अवरैः) (परैः) (च) थे। इं वः वहुत थे।ग व्यवहारों से (अंतर्यामी)भी-तरले नियमों में वर्त्तमान होकर अन्य सब के। (मादयस्व) प्रसन्न किया कर ॥५॥ भावार्थ:—इस मंत्र में वाचकलुनोपमालङ्कार है—ईश्वर का यह उपदेश है कि

#### सप्तमोऽध्यायः ॥

श्रक्षाण्ड में जिस प्रकार के जितने पदार्थ हैं उसी प्रकार के उतने हों मेरे झान में वर्ष्तमान हैं। याग विद्या का नहीं जानने वाला उन का नहीं देख सकता और मेरी उपासना के विना काई थागी नहीं है। सकता है। ५।

स्वाङ्हते।सीत्यस्य गातम ऋषिः । थागी देवता । भुरिक् बिण्डुप् छन्दः । धेवतः स्वरः ।।

फिर ईश्वर थेल विद्या चाहने वाले के प्रति उपवेश करता है।।
स्वाङ्कृतांऽिम् विद्वेभय हन्द्रियंभयों दिव्येभ्यः पाथिवेभ्यो
मनंस्त्वाष्ट्र स्वाहां त्वा मुभव सूर्याय देवेभ्यंस्त्वा मरीच्वियेभ्यं
उद्यानायं त्वा ॥ ६॥

पदार्थ:—हे (सुभव) शेश्मन एश्वर्य युक्त योगी ! तू (स्थाङ्हतः) अनादि काल से स्वयं सिद्ध (असि) है मैं (दिन्धेस्यः) शुद्ध (विद्येस्यः) समस्त (देवेस्यः) प्रशस्त गुण और प्रशंसनीय पदार्थों स युक्त विद्वानों और (मर्गाचिपेस्यः) योग के प्रकाश से युक्त व्यवहारों से (त्वा) तुझ के। स्वीकार करता हूं (पार्थिवेस्यः) पृथिवी पर प्रसिद्ध पदार्थों के लिये भी (त्वा) तुझ के। स्वीकार करता हूं (सूर्य्याय) सूर्य्य के समान योग प्रकाश करने के लिये वा (उदानाय) उत्कृष्ट जीवन और बल के अर्थ (त्वाम्) तुझे प्रहण करता हूं जिस से (त्वा) तुझे योग चाहने वाले को (मनः) योग समाधि युक्त मन और (स्वाहा) सत्यानुष्ठान करने की किया (अष्टु) प्राप्त हो ॥ ६॥

भाषार्थ:—मनुष्य जब तक श्रेष्ठाचार करने वाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उस का स्वीकार नहीं करता जब तक जिस का ईश्वर स्वीकार नहीं करता है तब तक उसका पूरा २ आत्मबल नहीं हो सकता और जब तक आत्मबंल नहीं बढ़ता तब तक उस की अत्यंत सुख भी नहीं होता || ६ ||

आवाधाभूषेत्यस्य विसष्टऋषिः । वायुद्देवता । निचृञ्जगतो छन्दः । निषादः स्वरः ॥ फिर यागी का कृत्य अगले मंत्र में कहा है ॥

आवांचो भूष शुचिपा उपं नः सहस्रंन्ते नियुतो विद्ववार । उपो ने अन्धो मर्चमयासि यस्यं देव दिखे पूर्विपेयं वायवें त्वा ॥ ७॥

पदार्थः —हे (शुचिपाः) अत्यन्त शुद्धता को पालने और ( वायेा ) पवन के तु-ह्य योग कियाओं में प्रवृत्त होने वाले यागी ! त् ( सहस्रम् ) हजारों ( नियुतः ) निश्चित शमादिक गुणों को (आभूष) सब प्रकार खुभूषित कर ! हे (विश्ववार) समस्त गुणों के स्वीकार करने वाले ! जो (ते ) तेरा (मद्यम्) अच्छी तृप्ति देने वाला (अग्धः) अस है उस को (उपो) तेरे समीप (अयामि) पहुंचाता हूं ! हे (देव) योग बल से आत्मा को प्रकाश करने वाले ! (यस्य) जिस तेरा (पूर्वपेयम्) श्रेष्ठ योगियों को रक्षा करने के योग्य योग बल है जिस को तू (दिधपे) धारण कर रहा है (वायवे) उस योग के जानने के लिये (त्था) नुझे स्वीकार करता हूं ॥ ७॥

भाषार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुत्तोषमाळङ्कार है—जो योगी प्राण के तुल्य सब को भूषित करता ईश्वर के तुल्य अच्छे २ गुणों में व्याप्त होता है और अक वा जल के स- हश शुख देता है वहीं योग के वीच में समर्थ होता है ॥ ७॥

इन्द्रवायृहत्यस्य मधुच्छन्दाऋधिः । इन्द्रा वाय् देवते । इन्द्रवाय् इत्यस्यार्षागायत्री छन्दः । उपयामगृहीत इत्यस्यार्धी स्वगाड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥ फिर वह योगी कैसा होता है यह अगले मण्त्र में कहा है ॥

इन्द्रंबाय् इमे सुना उपप्रयोधिरागंतम् । इन्द्रंबो बामुशन्ति हि । उपग्रामगृहीतोऽसि वायर्थं इन्द्रवायुभ्यान्त्वैष ने योनिः स

## जोषीभ्यां त्वा ॥ ८॥

पदार्थ:—हं (इन्द्रवायू) प्राण और सूर्य्य के समान योगशास्त्र के पढ़ने पढ़ाने वालो (हि) जिस से (इमे) (स्ता:) ये उत्पन्न हुए (इन्द्रव:) सुक्षकारक जलादि पदार्थ (वाम्) तुम दोनों को (उशन्ति) प्राप्त होते हैं इस से तुम (प्रयोभिः) इन मनोहर पदार्थों के साथ ही (आगतम्) अपना आगमन जानो । भो योग चाहने वाले तू इस योग पढ़ाने वाले अध्यापक से (वायवे) पद्यन के तुल्य योगसिद्ध को पाने के लिये अथवा योगबल से चराचर के ज्ञान की प्राप्ति के लिये (उपयामगृहोतः) योग के यम नियमों के साथ स्वीकार किया गया (असि) है हं भगवन ! योगाध्यापक (एपः) यह लोग (ते) तुम्हारा (योनिः) सब दु:खों के निवारण करने वाले घर के समान है और (इन्द्रवायुभ्याम्) बिजुली और प्राणवायु के समान योगवृद्धि और समाधि चढ़ाने और उत्तारने की शक्तियों से (ज्ञुएम्) प्रसन्न हुए (त्या) आपको और हे योग चाहने वाले (सजोषोभ्याम्) सेवन किये हुए उक्त गुणों से प्रसन्न हुए (त्या) तुझे में अपने सुख के लिये चाहता हूं ॥ ८ ॥

भावार्थ:—वे ही लोगापूर्ण योगी और सिद्ध हो सकते हैं जो कि योगविद्याभ्यास करके ईश्वर से लेके पृथिवी पर्व्यक्त पदार्थों को साक्षात् करने का यस किया करने और यम नियम आदि साधनों से युक्त योग में रम रहे हैं और जो इन सिक्कों का सेवन करते हैं वे भी इस योगिसिक्कि को प्राप्त होते हैं अन्य नहीं || ८ ||

भयंवामित्यस्य गुत्समदऋषिः । मित्रावरुणी देवते । आर्षा गायत्री छन्दः । उपयासगृहीतोसीत्यस्यासुरी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर अध्यापक और शिष्य का कर्म अगले मन्त्र में कहा है।

अयं विस्मित्रावरणा सुतः सोमे ऋतावृधा । समेदिह श्रुंत्धः हवंस् । उपयामगृहीतोऽसि मित्रावर्धगाभ्यां त्वा ॥ ९ ॥

पदार्थ:—हे (मित्रावरणा) प्राण और उदान के समान वर्तमान (ऋताषुधा) सत्य विद्वान वर्डक योग विद्या के पढ़ने पढ़ाने वालो (क्ष्म्) तुम्हारा (अयम्) यह (सोमः) योग का पेश्वर्ध्य (सुतः) सिद्ध किया हुआ है उस से तुम (इह) यहां (मम) योगविद्या से प्रसन्ध होने वाले मेरी (हवम्) स्तुति को (श्रुतम्) सुनो, हे यजमान! जिस में तू (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों के साथ स्वीकार किया हुआ (इत्) हो (असि) है इस से मैं (भित्रावरणाभ्याम्) प्राण और उदान के साथ वर्तमान (खा) तुझ को प्रहण करता हूं॥ १॥

भाषार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलुतोयमालङ्कार है—मनुष्यों को उचित है कि इस योग विद्या का प्रहण श्रेष्ठ पुरुषों का उपदेश जुन और यर्शनयमाँ को धारण कर के योगाभ्यास के साथ अपना वर्त्ताव रक्ष्यें ॥ ३॥

रायाचयमित्यस्य त्रिसदस्युऋंपि:। मित्रःवरुणं देवते। ब्राह्मा बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी योग पढ़ने पढ़ाने वालों के इत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।
गाधा खपर्थ संस्वा रसी मदेम हुन्धेन देवा यर्थसेन गार्थः।
नान्धेनुस्मित्रावरुणा धुवन्नो खिरुवाहां धन्तमनंपस्फुरन्ती मेषते योनिकित्य युभ्यांन्त्वा ॥ १० ॥

पदार्थ:—है (ससवांस:) मले बुरे के अलग २ करने वाले ( देवा: ) विद्वानो ! आप और (वयम्) हम लेगा (यवसेन) तृण घास भूसा से (गाव:) गौ आदि पशुओं के समान (हल्लेन) प्रहण करने के थेग्य (राया) धन से ( मदेम ) हर्षित हों। और है (मित्रावरुणा) प्राण के समान उत्तम जने।! (युवम् ) तुम देग्नों ( नः ) हमारे लिये (विद्वाहा) सब दिनों में (अनपस्फुरंतीम्) टांक २ ज्ञान देने वाली (धेनुम्) वाणी को (धत्म्) धारण की जिथे। हे यजमान ! जिस से (ते) तेरा (एष:) यह विद्यावाध (थेगिन:) घर है इस से (ऋतायुभ्याम्) सत्य व्यवहार चाहने वालों के सहित (रवा) तुझ के। हम लेगा स्वीकार करते हैं ॥ १०॥

भाषार्थ:—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुक्षोपमालक्कार हैं—मनुष्पों को चाहि-ये कि अपने पुरुषार्थ और विद्वानों के सङ्ग से परोपकार को सिद्धि और कामना को पूर्ण करने वाली वेद वाणी को प्राप्त हो कर आनन्द में रहें || १० ||

याव। द्वशेत्यस्य मेघातिथिऋषि:। अदिवनी देवते । ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः। क्रथम: स्वर:॥

फिर भी इन योगविद्या पढ़ने पढ़ाने वालों के करने योग्य काम का उपदेश अगले मंत्र में किया है।

या <u>बाङ्कशा मधुंम</u>त्यिद्देवना सूत्रतीवती । तथी <u>य</u>ञ्चिमिमि-चतम् । <u>उपया</u>मगृहीतोऽस्यदिवभयांन्त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्या-न्तवा ॥ ११ ॥

पदार्थ:—है (अदिवनी) सूर्य्य और चन्द्र के तुल्य प्रकाशित योग के पढ़ने पढ़ाने वालो (या) जो (वाम्) तुम्हारी (मधुमती) प्रशंसनीय मधुरगुण युक्त (सुनृताव-ती) प्रभात समय में कम २ से प्रदीप्त होने वाली उपा के समान (कशा) वाणी है (तया) उस से (यक्क्म्म्) ईद्रवर से सङ्क कराने हारे योगक्षणी यहां को (मिमिक्षत-म्) सिद्ध करना चाहों हे योग पढ़ने वाले तू (उपयामगृहीत:) यमनियमादिकों से स्वीकार किया गया (असि) है (ते) तेरा (एप:) यह योग (योनि:) घर के समान सुखदायक है इस से (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के योगोचित नियमों के साथ वर्त्तमान (त्वा) तुझ और हे योगाध्यापक ! (माध्वीभ्याम्) माधुर्व्य लिए जो श्रेष्ठ नीति और योग रौति हैं उन के साथ वर्त्तमान (त्वा) आप का हम लोग आ-श्रय करते हैं अर्थात् समीपस्थ होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ:— इस मन्त्र में उपमालक्कार है—योगी लोग मधुर प्यारी काणी से योग सीखने वालों को उपदेश करें और अपना सर्वस्व योग ही को जानें तथा अन्य मनुष्य वैसे योगी का सदा आश्रय किया करें ॥ ११ ॥

तं प्रक्रथेत्यस्य कत्सारः काइयप ऋषिः । विद्वेदेवा देवताः । निचृदार्षा जगती छन्दः । निषादः स्वरः । उपयामगृहीत इत्यस्य पङ्किण्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में योगों के गुणों का उपदेश किया है।। तं प्रत्नथां पूर्वथां विद्ववधेमथां उग्रेष्ठतांति वर्हिषदं १ स्वर्विदंम्। प्रतीचीनस्वृजनेन्दोहसे धुनिमाशुं जर्यन्तमनु वासु वर्धसे । उप यामगृहीतोऽसि शण्डांच त्वेष ते योनिर्चीरतां पास्रपंसृष्टुः श-ण्डों देवास्त्वां शुक्रपाः प्रणेयन्त्वनांष्ट्रष्टासि ॥ १२ ॥

पदार्थ:—हे योगिन ! आप ( उपयामगृहीत: ) योग के अंगां अर्थात् शीच आदि नियमों के ब्रहण करने वाले ( असि ) हैं ( ते ) आप का ( एष: ) यह योगयुक्त स्वभाव ( योनि: ) सुख का हेतु हैं । योग से आप ( अपमृष्ट: ) अविद्यादि दोषों से अलग हुए ( श॰ड: ) शमादि गुण युक्त ( असि ) हैं ( यासु ) जिन योगिकायओं में आप ( वर्स्स ) वृद्धि को प्राप्त होते हैं और ( विद्वधा ) समस्त ( प्रक्षधा ) प्राचीन महर्षि (पूर्चधा ) पूर्व काल के योगी और ( इमधा ) वर्त्तमान योगियों के समान ( ज्येष्ठतातिम् ) अत्यन्त प्रशंसनीय ( वर्हिपदम् ) हृदयाकाश में स्थिर ( स्वर्विदम् ) सुख लाम करने ( प्रतीचीनम् ) अविद्यादि दोषों से प्रतिकृत्ल होने ( आशुम् ) शीघ्र सिद्धि देने ( उद्यन्तम् ) उत्कर्प पहुंचाने और ( घुनिम् ) इन्द्रियों को कम्पाने वाले ( वृज्जनम् ) योगवल को ( दोहसे ) परिपूर्ण करते हैं उस योगवल को ( शुक्रपा: ) जो कि योगवल की रक्षा करने हारे ( देवा: ) योगवल के प्रकाश से प्रकाशित योगी लोग हैं वे ( त्वा ) आप को ( प्रणयन्तु ) अच्छे प्रकार पहुंचायें । उस योगवल को प्राप्त हुए ( शंडाय ) शमदमादिगुणयुक्त आप के लिये उसी योग की ( अनाधृष्टा ) इर्द्वारता ( असि ) हो आप उस ( वौरताम् ) वौरता की ( पाहि ) रक्षा कीजिये ( अनु ) वह रक्षा को प्राप्त हुई वौरता ( त्वा ) आप को पाले ॥ १२ ॥

भाषार्थ:—इस मंत्र में उपमालङ्कार है—हे योगिवचा की इच्छा करने वाले जैसे शमदमादिगुणयुक्त पुरुप योगबल से विद्याबल की उन्नति कर सकता है वहीं अविद्या-रूपी अंधकार का विश्वंस करने वाली योगिवचा सज्जनों को प्राप्त होकर जैसे य-थोचित सुख देती है बैसे आप को दे। १२।

सुवीर इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विद्वेदेवा देवताः । निचृदार्पात्रिष्टु-प्छन्दः । धैवतः स्वरः । शुक्रस्येत्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः । पड्जः स्वरः ।।

उक्त योग का अनुष्ठान करने वाला योगी कैसा होता है यह उपदेश अगले अन्त्र में किया है ॥

सुवीरों <u>वीरान् प्रंजनय</u>न् परी<u>ष्य</u>िम ग्रायस्पोषेण यर्जमानम् । सं ज्ञग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशौचिषा निर्रस्तः शण्डः शुक्रस्पांष्ठिष्ठानंमसि ॥ १३ ॥ पदार्थः — हे योगिन् ! (सुवीरः ) श्रेष्ठ वीर के समान योगबल को प्राप्त हुए आप (वीरान्) अच्छे २ गुणयुक्त पुरुषों को (प्रजनयन्) प्रसिद्ध करते हुए (परीहि) सब जगह ग्रमण कोजिये इसी प्रकार (यजमानम्) धन आदि पदार्थों को देने वाले उत्तम पुरुषों के (अभि) सन्मुख (रायः) धन को (पोषेण) पृष्टि से (संजन्मानः) सक्कत हूजिये। और आप (दिवा) सूर्व्य और (पृथिव्या) पृथिवी के गुणों के साथ (शुक्तः) अति बलवान् (शुक्तशोचिपा) सब को शोधने वाले सूर्व्य की दीप्ति से (निर-स्तः) अन्धकार के समान पृथक हुए ही योगबल के प्रकाश से विषय वासना से छूटे हुए (शण्डः) शमदमादि गुणयुक्त (शुक्रस्य) अयंत योगबल के (अधिष्ठानम्) आधार (असि) हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ:—शमदमादि गुणों का आधार योगाभ्यास में तत्पर,योगी जन,अपनी ये।-गविद्या के प्रचार से ये।गविद्या चाहने वालों का आत्मबल बढ़ाता हुआ सब जगह सृर्थ्य के समान प्रकाशित होता है ॥ १३॥

अच्छिन्नस्य त इत्यस्य वत्सार: काङ्यप ऋषिः। विद्वेदेवा देवताः। स्वराड् जगती छन्दः। निपादः स्वर:॥

अब शिष्य के पढ़ाने की युक्ति अगले मंत्र में कही है '।।

अच्छित्रस्यते देव स्रोम सुवीर्यस्य रायस्पोषंस्य दद्वितारेः स्याम । सा प्रथमा संस्कृतिर्विद्ववारा स प्रथमो बर्रणो मित्रो

आक्रिः॥ १४॥

पदार्थ:—हे (देव) योगविद्या चांहने वाले (सोम) प्रशंसनीय गुणयुक्त शिष्य! हम अध्यापक लोग (ते) तेरे लियं ( सुचीय्यंस्य ) जिस पदार्थ से शुद्ध पराक्रम बढ़े उस के समान ( अच्छिकस्य ) अखण्ड ( रायः ) योगिविद्या से उत्पन्न हुए धन की (पोपस्य ) इढ़ पृष्टि के (दिततार: ) देने वाले (स्थाम ) हीं जो यह (प्रथमा ) पिहली (विद्ववारा ) सब ही सुझों के स्वीकार कराने योग्य (संस्कृतिः ) विद्यासुशिक्षा जित नीति है (सा) वह तेरे लिये इस जगत् में सुखदायक हो और हम लोगों में जो (वहण: ) श्रेष्ठ ( अग्निः ) अग्नि के समान सब विद्याओं से प्रकाशित अध्यापक है (स:) वह (प्रथम ) सब से प्रथम तेरा (मित्रः ) मित्र हो ॥ १४ ॥

भाषार्थ:—इस मंत्र में उपमालंकार है। योगविद्या में संपन्न शुद्धचित्त युक्त योगियों को येग्य है कि जिज्ञासुओं के लिये नित्य योग और विद्यादान देकर उन्हें शार्रारिक और आत्मबल से युक्त किया करें 11 १४ 11

स प्रथम इत्यस्य वतसार: काञ्चप ऋषि: । विश्वेदेवा देवता: । निचृद्बाधाचनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब स्वामी और सेवक के कर्म को अगले मंत्र में कहा है ॥

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वांस्तस्मा इन्द्रांच सुतमा र्जुहोत् स्वाहां। तृस्पन्तु होन्ना मध्वो चाः स्विष्टाचाः सुपीताः सुहृता चस्वाहा चांहुग्नीत् ॥ १५॥

पदार्थः है शिष्यो ! तुम लोग जैसे वह पूर्व मंत्र से प्रतिपादित ( प्रथम: ) आदि
मित्र ( चिकित्वान् ) विज्ञानवान् (बृहस्पति:) सब विद्या युक्त वाणी का पालने वाला
जिस पेइवर्य्य के लिये प्रयक्त करता है बैसे ( तस्मे ) उस ( इन्द्राय ) पेइवर्य्य के लिये ( स्वाहा ) सत्य वाणी और ( सुतम् ) निष्पादित श्रे ष्ठव्यवहार का ( आजुहोत ) अच्छे प्रकार प्रहण करो और जैसे (यत्) जो (होत्रा:) योग स्वीकार करने के योग्य वा
(या:) जो (मध्व:) माधुर्य्यादिगुणयुक्त (स्विष्टा:) जिन से कि अच्छे २ इष्ट काम बनते हैं (या:)
वाजो ऐसी हैं कि (सुहुता:) जिनसं अच्छे प्रकार हवन आदि कर्मी सिद्धहोते हैं ( सुप्री-ता:) और अच्छेप्रकार प्रसक्त रहती हैं वे विद्वान् स्त्रीजन (अग्नीत्) वा काई अच्छो प्रेरणा का
प्राप्त हुआ विद्वान् योगी ( स्वाहा) सत्यवाणी से (अयाट्) सभी को संस्कृत करता और तृप्त
रहता है आप लोग उन स्त्रियों और उस योगी के समान (तृप्यन्तु) तृप्त हुजिये ॥१५॥

भावार्य:—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे योगी विद्वान और योगिन नी विद्वानों की स्त्रीजन परमेश्वर्य्य के लिये यत्र करें और जैसे से वक अपने स्वामी का से वन करता है वैसे अन्य पुरुषों को भी उचित है कि उन २ कामों में प्रवृत्त हो- कर अपनी अभीष्ट सिद्धि को पहुंचे ॥ १५॥

अय' वेन इत्यस्य बत्सार; काश्यप ऋषि: । विश्वेदेवा देवता: । आदास्य निचृदार्षी त्रिष्टुण्डन्द: । धेवत: स्वर: ॥ अब सभाष्यक्ष राजा के। क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले भंत्र में किया है ॥

अवं चेनश्चोद्यस्पृद्दिनगर्भाः उउपोतिर्जरायू रर्जसो चिमाने । इममुपार संङ्क्षमे सूर्यस्य शिशुन्न विमां मृतिनीरिहंति । <u>उपया</u>-मगृहीतोऽसि मकीय त्वा ॥ १६॥

पदार्थ:—हे शिल्पविधि के जानने वाले सभाध्यक्ष विद्वन् ! आप (डपवामगृहीतः) सेना आदि राज्य के अंगों से युक्त (असि ) हैं इस से मैं (रजस: ) लोकों के मध्य (पृश्चिगर्भा:) जिन में अवकाश अधिक है उन लोगों के (ज्योतिर्जंशयु:) तारागणों की ढांपने जाले के समान (अयम्) यह (वेन:) अति मनोहर चंद्रमा ( चोदयत् ) वधायोग्य अपने २ मार्ग में अभियुक्त करता है (इमम्) इस चंद्रमा को (अपाम्) सलों और (स्व्यंस्य) स्व्यं के (संगमे) संबन्धी आकर्षणादि विषयों में (शिश्रुम्) शिक्षा के थेग्य बालक को (मितिमि:) विद्वान् लेगा अपनी बुद्धियों से (रिहंति) सत्कार करके (न) समान आदर के साथ प्रहण कर रहे हैं और में (मर्काय) दुर्धों को शांत करने और श्रेष्ठ ब्यवहारों के स्थापन करने के लिये (विमाने) अनन्त अन्तरिक्ष में (रवा) तुझे विविध प्रकार के यान बनाने के लिये स्वीकार करता हूं ॥ १६॥

आवार्थ:—सभाष्यक्ष की चाहिये कि सूर्य्य और चंद्रमा के समाने श्रेष्ठ गुणों की प्रकाशित और दुष्ट व्यवहारों की शांत करके श्रेष्ठ व्यवहार से सज्जन पुरुषों की आ- व्हाद देवे ॥ १६॥

मना न येष्वित्यस्य बन्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । स्वराड् ब्राह्मो त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ फिर भी उसी विषय को अगले मंत्र कहा है ॥

मनो न येषु हर्वनेषु निग्मं विषः शक्यां वनुषो द्ववंनता। आ यः शब्योमि स्तुविनृम्णोअस्यार्श्वाणीतादिशक्तभंस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाश्चपंसृष्टो मकौ देवास्त्वां मान्धियाः प्रणेष्टन्त्वनां पृष्ठा-सि ॥ १७॥

पदार्थ:-हे शिल्पविद्या में चतुर सभापते ! (एप:) यह राजधर्म (ते) तेरा (योनि:) सुख पूर्वंक स्थिरता का स्थान है जैसे तू (य:) जो (तुविनृम्ण:) अत्यन्त धनयुक प्रजा का पालने वाला वा (विप:) बुद्धिमान् प्रजाजन ये तुम दोनों ( येषु ) जिन हवनादि कम्मों में (शर्य्याभि:) वेगों से (तिग्मम्) वज्र के तुल्य अतिहद (मन:) मन के (न) समान बेग से (द्रवन्ती) चलते हुए (शच्या) बुद्धि के साथ (आव-जुथ:) परस्पर कामना करते हो वैसे प्रत्येक प्रजा पुरुष ( अस्य ) इस प्रजापित का (गमस्ती) अंगुली निवंश से (आदिशम्) सब दिशाओं में तेज जैसे हो बैसे शत्रुओं को (भा, अश्रोणीत) अच्छे प्रकार दुःख दिया करे (मर्कः) मरण के तुल्य दुख देने और कुढक चाळचलन रखने वाला शत्रु (अपमृष्टः) दूर हो और तू (प्रजाः) प्रजा का (पाहि) पालन कर (मंधिपाः) शत्रुओं को मंथने वाले वोरों के रक्षक (देवाः) विद्यान लोग ( स्वा ) तुझे ( प्र, नयतु ) प्रसक्ष करें। हे प्रजा जने। तुम जिस से

#### सप्तमोऽध्यायः ॥

( अनाधृष्टा ) ( असि ) प्रगत्म निर्भय और स्थाधीन ( असि ) हो उस राजा को रहा किय करो ॥ १७ ॥

भावार्थः-प्रजा पुरुष राज्य कर्मों में जिस राजा का आश्रय करें वह उन की रक्षा करें और वे प्रजाजन उस न्यायाधीश के प्रति अपने अभिप्राय को शक्का समाधान के साथ कहें राजा के नोकर चाकर भी न्यायकर्मी ही से प्रजाजनों को रक्षा करें ॥१७॥

सुप्रजा इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । प्रजापतित्रंवता । निवृत् विष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । मन्धिनोधिष्टार्नामत्यस्य प्राजापत्या गायको छन्दः । षड्जः स्वरः ॥ न्यायाधीश को प्रजाजनों के प्रति कैसे वर्त्तना चाहिरे यह अगळे मन्त्र में कहा है ।

सुप्रजाः प्रजाः प्रजानपुन् परीश्विभ र्वास्पं विष् वर्जमानम् । संजग्मानो दिवा पृथिन्या मन्धी मन्धिशोविषा निर्म्तो मकौ मन्धिनोऽधिष्ठानंमसि ॥ १८॥

पदार्थः—भो न्यायाधीश (सुप्रजा:) उत्तम प्रजायुक्त आप! (प्रजा:) प्रजाजनों को (प्रजनयन्) प्रकट करते हुए (राय:) धन की (पोषण) हदना के साथ (यजमानम्) यक्कादि अच्छे कामों फं करने वाले पुरुष को (अभि) (परि) (इहि) सर्धथा धन को वृद्धि से युक्त की जिथे (मन्थी) वादिववाद के मंथन करने और (दिक्रा) सूर्य्य वा (पृथिव्या) पृथिवी के (संजन्मान:) तुस्य धीरतादि गुणों में व-र्षाने वाले आप (मन्थिन:) सदसहिवेचन करने योग्य गुणों के (अधिष्ठानम्) आधार के समान (असि) हो इस कारण तुक्कारी (मन्थिशोचिषा) सूर्य्य की दीप्ति के समान न्यायदीति से (मर्क्षः) मृत्यु देने वाला अन्यायी (निरस्तः) निवृत्त होवे ॥१८॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—न्यायधीश राजा को चाहिये कि धर्म से यज्ञ करने वाले सत्पुरुप पुरोहित के समान प्रजा का निर्गतर पालन करे ॥१८॥ ये देवास इत्यस्य बत्सार: काइयप ऋषि:। विद्वेदेवा देवता:। भुरिगार्षी पर्छाक्तइछन्दः। धैवतः स्वर:॥

अब राजा और समासदों के काम अगले मंत्र में कहे हैं।।
ये देवासो दिव्येकांद्या स्थ पृथिव्यामध्येकांद्या स्थ । अप्सुक्षितों महिनैकांद्या स्थ ते देवासो यज्ञासिमं जीवध्वम् ॥ १९॥

पदार्थ:—(ये) जो (महिना) अपनी महिमा से (दिनि) नियुत् के स्वरूप में (एकादश) ग्यारह अर्थात् प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म, इक्ट, देवदस्त, धनक्रजय और जीवातमा (देवास:) दिव्यगुणयुक्त देव (स्थ) हैं (वृधिक्याम्) मूमि के (अधि) ऊपर (पकावश) ग्यारह अर्थात् पृथिकी, जल, अ-ग्नि, पवन, आकाश, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अहङ्कार, महत्तत्व और प्रकृति (स्थ) है तथा (अप्तुक्षितः) प्राणों में ठहरने वाले (पकादश) ग्यारह श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिक्का, नासिका, वाणी, हाथ, पांव, गुदा, लिंग और मन (स्थ) हैं (ते) वे जैसे अपने २ कामों में वर्त्तमान हैं वैसे हे (देवासः) राजसभा के सभासदो! आप लोग यथायोग्य अपने २ कामों में वर्त्तमान हो कर (इमम्) इस (यक्कम्) राज और प्रजा सम्बन्धी व्यवहार का (ज्ञुषध्वम्) सेवन किया करें ॥ १९॥

भावार्थः--इस मंत्र में वाचकजुत्तोपमा मलङ्कार है -- जैसे अपने २ कामों में प्रवृत्त हुए अन्तरिक्षादिकों में सब पदार्थ हैं बैसे राजसभासदों को चाहिये कि अपने २ न्या-यमार्ग में प्रवृत्त रहें ॥ १९ ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। यज्ञो देवता । निष्वृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सब राजा और विद्वानों के उपदेश को रीति अगले मन्त्र में कही है।।

<u>खप्यामगृं</u>हीतोऽस्याग्र<u>यणोऽसि</u> स्वाग्रयसः। पाहि यज्ञं पाहि

<u>ख</u>ज्ञपंतिं विष्णुस्त्वामिं निद्रयेणं पानु विष्णुन्त्वम् पंद्यिभ सर्वन

पदार्थ:—हे समापते राजन वा उपदेश करने वाले! जिस कारण आप ( उपया-मगृहीत: ) विनय आदि राजगुणों वा येदादि शास्त्र बोध से युक्त ( असि ) हैं इस से ( यक्कम् ) राजा और प्रजा की प्रालना कराने हारे यक्क को ( पाढि ) पालो और (स्वा-प्रयण: ) जैसे उत्तम विज्ञान युक्त कमों को पहुंचाने वाले होते हैं यसे ( आप्रयण: ) उत्तम विचार युक्त कम्मों को प्राप्त होने वाले हुजिये इस से ( यक्कपतिम् ) यथावत् न्याय की रक्षा करने वाले को ( पाहि ) पालो यह ( विष्णु ) जो सहस्त अच्छे गुण और कम्मों को ठीक २ जानने वाला विद्वान है यह ( इन्द्रियेण) मन और धन से ( त्वां ) तुझे ( पातु ) पाले और तुम उस ( विष्णुम् ) विद्वान को ( पाहि ) रक्षा करो ( सव-नामि ) ऐश्वर्ख देने वाले कार्मों की ( अमि ) सब प्रकार से ( पाहि ) रक्षा करो।। २०।।

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलुत्तोपमालङ्कार है—राजा और विद्वानों को योग्य है कि वे निरन्तर राज्य की उन्निति किया करें क्योंकि राज्य की उन्निति के विना वि-द्वान लोग सावधानी से विद्या का प्रचार और उपदेश भी नहीं कर सकते और न विद्वानों के सङ्ग और उपदेश के विना कोई राज्य की रक्षा करने के योग्य होता है तथा राजा प्रजा और उसम विद्वानों की परस्पर प्रीति के विना पेश्वर्थ की उसित और पेश्वर्थ की उसित के विना आनन्द मो निरन्तर नहीं हो सकता || २० || सोम: पनत इत्यस्य वत्सार: कास्यप ऋषि: । सोमो देवता । स्वराह ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द: । धेवत: स्वर: । प्यत इत्यस्य याजुषी जगती छन्द: । निपाद: स्वर: || अब राजों का कर्मा अगले मन्त्र में कहा है ।।

सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राणास्मै सुंन्यते पर्जमानाय पवत हुष कुर्जी पंचतेऽद्भ्य ओषंधीभ्यः पवते द्यावां-पृथिवीभ्यांम्पवते सुभूतायं पवते विद्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यं पृष् ते यो-निर्विद्वेभयस्वा देवेभ्यः॥ २१॥

पदार्थ:— हे विद्वान् लोगो! जैसे यह (सोम:) सोम्यगुण सम्पन्न राजा (अस्मै) इस (अद्योग) परमेश्वर वा वेद को जानने के लिये (पवते) पवित्र होता है (अस्मै) इस (अत्राय) क्षित्रयधम्म के लिये (पवते) ज्ञानवान् होता है (अस्मै) इस (अत्राय) क्षित्रयधम्म के लिये (पवते) ज्ञानवान् होता है (अस्मै) इस (अन्वते) समस्तविधा के सिद्धान्त को निष्पादन (यजमानाय) और उत्तम सङ्ग करने हारे विद्वान् के लिये (पवते) निर्मल होता है (इपे) अन्न के गुण और (जज्जे) पराक्रम के लिये (पवते) शुद्ध होता है (अद्भ्यः) जल और प्राण वा (ओपधीभ्यः) सोम आदि ओपधियों को (पवते) जानता है (धावार्श्वविध्याम्) सूर्य्य और पृथिन्द्री के लिये (पवते) शुद्ध होता है (अभूताय) अच्छे व्यवहार के लिये (पवते) बुरे कामों से बचता है। बैसे (सोम:) सभाजन और प्रजाजन भी सब को यथोक्त जाने माने और आप भी बैसा पवित्र रहे। हे राजन् सभ्यजन वा प्रजाजन जिस (ते) आप का (पवः) यह राजधम्म (योनः) घर है उस (वा) आप को (विद्वेभ्यः) समस्त (वेवेभ्यः) विद्वानों के लिये तथा (त्वा) आप को (विद्वेभ्यः) सम्पूर्ण दिव्यगुणों के लिये हम लेगा स्वीकार करते हैं ॥ २१॥

भाषाथं:—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालक्कार है— जैसे चन्द्रलेक सब जगत् के लिये हितकारी होता है और जैसे राजा सभा के जन और प्रजाजनों के साथ उन के उपकार के लिये धर्मों के अनुकूल व्यवहार का आचरण करता है वैसे ही सभ्यपुरुष भीर प्रजाजन राजा के साथ वर्त जो उत्तम व्यवहार गुण और कर्मों का अनुष्ठान करने बाला होता है वही राजा और सभापुरुष न्यायकारी हो सकता है तथा जो धन्मितम जन है वही प्रजा में अग्रगण्य समझा जाता है। इस प्रकार ये तीनों परस्पर प्रीति के साथ पुरुषार्थ से विद्या आदि गुण और पृथिवी आदि पदार्थों से अखिल सु- को प्राप्त हो सकते हैं ॥ २१ ॥

डपयामगृहीतोसीत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः । ब्राह्मी त्रिष्टुप्छम्दः । धैवतः स्वरः ॥

भव केसे मनुष्य को सेनापति करे यह बगले मन्त्र में कहा है ॥

<u>जप्यामगृंही तो उसी नद्रांच त्वा बृहद्वंते वर्यस्वत जक्याव्यं</u> गृह्यामि । यत्तं इन्द्र बृहद्वयस्तस्में त्वा विष्णंवे त्वेष ते यो निकुक्थेक्यंस्त्वा देवे क्यंस्त्वा दे<u>वाव्यं</u> गृह्यामि यक्तस्यायुंचे गृह्यामि ॥ २२ ॥

पदार्थ:—हे (इन्द्र) सेनापित ! तू (उपयामगृहीत:) अच्छे नियमों से विद्या को पढ़ने वाला (असि) है इस हेतु से (इह्द्यते) जिस के अच्छे बड़े २ कम्म हैं (वय-स्वते) मौर जिस की वीर्य आयु है उस (इन्द्राय) परमैदवर्ळ वाले सभापित के लिये (उक्थाव्यम्) प्रशंसनीय स्तोत्र वा विशेष शस्त्र विद्याव:ले (त्वा) तेरा (गृहणा-मि) ग्रहण जैसे में करता हूं येसे (यत्) जो (ते) तेरा (इहत्) अत्यन्त (वय:) जीवन है (तस्मै) उस के पालन करने के अर्थ और (विष्णवे) ईश्वर ज्ञान वा बे-द्वान के लिये (त्वा) तुझे (गृहणामि) स्वीकार करता हूं और (एप:) यह सेना का अधिकार (ते) तेरा (योनि:) स्थित होने के लिये स्थान है। हे सेनापित! (उक्थेय:) प्रशंसा योग्य वेदोक्त कमों के लिये (त्वा) तुझे (देवेभ्य:) और विद्वानों वा विव्यगुणों के लिये (देवाव्यम्) उन के पालन करने वाले (त्वा) तुझ को (यन्त्वस्य) राज्यपालन।दि व्यवहार के (आयुपे) बढ़ाने के लिये (गृहणामि) ग्रहण करता हूं || २२ ||

भाषार्थ:—सब विद्याओं के जानने वाले विद्वान की योग्य है कि राज्य व्यवहार में सेना के वीर पुरुषों की रक्षा करने के लिये अच्छी शिक्षायुक्त, शस्त्र और अस्त्र वि-द्या में परम प्रवीण यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले वीर पुरुष की सेनापित के काम में युक्त करे और सभापित तथा सेनापित को चाहिये कि परस्पर सम्मित कर के राज्य और यज्ञ को बढ़ावें ॥ २२ ॥

मित्राषरणाभ्यान्त्वेत्यस्य कत्तारः काश्यपं ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । मित्राषर-णाभ्यामित्यस्यानुष्टुप्, इन्द्राम्निभ्यामित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप्, इन्द्राषरणा-भ्यामित्यस्य स्वराद् साम्यनुष्टुप् छन्दांसि । गान्धारः स्वरः । इन्द्राष्ट्-इस्पतिभ्यानित्यस्य सुरिगार्चा गायत्री छन्दः । षज्जः स्वरः । इन्द्राषिण्युभ्यामित्यस्य सुरिक् साम्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरक्त्व ॥ सब विद्याओं में प्रवीण पुरुष को सभा का अधिकारी करे यह अगुळे मन्त्र में कहा है।

मित्रावर्षणाभ्यां स्वा देवाव्यं ग्रह्मस्यार्थंषे गृह्णामीन्द्रांय स्वा देवाव्यं ग्रह्मस्यार्थंषे गृह्णामीन्द्रायिनभ्यान्त्वा देवाव्यं ग्रह्मस्यार्थंषे गृह्णामीन्द्रावृद्धं ग्रह्मस्यार्थंषे गृह्णामीन्द्रावृद्धं ग्रह्मस्यार्थंषे गृह्णामीन्द्रावृद्धं स्वातिभ्यान्त्वा देवाव्यं ग्रह्मस्यार्थंषे गृह्णामीनद्वावृद्धं स्वात्मं ग्रह्मस्यार्थंषे गृह्णामीनद्वाविष्णंभयान्त्वा देवाव्यं ग्रह्मामा २३॥

पदार्थ: - हे सभापते ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा करने वाला मैं ( य-क्सस्य ) अग्निहोत्र से लेकर राज्यपालन पर्य्यन्त यज्ञ की (अ.युषे ) उन्नति होने के लिये ( मित्रावरुणाभ्याम् ) मित्र और उत्तम विद्यायुक्त पुरुपों के अर्थ ( देवाव्यम् ) वि-द्वानों की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं। हे सेना-पते विद्वन् ! ( यहास्य ) सत्सङ्गति करने की ( आयुषे ) उन्नति के लिये ( इन्द्राय ) प-रमैश्वर्यावान् पुरुष के अर्थ (देवाच्यम्) विद्वानों की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को ( गृह्णामि ) प्रहण करता हूं । हे शस्त्रास्त्रविद्या के जानने व ले प्रवीण ! ( यज्ञ-स्य ) शिल्पविचा के कामों की सिद्धि की (अ.युपे ) प्राप्ति के लिये (इन्द्राग्निभ्याम् ) बिजुली और प्रसिद्ध आग के गुण प्रकाश होने के अर्थ (देवाव्यम् ) दिव्यविद्या बोध की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं। है शिल्पिन्!(य-क्कस्य ) क्रिया चतुराई का ( अयुषे ) ज्ञान होने के लिये ( इन्द्रावरुणाभ्याम् ) बिजुली और जल के गुण प्रकाश होने के अर्थ ( देवाव्यम् ) उन की विद्या जानने वाले (त्वा ) तुझ को ( गृहणामि ) प्रहण करता हूं । हे अध्यापक ! (यज्ञस्य) पढ़ने पढ़ाने की ( आ-युषे ) उक्कति के लिथे ( इन्द्राषृहरूपतिभ्याम् ) राजा और श.स्त्रवक्त ओं के अर्थ ( दे-बाव्यम् ) प्रशंतित योगविद्या के जानने और प्राप्त कराने व.ले (त्वा ) तुझ को ( गृ-ह्णामि ) प्रहण करता हूं । हे विद्वन् ! (यज्ञस्य ) विज्ञान की ( आयुषे ) बढ़ती के लिये (इन्द्राविष्णुभ्याम् ) ईदवर और वेदशास्त्र के जानने के अर्थ (देवाच्यम् ) ब्रह्म-ब्रानी को तुस करने वाले (त्वा) तुझ को (गृहणामि) प्रहण करता हूं। २३।।

भाषार्थ:—प्रजाजनों को उचित है कि सकल शास्त्र का प्रचार होने के लिये सब विद्याओं में कुशल मीर अत्यन्त ब्रह्मचर्य्य के अनुष्ठान करने वाले पृष्प को समापित करें और वह सभापित भी परम प्रीति के साथ सकल शास्त्र का प्रचार करता करा-ता रहें || २३ || मृद्धीनमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । विद्वदेवा देवताः । आर्षःत्रिष्टुप् छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

ं इस के अनन्तर विद्वानों का कर्म्म अगले मंत्र में कहा है ॥

मूर्यानेन्दिको अंर्तिम्पृंशिवया वैद्वान्रमृत आजातम्गिनम् । कविश्र सम्राज्यमतिथि जर्नानामासन्नापार्श्व जनवन्त देवाः ॥२४॥

पदार्थः-जैसे (देवाः ) घनुषदं के जानने वाले विद्वान् लोग उस घनुषदं की शिक्षा से (दिवः) प्रकाशमान सूर्यं के (मूर्जानम्) शिर के समान (पृथिव्याः) पृथिवी के गुणों को (अरितम्) प्राप्त होने वाले (ऋते। सत्यमार्ग में (आजातम्) सत्यव्यवहार में अच्छे प्रकार प्रसिद्ध (वैद्वानरम्) समस्त मनुष्यों को आनन्द पहुंचाने और (जनानाम्) सत्पुरुषों के (अतिथिम्) अतिथि के समान सत्कार करने योग्य और (आसन्) अपने शुद्ध यहक्ष मुख में (पात्रम्) समस्त शिल्य व्यवहार को रक्षा करने (किवम्) और अनेक प्रकार से प्रदीप्त होने वाले (अग्निम्) शुभगुण प्रकाशित अग्नि को (सम्राजम्) एकचकराज्य करने वाले के समान (आ) अच्छे प्रकार से (जनयंत ) प्रकाशित करते हैं बेसे सव मनुष्यों को करना योग्य है ॥ २४ ॥

भावार्थ:—इस मंत्र में उपमालंकार है—कैसे सत्पुरुष धनुबंद के जानने वाले परोपकारी विद्वान् लोग धनुबंद में कही हुई कियाओं से यानों और शस्त्रास्त्रविद्या में अनेक प्रकार से अग्नि को प्रदीप्त कर शत्रुओं को जोता करते हैं वैसे ही अन्य सब मन्तुष्यों को भी अपना आचरण करना योग्य है ॥ २४॥

उपयामगृहीत इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । वैश्वानरो देवता।याजुन्यनुष्टुप्

छण्य: । गान्धार: स्वर: । भ्रुवोत्तीत्यस्य भ्रुविमत्यस्य च विराडाणी बृहतीछन्द: । मध्यम: स्वर: ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है ॥

ज्यामगृहीतोऽसि भुवोऽसि भुवक्षितिर्भुवाणां भुवत्मोरुष्-तानामरुप्रतक्षित्तंम एष ते योनिर्वेशवान्रार्य त्वा । भुवं भुवेण मनसा वाचा सोम्ममवनयामि । अथां न इन्द्र इद्विशोऽसप्ताः समनस्करत् ॥ २५॥

पदार्थ:-हे परमेश्वर ! आप (उपयामगृहोत:) शास्त्रशाप्त नियमों से स्वीकार किये जाते ( असि ) हैं ऐसे ही ( ध्रुव: ) स्थिर ( असि ) हैं कि ( ध्रुवक्षिति: ) जिन आप में भूमि स्थिर हो रही हैं और ( ध्रुवाणाम् ) स्थिर आकाश आदि पदार्थों में ( ध्रु-

चत्माः ) अत्यन्त स्थिर ( असि ) हैं तथा ( अञ्युतानाम् ) अविनाशी जगन् का कारण और अनादि सिद्ध जीवों में ( अञ्युतिक्षस्तमः ) अतिशय करके अविनाशिपन व-साने वाले हैं ( पषः ) यह सत्य के मार्ग का प्रकाश ( ते ) आप के ( योनिः ) निवास स्थापन के समान है ( वैश्वानराय ) समस्त मनुष्यों को सत्यमार्ग में प्राप्त कराने वाले वा इस राज्यप्रकाश के लिये ( धुवेण ) इद ( मनसा ) मन और ( वाचा ) वाणी से ( सोमम् ) समस्त जगत् के उत्यन करने वाले ( त्वा ) आप को ( धुवम् ) निद्धय पूर्वक जैसे हो वैसे ( अवनयामि ) स्वीकार करता हूं ( अथ ) इस के अनन्तर (इन्द्रः) सब दुःख के विनाश करने वाले आप ( नः ) हमारे ( विशः ) प्रजा जनों को ( अस्पष्टाः ) शत्रुओं से रहित और ( समनसः ) एक मन अर्थात् एक दूसरे के सुख चाहने वाले (इत्) ही ( करत् ) की जिये ॥ २५ ॥

भाषार्थः-जो नित्य पद्यों में नित्य और स्थि<u>रों में</u> भी स्थिर परमेश्वर है उस समस्त जग-त्के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की प्राप्ति और योगाभ्यास के अनुष्ठान से ही ठीकर झान हो सकता है, अन्यथा नहीं ॥ २५ ॥

यस्त इत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । यह्नो देवता । स्वराड्आह्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अव देश्वर यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले को उपदेश करता है ॥

यस्ते कृष्सस्कन्दंति यस्ते अध्याग्रीवंच्युतो धिषणंघो कपस्थांत्। आध्याच्योधी परिं वा यः पविश्वात्तन्ते जुहो सि मनसा वर्षदक्षत् अस्वाहां देवानां सुत्क्रमंणमसि ॥ २६ ॥

पदार्थ:—हे यज्ञपते! (यः) जो (ते) तेरा (द्रप्तः) यज्ञ के पदार्थों का समृह (स्कंदति) पवन के साथ सब जगह में प्राप्त होता है और (यः) जो (ते) तेर यज्ञ से युक्त (प्रावच्युतः) मेघ मण्डल से छूटा हुआ (अंशुः) यज्ञ के पदार्थों का विभाग (धिषणयोः) प्रकाश भूमि के (पित्रात्) पित्रत्र (उपस्थात्) गोद के सभ्मान स्थान से (वा) अथवा (यः) जो (अभ्वच्योंः) यज्ञ करने वालों से (वा) अथवा (पिर्टि) सब से प्रकाशित होता है इस से (तम्) उस यज्ञ को में (ते) तेरे लिये (स्वाहा) सत्यवाणी और (मनसा) मन से (ववट्छतम्) किये हुए सङ्गल्य के समान (जुहोमि) देता हूं अर्थात् उस के फलदायक होने से तेरे लिये उस पदार्थ को पहुंचाता हूं जिस लिये यज्ञ का अनुष्ठान करने हत्रा त् (देवानाम्) विद्रानों के लिये ( उत्कमणम् ) अंचो भेणों को प्राप्त करने वाले पेश्वर्य के समान (असि) है इस से तुझ को सुख प्राप्त होता है | २६ |

भाषार्थै:— इस भंत्रं में उपमालक्कार है—होता आदि विद्वान् लोग अत्यंत हद सामग्री से यह करते हुए जिन सुर्गाध आदि पदार्थों को अग्नि में छोड़ते हैं वे पवन और जलादि पदार्थों का पवित्र कर उस के साथ पृथियों पर आ और सब प्रकार के रोगों को निवृत्त करके सब प्राणियों को भानन्द देते हैं इस कारण सब प्रजुष्यों को इस यह का सदा सेवन करना चाहिये || २६ ||

प्रांणायेत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । यज्ञपतिद्वंचता । प्राणायेत्यस्य चासुर्खनुष्टुष्, उदाना-येत्यस्यासुर्खुष्णिक्, ज्यानायेत्यवासेम इत्यस्य साम्नी गायत्री, कत्द्क्षाभ्यामि-त्यासुरी गायत्री, श्रीत्रीयमेत्यस्यासुर्खनुष्टुप्, चक्षुभ्यीमित्यस्य\_चासुर्खु-ष्णिक् छन्दोसि । अनुष्टुभो गान्धारो गायत्रचाः षड्जः उष्णिज ऋषभश्च स्वराः ॥

फिर पठनपाठन यह के करने वाले का विषय आले मन्त्र में कहा है ॥

प्राणायों में वर्चोदा वर्चेंसे पवस्व न्यानायं में वर्चोदा वर्चेंसे पवस्वोद्वानायं में वर्चोदा वर्चेंसे पवस्व वाचे भें वर्चोदा वर्चेंसे पवस्व
कत्रूदक्षांभ्यां में वर्चोदा वर्चेंसे पवस्व ओन्नांय में वर्चोदा वर्चेंसे
पवस्व वर्क्षंभ्योग्ने वर्चोद्मी वर्चेंसे पवेथाम् ॥ २७ ॥

पदार्थ:—हे (वचाँदाः) यथायोग्य विद्या पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ कर्म करने वाले !
आप (मे) मेर (प्राणाय) हृद्यस्थर्जावन के हेनु प्राणवायु अंर (वर्चसे) वेद विद्या
के प्रकाश के लिथे (पवस्व) पवित्रता से वत्त, हे (वचाँदाः) ज्ञान दीति के देने
वाले जाउराग्नि के समान आप (मे) मेर (व्यानाय) सब शरीर में रहने वाले पबन अंर (वर्चसे) अन्न आदि पदाधों के लिथे (पवस्व) पवित्रता से प्राप्त होवें हे
(वर्चोंदाः) विद्या बल देने वाले। आप (मे) (उदानाय) श्वास से ऊपर को आने
वाले उदान संज्ञक पवन और (वर्चसे) पराक्रम के लिथे (पवस्व) ज्ञान दीजिये।
हे (वर्चोदाः) सल्य बोलने का उपदेश करने वाले आप (मे) मेरी (वाचे) वाणो
और (वर्चसे) प्रगल्भता के लिथे (पवस्व) प्रवृत्त हृजिथे (वर्चोदाः) विज्ञान देने
वाले आप (मे) मेर (कत्दक्षाभ्याम्) बुद्धि और आत्मबल की उन्नति और (वर्चसे)
अच्छे बोध के लिथे (पवस्व) शिक्षा कीजिथे। हे (वर्चोंदाः) शब्द ज्ञान के देने वाले
यज्ञपति आप (मे) मेरे (श्रीत्राय) शब्द ग्रहण करने वाले कर्णेन्द्रिय के लिथे (वचीसे) शब्दों के अर्थ और सम्बन्ध का (पवस्व) उपदेश करें। हे (वर्चोंदसी) सूर्य

भीर चन्द्रमा के समान अतिथि और पढ़ाने वाले आप दोनों ( मे ) मेरे ( चक्षुर्थीम् ) नेत्रों के लिये ( वर्चसे ) शुद्ध सिद्धान्त के प्रकाश को ( पवस्व ) प्राप्त हुजिये ॥२०॥

भाषार्थ:—जो विद्या की वृद्धि के लिथे पठन पाठन रूप यह कर्म करने वाला म-तुष्य है वह अपने यहा के अनुष्टान से सब की पृष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इस से ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है। २७॥

आत्मन इत्यस्य देवश्रवाऋषिः । यञ्जपतिदेवता । ब्राह्मो बृहतो छन्दः । मध्यमः रवरः ।।

किर भी उक्त विषय का उपदेश अगले प्रस्त्र में किया है ॥

आत्मनें मे वर्ष्यादा वर्षसे प्रवस्वौजंसे मे वर्ष्यादा वर्षसे प्रव-स्वार्यंषे मे वर्ष्यादा वर्षसे पवस्य विद्यांभ्यों में प्रजाभ्यों वर्ष्यां-द्<u>सी</u> वर्षसे प्रवेधाम् ॥ २८॥

पदार्थ—हे ( वचादाः ) थोन और ब्रह्म विद्या देने वाले विद्यन् ! आप ( मे ) मेरे ( आत्मने ) इच्छादि गुणयुक्त चंतन के लिये ( वर्चसे ) अपने आत्मा के प्रकाश को (प-वस्त्र ) प्राप्त दीजिये । हे ( वर्चादाः ) उक्त विद्या देने वाले विद्यान् ! आप ( मे ) मेरे ( ओजसे ) आत्मवल होने के लिये ( वर्चसे ) योग वल को (पवस्त्र) जनाइथे ! हे (वर्चादाः) बल देने वाले ! ( मे ) मेरे ( आयुषे ) जीवन के लिथे ( वर्चसे ) रोग छुड़ाने वाले औषध को ( पवस्त्र ) प्राप्त की जिथे । हे (वर्चीदसी) योगविद्या के पढ़ने पढ़ाने वालो ! तुम दोनों (मे) मेरो ( विश्वास्यः ) समस्त ( प्रजास्यः ) प्रजाओं के लिथे ( वर्चसे ) सदगुण प्रकाश करने को ( प्रवेधाम् ) प्राप्त कराया करो ॥ २८ ॥

भावार्थ:—योग विद्या के विना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नहीं हो सकता और न पूर्णविद्या के विना अपने स्वरूप और परमात्मा का ज्ञान कभी होता है और न इस के विना कोई न्यायार्थाश सःपुरुषों के समान प्रजा की रक्षा कर सका है इसिल्धे सब मनुष्यों को उचित है कि इस योगविद्या का सेवन निरन्तर किया करें ॥ २८॥

कोसीत्यस्य देवश्रवा अवि:। प्रजापतिवेवता। आर्चार्यक्रिक्छन्दः। भूभु वस्त-

रित्यस्य भुरिक् साम्नी पंक्तिरछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥ सभापति राजा प्रजा सेना और सभ्यजनों को क्या २ कहे यहाँ अगले

मन्त्र में कहा है।

कीं असि कत्मो असि कस्यां सि को नामां सि । यस्यं ते नामार्म-नमड़ि यं खा सोमेनातीं तृपाम । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याप सुवीरों द्वीरैः सुपोषः पौषैः ॥ २९ ॥ पदार्थ:—समा सेना और प्रजा में रहने वाले हम लोग पूछते हैं कि तू (क:) कीन (असि) है। (कतमः) बहुतों के बीच कौनसा (असि) है (कस्प) किसका (असि) है (कः) क्या (नाम) तेरा नाम (असि) है (यस्प) जिस (ते) तेरी (नाम) संझा को (अमन्महि) जानें और (यम्) जिस (वा) तुझ को (सोमेन) धन अदि प्रवाधों से (अतीतृपामः) तृप्त करें यह कह उन से सभापति कहता है कि (भूः) भू-मि (भुः) अन्तरिक्ष और (स्व:) आदित्यलोक के स्वक के सहश आत्म सुख की कामना करने वाला मैं तुम (प्रजामि:) प्रजालोगों के साथ (सुप्रजा:) श्रेष्ठ प्रजा वाला (वारे:) तुम वारों से (सुवीर:) श्रेष्ठ वीर युक्त (पोषे:) पृष्टिकारक पदार्थों से (सुपोष:) अच्छा पृष्ट (स्याम्) हीऊं। अर्थान् तुम सब लोगों से पृथक् न तो स्वतन्त्र मेरा कोई नाम और न कोई विशेष सम्बन्धी है।। २९॥

भाषार्थ:—समापित राजा को योग्य है कि सत्य न्याययुक्त प्रिय व्यवहार से सभा सेना और प्रजा के जनों की रक्षा कर के उन समों को उसित देने और अतिप्रवल वी-रों को सेना में रक्खे जिस से कि बहुत सुख बढ़ाने वाले राज्य से भूमि आदि लोकों के सुख को प्राप्त होने ॥ २९॥

उपयाम गृहीतोसोत्यस्य देवशवा ऋषिः । प्रजापितदेवता । आदास्य साम्नी गायशी दितीयस्यासुर्ख्यं नुष्टुप् तृतीयचनुर्थपञ्चमानां साम्नी गायशी पष्टस्यासुर्ख्यं नुष्टुप् सप्तमाष्टमयोर्याञ्चर्या पंक्तिनैवमस्य साम्नी गायशी दशमस्यासुर्ख्यं - तुष्टुप् पकादशस्य साम्नी गायशी द्वादशस्यासुर्ख्यं नुष्टुप् त्रयोद- स्यासुर्ख्यं जिष्टु जिष्टुप् श्रयोद- स्यासुर्ख्यं जिष्टु जिष्टु क्यासुर्ख्यं जिष्टु क्यासुर्ख्यं क्यासुर्ख्यं क्यासुर्ख्यं क्यासुर्ख्यं क्यासुर्ख्यं क्यासुर्ख्यं क्यासुर्ख्यं क्यासुर्वे क्यासुर्वे प्रविचात्र से वही उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

खुण्यामगृंहीतोऽभि मधंव त्वापण्यामगृंहीतोऽभि माधंवाय त्वां-पण्यामगृंहीतोऽभि गुक्षायं त्वापण्यामगृंहीतोऽभि गुचंयं त्वापः णामगृंहीतोऽभि नर्मसे त्वापण्यामगृंहीतोऽसि नभ्रस्ण्याय त्वापः णामगृंहीतोऽसीषं त्वापण्यामगृंहीतोऽस्यू ज्जें त्वां पण्यामगृंहीतोः ऽसि सहंसे त्वापण्यामगृंहीतोऽसि सहस्थाय त्वापण्यामगृंहीतोः ऽसि तपसे त्वापण्यामगृंहीतोऽसि तप्र्णाय त्वापण्यामगृंहीतोः ऽस्यक्षे हसस्यत्वये त्वा ॥ ३०॥ पतार्थ:—है राजन ! जिस से आप (उपयामगृहीत:) अच्छे २ राज्य प्रवन्ध के नियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं इस से (त्वा) आप को (मधवे) चैत्रमास की सभा के लिये अर्थात् चैत्रमास प्रसिद्ध सुख कराने वाले व्यवहार की रक्षा के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं सभापति कहता है कि है सभासदो तथा प्रजा वा सेना जनो ! तुम में से एक २ (उपयामगृहीत:) अच्छे २ नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है इसल्ये तुम को चैत्रमास के सुख के लिये स्वीकार करता हूं इसी प्रकार बारहों महीनों के यथोक सुख के लिये राजा, राजसभासव्, प्रजाजन और सेनाजन परस्पर एक इसरे को स्वीकार करते रहें ॥ ३०॥

भावार्थ:—सभाष्यक्ष राजा को चाहिये कि यथोचित समय को प्राप्त हो कर श्रेष्ठ राज्य व्यवहार से प्रजाजनों के लिये सब सुख देता रहे और प्रजाजन भी राजा की आज्ञा ले अनुकूल व्यवहारों में वर्त्ता करें || ३० ||

इन्द्राझीत्यस्य विद्यामित्र ऋषि:। इन्द्राझी देवते । आर्पः त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥ अब राज्य के व्यवहार से नियत राज कर्म्य में प्रवृत्त हुए राजा और प्रजा के पुरुषों के

प्रति कोई सत्कार से कहता है यह अगले सन्त्र में कहा है।

इन्ह्रांग्नी आगंतथ सुतं ग्रीभिर्श्वभा वरंग्यम् । अस्य पातं धि-येषिता । उपयामगृंहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वेष ते योनिरिन्द्राग्नि-भ्यांन्त्वा ॥ ३१ ॥

पदार्थ:—हे इन्द्राग्नो सूर्यं और अग्नि के तुल्य प्रकाशमान सभापित और सभा-सद! तुम दोनों (आगतम्) आओ मिलकर (गीर्भि:) अच्छो शिक्षा युक्त वाणियों से हमारे लिये (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (नभः) सुख को (सृतम्) उत्पन्न करो तथा (इजि-ता) पढ़ाये हुए वा हमारी प्रार्थना को प्राप्त हुए तुम (धिया) अपनी बुद्धि वा राज-शासन कर्म से (अस्य) इस सुख को (पातम्) रक्षा करो । वे राजा और सभासद कहते हैं कि हे प्रजाजन! त् (उपयामगृहीत:) प्रजा के धर्म्म और नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है (त्वा) तुझ को (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये हम लोग बैसा ही मानते हैं (एष:) यह राजनीति (ते) तेरा (योनिः) धर है (इन्द्रा-गिनभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये (त्वा) तुझ को हम चिताते हैं अर्थात् राजशासन को प्रकाशित करते हैं ॥ ३१॥

भावार्थ:—अकेला पुरुष यथोक राजशासन कमें नहीं कर सकता इस कारण और श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार कर के राज काय्यों में युक्त करे वे भी यथायोग्य व्यवहार में इस राजा का सत्कार करें || ३१ ||

बावाये अग्निमित्यस्य त्रिशोक ऋषि: । विश्वेदेवा देवता: । आद्यसार्थः गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । उपेत्यस्याच्युं िण्णक् छन्दः । ऋषमः स्वरः ।।
अव उक्त विषय को प्रकारान्तर से अगले मन्त्र में कहा है ।।
आद्याय अग्निमिन्ध्रते स्तृषानित बहिरां तुषक् । येषामिन्द्रोगुवा
सस्वां । उपयामगृहोतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यांन्त्र्वेष ने ये। निरंग्नीन्द्राभ्यांन्त्रवा ॥ ३२ ॥

पदार्थ:—(ये) जो वेदविद्या सम्पन्न विद्वान् सभासद (अग्निम्) विद्युत् आदि अन्नि (घ) ही को (इन्धने) प्रकाशित करते और (आनुषक्) अनुक्रम अर्थात् यज्ञ के यथोक्त क्रम से (बहिं:) अन्तरिक्ष का (आ) (स्नृणन्ति) आच्छाद्रम करते हैं तथा (येषाम्) जिनका (युवा) सर्वोङ्ग पुष्ट सर्वोङ्ग सुन्दर सर्व विद्या विद्यक्षण तर्वण अवस्था और (इन्द्र:) सकलैदवर्ष्य युक्त सभापति (सला) मित्र है (अझोन्द्रा-भ्याम्) उन अग्नि और सूर्य के समान प्रकाशमान सभासदों से (उपयामगृहीत:) प्रजाधमा से युक्त त् प्रहण किया गया (अति) है जिस (ते) तेरा (एष:) न्याययुक्त सिद्धान्त (योनि:) घर के सदश है। उस (त्वा) तुझ को प्राप्त हुए हम लोग़ (अझी-न्द्राभ्याम्) उक्त महा पदार्थों के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करते हैं ॥ ३२ ॥

भावार्थ: - राजधम्मं में सब काम सभा के आधान होने से विचारसभाओं में प्रवृ-त्त राजमार्गी जनों में से दो तीन वा बहुत सभासद मिल कर अपने विचार से जिस अर्थ को सिद्ध करें उसी के अनुकृत राजपुरुप और प्रजाजन अपनाबत्तीव रक्तें ॥३२॥ ओमास इत्यस्य मधुरुक्त ऋषिः। विद्दे देवा देवताः। आद्यस्पर्धा गायत्री छन्दः।

पड्तः स्वरः । उपयामहत्यस्याची बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
पढ़ने और पढ़ाने वाली का परस्पर व्यवहार अगले मंत्र में कहा है ॥
ओमांसश्चर्षकी धृतो विद्वे देवाम ग्रागंत । ट्राइवार सी ट्राः
गुषंः सुनम् । लुपुग्रामगृहीतोऽसि विद्वेभयस्त्वा देवेभयं पुष्ते योविविद्वेभयस्त्वा देवेभयंः ॥ ३६ ॥

पदार्थ:—(चर्षणीघृत:) मनुष्यों की पृष्टि संतुष्टि करने और (ओमास:) उत्तम २ गुणों से रक्षा करने हारो, हे (विश्वे) समस्त (देवास:) विद्वानो! तुम (दाइषांस:) उत्तम हान को देते हुए (दाश्ष्य:) दान करने वाले उत्तम जन का (सुतम्) जो अच्छे कामों के करने से ऐइवर्ब्य को प्राप्त होने वाला है उस के (आ, गत) सन्मुख आओ। हे उक्त दानशील पुरुष के पढ़ने वाले वालक तू (उपयामग्रहीत:) पद्माने के

नियमों से प्रहण किया हुआ ( असि ) है इसिलिये (रवा ) तुझे ( विश्वेम्य: ) समस्त ( देवेम्य: ) विद्वानों के लिये अर्थात् उन की सेवा करने को आज्ञा देता हूं जिसिलिये ( ते ) तेरा ( एव: ) यह विद्या और अच्छो २ शिक्षा का संप्रह होना ( योनि: ) का-रण है इसिलिये ( त्वा ) तुझे ( विश्वेम्य: ) समस्त ( देवेम्य: ) विद्वानों से विद्या अच्छी २ शिक्षा दिलाता हूं ॥ ३३ ॥

भावार्थ: सब विद्वान और विदुषी स्त्रियों की योग्यता है कि समस्त बालक और कल्याओं के लिये निरन्तर विद्यादान करें राजा और धनी आदि लोगों के घन आदि पदार्थों से अपनी जांविका करें और वे राजा आदि धनी जन भी विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रवीण होकर अपने पढ़ाने वाले विद्वान वा विदुषी स्त्रियों को घन आदि अच्छे २ पदार्थों की देकर उन की सेवा करें माता और पिता आठ २ वर्ष के पुत्र वा आठ २ वर्ष को कन्याओं को विद्याभ्यास ब्रह्मचर्य सेवन और अच्छी शिक्षा किये जाने के लिये विद्वान और विदुषी स्त्रियों को सेर्गप दें वे भी विद्या ग्रहण करने में नित्य मन लगावें और पढ़ाने वाले भी विद्या और अच्छी शिक्षा देने में नित्य प्रयक्ष करें ॥३३॥

क्रिक्वेदेवास आगत इत्रस्य गृत्समद ऋषिः | विश्वेदेवा देवताः | शाद्यस्याचीं गायत्री छन्दः । वडजः स्वरः । उपयाम इत्यस्य निचृदार्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषमः स्वरः ॥

भव प्रति दिन पढ़ाने की योग्यता का उपदेश अगले मन्त्र में किया है। विद्वेत देवास आगंत शृणुता से हुम छ हर्षम्। एदं बुर्हि निषीदत। जुणुगमगृहीतां असि विद्वें स्यस्त्वा देवे स्यं पुष ते यो कि विद्वें स्यस्त्वा देवे स्यं: ॥ ३४॥

पदार्थ:—हे पूर्वमन्त्रप्रतिपादितगुणक्ष्मंस्वभाववाले (विद्वेदेवासः ) समस्त विद्वान लोगो । आप हमारे समीप (आगत) आइथे और हम लोगों के दिये हुए (इदम्) इस (बहिं:) आसन पर (आ निर्पादत ) यथावकाश सुक्षपूर्वक बैठिये (मे) मेरी (हवम्) इस स्नुतियुक्तवाणों को (शृणुत ) सुनिये। गृहस्थ अपने पुत्रादिकों के प्रति कहे कि हे पुत्र ! जिस कारण तू (उपयामगृहीत:) विद्वानों का प्रहण किया हुआ (असि) है इस से हम (त्वा) तुझे (विद्वेभ्य:) समस्त (देवेभ्य:) अच्छे २ विद्या पढ़ाने वाले विद्वानों को सीपे जिस लिये (एप:) यह समस्त विद्या का संग्रह (ते) तेरा (योनिः) घर के तुल्य है इसलिये (त्वा) तुझे (विद्वेभ्य:) (देवेभ्य:) समस्त उक्त महाशायों से विद्या दिलाना बाहते हैं ॥ ३४ ॥

भाषार्थ:—विद्वान् लोगों को उचित है कि प्रतिदिन विद्यार्थियों को पढ़ावें और पर्म विद्वान् पंडित लोग उनकी परीक्षा भी प्रत्येक महीने में किया करें उस परीक्षा से जो तौरणबुद्धियुक्त परिश्रम करने वाले प्रतीत ही उन को अत्यन्त परिश्रम से पढ़ाया करें ॥ ३४ ॥

इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषि: । प्रजापतिर्धेवता । निचृदोर्धित्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । उपयाम इत्यस्यार्ध्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥ अब राजा पदाने आदि व्यवहार की रक्षा को किस प्रकार से करे यह अगले भंत्र में कहा है॥

इन्द्रं मरुख हुइ पाहि सोमं यथां शार्थाते अपियः सुनस्यं। तब प्रयोती तथं शूर शम्मेशाविवासन्ति क्वयंः सुग्रशः । उप-ग्रामगृहीतोऽसीन्द्रांप स्वा मरुखंत एषते योजिरिन्द्रांप स्वा मरु-स्वते ॥ १८ ॥

पदार्थ:—हे (इन्द्र) सब विद्यां के दूर करने वाले सब सम्पत्ति से युक्त तेजस्वी (मरुत्व:) प्रशंसनीय धर्म्मयुक्त प्रजा पालने हारे सभापित राजन्! आप (इह् ) इस संसार में (यथा) जैसे (शार्व्याते) अपने हाथ पौरों के परिश्रम से निष्पन्न किथे हुए व्यवहार में (सुतस्य) अभ्यास किथे हुए विद्या रस को (अपिव:) पौ दुके हो वसे (सोमम्) समस्त अच्छे गुण पेदवर्य्य और हुल करने वाले पठनपाउन कपा यज्ञ को (पाहि) पाला । ह (शूर) धर्म विरोधियों को दण्ड देने वाले (तव) तुम्हार (शर्मन्) राज्य घर में (सुयज्ञा) अच्छ पढ़ने पढ़ाने वाले विद्यानों के समान (कव्य.) बुद्धिमान् लाग (तव) तुम्हारों (प्रणीतों) उत्तमनीति का (आविवासन्ति) सेवन करते हैं । ह शूर! जिस कारण तुम (उपयामगृहोतः) प्रजापालनादि नियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हो इस से (त्वा) इन्द्राय परमेश्वर्य्य और (मरुत्वते) प्रजा सम्बन्ध के लिये हम लोग चाहते हैं कि जो (ते) तेरा (पषः) यह विद्या का प्रचार (योनि:) घर के समान है इस से (त्वा) तुम को (इन्द्राय) परमद्वर्य्य और (मरुत्वते) प्रजा पालन सम्बन्ध के लिये मानते हैं ॥ ३५॥

भाषार्थ:-सब विद्वानों को उचित है कि जैसे त्यायार्थ शों की न्याययुक्त सभा से जो आज्ञा हो उस को कभी उल्लंघन न करें बेसे वे राजसभा के सभासद् भी वेदज्ञ विद्वानों की आज्ञा को उल्लंघन न करें जा सब गुणों से उत्तम हो उसी को सभापित करें और वह सभापित भी उत्तमनीति से समस्त राज्य के प्रवन्धों को चलावे ॥ ३५॥

मरुत्वन्तमित्यस्य विदेवामित्र ऋषि:। प्रजापतिर्देवता। विराडार्षाविष्टुप् छन्दः। धैवतःस्वरः। उपयामे अस्यद्वितीयभागस्यार्षी तृतीयस्यसाम्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥ किर भी राजा और प्रजा को क्या करना चाहिये यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मुक्तवंनतं वृष्यं वांवृधानमक्षेवारिन्द्रिव्यक्ष शासिमद्रम् । बि-इवासाहमवं से नृतेनायोग्रथं संहोदामिह तथं हुंवेम । उप्यामगृंही-लोऽसीन्द्राय त्वा मुक्तवंत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मुक्तवंते । ब-पुणामगृंहीतोऽसि मुक्तान्त्वीजंसे ॥ ३६ ॥

पदाथः—(कवयः) पूनःकत हम विद्वान् लोग (नृतनाय) नवीन २ (अवसे) रक्षा अति गुणां के लिये (मस्तवन्तम्) प्रशंसनीय प्रजायुक (वृष्यभम्) सब से उत्तम (वावृधानम्) अत्यन्त शुभणुण और कमा में उन्नित को प्राप्त (अकवःरिम्) समस्त धर्म विराधो दुण्टों का निवारण करने वाले (दिष्यम्) शुद्ध (विश्वासाहम्) सर्व सहनशील (उग्रम्) प्रचण्ड पराक्रमयुक्त (सहोदाम्) सहायता (शासम्) और सब का शिक्षा दने वाल (तम्) उस पूर्वोक्त (इन्द्रम्) परमेश्वर्य्य युक्त सभापित को निमन् लिखित प्रकार से (हुवम) स्वाकार करें। हे मुख्य सभासद राजन्! तृ जिस कारण (उपयामगृहीतः) समस्त बड़े २ और छोटे २ नियमों की सामग्री से सहित (असि) है इस से (त्वा) तुझ को (मस्तवते) प्रशंसनीय प्रजायुक्त (इन्द्राय) परमेश्वर्यवान सभापित होने के लिये स्वीकार करते हैं (एपः) यह सभा में न्याय करने का काम (ते) तेरा (यानिः) घर के तुल्य है इस से (त्वा) तुझे (मस्त्वते) उत्तम प्रजा से युक्त (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य के पालन और वृद्धि हाने के लिये स्वीकार करते हैं और जिस कारण तू (उपयामगृहोतः) उक्त सब नियम और उपनियमों से संयुक्त (असि) है इस से (मस्ताम्) प्रजाजनों का (अजसे) बल बढ़ने के लिये (त्वा) तुझे प्रहण करते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (कवय:) इस पद की अनुवृत्ति आती है प्रजा जनों का याग्य है कि जो सर्वोत्तम समस्त विद्याओं में निपुण सकल शुभगुणयुक्त विद्यान् श्रुप्वार हो उस को सभा के मुख्य काम में स्थापन करें और वह सभा के सब कामों में स्थापित किया हुआ सभापित सत्यन्याययुक्त धम्मी कार्य्य से प्रजा के उत्तराह की उसति करें ॥ ३६ ॥

सजोषत्यस्य विद्वासित्रं ऋषिः । प्रजापतिदेवता । आद्यस्य निचृदार्पात्रिष्टुप् । उपयामेत्यस्य प्राजापत्यात्रिष्टुप् छन्दसी । धैवतः स्वरः ॥ -

अब सेनापति का काम आले मन्त्र में कहा है ॥

स्रजोषं इन्द्र सर्गको मुरुष्टिः सोमं पित्र दशहा शूर विकास ।
जिहि सार्तु २॥ रण सृष्ये नुद्रश्वाथा भयं कृणुहि विश्वती नः । ज् णुणामगृहीतोऽसीन्द्रांच स्वा महत्वंत एवते योतिहरन्द्रांच स्वाम्-रुत्वंते ॥ ३७ ॥

पदार्थी:—ईन्बर कहता है कि है (इन्द्र) सब खुलों के घारण करने हारे (इन्द्र) शत्रुओं के नश करने में निर्मय ! जिस से तू (उपयामगृहित:) सेना के अच्छे र निन्वमों से स्वांकार किया हुआ (असि) है इस से (महत्वते) जिस में प्रशंसनीय वायु की अस्त विद्या है उस (इन्द्राय) परमैश्वर्च्य पहुंचाने वाले युद्ध के लिये (त्वा) मुझ को उपदेश करता हूं कि (ते) तेरा (एव:) यह सेनाधिकार (वोनि:) इष्ट खुल दायक है इस से (महत्वते) (इन्द्राय) उक्त युद्ध के लिये यह करते हुए तुझ को में अङ्गोकार करता हूं और (सजीपा:) सब से समान प्रीति करने वाला (सगणः) अपने मित्र जनों के सहित गू (महिद्धः) जैसे पत्रन के साथ (वृत्रहा) मेघ के जल को खित्र भिन्न करने वाला सूर्व्य (सोमम्) समस्त पदार्थों के रस को खींचता है वेसे सब पदार्थों के रस को (पिब) सेवन कर और इस से (विद्वान्) ज्ञानयुक्त हुआ तू (शत्रून्) सत्यन्याय के विरोध में प्रवृत्त हुए दुएजनों का (जिह्न) विनाश कर (अथ) इस के अनन्तर (सृधः) जहां दुएजन दूनरे के हुल से अपने मन को प्रसन्न करते हैं उन संग्रामों को (अपनुदस्व) दूर कर और (न:) हम लोगों को (विद्यतः) सब जगह से (अभयम्) भय रहित (इणुहि) कर ॥ ३७॥

भाषार्थ:—इस मन्त्र में उपमालक्कार है—जैसे जीव प्रेम के साथ अपने मित्र वा शरीर की रक्षा करता है वैसे ही राजा प्रजा की पालना करें और जैसे सूर्य्य वायु और बिजुलों के साथ मेघ का भेदन कर जल से सब को सुख देता है बैसे राजा को चाहिये कि युद्ध की सामग्री जोड़ और शत्रुओं को मार कर प्रजा को सुख धरमात्मा- भी को निर्भयता और दुष्टों को भय देवे ॥ ३०॥

मरुत्वानित्यस्य विश्वानित्र ऋषिः । प्रजापितिरंवता । निषृदार्षा त्रिष्टुप् । उप-यामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुण्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ अब सभाध्यक्ष के लिये अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

मुद्धवाँ शाहरद्ग वृष्यमा रणांग पिष्या सीमेमनुष्यधम्मदीय । आसिश्वरव जुठरे मद्ध्यं कुन्मित्यक्ष राजांसि मतिपत्सुतानांम् । चुपुरामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मुहत्वत युष ते योगिरिन्द्राय त्वा मुहत्वते ॥ ६८ ॥

पदः धं:—हे (इन्द्र) शत्रुओं के जीतने वाले सभापते! जिस कारण आप (इपयामगृहोत:) राजनियमों से स्वीकार किथे हुए (असि) हो इसिलिथे हम लोग तुम को
(मक्त्वते) जिस में अच्छे २ अस्तों और शस्तों का काम है उस (इन्द्राय) परमेश्वर्यं
को प्राप्त करने वाले युद्ध के लिथे युक्त करते हैं जिससे (ते) आप का (एषः) यह
युद्ध परमेश्वर्यं का (योनि:) कारण है इसिलिथे (त्वा) तुम को (मक्त्वते) (इन्द्राय) उस युद्ध के लिथे कहते हैं कि आप (प्रतिपत्) प्रत्येक बड़े २ विचार के कामों
में (राजा) प्रकाशमोन (मक्त्वान्) प्रशंसनीय प्रजायुक्त और (वृषभः) अत्यन्त
श्रेष्ठ हो इस से (रणाय) युद्ध और (मदाय) आन्तद के लिथे (अनुष्वधम्) प्रत्येक
भोजन में (सोमम्) सोमलतादि पृष्ट करने वाली ओपधियों के रस को (पिय) पीओ
(स्रुतानाम्) उत्तम संस्कारों से बनाये हुए अन्नों के (मध्वः) मधुर रस की
(क्रिमीम्) लहरी को अपने (जठरे) उदर में (अतिसञ्चस्व) अच्छे प्रकार स्थापन
करो॥ ३८॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—सभा और सेनापित आदि मनुष्यों को चाहिये कि उत्तम से उत्तम पदार्थों के भोजन से शरीर और आतमा को पृष्ट और शत्रुओं को जीत कर न्याय की व्यवस्था से सब प्रजा का पालन किया करें ॥ ३८॥ महानित्यस्य भरद्वाज ऋषि:। प्रजा सेनापितिवें बता। आद्यस्य भुरिक् एकिश्चन्दः।

पञ्चमः स्वरः । उपयामेत्यस्य सःम्ना त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः रवरः ॥ अय ईदवर अपने गुणों का उपदेश अग्छे मंत्र में करता है ॥

महाँ२॥ इन्ह्री नृवदा चंषेणिप्रा छत द्विवहीं अधिनः सही-भिः। अस्मद्रश्चग्वावृषे बीर्ग्यायोकः पृथः सृक्षंतः कर्र्श्वीमंभ्त् । छ-प्रयामगृहीनोऽसि महेन्द्रायं खैष ते योनिमेहेन्द्रायं स्वा ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे भगवन् जगदीहवर! जिस कारण आप ( उपयामगृह त: ) योगाभ्यास से प्रहण करने के योग्य ( असि ) हैं इस सं ( महन्द्राय ) अत्यन्त उत्तम ऐहवर्ळ के ित्ये हम लोग (त्वा ) आप की उपासना हमारे ित्ये ( योगिः ) कल्याण का कारण है इस से (त्वा ) तुम को ( महेन्द्राय ) परमेदवर्ळ पाने के लिथे हम सेवन करते हैं जो ( महान् ) सर्वोत्तम अत्यन्तपूज्य ( नृवन् ) मनुष्यों के तुल्य ( आ ) अच्छे प्रकार ( खर्षणिप्राः ) सब मनुष्यों को एकों से पर्पूर्ण करने ( द्विवहां: ) व्यवहार और प-

रमार्थ के ज्ञान को बढ़ाने वाले दो प्रकार के ज्ञान से संयुक्त (अस्मयक्) हम सब प्रा-णियों को अपनो सर्वज्ञता से जानने वाले (अप्रिनः) अतुल पराक्रम युक्त (कर्नुं भिः) अब्छे कर्म्म करने वाले जीवों ने (सुक्तः) अब्छे कर्म्म करने वाले के समान प्रहण किए हुए और (इन्द्रः) अस्मन्त उन्ह्रष्ट ऐइवर्च्य वाले आप हैं उन्हीं का आश्रम किथे हुए समस्त हम लोग (सहोभिः) अब्छे २ वर्जी के साथ (वीर्च्याय) परम उत्तम बल की प्राप्ति के लिथे (वानुषे) हद उत्तह युक्त होते हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में उपमालक्कार है—ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी महु-ध्य मजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है बेसे ही राजा को भी चाहिये कि प्रजा को अपनी न्याय व्यव-स्था से सुख देवे ॥ ३१ ॥

महानिन्द्र इत्यस्य बत्स ऋषि:। प्रजापतिर्देवता । आधी गायश्री छन्दः। उपया-

मेलस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः। षब्जः स्वरः ॥

फिर भी ईश्वर के तुणों का उपदेश बगले मन्त्र में किया है ॥

महाँ २॥ इन्द्रो च ओर्जसा प्रजिन्यों दृष्टिमाँ २॥ इंब । स्तोमैं-र्बेत्सस्य बावृष्य । खुप्यामगृहीतोऽसि महेन्द्रार्थ त्वृष ते योनिर्म-हेन्द्रार्थ त्वा ॥ ४० ॥

पदार्थ:—हे अनादिसिक्ष योगिन सर्बद्याणी ईरवर! जो आप योगियों के (उपगा-मगृहोत:) यमनियमादि योग के अझों से स्वोकार किये हुए (असि) हैं इस कारण हम लोग (खा) आप को (महन्द्राय) योग से प्रकट होने वाले अच्छे ऐरवर्ष्य के लिये आश्रय करते हैं (ते) आपका (एए:) यह योग हमारे कहयाण का (योनि:) निमित्त है इसलिये (खा) आपका (महन्द्राय) मोक्ष कराने वाले ऐरवर्ष्य के लिये स्यान करते हैं (य:) जो (महान्) बड़े २ गुण कर्म्म और स्वभाव वाला (बृष्टिमान्) वर्षने वाले (पर्जन्यहव) मेघ के तुल्य (वत्सस्य) स्तुति कर्त्ता की (स्तोमें:) स्तु-तियों से (ओजसा) अनन्तवल के साथ प्रकाशित होता है उस ईस्वर को जान कर योगी (व वृथे) अल्प का उन्नति का प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

भाव थी:—जैसे मेघ वर्षा सम्ध में अपने जल के समृह से सब पदार्थों को हुस करता हुआ उन्नति देता है बैसे ईदवर भी योगाभ्यास करने के समय में योगाभ्यास करने वाले योगी पृष्ठ के योग को अत्यन्त बढ़ाता है ॥ ४० ॥ उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्य ऋषिः। सृष्ट्यो देवता । श्रुरिमार्था गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

इस के पौछे स्रज की उपमा से इंश्वर के गुणों का उपदेश अगले सम्त्र में किया है शे खदु रवं जातवेंद्सं देवं बंह नित केतवं: । दृशी विश्वांण स्र्यूर्ध स्वाहां ॥ ४१ ॥

पदार्थ:—जैसे किरण (विश्वाय) समस्त जगत् के प्रयोजन के (हशे) देखने जानने के छिथे (जातवेदसम्) जो उत्पन्न हुथे सब पदार्थों को जानता वा मूर्सिमान् पदार्थों को प्राप्त होता है (त्यम्) उस (सूर्ध्यम्) (देवम्) दिव्यगुणसम्पन्न सूर्वी को (उ) तर्क के साथ (उत्) (वहन्ति) प्राप्त कराते हैं जैसे विद्वान के (केशवः) प्रकृष्ट ज्ञान और (स्वाहा) सत्य वाणी का उपदेश मनुष्य को परब्रह्म की प्राप्ति करा देता है ॥ ४१ ॥

भाषार्थ: - जैसे प्राणियों के लिये सूर्य्य के किरण उसकी प्रकाशित करती हैं वैसे मनुष्य की अनेक विद्यायुक्त बुद्धियां ईश्वर का प्रकाश करा देती हैं ॥ ४१ ॥ विश्वन्देवानामित्यस्य कृत्स ऋषि: । सूर्यों देवता । भुरिगार्षा त्रिष्टुप् छन्द: ।

धेवतः स्वरः ॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो ! तुम को अति उचित है कि जो (सूर्य:)सिवता (स्वाह) सत्य किया से (देव.नाम्) नेत्र अ.दि के समान विद्वानों (मि.इस्य) फित्र वा प्राण (वरणस्य) श्रोष्ठ पुरुष वा उदान और (अहो:) अग्नि के (चित्रम्) अद्भुत (अनीवम्) वलवत्तर सेना के तुल्य प्रसिद्ध (चक्षु:) प्रमाव के दिखलाने व ले गुणों को (उत्) (अगात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होता और (जगतः) जङ्गम प्राणी और (तस्थुष:) स्थावर संसारी पदायों का (आत्मा) आत्मा के तुल्य हो कर (द्यावाष्ट्रियों) आकाश तथा भूमि और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आ) सब प्रकार से (अपा:) व्याप्त होने वाले के समान परमातमा है उसी की उपासना निरन्तर किया करों || ४२ ||

मावार्थ:—जिस कारण परमेर्वर आकाश के समान सब जगह व्याप्त सूर्य के तुस्य स्वयम् प्रकाशमान और सूत्रातमा वायु के सहश सब का अस्वव्यमिं है इस से: सब ओवीं के लिये सत्य भीर असत्य को बोध कराने बाला है जिस किसी पुरुष को चरमेश्वर की जानने की इच्छा हो वह योगाभ्यास करके अपने आत्मा में उसे देख सकता है अन्यत्र महों 11 ४२ 11

भन्ने बयेत्क्साक्षिरस ऋषिः । अस्तर्यामी जगदीहदरो देवता । श्रुरिगार्थः विष्टुप् छन्दः । घैवतः स्वरः ॥

अर्थ : वस्ता स्वरा । अर्थ ईश्वर की प्रार्थना अन्छे मन्त्र में कही है ।

भाने नर्थ सुपर्था रावे आस्मान्त्रिइनानि देव व्युनानि विद्या-भू १ युव्योक्युस्मज्जीहरुगणमेनो भूधिष्ठान्ते नर्म उक्ति विधम स्वा-

पदार्थ:—है (अग्मे) सब के अन्त: करण में प्रकाश करने वाले परमेंद्वर आप (सुपथा) सत्यविद्या धर्मियोग्युक मार्ग से (राये) योग को विद्धि के लिये (अस्मान्) हम लोगों को (विश्वानि) समस्त । वयुनानि) योग के विद्धानों को (नय) पहुँचाइये जिस से हम लोग (स्वाहा) अपनी सत्यवाणी का वेदवाणी से (ते) आप को (भूयिष्ठाम्) बहुत (नमउक्तिम्) नमस्कार पूर्वक स्तुति को (विधेम) करें। हे (देव) योगविद्या को देने वाले ईएवर (विद्वान्) समस्त योग के गुण और क्रियाओं को जानने वाले आप ! हुपा कर के (जुहराणम्) हम लोगों के अन्त: करण के कुटिलता कप (पन:) दृष्ट कम्मों को (अस्मत्) योगानुष्ठान करने वाले हम लोगों से (यु-योघि) दूर कर की जिथे ॥ ४३॥

भाषार्थै:—कोई भी पुरुष परमातमा को प्रेम भक्ति के विना योग सिद्धि को प्राप्त नहीं होता और जो प्रेम भक्ति युक्त होकर योग बल से परमेदवर का स्मरण करता है इस को वह दयालु परमातमा शांध्र योगसिद्धि देता है। ४३ ॥ अवमित्यस्योगिरस ऋषि:। प्रजापतिद्वता । भुरिगार्था विष्टुष्क्रन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब संद्रात में परमेरवर के उपासक शूरवीरों को ज़िस प्रकार युद्ध करना खाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में िया है।

अगन्नों अग्निकि रिवस्कृणोत्व्यम्सुष्यः पुर एंतु प्रभिन्दन् । अग्नं बाजां क्रजपतु बाजंसाताव्यथः दार्च् क्रग्नेयतु जहीवाणः स्वाहां ॥४४॥ एदार्थः—(अयम्) यह प्रथम (अग्निः) वैद्यक विद्या का प्रकाश करने वाला वैद्य (स्वाहा) वैद्यक और युद्ध की शिक्षायुक्त वाणी से (वाजसाती) युद्ध में (नः) इस स्त्रोगी को (वरिषः) सुस्वकारक सेवन (हणोतु) करे (अयम्) यह दूसरा युद्ध करने वाला मुख्य वीर (प्रिमन्दन्) शत्रुओं को विदार्ण करता हुआ (मृधः) संप्राम के (पुरः) आगे (पत्रु) चले (अयम्) यह तांसरा वार रसकारक उपदेश करने वाला योद्धा (वाजान्) अत्यन्त वेगादिगुण्युक्त वीरों को (जयतु) उत्साह युक्त करन्ता रहे (अयम्) यह चौथा वीर (जह वाणः) निरन्तर आनन्द युक्त होकर (राष्ट्र्-न्) धर्मी विरोधी शत्रुजनों को (जयतु) जीते ॥ ४४॥

भावार्थ: जब युद्धकर्म में चार घोर अवश्य हों उन में से एक तो वैद्यकशास्त्र की कियाओं में चतुर सब की रक्षा करने हारा वैद्य, दूसरा सब विशे की हर्ष देने बाला उपदेशक, तीसरा शत्रुओं का अपमान करने हारा और चौथा शत्रुओं का वि-नाश करने वाला हो, तब समस्त युद्ध की किया प्रशंसनीय होती हैं। ४४ ।। क्ये त्यस्याङ्गिरस ऋषिः। प्रजापतिव वता। निचृष्जगितिच्छन्दः। निषादः स्वरः।।

अब तीन सभाओं से राज्य की शिक्षा करती चाहिये इस विषय का उपदेश भगले मन्त्र में किया है।]

् र्ष्ट्रिण वो रूपम्भागानितुथो वो विद्वववेदा विभेजतु । शतस्य पुषा प्रेतं चन्द्रदक्षिणा विस्वः पद्य व्यन्तरिक्तं यतस्य सद्भ्यः॥४५॥

पदार्थ: — हे सेना और प्रजाजनो ! जैसे में (क्षेण) अपने दृष्टिगोचर आकार से (चः) तुम्ह रे (क्ष्म्) स्वक्ष्प को (अभि) (आ) (अगम्) प्राप्त होता हूं वैसे (विश्ववेदाः) सब को जानने वाले परमातमा के समान समापति (वः) तुम लोगों को (वि) (भजतु) पृथक् २ अपने २ अधिकार में नियत करे। हे सभापते ! (तु-चः) सब से अधिक हान वाले प्रतिष्ठित अप (स्वः) प्रताप को प्राप्त हुए सूच्य के समान (अवतस्य) सत्य के (पथा) मार्ग से (अन्तिश्चम्) अविनाशी राजनीति वा प्रहाविह्यान को (वि) अनेक प्रकार से (पश्य) देखो और सभा के बीच में (सद-स्यः) सभासदों के साथ सत्य मार्ग से (प्राप्त ) विशेष २ यह करो तथा है (चन्द्रदक्षिणः) सुवर्ण के दान करने वाले राज पुरुषो ! तुम लोग धर्म को (बात ) विशेषता से प्राप्त हाओ । ४५ ॥

भावार्थ:—सभापति राजा को चाहिये कि अपने पुत्रों के तुल्य प्रजा सेना के पुर-षों को प्रसन्न रक्षे और परमेश्वर के तुल्य पक्षपात छोड़ कर न्याय करे। धार्मिक स-श्यजनों की तीन सभा होनी चाहियें उन में से एक राजपमा जिस के धार्धीन राज्य के सब कार्क्य चलें और सब उपद्रव निवृत्त रहें, दूसरी विद्यासभा जिस से विद्या का प्रचार अनेक विधि किया जावे और अविद्या का नाश हाता रहे और तीसरी धार्म- समा जिस से धर्मा की उसति और अधर्मा की द्दान निरन्तर की जाय। सब छोगों को उचित है कि अपने आत्मा और परमात्मा को देखकर अग्याय मार्ग से अलग हो, धर्मा का सेवन और समासदों के साथ समयानुकूल अनेक प्रकार से विचार कर के सल और असला के निर्णय करने में प्रयत्न किया करें ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगार्षा त्रिष्टुण्डन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब दक्षिणा किस को और किस प्रकार देनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले भंत्र में किया है ॥

ब्राह्मणम्च विदेवस्पितृमन्तंस्पैतृम्त्यस्विमार्षेवधः सुघातंद-क्षिणम् । अस्मद्द्रांता देखना गंच्छत पद्मातारुमाविद्यातः॥ ४६ ॥

पदार्थ:—है प्रजा समा और सेना के मनुष्यो ! जंसे मैं ( अद्य ) आज (ब्राह्मणम् ) वेद और ईश्वर को जानने वाला ( पितृमन्तम् ) प्रशंसनीय पितृ अर्थात् सत्यासत्य के विवेक से जिस के सर्वथा रक्षक हैं ( पैतृमत्यम् ) पितृभाव को प्राप्त (ऋ विम्) वेदार्थ विज्ञान कराने वाला ऋवि ( आपंयम् ) जो ऋपिजनों के इस योग से उत्पन्न हुए विज्ञान को प्राप्त ( सुधातुदक्षिणम् ) जिस के अच्छों अच्छो पृष्टिकारक दक्षिणा कप धानु हैं इस ( प्रदातारम् ) अच्छे दान शाल पृष्ट को ( विशेयम् ) प्राप्त होकं वैसे तुम लोग ( अस्मद्राता: ) हमारे लिये अच्छे गुणां के देने वाले होकर ( देवत्रा ) शुद्ध गुण कर्म स्वभाव युक्त विद्वानों के ( अगच्छत ) समीप आओ और शुभ गुणों में ( आविशत ) प्रवेश करो ॥ ४६ ॥

भाषार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उत्साही पुरुष को क्या नहीं प्राप्त हो सकता कीन ऐसा पुरुष है कि जो प्रयत्न के साथ विद्वानों का सेवन कर ऋिष छोगों के प्रकाशित किये हुये योग विद्वान को न सिद्ध करसके कोई भी विद्वान अच्छे गुण कम्म और स्वभाव से विपरीत नहीं हो सकता और दाता जनों को छपणता कभी नहीं अतो है इस से जो देने वाले दक्षिणा में प्रशंसनीय पदार्थ सुपात्र धार्मिक सवीपकारक विद्वानों की देते हैं उनकी अचल कीर्त्ति क्यों कर न हो॥ ४६॥

अग्नदेत्वेत्यस्याङ्किरस ऋषि: । वरुणोदेवता । आद्यस्य भुरिक् प्राजापत्या, रुद्राय-

त्वे.यस्य स्वराद्माजापत्या, षृहस्पतयेत्वेत्यस्य निचृदाचा । यमायत्वे.यस्य विराडाचांजगत्यद्गुन्दासि । निषाद: स्वर: ॥

अब किस प्रयोजन के लिये दान और प्रतिग्रह का सेवन करना चाहिये इस विशय का उपदेश भगले मंत्र में किया है ॥ अप्रनये स्वा मह्यं बर्डणो द्दानु मोऽस्तृत्वभंद्यीवार्युद्धि एंधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे हृदार्थ स्वा मह्यं बर्डणो द्दानु सोऽस्तृ-स्वमंद्यीय प्राणो द्वात्र एंधि बयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पनंथे स्वा मह्यं बर्डणो द्दानु सोऽस्तृत्वमंद्यीय त्वग्दात्र पंधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे युमार्थ स्वा मह्यं बर्डणो द्दानु मृोऽस्तृत्वमं-द्यीय हवी द्वात्र एंधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४० ॥

पदार्थ:-हे वतु संज्ञक पढ़ाने वत्ले! जिल (अग्नचे) चौबीस पर्वतक ब्रह्मचर्य्य का सेवन कर के अग्नि के समान तेजस्वि होने वाले ( महद्यम् ) मेरे लिथे ( त्वा ) तुझ अध्यापक को (वरुण:) सर्वोत्तम विद्वान् (ददातु) देवे (स) वह मैं (अमृतःवम्) अपने शुद्ध कम्मों से सिद्ध किये सद्य अतन्द को (अशीय ) प्रति होऊं उस (द.न्रं) बानशाल विद्वान का (आयु: ) बहुत कालपर्यन्त जीवन (पिघ ) बढ़ाइये और (प्र-तिष्रहीं जे) विद्याप्रहण करने वाले ( महत्त्वम् ) मुझ विद्यार्थी के लिये (मयः) सुस्त बढ़ा-इथे । हे दृष्टों को रुल.ने वाले अध्यापक जिस (रुद्राय) चवालीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्या-श्रम का सेवन करके रुद्र के गुण धारण करने की इच्छा वाले (महच्चम्) मेरे लिधे (त्वः) रुद्र नामक पढ़ाने वाले आपको ( वरुण: ) असुत्तमगुण्युक । दशातु ) देवे ( स: ) वह मैं ( अमृतत्वम् ) मुक्ति के साघनों को । अशीय ) प्राप्त होई उस ( दात्रे ) विद्याः देने वाळे विद्वान् के लिये (प्राण: ) योग विद्या का वल (पिथ ) प्राप्त कराइथे और (प्र-तिप्रहीन्त्रे ) विद्याप्रहण करने वाले । महाम् ) मेरे लिथे ( वय: ) तीनी अवस्था का सुख प्राप्त कांजिये । हे सूर्य्य के समान तेजस्व अध्यापक जिस ( बृहस्पतथे ) अड्ता-लीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य्य सेवन की इच्छा करने वाले ( मह्मम् ) मेरे लिये पूर्मविद्या पढ़ाने वाडे आप को (वहण: ) पूर्मविद्या स शरीर और आत्मा के बलयुक्त विद्वान् । ददातु ) देवे (स: ) वह मैं (अमृतत्वम् ) विद्या के आनन्द का (अशीय ) भोग करूं उस ( दात्रे ) पूर्ण विद्या देने वाले महा विद्वान के अर्थ ( त्वक् ) सरदी ग-रमी के स्पर्श का सुख ( एघि ) बढ़ाइये और प्रतिप्रहीते पूर्ण विद्या के प्रहण करने वाले ( महाम् ) मुझ शिष्य के लिपे ( मय: )पूर्णविद्या का सुख उन्नत कीजिये । हे ग्रह:-श्रत से होने वाले विषय सुखसे विमुख विश्वत सत्योपदेश करने हारे आप्त विद्वन् ! जिस (यमाय) प्रहाश्रम के सुख के अमुराग से होने वाले ( महामू ) मेरे लिये (त्वा) सर्व देशवरहित उपदेश करने वाले आप को ( वरुण: ) सकलशुभगुणयुक्त विद्वान ( द-दातु ) देवे ( सः ) वह मैं ( अमृतत्वम् ) मुक्ति के सुख को ( अशीय ) प्राप्त होऊं उस

( दात्रे ) महा विद्या देने वाले महा विद्वान् के लिये ( ह्य: ) ब्रह्म ज्ञान की वृद्धि ( एथि ) कीजिये और ( प्रतिब्रहीत्रे ) मोक्ष विद्या के ब्रहण करने वाले ( महाम् ) मेरे लिये ( वय: ) तीनों अवस्था के सुख को प्राप्त कीजिये | । ४७ | ।

भाषार्थ:—सब मनुष्यों को योग्य है कि जो सब से उत्तमगुण वाला सब विद्याओं में सब से बढ़कर बिद्वान् हो उस के आश्रय से अन्य अध्यापक बिद्वानों को परीक्षा करके अपनी २ कन्या और पुत्रों को उन २ के पढ़ाने थोन्य विद्वानों से पढ़वार्षे और पढ़ने वालों को भी चाहिथे कि अपनी २ अधिक न्यून बुद्धि को जान के अपने २ अनुकुल अध्यापकों की प्रीतिपूर्वक सेवा करते हुए उन से निरन्तर विद्या का प्रहण करें || ४७ ||

कोदादित्यस्याक्तिरस ऋषि:|आत्मादेवता । आष्युं ण्णिक् छन्दः । ऋषमः स्वरः ॥ अब अगले मन्त्र में ईश्वर जीवों को उपदेश करता है ॥

कों उद्दात्कस्मां अद्रात्कामों इद्दात्कामां यादात् । कामों द्वाता कामः प्रतिग्रद्वीता कामैतत्ते ॥ ४८ ॥

पदार्थ:—(क:) कीन कर्म फल की (अदात्) देता और (कस्मैं) किस के लिथे (अदात्) देता है। इन दो प्रश्नों के उत्तर (काम:) जिस की कालना सब करते हैं वह परमेश्वर (अदात्) देता और (कामाय) कामना करने वाले जीव को (अदात्) देता है। अब विवेक करते हैं कि (काम:) जिस की योगी जन कामना करते हैं वह परमेश्वर (दातां) देने वाला है (काम:) कामना करने वाला जीव (प्रतिग्रहीता) लेने वाला है। हे (काम) कामना करने वाले जीव!(ते) तेरे लिथे मैंने वेदों के द्वारा (पतत्) यह समस्त आज्ञा की है ऐसा तू निश्चय करके जान || ४८ ||

च्छा ही का व्यापार है। इसिल्ये श्रेष्ठ वेदोक्त कामों की इच्छा करनी इतर दुष्टकामों की नहीं || ४८ ||

इस अध्याय में बाहर भीतर का व्यवहार, मनुष्यों का परस्पर वर्त्ताव, आतमा का कर्मा, आतमा में मन की प्रवृत्ति, प्रथम सिद्ध योगी के लिये ईर्वर का उपदेश, ज्ञान बाहने व ले को योगाभ्यास करना, योग का लक्षण, पढ़ने पढ़ाने वालों की रीति, योग विद्या के अभ्यास करने व लों का वर्त्ताव, योगिवद्या से अन्त: करण की शृद्धि, योगाभ्यासी का लक्षण, गृह शिष्य का परस्पर व्यवहार, स्वामि सेवक का वर्त्ताव, न्यायाधीरा को प्रजा के रक्षा करने की रीति, राजपुरुष और सभासदों का कर्मी, राजा का उपदेश, राजाओं को कर्त्तव्य, परीक्षा करके सेनापित का करना, पूर्ण विद्वान को सभापित का अधिकार देना, विद्वानों का कर्त्तव्य कर्मी, ईर्वर के उपासक को उपदेश, यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले का विद्यय, प्रजाजन आदि के साथ सभापित का वर्त्ताव राजा और प्रजा के जनों का सरकार, एक शिष्य की परस्पर प्रवृत्ति, नित्य पढ़ने का विद्य, विद्या की वृद्धि करना, राजा को कर्त्तव्य, सेनापित का कर्मी, सभाष्यक्ष की किया, ईर्वर के गुणों का वर्णन, उसको प्रार्थना, श्र्योरों को युद्ध का अनुष्ठान, सेना में रहने वाले पुरुषों का कर्तव्य, ब्रह्मचर्यी सेवन की रीति और ईर्वर का जीवों के प्रति उपदेश, इस वर्णन के होने से सप्तम अध्याय के अर्थ की पष्ठाध्याय के अर्थ के साथ सक्षित जाननी चाहिये।।

पह सातवां ऋष्याय समाप्त हुआ।।।



## ओ३म्

## **त्र्रथाष्ट्रमाध्यायस्यारम्भः ॥**

थव बाठवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है।

विद्यांनि देव सवितर्दुतितानि परांसुव । यहतं तहा खासुव ॥ १ ॥

उपयाम इत्यसाङ्किरस ऋषि: । षृहस्पतिस्सोमो देवता । आर्ची ५ किङ्क्ष्यः । पश्चमः स्वरः ।।

इस के प्रथम मन्त्र से गृहस्थी धर्म के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या की कुमार ब्रह्मचारी का ब्रह्म करना चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है।। 🗶 चुप्रामगृंहीतोऽस्यादित्येश्यंस्त्वा विष्यं उदगायैच ते सोम-स्तरं रंक्षस्य मा त्वां दमन् ॥ १॥

पदार्थ:— हे कुमार ब्रह्मचारित्! चीवीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवने वाली मैं (आवित्येभ्य:) जिन्होंने अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य सेवन किया है उन सज्जनों की समा में (त्वा) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन करने वाले आप को स्वीकार करती हूं
आप (उपयामगृहीत:) शास्त्र के नियम और उपनियमों को ब्रह्मण करने वाले (अित्र) हो | हे (विष्णो) समस्त श्रेष्ठ विद्या गुण कर्म और स्वभाव वाले श्रेष्ठजन (ते)
आप का (एष:) यह गृहस्थाश्रम (सोम:) सोमलता आदि के तुल्य ऐइवर्य का बदाने वाला है (तम्) उस की (रक्षस्व) रक्षा करें | हे (उरुगाय) बहुत शास्त्रों को
पढ़ने वाले! (त्वा) आप को काम के वाण जैसे (माद्मन्) दु:ख देने वाले न होवें;
वैसा साधन कीजिये | १ |

मावार्थ:—सब ब्रह्मचर्याश्रम सेवन की हुई युवती कन्याओं को ऐसी आकाक्षा अवद्य रखनी चाहिये कि अपने सहश रूप गुण कमें स्वमाव और विद्या वाला अपने से अधिक बल्युक अपनी इच्ला के योग्य अन्तः करण से जिस पर विशेष प्रीति हो ऐसे पित की स्वयंवर विद्य से स्वीकार कर के उस की सेवा किया करें। ऐसे ही हुमार ब्रह्मचारी लोगों को चाहिये कि अपने अपने समान युवति स्त्रियों का पाणिश्र-हण करें इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुषों को सनातन गृहस्थों के धर्म का पालन करना चाहिये। और परस्पर अलन्त विषय की लोलुपता तथा वीर्य का विनाश कभी नकरें किन्तु सदा ऋतुगामी हों। दश सन्तानों को उत्पन्न करें और उन्हें अच्ली शिक्षा वैकर

अपने ऐश्वर्यं की वृद्धि कर प्रीति पूर्वंक रमण करें जैसे आपस में एक से दूसरे का वियोग अप्रीति और व्यक्तिचार आदि दोष न हों वेसा वर्ताव वर्तकर आपस में एक दूसर की रक्षा सब प्रकार सब काल में किया करें || १ ||

कदासन इत्यस्य क्रियस ऋषि:। गृहपतिर्मधवा देवता । सुरिक् पंकिन्छम्यः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों के धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

कदा खन स्त्रीरंसि नेन्द्रं सक्षसि दाशुषें। उपोषं सु मंचवन्यूय इस ते दानें देवस्य पृच्यत आदित्येभ्यंस्त्या।। २॥

पदार्थ:—हे (इन्द्र) परमैदवर्य से युक्त पति ! जिस कारण आप (कदा) कमो (चन) भी (स्तरी:) अपने स्वभाव को छिपाने वाले (न) नहीं (असि) हैं इस कारण (दाशुषे) दान देने व.ले पुरुष के लिथे (उपोप) समीप (सम्बस्ति) प्राप्त होते हैं। हे (मधवन्) प्रशंसित धन युक्त भर्ता ! (देवस्य) विद्वान् (ते) आपका जो (दानम्) दान अर्थात् अच्छी शिक्षा वा धन अर्थाद पदार्थों का देना है (इत्) वहीं (जु) शीझ (भूय:) अधिक कर के मुझ को (पृच्यते) प्रश्त होने इसी से में स्त्रों भाव से (आदित्येभ्य:) प्रति महोने हुछ देने वाले अर्थ का आश्रय करतीं हूं ॥ २॥

भाषार्थ:—विवाह की कामना करने वाली युवित स्त्रों को चाहिये कि जो छल कपट आदि आचरणों से रहित प्रकाश करने और एक हो स्त्रों को चाहने पाला जिन्तेन्द्रिय सब प्रकार का उद्योगी धार्मिक और विद्वान पुरुष हो उस के साथ विवाह करके आनन्द में रहे। | २ ||

कदाचन प्रयुच्छसीत्वस्य क्रिएस ऋपि: । आदित्यो गृहपतिर्देषता । निष्वृदाधीं पंकिञ्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का धर्मी अगले मन्त्र में कहा है ॥ कदाचन प्रश्चेच्छस्युभे निर्पासि जन्मेनी । तुरीयादिस्य सर्वन-नत इन्द्रियमा तस्थाबसुनी दिच्छादित्येभ्येस्त्या ॥ १ ॥

पदार्थ:—इस मन्त्र में नकार का अध्याहार आकाक्षा के होने से होता है। हे पने ते! आप को (कदा) कभी (चन) भी (प्र) (युच्छिति) प्रमाद नहीं करते हो तो अपने (उमे) दोनों (जन्मनी) वर्तमान और परजन्म की (पाति) निरन्तर पालते हो। हे (अ.दित्य) विद्याः गुणों में सूर्व्य के तुल्य प्रकाशमान जो (ते) अ.प के (सन्वतम्) उत्पत्ति धर्मी युक्त कार्व्य सिद्ध करने हते (इन्द्रियम्) मन अ.दि इन्द्रिय के

बश में रहें तो आप (आ) (तस्थी) (दिवि) प्रकाशित व्यवहारों में (अमृतम्) भविनाशी सुख को प्राप्त हो जावें । हे (तुरीय) चतुर्थाश्रम के पूर्ण करने वाले (आ-दित्येभ्य:) प्रतिमास के सुख के लिये (त्वा) इंद्वेन्द्रिय आप को मैं स्त्री स्वीकार करती हैं || ३ ||

भाषार्थ: -- जो प्रमादी पुरुष विवाहित स्त्री को छोड़कर पर स्त्री का सेवन करता है वह इस छोक और परलोक में दुर्भागी होता है और जो संयमी अपनी हो स्त्री का चहने वाला दूसरे की स्त्री को नहीं चाहता यह दोनों लोक में परम सुख को क्यों न भोगे। इस से सब स्त्रियों को योग्य है कि जितेन्द्रिय पति का सेवन कर अन्य का नहीं !| ह !|

यद्वी देवानामित्यस्य कृत्स ऋषि:। अ.दित्यो गृहपतिवेवता । निचृज्जगतीछ-स्य:। निष:व: स्वर: |}

फिर भी गृहाश्रम का विषय अगले मंत्र में कहा है।

गुक्को देवानुम्बन्गेति सुम्नमादित्याम् अर्थता सृह्यन्तः। आ बांडवांची सुमृतिवेवत्याद्धः इाहिच्चा वंदिन्ते विक्तरासंदादिः स्पेभ्यंस्था॥ ४॥

पदार्थ:—हे ( आदित्यास: ) स्वर्थं लो हों के समान विद्या आदि शुभ गुणां से प्रकाशमान! आप जो ( देवानाम् ) विद्वान् ( व: ) आप लोगों का यह ( यद्व: ) स्लों पुरुषों के वर्तने योग्य गृहाश्रम व्यवहार ( सुम्तम् ) सुख को ( प्रति ) ( प्रति ) निश्च-य करके प्रस करता है और (या ) जो ( अहां: ) गृहाश्रम के सुख को लिख करने वाली ( अविद्यां ) अच्छों शिक्षा और विद्याभ्यास के पाँछे विद्वान प्राप्ति का हेतु ( व-रिको वित्या) सद्यञ्यवहार का निरन्तर विद्वानदेने वाली आप लोगों को ( सुमति: ) अं ह बुद्धि श्रेष्ठ मार्ग में निरन्तर ( आ ) ( वहत्यात् ) प्रवृत्त होवे जो ( आदित्यभ्य: ) आप्तविद्वानों से उत्तन विद्या और शिक्षा जो ( व्वा ) तुम्न को ( अतत् ) प्राप्त हो ( चित् ) उस बुद्धि से हां युक्त हम दो स्लो पुरुष को ( मृहयम्त: ) सदा रुख देते रिह्ये | । ४ | ।

भाषार्थ:—विवाह करके स्त्री पुरुषों को चाहिये कि जिस २ काम से विद्या अच्छी शिक्षा बुद्धि धन सुहुद्ध व और परोपकार बढ़े उस कर्म का सेवन अवस्य किया करें ॥ ४॥

विवस्विक्षस्य कुत्त ऋषि:। गृहपतयो देवता:। आद्यस्य प्राजापत्याऽ तुष्टु प्छन्दः। गान्धारः स्वरः। श्रदित्युत्तरस्य निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मंत्र में कहा है ॥

विषंस्वन्नादिर<u>ण</u>ेष ते सोम<u>पीथस्तिस्मंन् मत्स्व । श्रदंस्मे नर्ो</u> वर्षसे द्वात<u>न</u> यदां<u>की ही दम्पंती वाममंदनुतः । पुमान् पुत्रो</u> जीयते <u>विन्दते</u> बस्वधां <u>वि</u>द्वाहांरुप एंधते गृहे ॥ ५ ॥

पदार्थ:—हे (विवस्तन्) विविध प्रकार के स्थानों में वसने वाले ( आदित्य ) अविनाशी स्वरूप विद्वान् गृहस्थ ! (एप:) यह जो (ते) अपका (सोमणीथ:) जिस में सोमलता आदि ओपधियों के रस पीने में आवे ऐसा गृहाश्रम है (तिस्तन्) उस में आप (विश्वाहा) सब दिन (मत्स्व) आनिन्दत रहो। हे (नरः) गृहाश्रम करने वाले गृहस्थो ! आप लोग (अस्मै) इस (वचसे) गृहःश्रम के वाग् व्यवहार के लिये (श्रत्) सत्य हो का (दधातन) धारण करो (यत्) जिस (गृहे) गृहःश्रम में (दम्पती) स्ले.पुरुप (वामम्) प्रशंसनीय गृहाश्रम के धर्म को (अश्चतः) प्राप्त होते हैं उस में (आशोदी) कामना देने वाला (अरपः) निष्पाप धर्मात्मा (पुनान्) पुरुपार्थी (पुत्रः) वृद्धावस्था के दुःखों से रक्षा करने वाला पुत्र (जायते) उत्पन्न होता है और वह उत्तम (वस्तु) धन को (विन्दते) प्राप्त होता है (अध) इस के अनन्तर वह (पधते) विद्या कुटुम्ब और धन के ऐश्वर्य से बढ़ता है ॥ ५॥

भावार्थ: स्त्रीषुवर्षों को चाहिथे कि अच्छों प्रोति से परस्पर परीक्षा पूर्वक स्तर्थ-बर विवाह और सत्य आचरणों से संतानों को उत्पन्न कर बहुत पेश्वर्थ को प्राप्त होके नित्य उन्नति पार्वे ॥ ५ ॥

वाममद्येत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो देवताः। त्वृदार्षा छिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी गृहस्थों को किस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है।

मामम्य संवितर्वाममु इवो दिवे दिवे वाममस्मध्येशं साबीः। मामस्य हि क्षर्यस्य देवभूरेग्या ध्रिया बांमभाजः स्याम ॥ ६॥

पदार्थ:—हे (देव) सुख देने ( सवित: ) और समस्त ऐइवर्य के उत्पन्न करने वाले मुख्यजन ! आप ( अस्मभ्यम् ) हम लोगों के लिये ( अद्य ) आज ( वामम् ) अति प्रशंसनीय सुख (ड) और आज हाँ किन्सु क्या (श्व:) अगले दिन (वामम्) उक सुख तथा (विवे दिवे) दिन दिन (वामम्) उस सुख को (सावा:) उत्पन्न कांजिये जिस से हम लोग आप की इत्पा से उत्पन्न हुई (अया) इस (धिया) श्रेष्ठ बुद्धि से (भूरे:) अनेक पदार्थों से युक्त (वामस्य) अत्यन्त सुन्दर (क्षयस्य) गृहाश्रम के बीच में (वामभाज:) प्रशंसनीय कर्म करने वाले (हि) हो (स्याम) होवें ॥ ६॥

भाषार्थ: --गृहस्थ जनों को चाहिये कि ईश्वर के अनुब्रह से प्रशंसनीय बुद्धियुक्त मङ्गलकारी गृहाश्रमो होकर इस प्रकार का प्रयत्न करें कि जिस से तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्समान काल में अत्यन्त सुखी हों ॥ ६ ॥

डपयामगृहोतोसोत्यस्य भरद्वाजऋषिः । सिवता गृहपतिदेवता । विराड् ब्राह्मचनुष्युप्छन्दः । गान्धःरः स्वरः ॥

फिर भी गृहाश्रम का धर्म अगले मंत्र में कहा है ॥

जुगुगमगृंहीतोऽसि साविष्टांऽसि चन्योधाइचंनांधा असि चन्यो मणि घेहि। जिन्नं गुज्ञं जिन्नं गुज्ञपंतिम्भगांप देवायं त्वा स-विश्रे॥ ७॥

पदार्थ:— है पुरुष ! तुझ से जैसे मैं नियम और उपनियमों से ग्रहण करीगयी हूं वैसे मैंने भाप को (उपयामगृहीत:) विवाह नियम से ग्रहण किया (असि) है जैसे आप (चनीधा:) (चनोधा:) अन्त २ के धारण करने वाले (असि) हैं और (सा-वित्र:) सिवता समस्त संतानादि सुख उत्पन्न करने वाले आप को अपना इष्ट्रेव मानवे वाले (असि) हैं वैसे मैं भी आप के निमित्त धारण करूं जैसे आप (यझम्) हद पुरुषों के सेवन योग्य धर्म व्यवहार को (जिन्व) प्राप्त हों वैसे मैं भी प्राप्त हो-ऊं और जेसे (सिवन्ने) सन्तानों की उत्पत्ति के हेतु (भगाय) धनादि सेवनीय (दे-वाय) दिव्य ऐश्वर्य के लिये (यझपतिम्) गृहाश्रम को पालने हारे आप को मैं प्रस-वारक्ष्वं वैसे आप भी (जिन्व) तृष्त की जिये ॥ ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलु०- विवाहित स्त्री पुरुपों को योग्य है कि लाभ के अनुकूल व्यवहार से परस्पर ऐक्वर्य पार्चे और प्रीति के साथ संतानोत्पत्ति का आच-रण करें || ७ ||

उपयामगृहीतोसोत्यस्य भरद्वाज ऋषि:। विद्वे देवा गृहपतयोदेवता:। आद्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:। सुशम्मेंत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः

मध्यमः स्वरः॥

े किर भी गृहस्थ को सेवने योग्य धर्म्य का उपदेश भगले मन्त्र में किया है ॥

<u>खप्यामर्गृहीतोऽसि सुदाम्मीसि सुप्रातिष्ठानो वृहदंखाय</u> नर्मः ।

विद्वेभगस्ता देवेभगं <u>एष ते</u> योतिर्विद्वेभगस्त्वा देवंभगंः॥ ८॥

पदार्थ:—है पते ! जैसे मैंने आप को (उपयामगृहांत:) नियम उपनियमों से प्र-हण किया है (असि) हैं और (सुप्रतिष्ठान:) अच्छो प्रतिष्ठा और (स्थामां) अच्छे घर करते (असि) हो उन (बृहदुक्षाय) अत्यन्त कार्य देने वाले आप को (नमः) अ-च्छे प्रकार संस्कार किया हुआ अब चित्त का प्रसन्ध करने वाला उचित समय पर देती हूं जिस आप का (एप:) यह (योनि:) सुखदायक महल है (त्वा) उस आ-प को (विश्वेश्यः) सब (देवेश्यः) दिव्य सुखों के लिथे सेवन करती हूं और (त्वा) आप को (विश्वेश्यः) समस्त (देवेश्यः) विद्वानों के लिथे नियुक्त करती हूं यैसे आ-प मुझको काँजिथे ॥ ८॥

भाषार्थ:—जिस गृहाश्रम भोगने की इच्छा रखने वाले पुरुष का सब ऋतुओं में सुख देने वाला घर हो और आप वीर्यवान हो उसी को स्त्री पितमाव से स्वीकार करें और उस के लिये यथोचित समय पर सुख देवें तथा आप उस पित से उचित समय में दिन्य सुख भोगें और वे स्त्री पुरुष दोनों विद्वानों का सरसंग किया करें || ८ ||

उपयामगृहातोऽसीन्यस्य भरद्वाज ऋषि:।गृहपतयो विद्वेदेवा देवता:।

आचस्य प्राजापत्या गायत्री, षृहस्पतिसुतस्थेति मध्यमस्याप्युं प्णिक्, अहमित्युत्तरस्य स्वराडार्षः पंक्तिश्चछन्दांसि । क्रमेणवड्जर्थमपञ्चमाः स्वराः॥

फिर गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है।।

<u>चप्यामगृंहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देवसोम तुऽइन्दोरिनिहः</u>

यार्थतः । पत्नीवतोग्रहीरा। ऋड्यासम् । अहम्पुरस्ते दृहम्ब-स्ताचदुन्तरिक्षन्तदुं मे पितार्भृत्।अहथस्यीमुम्पती दृद्वाहिन्दे-

वानीम्पर्मङ्कुहा यत् ॥ ६ ॥

पदार्थ:—हे (सोम) पेदवर्यं सम्पन्न (देव) अति मनोहर पते! जिस आप को मैं कुमारी ने (उपयामगृहीत:) विवाह नियमों से स्वीकार किया (असि) है उन (इन्दोः) सोम गुण सम्पन्न (इन्द्रियावतः) बहुत धन वाले और (पत्नीवतः) यञ्च समय्य में प्रशंसनीय स्त्री प्रहण करने वाले (इहस्पति द्वास्य) और बड़ी वेद वाणी के पालने वाले के पुत्र (ते) आप के गृह और संवन्धियों को प्राप्त होके में (परस्तात्) आगे और (अवस्तात्) पीछे के समय में (ऋध्यासम्) सुखों से बढ़ती जाऊं।

(यत्) जिस (देवानाम्) विद्वानों की (गुहा) बुद्धि में स्थित (अन्तरिक्षम्) सम्बं विद्वान की मैं (पिन) प्राप्त होती हूं उसी की तू भी प्राप्त हो और जो (में) मेरा (पिता) पालन करने हारा (अभूत) हो (अहम्) मैं (उभयत:) उसके अगले पि-छले उन शिक्षा विषयों से जिस (सूर्यम्) चर अचर के आत्माकप परमेदवर को (इदर्श) देखें उसी को तूमी देखा। ।।

भाषार्थ: स्त्री भार पुरुष विवाह से पहिले परस्पर एक दूसरे का परीक्षा कर के अपने समान गुण कर्म स्वभाव रूप बल आरोग्य पुरुषार्थ और विद्या युक्त होकर स्वयंवर विधि से विवाह करके ऐसा यत्न करें कि जिस से धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्धि को प्राप्त हों जिस के मत्ता और पिता विद्यान न हों उनके संतान भी उत्तम नहीं हो सकते इस से अच्छी शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्रहण करके हो गृहाश्रम के आचरण करें इस के पूर्व नहीं ॥ १॥

अग्ना २।। इ पत्नीविक्तत्यस्य भरद्वाजऋषि:। गृहपतयो देवता:। विराइ आह्नो वृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:।।
स्त्री अपने पुरुष की किस प्रकार से प्रशंसा और प्रार्थना करे इस विषय का
उपदेश अगले मंत्र में किया है।।

अग्ना । इ पत्नीवन्तमु जुर्देवन त्वष्ट्रा सोर्मिन्य स्वाहां । प्रजा-पंतिश्वासि रेनोधा रेनो मिर्य धहि प्रजापंतरते वृष्यो रेनोधसो रेनोधार्मशीय ॥ १०॥

पदार्थ:—हे (अग्ने) समस्त छुछ पहुंचाने वाले स्वामिन ! (सजूः) समीन प्रीति करने वाले आप मेरे (देवेन) दिव्य छुछ देने वाले (व्वष्टा) समस्त दुःस विनाश करने वाले गुण के साथ (स्वाहा) सन्यवाणी युक्त किया से (सोमम्) सोम
वल्ली आदि ओषधियों के विशेष आसव को (पिय) पीओ!हे (पर्कावन्) प्रशंसनीय
यहा सम्बन्धिनो स्त्रों को ब्रहण करने (ब्रुपा) वीर्च्य सीचने (रेतोधाः) वीर्च्य धारण
करने (प्रजापतिः) और सन्तानादि के पालने वाले! जो आप (असि) हैं वह (मथि) मुझ विवाहित स्त्री में (रेतः) वीर्च्य को (धिहि) धारण कीर्जिये हें स्वामिन्!
में (बुष्णः) वोर्च्य सीचने (रेतोधसः) पराक्रम धारण करने (प्रजापतेः) सन्तान
आदि की रक्षा करने वाले (ते) आप के संग से (रेतोधाम्) वोर्च्य वान् अति पराकम युक्त पुत्र को (अशीय) प्राप्त होजं।। १०॥

भाषार्थ:-- इस संसार में मनुष्य जन्म को पाकर स्त्री और पुरुष महाचर्मी उसम

विचा अच्छागुण और पराक्रम युक्त होकर विवाह करें विवाह की मर्यादा ही से स-न्तानों की उत्पत्ति और रितकीडा से उत्पन्न हुए सुख को प्राप्त होकर नित्य आनन्द में रहे विना विवाह के स्त्री पुरुष व पुरुष स्त्री के समागम की इच्छा मन से भी न करें जिससे मनुष्य व्यक्ति की बढ़ती होवे इससे गृहाश्रमका आरम्म स्त्री पुरुष करें ॥१०॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य भरद्वाजऋषिः । गृहपतयो देवताः । निचृदा-

र्ष्यनुषुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ फिर गृहस्थों का धर्म अगले मंत्र में कहः है ॥

जुप्यामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियां जनो हरिभ्यान्स्या । इ-व्याजिना स्थं सहस्रोमा इन्द्रांय ॥११ ॥

पदार्थ:—हे पते ! आप ( उपयामगृहोत: ) गृहाश्रम के लिये ग्रहण किये हुए ( अ-ति ) हैं ( हारियोजन: ) बोड़ों को जोड़ने वाले सारिथ के समान(हरि: ) यथायो-व्य गृहाश्रम के व्यवहार को चलाने वाले ( असि ) हैं इस कारण ( हरिभ्याम् ) अ-व्छी शिक्षा को पाए हुए बोड़े से युक्त रथ में विराजमान (त्वा ) आप की मैं सेवा कक्ष तुम लोग गृहाश्रम करने वाले ( इन्द्राय ) परमैदवर्य्य की प्राप्ति के लिये ( सहसो-मा: ) उत्तम गुण युक्त होकर ( हर्यों: ) वेगादि गुण वाले बोड़ों को ( धाना: ) स्था-नादिकों में स्थापन करने वाले ( स्थ ) होओ ॥ ११ ॥

भावार्ध: - ब्रह्मचर्ळा से शुद्ध शरीर समुण सिंद्ध युक्त होकर विवाह की रुच्छा करने वाले कन्या और पृथ्य युवावस्था की पहुंच और परस्पर एक दूसरे के धन की उभाव को अच्छे प्रकार देखकर विवाह करें नहीं तो धन के अभाव में दु:ख की उभाव होती है, इसलिये उक गुणों से विवाह कर आनिन्दत हुए प्रति दिन ऐइक्यें की उभाव करें ॥ ११ ॥

यस्त इत्यस्य भरद्वाजऋषिः । गृहपतयोदेवताः । आर्षापंकिश्छन्दः ।

पञ्चम: स्वर: ॥

**अब गृहस्**थों की मित्रता अगले मंत्र में कहीं है ॥

यस्ते अञ्चसतिर्भेचो यो ग्रोसिन्स्तर्यं त द्रष्ट्यंजुषस्तृतस्तीन-स्य ज्ञास्तोक्थस्योपंदृतस्योपंदृतो अक्षयामि ॥ १२ ॥

पदार्थः — हे प्रियवीर पुरुष मित्र ! जो आप (उपहृतः ) मुझ से सत्कार प्राप्त हो-कर (अश्वसनिः) अम्ति अदि पदार्थं वा घोडों और (गोसनिः) संस्कृत वाणी भूमि और विद्या प्रकाश आदि अच्छे पदार्थों के देने वाले (असि ) हैं उन (शस्तोकथस्य) प्रशंसित ऋ ग्वेद के स्क युक्त (इष्टयज्ञुष:) इष्ट सुस्न कारक यजुर्थंद्र के भागयुक्त वा (स्तुतस्तोमस्य) सामवेद के गान के प्रशंसा करने हारे (ते) आप का (य:) जो (भक्ष:) चाहना से भोजन करने योग्य पदार्थं है उस को आप से सत्हत हुई में (भक्षयामि) भोजन कर्क । तथा हे प्रिये सिन्त ! जो त् अग्नि आदि पदार्थं वा बोड़ों के देने और संस्कृत वाणी भूमि विद्या प्रकाश आदि अच्छे २ पदार्थं देने वाली है उस प्रशंसनीय ऋक स्कू भाग से स्तुति किये हुए सामगान करने वाली तेरा जो यह भोजन करने योग्य पदार्थं है उस को अच्छे मान से युलाया हुआ में भोजने करता हूं ॥ १२ ॥

भावार्थ:—अच्छे उत्साह बढ़ाने वाले कामों में गृहाश्रम का आचरण करने वाली स्त्री अपनी सहेलियों वा पुरुष गृहाश्रमी पुरुष अपने इष्ट्रिमित्रऔर बन्धु जन आदि को बुलाकर भोजन आदि पदार्थों से यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करें और परस्पर भी सदा प्रसन्न रहें और उपदेश शास्त्रार्थ विद्या वाग्विलास की करें || १२ || देवहतस्येत्यस्य भारद्वाज ऋषि: । गृहपतयो विद्वेदेवा देवता: । मनुष्यकृतस्येत्यस्य साम्युष्णिक्, पितृकृतस्येत्यस्य त्यात्मकृतस्येत्यस्य च निचृत् साम्युष्णिक्, पनस इत्यस्य प्राजापत्योष्णिक्, यच्चाहमित्यस्य निचृदार्युंष्णिक् च छन्दांति

ऋषभ: स्वग: ]]

अगलं मंत्र में पूर्वीक विषय प्रकारान्तर से कहा है ॥

देवकृत्वस्पैनेसोऽब्धार्जनमस्य मनुष्णुकृत्स्पैनेसोऽब्धार्जनमस्यि
पितृकृत्वस्पैनेसोऽब्धार्जनमस्यात्मकृत्यनेसोऽब्धार्जनमस्येनेस एनसोऽब्धार्जनमसि । यहाहमनो विद्यार्श्वकार धवाविद्यास्तर्थः
सर्वस्पैनेसोऽब्धार्जनमसि ॥ १३ ॥

पदाथ:—हे सब के उपकार करने वाले मित्र ! आप (देवहतस्य) दान देने वाले के (एनस:) अपराध के (अवयजनम्) विनाश करने वाले (आस) हो (प्रह्मच्य-कृतस्य) साधारण मनुष्यों के किये हुए (एनस:) अपराध के (अवयजनम्) विनाश करने वाले (असि) हो (पितृहतस्य) पिता के किये हुए (एनस:) विरोध आच-रण के (अवयजनम्) अच्छे प्रकार हरने वाले (असि) हो (आत्महतस्य) अपने क-र्पंख्य (एनस:) पाप के (अवयजनम्) दूर करने वाले (असि) हो (एनस:) (एनस:) अधमा अधमा के (अवयजनम्) नाश करने हारे (असि) हो (विद्वान्) जानता हुआ में (यत्) जो (च) कुछ भी (एन:) अधमा चरण (चकार) किया,

करता हूं वा करूं (अविद्वान् ) अनजान मैं (यत् ) जो (च) कुछ भी किया, करता हूं वा करूं (तस्य ) उस (सर्पस्य ) सब (पनसः ) दुष्ट आचरण के (अवयजनम् ) दूर करने वाले आप (असि ) हैं ॥ १३॥

भाषार्थ:—इस मन्त्र में उपमालक्कार है—जैसे विद्वान् गृहस्थ पुरुष दान आदि अ-इक्के काम के करने वाले सनों के अपराध दूर करने में अच्छा प्रयत्न करें। जाने वा विना जाने अपने कर्सव्य अर्थान् जिस को किया चाहता हो उस अपराभ को आप छोड़ें तथा औरों के किथे हुए अपराध को औरों से दुड़ावें वैसे कर्म करके सब लोग यथोक समस्त सुखों को प्राप्त हों।। १३।।

संवर्षसेत्यस्य भरक्षाजऋषिः । गृहपतयो देवताः । विराडार्पा त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी मित्रहत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।। संबर्धसा पर्यसा सन्त्रन्भिरगंनमहि मनसा सथ शिवेन। स्वष्टां सुद्रश्चो विद्धातु रायोऽनुंमाई तन्त्रो यहिलिष्टम्॥ १४॥

पदार्थ:—हे सब विद्याओं के पढ़ने (त्वष्टा) सब व्यवहारों के विस्तार कारक (सुदत्र:) अत्युक्तम दान के देने वाले विद्यन् ! आप (संशिवेन) ठीं के र कल्याणका-रक (मनसा) विज्ञानयुक्त अन्त:करण (संवर्चसा) अच्छे अध्ययन अध्यापन के प्र-काश (पयसा) जल और अज से (यत्) जिस (तत्व:) शरीर की (विलिष्टम्) विशेष न्यूनता को (अनुनाष्ट्री) अनुकृल शुद्धि से पूर्ण और (राय:) उक्तम धनों को (विद्यातु) विधान करो उस देह और शरीरों को हम लोग (तन्भः) जहाचर्य भूतादि सुनियमों से बलयुक्त शरीरों से (समगन्महि) सम्यक् प्राप्त हों।। १४।।

भाषार्थ:—इस मन्त्र में वाचक तुप्तीपमाल द्वार है— मनुष्यों को चाहिये कि पुर-षार्थ से विद्या का सम्पादन, विधिपूर्वक अन्न और जल का संवन, शरीरों को नि-रोग और मन की धर्म में निषेश कर के सदा खुल की उन्नति करें और जो कुछ न्यू-नता हो उस को परिपूर्ण करें, तथा जैसे कोई मित्र तुम्हारे सुल के लिये वर्त्तां वर्ते यैसे उस खुल के लिये आप भी वर्तों ॥ १४॥

सिमन्द्रमित्यस्यातृऋंपि:। गृहपतिदंवता । भुरिगार्षो त्रिप्दुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कर मित्र का इत्य अगले मन्त्र में कहा है ॥
सिमेन्द्रणो मनेसा नेषि गोभिः सर्थ सूरिभिर्मधबन्दसर्थ स्वस्त्या।
संब्रह्मंबा देवकृतं यद्क्ति सन्देवानां र सुमृतौ गुज्ञियां ना र स्वाहां १९।

पदार्थ:—है (मघवन्) पूज्य धनयुक्त (इन्द्र) सत्यविद्यादि ऐइवर्ध्य सहित (सम्) सम्यक् पढ़ाने और उपदेश करने हारे! आप जिस से (सम्) (मनसा) उत्तम अन्तः करण से (सम्) अच्छे मार्ग (गोभिः) गौओं वा (सम्) (ख्वस्त्या) अच्छे २ वचन युक्त सुख कप व्यवहारों से (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (ब्रह्मणा) वेद के विद्वान वा धन से विद्या और (यत्) जो (यिद्वायानाम्) यद्ग के पालन करने व ले को करने योग्य (देवानाम्) विद्वानों की (खाहा) सत्य वाणी युक्त (सुमती) श्रष्ट बुद्धि में (देवहतम्) विद्वानों के किये कम्म हैं उन को (खाहा) सत्य वाणी से (नः) हम लोगों को (संबंधि) सम्यक् प्रकार से प्राप्त करते हो, इसी से आप इन्मारे पूज्य हो ॥ १५॥

भाषार्थ: - गृहस्थ जनों को विद्वान् छोग इस छिये सत्कार करने योग्य हैं कि वे बाछकों को अपनी शिक्षा से गुणवान् और राजा तथा प्रजा के जनों को पेदवर्ख युक्त करते हैं || १५ ||

संवर्जसा इत्यस्यात्रिऋषिः । गृहपतिर्देवता । विराडापी त्रिष्टुण्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मनत्र में कहा है ||

संबद्धेमा पर्यमा सन्तन्भिरगंनमहि मर्नमा सक्ष शिवेनं । स्व-ष्टां सुद्द्यो विदंषातु रायोऽनुंमार्ष्टु तन्त्रो यहिलिष्टम् ॥ १६ ॥

पदार्थ:—हे आप्त अत्युक्तम विद्वानो ! आप लोगों की सुमित में प्रवृत्त हुए हम लोग जो अत्य लोगों के मध्य (सुदन्न:) विद्या के दान से विज्ञान को देने और (ख-ष्टा) अविद्यादि दोगों का नष्ट करने वाला विद्वान हम को (संवच्चेंसा) उत्तम दिन और (पयसा) रात्रि से (संशिवेन) अति कल्याणकारक (मनसा) विज्ञान से (य-त्) जिस (तन्व:) शरीर के हानिकारक कर्म्म को (अनुमाण्डु ) दूर करे और (रा-य:) पृष्टिकारक द्रव्यों को (विद्यानु) प्राप्त करार्वे उस और उन पदार्थों को (सम-गन्महि) प्राप्त हों।। १६॥

भाषार्थ:—मनुष्यों को चाहिये कि दिन रात उत्तम सज्जनों के सङ्ग से धर्मार्थ काम और मोक्ष की सिद्धि करते रहें ॥ १६॥

भाता रातिरित्यस्यात्रिऋषः । विश्वेदंवा गृहपतयो देवताः । स्वराडार्षा त्रिष्टुप् छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के कर्मों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

धाता रातिः संबितेदं जुंबन्ताम्यजापंतिर्निधिपा देवो अगिनः।

त्वष्टा विद्णुंः <u>प्र</u>ज्ञवां सथं रराणा यजमानाय द्रविणन्द्धा<u>त</u> स्वाहां ॥ १७॥

पदार्थ:—हे गृहस्थो! तुम (धाता) गृहाश्रम धर्मा धारण करने (राति:) सब के लिये सुख देने (सिवता) समस्त ऐइवर्च्य के उत्पन्न करने (प्रजापित:) सन्ता-नादि के पालने (निधिपा:) विद्या आदि ऋ द्धि: अर्थात् धन समृद्धि के रक्षा करने (देव:) दोषों के जातने (अग्नि:) अविद्या रूप अन्धकार के दाह करने (त्वष्टा) सुख के बढ़ाने और (विष्णु:) समस्त उत्तम २ शुभ गुण करमों में व्याप्त होने वालों के सदश हो के (प्रजया) अपने सन्तानादि के साथ (संरराणा:) उत्तम दानशील होते हुए (स्वाहा) सत्य किया से (इदम्) इस गृहकार्य्य को (ज्ञषन्ताम्) प्रीति के साथ सेवन करो और बलवान् गृहाश्रमी होकर (यजमानाय) यहा का अनुष्टान करने वाले के लिये जिस बल से उत्तम २ बली पुरुष बढ़ते जायं उस (द्रविणम्) धन को (द्रधात) धारण करो ॥ १७॥

भाषार्थ: — गृहस्थों को उचित है कि यथायोग्य रीति से निरन्तर गृहाश्रम में रह के अच्छे गुण कम्मों का धारण ऐश्वर्य्य की उन्नति तथा रक्षा प्रजा पालन योग्य पुरुषीं को दान दु: खियों का दु:ख छुड़ाना शत्रुओं को जीतने और शरीरात्म बल में प्रवृत्ति आदि गुण धारण करें ॥ १७ ॥

सुगाव इत्यस्यात्रिऋष्यः । गृहपतयो देवताः । आर्षा त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ फिर गृह कर्म्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुगा वो दे<u>वाः</u> सदंना अकम्मे य त्रांज्यमेद्ध सर्वनं जु<u>षाः</u> षाः। भरमाणा वहंमाना ह्वी १९ ग्रस्मे धंत्र वसवो वस्<u>ति</u> स्वा-हां॥ १८॥

पदार्थ:—है (वसव:) श्रंष्ठ गुणों में रमण करने वाले (देवा:) व्यवहारी जनो! (ये) जो (स्वाहा) उत्तम किया से (इदम्) इस (सवनम्) ऐइवर्ध्य का ( ज़ुपा-णा:) सेवन (भरमाणा:) धारण करने (वहमाना:) औरों से प्राप्त होते हुए हम लोग तुम्हारे लिये (सुगा) अच्छी प्रकार प्राप्त होने योग्य (सदना) जिन के निमित्त पुरुषार्थ किया जाता है उन (हवीं पि) देने लेने योग्य (वस्नि) धनों को (अक-माँ) प्रकट कर रहे और (आजग्म) प्राप्त हुवे हैं (अस्मे) हमारे लिये उन (वस्नि) धनों को आप (धत्त) धरो ॥ १८ ॥

भावार्थ:-- जैसे पिता पति स्वशुर सास् मित्र और स्वामी पुत्र कन्या स्त्री स्नुपा

सक्षा और मृत्यों का पालन करते हुए सुक देते हैं बैसे पुत्रादि भी इन की सेवा कर-ना उचित समझें || १८ ||

> यांत्र|| आवह इत्यस्यात्रिक्षंवि: । विश्वेदेवा; गृहपतयो देवता: । भुरिगाणीं त्रिष्टुप्छन्द: । धेवत: स्वर: || फिर भी घर का काम अगले मंत्र में कहा है ||

याँ २॥ आषं इ उद्यातो देव देवाँस्तान्येर प्रस्ते ग्रंगने मधस्थे। ज्ञ क्षिवार्षः पष्टिवारसंख्य विद्ये सुङ्ग्रम्मेर स्वरातिष्ठतानु स्वाइ।॥ १९॥

पदार्थ:—हे (देव) दिव्य स्वभाव वाले अध्यापक ! तू (स्व) अपने (सधस्थे) साथ बैठने के स्थान में (यान) जिन (उशत:) विद्या आदि अच्छे २ गुणों को का-मना करते हुए (देवान्) विद्वानों को (आ) (अवह:) प्राप्त हो (तान्) उन को धमा में (प्र) (श्रेरय) नियुक्त कर । हे गृहस्थ '/जिक्षिवांतः) अब खाते और (पिवांसः) पानी पीते हुए (विद्वे) सब तुम लोग (स्वाहा) सत्यवाणी में (धमम् ) अब मौर यज्ञ तथा (अस्म्) श्रंष्ठ बुद्धि वा (स्व) अत्यंत सुख को (अनु) (आ) (ति-ष्ठत) प्राप्त होकर सुखी रहो ॥ १९॥

भावार्थ:—इस संसार में उपदेश करने वाले अध्यापक से विद्या और श्रेष्ठगुण को प्राप्त जो बालक सत्य धर्म्म कर्म वर्सने वाले हों वे सुख भागी हों और नहीं ॥१९॥

वयमित्यस्यात्रिक्षंषिः । गृहपतयो देवताः । स्वराडार्षा त्रिष्टुप्छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

अब व्यवहार करने वाले गृहस्थ के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

बुष्ठ हि स्वां प्रयति युक्के अस्मिक्तरने होतां रुमवृंणीमहीह। ऋधंगया
ऋषंगुताशंमिष्ठाः प्रजानन्यक्रमृपंचाहि विद्वान् स्वाहां ॥ २०॥

पदार्थं:—हे (अग्ने) ज्ञान देने वाले! (वयम्) हमलोग (इह) (प्रयति) इस
प्रयक्त साध्य (यज्ञे) गृहाश्रम क्य यज्ञ में (त्वा) तुझ को (होतारम्) सिद्ध करने
वाला (अशुणीमहि) प्रहण करें (विद्वान्) सब विद्या युक्त (प्रजानन्) कियाओं के
जानने वाले आप (ऋषक्) समृद्धि कारक (यज्ञम्) गृहाश्रम क्य यज्ञ को (स्वाहा)
शास्त्रोक्त किया से (उप) (बाहि) समीप प्राप्त हो (उत) और केवल प्राप्त हो नहीं
किन्तु (अया:) उस से दान सत्सीग श्रेष्ठ गुण वालों का सेवन कर (हि) निश्चय
करके (अस्मिन्) इस (ऋषक्) अच्छो ऋदि सिद्धि के बढ़ाने वाले गृहाश्रम के निमिन्त
में (अश्मिष्ठा:) शांत्यादि गुणों को प्रहण करके सुली हो ॥ २०॥

भाषार्थः—सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उस को उसी काम में प्रवृत्त करें || २० ||

देवा गात्वित्यस्यात्रिऋषि: । गृहपतयो देवता: । स्वराडाम्युं ष्णिक्

छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी गृहरूथों का कर्म अगले मन्त्र में कहा है।।

देवां गातुविदो गातुं बित्वा गातुर्मित । मनंसस्पत हमन्देव यज्ञर स्वाहा वाले घाः॥ २१॥

पदार्थ:—हे (गातुनिद:) अपने गुण कर्म और स्वभाव से पृथिवो के जाने आने को जानने (देवा:) तथा सत्य और असत्य के अत्यन्त प्रशंसा के साथ प्रचार करने वाले विद्वान् लोगो! तुम (गातुम्) भूगर्भ विद्या युक्त भूगोल को (वित्रवः) जान कर (गातुम्) पृथिवी राज्य आदि उत्तम कार्मों के उपकार को (इन् ) प्राप्त हृजिये। हे (मनसल्पते) इन्द्रियों के रोकने हारे (देव) श्रेष्ठ विद्याबोध सम्पन्न विद्वानो! तुम में से प्रत्येक विद्वान् गृहस्थ (स्वत्हा) धर्म बढ़ाने वाली किया से (इमम्) इस गृहा-श्रम कप (यद्मम्) सब सुख पहुंचाने वाले यद्म को (वाते) विशेष जानने योग्य व्यव-हारों में (धा:) धारण करो॥ २१॥

भाषार्थ: —गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त प्रयत्न के साथ भूगर्भ विद्याओं को जान इन्द्रियों को जीत परोपकारों हो कर और उत्तम धर्म से गृहाश्रम के व्यवहारों को उन्नति देकर सब प्राणी मात्र को सुखी करें ॥ २१॥

यज्ञयज्ञमित्यस्यात्रिऋषाः । गृहपतयो देवताः । भुरिक् साम्न्युष्णिक्छन्दः । अध्यमः स्वरः । एष इत्यस्य विराडार्वा बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

े फिर गृहस्थों के लिये विशेष उपदेश अगले मनत्र में किया है ॥
यहां यहां यहां च्छा प्रहापंति इच्छा स्वां घो नि इच्छा स्वाहां । एष तें
यहां यहापते सहस्कावाकः सर्वेषी रस्तञ्जुंषस्य स्वाहां ॥ २२॥

पदार्थ:—हे (यज्ञ) सत् कम्मों से संगत होने वाले गृहाश्रमी ! तू (स्वाहा) सत्यर किया से (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार पूर्वक गृहाश्रम को (गच्छ) प्राप्त हो (यज्ञप-तिम्) संग करने योग्य गृहाश्रम के पालने वाले को (गच्छ) प्राप्त हो (स्वाम्) अपने (योनिम्) घर और स्वभाव को (गच्छ) प्राप्त हो (यज्ञपते) गृहाश्रम धर्मी पालक तू (ते) तेरा जो (एव) यह (सहस्कृतवाक:) ऋग् यज्ञ: साम और अधर्व वेद के स्कृत और अनुवाको से कथित (सर्ववीर:) जिस से आत्मा और शरीर के पूर्णवल युक्त समस्त

बीर प्राप्त होते हैं (यञ्च: ) प्रशंसनीय प्रजा की रक्षा के निम्न विद्या प्रचार रूप यज्ञ है (तम्) उसका त् (स्वाहा) सत्य विद्या न्याय प्रकाश करने वाली वेद वाणी किया से (ज्ञुषस्व) प्रोति से सेवन कर ॥ २२॥

भाषार्थ:—प्रजा जन गृहस्थ पुरुष बड़े २ यहाँ से घर के कार्थ्यों को उत्तम रीति से करें राजभिक राजसहायता और उत्तम धर्मा से गृहाश्रम को सब प्रकार से पारुं और राजा भी श्रेष्ठ विद्या के प्रचार से सब को संतुष्ट करे। । २२ ।।

माहिभू रित्यस्यात्रिऋषिः । गृह्वतयो देवताः । आद्यस्य याञ्चण्युण्णिक् छन्दः । अर्थाः स्वरः । उद्यम्भस्य शुनःशेष ऋषिः । भुरिमार्षी विष्टुण्छन्दः ।

धंवत: स्वर: | नम इत्यस्यासुरी गायत्री छन्दः । षष्ठ्तः स्वरः || अब अग्रुते मन्त्र में राजा के लिधे उपवेश किया है ||

माहिं भूम्मी पृद्धिः चुरुक्ष हि राजा वर्षणर्चकार सूर्यीं प्र न्यामन्त्रेत्वा है। अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापंचका हृद्यादि-धिक्षत् । नमी वर्षणायाभिष्ठिती वर्षणस्य पार्चाः ॥ २३॥

पदार्थ:—हे राजन समापते ! तू (वरणाय) उत्तम ऐश्वर्ध्य के वास्ते (उहम्) धहुत गुणें से गुक्त न्याय की (अकः) कर (सूर्याय) चराचर के आत्मा जगदीश्वर के
विज्ञान होने (सूर्य्याय) और प्रजागणों को यथायेग्य धर्म प्रकाश में चलने के लिये
(पन्धाम्) न्याय मार्ग को (चकार) प्रकाशित कर (उत और कमी (अपवका) झूंड
बोलने वाला (हृदयाविधः) धर्मात्माओं के मन को संताप देने वाले के (चित्) सहश (पृदाकः) खोटे वचन कहने वाला (मा) मत हो और (अहिः) सर्ण के समान कोधक्षी विष का धारण करने वाला (मा) मत (भूः) हो और जैसे (ब्रुक्णस्थ) बीर गुण वाले तेरा (अभिष्ठितः) अति प्रकाशित (नमः) बज्रुक्षप दण्ड और
(पाशः) बंधन करने की सामग्री प्रकाशमान रहे यैसे प्रयक्त को सदा किया कर ॥२३॥
भावार्थ:—प्रजाजनों को चाहिये कि जो विद्वान इन्द्रियों का जीतने वाला ध्रम्मी-

त्मा और पिता असे अपने पुत्रों को येसे प्रजा की पालना करने में अति चिन्न लगावें और सब के लिये जुछ करने वाला सत्युरुप हो उसी को सप्पापित करें और राजा वा प्रजाजन कभी अधर्म के कामों को नकरें जो किसी प्रकार कोई करे तो अपराध के अनु जुकूल प्रजा राजा को और राजा प्रजा को दण्डदेवे किन्तु कभी अपराधों को दण्ड दिन् ये विना न छोड़े और निरपराधों को निष्प्रयोजन पीड़ा न देवे इस प्रकार सब कोई न्यायमार्ग से धर्माचरण करते हुए अपने २ प्रत्यक कामों के चितवन में रहें जिस से

अधिक मित्र, थोड़े प्रीति रखने वाले, और शत्रु नहीं और विद्या तथा धर्मों के मा-गों का प्रचार करते हुए सब लोग ईश्वर की भक्ति में परायण हो के सदा सुखी र-हैं॥ २३॥

भग्नेरनीकसित्यस्यात्रिऋषिः । गृहपतिदेवता । आपीतिष्टु प्छन्दः 🗓 धेवतः स्वरः ॥ अव राजा और प्रजाजन गृहस्थों के लिये उपदेश अग्ले मंत्र में किया है ॥ अग्नेरनीकम्पणं आ विवेशापान्यात् प्रति रक्षेत्रसुर्य्यम् । दमें दमें सिमिधं यक्ष्याने प्रति ते जिह्ना घृतसुरुचंरण्यत् स्वाहां ॥२४॥

पदार्थ:—हे गृहस्थ ! तू (अग्ने:) अग्नि की (अनीकम्) छपट कपी सेना के प्रभाव और (अप:) जलों को (आ) (विवेश) अच्छो प्रकार समझ (अपाम्) उत्तम व्यवहार सिद्धि कराने वाले गुणों को जान कर (नपात्) अविनाशिस्वकप तू (असुर्यम्) मेघ और प्राण आदि अचेतन पदार्थों से उत्पन्न हुए सुवर्ण आदि धन की (प्रतिरक्षन्) प्रत्यक्ष रक्षा करता हुआ (दमे दमे) घर घर में (सिमधम्) जिस किया से डीक २ प्रयोजन निकले उसको (यिक्ष) प्रचार कर और (ते) तेरी (जिह्दा) जीभ (घृतम्) घी का स्वाद लेवे (स्वाहा)। सत्य व्यवहार से (उत) (चरण्यत्) देह आदि साधनसमृह सब काम किया करे ॥ २४॥

भावार्थः — अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं इस से शृहस्थ-जन विशेष कर अग्नि और जल के गुणों को जानें और शृहस्थ के सब काम सत्य व्य-वहार से करें !! २४ !!

समुद्रेत इत्यस्यात्रिक्रं वि: । गृहपतिर्देवता । भुरिगार्प। पंतिश्खन्द: । पंचम: स्वरः ॥
्रिप्ता के लिये उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

समुद्रे ते हृदंयम्प्स्तुन्तः सं त्वां विशान्त्वोषंधीकृतापः । युज्ञस्यं त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तीं नमी बाके विधेम् यत्स्वाहां ॥ २५ ॥

पदार्थ:—हे (यज्ञपते) जैसे गृहाश्रम धर्म के पालने हारे ! हम लोग (स्वाहा) प्रेमास्पद वाणी से (यज्ञस्य) गृहाश्रमानुकूल व्यवहार के (स्कोकों) उस प्रबन्ध कि जिस में बेद के वचनों के प्रमाण से अच्छी २ वातें हैं और (नमोवाके) वेद प्रमाण सिद्ध अब और सत्कारादि पदार्थों के वादानुवाद रूप (समुद्रे) आर्द्र व्यवहार और (अप्दु) सब के प्राणों में (ते) तेरे (यत्) जिस (हृद्यम्) हृदय को संनुष्टि में (विषेम) नियत करें वैसे उस से जानी हुई (ओषधी:) यव गेहूं चना सोमलतादि

सुख देने बाले पदार्थ ( था ) ( विशतु ) प्राप्त हों ( उत ) और न केवल ये ही किन्तु ( आप: ) अच्छे जल भी तुझ को सुख करने वाले हों || २५ ||

भाषार्थ: इस मंत्र में वाचकलु०-पदाने और उपदेश करने वाले सज्जन पुरुष गृ-हस्थों को सत्य विद्या की महण कराकर अच्छे यत्नों से सिद्ध होने योग्य घर के का-मों में सब को युक्त करें जिस से गृहाश्रम चाहने और करने वाले पुरुष शरीर और अपने आत्मा का बल बढ़ायें ॥ २५॥

देवीराप इत्यस्यात्रिक्रिष्टि: । गृहपतयो देवताः । स्वराडार्पा वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब विवाहित स्त्रियों को करने योग्य उपदेश अगले मंत्र में किया जाता है ॥ 🗡 देवीराप एव वो गर्भस्त छ सुन्नी तुछ सुर्भृति विवभृत । देवें सो - मैव तें लोकस्तिस्म व्हान्च वश्व पिरंच वश्व ॥ २६ ॥

पदार्थः—है (आपः) समस्त शुम गुण कर्म और विद्याओं में व्याप्त होने वाली (देवाः) अति शोभा युक्त स्त्री जनो ! तुम सब (यः) जो (एयः) यह (वः) तुम्हारा (गर्भः) गर्भ (लोकः) पुत्र पित आदि कं साथ सुखदायक है (तम्) उस को (सुप्रोतम्) श्रेष्ठ प्रांति के साथ (सुभृतम्) जैसे उत्तम रक्षा से धारण किया जाय वैसे (बिभृत) धारण और उस की रक्षा करो | हे (देव) दिव्य गुणों से मनोहर (सोम) ऐस्वर्ख्य युक्त ! तू जो यह (ते) तुम्हारा (लोकः) देखने योग्य पुत्र स्त्री भृत्यादि सु-स्त्रारक गृहाग्रम है (तस्मिन्) इस के निमित्त (शम्) सुख (च) और शिक्षा (व-श्व) पहुंचा (च) तथा इसकी रक्षा (परिवश्व) सब प्रकार कर || २६ ||

भावार्थ: पढ़ी हुई स्त्रियां यथोक विवाह की विधि से विद्वान् पित को प्राप्त हो कर उस को आनित्त कर परस्पर प्रसन्नता के अनुकूछ गर्भ को धारण करें वह पित भी स्त्रों की रक्षा और उस की प्रसन्नता करने को नित्य उत्साही हो ॥ २६ ॥ अवभृषेत्यस्यात्रिक वि: । दम्पती देवते। भुरिक प्राजापत्यानुष्टुप् छन्द: । गांधार:

स्वर: । अवदेवैरित्यस्य स्वराडार्षा वृहर्ता छन्दः । मध्यमः स्वर; ॥ फिर गृहस्थ धर्मा में स्त्री का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अवभूष निचुम्पुण निच्च हर्रसि निचुम्पुणः। अवं देवेंदें वर्क तमे ने देवानिक ने देवानिक क्षित्र के तम्बुक्त क्षेत्र के तम्बुक्त क्षित्र के तम्बुक्त किष्त क्षित्र के तम्बुक्त किष्त क्षित्र के तम्बुक्त क्षित्र के तम्बुक्त किष्त किष्

समिदंसि ॥ २७॥

पदार्थ:—हे (अवभृथ) गर्म के घारण करने के पश्चात् उस की रक्षा करने (निछुम्पुण) और मन्द २ चलने वाले पति आप (निचुम्पुण:) नित्य मन हरने और (निचेक्ष:) धर्म्म के साध नित्य द्रव्य का सब्च्य करने वाले (असि) हैं। तथा (देवानाम्)
विद्वानों के बीच में (सिमत्) अच्छे प्रकार तेजस्वी (असि) हैं। हे (देव) सब से
अपनी जय चाहने वाले (देवै:) विद्वान् और (मन्यैं:) साधारण मनुष्यों के साध
वर्तमान आप जो में (देवछलम्) कामी पुढ्षों वा (मर्त्यछलम्) साधारण मनुष्यों के
विश्वे हुए (एन:) अपराध को (अयासियम्) प्राप्त होना चाह्रं उस (पुढ्रराज्य:)
बहुत से अपराध करने वालों के (रिष:) धर्म छुड़ाने वाले काम से मुझे (पाहि)
हूर रख || २७ ||

भाषार्थ:—स्त्री अपने पति की नित्य प्रार्थना करे कि जैसे मैं सेवा के योग्य आन-न्दित चित्त आप को प्रतिदिन चाहती हूं तैसे आप भी मुझे चाहो और अपने पुरुषार्थ भर मेरी रक्षा करो जिस से मैं दुष्टाचरण करने वाले मजुष्य के किये हुए अपराध की भागिनी किसी प्रकार न होऊं ॥ २०॥

पजित्वत्यसात्रिऋष्वः । दम्पती देवते । एवार्यामत्यस्यापि साम्न्यासुर्खेष्णक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । यधार्यामत्यस्य प्राजापत्यानुष्टण्छन्दः ।

गान्धार: स्वर: !!

शब गृहस्य धर्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

एजंतु दर्शमास्यो गर्भी जरायुंणा सह । यथा यं वायुरेजंति

यथां समुद्र एजंति । एवायं दर्शमास्यो अस्त्रेडजरायुंणा सह ॥२८॥

पदार्थ:—हे स्त्री पुरुष जैसे ! (वायु: ) पवन (एजंति ) कस्पता है वा जैसे (स-

पदाय:—ह स्त्रा पुरुष जस ! (वायु: ) पवन (एजात ) कम्पता ह वा जस (स-मुद्र: ) समुद्र (एजित ) अपनी लहरी से उछलता है बसे नुम्हारा (अयम् ) यह (द-शमास्य: ) पूर्ण दश महीने का गर्भ (एजितु) कम २ से वढ़े और ऐसे बढ़ता हुआ (अयम् ) यह (दशमास्य: ) दश महोने में परि पूर्ण हो कर ही (अस्नत्) उत्पन्न होवे ॥ २८ ॥

भावार्थ:—ब्रह्मचर्ळा धर्मी से शरीर की पृष्टि, मन की संतुष्टि और विद्या की वृद्धि को प्राप्त हो कर और विद्याह किये हुए जो स्त्री पृष्ट्य हों वे यत्न के साथ गर्म को रक्षों कि जिस से वह दश महीने के पहिले गिर न जाय क्योंकि जो गर्भ दश महीने से अधिक दिनों का होता है वह प्राय: बल और बुद्धि वाला होता है और इस से पहिले होता है वह वैसा नहीं होता ॥ २८॥

यस्या इत्यस्यात्रिऋषिः । दम्पता देवते । भुरिगार्ष्यं नुष्टुप् छन्दः । गाधारः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ धर्म में गर्म की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है।। चस्यैं ते गृज्ञिगो गर्मो यस्यै चोनिहिंगुण्यची। अङ्गान्यहूंना य-स्य तम्मात्रा समंजीगम् १ स्वाहां॥ २९॥

पदार्थ:—हे विवाहित सौभाग्यवर्ता स्त्री! मैं तेरा स्वामी (यस्पै) जिस (ते) तेरी (हिरण्ययी) रोग रहित शुद्ध गर्भाशय है और (यस्पै) जिस तेरा (यहियः) यहा के योग्य (गर्भः) गर्भ है (यस्प) जिस गर्भ के (अहुता) छुन्दर सीघे (अक्तानि) अङ्ग हैं (तम्) उस को (मात्रा) गर्भ की कामना करने वाली तेरे साथ समागम करके (स्वाहा) धर्म्म युक्त किया से (सम्) (अजीगमम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होजं॥ २१॥

भाषार्थ:—पुरुष को चाहियं कि गृहःश्रम के बीच इन्द्रियों का जीतना वीर्ध्य की बढ़ती शुद्धि से उस की उन्नति करें स्त्री भी ऐसा ही करें और पुरुष से गर्भ को प्राप्त होके उस की स्थिति और योनि आदि की आरोग्यता तथा रक्षा करें और जो स्त्री पुरुष परस्पर आनन्द से सन्तान को उत्पन्न करें तो प्रशंसनीय रूप, गुण, कर्म, स्वभाष और वल बाले सन्तान उत्पन्न हों ऐसा सब लोग निश्चित जानें ॥ २१ ॥

पुरुदस्म इत्यस्यात्रिऋीपः । दम्पतीदेवते । आर्पा जगती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

🛨 फिर भी गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

पुरुद्दस्मो विषुंरूप इन्द्ंरन्तभिद्धिमानमानञ्ज धीरः । एकंपदी-न्द्रिपदीन्त्रिपदीञ्चतुंष्पदीम्छापंदीम्सुचनानुं प्रथन्ता १स्वाहां॥३०॥

पदार्थ:—(पुरुद्दम:) जिस के गुणों से बहुत दु:खों का नाश होता है (वियुक्ष-प:) जिस ने जन्म कम से अनेक रूप रूपान्तर विद्या विषयों में प्रवेश किया है (इ-न्दु:) जो परमैश्वर्थ को सिद्ध करने वाला (धीर:) समस्त व्यवहारों में ध्यान देने हारा पुरुष है वह गृहस्थ धर्म से विवाही हुई अपनी स्त्री के (अन्त:) भीतर (मिहमानम्) प्रशंसनीय ब्रह्मचर्थ और जितेन्द्रियता आदि शुभ कमों से संस्कार प्राप्त होने योग्य गर्भ को (आनज्ज) कामना करें, गृहस्थ लोग ऐसे सृष्टि की उत्पत्ति का विधान कर के जिस (पकपदीम्) जिस में एक यह ओम् पद (द्विपदीम्) जिस में दो अर्थात् संसार सुख और मोक्ष सुख (त्रिपदीम्) जिस से वाणी मन और शरीर तोनों के आनन्द (चतुष्पदीम्) जिस से चारों धर्म अर्थ काम और मोक्ष (अष्टापदी-म्) और जिस से आठों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, जैश्य और शृद्ध ये चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्थ, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम प्राप्त होते हैं उस (स्वाहा)

समस्त विद्या युक्त वाणी को जान कर सब गृहस्थ जन (भुवना ) जिन में प्राणीमात्र निवास किया करते हैं उन घरों की (प्रथन्ताम्) प्रशंसा करें और उस से सब मनु-च्यों को (मनु) अनुकूलता से बढ़ावें ॥ ३०॥

भाषार्थ:—विवाह किये हुए स्त्री पुरुषों को चाहिये कि गृहाश्रम की विद्या को सब प्रकार जानकर उस के अनुसार सन्तानों को उत्पन्न कर मनुष्यों को बढ़ा और उन को ब्रह्मचर्क्य नियम से समस्त अक्ष उपाङ्ग सहित विद्या का ब्रह्मण करा के उत्तम २ सुखों को बात होके आनन्दित करें || ३० ||

मस्तो यस्थेत्यस्य गोतम ऋषि: । दम्पती देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥ अगले मनत्र में भी गृहस्थधम्मी का विषय कहा है ॥

मर्चनो यस्य हि क्षवें श्वाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः ॥ ३१ ॥

पदार्थ:—है (विमहस:) विविध प्रकार से प्रशंसा करने योग्य (महत:) विद्वान् गृहस्थ लोगो ! तुम (यस्य) जिस गृहस्थ के (क्षये) घर में सुवर्ण उत्तम रूप
(दिव:) दिव्य गुण स्वभाव वा प्रत्येक कामों के करने की रीति को (पाथ) प्राप्त हो
(स:)(हि) वह (सुगोपातम:) अच्छे प्रकार वाणी और पृथिवी की पालना करने
वाला (जन:) मनुच्यों को सेवा के योग्य है ॥ ३१॥

भाषार्थ:—इस वात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्क उत्तम शिक्षा विद्या शरीर और आत्मा का बल आरोग्य पुरुषार्थ ऐश्वर्य सज्जनों का सङ्ग आलस्य का त्याग यम नियम और उत्तम सहाय के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता ॥ ३१ ॥ मही द्यौरित्यस्य मेधातिथिऋष्यः । दम्पतीदेवते । आर्षा गायत्रीछन्दः। पड्जः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के कम्मों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मही यौः प्रथिषी र्चन हमं यज्ञस्मिमिक्षताम् । पिपृताक्षो अ-रीमिभिः ॥ ३२॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुष ! तुम दोनों ( मही ) अति प्रशंसनीय ( द्यौ: ) दिव्य पुरुष को आरुति युक्त पति और सति प्रशंसनीय ( पृथिवी ) बढ़े हुए शील और क्षमा धारण करने आदि को सामर्थ्य वालो तू ( भरीमिभः ) धीरता और सब को संतुष्ट करने वाळे गुणों से युक्त व्यवहारों वा पदार्थों से ( नः ) हमारा ( च ) औरों का भी ( इन मम् ) इस ( यहम् ) विद्वानों के प्रशंसा करने योग्य गृहाश्रम को ( मिमिक्षताम् ) सुन सो से अभिषिक्त और ( पितृताम् ) परिपूर्ण करना चाहो ॥ ३२ ॥

आवार्य:— जैसे स्र्यं होक जलादि पदाधों को खीं च और वर्षा कर रक्षा भीर पृ-धिवां आदि पदाधों का प्रकाश करता है वैसे यह पति श्रेष्ठ मुण और पदाधों का सं-प्रह करके देने से रक्षा और विद्या आदि गुणों को प्रकाशित करता है तथा जिस प्र-कार वह पृथिवों सब प्राणियों को धारण कर उन की रक्षा करती है वैसे स्त्री गर्भ आदि व्यवहारों को धारण कर सब की पालना करती है इस प्रकार स्त्री और पृष्ठच इकट्ढे होकर स्वार्ध को सिद्ध कर मन वचन और कर्म से सब प्राणियों को भी सुख देवें ॥ ३२॥

आतिष्ठेत्यस्य गोतम् ऋषिः।गृहपतयो देषताः। आर्प्यनुष्टुप् छन्दः।गान्धारः स्वरः।

उपयामेत्यस्य विराडार्ष्यंष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः॥ अव प्रकारान्तर से गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है। आतिष्ठ वृत्रहृत्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरीं । अर्थाचीन् छे सुते मनो ग्राचां कुणोतु वुग्नुनां । उपकामगृंहीतोऽसीन्द्रांच त्वा षोड-

शिनं पुष ते योतिरिन्द्रांय त्वा षोडुशिनं ॥ ३३॥

पदार्थ:—हे ( वृत्रहन् ) शत्रुओं को मारने वाले गृहाश्रमी त् ( त्रावा ) मेघ के तुल्य सुख बरसाने वाला है (ते ) तेरे जिस रमणीय विद्या प्रकाशमय गृहाश्रम वा रथ में ( ब्रह्मणा ) जल वा धन से ( हरी ) धारण और आकर्षण अर्थात् खीं चने के समान बोड़े ( युक्ता ) युक्त किथे जाते हैं उस गृहाश्रम करने की ( आतिष्ठ ) प्रतिज्ञा कर इस गृहाश्रम में (ते ) तेरा जो (मनः) मन ( अर्वाचीनम् ) मन्दपन को पहुंचाता है उस को ( वम्नुना ) चेदवाणी से शान्त कर जिस से तू ( उपयामगृहातः ) गृहाश्रम करने की सामग्री ग्रहण किथे हुए ( असि ) है इस कारण ( घोडशिने ) सोलह कलाओं से परिपूर्ण ( इन्द्राय ) परमेश्वर्य देने वाले गृहाश्रम करने के लिथे (त्वा) तुझ को आज्ञा देता हूं | ३३ | ।

भाषार्थ: -गृहाश्रम के आधीन सब आश्रम हैं और वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहार से जिस गृहाश्रम की सेवा की जाय उस से इस लोक और परलोक का सुख होने से परमै-श्वर्य पाने के खिये गृहाश्रम ही सेवना उचित है || ३३ ||

युक्ष्वाहित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । गृहपतिर्देवता । विराडार्ष्यंतुष्टुप छन्दः ।

गान्धारः स्वरः । उपयामेत्यस्य पूर्वषच्छन्दः स्वरश्च ॥ अब राजिषय में उक्त प्रकार से गृहाश्रम का शर्मा अगले मन्त्र में कहा है ॥ गृक्ष्वा हि केचित्राता हुनी सृषंणा कक्ष्युभा । अर्था न इन्द्र सोम- पा ग़िरामुपंश्रुतिञ्चर । <u>उपयामगृंही नो इसीन्द्रांय स्वा बोह</u>िहानं एव ने यो निरिन्द्रांय त्वा बोहिहिने ॥ ३४ ॥

पदार्थ:—है (सोमपा; ) पेदवर्यं को रक्षा करने और (इन्द्र) शत्रुयों का विनाश करने वाले तुम (केशिना) जिन के अच्छे २ बाल हैं उन (घृषणा) बैल के समान बलवान् (कश्यमा) अमीष्ट देश तक पहुंचाने वाले (हरी) चलाने हारे घोड़ों को (रथे) रथ में (युश्व) जोड़ो (अथ) इस के अनन्तर (न; ) हम लोगों को (गिराम्) विनयपत्रों को (उपभूतिम्) प्रार्थना को (हि) चित्त देकर (चर) जानी। आप (उपयामगृहोत:) गृहाश्रम की सामग्री को ग्रहण किये हुए (असि) हैं इस कारण (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (खा) तुझ को उपदेश करता हूं कि जो (एप:) यह (ते) तेरा (योनिः) घर है इस (घोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य देने वाले गृहाश्रम के लिये (खा) तुझ आज्ञा देता हूं ॥ ३४ ॥

भावार्थ:—इस मंत्र में पिछले मंत्र से "रथे" यह पद वर्ध से आता है। प्रजा, सेना और सभा के मनुष्य सभाष्यक्ष से ऐसे कहें कि आप को शत्रुओं के विनाश और राज्य भर में न्याय रहने के लिये घोड़े आदि सेना के अङ्गों को अच्छी शिक्षा देकर आमन्दित और बल वाले रखने चाहिये फिर हम लोगों के विनयपत्रों को सुनकर राज्य की रक्षा करनी चाहिये॥ ३४॥

इन्द्रमिदित्यस्य गोतम ऋषिः । गृहपतिर्देवता । विराडार्ष्यं तुप्दुष्छन्दः । गाम्यारः

्स्वर: । उपयामेत्यस्य सर्वे पूर्ववन् ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

इन्द्रिमस्री बहुनोऽपंतिघृष्टदावसम् । ऋषीणां च स्तुतीरुपं युक्तं च मानुषाणाम् । उपयामगृहीनोऽसीन्द्रांय त्वा षोह्यदानं

एष ते योतिसिन्द्रांय त्वा षोडिशिने ॥ ३५ ॥

पदार्थ:—हे (सामपा:) पेशवर्यं की रक्षा और (इन्द्र) शत्रुओं का विनाश कर-ने वाले सभाष्यक्ष आप जो (हरी) हरण कारक बल और आकर्षण रूप घोड़ों से (अव्रतिधृष्टशयसम्) जिस ने अपना अच्छा बल बढ़ा रक्खा है उस (इन्द्रम्) परमै-श्वर्यं बढ़ाने और सेना रखने वाले सेना समृह को (बहतः) बहाते हैं उन से उक होकर (ऋषीणाम्) वेद मन्त्र जानने वाले विद्वानों और (च) वीरों के (स्तृति) गुणों के ज्ञान और (मानुषाणाम्) साधारण मनुष्यों के (यज्ञम्) संगम करने योग्य व्यवहार कौर ( च उन की पालना करो और ( उप ) समीप प्राप्त हो जिस ( ते ) तेरा ( एष: ) यह ( वोनि: ) निमित्त राज्य धर्म्म है जा त् ( उपयामगृहीतः ) सब सामग्री से संयुक्त है उस (त्वा ) तुझ को ( षोडशिने ) षोडश कलायुक्त ( इन्द्राय ) उत्तम ऐइवर्च्य के लिये प्रजा सेनाजन आश्रय लेवें और हम भी लेवें ॥ ३५ ॥

भाषार्थ:—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (इन्द्र) (सोमपा:) (चर) इन तीन पदों की योजना होती है। राजा राज्य कर्म में विचार करने वाले जन और प्रजाजनों को योग्य यह है कि प्रशांसा करने योग्य विद्वानों से विचा और उपदेश पाकर और रों का उपकार सदा किया करें || ३५ ||

यस्माक्रेत्यस्य विवस्वान् ऋषिः । परमेश्वरो देवता । सुरिगार्थां त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब गृहाश्रम की इच्छा करने वालों को ईश्वर ही की उपासना करनी चाहिये यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

यस्मान जातः परी अन्यो अस्ति य अधिवितेश सुनंनाति वि-इवां। प्रजापंतिः पूजयां सक्ष रगुणस्त्रीणि ज्योतीशवि सचते स षोडशी ॥ ३६॥

पदार्थ:—(यस्मात्) जिस परमेश्वर से (परः) उत्तम (अन्यः) और दूसरा (न) नहीं (जातः) हुआ और (यः) जो परमात्मा (विश्वा) समस्त (भुवनानि) छोकों को (आविवेश) व्याप्त होरहा है (सः) वह (प्रजया) सब संसार से (संर-राणः) उत्तम दाता होता हुआ (षोडशां) इच्छा प्राण श्रद्धा पृथिवो जल अग्नि वायु आकाश दशों इन्द्रिय मन अक वीर्ष्यं तप मन्त्र लोक और नाम इन सोलह कलाओं के स्वामी (प्रजापितः) संहार मात्र के स्वामी परमेश्वर (त्रोणि) तीन (ज्योतीं पि) ज्योति अर्थात् सूर्व्यं विज्ञली और अग्नि को (सचते) सब पदार्थों में स्थापित कर-ता है ॥ ३६॥

भावार्थ: - गृहाश्रम की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि जी सर्वश्र व्याप्त सब लोकों का रचने और धारण करने वाला दाता न्यायकरी सनातन अर्धात् सदा ऐसाही बना रहता है सत् अविनाशो चैतन्य और आनन्दमय नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्व-भाव और सब पदार्थों से अलग रहने वाला छोड़े से छोडा बड़े से बड़ा सर्वशिक्तमान् परमात्मा जिस से कोई भी पदार्थ उत्तम वा जिस के समान नहीं है उस की उपासना करें ॥ ३६ ॥

इन्द्रश्चे त्यस्य विवस्वानुषिः । सम्राड्माण्डलिकौ राजानौ देवते । साम्नी त्रिष्टु प्छन्दः । तयोरहमित्यस्य विराडाची त्रिष्टु प्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब गृहाश्रम के उपयोगी राजविषय की अगले मंत्र में कहा है ॥
इन्त्रंश्च सम्माद् वर्षणश्च राज्या तो ते अक्षं चंक्रतुरमे एतम्।
तयोर्ड्सनं अक्षं भंक्षयासि वाग्देवी जुंखाणा सोमंस्य तृष्यतु
सह पूर्णेन स्वाहां॥ ३७॥

पदार्थः—है प्रजाजन! जो ( इन्द्रः ) परमेश्वर्ण युक्त (च) राज्य के अंग, उपाङ्क सहित ( सम्राट् ) सब जगह एक चक राज करने वाला राजा ( वरुणः ) अति उत्तम
(च) और ( राजः ) न्यायादि गुणां से प्रकाशमान माण्डलिक सेनापित है (तौ ) वे
दौनों ( अग्ने ) प्रथम (ते ) तेरा ( मक्षम् ) सेवन अर्थात् नाना प्रकार से रक्षा करें
और ( अहम् ) मैं ( तयोः ) उनका (एतम् ) इस ( मक्षम् ) स्थित पदार्थं का ( अनु ) पीछे ( मक्षयामि ) सेवन करके कराऊं । ऐसे करते हुए हम तुम सब को ( सोमस्य ) विचारूपां ऐक्वर्यं के बीच ( जुपाणा ) प्रीति कराने वाली ( देवी ) सब विद्याओं की
प्रकाशक ( वाक् ) वेदवाणी है उससे (स्थाहा ) सब प्रमुप्य (तृत्यनु) संतुष्ट रहें ॥३॥।

भाषार्थ:—प्रजा के बीच अपनी २ सभाओं सहित राजा होने के वो य दो होते हैं एक चक्रवर्त्ती अर्थात् एक चक्र राज फरने वाला और दूसरा माण्डलिक कि जो मण्डल रु का ईश्वर ही ये देनों प्रकार के राजा जन उत्तम २ न्याय नम्रता सुशीलता और वीरतादि गुणों से प्रजा की रक्षा अच्छे प्रकार करें फिर उन प्रजा जनों से यथायोग्य राज्य कर लेवें और सब व्यवहारों में विद्या की वृद्धि सत्यवचन का आचरण करें इस प्रकार धरमें अर्थ और कामनाओं से प्रजाजनों को संतोप देकर आप संतोष पार्वे आ- एकाल में राजा प्रजा की तथा प्रजा राजा की रक्षा कर परस्पर आनन्दित हों ॥३७॥

अग्नेपवस्वेत्यस्य वैखान ऋषिः । राजादयो गृहपतयो देवताः । श्रुरिक्त्रिपाद्-गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । उपयामेत्यस्य स्वरोडार्च्यनुष्टुण्छन्दः। अग्नेवर्चस्विक्रत्यस्य श्रुरिमार्च्यनुष्टुण्छन्दः । मान्धारः स्वरः॥ फिर भौ प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय अगले मंत्रमें कहा है ॥

श्चरने पर्यस्य स्वर्षा असमे वर्चीः सुबीर्यम्म । द्र्षहियम्मणि पो-षम् । <u>ष्ट्रप्रामगृं</u>हीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एष ने योनिर्ग्नये त्वा

# वर्षसे । स्रांने वर्षस्<u>व</u>न्वर्षस<u>्वाँ</u> स्त्वन्द्वेषेष्वस्य वर्षस्वा<u>न</u>हस्मंतु-

पदार्थ:—हे (स्वपाः) उत्तम २ काम तथा (वर्चस्विन्) सुन्दर प्रकार से वेदा-ध्यम करने वाले (अग्ने) समापित आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (सुवीर्थम्) उत्तम पराक्रम (वर्चः) वेद का पढ़ना तथा (मिय) निरन्तर रक्षा करने योग्य अस्मदादि जब में (रियम्) धन और (पोयम्) पृष्टि को (दधत्) धारण करते हुए (पवस्व) पवित्र हुजिए (उपयामगृहातः) राज्य व्यवहार के लिये हम ने स्वीदार किये हुए (असि) आप हैं (त्वा) तुझ को (वर्चसे) उत्तम तेज बल पराक्रम के लिये (अप्ने) वा विज्ञानयुक्त परमेश्वर की प्राप्ति के लिये हम स्वीकार करते में (ते) तुम्हारी (एषः) यह (योनः) राजभूमि निवास स्थान है (त्वा) तुझ को (वर्चसे) हम लोग अ-पने विद्या प्रकाश सब प्रकार सुख के लिये वार २ प्रत्येक कामों में प्रार्थना करते हैं | हे तेजधारी सभापते राजन् !जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) उत्तम २ विद्वानों में (वर्ष-स्वान्) प्रशंसनीय विद्याध्ययन करने वाले (असि) हैं येसे (अहम्) में (मनुष्येषु) विद्यारशील प्रशं में अप के सहश (भूयासम्) होऊं || ३८ ||

भावार्थ:—राजा आदि सभ्यजनों को उचित है कि सब मनुष्यों में उत्तम र विद्या और अच्छे गुणों को बढ़ाने रहें जिससे समस्त लोग श्रंष्ठ गुण और कर्मा प्रचार करने में उत्तम होतें ॥ ३८॥

उत्तिष्ठिक्षित्यस्थ वैकान कृषिः । राजादयो गृहस्था देवताः । उत्तिष्ठिक्षित्यस्योपेत्येतस्य चार्षो गायत्री छन्दः । पड्जः स्वरः । इन्द्रेत्यस्य र्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय को अग्ले मन्त्र में कहा है ||

लुक्तिष्ठ्वतोजसा सह पीत्वी कियं अवेषयः सोमंभिनद्र सुमू सुतम् । <u>खप्यामगृंहीतोऽसीनद्रांग्र स्वीजंस एष ते योति</u>रिन्द्रांग्र स्वीजंस एष ते योतिरिन्द्रांग्र स्वीजंस । इन्द्रीक्तिष्ठीजिष्ठाक्तिष्ठस्वन्देवेष्वस्याजिष्ठोऽहर्मनुष्येषु भ्यासम् ॥ ३९ ॥

पदार्थ:—है ( इन्द्र ) ऐश्वर्ध्य रखने वाले वा पेश्वर्ध्य में रमने वाले सभापित आप ( वम् ) सेना के साथ ( कुतम् ) उत्पादन किये हुए ( सोमम् ) सोम को ( पीरवी ) पी के ( बोजसा ) शरीर आत्मा राजसभा और सेना के वल के ( सह ) साथ (उत्ति- हन् ) अच्छे गुण कर्मा और स्वभावों में उद्यति को प्राप्त होते हुए ( शिप्रे ) पुद्धादि

कमों से डाड़ी और नासिका आदि अझों को (अवेपयः) कंपाओं अर्थात् यथायोग्य कामों में अझों की चेष्टा करो। हम लोगों ने आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम उपनियमों से प्रहण किये (असि) हैं इस से (त्वा) आप को सावधानता से (इन्द्राय) परमैदवर्च्य देने वाले जगदीदवर की प्राप्ति के लिये सेवन करते हैं (ओजसे) अत्यन्त पराक्रम और (इन्द्राय) शत्रुओं के विदारण के लिये (त्वा) आप को प्रेरणा करते हैं। हे (ओजिष्ट) अत्यन्त तेजधारी । जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) शत्रुओं को बीतने की इच्छा करने वालों में (ओजिष्टः) अत्यन्त पराक्रम वाले (असि) हैं वैसे ही में भी (महाच्येषु) साधारण महाच्यों में (भूयासम्) होऊं ॥ ३१ ॥

भाषार्थ:—राजपुरुषों को यह योग्य है कि भोजन वस्त्र और खाने पीने के पदार्थों से शरीर के बल को उस्रति देशें किन्तु व्यभिचारादि दोषों में कभी न प्रवृत्त होवें और परमेश्वर की उपासना भी यथोक व्यवहारों में करें ॥ ३१ ॥

अहभ्रमित्यस्य प्रस्कण्य ऋषिः । गृहपतयो राजादयो देवताः । अहभ्रमित्यस्य सूर्योत्यस्य चःपी गायत्री । उपयामगृहीतोसीत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री

छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वीक विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥ श्रद्धंश्रमस्य केलवो वि रुइमछो जनाँ २॥ श्रन्तं श्राजीन्तो अग्नयों यथा । <u>खप्र</u>ामगृंहीतोऽ<u>मि</u> सूर्यांच त्वा श्राजा<u>येष ते</u> यो<u>निः</u> सूर्यांच त्वा श्राजायेष ते यो<u>निः</u> सूर्यांच त्वा श्राजायं । सूर्यं श्राजिष्ठ श्राजिष्ठ त्राजिष्ठ त्राजिष्ठ स्वाचिष्ठाः जिष्ठोऽहम्मंनुष्ठेषु भूयासम् ॥ ४०॥

पदार्थ:—जैसे (अस्य ) इस जगत् के पदार्थों में (भ्राजन्तः) प्रकाश को प्राप्त हुई (रइस्यः) कान्ति (केतवः) वा उन पदार्थों को जानने वाले (अग्नयः) सूर्य्य विद्युत् और प्रसिद्ध अग्नि हैं यैसे ही (जनान्) मनुष्यों को (अनु) एक अनुकूलता के साथ (अहश्रम्) में दिखलाऊं हे सभापते! आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम और उपनियमों से स्वीकार किथे हुए (असि) हैं जिन (ते) आपका (एषः) यह राज्य कर्म्म (योतिः) पेइचर्य्य का कारण है उन (त्वा) आपको (भ्राजाय) जिलाने वाले (सूर्य्याय) प्राण के लिथे चिताता हूं तथा उन्हीं आप को (भ्राजाय) सर्वत्र प्रकाशित (सूर्य्याय) चराचरात्मा जगदीइवर के लिथे भी चिताता हूं। हे (भ्राजिष्ठ) अति पराक्रम से प्रकाशमान (सूर्य्य) सूर्य्य के समान सत्य विद्या और गुणों से प्रकाशमान जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) समस्त विद्याओं से युक्त विद्वानों में प्रकाशमान

(भाजिष्ठ:) अत्यन्त प्रकाशित हैं वैसे मैं भी (मतुष्येषु) साधारण मतुष्यों में (भू-यासम्) प्रकाशमान होड: || ४० ||

भावार्थ:—इस मन्त्र में उपमालक्कार है—जैसे इस संसार में सूर्य्य की किरण सब जगह फैल के प्रकाश करती हैं वैसे राजा प्रजा और समासद जन शुभ गुण कर्मी और स्वभावों में प्रकाशमान हों क्योंकि ऐसा है कि मनुष्य शरीर पाकर किसी उत्साह पुरुषार्थ सत्पुरुषों का संग और योगाभ्यास का आचरण करते हुए मनुष्य को धर्मी अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि तथा शरीर आतमा और समाज की उन्नति करना दुर्लम नहीं है इस से सब मनुष्यों को चाहिये कि आलस्य को छोड़ के नित्य प्रयक्त किया करें ॥ ४० ॥

डदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्य ऋषिः । सूर्य्यो देवता । पूर्वस्य निचृदार्घः । उपयामे-त्यस्य स्वराडार्षा गायत्री च छन्दः । पड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वरपक्ष में गृहस्थ के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उदुत्यं जातवेदसं द्वेषं वहन्ति केतवः । हुशे विश्वां स्वीम् <u>उपयामगृहीतोऽसि स्</u>रवीय त्वा भाजा<u>यैष ते</u> योतिः स्वीय त्वा भाजायं ॥ ४१ ॥

पदार्थ:—(जातवेदसम्) जो उत्पन्न हुए पदार्थों को जानता वा प्राप्त कराता वा वेद और संसार के पदार्थ जिस से उत्पन्न हुए हैं (देवम्) शुद्ध स्वरूप जगदीदवर! जिस को (विश्वाय) संसार के उपकार के लिये (हशे) ज्ञान चक्षु से देखने को (केतव:) किरणों के तुल्य सर्व अंशों में प्रकाशमान विद्वान (उत्) (वहन्ति) अपने उत्कर्ष से वादानुवाद कर व्याख्यान करते हैं (उ) तर्क वितर्क के साथ (व्यम्) उस जगदीदवर को हम लोग प्राप्त हों। है जगदीदवर! जो आप हम लोगों ने (भ्राजाय) प्रकाशमान अर्थात् अत्यन्त उत्साह और पुरुवार्थयुक्त (सूर्व्याय) प्राण के लिये (उप-यामगृहीत:) यम नियमादि योगाभ्यास उपासना आदि साधनों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं उन (त्वा) आप को उक्त कामना के लिये समस्त जन स्वीकार करें और है ईश्वर! जिन (ते) आपका (एप:) यह कार्व्य और कारण की व्याप्ती से एक अनुमान हाना (योनि:) अनुपम प्रमाण है उन (त्वा) आप को (भ्राजाय) प्रकाशमान्न (स्वर्याय) ज्ञानकर्षी सूर्व्य को पाने के लिये एक कारण जानते हैं ॥ ४१॥

भोषार्थ:—जैसे वेद के वेत्ता विद्वान लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जा-नकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही वह जगदीश्वर सब को उपास- नीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है धैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सक्ती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है || ४१ ||

आजिब्रेंत्यस्य कुसुरुविन्दु ऋषि:। पक्षी देवता । स्वराड्बाह्य ्यु श्णिक् छन्दः। ब्रह्मभः स्वरः॥

भव गृहस्थ के कर्मा में स्त्री के उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥ आ जिंघ कलकाममुद्या त्वां विक्वान्तियन्दंवः । पुनंखुर्जा निर्य-सिस्य सा नं: सहस्रंन्धुक्ष्यो हथांगु पर्यस्वती पुनुमी विकालाहृषिः॥४२॥

पदार्थ:—हे (मिह ) प्रशंसनीय गुणवाली स्त्री! जो तू (उरुधारा) विद्या और अच्छी २ शिक्षाओं को अत्यन्त घारण करने (पयस्त्रती) प्रशंसित अस और जल र-स्त्रने वाली है वह गृहाश्रम के शुभ कामों में (कलशम्) नवीन घट का (आजिष्ठ) आधाण कर अर्थात् उस को जल से पूर्ण कर उस की उत्तम सुगन्धि को प्राप्त हो (पुनः) फिर (त्वा) तुझे (सहस्त्रम्) असंख्यात (इन्द्रवः) सोम आदि ओषधियों के रस (अतिशन्तु) प्राप्त हों जिस से तू दु:स से (निर्धतस्त्र) दूर रहे अर्थात् कमी तुझ को दु:स न प्राप्त हो । तू (अर्जी) पराक्रम से (नः) हम को (धुश्य) परिपूर्ण कर (पुनः) पीछे (मा) मुझे (रियः) घन (आविशतात्) प्राप्त हो ॥ ४२ ॥

भाषार्थ:—विद्वान स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किए हुए पदार्थ को जैसे आप खार्य बेसे ही अपने पति को भी खिलावें कि जिस से बुद्धि बल और विद्या की बुद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहे ॥ ४२ ॥

इंडेरन्त इत्यस्य कुनुरुविन्दुऋषि:। पक्षी देवता । आर्थीपङ्किश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।।

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ||

इडे रन्ते हब्धे काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरंस्वति महि विश्वं-ति। एता तेंऽअध्न्ये नामानि देवेभ्यों मा सुकृतं ब्रुतात्॥ ४३॥

पदार्थ:—हे ( अक्ये ) ताड़ना न देने योग्य ( अदिते ) आत्मा से विनाश को प्राप्त न होने वालो ( ज्योते ) श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान ( इंडे ) प्रशंसनीय गुण युक्त ( इन्व्ये ) स्वीकार करने योग्य ( काम्थे ) मनोहर स्वरूप ( रन्ते ) रमण करने योग्य ( चन्द्रे ) अत्यन्त आनन्द देने वाली ( विश्वृति ) अनेक अच्छी बातें और वेद ज्ञानने वाली ( महि ) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य ( सरस्वति ) प्रशंसित विद्वान वाली पत्नी

उक्त गुण प्रकाश करने कले (ते) तेरे (एता) थे (नामानि) नाम हैं तू (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (मा) मुझ को (सुरुतम्) उत्तम उपदेश (बृतात्) किया कर ।।४३।।

भावार्थ:—जो विद्वानों से शिक्षा पाई हुई स्त्री हो वह अपने २ पित और अन्य सब स्त्रियों की यथायोग्य उत्तम कर्म्म सिखलावे जिस से किसी तरह वे अधर्म की ओर न डिगे वे दोनों स्त्री पुरुष विद्या की वृद्धि और बालकों तथा कन्यों को शिक्षा किया करें || ४३ ||

विन इत्यस्य शासऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । उपयामेत्यस्य विराडार्षः गायत्री छन्दः । पड्जः स्वरः ।। अव सिंह जैसे पौछे लाट कर देखता है इस प्रकार गृहस्थ कर्म के निमित्त

राजपक्ष में इन्छ उपदेश अगले मन्त्र में किया है।। वि न इन्द्र मुधी जहि नीचा येच्छ प्रतन्यतः। यो आस्माँ २॥ अभिदासत्यर्धरङ्गम्या तमः। उपग्रामगृहीत्रोसीऽन्द्रांग त्वा बि-

मुर्च पुष ते योतिहिन्द्रांय त्वा विमुर्घे ॥ ४४ ॥

पदार्थ:—हे (इन्द्र) सेनापते ! तू (नः) हमारे (पृतन्यतः) हम से युद्ध करने के लिये सेना की इच्छा करने हारे शत्रुओं को (जिह ) मार और उन (नीचा) नी-चौं को (यच्छ) वश में ला और जो शत्रुजन (अस्मान्) हम लोगों को (अभिदासित) सब प्रकार दुःस देवे उस (विमुधः) दुए को (तमः) जैसे अन्धकार को सूर्य नए करता है यैसे (अधरम्) अधोगित को (गमय) प्राप्त कर जिस (ते) तरा (एषः) उक्त कर्म करना (योनिः) राज्य का कारण है इससे (उपयामगृहीतः) सेना आदि सामग्रो से ग्रहण किया हुआ (असि) है इसी से (त्वा) तुझ को (विमुधः) जिस में बड़े २ युद्ध करने वाले शत्रु जन हैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य देने वाले उस युद्ध के लिये स्वीकार करते हैं (त्वा) तुझ को (विमुधं) जिस के शत्रु नए होगथे हैं (इन्द्राय) उस राज्य के लिये प्रेरणा देते हैं अर्थात् अधर्म से अपना वर्तीव न वर्ते | अधि।

भावार्थ:—जो खोटे काम करने वाला पुरुष अनेक प्रकार से अपने बल को उन्न-ति देकर सब को दुःख देना चाहे उस को राजा सब प्रकार से दण्ड दे तो भी वह अ-पनी अत्यन्त खोटाइयां को न छोड़े तो उस को मार डाले अथवा नगर से इस को दूर निकाल बन्ध रक्खे !! ४४ !!

वाचस्पतिमित्यस्य शास ऋषिः । ईदश्य समेशौ राजानौ देवते । भुरिगार्षः त्रिष्टुप् छन्दः । उपयामेत्यस्य स्वराडार्प्यंतुष्टु ग् छन्दः । आद्यस्य घैवतः परस्य गान्धारः स्वरक्षा। अव गृहस्थ कमें में राज और ईश्वर का विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

बाचस्पतिं बिश्वकंस्मीणसूनयें मनोजुबं वाजे अचा हुवेम। स

नो विद्वविन्न हर्वनानि जापि द्विद्ववर्षम्भूरवंसे साधुकंस्मी। उपयामगृहीनोदसीनद्रांय स्वा बिद्ववर्षम्भीण एष ने यो निहिन्द्रांय स्वा
विद्ववर्षम्भी ॥ ४५॥

पदार्थः—हम (अद्य) अव (वाजे) विज्ञान वा युद्ध के निमित्त जिन (वाचः) वेदवाणों के स्वामी वा रक्षा करने वाले (विद्वकर्माणम्) जिन के सब धर्मयुक्त कर्म हैं जो (मनोज्जवम्) मन चाहती गित का जानने वाला है उस परमेद्दवर वा समापित को (हुवेम) चाहते हैं सो आप (साधुकर्मा) अच्छे २ कर्म करने वाले (विद्ववध्यम्भः) समस्त सुख को उत्पन्न कराने वाले जगदीदवर वा समापित (नः) हमारे (अवसे) प्रेम बढ़ाने के लिथे (विद्ववानि) (हवनानि) दिथे हुए सब प्रार्थना वचनों को (जोषत्) प्रेम से माने जिन (ते) आप का (एपः) यह उक्त कर्म (योनिः) एक प्रेमभाव का कारण है वे आप (उपयामगृहीतः) यमनियमों से प्रहण किये हुए (असि) हैं इस से (विद्ववकर्मणे) समस्त कामों के उत्पन्न करने तथा (इन्द्राय) ऐद्वर्य के लिथे (त्वा) आप को प्रार्थना तथा (विद्ववकर्मणे) समस्त काम की सिद्धि के लिथे शिल्पिक्तया कुशलता से उत्तम ऐद्वर्य वाले आप का सेवन करते हैं ॥४५॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में श्लेषालं — जो परमेश्वर वा न्यायाधीश सभापित हमारे किये हुए कामों को जाच कर उन के अनुसार हम को यथायोग्य नियमों में रखता है जो किसी को दुःख देने वाले छल कपट के काम को नहीं करता जिस परमेश्वर वा सभापित के सहाय से मनुष्य मोक्ष और व्यवहार सिद्धि को पाकर धर्मशोल होता है वही ईश्वर परमार्थसिद्धि वा सभापित व्यवहार सिद्धि के निमित्त हम लोगों का सेवने योग्य है ॥ ४५ ॥

विश्वकर्मीक्रत्यस्य शत्स ऋषिः । विश्वकर्मेन्द्रो देवता । भुरिगार्षः त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । उपयामेत्यस्य विराडार्ष्यंतुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ अव अगले मन्त्र में राजधर्मं का उपदेश किया है ॥

विश्वंतम्भिन्ह् विषा वर्धनेन ज्ञातार् मिन्द्रंमकृषीरव्ध्यम् । त-स्मै विज्ञाः समनमन्त पूर्वीर्यमुग्नी विह्वणो यथासंत् । उपयाम-गृहीत्रोऽसीन्द्रांय त्वा विद्वत्वकम्भीण एष ते यो निरिन्द्रांय त्वा वि-इवक्षमीणे ॥ ४६ ॥ पदार्थ:—हे ( विद्यकर्मन् ) समस्त अच्छे काम करने वाले जन आप ( वर्द्धनेन ) वृद्धि के निमित्त ( दिविषा ) प्रहण करने योग्य विज्ञान से ( अवध्यम् ) जिस बुरे क्य-सन और अधर्म से रिहत ( इन्द्रम् ) परम ऐइवर्य देने तथा ( त्रातारम् ) समस्त प्रजा जनों की रक्षा करने वाले सभापित को ( अरुणोः ) की जिथे कि ( तस्में ) उसे ( पूर्वाः ) प्राचीन धार्मिक जनों ने जिन प्रजाओं को शिक्षा दी हुई है वे (विशः) प्रजाजन ( समनमन्त ) अच्छे प्रकार माने जैसे ( अयम् ) यह सभापित ( उप्रः ) दुष्टों को दण्ड देने को अच्छे प्रकार चमन्कारी और ( विहच्यः ) अमेक प्रकार के राज्य साधन पदार्थ अर्थात् शस्त्र आनि रखने वाला ( असत् ) हो वेसे प्रजा भी इस के साथ वर्ते ऐसी युक्ति की जिथे ( उपयामगृहीत: ) यहां से लेकर मंत्र का पूर्वांक ही अर्थ जानना चाहिये | । ४६ | ।

भाषार्थ:—इस संसार में मनुष्य सब जगत् की रक्षा करने वाले ईश्वर तथा सभा-ध्यक्ष को न भूलें किन्तु उन की अनुमित में सब कोई अपना २ वक्ती व रक्षें प्रजा के विरोध से कोई राजा भी अच्छी ऋदि को नहीं पहुंचता है और ईश्वर वा राजा के विना प्रजा जन धर्म, अर्थ, काम और मोश्न के सिद्ध करने वाले काम भी नहीं कर सकते इस से प्रजा जन और राजा ईश्वर का आश्रय कर एक दूसरे के उपकार में धर्मा के साथ अपना वर्ताव रक्षें || ४६ ||

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य शास ऋपि: । त्रिश्वक्तम्मेंन्द्रो देवता । विराह् ब्राह्मो बृहती छन्द: । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

<u>उपयामगृंहीतोऽस्यानचें त्या गायत्रच्छंन्दसङ्गृहणामीन्द्रांच</u>
स्वा <u>त्रिष्टुष्</u>ठंन्दसं गृह्णामी विद्वेभ्यस्त्या <u>देवेभ्यो</u> जर्गच्छन्दसङ्गृ-

ह्याम्यनुषुप्तेंऽभिग्तरः ॥ ४७ ॥

पदार्थ:—है (विश्वकर्मन्) अच्छे २ कर्म करने वाले जन! में जो (ते) आप का (अनुष्टुप्) अज्ञान छुड़ाने वाला (अभिगरः) सब प्रकार से विख्यात प्रशंसा वाक्य है उन अग्नि आदि पदार्थों के गुण कहने और वेद मंत्र गायत्री छन्द के अर्थ को जनाने वाले (त्वा) आप को (अग्नये) अग्नि आदि पदार्थों के गुण जानने के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं वा (त्रिष्टुप्छन्दसम्) परम ऐदवर्य देने वाले त्रिष्टुप् छन्द युक्त वेद मन्त्रों का अर्थ कराने हारे (त्वा) आप को (इन्ट्राय) परम ऐ-श्वर्य की प्राप्ति के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं (जगच्छंदसम्) समस्त जन

गत् के विच्य २ गुण कर्मा और स्वभाव के बोधक वेद मन्त्रों का अर्थ विज्ञान कराने वाले (त्वा) आप को (विश्वेभ्य:) समस्त (देवेभ्य:) अच्छे २ गुण कर्म और स्वभावों के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं (उपयामगृहीत:) उक्त सब काम के लिये हम लोगों ने आप को सब प्रकार स्वीकार कर रक्खा (असि) है।। ४७।।

भावार्थ:—इस मंत्र में पिछले मन्त्र से (विश्वकर्मन्) इस पद की अनुषृत्ति आती है मनुष्या को चाहिये कि अग्नि आदि पदार्थ विद्या साधन कराने वाली कि-याओं का उत्तम बोध कराने वाले गायत्री आदि छन्द युक्त ऋ बेदादि बेदों के बोध होने के लिये उत्तम पढ़ाने वाले का सेवन करें क्योंकि उत्तम पढ़ाने वाले के विना किसी की विद्या नहीं गाम हो सकती ॥ ४७॥

मेशीनांखेखस्य देवाऋषयः । प्रजापतयो देवताः । याज्यपी त्रिष्टुप् । क्रकूननानामि-त्यस्य याज्यषी जगती । भन्दनानामित्यस्य मदिन्तमानामित्यस्य मधुन्तमानामित्य-स्य च याज्यपी त्रिष्टुप् । शुक्रत्वेत्यस्य सामनी बृहती छन्दांति, । तेषु त्रि-प्टुभी धैवतः । जगत्या तिषादः । बृहत्या मध्यमश्च स्वराः ॥

अब गार्हस्थ्य कर्मों में पूर्वी अपने पति को उपदेश देती है, यह अगले मन्त्र में कहा है।

ब्रेशीनां त्या पत्मसा घूनोभि । कुकूननीनान्त्या पत्मसा घूनोभि । अन्दर्नानान्त्या पत्मसा घूनोभि । मदिन्त्रीमानान्त्या पत्मसा घूनोभि । मधुन्त्रीमानां त्या पत्मसा घूनोभि । गुक्रं त्वां शुक्र आ-घूनोभ्यन्हों हुपे सूर्योस्य र्राइमधुं ॥ ४८ ॥

पदार्थ:—है (पत्मन्) धर्मी में न चित्त दंने वाले पते ( बेशीनाम् ) जलों के समान निर्मां कि विद्या और सुशीलता में व्याप्त जो पराई पिलयां हैं उन में व्यक्तिचार से वर्तमान (त्वा ) तुम को मैं वहां से ( आध्र्नोम ) अच्छे प्रकार डिगाती हूं है (पत्मन्) अध्यम में चित्त देने वाले पते ! ( कुकुननानाम् ) निरन्तर शब्द विद्या से न- जीभाव को प्राप्त हो रही हुई औरों की पिलयों के समीप मूर्खपन से जाने वाले (त्वा) तुझ को मैं ( आ ) ( धृनोम ) वहां से अच्छे प्रकार छुड़ाती हूं । है ( पत्मन् ) कुचाल में चित्त देने वाले पते ! ( मन्दनानाम् ) कल्याण के आचरण,करतो हुई पर पिलयों के समीप अध्यम से जाने वाले (त्वा) तुझ को वहां से मैं (आ ) अच्छे प्रकार (धूनोमि) पृथक् करती हूं । हे ( पत्मन् ) चंचल चित्त वाले पते ! ( मदिन्तमानाम् ) अत्यन्त आन- निद्दत परपिलयों के समीप उन को दुःख देते हुए (त्वा ) तुम को में वहां से ( आ ) वार २ ( धूनोमि ) कंपाती हूं । हे ( पत्मन् ) कठोर चित्त पते ! ( मधुन्तमानाम् ) अ- तिशय करके मीठी २ बोलियां बोलने वाली परपिलयों के निकट कुचाल से जाते हुए

(त्वा) तुम को मैं (बा) अच्छे प्रकार (धूनोमि) हटाती हूं। हे (पत्मन्) अविधा में मरण करने वाले (अन्ह:) दिन के (क्षे) क्ष्प में अर्थात् (सूर्यस्य) सूर्यं की फैली हुई किरणों के समय में घरमें संगति की चाह करते हुए (शुक्रम्) शुद्ध वीर्यं वाले (त्वा) तुम को (शुक्रे) वीर्यं के हेतु (आ) भले प्रकार (धूनोमि) छुड़ाती हूं ॥४८॥

भ.वार्थ:—इस मन्त्र में वाचकानुः — जैसे सूर्यं की किरणों के प्राप्त होकर संसार के पदार्थ शुद्ध होते हैं नैमे ही दुराचारी पुरुष अच्छी शिक्षा और स्त्रियों के सत्य उपदेश से दण्ड को पाकर पवित्र होते हैं गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त दु:ख देने और कुछ को भ्रष्ट करने वाले व्यभिचार कर्म से सदा दूर रहें क्योंकि इससे शरीर और आतमा के बल का नाश होने से धर्म अर्थ काम और मोश्न की सिद्धि नहीं होती ॥ ४८ ॥

ककुभमित्यस्य देवा ऋषयः । विश्वेदेवा प्रजापतयो देवताः । विराद् प्राजापत्या जगतौ छन्दः । निपादः स्वरः । यत्ते सीमेत्यस्य भुरिकार्प्युण्णिक् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब फिर गृहस्थों को राजैंगक्ष में उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

क्रकु भर्छ ख्यं वृष्यभस्यं रोचने बृहच्छुकः शुक्रस्यं पुरोगाः सोमः सोमंस्य पुरोगाः। यत्ते मोमाद्यं भ्यत्राम जागृं वि तस्मैं स्वा गृक्रामि तस्मैं ते सोम सोमां मुस्याहां॥ ४९ ॥

पदार्थ:—हे (सोम) पैरवर्ण को प्राप्त हुए विद्वान् आप (यत्) जिस (वृषम-स्य) सब सुझों के वर्णने वाले आपका (ककुमम्) दिशाओं के समान शुद्ध (वृहत्) बड़ा (रूपम्) सुन्दर स्वरूप (गीचते) प्रकाशमान होता है सो आप (शुक्रस्य) शुद्ध धर्मा के (पुरोगा:) अग्रगामी वा (सोमस्य) अत्यन्त पैरवर्ण्य के (पुरोगा:) अग्रगन्ता (शुक्र:) शुद्ध (सोम:) सोम गुण सम्पन्न पैरवर्ण्युक हृजिये जिस से आप का (अदाश्यम्) प्रशंसा करने योग्य (नाम) नाम (जागृवि) जाग रहा है (तस्मै) उसी के लिये (त्वा) आप को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं और हे (सोम) उत्तम कामा में प्रदेश (तस्मै) उन (सोमाय) श्रेष्ट कामा में प्रदृत हुए (ते) आप के लि-थे (स्वाहा) सत्य वाणी प्राप्त हो ॥ ध्रः॥

भाषार्थ:—सभाजन और प्रजाजनों को चाहिये कि जिसकी पुष्य, प्रशंसा, सुन्दर-रूप, विद्या, न्याय, विनय, श्रुता, तेज, अपक्षपात, मित्रता, सब कामों में उत्साह धा- रोन्य वल पराकूम धोरज जितेन्द्रियता चेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और प्रजा पालन में प्रोति हो उसी को सभा का अधिपति राजा मार्ने || ७९ ||

उशिक्त्वमित्यस्य देवा ऋपयः । प्रजापतयो देवताः । स्वराडार्षा जगती छन्दः । विषादः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से राज विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

जुश्चिक त्वन्देव सोमारनेः प्रियम्पाधोऽपीहि वृद्धी त्वन्देव सोने
मेन्द्रस्य प्रियम्पाधोऽपी स्थास्मत्संखा त्वन्देव सोम् विद्वेषान्द्रेवान्
नाम्गियम्पाधोऽपीहि ॥ ५०॥

पदार्थ:—हे (देव) दिव्य गुण सम्पन्न (सोम) समस्त ऐदवर्य्य युक्त राजन् ! आप (उशिक्) अति मनोहर होके (अग्नेः) उत्तम विद्वान् के (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न करान् वाले (पाथः) रक्षा योग्य व्यवहार को (अप) निद्द्वय से (इहि) प्राप्त करो और जानो हे (देव) दानशोल (सोम) हर एक प्रकार से ऐदवर्य्य को उन्नति कराने वाले आप (वशो) जितेन्द्रिय होकर (इन्द्रस्य) प्रमैदवर्य्य वाले धार्मिक जन के (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न कराने वाले (पाथः) जानने योग्य कर्म को (अप) निद्द्वय से (इहि) जानो हे (देव) समस्त विद्याओं में प्रकाशमान (सोम) ऐदवर्य्य युक्त आप (अस्मत्सखा) हम लोग जिन के मित्र हैं ऐसे आप होकर (विद्वेपाम्) समस्त (दे-वानाम्) विद्वानों के प्रेम उत्पन्न कराने हारे (पाथः) विद्वान के आचरण को (अप) निश्चय से (इहि) प्राप्त हो तथा जानो ॥ ५०॥

भावार्थ:—राजा राजपुरुप सभासद् तथा अन्य सब सज्जनों को उचित है कि पु-रुपार्थ, अच्छे २ नियम और मित्रभाव से धार्मिक वेद के पारगन्ता विद्वाकों के मार्ग को चलें क्योंकि उन के तुल्य आचरण किये विना कोई विद्या धर्मी सब से एक प्रीति भाव और ऐइवर्ष्य को नहीं पा सकता है ॥ ५०॥

इहरतिरित्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतयो गृहस्था देवताः । आर्षा जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

अव गाहँस्थ्य धर्मा में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ||
इह रितंदिह रंमध्विम्ह धृतिदिह स्वधृतिः स्वाहां । उपसृजन्ध्रदणंस्मान्ने धरुणों मानरं धर्यन् । रायस्पोषं मस्मास्त्रं दीधरुत् स्वाहां ॥५१॥
पदार्थः —हे गृहस्थो तुम लोगों की ( इह ) इस गृहाश्रम में ( रितः ) प्रीति ( इह )
इस में ( धृतिः ) सब व्यवहारों की धारणा ( इह ) इसी में ( स्वधृतिः ) अपने

पदार्थों की घारणा (स्वाहा) तथा तुम्हारी सत्य वाणी और सत्य किया हो। तुम (इह) इस ग्रुहाश्रम में (रमध्वम्) रमण करो। हे गृहाश्रमस्थ पुरुष त् सन्तानी की माता जो कि तेरी विवाहित स्त्री है उस (मात्रे) पुत्र का मान करने वाली के लिथे (धरुणम्) सब प्रकार से घारण पोपण कराने योग्य गर्भ को (उपस्जन्) उत्पन्न कर और वह (धरुण:) उक्त गुण वाला पुत्र (मातरम्) उस अपनी माता का (धयन्) दूध पीवे। बेसे (अस्मास्त्) हम लोगों के निमित्त (राथ:) धन की (पोषम्) समृद्धि को (स्वाहा) सत्य भाव से (दीधरत्) उत्पन्न की जिथे॥ ५१॥

भावार्थ:—जब तक राजा आदि सभ्यजन वा प्रजाजन सत्य धेर्या वा सत्य से जोड़े हुए पदार्थ वा सत्य व्यवहार में अपना वर्त्तांव न रखें तब तक प्रजा और राज्य के सुख नहीं पा सकते और जब तक राजपुरुष तथा प्रजापुरुष पिता और पुत्र के तुल्य परस्पर प्रांति और उपकार नहीं करते तब तक निरन्तर सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५१॥

सत्रस्थेत्यस्य देवा ऋषय: । प्रजापतिदंवता । सुरिगार्षा वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों के विषय में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सत्रस्य ऋडिर्स्यर्गन्म ज्योतिर्मृतां अभूम । दिवं पृथिच्या अध्यार्देहामाविदाम देवान्तस्य ज्योतिः ॥ ५२ ॥

पदार्थ:—है विद्वन्! आप (सत्रस्य) प्राप्त हुए राज प्रजा व्यवहारक्ष यज्ञ के (ऋद्धिः) समृद्धि रूप (असि) हैं आप के सङ्घ से हम लोग (ज्योतिः) विज्ञान के प्रकाश को (अगन्म) प्राप्त हो वें और (अमृताः) मोक्ष पाने के योग्य (अभूम) हों (दिवः) सूर्योदि (पृथिव्याः) पृथिवो आदि लोकों के (अधि) बीच (अरुहाम) पूर्ण वृद्धि को पहुंचें (देवान्) विद्वानों दिव्य २ भागों (ज्योतिः) विज्ञान विषय और (स्वः) अत्यन्त सुख को (अविदाम) प्राप्त हो वें ॥ ५२॥

भावार्थ:—जब तक सब की रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विध्नता से पाने के योग्य कोई भी म-जुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है || ५२ ||

युवमित्यस्य देवा ऋषयः । गृहपतयो देवताः । पूर्वस्यार्ष्यं नुष्टुप् छन्दः । गान्धारः

स्वर: । द्रेचेत्यस्यासुर्युं ष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । अस्माकमित्यस्य प्राजा-पत्या वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । भूर्युं विरित्यस्य विराद्धप्राजापत्या

> पङ्किरछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥ फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

गुनन्तिमन्द्रापर्वता पुर्गेगुष्टा यो नंः पृत्तन्याद्य तन्त्रमिस्तं वज्रेण तन्त्रमिस्तं । दूरे चुत्तायं छन्त्मद् गहंनं यदिनंश्वत् । अन्स्माक् श्रे वाञ्चन् परिं वा्र विद्वत्तों दुम्मी दंषीष्ट विद्वतंः । भू- भुंवः स्त्रः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरां विरेः सुपोषाः पोषैः ॥ ५३ ॥

पदार्थ:—है (पुरोयुधा) युद्ध समय में आगे छड़ने वाले (इन्द्रापर्वता) सूर्यं और मेघ के समान सेनापित और सेनाजन! (युवम्) तुम दोनों (यः) जो (नः) हमारी (पृतन्यात्) सेता से छड़ना चाहे (तन्तम्) (इत्) उसी २ को (वज्रोण) शस्त्र और अस्त्र विद्या के बल से (हतम्) मारो और (यत्) जो (अस्माकम्) ह-मारे शत्रुओं की (गहनम्) दुर्ज्यं सेना हमारी सेना को (इनक्षत्) व्याप्त हो और (यत्) जो २ (छन्तसत्) बल को बढ़ावे उस २ को (चत्ताय) आनन्द बढ़ाने के लिये (इद्धतम्) अवदय मारो और (दूरे) दूर पहुंचा दो। हे (दूर्) शत्रुओं को सुख से बचाने वाले सभापते ! आप हमारे (शत्रून्) शत्रुओं को (विद्वतः) सब प्रकार से (परिदर्षिष्ट) विदीर्ण कर दीजिये जिस से हम लोग (भूः) इत भूलोक (भुवः) अन्तरिक्ष और (स्वः) सुखकारक अर्थात् दर्शनीय अत्यन्त सुख इत्प लोक में (प्रज्ञानः) अपने सन्तानों से (सुप्रजाः) प्रशंसित सन्तानों वाले (वोरैः) वौरों से (सुवीराः) बहुत अच्छे २ वीरों वाले और (पोपैः) पृष्टियों से (सुपोपाः) अच्छी २ पृष्टि वाले (विद्वतः) सब ओर से (स्याम) होवें ॥ ५३॥

भावार्थ:—जब तक सभापित और सेनापित प्रगल्भ हुए सब कामों में अग्रगामी न हों तब तक सेना बीर। आनन्द से युद्ध में प्रवृत्त नहीं हो सकते और इस काम के विना कभी विजय नहीं होता। तथा जब तक शत्रुओं को निम्मृील करने हरे सभा-पित अहि नहीं होते तब तक प्रजा का पालन नहीं कर सकते और न प्रजाजन सुकी हो सकते हैं ॥ ५३॥

परमेष्टीत्यस्य विसष्ट ऋषि:। परमेष्टी प्रजापतिर्देवता । साम्युष्णिक् छन्दः । ऋष्यः ॥

फिर भी गृहस्थ का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रमेष्ट्रयभिर्घातः प्रजापंतिर्दाचि व्याह्नंतायामन्धो अच्छेतः। सविता सन्यां विश्वकंमां दीक्षायांम्पूषा सोम ऋषंण्याम्॥५४॥ पदार्थ:—हे गृहस्थो ! तुम ने यदि (व्याहृताय.म्) उच्चारित उपदिष्ट की हुई (वाची) वेदवाणों में (परमेष्ठी) परमानन्द स्वरूप में स्थित (प्रजापित:) समस्त प्रजा के स्वामी को (अच्छेत:) अच्छे प्रकार प्राप्त (विश्वकम्मी) सब विद्या और कम्मी को जानने वाळे सर्वथा श्रेष्ट समापित को (दीक्षायाम्) सभा के नियमों के धारण में (सोमक्षयण्याम्) पेशवर्थ श्रहण करने में (पूषा) सब को पुष्ट करने हारे उत्तम बंध को और (सन्याम्) जिस से सनातन सत्य प्राप्त हो उस में (सविता) सब जगत् का उत्पादक (अभिधीत:) सुविचार से धारण किया (अन्ध:) उत्तम सु-संस्कृत अस का सेवन किया तो सदा सुन्धी हों।। ५४ ।।

भाषार्थ: — जो ईश्वर वेद विद्या से अपने सांसारिक जीवाँ और जगत् के गुण कर्म्म स्वभावों को प्रकाशित न करता तो किसी मनुष्य को विद्या और इन का ज्ञान न होता और विद्या वा उक्त पदार्थों के ज्ञान के विना निरन्तर सुख क्योंकर हो सक-ता है। ५४॥

इन्द्रश्चेत्यस्य प्रसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । आर्षा पङ्किदछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषयों को अगले मन्त्र में कहा है।

इन्द्रंश्च मुक्तंश्च ऋषायोषांत्धितोऽसुरः पुण्यमाना मित्रः ऋति। बिच्णुः शिषिबिछ करावासंन्तो बिच्णुर्नरन्धियः॥ ५६॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो तुम लोग! जो विद्वानों ने (क्रपाय) व्यवहार सिद्धि के लिथे (इन्द्र:) विद्वली (मरुत:) पवन (असुर:) मेघ (पण्यमान:) स्तुति के येश्य (मित्र:) सखा (शिपिविष्ट:) समस्त पदार्थों में प्रविष्ट (विष्णु:) सर्व शरीर व्याप्त धनंजय वायु और इन में से एक २ पदार्थ (नरंधिष:) मनुष्यादि के आत्माओं में साक्षी (विष्णु:) हिरण्यगर्भ ईम्बर (ऊरी) ढापने आदि क्रियाओं में (आसन्न:) संनिकट वा (उपोत्थित:) समीपस्थ प्रकाश के समान और जो (कृति:) व्यवहार में वर्त्ती हुआ पदार्थ है इन सब को जानो ॥ ५५ ॥

भाषार्थ:—मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर से प्रकाशित अग्नि आदि पदार्थों की किया कुशलता से उपयोग लेकर गार्डस्थ्य व्यवहारों को सिद्ध करें || ५५ || प्रोद्यमाणइत्यस्य वसिष्ठ ऋषि: विश्वेदेवा गृहस्था देवता: | आर्थी गृहती छन्दः |

मध्यमः स्वरः ॥

फिर उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

ण्रोस्थमांणः सोम् आर्गतो वर्षण आसुन्धामासंह्रोऽनिराग्नी-भ्र इन्द्रो हविद्योनेऽर्थवीपावहित्रमांणः ॥ ५६॥

पदार्थ:—हे गृहस्थो! तुम को इस ईश्वर की छिए में (आसन्द्याम्) बैठने की एक अच्छी चौकी आदि स्थान पर (आगत) आया हुआ पृष्ठप जैसे विराजमान हो वैसे (प्रोह्ममाण:) तर्क वितर्क के साथ वादानुवाद से जाना हुआ (सोम:) ऐश्वर्य का समृह (वश्ना:) सहायकारी पृष्ठप के समान जल का समृह (आग्नोधे) बहुत इ-स्थनों में (अग्नि:) अग्नि (उपावहियमाण:) किया की कुशलता से युक्त किये हुए (अथवी) प्रशंसा करने योग्य के समान पदार्थ और (हविद्धीने) प्रहण करने योग्य पदार्थों में (इन्द्र:) विज्ञली निरन्तर युक्त करनी चाहिथे।। ५६॥

भावार्थः—तर्क के विना कोई भी विद्या किसी मनुष्य को नहीं होती और विद्या के विना पदार्थों से उपयोग भी कोई नहीं छे सकता ॥ ५६॥

विश्वेदेवाइत्यस्य वितष्ट ऋषि: | विश्वेदेवा देवता: । भुरिक्साम्नी बृहती छन्द: । मध्यम: स्वरः ॥

र्भिय गृहस्थ कर्म्म में कुछ <u>विद्वानों का पक्ष</u> अगले मन्त्र में कहा है।। विद्वे देवा <u>अ</u>श्रद्भाषु न्यु<u>मों विष्णुं</u>राप्री<u>त</u>पा स्रां<u>ण्या</u>य्यमानो

यमः मूर्यमान्ते विष्णुः सम्भियमायो वायः पूर्यमानः शुक्रः पूराः। शुक्रः श्लीरुश्रीर्मन्थी संक्तुश्रीः॥ ५७॥

पदार्थ:—है (विश्वेदेवा:) संगस्त विद्वानी ! तुम्हारा जो (अंशुषु) अलग २ सं-सार के पदार्थों में (न्युत:) नित्य स्थापित किया हुआ व्यवहार (आप्रीतपा:) अच्छी प्रीति के साथ (विष्णु:) व्याप्त होने वाली विज्ञली (आप्याच्यमानः) अति बढ़े हुए के समान (यम:) सूर्व्य (सूयमानः) उत्पन्न होने हारा (विष्णु:) व्यापक अव्यक्त (संभ्रियमाणः) अच्छे प्रकार पृष्टि किया हुआ (वायुः) प्राण (पृयमान:) पविश्व किया हुआ (शुक्ः) पराक्रम का समृह (पृतः) शुद्ध (शुक्ः) शोव्र वेष्टा करने हारा और (मंथी) विलीड़में वाला ये सब प्रत्येक सेवन किये हुए (क्षीरश्री:) दुष्धादि पदार्थों को पकाने और (सक्तुश्री:) प्राप्त हुए पदार्थी का आश्रय करने वाले होते हैं ॥ ५७॥

भावार्थ:-- मनुष्यों को युक्ति और विद्या से सेवन किये हुए सब सृष्टिस्थ पदार्थ शरीर आत्मा और सामाजिक सुख कराने वाले होते हैं ॥ ५७ ॥

विक्वेदेवाश्चेत्यस्य विसष्ठ ऋषिः । विक्वे देवा देवताः । सुरिगार्षी जगती छन्दः ।

निपादः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वद्विषय को भगले भंत्र में कहा है।।
विद्वें देवाश्चं मुसेषूष्ट्रीतोऽसुहीं मायोधंतो हुत्रो हूपमां मो बामोऽभ्यावंतो नृष्ट्याः प्रतिरूपातो मुक्षो मक्ष्यमांणः पितरी नाराशार्थसाः॥ ५८॥

पदार्थ:—जिन विद्वानों ने यज्ञा विधान से (खमसेखु) मेधों में सुगिन्ध बादि वस्तु (बसीतः) ऊ से पहुंचाया (असुः) अपना जीवन (उद्यतः) अच्छे यज्ञ में लगा रक्ता (इदः) जीव को पवित्र कर (इयमानः) स्वीकार किया (नृषक्षाः) मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला (प्रतिख्यातः) जिन्हों ने वादासुवाद से चाहा (वातः) बाहर के वायु अर्थात् मैदान के कठिन वायु के सह वायु शुद्ध किये फल (मस्यमाणः) कुछ मोजन करने योग्य पदार्थ (मक्षः) खाइये (नाराशंसाः) प्रशंसा कर मनुष्यों के उपदेशक (विद्वेदेवाः) सब विद्वान् (पितरः) उन सब के उपकारकों को ज्ञानों समक्षने खाहिये | 4८ |

भावार्थ:—जो विद्वान् छोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने सुगन्धि पृष्टि मचुरता और रोग नाशक गुण युक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल अग्नि के बीच में उनका होम कर शुद्ध वायु वर्षा का जल वा आपिधर्यों का सेवन कर के शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अलन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥ ५८॥

सम्भ प्रस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आर्था बृहती छन्दः । निपादः

खर:। यापत्येते इत्यस्य विराडार्षा गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

गव गृहस्य के कर्मा में यज्ञादि व्यवहार का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सन्नः सिन्धुंरवभृथायोद्यंतः समुद्वोऽभ्यविद्यमाणः सिल्जः

प्रमुतो यद्योरोर्जसा स्काभिता रजां रसि बीर्धे भिर्वीरतंमा शिवे-

ष्ठा या पत्येते सप्रतिता सहो भिविष्णू अगुन्वरुणा पूर्वहृती। (९॥ पदार्थ: — जिन्होंने ( अवभृथाय ) यज्ञान्त स्नान और अपने आत्मा के पवित्र कर्म के लिये ( अभ्यविद्यमाणः ) भोगने योग्य ( सिल्छः ) जिस में उत्तम जल है वह व्यवहार ( उद्यतः ) नियम से संपादन किया ( सिन्धुः ) निष्यां ( सनः ) निर्माण की ( समुद्रः ) समुद्र ( प्रष्ठतः ) अपने उत्तम गुर्णों से पाया है वे विद्यान् लोग ( ययोः ) जिन के ( ओजसा ) बल से ( रज्ञांसि ) लोक लोकान्तर ( स्किमता ) स्थित हैं ( या ) जो ( की येंभिः ) और पराक्रमों से ( की रतमा ) अस्यन्त की र ( शा

विष्ठा ) नित्य बल संपादन करने वाले ( सहोति: ) बलों से ( अप्रतौता ) मूर्बों को जानने अयोग्य ( विष्णू )। व्याप्त होने हारे ( वहणा ) अति श्रेष्ठ स्वोकार करने योग्य ( पूर्वहूतों ) जिस का सत्कार पूर्व उत्तम विद्वानों ने किया हो जो (पत्येते) श्रेष्ठ सज्जनों को प्राप्त होते हैं उन यज्ञ कर्म भक्ष्य पदार्थ और विद्वानों को ( अगन् ) प्राप्त होते हैं वे सदा सुखी रहते हैं ॥ ५९ ॥

भावार्थः —यज्ञ आदि व्यवहारों के विना गृहाश्रम में सुख नहीं होता ॥ ५९ ॥ देवानित्यस्य वसिष्ठ ऋषि: । विद्येदेवा देवता: । स्वराट् सामनी प्रिष्टुप् छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

फिर भी यह विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवा निद्यं मगन्य इस्ततों मा द्रविणमष्ट मनुष्या नित्र सिमगन्य इस्ततों मा द्रविणमष्ट पितृ व पृथिवी मंगन्य इस्ततों मा द्रविणमष्ट यं कं च लोकमगंन्य इस्ततों में भद्रमंभूत्॥ ६०॥

पदार्थ:—जो (यज्ञः) पूर्णंक सब के करने योग्य यज्ञ (दिवम्) विद्या के प्रकाश और (देवाम्) दिव्य भोगों को प्राप्त करता है जिल को विद्वान् लोग (अगन्) प्राप्त हों (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) दिव्यादि गुण (अप्रु) प्राप्त हों जो (यज्ञः) यज्ञ (अन्तरिक्षम्) मेघ मण्डल और (मगुष्यान्) मनुष्यों को प्राप्त होता है जिल को भद्र मनुष्य (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उल से (मा) मुझ को (द्रविणम्) धनादि पदार्थ (अप्रु) प्राप्त हों जो (यज्ञः) यज्ञ (पृथिवीम्) पृथिवी और (पितृन्) वसन्त आदि ऋनुओं को प्राप्त होता है जिल को आप्त लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उल से (मा) मुझ को (द्रविणम्) प्रत्येक ऋनु का सुख (अष्टु) प्राप्त हो जो (यज्ञः) यज्ञ (कम्) किसी (च) (लोकम्) लोक को प्राप्त होता है (यम्) जिल को धर्मात्मा लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उलसे (मे) मेरा (भद्रम्) कल्याण (अभृत्) हो ॥ ६० ॥

भावाय:—जिस यद्भ से सब सुख होते हैं उसका अनुष्ठान सब मनुर्च्या को क्या त करना चाहिये || ६० ||

चतुर्सिशदित्यस्य विसष्ट ऋषिः । विद्वेदेवा देवताः । साम्न्युण्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

इस जगत् की उत्पत्ति में कितने कोरण हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

## चतुं सि श्रेशासन्ते हो ये वितितिहरे य हमं ग्रज्ञथ स्वध्या दर्दन्ते । तेवा क्रिज्ञ सम्बेतर्दर्भोमि स्वाहां घुमी अप्येत् देवान ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(ये) जो (चतुस्तिशत्) आठों वसु ग्यारह रुद्र वारह आदित्य इन्द्र प्रजापित और प्रकृति (तन्तवः) सूत के समान (यज्ञम्) सुख उत्पन्न करने द्वारे यज्ञ को (वितक्तिरे) विस्तार करने हैं अथवा (थे) जो (स्वध्या) अन्न आदि उत्तम पदार्थों से (इमम्) इस यज्ञ को (दवंते) देते हैं (तेवाम्) उन का जो (छिन्नम्) अलग किया हुआ यज्ञ (पतत्) उस को (स्वाहा) सत्यिक्तिया वा सत्यवाणी से (सम्) (दधामि) इकट्ठा करता हूं (उ) और वहाँ (धर्माः) यज्ञ (देवान्) विद्वानों को (अपि) निश्चय से (पतु) प्राप्त हो ॥ ६१ ॥

भाषार्थ:—इस प्रत्यक्ष चराचर जगन् के चौतीस ३४ तत्त्व कारण है उन के गुण और दोषों को जो जानते हैं उन्हीं को सुख मिलता है ॥ ६१ ॥ यद्मस्थेत्यस्य वसिष्ठ ऋषि: । यहो देवता । स्वराहाणीं ज्ञिप्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर यह का विषय अगले मनत्र में कहा है।

युज्ञस्य दोष्ट्रो वितंतः पुरुत्रा सो अष्ट्रघा दिवंमन्वातंतान । स यज्ञ धुक्ष्य महि मे प्रजायां १ गुण्यस्योषं विश्वमार्युरशीय स्वाहां ॥६२॥

पदार्थ:—है (यज्ञ) सङ्गित करने योग्य विद्यन् आप जो (यज्ञस्य) यज्ञ का (पुरु-प्रा) बहुत पदार्थों में (विततः) विस्तृत (अप्रधा) आठों दिशाओं से आठ प्रकार का (दोहः) परिपूर्ण सामग्री समृह है (सः) वह (दिवम्) सूर्य्य के प्रकाश को (अन्वाततान) ढाप कर फिर फैलने देता है (सः) वह आप सूर्य्य के प्रकाश में यज्ञ करने वाले गृहस्य तू उस यज्ञ को (धुक्ष्व) परिपूर्ण कर जो (मे) मेरी (प्रजायाम्) प्रजा में (विश्वम्) सब (मिह्र) महान् (रायः) धनादि पदार्थों की (पोपम्) स-मृद्धि को वा (आयुः) जीवन को वार २ विस्तारता है उस को मैं (स्वाहा) सत्य-युक्त किया से (अशीय) प्राप्त होऊं ॥ ६२ ॥

भावार्थ:—मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्तिको करें और संसार के जीव को अत्यन्त छुख पहुंचार्ये ॥ ६२॥

भापवस्वेत्यस्य कश्यपं ऋषि:। यज्ञी देषता | स्वराडार्षी गायत्री छन्दः। घड्जः स्वरः ॥

मजुष्य किस के तुल्य यज्ञ का सेवन करें यह अगले मनत्र में कहा है ॥

## क्षा पंवरव हिरंग्यवृद्द्वंबस्सोम द्वीरवंत् । बाखं गोर्मन्तुमा संरु स्वाहां ॥ ६३ ॥

पदार्थ:—हे सोम पेश्वर्क्य चाहने वाले गृहस्थ!तू (स्वाहा) सत्य वाणी वा सत्य किया से (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि पदार्थों के तुल्य (अश्ववत्) अश्व आदि उत्तम पशुओं के समान (वीरवत्) प्रशंसित वीरों के तुल्य (गोमन्तम्) उत्तम इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाले (वाजम्) अन्नादि मय यञ्च का (आभर) आश्रय रख और उस से संसार को (आ) अच्छे प्रकार (पवस्व) पिषत्र कर ॥ ६३॥

भावार्थ:—म्लुप्यों को चाहिये कि अपने पृद्धार्थ से खुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्तें तइनन्तर वीरों को रक्तें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रम रूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसिटिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें ॥ ६३ ॥

इस अध्याय में गृहस्थ धर्म सेवन के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का स्वीकार गृहस्थ धर्म का वर्णन राज प्रजा और समापित आदि का कर्त्तव्य क-हा है इसलिये इस अध्यायोक्त अर्थ के साथ पूर्व अध्याय में कहे अर्थ की संगति जा-मनी चाहिये ||

#### यह आठवां अध्याय समाप्त हुआ।।



#### भो३म्

### त्र्राय नवमाऽध्यायार्**म्भः** ॥

विश्वांनि देव सवितर्दुतितानि परांसुव । यद्भद्रं तश्च श्रासुव ॥ १ ॥ देवसवितरित्यस्य इन्द्राबृहस्पती ऋषी । सविता देवता । स्वराडार्यात्रष्ट्रपु छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

विद्वान् लोग चकवर्ता राजा को कैसा २ उपदेश करें इस विषय को भगले मंत्र में कहा है ॥

देवं सवितः प्रसुव एजं प्रसुव एज्ञपंति भगांच । टिव्यो गंन्ध र्वः केंत्रपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वार्जन्नः स्वदतु स्वाहां ॥ १॥

पदार्थ:—हे (देव ) दिव्यगुणयुक (सिवत:) संपूर्ण ऐइवर्घ्य वाले । राजन आप (भगाय) सब ऐइवर्य की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) बेद वाणी से (यहाम्) सब को सुल देने वाले राज धर्म का (प्र) (सुव) प्रचार और (यह्मपतिम्) राज धर्म के रक्षक पुरुष को (प्र) (सुव) प्रेरणा की जिये जिस से (दिव्य:) प्रकाशमान दिव्य गुणों में स्थित (गंधर्य:) पृथिवी को धारण और बुद्धि को शुद्ध करने वाला (वाच- स्पति:) पढ़ने पढ़ाने और उपदेश से विद्या का रक्षक सभापित राज पुरुष है वह (न;) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) शुद्ध कर और हमारे (वाजम्) अन्न को सत्य वाणी से (स्वद्तु) अच्छे प्रकार भोगे ॥ १॥

भाषार्थ:-न्याय से प्रजा का पालन और विद्या का दान करना ही राजपुरुषों का यज्ञ करना है ॥ १॥

भ्रुवसदंत्वेत्यस्य षृहस्पतिऋषिः । इन्द्रो देवता । ध्रुवसदिमिति पूर्वस्यार्धोपङ्किङ्ख-न्दः । पंचमः स्वरः । अप्सुसदिमित्यस्य विकृतिश्कुन्दः । मध्यमः स्वरः ॥ फिर मजुष्यं लोग किस प्रकार के पुरुष को राज्याऽधिकार में स्वीकार करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

धुवसदंन्त्वा नृषदंन्तनः सदंग्रुपणामगृहीतोऽसीन्त्रांय स्ता जुष्टं गृह्णान्येष ते योतिरिन्द्रांय स्त्रा जुष्टंतमम् । अप्सृषदं त्वा घृतसदं न्योमसदंग्रुपणामगृहीतोऽसीन्द्रांय स्त्रा जुष्टं गृह्णान्येष ते योति- रिन्द्रांच त्वा जुर्छतमम् पृथिविसदं त्वाऽन्तरिश्चसदं दिश्चिसदं देवसदं नाकसदंमुपयामगृहीतोऽसीन्द्रांच त्वा जुर्छं गृह्वाम्येष ते योतिरिन्द्रांच त्वा जुर्छतमम् ॥ २ ॥

पदार्थ: - हे चक्रवर्ति राजन् ! मैं ( इन्द्राय ) परमैदवर्ययुक्त परमात्मा के लिये जो आप ( उपयामगृहीत: ) योग विद्या के प्रसिद्ध अंग यम के सेवने वाले पुरुषों ने स्वी-कार किथे (असि) हो । उस (ध्रुवसदम् ) निश्चल विद्या वितय और योग धर्मों में स्थित ( नृषद्म् ) नायक पुरुषों में अवस्थित ( मन: सद्म् ) विद्वान में स्थिर (जुष्ट-म् ) प्रीतियुक्त (त्वा ) आपका ( गृह्णामि ) स्वीकार करता हूं । जिस (ते ) आपका (एषः) यह (योनिः) दुख निमित्त है उस ( जुप्रतमम् ) अस्यन्त सेवनीय (स्वा ) स.प का ( गृह्णामि ) घारण करता हुं। हे राजन् ! में ( इन्द्राय ) ऐश्वर्क्य धारण के लिये जो भाप ( उपयामगृहीत: ) प्रजा और राजपुरुषों ने स्वीकार किये ( असि ) हो उस ( अप्सुसद्म् ) जलों के बीच चलते हुए ( वृतसद्म् ) घी आदि पदार्थों को प्राप्त हुए और ( व्योमसन्म् ) विमानादि यानों से आकाश में चलते हुए ( जुएम् ) सब के प्रियः(त्वा) भाष का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं। हे सब की रक्षा करने हारे स-भाष्यक्ष राजन् ! जिस (ते ) आप का (एप:) यह (योनि:) सुखदायक घर है उस ( ज़ुष्टतमम् ) अति प्रसन्न (त्वा ) आप को ( इन्द्राय ) दुष्ट शत्रुओं के मारने के लिये ( गृह्णामि ) स्वीकार करता हूं हे सब भूमि में प्रसिद्ध राजन् ! मैं ( इन्द्राय ) विद्या योग और मोक्ष रूप ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये जो भाग ( उपयामगृहीत: ) साधन उ-पसाधनों से युक्त ( असि ) हो उस ( पृथिविसदम् ) पृथिवी में भ्रमण करते हुए ( अ-न्तरिक्षसदम् ) अवकाश में चलने वाले (दिविसदम् ) न्याय के प्रकाश में नियुक्त (देवसदम्) धर्मात्मा और विद्वानों के मध्य में अवस्थित (नाकसदम्) सब दुःस्रों से रहित परमेश्वर और धम्में में स्थिर ( ज्ञुष्टम् ) सेवनीय (त्वा ) आप का ( गृह-णामि ) स्वीकार करता हूं । हे सब छुझ देने और प्रजापालन करने हारे राजपुरुष ! जिस (ते ) तेरा ( एष: ) यह (योनि:) रहने का स्थान है उस ( ज़ुष्टतमम् ) अत्यन्त प्रिय (त्वा ) आप को (इन्द्राय ) समग्र सुख होने के लिये (गृहणामि ) ग्रहण कर-ता हूं || २ ||

भाषार्थ:—हे राज प्रजाजनो ! जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सम्पूर्ण पेश्वर्च्च भोगने के लिये जगत् रच के सब के लिये सुख देता वैसा ही आचरण तुम लोग भी करो कि जिस से धर्म अर्थ काम और मोक्ष फलों की प्राप्ति सुगम होवे ॥ २ ॥

अपामित्यस्य बृहस्पतिक्रिंषिः । इन्द्रो देवता । अतिशक्तरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर प्रजाजनीं को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिये यह विषय अगळे

मन्त्र में कहा है ॥

अपार रस्मुद्धेय स्थ सूर्ये सन्तंथ समाहितम् । अपाछ र-संस्य यो रसंस्तं वो गृह्णाम्युत्तमसुंप्यामगृहीतोऽसीन्द्राय त्या जुर्ष गृह्णाम्येष ते योतिहारन्द्राय त्या जुर्धतमम् ॥ ३ ॥

पदार्थ:—हे राजन्! में (इन्द्राय) पेश्वर्ध्य प्राप्ति के लिये (वः) तुम्हारे लिये (स्यं) स्यं के प्रकाश में (सन्तम्) वर्त्तमान (समःहितम्) सर्वं प्रकार चारों ओर षारण किये (उद्धयसम्) उत्हार जीवन के हेतु (अपाम्) जलों के (रसम्) सार का प्रहण करता हूं (यः) जो (अपाम्) जलों के (रसस्य) सार का (रसः) सार वी-यं धातु है (तम्) उस (उत्तमम्) कल्याणकारक रस का तुम्हारे लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं जो आप (उपयामगृहीतः) साधन तथा उपसाधनों से स्वीकार किये गये (असि) हो उस (इन्द्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (जुरुम्) प्राप्ति-पूर्वक वर्त्तने वाले आप का (गृहणामि) प्रहण करता हूं जिस (ते) आप का (एपः) यह (योतः) घर है उस (जुरुतमम्) अत्यन्त सेवनीय (त्वा) आप को (इन्द्राय) परम सुख होने के लिये (गृह्णामि) प्रहण करता हूं ॥ ३॥

भावार्थ:—राजा को चाहिये कि अपने नौकर प्रजापुरुषों को शरीर और अत्मा के बल बढ़ने के लिये ब्रह्मचर्य भोषधि विद्या और योगाभ्यास के सेवन में नियुक्त करें। जिस से सब मनुष्य रोगरहित होकर पुरुषार्था होवें। | ३ ||

प्रदा इत्यस्य बृहरूपतिऋंषिः । राजधर्मराजादयो देवताः । भुरिक्कृतिइछन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि आप्त विद्वान की अच्छे प्रकार परीक्षा करके सङ्ग करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।

प्रदां कर्जाहृतयो व्यन्तो विष्यां स्तिम् । तेषां विद्यिविधाः णां बोऽह्मिष्मूर्ज्ञेश सम्प्रममुप्यामगृंहीतोऽसीन्द्रांच त्या जुष्टं गृह्यान्वेष ते योतिरिन्द्रांच त्वा जुष्टंतमम् । सम्प्रचौ स्थः सम्मां-स्रोतेष पृक्तं विष्यौ स्थो वि मां प्राप्तंना पृक्तम् ॥ ४॥ पदार्थ:—है राजप्रजापुरुष ! जैसे ( अहम् ) म गृहस्थ जन ( विप्राय ) बुखिमान् पृश्य के पुस के लिये ( मितम् ) बुद्धि को देता हूं वैसे तू भी किया कर ( व्यन्तः ) जो सब विद्याओं में व्यास ( ऊर्जाहुतयः ) बल और जीवन बढ़ने के लिये दान देने और ( ग्रहाः ) प्रहण करने हारे गृहस्थ लोग हैं जैसे (तेषाम् ) उन (विशिष्ठियाणाम् ) अनेक प्रकार के धर्मयुक्त कमों में मुख और नासिकावालों के ( मितम् ) बुद्धि (इषम् ) अब आदि और ( ऊर्जम् ) पराक्रम को ( समग्रमम् ) ग्रहण कर खुका हूं वैसे तुम भी प्रहण करो | हे विद्वान महुन्य ! जैसे तू ( उपयामगृहीतः ) राज्य और गृहाश्रम की सामग्री से सहित वर्तमान (असि) है वैसे में भी होऊं। जैसे में (इन्द्राय) उत्तम पेशवर्य के लिये (जुष्टम्) प्रसन्ध (त्वा) आप को (गृहणामि) ग्रहण करता हूं वैसे तू भी मुझे ग्रहण कर जिस ( ते ) तेरा ( एषः ) यह ( योतिः ) घर है उस ( इन्द्राय ) पशुओं को नष्ट करने के लिये ( जुष्टतमम् ) अत्यन्त प्रसन्ध (त्वा) तुझे में जैसे वह और तुम दोनों युक्त कर्मों में (संग्रजों) संयुक्त ( स्थः ) हो वैसे ( महेण ) सेवने योग्य सुखदायक ऐश्वर्य से ( मा ) मुझ को ( संगृहक्तम् ) संयुक्त करो जैसे तुम ( पापमा ) अधर्मा पृश्यक् से ( विग्रजों ) पृथक् ( स्थः ) हो इस से ( मा ) मुझ को भी ( विगृहक्तम् ) पृथक् करो ॥ धा ।

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा और प्रजा में गृहस्थ लोग बुद्धि-मान् सन्तान वा विद्यार्थों के लिये विद्या होने की बुद्धि देते दुए आचरणों से पृथक् रखते कल्याणकारक कर्मों को सेवन कराते और दुएसङ्ग छुड़ो के सत्सङ्ग कराते हैं वे ही इस लोक और परलोक के सुख को प्राप्त होते हैं इन से विपरीत नहीं ॥ ४॥ इन्द्रस्थेत्यस्य बृहस्पतिऋष्टिः। सविता देवता। भुरिगिएइछन्दः। मध्यमः स्वरः॥ अब किसलिये सेनापति की प्रार्थना यहां करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इन्द्रंस्य वज्रोऽसि वाज्यसासवयाऽयं वाजंश सेत्। वाजंस्य नु प्रंस्तवे मातरंग्म्हीमदिंति नाम वर्षसा करामहे। यस्यांमिदं वि-इवं सुवंनमाबिवेश तस्यांन्नो देवः संविता घम साविषत्॥ ५॥

पदार्थः—हे बीर पुरुष ! ( यस्याम् ) जिस में ( त्वम् ) आप ( इन्द्रस्य ) परम ऐश्व-र्ययुक्त राजा के ( वाजसाः ) संप्रामों का विभाग करने वाला ( वजः ) वज्र के समान शत्रुओं की काटने वाले ( असि ) हो उस ( त्वया ) रक्षक आप के साथ ( अयम् ) यह पुरुष (वाजम् ) संप्राम का ( सेत् ) प्रवन्य करे । जहां ( इदम् ) प्रस्थक वर्षमान (विद्यम्) सव ( भुवनम् ) जगत् ( थावियेश ) प्रविष्ट है और जहां ( देव: ) सव का प्रकाशक ( सविता ) सव जगत् का उत्पादक परमातमा ( न: ) हमारा (धर्म्य) धारण ( सावियत् ) करे ( तस्याम् ) उस में ( नाम ) प्रसिद्ध ( वाजस्य ) संग्राम के (प्रस्ते ) पेश्वर्य में ( मातरम् ) मान्य देने हारी ( थितितम् ) अखंडित ( महीम् ) पृथिवी की ( वचसा ) वेदोक न्याय के उपदेशक्ष वचन से हम कोग ( तु ) शीन्न ( करामहे ) प्रहण करें ॥ ५ ॥

भावार्थ:—इस मंत्र में वासकलु०—हे मतुष्यो। जो यह भूमि प्राणियों के लिये सी-भाग्य के उत्पन्न माता के समान रक्षा और सब को घारण करनेहारी प्रसिद्ध हैं उसका विद्या न्याय और घम्म के योग से राज्य के लिये तुम लोग सेवन करो || ५ ||

ध्यप्स्वन्तरित्यस्य बृहस्पतिऋषिः । ध्यको देवता । सुरिग्जगर्ता छन्दः । निपादः स्वरः ।

फिर स्त्रों पुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले अंत्र में कहा है। अप्टिश्नुन्तर्मृतंम्प्रमु में श्रुजम्पामुत प्रशास्तिष्टवह्वा भवंत हान जिनेः। देवीरापो यो वं किसिः प्रतृतिः कुकुन्मान्याज्यसास्तेनायं दाजंध्यस्तु ॥ ६॥

पदार्य:—हे (देगोः) दिव्यगुणवाली (आपः) अन्तरिक्ष में व्यापक स्त्री पुरुष लोगो!तुम (यः) जो (यः) तुद्धारा (समुद्रस्य) सागर के (ककुत्मान्) प्रशस्त चं- चल गुणों से युक्त (वाजसाः) संप्रामों के सेवन को हेतु (प्रतृष्टिः) अति शीव्र चलने भाला समुद्र के (किं।) आञ्चादन करने हारे तरंगों के समान पराक्रम और जो (अप्तु) प्राण के (अन्तः) मध्य में (अमृतम्) मरण धर्म रहित कारण और जो (अप्तु) जलों के मध्य अल्पमृत्यु से छुड़ाने वाला (भेषजम्) रोग निवारक और्ष्य के समान गुण है जिस से (अयम्) यह सेनापित (वाजम्) संप्राम और अक्ष का प्रवन्ध करे (तेन) उस से (अपाम्) उक्त प्राणों और जलों को (प्रशस्तित्व) गुण प्रनिधाओं में (वाजिनः) प्रशंसित बल और पराक्रम वाले (अदवाः) कुलीन छोड़ों के समान वेगवाले (भवत) हुजिये || ६ ||

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलु०—िस्त्रयों को चाहिये कि समुद्र के समान ग-म्मीर जल के समान शान्तस्वभाव वौरपुत्रों को उत्पन्न करने नित्य ओषियों को से-वने और जलादि पदार्थों को ठीक २ जाननेवाली होवें इसी प्रकार जो पुरुष वायु और जल के गुणां के वेत्ता पुरुषों से संयुक्त होते हैं वे रोगरहित होकर विजयकारी होते हैं ॥ ६॥ बातोबेत्यस्य बृहस्पतिऋँषिः । सेनापतिहँबता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥ मनुष्य लोग किस प्रकार क्या करके बेग वाले ही इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

बातों बा मनों वा गन्ध्वीः सप्तविधवातिः। ते अग्रेऽइवंमयुः इज्रेंस्ते अस्मिन् ज्वमाद्धः॥ ७॥

पदार्थ:—जो विद्वान् लोग ( वातः ) वायु के ( वा ) समान ( मनः ) मन के (वा) समानुल्य और जैसे (सप्तविंशतिः ) सत्ताईस ( गन्धर्वाः ) वाय इन्द्रिय और भूतों को घारण करने हारे ( अस्मिन् ) वस जगत् में ( अग्रे ) पहिले ( अश्वम् ) व्यापकता और बेगादि गुणों को ( अयुक्जन् ) संयुक्त करने हैं ( ते ) वेही ( जवम् ) उत्तम बेग को ( आद्धुः ) धारण करते हैं | ७ |

भावार्थ:—जो एक समिए वायु, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कुर्म, रुक्छ, देवदत्त, और धनंजय, (दश) बारहवां मन, तथा इसके साथ श्रोत्र आदि दश इन्द्रिय और पांच सूक्ष्म भूत ये सब २७ सत्ताईस पदार्थ ईश्वर ने इस जगत् में पहिले रचे हैं। जो पुरुष इन के गुण कर्म और स्वमाव को ठोक २ जान और यथा-योग्य कार्यों में संयुक्त करके अपनी २ ही स्त्री के साथ की ड़ा करते हैं वे संपूर्ण ऐ- श्वर्थ को संचित कर राज्य के योग्य होते हैं॥ ७॥

भातर हैत्यस्य बृहस्पतिऋँषिः । प्रजापतिदंवता । भुगिक् त्रिप्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ उस राजा को विद्वान् लोग क्या २ उपदेश करें यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

यातर छहा भव याजिन् गुज्यमां न इन्ह्रंस्ये न दक्षिणः श्रियेघि। गुज्जन्तुं त्वा मुक्तों विद्ववेदस स्रा थे त्वष्टां प्रसु ज्वनदंघातु॥८॥

पदार्थ:—हे (वाजिन्) शास्त्रोक किया कुशलता के प्रशस्त बोध से युक्त राजन्! जिस (त्वा) आप को (विश्व वेदसः) समस्त विद्याओं के जानने होरे (महतः) विद्वान् छोन राज्य और शिल्प विद्याओं के कार्यों में (युक्तन्तु) युक्त और (त्वधा) वेगादि गुण विद्या का जानने हारा मनुष्य (ते) आप के (पत्सु) पर्गों में (जवम्) वेग को (आद्धातु) अच्छे प्रकार धारण करें। वह आप (वातरहाः) वायु के समान वेग वाछे (भव) हृजिये और (युज्यमानः) सावधान होके (वृक्षिणः) प्रशंसित धर्म से चलने के चलने के वल से युक्त होके (इन्द्रस्य व) परम ऐश्वर्य वाछे राज्य के स-मान (श्विया) ध्रोमा युक्त राज्य संपत्ति वा राणी से सहित (ध्रिय) वृद्धि को प्राप्त हुजिये ॥ ८॥

आवार्थ;—इस सन्त्र में उपमालंकार है—है राजलम्बन्धी स्त्री पुरुषो ! आप लोग अभिमान रहित और निर्मत्सर अर्थात् दूसरों को उन्नति को देखकर प्रसन्त होने वाले होकर बिद्धानों के साथ मिल के राज धर्म की रक्षा किया करो तथा विमानादि यानों में बैठ के अपने अभीष्ट देशों में जा जितेन्द्रिय हो और प्रजा को निरन्तर प्रसन्त कर के श्रीमान् हुआ काँजिये ॥ ८॥

जन इत्तस्य बृहस्पतिक्षंपि:। वारो देवता। घृतिरुक्तदः। ऋषमः स्वरः।।

फिर वह राजा कैसा होने यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

जनो यस्ते वाजि निहिता गृहा यः इयेने परीत्तो अर्थरच्च

वाते। तेने नो वाजिन् वर्ल्यान् वर्लन वाजि जिच्च भव समेने

च पारियुष्णुः। वाजिनो वाजिन्तो वाजिं सिर्विष्यन्तो वृहस्पन्ते भागमविज्ञ्यतः॥ ९॥

पदार्थ:—हे (वाजिन्) श्रेष्ठ शास्त्र बोध और योगास्यास सं युक्त सेना वा सभा के स्वामी राजन्! (ते) आप का (यः) जो (जवः) वेग (गुहा) बुद्धि में (निहितः) स्थित है (यः) जो (इयेने) पक्षी में जैसा (परीत्तः) सव ओर दिया हुआ (च) और जैसे (वाते) वायु में (अचरत्) विचरता है (तेन्) उस से (नः) हम छोगों के (वछेन) सेना वा पराक्रम से (वछवान्) वहुत वछ से युक्त (भव) हुजिये हे (वाजिन्) वेगयुक्त राजपुरुष ! उसी वछ से (समने) संशाम में (पारियण्णुः) दुः के पार करने और (वाजित्) संशाम के जीतने वाछे हुजिये हे (वाजिनः) प्रशंसित वेग से युक्त योद्धा छोगो ! तुम (शृहस्पतेः) वड़ें। की रक्षा करने हारे सभाष्यक्ष की (भागम्) सेवा को प्राप्त हो के (वाजम्) बोध वा अकादि पदाधों को (सरिष्य-क्तः) प्राप्त होते हुए (वाजिततः) संशाम के जीतने हारे होओ और सुगन्धि युक्त प-इायों का (अवजिन्नतः) सेवन करो ॥ १ ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलु०—राजा को चाहिये कि शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को पा और शत्रुओं के जांतने में इयेन पक्षी और वायु के तुल्य शीमकारी हो के अपने सब सभासद सेना के पुरुष और सब नौकरों को अच्छे शिक्षित बल तथा सुख से युक्त कर धर्मात्माओं की निरन्तर रक्षा करें और सब राजा प्रजा के पुरुषों को चा- दिये कि इस प्रकार के हों और शत्रुओं को जीत के परस्पर प्रसन्न रहें ॥ १॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिऋंषि: । इन्द्राबृहस्पती देवते । विराहुत्कृतिव्छन्दः ॥ षड्जः स्वरः ॥ मनुष्य लोगों को रुखित है कि विद्वानों का अनुकरण करें मूडों का नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

हें बस्याह अ संबितः सबे सत्यसंवसो वृह स्पते ब्लुसं नार्क के है यम । देवस्याह अ संवितः सबे सत्यसंवस इन्द्रंस्यो समं नार्क के बहुयम् । देवस्याह अ संवितः सबे सत्यसंवस इन्द्रंस्यो समं नार्क के बहुयम् । देवस्याह अ संवितः सबे सत्यमं सवसो बृह स्पते बत्तमं नार्क महत्यमं सवस् । देवस्याह अ संवितः सबे सत्यमं सवस इन्द्रंस्यो त्तमं नार्क महत्यमं सवस् ॥ १०॥

पदार्थ:—हे राजा और प्रजा के पुरुषो ! जैसे ( अहम् ) मैं समाध्यक्ष राजा ( स-त्यसक्तः) जिस का ऐइक्यां और जगत् का कारण सत्य है उस ( देवस्य ) सव आर से प्रकाशमान ( बृहस्पते; ) बड़े प्रवृत्यादि पदाधों के रक्षक ( सिवतुः ) सब जगत् को उत्पन्न करने हारे जगदीदवर के ( सवे ) उत्पन्न किथे जगत् में ( उत्तमम् ) सब से उ-त्तम ( नाकम् ) सब दु:खाँ से रहित सच्चिवानन्द स्वरूप को ( वहेम् ) आरूद होऊं हे राजा के सभासद लोगो ! जैसे ( अहम् ) में परोपकारी पुरुष ( सत्यसवस: ) स-स्यन्याय से युक्त (देवस्य ) सब जुल देने (सवितु:) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने हारे ( इन्द्रस्य ) परम ऐइषर्ध्य के सहित चक्रवर्ती राजा के ( सवे ) ऐइवर्ग्य में ( उ-सम्म्) प्रशंसा के योग्य ( नाकम् ) दुःख रहित भोग को प्राप्त हो के ( ठहेयम् ) आ-हद हो जै। हे पढ़ने पढ़ाने हारे विद्या प्रिय लोगो ! जैसे ( अहम् ) मैं विद्या चाहने हारा जन ( सत्यप्रसवस: ) जिस से अविनःशो प्रकट बोध हो उस (देवस्य) संदूर्ण वि-चा और शुभ गुण कर्म और स्वभाव के प्रकाश से युक्त ( सिवतू: ) समग्र विचा बोध के उत्पन्न कर्त्ता ( बृहस्पते: ) उत्तम खेद वाणो की रक्षा करने हार बेद बेदांगीपांगों के पारदर्शा के ( सर्वे ) उत्पन्न किथे यिज्ञान में ( उत्तमम् ) सब से उत्तम ( नाकम् ) सब दु:सों से रहित आनन्द को (अरुहम्) आरूढ़ हुआ हूं हे विजय प्रिय छोगो ! जैसे ( अहम् ) में योद्धा मनुष्य ( सत्यप्रसवसः ) जिस से सत्यन्याय विनय और विजयादि डराम ही उस (देवस्य ) धनुबंद युद्ध विद्या के प्रकाशक (सवितु: ) शत्रुओं के वि-जय में प्रेरक ( इन्द्रस्य ) दुष्ट शत्रुओं को विदीर्ण करने हारे पुरुष की ( सबे ) प्रेरणा में (उत्तमम्) विजय नामक उत्तम ( नाकम् ) सब सुख देने हारे संप्राम को (अरू-हम् ) आकृ हुआ हूं वैसे आप भी सब छोग आकृ हूजिये ॥ १० ॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलु०-सब राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि

परस्पर विरोध को छोड़ ईश्वर चक्रवर्चा राज्य और समग्र विद्याओं का सेवन करके सब उत्तम सुखों को आप प्राप्त हों और दूसरों को प्राप्त करें || १० ||

बृहस्पत इत्यस्य बृहस्पतिऋंषि: | इन्द्राबृहस्पती देवते । जगती छन्दः | निषादः स्वरः ||

श्रव उपदेश करने और सुनने वालों का विषय अगले मन्त्र में कहा है || बृहंस्पते वार्ज जय बृह्स्पतेये वार्ष वदत बृह्स्पति वार्ज जा-पवत । इन्द्र वार्ज जयेन्द्रांय वार्च वदतेन्द्रं वार्ज जापवत ॥ ११ ॥

पदार्थ:—हे ( बृहस्पते ) सम्पूर्ण विद्याओं का प्रचार और उपदेश करने हार राज-पुरुष आप ( वाजम् ) विज्ञान वा संप्राम को ( जय ) जीतो हे विद्वानो तुम! छोग इस (बृहस्पतये) राजपुरुष के छिथे (वाचम् ) वेदोक्त सुशिक्षा से प्रसिद्ध वाणी को (वदत) पढ़ाओं और उपदेश करो इस ( बृहस्पतिम् ) राजा वा सर्वोत्तम अध्यापक को ( वाज-म् ) विद्या बोध वा युद्ध को ( जापयत ) बढ़ाओं और जिताओं हे ( इन्द्र ) विद्या के पेश्वर्य्य का प्रकाश वा शत्रुओं को विद्योर्ण करने हारे राजपुरुप! आप ( वाजम् ) परम पेश्वर्य्य वा शत्रुओं के विजयह्मपी युद्ध को ( जय ) जीतो हे युद्ध विद्या में कुशल वि-द्वानो ! तुम छोग इस ( इन्द्राय ) परम ऐश्वर्य्य को प्राप्त करने वाले राजपुरुष के लिये ( वाचम् ) राज धर्म का प्रचार करने हारी वाणी को ( वदत ) कहो इस ( इन्द्रम् ) राजपुरुष को ( वाजम् ) संग्राम को ( जापयत ) जिताओं ॥ ११ ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में श्लेषालं — राजा को ऐसा प्रयक्ष करना चाहिये कि जिस से वेद विद्या का प्रचार और शत्रुओं का विजय सुगम हो और उपदेशक तथा योद्धा लोग ऐसा प्रयक्ष करें कि जिस से राज्य में वेदादि शास्त्र पढ़ने पढ़ाने की प्रवृत्ति और अपना राजा विजयक्षों आभूपणों से सुशोभित होवे कि जिस से अधर्म का नाश और धर्म की वृद्धि अच्छे प्रकार से स्थिर होवे || ११ ||

प्यावंदत्यस्य बृहस्पतिऋपि:। इन्द्राबृहस्पती देवते। स्वराडतिघृतिष्रखन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्यों को अति उचित है कि सब समय में सब प्रकार से सत्य ही बोलें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ||

्ण्या वः सा सत्या संवागंभू चछा वृहस्पति वाज्रमजीजपूना-जीजपत् वृहस्पति वाज्रं वनस्पतछो विसुंच्यध्वम् । प्रवा वः सा सत्या संवागेभूषयेन्द्रं वाज्यमजीजपुताजीजपुतेन्द्रं वार्जं वर्नस्य-तयो विसंच्यव्यम् ॥ १२ ॥

पदार्थ:—हे ( वनस्पतय: ) किरणों के समान न्याय के पालने हारे राज पुरुषो तुम लोगो ( यया ) जिस से ( धृहस्पतिम् ) वेद शास्त्र के पालने हारे विद्वान् को (वाजम् ) वेद शास्त्र के बोध को ( अजीजपत ) बढ़ाओ ( वृहस्पतिम् ) बढ़े राज्य के रक्षक राज पुरुष के संधाम को ( अजीजपत ) जिताओ ( सा ) वह ( पषा ) पूर्व कहीं वा भागे जिस को कहेंगे ( व: ) तुम लोगों को ( सम्वाक् ) राजनीति में स्थित अच्छों वाणों ( सत्या ) सत्य स्वरूप ( अभूत् ) होवे, हे ( वनस्पतय: ) सूर्व्य की किरणों के समान न्याय के प्रकाश से प्रजा की रक्षा करने हारे राज पुरुषो तुम लोग ( या ) जिस से ( वन्द्रम् ) परम पेश्वर्य्य प्राप्त कराने हारे सेनापित को ( वाजम् ) युद्ध को ( अजीजपत ) जिताओ ( वन्द्रम् ) परम पेश्वर्य्य युक्त पुरुष को ( वाजम् ) अत्युक्तम लक्ष्मों को प्राप्त कराने हारे उद्योग को ( अजीजपत ) अच्छे प्रकार प्राप्त करावें ( सा ) वह ( एषा ) आगे पीछे जिस का प्रतिपादन किया है ( व: ) तुम लोगों की ( समवाक्ष्य) विनय और पुरुषार्थ का अच्छे प्रकार प्रकार करने वाली वाणी ( सत्या ) सदा सत्य भाषणादि लक्षणों से युक्त ( अभूत ) होवे ।। १२ ।।

भावार्थ:—राजा उस के नौकर और प्रजा पुरुषों को उचित है कि अपनी प्रतिज्ञा और वाणों को असत्य होने कभी न वें जितना कहें उतना ठीक २ करें जिस की वाणों सब काल में सत्य होती है वहीं पुरुष राज्याधिकार के योग्य होता है जब तक ऐसा नहीं होता तब तक उन राजा और प्रजा के पुरुषों का विद्यास और वे सुखों को नहीं बढ़ा सकते।। १२।।

देवस्याहमित्यस्य षृहस्पतिऋंषिः । सिवता देवता । जगती छन्दः । विषादः स्वरः ॥
राजपुरुषों को चाहिये कि धरमीतमा राज पुरुषों का अनुकरण करें अन्य तुच्छ
बुद्धियों का नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वेबस्याहर्थः संवितः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाञ्जितो बा-जं जेषम् । बार्जिनो बाजितोऽध्वेन स्कभ्नुबन्तो योर्जना मि-मोन्नाः काष्ठांब्रच्छत ॥ १३॥

पदार्थ:—हे वीर पुरुषो ! जैसे (अहम् ) मैं शरीर और आत्मा के बल से पूर्ण से-नापति (सत्यप्रसक्तः ) जिस के बनाधे जगत् में कारण रूप से पदार्थ निष्य है उस (स्वितुः ) सब पेश्वर्य्य के देने (देवस्य ) सब के प्रकाशक (बाजजितः ) विज्ञान आदि से उत्तर (शृहस्पते:) उस्तम वेदवाणी के पालने हारे जगदी दवर के (सवे) उत्पक्ष किये इस ऐक्वर्य में (वाजम्) संम्राम को (जेपम्) जीतं वैसे तुम लोग भी जीतो है (वाजिन:) विज्ञान क्ष्पी वेग से युक्त (वाजितत:) संम्राम को जीतने हारे (योजना) बहुत कोशों से शत्रुओं को (मिमाना:) देख और (अध्वन:) शत्रुओं के मार्गों को रोकते हुए तुम लोग जैसे (काष्ठाम्) दिशाओं में (गच्छत) चलो हो वैसे हम लोग भी चलें || १३ ||

भाषार्थ: - इस मन्त्र में वाचकलु० - योद्धा लोग सेनाध्यक्ष के सहाय और रक्षा से ही शत्रुओं को जीत और उन के मागों को रोक सकते हैं। और इन अध्यक्षादि राज पुरुषों को चाहिये कि जिस दिशा में शत्रु लोग उपाधि करते हों वहीं जाके उन को वश में करें।। १३॥

प्रस्येत्यस्य द्धिकावाऋषिः । बृहस्पतिवेवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

जब सेना और सेनापति अच्छे शिक्षित होकर परस्पर प्रांति करने वाले होवें तभो विजय प्राप्त होवे यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

पुष स्य बाजी क्षिप्रिया तुरएयति गूरिवायां बुको स्रिपिकक्ष आ-सनि । क्रितुं दिखिका अर्नुम् छ सनिष्यदृत्प्थामक्का १२४ ॥ तु स्वाहां ॥ १४ ॥

पदार्थ:— जैसे (स्थ:) वह (एष:) और यह (वाजी) वेगयुक्त (आसिन) मुख और (ग्रीवायाम्) कण्ठ में (बद्ध:) बंधा (कतुम्) कर्म अर्थात् गति को (संसिन-ष्यदत्) अतीय फैलाता हुआ (पथाम्) मार्गों के (अंकांसि) बिन्हों को (अनु) समीप (आपनीफणत्) अच्छे प्रकार चलता हुआ (दिधकाः) धारण करने हत्यों को चला-ने हारा घोड़ा (सिपणिम्) सेना को जाता है बैसे ही (अपिकक्षे) इधर उधर के ठी-क २ अवयवों में सेनापित अपनी सेना को (स्थाहा) सत्यवाणी से (तुरण्यति) वेग युक्त करता है ॥ १४॥

भावार्य:--इस मंत्र में वाचकलु०-- सेनापित से रक्षा को प्राप्त हुये वीर पुरुष बोड़ों के समान दौड़ते हुए शीव शत्रुओं को मार सकते हैं जो सेनापित बसम कर्मा करने हारे अच्छे शिक्षित वीर पुरुषों के साथ ही युद्ध करता वह प्रशंसित हुआ विज-य को प्रक्ष होता है अन्यथा पराजय ही होता है ॥१४॥

अतेलासा इधिकाषा अर्थि: । बृहस्यतिर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सेनापित आदि राजपुरुष कैसा पराक्रम करें इस विषय का उपवेश आगळे मन्त्र में किया है ॥

कुत स्मार्य द्ववंतस्तुर्ययतः पूर्य न वेरनुं वाति प्रग्राधिनः । इये-नस्येषु प्रजेतोऽङ्कसं परि दिधिकाव्णेः सहोजी तरित्रतः स्वाहां ॥१५॥

पदार्थ:—हे राजपुरुषों! जो ( ऊर्जा ) पराक्रम और ( स्वाहा ) सत्यिक्या के (सह) साथ ( अस्य ) इस ( द्रवतः ) रसप्रद वृक्ष का पत्ता और ( तुरण्यतः ) शीध उड़ने वाले ( वे: ) पक्षों के ( पर्णम् ) पंजों के ( न ) समान (उत ) और ( प्रगर्धिनः ) अत्यन्त इच्छा करने ( प्रजतः ) चाहते हुए ( इयेनस्थेव ) वाज पक्षों के समान तथा ( तिर्वतः ) अति शीध चलते हुए ( दिधकाल्णः ) धोड़े के सहश ( अक्कसम् ) अच्छे लक्ष-ण युक्त मार्ग में ( परि ) ( अनु ) ( वाति ) सब प्रकार अनुक्ल चलता है ( सम ) वहीं पुरुष शत्रुओं को जात सकता है ॥ १५ ॥

भाषार्थ:—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो वीर पुरुष नीलकण्ठ स्येन-पक्षी और घड़े के समान पराक्रमी होते हैं उन के शत्रुलोग सब ओर से विलाय जाते हैं ॥ १५॥

शक इत्यस्य विसष्ठ कृषिः । बृहस्पतिर्वेषता । सुरिक् पंक्तिरुक्तनः । पक्रवमः स्वरः ॥ कौन पुरुष प्रजा के पालने और शत्रुओं के विनाश करने में समर्थ होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

्र शक्तों भवन्तु बाजि<u>नों</u> हवेषु हेवताता मिनद्रवः स्वकीः। ज्रम्भ-युन्तोऽहिं वृक्ष्धे रक्षांथि सर्वेम्यस्मर्युयवक्षमीवाः ॥१६॥

पदार्थ:—जो (मितद्रवः) नियम से चलमे (स्वर्काः) जिन का अश्व वा सत्कार सुन्दर हो वे योद्धा लोग (शहम्) मेघ के समान चेष्टा करते और बढ़े हुए
( बृक्म्) चोर और (रक्षांसि) दूसरों को क्षेश देने हारे डावुओं के (जम्भयन्तः)
हाथ पांच तोड़ते हुए (वाजिनः) श्रेष्ठ युद्ध विद्या के जानने वाले वीर पृष्ठव (नः)
हम (देवतःता) विद्वान् लोगों के कमा तथा (हवेबु) संश्रामों में (सनिमि) सनातन (शम्) सुक को (भवन्तु) प्राप्त होवें (अस्मत्) हमारे लिथे (अभीवा) लोगों
के समान चर्तमान शत्रुमों को (युववन्) पृथक् करें ॥ १६॥

भाषार्थः—श्रेष्ठ प्रजा पुरुषों के पालने में तत्पर और रोगों के समान शत्रुओं के नाश करने हारे राज पुरुष ही सब को सुख दे सकते हैं अन्यथा नहीं ॥ १६॥ तेन इसस्य नाभानेदिष्ठ करिया । बृहस्पतिदेंवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥ प्रजाजन अपनी रक्षा के लिये कर देवें और इसीलिये राजपुरुष प्रहण करें अन्यचा नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।

ते <u>जो</u> अवैन्तो इव<u>त्रभृतो हवं</u> विद्वे शृण्यन्तु ब्राजिनों मित्रप्रे-यः। <u>सहस्र</u>सा मेथस्ताता सन्दिष्यथी महो ये धर्नप्र समिथेषु ज भिरे ॥ १७॥

पदार्थ:—(ये) जो ( अर्थन्तः ) ज्ञानवान् ( इवनश्रुतः ) प्रहण करने योग्य शा-कों को सुनने ( वाजिनः ) प्रशंसित वृद्धिमान् ( मितद्भवः ) शास्त्रयुक्त विषय को प्रा-स होने ( सहस्रसाः ) असंक्य विद्या के विषयों को सेवने और ( सिनम्पवः ) अपने आत्मा की सुन्दर भक्ति करने हारे राजपुर्वय ( मेथसाता ) समागर्मों के दान से युक्त ( सिमथेसु ) संप्रामी में ( नः ) हमारे वहं (धनम् ) पेशवर्ष्यं को ( जिन्नरे ) धारण करें वे ( विद्वे ) सब विद्वान् लोग हमारा ( हवम् ) पढ़ने पढ़ाने से होने वाले वोष शब्दों और वादो प्रतिवादियों के विवाद को ( शृज्वन्तु ) सुने ॥ १७ ॥

सावार्थ:—जो ये राजपुरुष इस लोगों से कर छैते हैं वे एशारी निरन्तर रक्षा कर नहीं तो न लें इम भी उन को कर न वेचें। इस कारण प्रजा की रक्षा और दुष्टों के साथ युद्ध करने के लिये ही कर देना चाहिये जन्य किसी प्रयोजन के लिये नहीं यह निश्चित है।। १७॥

वाजे वाज इत्यस्य विश्वष्ठ अस्पि: । बृहस्पतिवेवता । निषृत् त्रिप्टुप् छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मद ये राजा भीर प्रजा के पुरुष भाषस में कैसे क्सें यह विषय भासे मन्त्र में कहा है बाजेंवाजेऽबत बाजिनों नो घनेंघ विमा असूना ऋतजाः।

अस्य मध्यः पिवन माद्यंध्वन्त्रसा यांत पुथिभिदेववानैः ॥१८॥

पदार्थ:—हे (ऋतज्ञाः) सत्य विद्या के जानने हारे (अश्वताः) अपने अपने स्वक्ष से नाश रहित जीते ही मुक्ति खुल को प्राप्त (वाजिनः) वेगयुक (विद्याः,) विद्या और अच्छो शिक्षा से बुद्धि को प्राप्त हुए विद्वान् राजपुरुषो तुम छोग (वाजे वाजे) संप्राप्त २ के बीख (नः) हमारी (अथत) रक्षा करो (अस्य) इस (मध्वः) मधुर रस को (पिवत) पीओ। हमारे धनों से (तृप्तः) तृप्त होके (मादयप्दम्) आनिवृत्त होओ। और (देवयानैः) जिन में विद्वान् छोग चळते हैं उन (पिथिनः) मार्गों से सदा (यात) चछो। १८॥

भावार्थ:-राजपुरुषों को चाहिये कि वेदादि शास्त्रों को पढ़ और सुन्दर शिक्षा

से ठीकर बोध को प्राप्त होकर धर्मातमा विद्वानों के मार्ग से सदा चलें। अन्य मार्ग से नहीं तथा धरीर और आतमा का वल बढ़ाने के लिये वैद्यक शास्त्र से परीक्षा किये और अच्छे प्रकार पकाये हुए अब आदि से युक्त रतों का सेवन कर प्रजा की रक्षा से ही आनन्द को प्राप्त होतें। और प्रजापुरुषों को निरम्तर प्रसन्त रक्षों। १८॥ जा मा वास्येत्यस्य विस्त्र ऋषि:। प्रजापितवेंवता। निचृद्धितश्खन्द:। ऋष्मः स्वरः।। मनुष्ये। को धर्माचरण से किस किस पदार्थं की इच्छा करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

भा मा वार्जस्य प्रस्वो जंगम्यादेमे यावांप्रथिवी बि्इवर्सपे । भा मां गन्ताम्यितरांमातरा चा मा सोमी असृत्तेषेतं गम्यात् । बार्जिनो बार्जितो बार्जिश्र समृवाश्मो बृहस्पतेंभ्रोगमबं जिन् प्रत निमृजानाः ॥ १९॥

पदार्थ:—ह पूर्वोक्त विद्वान लोगो! जिन आप लोगों के सहाय से ( वाजस्य ) बेदादि शास्त्रों के नथों के लोधों का ( प्रसव: ) सुन्दर पेश्वर्थ ( मा ) मुझ को ( जगम्यात् ) शीव्र प्राप्त होवे ( रूमे ) थे ( विश्वरूपे ) सब रूप विषयों के सम्बन्धी ( द्यावापुथियों ) प्रकाश और भूमि का राज्य ( च ) और ( अमृतत्वेन ) सब रागों को निवृत्ति
कारक गुण के साथ ( सोम: ) सोमबली आदि ओपधि विद्वान मुझ को प्राप्त हो और
( पितरा मातरा ) विद्या युक्त पिता माता ( आगन्ताम् ) प्राप्त होचें वे आप ( वाजिन: )
प्रशंसित बलवान ( वाजितत: ) संप्राम के जीतने पाले ( वाजम् ) संप्राम को प्राप्त
होते हुए ( निमृजाना: ) निरन्तर शुद्ध हुए तुम लोग ( वृहस्पते: )वड़ी सेना के स्थाभी के ( भागम् ) सेवने योग्य भाग को ( अवजिवत ) निरन्तर प्राप्त होओ ॥ ११ ॥

भाषार्थ:—जो मनुष्य विद्वान के साथ विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त हो के धर्म का भाचरण करते हैं उन को इस लोक और परलोक में परमेश्वर्य का साधक राज्य विद्वान मातापिता और नौरोगता प्राप्त होती है। जो पुरुष विद्वानों का सेवन करते हैं वे शरीर और आत्मा की शुद्धि को प्राप्त हुए सब सुखों को भोगते हैं। इस से विरुद्ध चलने हारे नहीं ॥ १९॥

भाषयङ्खस्य मसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिदेशता । भुरिक्कृतिक्छन्यः । निवादः स्वरः ॥ विद्या और अञ्छो शिक्षा से युक्त वाणी से मनुष्या को क्या २ प्राप्त होता है

यह विषय शगले मन्त्र में कहा है।। आपये स्वाहां स्वापये स्वाहांऽपिजाय स्वाहा कर्ते स्वाहा बसंबे स्वाहां ऽह व्यंतिये स्वाहा उन्हें सुग्धाय स्वाहां सुग्धायं वैनश्र शिनाय स्वाहां विन्धं शिनं आन्त्यायनाय स्वाहा ऽऽन्त्यांय भी-बनाय स्वाहा भूवंनस्य पतंथे स्वाहा ऽधिपतये स्वाहां॥ २०॥

पदार्थ:—हे विद्वानो ! तुम लोग जैसे मुझ को (आपये ) सम्पूर्ण विद्या की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्य किया (स्वाप्ये ) सुखों की अच्छी प्राप्ति के वास्ते (स्वाहा ) धर्मयुक्त किया (कतवे ) बुद्धि बढ़ने के लिये (स्वाहा ) पढ़ाने की प्रवृत्ति कराने हारी किया (वसवे ) विद्या निवास के लिये (स्वाहा ) सत्य वाणी (अहर्पतये ) पुरुषार्थ पूर्वक गणित विद्या से दिन पालने के लिये काल गति को जनाने हारी वाणी (मुम्बाय ) मोह प्राप्ति के निमित्त (अह्ने ) दिन होने के लिये (स्वाहा ) विज्ञान युक्त वाणी (वैनेशिनाय ) नए स्वभाव युक्त कम्मों में रहने हारे (मुम्बाय ) मूर्ल के लिये (स्वाहा ) चिताने वाली वाली (वान्त्वायनाय ) नीच प्राप्ति वाली (मुम्बाय) नेच प्राप्ति वाली (मुम्बाय) नेच प्राप्ति वाली (मुम्बाय) संसार के स्वामी ईश्वर के लिये (स्वाहा ) योग विद्या की प्रकट करने हारी बुद्धि और (अधिपत्रये ) सब अधिष्ठाताओं के उत्पर रहने वाले पुरुष के लिये (स्वाहा ) सब व्यवहारों की जनाने हारी वाली (गम्यात् )प्राप्त होये | वैसा प्रयक्त आरुस्य छोड़ के किया करो || २० ||

भाषार्थ:—मनुष्यों को चाहिये कि सब विद्याओं की प्राप्ति आदि प्रयोजनों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी की प्राप्त होवें कि जिस से सब सुख सदा मि- छते रहें ॥ २०॥

आयुर्यक्रेनेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। यज्ञो देवता । अत्यप्तिक्छन्दः। गांघारः स्वरः ॥
पुनः मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है यह विषय अगले प्रका में कहा है ॥

भार्युर्र्यक्षेत्रं कल्पतां प्राचा यक्षेत्रं कल्पताः श्रीश्रं यक्षेत्रं कल्पताः श्रीश्रं यक्षेत्रं कल्पताः पृष्ठं यक्षेत्रं कल्पताम् यक्षेत्रं यक्षेत्रं कल्पताम् । प्राचीतिः प्रजा श्रेभ्म स्वृदेवा अगन्मासृतां श्रभमः ॥ २१ ॥

पदार्थः — हे मलुष्यो ! तुम्हारी (आयुः) अवस्था ( यज्ञेन ) ईश्वर की आज्ञा पालन से निरस्तर (कल्पताम् ) समर्थ होचे ( प्राणः ) जीवने का हेतु बलकारी पाण ( य- ज्ञेन ) धर्म युक्त विद्याभ्यास से ( कल्पताम् ) समर्थ होचे (चक्षुः) नेल (यज्ञेन) प्रतक्ष के विषय शिक्षाचार से ( कल्पताम् ) समर्थ हो ( श्रोत्रम् ) कान ( यज्ञेन ) वेदाभ्यास

से (कल्पताम्) समर्थ हो और (पृष्ठम्) पृष्ठना (यक्नेन) संवाद से (कल्पताम्) समर्थं हो (यक्कः) यक्ष धातु का अर्थं (यक्केन) ब्रह्मचर्यादि के आचरण से (कल्पताम्) समर्थित हो जैसे हम लोग (प्रजापतेः) सब के पालने हारे केवर के समान धर्मीतमा राजा के (प्रजाः) पालने योग्य सन्तानों के सहश (अभूम) हो वें तथा (देवाः) विहींन् हुए (अमृताः) जीवन मरण से छूटे (स्वः) मोक्ष सुख को (अगन्म) अच्छे प्रकार प्राप्त हो वें | ११ ॥

भावार्थ: में प्रवर सव मनुष्यों को आहा देता हूं कि तुम छोग मेरे तुल्प धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वमाय वाले पृश्य हो को प्रजा होशा अन्य किसी मूर्ल क्षुद्राश्य
पुरुष की प्रजा होना स्वीकार कभी मत करो जैसे मुझ को न्यायाधीश मान मेरी भाहा में वर्त और अपना सब कुछ धर्म के साथ संयुक्त करके इस छोक और परलोक
के सुख को नित्य प्राप्त होते रहो वैसे जो पुरुष धर्म युक्त न्याय से तुम्हारा निरन्तर पालग करे उसी को सभापति राजा मानो ॥ २१॥

सस्मेद्रत्यस्य वसिष्ठ ऋषि: । विशो देवता: । निचृत्त्यप्टिद्रस्टन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
देखर की आह्ना के अनुकूल मनुष्यों को संसार में कैसे वर्तना चाहिये
यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

असमे वो अस्तिवन्दियमसमे नृम्णमृत ऋत्र्समे वचीश्सि सन्तु वः । नमी मात्रे पृथिच्ये नमी मात्रे पृथिच्या इयन्ते राख्यन्तासि यमेनो भ्रुष्टोऽसि ध्रुणः । कृष्ये त्या क्षेमांय त्या रुप्ये त्या पोषां-य त्या ॥ २२ ॥

पदार्थ:—हं मनुष्य ! में ईश्वर ( हृष्ये ) खेती के लिये (त्वा) तुझे (क्षेमाय ) रक्षा के लिये (त्वा) तुझे (रच्ये) संपत्ति के लिये (त्वा ) तुझे बार (पोषाय) पृष्टि के लिये (त्वा ) तुझ को नियुक्त करता हूं। जो तू (ध्रुष: ) हृद्ध (यन्ता ) नियमों से खलने हारा ( श्वास ) है ( धरुण: ) धारण करने वाला ( यमन: ) उद्योगी ( श्वास ) है जिस (ते ) तेरी ( इयम् ) यह ( राट् ) शोभा युक्त है इस ( मात्रे ) मान्य की हैतु ( पृथिन्ये ) विस्तारयुक्त भूमि से ( नम: ) अन्नादि पदार्थं प्राप्त हो इस (मात्रे ) मान्य देने हारी ( पृथिवये ) पृथिवी को अर्थात् भूगर्भ विद्या को जान के इस से ( नम: ) अन्न जला-दि पदार्थं प्राप्त कर तुम सब लोग परस्पर ऐसे कहो और वर्सो कि जो ( अस्मे ) हमारे ( इन्द्रियम् ) मन शादि इन्द्रिय हैं वे ( घ: ) तुम्हारे लिये हों जो (अस्मे ) हमारा ( नुम्णम् ) धन है वह ( व: ) तुम्हारे लिये हो ( उत ) और जो ( अस्मे ) हमारे ( इन्ल्यम् ) धन है वह ( व: ) तुम्हारे लिये हो ( उत ) और जो ( अस्मे ) हमारे ( इन्ल्यम् ) धन है वह ( व: ) तुम्हारे लिये हो ( उत ) और जो ( अस्मे ) हमारे ( इन्ल्यम् )

तु:) बुद्धि वा कर्म हैं (व:) तुम्हारे हित के लिये हों जो हमारे (वर्चीसि) पढ़ा पढ़ाया और अब हैं वे (व:) तुम्हारे लिये (सन्तु) हों जो यह सब तुम्हारा है वह हमारा भी हो ऐसा आद्धरण आपस में करो ॥ २२॥

भावार्थ: मनुष्यों के प्रति ईद्दर की यह आज्ञा है कि तुम लोग सदैव पुरुषार्थ में प्रवृत्त रही और आलस्य मत करो और जो पृथिवी से अस आदि उत्पन्न हों उन की रक्षा कर के यह सब जिस प्रकार परस्पर उपकार के लिये हो जैसा यह करो। कभी विरोध मत करो कोई अपना कार्ब्य सिद्ध करें उस का तुम भी किया करो॥ २२॥ वाजस्यंत्यस्य वसिष्ठ ऋषि: । प्रजापतिवंवता। स्वराट् त्रिप्टुर् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ फिर उन को इस विषय में कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

बार्जस्यमं प्रस्तवः सृषुवेऽग्रं सोस्थ राजित्मोषंघी व्यप्तः । ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु व्यथ राष्ट्रं जोग्याम पुरोहिताः स्वा-हां ॥ २३ ॥

पदार्थ:—हे मनुष्य लोगो ! जैसे में (अब्र) प्रथम (प्रसव:) पेश्वर्य युक्त होकर (वाजस्य) वैद्यक शास्त्र बोध सम्बन्धां (इमम्) इस (सोमम्) चन्द्रमा के समान सब दुःखां के नाश करने हारे (राजानम्) विद्या न्याय और विनयों से प्रकाशमान राजा को (सुसुवे) पेदवर्य्य युक्त करता हूं। जैसे उस की रक्षा में (ओषधीषु) पृधिवी पर उत्पन्न होने वाली यव आदि ओपधियों और (अष्तु) जलों के बीच में व-र्त्तमान ओषधी हैं (ता:) वे (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (मधुमती:) प्रशस्त मधुर गुण वाली (भवन्तु) हों जैसे (स्वाहा) मत्य किया के साथ (पुरोहिता:) सब के हितकारी हम लोग (राष्ट्र) राज्य में निरन्तर (जाग्र्याम) आलस्य छोड़ के जागते रहें बैसे तुम भी वर्त्ती करो ॥ २३॥

भावार्थ:—शिष्ट मनुष्यों को योग्य है कि सब विद्याओं की चतुराई रोगरहित और सुन्दर गुणों में शोभायमान पृष्य को राज्याधिकार देकर उस को रक्षा करने वाला वैद्य ऐसा प्रयक्त करे कि जिस से इस के शरीर बुद्धि और आत्मा में रोग का आवेश न हो । इसी प्रकार राजा और वैद्य दोनों सब मन्त्री आदि मृत्यों और प्रजाजनों को रोग रहित करें। जिस से ये राज्य के सज्जनों के पालने और दुर्धों के ताड़ने में प्रयक्त करते रहें राजा और प्रजा के पुष्प परस्पर पिता पुत्र के समान सदा वसं । |२३||

वाजस्येमानित्यस्य वसिष्ठ ऋषि: । मृजापतिवेवता । भुरिग् जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥ राजा किस का भाश्रय छेकर किस के साथ क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।

वार्जस्येमां प्रस्तवः शिश्रिये दिविमिमा च विश्वा श्वर्थनानि सम्राद् । अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्तस नौ रुधि सवैवीरं निर्य-च्छतु स्वाहां ॥ २४ ॥

पदार्थ:—हे मनुष्य लोगो! जैसे (वाजस्य) राज्य के मध्य में (प्रसवः) उत्यक्ष हुए (सम्राट्) अच्छे प्रकार राज धर्म्म में प्रवर्तमान में (इमाम्) इस भूमि को (दि-वम्) प्रकाशित और (इमा) इन (विश्वा) सब और (भुवनानि) धरों को (शि-क्रिये) अच्छे प्रकार आश्रय करता हूं यैसे तुम भी इस को अच्छे प्रकार शोभित करो और जो (खाहा) धर्म युक्त सत्यवाणी से (प्रजानन्) जानता हुआ (अदित्सन्तम्) राज्य कर देने की इच्छा न करने वाले से (दापयित) दिलाता है (स:) सो (न:) हमारे (सर्ववीरम्) सब वीरों को प्राप्त कराने हारे (रियम्) धन को (नियच्छतु) प्रहण करे ॥ २४॥

भावार्थ:—है मनुष्य छोगो ! मूल राज्य के बोच सनातन राजनीति को जान कर जो राज्य की रक्षा करने को समर्थ हो उसी को चक्रवर्त्ता राजा करो और जो कर देने वालों से कर दिलावे वह मन्त्री होने को योग्य होवे जो शत्रुओं को बांधने में समर्थ हो उसे सेनापित करो और जो विद्वान् धार्मिक हो उसे न्यायाधीश वा कोशाध्यक्ष करो ॥ २४॥

वाजस्यन्वित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। मुजापतिर्ववता । स्वराट्त्रिप्दुप्छन्दः । धैवतः स्वरः॥

फिर राजा कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

४ वार्जस्य नु प्रमान ग्रा वंश्ववेमा च विश्वा श्ववंनानि सर्वतः।

सनेमि राजा परियाति विद्यान् प्रजां पुष्टि वर्षयंमानो अस्मे
स्वाहां॥ २५॥

पदार्थ:—जो (वाजस्य) वेदादिशास्त्रों से उत्पन्न बोध को (स्वाहा) सत्यनीति से (प्रसवः) प्राप्त होकर (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्या को जानने वाटा पुरुष (आ) अच्छे प्रकार (बभूव) होवे (च) और (इमा) इन (विद्वा) सव (भुवनानि) मां- डिलिक राजनिवास स्थानों और (सनेमि) सनातन नियम धर्म सहित वर्षमान (प्रजाम्) पालने योग्य प्रजार्भों को (पृष्टिम्) पोषण (नु) शीघ्र (वर्धयमानः) बढ़ाता हुआ (परि) सब ओर से (याति) प्राप्त होता है वह (अस्मे) हम लोगों का राजा होवे ॥ २५॥

भावार्थ:—ईश्वर सब से उपदेश करता है कि हे मनुष्य लोगो! तुम जो प्रशंक्तित गु-ण कर्म्म स्वमाद बाला राज्य की रक्षा में समर्थ हो उस को समाध्यक्ष कर के आप्त नी-ति से चक्क वर्ष्त राज्य करो ॥ २५॥

स्रोममित्यस्य तापस ऋषिः । सोमाम्यादित्यविष्णुसूर्य्यं मृहस्पतयो देवताः । भनुष्टुप्छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

जिर कैसे राजा का स्वीकार करे इस विषय का उपदेश अगळे मंत्र में किया है ॥
सोम्र राजान्मवंसेऽनिक्मन्वारंभामहे । आदित्यान्विष्णु छै
सूर्यी बुद्याणे ख बृहस्पति १ स्वाहां ॥२६॥

पदार्थ:—है मनुष्य लोगो। जैसे हम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से (अवसे) रक्षा भादि के अर्थ (विष्णुम्) व्यापक परमेश्वर (सूर्व्यम्) विद्वानों में सूर्व्य विद्वान् (ब्रह्माणम्) साङ्गोपाङ्ग चार वेदों को पढ़ने वाले (ब्रह्म्पितम्) बड़ों के रक्षक (अग्निम्) आग्नि के समान शत्रुओं को जलाने वाले (सोमम्) शान्त गुण सम्पन्न (राजानम्) भर्माचरण से प्रकाशमान राजा और (आदित्यान्) विद्या के लिये जिन ने अड़-तालीस वर्षतक ब्रह्मचर्च रह कर पूर्ण विद्या पढ़ सूर्यवत् प्रकाशमान विद्वानों के सङ्ग से विद्या पद्द के गृहाश्रम का (आरभागहे) आरम्भ करें वैसे तुम भी किया करो। शिक्षा भावार्थ:—ईश्वर की आज्ञा है कि सब मनुष्य रक्षा आदि के लिये ब्रह्मचर्य क्रता- दि से विद्या के पारगत्ता विद्वानों के बीच जिस ने अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्यं क्रता-

हो ऐसे राज को स्वीकार कर के सच्ची नीति को बढ़ावें || २६ || अर्च्यमणमित्यस्य तापस ऋषिः । अर्च्यमादिमंत्रोका देवताः | स्वराहनुसुप्छन्वः | गान्धारः स्वरः ||

फिर राजा किन को किस में प्रेरणा करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥ श्रुटर्श्वमणं वृह्यस्पितिनदूं दानांच को दय। वासं विष्णुध सरं-

## स्वती र सिब्तार च बाजिन र स्वाहां ॥ २७ ॥

पदार्थ:—हे राजन् ! आप (स्वाहा) सत्यनीति से (दानाय) विद्यादि दान के लिये (अर्थ्यमणम्) पक्षपात रहित न्याय करने (बृहस्पितम्) सब विद्याओं को पढ़ाने (इन्द्रम्) बड़े पेश्वर्क्ष युक्त (वाचम्) वेदवाणी (विष्णुम्) सब के अधिष्ठाता (स-वितारम्) वेदविद्या तथा सब पेदवर्क्ष उत्पन्न करने (वाजिनम्) अच्छे बल वंग से युक्त श्र्यीर और (सरस्वतीम्) बहुत प्रकार वेदादि शास्त्र विद्यान युक्त पढ़ाने वाली विद्युषी स्त्री को अच्छे कर्मों में (चोद्य) सदा प्रेरणा किया कीजिये ॥ २७ ॥

भाषार्थ:—ईश्वर सब से कहता है कि राजा आप धर्मात्मा विद्वान् हो कर सब न्या-य के करने वाले महुष्यों को विद्या धर्म्म बढ़ाने के लिये निरन्तर प्रेरणा करे जिस से विद्या धर्म की बढ़ती से अविद्या और अधर्म दूर हों।। २७।।

अप्र इत्यद्य तापस ऋषि: । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ फिर वह राजा क्या क्या करे यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥ अगने अच्छा वहेह नः प्रति नः सुमना सव । प्र नो युच्छ स-

इस्रजित्वध हि वंतुदा असि स्वाही॥ २८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् भाष (इह) इस समय में (स्वाहा) सत्यवाणी से (नः) इस को (अच्छ) अच्छे प्रकार (वद) सत्य उपरेश की जिये (नः) हमारे ऊपर (सुमनाः) मित्रभाव युक्त (भव) हृजिये (हि) जिस से (सहस्रजित्) आप विव सहाय हजान को जीतने (धनदा) ऐदवर्ष्य देन बाळे (असि) हैं इस से (नः) हमारे छिये (प्रयच्छ) दी जिथे ॥ २८॥

भाषार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि राजा, प्रजा और सेनाजन मनुष्यों से सदा सत्य प्रियवचन कहै उन को धन दे उन से धन छे शर्रार और आत्मा का बळ बढ़ा और निख शत्रुओं को जीतकर धर्मी से प्रजा को पाछे ॥ २८॥

प्रन इत्यस्य तापस ऋ वि: । अर्थ्यमादिमंत्रोका देवता: । अरिवार्षा गायत्री छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

प्रजा भीर सन्तानों से राजा और माता भादि कैसे वर्से इस विषय का उपदेश भगले मंत्र में किया है ||

प्र नो यच्छत्वर्यक्षमा प्र पूषा प्र बृह्स्पतिः । प्रवारदेशी दंदातु मः स्वाहां ॥ २९ ॥

पदार्थ:—जैसे ( वर्ध्यमा ) न्यायाधीश ( नः ) हमारे लिये उत्तम शिक्षा (प्रयच्छतु ) देवे जैसे ( पूजा ) पोषण करने वाला शरीर और आत्माकी पृष्टि की शिक्षा (प्र) सब्दे प्रकार देवें जसे (बृहस्पति:) विद्वान (प्र) (स्वाहा) अत्युक्तम विद्या देवे वैसे (बाक्) उत्सम विद्या सुशिक्षा सहित वाणीयुक्त ( देवो ) प्रकाशमान पदाने वाली माता हमारे लिये सत्य विद्या युक्त वाणी का ( प्रदातु ) उपदेश सदा किया करें ॥ २१ ॥

भाषार्थः —यहां जगदी६वर उपदेश करता है कि राजा आदि सब पुरुष और माता आ-दि स्त्री सदा प्रजा और पुत्रदिकों को सत्य२ उपदेश कर विद्या और अच्छी शिक्षा की निरन्तर प्रहण करावें जिस से प्रजा और पुत्र पुत्री आदि सदा आनन्द में रहें |२१। देवस्यत्यस्य तापस ऋषिः । सम्।द् देवता । जगतीखन्दः । निषादः स्वरः ॥
किर कर्दा कैसे को राजा करें इस विषय का उपदेश अगलें मन्त्र में किया है ॥
देवस्यं स्वर सिवितः प्रसिवेऽशिवनोर्ज्याहुभ्यां पूच्णो हस्तांभ्याम् ।
सर्रस्वत्ये खाचो ग्रन्तुर्ग्रान्त्रये द्धामि वृहस्पतेष्ट्वा साम्रांडपेन्याभविश्वाम्यसी ॥ ३०॥

पदार्थ:—है सब अच्छे गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्वन ! (असी ) वह मैं (सिवतुः ) सब जगत् के उत्पन्न करने वाले ईश्वर (देवस्य ) प्रकाशमान जगदीदवर के (प्रसचे ) उत्पन्न किये संसार में (सरस्व से ) अच्छे प्रकार शिल्प विद्या युक्त (वाचः ) वेववाणी के मध्य (अश्विनोः ) सूर्य चन्द्रमा के समान घारण पोषण गुण युक्त (हस्ताभ्याम् ) हाथों से (त्वा ) तुम को (इघामि ) घारण करता हूं और (बृहस्पतेः ) बड़े विद्वान् के (यंत्रिये ) कारीगरी विद्या से सिद्ध किये राज्य में (सामाज्येन ) चक्तवर्ती राजा के गुण से सहित (त्वा ) तुझ को (अभि ) सब ओर से (सिंचामि ) सुगंधित रसीं से मार्जन करता हूं ॥ ३० ॥

भावार्थ: - मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर में प्रेमी वल पराक्रम पृष्टि युक्त चतुर सत्यवादी जितेन्द्रिय धर्मात्मा प्रजा पालन में समर्थ विद्वान् को अच्छे प्रकार परीक्षा कर सभा का स्वामी करने के लिये अभिषेक करके राजधर्म की उन्नति अच्छे प्रकार नित्य किया करें ॥ ३०॥

अग्निरेकेत्यस्य तापस अधि: । अन्यादयो मन्त्रोक्ता देवता: । अत्यप्टिश्छन्द:।
गान्धार: स्वर: ॥

राजा प्रजाओं को और प्रजा राजा को निरन्तर बढ़ या करे इस० ॥

अगिनरेकां क्षरेषा प्राणमुर्वजग्रत तमु जेष्म दिवनी दृग्क्षरेण द्वि-पदीं मनुष्णानुद्वज्ञानतान जोषं विष्णुस्त्र श्वरण श्रीसँ लेकानुद्वज-ग्रतानु जेष्ठ सोम् अतुरक्षरेण चतुष्पदः पृश्वनुद्वज्ञ स्तान जोष ॥३१॥ पदार्थः — हे राजन्! (अग्नः) अग्नि के समान वर्तमान आप जैसे (पकाक्षरेण) विताने हारी एक अक्षर की देवी गायत्री छन्द से (प्राणम्) शरीर में स्थित वायु के समान प्रजाजनों को (उत्) (जेषम्) उत्तम नीतिसे (अजयत्) उत्तम करे वैसे (तम्) उस को में भी (उत्) (जेपम्) उत्तम कर्ष हे राजप्रजाजनो! (अध्वन्ती) सूर्य्य और चन्द्रमा के समान आप जैसे (इत्यक्षरेण) दी अक्षर की वैद्यो उष्णक् छन्द से जिन (दिन्द्रमा के समान आप जैसे (इत्यक्षरेण) दी अक्षर की वैद्यो उष्णक् छन्द से जिन (दिन् पदः ) दो पैर वः छे ( मनुष्यान् ) मननशील मनुष्यों को ( उज्जयतः म् ) उत्तम करो वैसे ( तान् ) उन को मैं भी ( उज्जेषम् ) उत्तम कर्ष । हे सर्वप्रधानपुरुष ! ( विष्णुः ) परमेदवर के समान न्यायकारी आप जैसे ( न्यक्षरेण ) तीन अक्षर की वैवी अनुष्टुष्छन्य से जिन ( शीन् ) जन्मस्थान और नामवाची ( लोकान् ) देखने योग्य लोकों को ( उद-जयत् ) उत्तम करते हो वैसे (तान् ) उन को मैं भी ( उज्जेषम् ) उत्तम कर्ष । हे (सोम) ऐदवर्थ की इंच्छा करने वाले न्यायाधीश ! आप जैसे (पर्ह्न्) हिरणादि पशुआं को (उ-दज्जयत् ) उत्तम करते हो वैसे ( तान् ) उन को मैं भी ( उज्जेषम् ) उत्तम कर्ष ॥ ११॥

भाषार्थ:—इसमंत्र में याचकलु०—जो राजा सब प्रजाओं को अच्छे प्रकार बढ़ाचे तो उस को भी प्रजाजन क्यों न बढ़ाचें और जो ऐसा न करे तो उस को प्रजा भी कभी न बढ़ाचे ॥ ३१॥

पूर्वेत्यस्य तापस ऋषि:। पूर्वादयो मंत्रोक्ता देवता:। कृतिश्छन्द:। निषाद: स्वर: ||
फिर राजा और प्रजाजन किन के दृशान्तों से क्या २ करें इसक ||

पूषा पञ्चांक्षरेण पञ्च दिशा उदंजग्रसा उउजंषक सिवता प-ढंक्षरेण षद् ऋत्नुदंजग्रसानुइजेषम् । मुहतः महासंरण महम्राः स्वान् पश्चनुदंजग्रस्तानुइजेषम् । बृहत्पतिग्रक्षांस्या गाग्रशीमृदंजः ग्रसामुद्रजेषम् ॥ ३२ ॥

पदार्थ:—हं राजन्! (पूया) चन्द्रमा के समान सब को पुष्ट करने वाले आप जैसे (पंचाक्षरेण) पांच अक्षर की देवीपंक्ति से (पंच) पूर्विदिचार और एक ऊपर नीचे की (दिश:) दिशाओं को (उदजयत्) उत्तम की ति से भरते हो बैसे (ता:) उन को मैं भी (उज्जेषम्) श्रेष्ठ की त्वें से भरदेऊं। हे राजन्! (सिवता) स्र्य्यं के समान आप जैसे (षडक्षरेण) छः अक्षरों की देवी त्रिष्टुप् से जिन (पट्) छः (क्षत्न) वसन्ति क्षित्रतुओं को (उदजयत्) शुद्ध करते हो बैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) शुद्ध कर्क । हे सभाजनो! (मरुतः) वायु के समान आप जैसे (सप्ताक्षरेण) सात अक्षरों की देवी जगती से (सप्त) गाय, घोड़ा, भैंस, ऊंट, वकरी, भेड़ और गधा रन सात (प्राम्यान्) गांव के (पश्चन्) पशुआं को (उदजयत्) बढ़ाते हो येसे (तान्) उन को मैं भी बढ़ाऊं। हे सभेश! (ष्ट्रस्पितः) समस्त विद्याओं के जानने वाले विद्वान् के समान आप जैसे (अष्टाक्षरेण) आठ अक्षरों की याजुर्या अनुष्टुप् से जिस (गायभी-म्) गान करने वाले की रक्षाकरने वाली विद्वान् स्ली की (उदजयत्) प्रतिष्ठा करते हो वैसे (ताम्) उस की मैं भी (उज्जेषम्) प्रतिष्ठा कर्क ।। ३२ ॥

भाषार्थ: इस मन्त्र में वाचकलु० जो राजा सब का पोषण जिस को सब दि-शाओं में कोर्त्ति पेश्वर्क्य युक्त सभा के कामों में चतुर पशुओं का रक्षक और वेदों का क्वाता हो इस को राजा प्रजा और सेना के सब मनुष्य अपना अधिष्ठाता बना कर इ-चति देवें ॥ ३२॥

मित्र इसंस्थ तापस ऋषिः। मित्रादयो मंत्रोका देवताः। कृतिहरून्दः। निषादः स्वरः ॥
राजा के सत्याचार के अनुसार प्रजा और प्रजा के अनुसार राजा करे इस०॥
मित्रो नवांक्षरेण श्रिष्ट्रतः स्तोममुद्ंजयत् तमुद्रजेषम् । बर्हणो
द्वांक्षरेण विराज्यमुद्ंजयत्तासुद्रजेषम् । बर्हणो
ममुद्रजयत्तासुद्रजेषम् । विरुवे देवा द्वादंद्वाक्षरेण जिष्टुस्तामुद्रजेषम् ॥ ३३ ॥

पवार्थ:—हे राजन्! (मित्र:) सब के हितकारी आप जैसे (नवासरेण) नव अश्वर की याजुणे गृहती से जिस (त्रिष्ट्रतम्) कर्म्म उपासना और ज्ञान के (स्तोमम्) स्नुति के योग्य को (उवजयत्) उत्तमता से जानते हो बैसे (तम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) भच्छे प्रकार जान्ं। हे प्रशंसा के योग्य सभेश! (वरुण:) सब प्रकार से श्रेष्ठ भाप जैसे (व्याक्षरेण) दश अक्षरों की याजुणी पंक्त से जिस (विराजम्) विराद छन्द से प्रतिपादित अर्थ को (उद्युज्यन्) प्राप्त हुए हो बँसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) प्राप्त होजं (इन्द्र:) परम एद्युक्य देने बाले आप जैसे (एकादशा-क्षरेण) भ्यारह अक्षरों की आसुरी एकि से जिस (तिष्टुशम्) त्रिष्टुण् छन्द वाची को (उद्युज्यत्) अच्छे प्रकार जानते हो बंसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जान्ते हो बंसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जान्ते हो बसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जान्ते हो साम्री गायत्री से जिस (जगतीम्) जगती से कही हुई नीति का (उद्युप्त ) प्रचार करते हो बैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) प्रचार कर्ते हो बैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) प्रचार कर्ते हो बैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) प्रचार कर्ते हो बैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्)

भावार्थ: —राज पुरुषों को चाहिये कि सब प्राणियों में मित्रता से अच्छे प्रकार शि-क्षा कर इन प्रजा जनों को उत्तम गुण युक्त विद्वान् करें जिस से ये पेरवर्ष के भागी होकर राज भक्त हों ॥ ३३॥

वसव इत्यस्य तापस ऋषि । यस्वादयो गंत्रोका देवताः । वसव इत्यस्य तिचृज्जग-तो छन्दः । निषादः स्वरः । आदित्या इत्यस्य निचृद्धृतिरुछन्दः । ऋपभः स्वरः ॥ फिर भी राजा और प्रजा के धर्मी काव्यी का उप० ॥ वसंब्रमयोदशाखरेण त्रयोद्धा स्तोम्मुदंजण्यसमुज्जेषम् । कृदास्रतुर्दशाक्षरेण चतुर्दश्र स्तोम्मुदंजण्यस्तमुज्जेषम् । आदित्याः पर्श्वदशाखरेण पञ्चद्धश्र स्तोम्मुदंजण्यस्तमुज्जेषम् वितः वोद्यं शाक्षरेण वोड्धश्र स्तोम्मुदंजण्यसमुज्जेषम् । प्रजापंतिः स्वर्शदंशाः क्षरेण सहदृश्य स्तोम्मुदंजण्यसमुज्जेषम् ॥ ३४ ॥

पदार्थ: - हे राजादि सभ्य जमों ( वसव: ) चौवीश वर्ष तक ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ने वाले विद्वानी आप लोग जैसे ( प्रयोदशाक्षरेण ) तेरह अक्षरी की आसुरी अनु-ष्ट्रप् वेदस्थ छन्द से जिस ( त्रयोदशम् ) दश प्राण जीव महत्तव और अव्यक्त कारण क्प (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य पदार्थं समृह को (उदजयन्) श्रेष्टता से जाने वैसे (तम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूं। हे बल पराक्रम और पुरुवार्थ युक्त ( इद्रा: ) चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ने हारे विद्वानी ! जैसे आप ( चतुर्दशाक्षरेण ) चौदह अक्षरों की साम्नी उष्णिक् छन्द से ( चतुर्दशम् ) दश इन्द्रि-य मन बुद्धि चित्त और अहंकाररूप (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य पदार्थ विद्या को ( उद्जयन् ) प्रशंसित करें धैसे मैं भी ( तम् ) उस को ( उज्जेषम् ) प्रशंसित करूं हे ( शादित्या: ) अङ्तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य से समस्त विदाओं को प्रहण करने हारे पूर्ण विद्या से शरीर और आत्मा के समस्त बल से युक्त सूर्य के समान प्रकाशमान विद्वानी आप लोग जैसे ( पंचदशाक्षरेण ) पंद्रह अक्षरों की आसुरी गायत्री से ( पंचदशम् ) चार वेद चार उपवेद अर्थात् आयुर्देद, धनुभेंद, गांधर्यंवेद (गानविद्या) तथा अर्थ बेद (शिहपशास्त्र) छ: अङ्ग (शिक्षा, करूप, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष मिल के चौदह उन का संख्यापूरक पंद्रहवां किया कुशलता रूप (स्तोमम्) स्तुति के योग्य को ( उदजयन् ) अच्छे प्रकार से जाने वैसे मैं भी ( तम् ) उस को ( उज्जेषम् ) अच्छे प्रकार जानूं। हे ( अदिति: ) आत्मारूप से नाश रहित सभाध्यक्ष राजा को वि-दुषी स्त्री असण्डित पेश्वर्य युक्त आप जैसे ( पोड़शाऽक्षरेण ) सोलह अक्षर की सा-म्नी शतुष्टुप् से ( षोडशम् ) प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अव-यम्, तर्फं, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेरवाभास, छल, जाति और निप्रहस्थान इन सीलह पदार्थों की व्याख्या युक्त (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य को (उदजयत्) उत्तमता से जाने वैसे मैं भी (तम्) उस की (उन्जेषम्) उत्तमता से जान्। हे नरेश! ( प्रजापितः ) प्रजा के रक्षक आप उँस ( सप्तदशाक्षरेण ) सत्रह अक्षरों की निवृदार्घी गायत्री छन्द से ( सप्तदशम् ) चार वर्ण चार आश्रम सुनना, विचारना, ध्यान करना,

अप्राप्त की इच्छा, प्राप्त का रक्षण, रिक्षत का बढ़ाना, बढ़े हुए को अच्छे मार्ग सब के डिपकार में खर्च करना यह चार प्रकार का पृष्ठवार्थ और मोक्ष का अनुष्ठान क्षप (स्तो-मम्) अच्छे प्रकार प्रशंसनीय को उत्तमता से जाने बैसे में भी (उज्जेपम्) उत्तमता से जाने |

भाषार्थ:—हे मनुष्य लोगो ! इन चार मन्त्रों से जितना राजा और प्रजा का धर्म कहा उस का अनुष्टान कर तुम सुखी होयो ॥ ३४॥

प्यतप्रत्यस्य वरुणऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदुत्कृतिश्छन्दः। पर्जः स्वरः॥ कैसा मनुष्य चकवर्त्तिं राज्य सेवने को पोग्य होता है इस०॥

एष ते निर्माते भागस्तं जीषस्य स्वाहाऽग्निनेश्रेभयो देवेभ्यंः पुरः सद्भाः स्वाहां यमनेश्रेभयो देवेभ्यो दिक्षणासद्भ्यः स्वाहां विद्य-देवनेश्रेभयो देवेभ्यः पद्भात्सद्भयः स्वाहां मिश्रावर्षणनेश्रेभयो वा मुद्देशेश्रेभयो वा देवेभ्यं उत्तरासद्भयः स्वाहां सोमंनेश्रेभयो देवेभ्यं उपितुस्याः स्वाहां सोमंनेश्रेभयो देवेभ्यं उपितुस्याः द्वाहां ॥ ३५ ॥

पदार्थ:—है (निर्ऋते) सदैच सत्याचरण युक्त राजन्! (ते) आप का जो (प-पः) यह (भागः) सेवने योग्य है उस को (अग्निनेंग्र्यः) अग्नि के प्रकाश के समान नीति युक्त (देवेग्यः) विद्वानों से (स्वाहा) सत्य वाणी (पुरःसद्ग्यः) जो प्रथम सभा वा राज्य में स्थित हों उन (देवेग्यः) न्यायाधीश विद्वानों से (स्वाहा) धर्म युक्त किया (यमनेंन्ग्रेग्यः) जिन की वायु के समान सर्वत्र गति (दक्षिणासद्ग्यः) जो दक्षिण दिशा में राज प्रवन्ध के छिये स्थित हों उन (देवेग्यः) विद्वानों से (स्वाहा) इतनिक्रया (विश्वदेवनेन्न्ग्रेग्यः) सब विद्वानों के तुख्य नीति के ज्ञानी (प्रधान्सद्ग्यः) जो पश्चिम दिशा में राज कर्मचारी हों उन (देवेग्यः) दिव्य सुख देने हारे विद्वानों से (स्वाहा) उत्साह कारक वाणी (मित्रावरुणनेन्न्ग्रेग्यः) प्राण और अपान के समान वा (महन्नेन्न्ग्रेग्यः) ऋत्वक् यज्ञ के कर्त्ती (वा) सत्पुरुष के समान न्यायकारक वा (उत्तरासद्ग्यः) जो उत्तर दिशा में न्यायाधीश हों उन (देवेग्यः) विद्वानों से दूत कर्म की कुशला किया (सोमनेन्नेग्यः) अवन्द्रमा के समान पेश्वर्य युक्त होकर सब को आनन्दद्रायक (उपरिसद्ग्यः) विद्वा विनय धर्म और इंक्टर की सेवा करने हारे (देवेग्यः) विद्वानों से (स्वाहां) अप पुरुषों की वाणी को प्राप्त हो के द् सदा धर्म का (ज्ञुष्त्व) सेवन किया कर ।। ३५ ।।

भाषार्थ:—हे राजन् ! समाध्यक्ष जब आप सब ओर से उत्तम विद्वानी से युक्त हो

कर सब प्रकार की शिक्षा को प्राप्त सभा का करने हारा सेना का रक्षक उत्तम सहाय से सहित होकर सनातन वेदोक राज धर्मनीति से प्रजा का पालन करे इस लोक भीर परलोक में सुख ही को प्राप्त होने जो कर्म से विरुद्ध रहेगा तो तुझ को सुख मी न होगा कोई भी मनुष्य मूखों के सहाय से सुख की वृद्धि नहीं कर सकता और न क्रभी विद्वानों के अनुसार चलने वाला मनुष्य सुख को छोड़ देता है इस से राजा सर्वदा विद्या धर्म और आप्त विद्वानों के सहाय से राज्य की रक्षा किया करें जिस की सभा वा राज्य में पूर्ण विद्या युक्त धार्मिक मनुष्य सभासद वा कर्मचारी होते हैं और जिस के सभा वा राज्य में मिथ्यावादी व्यक्तिचारी अजितिन्द्रिय कठोर वचनों के बोलने वाले अन्यायकारी चोर और डांकू आदि नहीं होते और आप भी इसी प्रकार का धार्मिक हो तो वहीं पुरुप चक्रवसी राज्य करने के योग्य होता है इस से विरुद्ध नहीं ॥ ३५ ॥

थे देवा इत्यस्य वरुण ऋषि: | विश्वेदेवा देवता: | विश्वतिद्द्यन्दः । मध्यमः स्त्ररः || मनुष्य लोग सर्पत्र धूमधाम कर विद्या ग्रहण करें इस० ||

ये देवा अगिननेत्राः पुरः सद्दर्तभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासद्दर्तभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सद्दर्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सद्दर्तेभ्यः स्वाहा ये देवा सित्रावर्षणनेत्रा वा सद्देशेत्रा वोत्तरासद्दर्भयः स्वाहा ये देवाः सोर्मनेत्रा उपरिसद्धो दुवंस्वन्त्रस्तेभ्यः स्वाहां॥ १६॥

पदार्थ:—हे समाध्यक्ष राजन ! आप ( ये ) जो ( अग्निनेत्रा: ) बिजुली आदि प्रदार्थों के समान जानने वाले (पुर: सद:) जो सभा वा देश वा पूर्व को दिशा में स्थित ( देवा: ) विद्वान हैं ( तेभ्य: ) उन से ( स्वाहा ) सत्यवाणी ( ये ) जो (यमनेत्रा:) अहिंसादि योगाङ्ग रीतियों में निपुण ( दक्षिणासद: ) दक्षिण दिशा में स्थित (देवा:) योगी और न्यायाधीश हैं ( तेभ्य: ) उन से ( स्वाहा ) सत्यिक्षया ( ये ) जो ( पद्यान्सद: ) पिद्यम दिशा में ( विद्वदेवनेत्रा: ) सव पृथिवी आदि पदार्थों के ज्ञाता (देवा: ) सब विद्या जानने वाले विद्वान हैं ( तेभ्य: ) उन से ( स्वाहा ) वण्डनीति ( ये ) जो ( उत्तरासद: ) पद्मोत्तरों का समाधान करने वाले उत्तर दिशा में ( वा ) नीचे ऊपर स्थित ( मित्रावरणनेत्रा: ) प्राण उदान के समान सब धर्मों के बताने वाले ( वा ) अथवा ( मरुकेत्रा: ) ब्रह्माण्ड के वायु में नेत्र विद्वान और ( देवा: ) सब को सुख देने वाले विद्वान हैं ( तेभ्य: ) उन से ( स्वाहा ) सब के उपकारक विद्या को

सेवन करो और (थे) जो (उपरिसदः) ऊ वे आसन वा व्यवहार में स्थित (दु-वस्यन्तः) बहुत प्रकार से धर्म के सेवन से युक्त (सोमनेत्राः) सोम आदि ओषधियाँ के जानने तथा (देवाः) आयुर्वेद को जानने हारे हैं उन से (स्वाहा) अमृत इतीं ओपधि विद्या का सेवन की जिथे || ३६ ||

भावार्थः—है राजा आदि मनुष्या ! तुम लोग जब धार्मिक सुशील विद्वान होकर सब दिशाओं में स्थित सब विद्याओं के जानने वाले आप्त विद्वानों की परीक्षा और सकार के लिये सब विद्याओं को प्राप्त होगे तब यह तुद्धारे समीप आके तुद्धारे साथ सक्क करके धर्म, अर्थ, फाम, और मोक्ष की सिद्धि करायें जो देश देशान्तर तथा द्वीप द्वीपान्तर में विद्या नम्नता अच्छी शिक्षा फाम की चतुराई को प्रहण करते हैं वे ही सब को अच्छे सुक्ष कराने वाले होते हैं ॥ ३६ ॥

अग्नेसहस्वेत्यस्य देववातऋ पि:।अग्निवंवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः।गान्धारः स्वरः॥
फिर भी राजा आदि किस प्रकार वर्त्ते इस०॥

ग्राने सहंस्य प्रत्नेना अभिमांतीरपांस्य । दुष्टास्तर्करांतीर्वचौं भा यज्ञवाहिसि ॥ ३७ ॥

पदार्थ:—हे (अग्ने) सब विद्या जानने वाले विद्वान् राजन्! (वृष्टर:) बु:ल से तरने योग्य (तरन्) शत्रु सेना को अच्छे प्रकार तरते हुए आप (यज्ञवाहसि) जिस में राज धर्म युक्त राज्य में (अभिमाती:) अभिमान आमन्द युक्त (पृतना:) वल और अच्छी शिक्षा युक्त वीर सेना को (सहस्व) सहो (अराती) दु:ल देने वाले शत्रुओं को (अपास्य) दूर निकालिये और (वर्ष:) विद्या वल और न्याय को (धा:) धा-रण की जिये || ३७ ||

भाषार्थ:—राजादि सभा सेना के स्वामी लोग अपने इद विद्या और अञ्छी शिक्षा से पुक्त सेना के सहित आप अजय और शतुओं को जीतते हुए भूमि पर उसम यश का विस्तार करें || ३७ ||

देवस्य त्वेत्यस्य देववातऋषि: । रक्षोच्नो देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्द: । मध्यम: स्वर: ||

प्रजा जन राज्य में कैसे सभाषीश का स्वीकार करें इस्त ।।

हेवस्यं त्वा सिवितः प्रसिवेऽदिवनी बिहुश्यां पूरणो हस्तांश्याम् ।

लुपार्शी बीर्श्यूण जुहोमि हत्य रक्षः स्वाहां । रक्षसां त्वा ब्रधाः
या विषया रक्षोऽविधिकाम्मसी हतः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हेराजन्! में (स्वाहा) सत्य किया से (सिवतुः) ऐश्वर्य के उत्पन्न कर-में वाले (देवस्य) प्रकाशित न्याय युक्त (प्रस्तवे) ऐश्वर्य में (उपांशोः) समीपस्थ सेना से (वीयंण) सामर्थ्य से (अश्विनोः) सूर्य्य चन्द्रमा के समान सेनापित के (बाहुम्याम्) भुजों से (पूष्णः) पृष्टिकारक वैद्य के (हस्ताभ्यःम्) हाथों से (रक्षः) राक्षसों के (वधाय) नाश के अर्थ (त्वा) आप को (जहोमि) प्रहण करता हूं जैसे त्वे (रक्षः) बुष्ट को (हतम्) नष्ट किया वैसे हम लोग भी (अवधिष्म) बुष्टों को मार्रे जैसे (असी) वह बुष्ट (हतः) नष्ट होजाय यैसे हम लोग इन सब का (अव-

भाषार्थ:—प्रजा जनों को चाहिये कि अपने बचाव और दुष्टों के निवारणार्थ वि-या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अच्छे स्वभाव विद्या और धर्म के प्रचार करने हारे बीर जितेन्द्रिय सत्यवादी सभा के स्वामी राजा का स्वीकार करें || ३८ || सवितात्वेत्यस्य देववात ऋषि: | रक्षोच्नो देवता | अति जगती छन्दः | निवादः स्वरः ||

सभ्य मनुष्य राजा को किस २ विषय में प्रेरणा करें इस० ॥

मुबिता त्वां स्वानां स्वताम् विन्धृहर्पतीना स्रोमो बनस्यः तीनाम् । बृहस्पतिन्धि इन्द्रो उधैष्ठयां य कृद्रः प्रशुभ्यो सित्रः सत्यो बर्धणो धर्मेपतीनाम् ॥ ३९ ॥

पदार्थ: हे सभापते राजन ! जो तू (सवानाम्) पेश्वय्यों के (सिवता) सूर्यं के समान प्रेरक (गृहपतीनाम्) गृहस्थों के उपकारक (अग्निः) पायक के सहश (वनस्पतीनाम्) पीपल आदि वृक्षों में (सीमः) सोमवल्ली के सहश (धर्मपतीनाम्) धर्म के पालने हारों के मध्य में (सत्यः) सज्जनों में सज्जन (वरणः) शुम गुण कर्मों से श्रेष्ठ (मित्रः) सखा के तुल्य (वाचे) वेदवाणी के लिये (बृहस्पतिः) महाविद्वान के सहश (ज्येष्ठाय) श्रेष्ठता के लिये (इन्द्रः) परमैश्वर्यं से युक्त के तुल्य (पशुभ्यः) गौ आदि पशुओं के लिये (घट्टः) शुद्ध वायु के सहश है उस (हवा) तुम्र को धर्मीत्मा सत्यवादी विद्वान धर्मी से प्रजा की रक्षा में (सुक्ताम्) प्रेरणा कर्र ॥३१॥

भावार्थ:—हे राजन् ! जो आप को अधर्म से छौटाकर धर्म के अनुष्ठान में प्रेरणा करें उन्हीं का सक्क सदा करो औरों का नहीं !! ३१ !!

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषि: । यजमानी देवता । भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।। किस २ प्रयोजन के लिये कैसे राजा का स्वीकार। कर इसन ॥

हमं देवा असप्तन र स्वेवध्वं महते क्ष्रवार्य महते ज्येष्ठवाय महते जानेराज्यांयनद्रंस्य निद्र्यार्थ । हममुमुद्र्य पुत्रमुद्र्य पुत्रमुद्रमुद्र्य पुत्रमुद्र्य पुत्रमुद्र्य पुत्रमुद्र्य पुत्रमुद्र्य पुत्रमुद्र्य पुत्रमुद्र्य पुत्रमुद्र्य प्रमुद्र्य पुत्रमुद्र्य प्रमुद्र्य पुत्रमुद्र्य प्रमुद्र्य पुत्रमुद्र्य प्रमुद्र्य प्रमुद्र्य प्रमुद्र्य प्रमुद्र्य प्रमुद्र्य प्रमुद्र्य प्रमुद्र्म प्रमुद्रम्य प्रमुद्र्य प

पदार्थ:—हे प्रजास्थ (देश:) विद्वान लोगो तुम जो (एप:) यह (सोप्र:) चन्द्रमा के समान प्रजा में प्रियरूप (व:) तुम क्षत्रियादि और हम ब्राह्मणादि और जो (अमी) परोक्ष में वर्समान हैं उन सवका राजा है उस (इमम्) इस (अमुच्य ) इस उत्तम पुरुष का (पुत्रम्) पुत्र (अमुच्य ) उस विद्यादि गुणों से श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्यान स्त्रों के पुत्र को (अस्य ) इस (विशे ) प्रजा के लिये इसी पुरुप को (महते) वड़े (ज्येष्टचाय)) प्रशंसा के योग्य (महते) बड़े (जानराज्याय) धार्म्मिक जनों के राज्य करने (इन्द्रस्य) परमें इवर्च युक्त (इन्द्रियाय) धन के वास्ते (असपल्तम्) शन्तुरहित (सुवध्वम्) कोजिये ॥ ४० ॥

भाषार्थ:—हे राजा और प्रजा के मनुष्यो ! तुम जो विद्वान् माता और पिता से अच्छे प्रकार सुशिक्षित कुळीन बड़े उत्तम २ गुण कर्म और स्वभाव युक्त जितेन्द्रियादि गुण युक्त ४८ बड़ताळीस वर्ष पर्यान्त ब्रह्मचर्च से पूर्ण विद्या से सुशीळ शरीर और आत्मा के पूर्ण बळ युक्त धर्मां से प्रजा का पाळक प्रेमी विद्वान् हो उस को समापित राजा मान कर चक्रवर्त्त राज्य का सेवन करो ॥ ४० ॥

इस अध्याय में राजधमी के वर्णन से इस अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह नवां अध्याय समाप्त हुन्त्रा ॥



## ओ३म्

## त्र्राय दशमाऽध्यायारम्भः॥

विञ्चांनि देव सवितर्दुतिगानि परांसुव । यञ्जद्वं तञ्च आसुंव ॥ १ ॥ अपे। देवा इत्यस्य वर्षण ऋषि: । आपे। देवताः । निचृदार्षः त्रिप्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इस के पश्चात् इस दशवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में मनुष्य लोग विद्वानों के अनुकूल चलें इस विषय का उपदेश किया है ॥

अयो देवा मधुमतीरगृभणञ्जू जीस्वती राज्यस्त्रृहिचतांनाः। या-भिर्मित्रावदणाव्यपिञ्चन्याभिरिन्द्रमनंयुन्नत्यरांतीः॥१॥

पदार्थ:—हे मतुष्ये ! तुम लोग (देवाः ) चतुर विद्वान लोग (याभिः ) जिन किन्याओं से (मित्रावरुणी) प्राण तथा उदान को (अभ्यक्तिचन्) सब प्रकार सी'चते और जिन कियाओं से (इन्द्रम् ) बिजुली को प्राप्त और (अरातीः ) शत्रुओं को (अनयन) जीतते हैं उन कियाओं से (मधुमतीः ) प्रशंसनीय मधुरादि गुण युक्त (ऊर्जस्वतीः) यल पराक्म बढ़ाने (चेतानाः ) चेतनतो देने और (राजस्वः) द्वान प्रकाश युक्त राज्य को प्राप्त कराने हारे (अपः ) जल वा प्राणीं को (अग्रम्णन्) प्रहण करो ॥ १ ॥

भावार्थ: मनुष्यों को चाहिथे कि विद्वानों के सहाय से जल वा प्राणों की परी-क्षा करके उन से उपयोग लेवें। शत्रुओं को निवृत्त करके प्रजा के साथ प्राणों के स-मान प्रीति से वत्तें। और इन जल तथा प्राणों से उपकार लेवें !! १ !!

वृष्ण अमिरित्यस्य वरुण ऋषि: । वृष्म देवता । स्वराड्याद्वी पङ्किरछन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब विद्वान् लोग कैसे राजा से क्या २ मार्गे यह० ॥

वृष्णं क्रिमिरीस राष्ट्रदा राष्ट्रं में देशि स्वाहां । वृष्णं क्रिमिरीस राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्में देशि । वृष्यसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं में देशि स्वाहां । वृष्यसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रसामुष्में देशि ॥ २ ॥

पदार्थ:—हे राजन् ! जिस कारण आप (वृप्णः) सुख के वर्षा कारक ज्ञान के प्रा-स कराने (राष्ट्रदाः) राज्य के देने हारे (असि) हैं इस से (मे) मुझे (स्वाहा) सत्य नाति से (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये (वृष्णः) सुख को वृष्टि करने वाळे राज्य के (ऊर्मिः) जानने और (राष्ट्राः) राज्य प्रदान करने हारे (असि) हैं (असुष्मे) उस राज्य को रक्षा करने वाले को (राष्ट्रम्) न्याय से प्रकाशित राज्य को (देहि) दीजिये (राष्ट्राः) राजाओं के कमां के देने हारे (वृषसेनः) बलवान सेना से युक्त (असि) हैं (मे) प्रत्यक्ष वर्त्तमान मेरे लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये । तथा (राष्ट्राः) प्रत्यक्ष राज्य को देने वाले (वृषसेनः) आनिन्दत पृष्टसेना से युक्त (असि) हैं इस से आप (अमुग्मे) उस परोक्ष पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये ॥ २॥

भावार्थ:—जो राज पुरुष बुष्ट प्राणियों को जीत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष पुरुषों का सरकार कर के अधिकार और शोभा को देता है उस के लिये चक्रवर्त्ता राज्य का अ-अधिकार होना योग्य है ॥ २॥

अर्थेत इत्यस्य वरुण ऋषि: । अपां पतिर्देवता । पूर्वस्यामिकृतिरछन्दः । ऋपमः स्वरः । देहीत्यस्य निचृत्जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥

राजा मन्त्री सेना और प्रजा के पुरुष आपस में किस प्रकार वर्से इस०॥

अर्थते स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमें दस स्वाहार्थते स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममु क्षे दस्ती जंस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमें दस स्वाहीजंस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमें दस स्वाहार्थः परिवाहिणीं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमें दस स्वाहार्थः परिवाहिणीं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमें दस स्वाहार्थः परिवाहिणीं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्टे दसापाम्पतिर-सि राष्ट्रदा राष्ट्रमें देहि स्वाहा ऽपाम्पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रम मुष्टे देहि स्वाहाऽपाङ्गभाँऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रदा राष्ट्रदा राष्ट्रम स्वाहाऽपाङ्गभाँऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्टे देहि ॥ ३॥

पदार्थ:— हे मनुष्यो! जो तुम लोग ( अर्थंत: ) श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त होते हुए ( स्वाहा ) सत्य नीति से ( राष्ट्रदा: ) राज्य सेवने हारं सभासद ( स्थ ) होयें आप लोग ( में ) मुझें ( राष्ट्रम् ) राज्य को ( दत्त ) दीजिये जो तुम लोग ( अर्थंत: ) पदार्थों को जानते हुए ( राष्ट्रदा: ) राज्य देने वाले ( स्थ ) होवे तुम लोग ( अमुप्मे ) राज्य के रक्षक उस पुरुप को ( राष्ट्रम् ) राज्य को ( दत्त ) दीजिये जो तुम लोग (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (ओजस्वती:) विद्या बल और पराक्रम से युक्त हुई रानी लोग आप ( राष्ट्रदा: ) राज्य देने हारी ( स्थ ) हैं वे ( मे ) मुझें ( राष्ट्रम् ) राज्य

को ( दर्त ) दीजिये । तो भाप लोग ( ओजस्वती: ) जितेन्द्रिय ( राष्ट्रदा: ) राज्य की देने वालो (स्थं) हैं वे आप लोग ( अमुप्मै ) विद्या बल और पराक्रम से युक्त प्रूष को (राष्ट्रम् ) राज्य को (दस ) दीजिये । जो तुम लाग (खाहा) सल्य मीति से (प-रिवाहिणी: ) अपने समान प्यारी (राष्ट्दा: ) राज्य देने हारी (स्थं ) है वे आप होग (मे ) मुझे (राष्ट्रम् ) राज्य को (दत्त ) दीजिथे । जो तुम होग (परिवाहि-णीः) अपने अनुकुल पतियों के साथ प्रसन्न होने वाली (आपः) आत्मा के समान प्रिय (राष्ट्रा:) राज्य देने वाली (स्थ ) हैं वे आप (अमुप्मै ) उस ब्रह्मचारी वीर पुरुष को ( राष्ट्रम् ) राज्य को (दस्र) दांजिये। हे सभाध्यक्ष 'जो आप (राष्ट्रदा:) राज्य देने हारे (अपाम्) जलाशयां के (पति:) रक्षक (असि) हैं सी (मे) मुझे (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (राष्ट्रम्) राज को (देहि) दीजिये। हे सभापति । जो आप (स्वाहा) सख वचनों से (राष्ट्दा:) राज्य देने व.हे (अपाम्) प्राणीं के (पति:) रक्षक (असि) हैं वे (अमुष्मं) उस प्राणियों के पोषक पुरुप को (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये। हे वीर पुरुष राजन् ! जो आप (स्वाहः) सत्य नीति के साथ (राष्ट्रदा) राज्य देने वाले ( अपाम् ) सेनाओं के बीच ( गर्भः ) गर्भ के समान रिक्षत ( असि ) हैं सो आप ( में ) विचारशील मुझं ( राष्ट्रम् ) राज्य को ( दंहि ) दीजिये है राजन्! जो आप ( राष्ट्दः: ) राज्य देने हारे ( अपःम् ) प्रजाओं के विषय (गर्भः) स्तुति के योग्य (असि ) हैं सो आप (असुध्में ) उस प्रशंसित पुरुप को (राष्ट्रम् ) राज्य को (देहि) दीजियं ॥ ३॥

भाकार्थ: — जो राज्य के अधिकारी पुरुष और उन की स्त्रियों हो उन को चाहिये कि अपनी उक्ति के लिये दूसरों की उक्ति को सह के सब महुष्यों को राज्य के योग्य करें। और आप भी चक्रवर्ती राज्य का भोग किया करें ऐसा न हा कि ईर्ष्यां से दू-सरों की हानि करके अपने राज्य का भक्त करें। ३।

सूर्यंत्वचन इत्यस वरण ऋषिः । सूर्यादयो मंत्रोका देवताः।पृत्रंस्य जगती छन्दः। निवादः स्वरः । सूर्य्यवर्वस इति द्वितोयस्य स्वराट् पङ्किः छन्दः । पञ्चमः

स्वर: । व्रजक्षित इति तृतीयस्य शिवष्ठाइति चतुर्थस्य च स्वराट् विक्व-तिद्रकृतः । मध्यमः स्वरः । व्रजक्षितस्थेत्यस्य स्वराट् संकृतिद्रकृतः । गान्धारः स्वरः । शक्ष्वरीस्थेत्यस्य । भुरिगाकृतिद्रकृतः । पञ्चमः स्वरः । मधुमतीरित्यस्य भुरिक् जिप्तृत् कृतः । धेवतः स्वरः ॥ मजुष्यों को कैसा हो के किस २ के लिथे क्या २ देना चाहिये यह वि०॥ सृद्यश्विचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं में दन्त स्वाष्टा सूर्यश्विचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्में दत्त सूर्धेवर्षस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र में दत्त स्वाहा सूर्येवर्षस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्में दत्त मानदो स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्में दत्त क्र ज्ञक्षितं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र में दत्त स्वाहा मानदो स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र ममुष्में दत्त क्र ज्ञक्षितं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र में दत्त स्वाहा वाक्षां स्थ राष्ट्र रा राष्ट्र ममुष्में दत्त वाक्षां स्थ राष्ट्र रा राष्ट्र ममुष्में दत्त वाक्षां स्थ राष्ट्र रा राष्ट्र ममुष्में दत्त कार्क्षा स्थ राष्ट्र रा राष्ट्र ममुष्में दत्त कार्क्षा स्थ राष्ट्र ममुष्में दत्त कार्क्षा स्थ राष्ट्र रा राष्ट्र ममुष्में दत्त ज्ञ स्थ राष्ट्र रा राष्ट्र ममुष्में दत्त ज्ञ स्थ राष्ट्र रा राष्ट्र ममुष्में दत्त ज्ञ स्थ राष्ट्र रा राष्ट्र रा राष्ट्र ममुष्में दत्त ज्ञ स्थ राष्ट्र रा राष्ट्र ममुष्में दत्ता विश्व समुष्में राष्ट्र रा रा राष्ट्र रा राष्ट रा राष्ट्र रा राष्ट्र रा राष्ट रा राष्ट्र रा राष्ट्र रा राष्ट्र रा राष्ट रा राष्ट

पदार्थ:—हं राजपुरुषो ! तुम लोग (सूर्व्यःवचस:) सूर्यं के समान अपने न्याय प्रकाश से सब तेज को ढाकने वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य न्याय के साथ (राप्ट्रदा:) राज्य देने हारे (स्थ) हो इस लिखे (मे) मुझे (राप्ट्रम्) राज्य को (दत्तः) दीजिये। हे मनुष्यो ! जिस कारण (सूर्यःवचसः) सूर्य्यं प्रकाश के समान विद्या पढ़ने वाले होते हुए तुम लोग (राष्ट्रदा:) राज्य देने हारे (स्थ) हो इस लिखे (अमुध्में) उस विद्या में सूर्यवत् प्रकाशमान पुरुप के लिखे (राप्ट्रम्) राज्य को (दत्तः) दोजिथे। हे विद्वान मनुष्यो ! (सूर्यवर्चसः) सूर्यं के समान तेजधारी होते हुए तुम लोग (स्वाहा) सत्य वाणों से (राष्ट्रदा:) राज्य दाता (स्थ) हो इस कारण (में) तेजस्वा मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्तः) दीजिथे जिस कारण (सूर्यवर्चसः) सूर्यं के समान प्रकाशमान होते हुए आप लोग (राष्ट्रदा:) राज्य देने हारे (स्थ) हो इस लिखे (अमुध्में) उस प्रकाशमान पुरुष के लिथे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्तः) दीजिथे। जिस कारण (मान्दा:) मनुष्यों को अनन्द देने हारे होते हुए आप लोग (स्वाहा) सत्य वचनों के साथ (राष्ट्रदा:) राज्य देने हारे होते हुए आप लोग (स्वाहा) सत्य वचनों के साथ (राष्ट्रदा:) राज्य देने वाले (स्थ) हो इस लिखे

(मे) आनन्द देमे हारे मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दांजिये जिस लिये आप लोग (मान्दा:) प्राणियों को सुख देने वाले होके (राष्ट्रदा:) राज्य दाता (स्थ) हो इस लिये (अमुध्में ) उस सुख दाता जन को (राष्ट्रम् ) राज्य को (दत्त ) दीजि-ये | जिस कारण आप लोग ( वजिक्षत: ) गौ आदि पशुओं के स्थानों को बसाते हुए (स्वाहा) सत्य कियाओं के सहित (राष्ट्रदा; ) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (मे) पश् रक्षक मुझे (राष्ट्रम् ) राज्य को (दस ) दीजिये | जिस कारण आप लोग (ब्र-जिश्वतः ) स्थान आदि से पशुओं के रक्षक होते हुए (राष्ट्दाः ) राज्य देने हारे (स्थ ) हैं इस से (अमुप्पे ) उस गी आदि पश्जों के रक्षक पुरुष के लिये राज्य को (दस ) दीजिये | जिस लिये आप लोग (वाशा: ) कामना करते हुए (स्वाहा ) स-त्य नीति से (राष्ट्रदाः) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (मे) इच्छायुक्त मुझे (राष्ट्रम् ) राज्य को (दस्त ) दीजिये । जिस कारण आप लोग (वाश: ) इच्छा युक्त होते हुये ( राष्ट्रदा: ) राज्य देने वाले ( स्थ ) हैं इस लिये ( अमुप्मै ) उस इच्छायुक्त पुरुष के लिये (राष्ट्रम् ) राज्य को (दत्त ) दीजिये । जिस कारण आप लोग ( श-विष्ठा: ) अत्यन्त बल बाले होते हुए (स्वाहा ) सत्य पुरुपार्थं से (राष्ट्रहा: ) राज्य दाता (स्थ) है इस कारण (में ) बलवान मुझे (राष्ट्रम् ) राज्य को (दस ) दी-जिये | जिस कारण आप लोग (शिषष्ठा: ) अति पराक्रमी (राष्ट्रा: ) राज्य दाता (स्थ) हैं इस कारण (अमुष्मै) उस अति पराक्रमी जन के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त ) दोजिये । हे राणी लोगो ! जिस लिथे आप (शक्वरी: ) सामर्थ्य वाली होती हुई (स्वाहा) सत्य पुरुषार्थ से (राष्ट्रा;) राज्य देने हारी (स्थ) हैं इस लिये (मे) सामर्थ्यवान् मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त ) दांजिये । जिस कारण आप ( शक्वरी: ) सामध्ये युक्त ( राष्ट्रदा: ) राज्य देने वाली ( स्थ ) हैं इस कारण (अमुक्मै) उस सामर्थ्य युक्त पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस लिये आप लोग (जनमृत:) श्रेष्ट मनुष्यों का पोषण करने हारी होती हुई (स्वाहा) सत्य कर्मों के साथ (राष्ट्दाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं इस लिये (मे) श्रेष्ठ गुण युक्त मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये | जिस लिये आप (जनभुत: ) सज्जनों को धारण करने हारी (राष्ट्दा: ) राज्य दाता (स्थ ) हैं इस लिये ( अमुमी ) उस सत्य प्रिय पुरुष के लिथे ( राष्ट्रम् ) राज्य को ( दत्त ) दीजिये । ार् हे सभाष्यक्षादि राजपुरुषो ! जिस लिथे आप लोग (विदवभृत: ) सब संसार का पो-षण करने वाले होते हुए ( स्वाहा ) सत्य वाणी के साथ ( राष्ट्रा: ) राज्य देने हारे ( स्थ ) हैं इस लिये (मे) सब के पोषक मुझे ( राष्ट्रम् ) राज्य को ( दत्त ) दीजिये ।

जिस लिये आप लोग ( विश्वभृत: ) विद्यं को धारण करने हारे (राष्ट्र्य:) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (अमुपी) उस धारण करने हारे मनुष्य के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिथे। जिस कारण आप लोग (आप:) सब विद्या और धर्म विषय में व्यप्ति वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य किया से (राष्ट्र्य:) राज्य देने हारे (स्थ) हैं इस कारण (मे) शुभ गुणों में व्यप्ति मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस लिये आप लोग (आप:) सब विद्या और धर्म मार्ग को जानने हारे (स्वराज:) आप से आप ही प्रकाशमान (राष्ट्र्य:) राज्य दाता (स्थ) हैं इस लिये (अमुपी) उस धर्म ज पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजियो हे सज्जन स्त्री लोगो ! आप को चाहिये कि (क्षत्रियाय) राजपूर्तों के लिये (मिह) बड़े पूजा के योग्य (क्षत्रम्) क्षत्रियों के राज्य को (वन्वाना:) चाहती हुई (सहीज-स:) वल पराक्रम के सहित वर्त्तमःन (क्षत्रियाय) राजपूर्तों के लिये (मिह) बड़े (क्षत्रम्) राज्य को (दधर्ती:) धारण करती हुई (अनाष्ट्रण:) शत्रुओं के वश में न आने वाली (मधुमती:) मधुर अति रस वाली ओपधी (मधुमतीभि:) मधुरादि-गुणयुक्त वसन्त आदि ऋनुओं से खुलों को (पृच्यन्ताम्) सिद्ध विया करें। हे सज्जन म पृद्यो ! तुम लोग इस प्रकार की स्त्रियों को (सीदत) प्राप्त होनी ॥ धी। धी।

भावार्ध:—हे स्त्री पुरुषी! जो सूर्य्य के समान न्याय और विद्या का प्रकाश कर सब को आनन्द देने गौ आदि पशुओं की रक्षा करने शुभ गुणों से शोभायमान बलवान अ-पने तुल्य स्त्रियों से विवाह और संसार का पोपण करने वाले स्वाधीन हैं वे ही औरों के लिये राज्य देने और आप सेवन करने को समर्थ होते हैं अन्य नहीं ॥ ॥ सोमस्येत्यस्य वरुणऋषि: । अन्यादयो मंत्रोक्ता देवता: । भुरिग् धृतिरुखन्द: ।

न्यादया मनाका दवताः । ज्ञारम् वृत्तरक्षन्दः ऋषमः स्वरः ॥

राजा लोगों को चाहिये कि सत्यवादी धर्मात्मा राजाओं के समान अपने सब काम करें और क्षुद्राशय, लोभी, अन्यायी, तथा लंपटी के तुल्य कदापि न हीं इस० ॥

सोमंस्य त्विषिरासि तवेव से त्विषिर्भूयात् । अग्नये स्वाहाः ने सोमांग्र स्वाहां सिवित्रे स्वाहा सरंस्वत्यै स्वाहां पूट्यो स्वाहा बृ-हुस्पतंथे स्वाहेन्द्रांग्र स्वाहा घोषांग्र स्वाहा इस्तोकांग्र स्वाहांश शांग्र स्वाहा भगांग्र स्वाहांर्युस्णे स्वाहां॥ ५॥

पदार्थ:—हे राजन ! जैसे आप (सोमस्य ) ऐश्वर्ध्य के (त्विषि:) प्रकाश करने हारे (असि ) हैं बैसा में भी होऊं जिस से (तवेष) आप के समान (मे) मेरा (त्विषिः) विद्याओं का प्रकाश होने जैसे आप ने (अक्तये) विद्युली आदि के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी और प्रियाचरण युक्त विद्या (सोमाय) ओषधि जानने के लिये (स्वाहा) वैद्यक की पुरुषार्थ युक्त विद्या (सिवित्रे) सूर्व्य को समझने के लिये (स्वाहा) भूगोल विद्या (सरस्वत्ये) नेदों का अर्थ और अच्छी शिक्षा जानने वाली वाणी के लिये (स्वाहा) व्याकरणादि चेदों के अर्कों का ज्ञान (पृण्णे) प्राण सथा पशुमों की रक्षा के लिये (स्वाहा) योग और व्याकरण की विद्या (बृहस्पतये) बड़े प्रकृति आदि के पति ईश्वर को जानने के लिये (स्वाहा) ब्रह्म विद्या (द्वेष्ट्या ) इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा के लिये (स्वाहा) विद्यारिषद्या (घोषाये) सत्य और प्रियमाषण से युक्त वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य उपदेश और व्याख्यान देने की विद्या (इली-काय) तत्त्वज्ञान का साधक शास्त्र अष्ट काच्य गद्य और पद्य आदि छन्द रचना के लिये (स्वाहा) छन्द और शुममूल काव्य शास्त्र आदि की विद्या (अंशाय) परमाणुओं के समझने के लिये (स्वाहा) सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान (भगाय) ऐश्वर्य के लि-चे (स्वाहा) पुरुषार्थज्ञान (अर्थ्यम्णे) न्यायार्थाश होने के लिये (स्वाहा) राजनी-ति समझ को ग्रहण करते हैं वैसं मुझे भी करना अवद्य है ॥ ५॥

भावार्थ:—मनुष्यों को ऐसी आशंसा (इच्छा) करनी चाहिये कि जैसे सत्य-वादी धर्मारमा राजा लोगों के गुण कर्म स्वभाव होते हैं वैसे ही हम लोगों के भी होवें || ५ ||

पविजेस्थ इत्यस्य वरुणऋषिः। अभो देवताः। स्वराड्बाह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

जैसे कुमार पुरुष ब्रह्मचर्य्य से विद्या ब्रह्म करें वैसे कन्या भी करें इस० ॥

प्रिचेत्रें स्थो वैद्याद्यी सिविनुषीः प्रसाव उत्पूर्नाम्याचिछद्रेश प्रिक्षवेण सूर्यस्य रहिमिभिः। ग्रानिश्रष्टमिस वासी बन्धुंस्तपोजाः सोमेस्य दात्रमंसि स्वाहां राज्यस्वः॥ ६॥

पदार्थ:—हे सभापति राजपुरुष ! जिस लिये आप ( वाच: ) वेदवाणों के ( अनिमृष्टम् ) मृष्टतारहित आचरण किये ( वन्धु: ) भाई ( असि ) हैं ( सोमस्य ) ओषधियों
के काटने वाले ( तपोजा: ) ब्रह्मचर्यादि तप से प्रसिद्ध ( असि ) हैं आप की आज्ञा
से ( सिवतु: ) सब जगत् को उत्पन्न करने हारे ईश्वर के ( प्रसवे ) उत्पन्न हुए जगत्
में ( वैष्णव्यौ ) सब विद्या अच्छी शिक्षा शुभ गुण कर्म और स्वभाव में व्यापनशील
और ( पवित्र ) शुद्ध आचरणवाली ( स्थ: ) तुम दोनों हो । हे पढ़ाने परीक्षा करने

और पढ़ने हारी स्त्री लीगो मं (सिवतु:) ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये इस जगत् में (स्ट्यंस्य) सूर्व्यं को (रिश्मिभि:) किरणों के समान (अञ्छिट्रेण) छेद रहित (पिवत्रेण) विद्या अञ्छी शिक्षा धर्मज्ञान जितेन्द्रियता और ब्रह्मचर्य्यं आदि करके प-वित्र किये हुए से (व:) तुम लोगों के (उत्पुनामि) अञ्छे प्रकार पवित्र करता हूं तुम लोग (स्वाहा) सत्य क्रिया से (राजस्व:) राजाओं में वीरों के। उत्पन्न करने वाली है। । ६।।

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजा आदि पुरुषो ! तुम लोग इस जगत् में कन्याओं को पढ़ाने के लिये शुद्ध विद्या की परीक्षा करने वाली स्त्री लोगों को नियुक्त करो। जिस से ये कन्या लेगा विद्या और शिक्षा का प्राप्त होके युवा हुई प्रियवर पुरुषों के साथ स्वयंकर विवाह करके वोर पुरुषों के। उत्पन्न करें || ६ || स्थमाद इत्यस्य वहण ऋषि: | वहांगा देवता। विराहाणी विष्टुण्छन्द: | धैवत: स्वर: ||

राजाओं के। यह अवश्य चाहिये कि सब प्रजा और अपने कुछ के बाहकों के।

ब्रह्मचर्यं के साथ विद्या और सुशिक्षा युक्त करें यह ।। > सध्मादी गुम्निनी रापं एता अनिष्टा अप्रसूते वस्ताः। प्रत्याम् चक्रे वर्षणः स्वस्थंसपार शिश्चांतितंसास्यन्तः॥ ७॥

पदार्थ:—जो (वहणः) श्रेष्ठ राजा हो वह (एताः) विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई (सधमादः) एक साथ प्रमुक्त होने वाली (द्युम्निनीः) प्रशंसनीय धन की सिं से युक्त (अनाधृद्यः) जो किसी से न दवं (आपः) जल के समान शान्ति युक्त (वसानाः) वस्त्र और आभूपणें से ढपी हुई (पर्यास्तु) घरों के (अपस्यः) कामों में चतुर विद्वान स्त्री होवें उन (अपःम्) विद्याओं में व्याप्त स्त्रियों का जो (शिशः) बालक हो उस को (मानुतमास्तु) अति मान्य करने हारी धाइयों के (अन्तः) समी-प (सधस्थम्) एक समीप के स्थान में शिक्षा के लिये एको ॥ ७॥

भावार्थ:—राजा की चाहिये कि अपने राज्य में प्रयक्त के साथ सब स्लियों की विद्वान और उन से उत्पन्न हुए बालकों को विद्या युक्त धाइयों के आधीन करे कि जिस से किसी के बालक विद्या और अच्छी शिक्षा के विना न रहें। और स्ली भी निर्वल न हों। ७॥

क्षत्रस्येत्यस्य वरुण ऋषि: । यजमानो देवता । स्वराट् कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥ सब प्रजा पुरुषों को योग्य है कि सब प्रकार से योग्य सभापति राजा की नि-रन्तर सब ओर से रक्षा करें यहः ॥

श्रवस्योल्बंमसि श्रवस्यं जराय्बंसि श्रवस्य योनिरसि श्रवस्य

नाभिर्सिन्द्रस्य बाश्रीहनमसि मिश्रस्यांसि वर्षणस्यासि स्वयायं वृत्रं बंधेत् । दृवासि कुजासि क्षुमासि । प्रातेनं प्राञ्चेम्प्रातेनं पू-स्यञ्चेम्प्रातेनं निर्मृष्ट्यंन्दिरभ्यः प्रात ॥ ८ ॥

पदार्थ:—हेराजन्! जो आप (क्षत्रस्य) अपने राज कुल में (उस्तम्) बलवान् (असि) हैं (क्षत्रस्य) क्षत्रिय पुरुष को (जरायु) वृद्धावस्था देने हारे (असि) हैं (क्षत्रस्य) राज्य के (योनि:) निमित्त (असि) हैं (क्षत्रस्य) राज्य के (वाभि:) मबन्धकर्त्ता (असि) हैं (इन्द्रस्य) सूर्य्य के (वार्त्रध्नम्) मेय का नाश करने हारे के समान कर्मकर्ता (असि) हैं (मित्रस्य) मित्र के मित्र (असि) हैं (वर्षणस्य) अहे पुरुषों के साथ श्रेष्ठ (असि) हैं (हवा) शत्रओं के विदारण करने वाले (असि) हैं (रजा) शत्रुओं को रोगातुर करने हारे (असि) हैं और (क्षुमा) सत्य का उपदेश करने हारे (असि) हैं जो (अयम्) यह वीर पुरुष (त्वया) आप राजा के साथ (वृत्रम्) मेघ के समान न्याय के छिपाने वाले शत्रु को (वधेन्) मारे (पन-म्) इस (प्राञ्चम्) प्रथम प्रथंध करने वाले (पनम्) राजपुष्टप की तुम लोग (दि क्यः) सब दिशाओं से (पात) रक्षा करो इस (निर्च्यक्चम्) तिटें खड़े हुए (पनम्) राजपुष्टप की (पात) रक्षा करो इस (निर्च्यक्चम्) तिटें खड़े हुए (पनम्) राजपुष्टप की (पात) रक्षा करो इस (निर्च्यक्चम्) तिटें खड़े हुए (पनम्) राजपुष्टप की (पात) रक्षा करो इस (निर्च्यक्चम्) तिटें खड़े हुए (पनम्) राजपुष्टप की (पात) रक्षा करो इस (निर्च्यक्चम्) तिटें खड़े हुए (पनम्) राजपुष्टप की (पात) रक्षा करो इस (निर्च्यक्चम्) विटें खड़े हुए (पनम्

भावार्थः — जो कत्या और पुत्रों में स्ती और पुरुषों में विद्या पढ़ाने वाला कर्म है वहीं राज्य का बढ़ाने शत्रुओं का विनाश और धर्म आदि को प्रष्टुलि करने वाला होता है। इसी कर्म से सब कार्लों और सब दिशाओं में रख़ा होती है। ८॥ श्राविर्मर्या इत्यस्य वरण ऋषि:। प्रजापतिदेंवता। मुरिगिष्ट्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥ मनुष्यां को चाहिये कि अपना स्वभाव अच्छा करके आत विद्वान् आदि को अवस्य प्राप्त होतें इस०॥

आविमें या विस्ता अगिनगृह पंतिराविस इन्हीं बुद्ध श्रेवा आविसी मिन्नावरंगी घुननेतावाविसः पूषा विश्ववेदा आविसे द्यावंपृथिवी चिश्वदांम्भुवावा विस्तादिति कर्णाम्मी ॥ ९ ॥
पदार्थ: हे (मर्याः) मसुद्याः । तुम लोग जो (गृहपितः) घराँ के पालन करने
हारे (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि के समान विद्वान् पृष्टप को (आविः) प्रकटता से
(आविसः) प्राप्त वा निध्य करके जाना (बृद्ध श्रवाः) श्रेष्ठता से सब शास्त्रों को
सुने हुए (इन्द्रः) शत्रुणों के मारने हारे सेनापित को (आविः) प्रकटता से (आविः) प्राप्त हो वा जाना (धृतव्रती) सत्य आदि व्रतों को धारण करने हारे (मिनावरुणी) मित्र और श्रेष्ठ जनों को (आविः) प्रकटता से (आवित्ती) प्राप्त वा

जाना ( विश्ववेदाः ) सब ओपधियां को जानने हारे (पूरा) पोषण कर्ता वैद्य को (आविः ) प्रसिद्धि से (आवित्तः ) प्राप्त हुए ( विश्वशम्भुवौ ) सब के लिये सुख देने हारे ( धावापृधिको ) बिद्धली और भूमि की ( आविः ) प्रकटता से ( आवित्ते ) जाने ( उरुशमी ) बहुत सुख देने वाली ( अदितिः ) विद्वान् माता को प्रसिद्ध ( आवि- त्या ) प्राप्त हुए तो तुम को सब सुख प्राप्त हो जार्ने ॥ १॥

भाषार्थ:—जबतक मनुष्य लोग श्रेष्ट विद्वानों उत्तम विद्वान माता और प्रसिद्ध पदार्थों के विद्वान को प्राप्त नहीं होते तब तक सुख की प्राप्त और दुःखों की निवृ-ित्त करने को समर्थ नहीं होते ॥ १॥

अवेष्टा इत्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानी देवता । विराडार्पा ५ किरव्छन्दः । ५ चमः स्वरः॥ फिर मनुष्य क्या करके किल २ को शाप्त हो यह वि०॥

अवेष्टा दन्द्रश्काः प्राचीमारीह गाग्रश्ची त्वांवतु रथन्त्रः अ सामं श्रिवृत् स्तोमी वसन्त गरन्त्रीस हिर्मणम् ॥ १०॥

पदार्थ:—हे राजन्! जो आप (अवष्टाः) विरोधों के सङ्ग (दंदश्काः) दूसरों की दुःख देने के लिये काट खाने वाले हैं। उन को जीत के (प्राचीम्) पूर्व दिशा में (अत्रोह) प्रसिद्ध हों उस (त्वा) आप को (गायत्री) पढ़ा हुआ गायत्री छन्द (र-धन्तरम्) रथों से जिस के पार हों ऐसा यन (साम) सामवेद (त्रवृत्) तीन मन वाणों और शरीर के बलों का बोध कराने वाला (स्तोमः) स्तुति के योग्य (वसन्तः) वसन्त (ऋतुः) ऋतु (ब्रह्म) वेद ईश्वर और ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकुल रूप (द्रविणम्) धन (अवत्) प्राप्त होवे॥ १०॥

भावार्थ:— जो मतुष्य विद्याओं में प्रसिद्ध होते हैं वे शत्रुओं को जीत के पेश्वर्ख को प्राप्त हो सकते हैं ॥ १०॥

विक्षणामित्यस्य वरुण ऋषि: । यज्ञमानो देवता । आर्चा पंक्तिदछन्दः। पश्चम: स्वरः ॥
फिर वह सभापति राजा क्या करके क्या करे यह वि०॥

दक्षिणामारोह श्रिष्ठुए त्वांवतु बृहत्सामं पञ्चट्यास्तामी ग्री-दम ऋतुः क्षत्रं द्वविणम् ॥ ११ ॥

पदार्थ:—हे विद्वन् राजन् ! जिस (त्वा) आप को (त्रिष्टुप्) इस नाम के छन्द्र से सिद्ध विज्ञान (बृहत्) बड़ा (साम) सामवेद का गाग (पंचदशः) पांच प्राण अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, पांच इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, और ज्ञाण पांच भूत अर्थात् जल, भूमि अग्नि, हायु, और आकाश इन पन्द्रह् की पृत्तिं करने हारा (स्तोमः) स्तुति के योग्य (श्रीष्म ऋतु:) श्रीष्म ऋतु (क्षत्रम्) क्षत्रियों के धर्म का रक्षक क्षत्रिय कुलक्ष्य और (द्रविणम्) राज्य से प्रकट हुआ धन

## दशवोऽध्यायः ॥

(अवतु) प्राप्त हो। वह आप (दक्षिणाम्) दक्षिण दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध हु-जिये। और शत्रुओं को जीतिये॥ ११॥

भाषार्थः—जो राजा विद्या को प्राप्त दुआ क्षत्रिय कुछ को बढ़ाये उस का तिर-स्कार शत्रुजन कभी न कर सक्तें ॥ ११॥

प्रतीचीमित्यस्य यरण ऋषि: । यजमानी देवता । तिचृदाप्र्यंतुष्टुप् छन्दः । गांधार: स्वरः ॥

राजपुरुपों की चाहिथे कि वैदय कुछ को निख बढ़ायें यह वि०॥

प्रतीचीमारीह जगती त्वावतु वैरूपक साम सप्तद्वा स्तोमी वर्षा ऋतुर्विद् द्रविणम् ॥ १२ ॥

पदार्थ:-हे राजपुरुष !जिस (त्वा) आप को (जनती) जनती छन्द में कहा हुआ अर्थ (बैरूपम्) विविध प्रवार के रूपों वाला (साम) सामवेद का अंश (सप्तदशः) पांच कमें इन्द्रिय पांच शब्द, रूपशें, रूप, रस्त, गन्ध, विवय पांच महाभूत अर्थात् सुरुम भूत, कार्थ्य और कारण इन सम्रह का पूरण करने वाला (स्तोम:) स्तुतियों का समृह (वर्षा:) (ऋतु:) वर्षो अरुतु (द्रविणम्) द्रव्य और (विद्) वैदय जन (अवतु) प्राप्त हों। सो अप (प्रतीचीम्) पश्चिम दिशा को (आगोह) अरुद्ध और धन को प्राप्त हुजिये ॥ १२॥

भाषार्थ:—जो राजपुरुप राज नीति के साथ वैद्यों की उस्रति करें वे ही लक्ष्मी को प्राप्त होवें ॥ १२ ॥

उदीचीमित्रस्य वरुण ऋषिः । यज्ञमानी देवता । आर्ची पङ्कि**रछन्दः** ।

पञ्चमः स्वरः ॥

किर राजा आदि पुरुषों को क्या प्राप्त करना चाहिये यह वि०॥ उदीचिमारोहानुष्टुप् त्वांवतु वृंगाज्ञ सामें कि विछ दास्तोमेः बारदृतुः फल्लं द्रविणम् ॥ १३॥

पदार्थ:—हं समापित राजा! आप ( उदीचीम् ) उत्तर की दिशा में ( आरोह ) प्रसिद्धि की प्राप्त हुजिये । जिस से ( अनुष्टुप् ) जिस को पढ़ के सब विद्याओं से दू-सरों की स्तुति करें वह छन्द ( वैराजम् ) अनेक प्रकार के अथों से शोभायमान (साम् ) सामवेद का भाग ( पक्रविशः ) सोलह कला चार पुरुषार्थ के अदयव और एक कत्ती इन इक्षीश को पूरण करने हारा ( स्तोमः ) स्तुति का विषय ( शरत् ) ( ऋ-तुः ) शरद् ऋनु ( द्रविणम् ) ऐश्वर्यं और ( फलम् ) फूलकप सेवाकारक शृद्धकुरू (त्वा ) आप को ( अवतु ) प्राप्त होवे ॥ १३ ॥

भाषार्थः—जो पुरुष आलस्य को छोड़ सब समय में पुरुषार्थं का अदुष्टान करते हैं वे अच्छे फर्लों को भोगते हैं ॥ १३॥

अध्वीमित्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानी देवता। भुरिजगती छन्दः। निपादः स्वरः॥
मनुष्यों को चाहिथे कि प्रवल विद्या से अनेक पदार्थों को जाने यह वि०॥ १०
ऊध्वीमारोह पंक्तिस्त्वांवतु शाकररेवन सामनी विणवन्नयः
स्त्रिश्रशो स्तोमी हेमन्तशिक्षिरागृत् वर्ष्यो द्रविणम्प्रत्यंस्त्वसमुचेः
शिरांः॥ १४॥

पदार्थ:—हे राजन ! आप जो ( उध्वीम् ) उपर की दिशा में ( आरोह ) प्रसिद्ध हों वो ( त्वा ) आप को ( पङ्किः ) पङ्कि नाम का पढ़ा हुआ छन्द ( शाक्षरी वेते ) शक्वरी और रेवती छन्द से गुक्त ( सामनी ) सामवेद के पूर्व उत्तर दो अवयव ( त्रिणवत्रयस्त्रिशी ) तीन काल नव अङ्कों की विद्या और तैतीस वसु आदि पदार्थ जिन देनों से ध्याख्यान किये गये हैं उन के पूर्ण करने वाले ( स्तोमी ) स्तोत्रों के दो भेद ( हेमन्तिशिशरी ) ( ऋत् ) हेमन्त और शिशिर ऋतु ( वर्षः ) ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या का पढ़ना और ( द्रविणम् ) ऐश्वर्य्य (अवतु) तृप्त करें और (नमुनेः) दुष्ट चोर का ( शिरः ) मस्तक ( प्रत्यस्तम् ) नष्ट भ्रष्ट होवे ॥ १४ ॥

भावार्थ:—जो मनुष्य सब ऋतुओं में समय के अनुसार आहार विहार युक्त हो के विद्या योगाभ्यास और सत्सङ्गों का अच्छे प्रकार सेवन करते हैं। वे सब ऋतुओं में सुख भोगते हैं और इन को कोई चोर आदि भी पीड़ा नहीं दे सकता ॥ १४ ॥ सोमेत्यस्य वहणकािः। परमात्मा देवता। विचृदाषीं पङ्क्तिइछन्दः। पंचमः स्वरः॥

राज और प्रजापुरुषों को उचित है कि ईश्वर के समान न्यायाधीश होकर

आपस में एक दूसरे की रक्षा करें यह वि०॥ ेर सोमेस्य स्विषिरम्मि तथेव में स्विषिभूषात् । मृत्योः पाद्योः जोऽसि सहोस्यमुनंमसि ॥ १५॥

पदार्थ:—हे परम आम विद्वन् ! जैसे आप (सोमस्य) एश्वर्य्यं का (त्विपिः) प्र-काश करने हारे (असि) हैं (ओजः) पराक्षम युक्त (असि) हैं बैसा में भी होऊं (तवेव) आप के समान (मे) मेरा (त्विपिः) विद्या प्रकाश से भाग्योदय (भूया-त्) हो आप मुझ को (मृत्योः) मृत्यु से (पाहि) बचाइये ॥ १५॥

भावार्थ:—हे पुरुषो ! जैसे धार्मिक विद्वान् अपने को जो इष्ट है उसी को प्रजा के लिये भी इच्छा करें जैसे प्रजा के जन राजपुरुषों की रक्षा करें वैसे राजपुरुष भी प्रजाजनों की निरन्तर रक्षा करें !! १५ !! हिरण्यस्पा इत्यस्य वरुण ऋषिः । मिश्रा वरुणौ देवते । स्वराडार्षा जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब विद्वानों को चाहिथे कि आप निष्कपट हो और अज्ञानी पुरुषों के लिये सत्य का उपदेश करके उन की बुद्धिमान विद्वान बनावें यह वि० ॥ हिरंपयस्तपा ज्वसों विरोक जुभाविंन्द्वा उदिंधः सूर्यक्ष । आर्रोहतं वरुषा मित्र गर्नी ततंश्चक्षाधामदिंति दितिं च । मित्रोऽसि वर्षणांऽसि ॥ १६ ॥

पदार्थ:—हे उपदेश करने हारे (मित्र) सब के मुहद ! जिस लिथे आप (मित्रः) सुख देने वाले (असि) हैं तथा हे (वहण) शत्रुओं को मारने हारे बलवान् सेना-पित जिस लिथे आप (वहणः) सब से उत्तम (असि) हैं इसलिथे आप दोनों (गर्न्सम्) उपदेश करने वाले के बर पर (आरोहतम्) जाओ (अदितिम्) अविनाशी (च) और (दितिम्) नाशमान पदार्थों का (चक्षाधाम्) उपदेश करो । हे (हिरण्य-रूपों) प्रकाश स्वरूप (उसों) दोनों (इन्ह्रें) परमद्वय्ये करने हारे जैसे (विरोक्त) विविध प्रकार की हिच कराने हारे ध्यवहार में (सूर्यः) सूर्यं (च) और चन्द्रमा (उपसः) प्रातः और निशा काल के अवयवों को प्रकाशित करने हैं। बेसे तुम दोनों जन (उदिधः) विद्याओं का उपदेश करो ॥ १६ ॥

भाषार्थ:— जिस देश में सूर्य्य चन्द्रमा के समान उपदेश करने हारे व्याख्यानों से सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं, वहां सत्याऽसत्य पदार्थी के बोध से सहित होके कोई भी विद्याहीन होकर भ्रम में नहीं पड़ता। जहां यह बात नहीं होती वहां अन्ध परम्परा में फंसे हुए मनुष्य नित्य ही होश पाते हैं ॥ १६॥

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषि । क्षत्रपतिर्देवता । आर्थार्थकिङ्ग्रन्दः । एचमः स्वरः ॥ पूर्विक कार्य्यां की प्रवृत्ति के लिये कैसे पुरुष का राज्याधिकार देना चाहिये यह विश्री

सोमस्य त्वा चुम्ने नाभिषिञ्चाम्युग्ने भ्राजिसा सूर्यस्य वर्ष्वसेन्द्रे-स्वेन्द्रियेणं । क्षत्रायां क्षत्रपंतिरंध्यति दिखन् पाहि ॥ १७॥

पदार्थ:—हे प्रशंशित गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा जैसे में जिस तुझ की (सोमस्य) चन्द्रमा के समान ( खुझेन ) यश रूप प्रकाश से ( अग्नेः ) अग्नि के समान ( भ्राजसा ) तेज से ( स्प्यंस्य ) सूर्य्य के समान ( वर्चसा ) पढ़ने से और ( इन्द्र्स्य ) बिजुली के समान ( इन्द्र्र्स्य ) मन आदि इन्द्र्र्स्य के सहित ( त्वा ) आपको ( अभिषिचामि ) राज्याऽधिकारी करता हूं । वैसे वे आप ( क्षत्राणाम् ) क्षत्रिय कुल में जो उत्तम हो उनके बीच ( क्षत्रपतिः ) राज्य के पालने हारे (अश्रेष्ध) अति तत्पर

हुजिये और ( दिच्न् ) विद्या तथा धर्म का प्रकाश करने हारे व्यवहारों की (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये || १७ ||

भाषार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०— मनुष्यों को चाहिथे कि जो शान्ति आदि
गुण युक्त जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष हो उस को राज्य का अधिकार देवें। और उस राजा
को चाहिये कि राज्याऽधिकार को प्राप्त हो अतिश्रेष्ठ होता हुआ विद्या और धर्म आदि
के प्रकाश करने हारे प्रजा प्रथां को निरन्तर बढ़ावे।। १७।।

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषि:। यजमानो देवता । स्वराह्माद्वी त्रिप्टुप् छन्दः। धैवत: स्वरः॥

सत्य के उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि वाल्यावस्था से छे के अच्छी शिक्षा से राजाओं की कत्या और पुत्रों को श्रंष्ट आचार युक्त करें यह वि० ॥ 🔨 हुमंन्देंवा ग्रासपुरन छ सुंबध्वं महते ख़ुन्नार्य महते ज्येष्ट्यांय म- हुने जानेराज्यायन्द्रेस्पेन्द्रियायं । हुमसुसूद्यं पुत्रसुसूद्यं पुत्रसुस्ये खिष एष बोडसी राजा सोमोडस्माक्षं ब्राह्मणाना १ राजा ॥ १८॥

पदार्थ: —है (देवा:) येद शास्त्रों को जानने हारे संनापित लोग आप!जो (एप:) यह उपदेशक वा सेनापित (व:) नुम्हारा और (अस्माकम्) हमारा (ब्राह्मणानाम्) ईर्वर और वेद के संवक ब्राह्मणों का (राजा) वेद और ईर्वर की उपासना से प्रकाशमान अधिष्ठःता है। जो (अमी) वे धर्मीत्मा राजपुरुप हैं उन का (सोम:) शुम गुणों से प्रसिद्ध (राजा) सर्घंत्र विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा का करने हारा है उस (इमम्) इस (अमुष्य) अ छगुणों से युक्त राजपून के (पुत्रम्) पुत्र को (अमुष्य) प्रशंसा करने योग्य राजकत्या के (पुत्रम्) पवित्र गुण कर्म और स्वभाव से माता पिता की रक्षा करने वाले पुत्र और (अस्ये) अच्छी शिक्षा करने योग्य इस वर्चमान (विशे) प्रजा के लिये तथा (महते) सत्कार करने योग्य (क्षत्राय) क्षत्रिय कुल के लिये (महते) बड़े (ज्येष्ठचाय) विद्या और धर्म विषय में अ छ पुरुषों के होने के लिये (महते) अ छ (जानराज्याय) माण्डलिक राजाओं के ऊपर बलवान समर्थ होने के लिये (इन्द्रस्य) सब पेरवयों से युक्त धनाढण के (इन्द्रियाय) धन बढ़ाने के लिये (अस्वम्) जिस का कोई शत्रु न हो पैसे पुत्र को (सुवध्वम्) उत्यक्त करो || १८ ||

भावार्थ:—जो उपदेशक और राजपुरुष सब प्रजा की उन्नति किया चाहें तो प्रजा के मनुष्य राजा और राजपुरुषों की उन्नति करने की इच्छा क्यों न करें। जो राजपुरुष थेर और प्रजापुरुष के अनुकूल प्रणा को छोड़ के अपनी इच्छा के अनुकूल प्रमुख होयें तो इन की उन्नति का विनाश क्यों न हो ||१८||

प्रपर्वतस्येत्यस्य देववात ऋषि: । विराङ्ग्राह्मी त्रिष्टुप्छन्द: । धैवतः स्वर: ॥

फिर इस जगत् में राज और प्रजाजनों को किस प्रकार के यान बनाने चाहिये यह बि॰।।

प्र पर्वतस्य वृष्णभस्यं पृष्ठाकार्वश्चरन्ति स्वसिर्च इग्रानाः । ता
अर्थिवृत्रक्षप्रागुरंक्ता अहिं बुध्नग्रुमनु रीयंमाशाः । विद्णोविकामणमसि विद्णोविकांन्तमसि विद्णों। क्रान्तमसि ॥ १९॥

पदार्थ:—हे राजा के कारीगर पुरुष! जो तू (स्वसिन्नः) जिन को अपने लांग जल से सी'चते हैं (इयानाः) चलते हुए (उदकाः) फिर २ अपर को जांचें (अहिंबुध्न्यम्) अन्तरिक्ष में रहनेवाले मेघ के (अनुरीयमाणाः) पीछे २ चलाने से चलते हुए (नावः) समुद्र के अपर नौकाओं के समान चलते हुए विमान ( वृपभस्य ) वर्षा करने हारें ( पर्वतस्य ) मेघ के ( पृष्टात् ) अपर के भाग से (प्रचरन्ति ) चलते हैं जिन से तू (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के इस जगत् में (विक्रमणम्) पराक्रम सहित (असि ) है (विष्णोः) व्यापक व यु के बीच (विक्रान्तम्) अनेक प्रकार चलने हारा (असि ) है और (विष्णोः) व्यापक विज्ञुली के बीच (कान्तम्) चलने का आधार (असि ) है और (विष्णोः) नेघ से नीचें (आवत्रम्भ्) मेघ के समान विचरने हैं उन विमानादि यानों को तृ सिद्ध कर ॥ ११ ॥

भावार्थ:—जैसे मेघ वर्षक भूमि के तले को प्राप्त हो के पुनः आकाश को प्राप्त होता है। वह जल निवयों में जाक पाँछे समुद्र को प्राप्त होता है। जो जल के भीतर अर्थात् जिन के ऊपर नीचे जल होता है। वसे हो सब कारी परलोगों को चाहिये कि विमानादि यानों और नौकाओं को बना के भूमि जल और आकाश मार्ग से अभीष देशों में यथेष्ट जाना आना करें। जब तक ऐसे यान नहीं बनाते तब तक द्वीप द्वीपान्तरों में कोई भी नहीं जासकता। जैसे पक्षी अपने शरीर रूप संवात को आकाश में उड़ा लेचलते हैं बैसे चतुर कारी गर लोगों को चाहिये कि इस अपने शरीर आदि को यानों के द्वारा आकाश में फिराबें।। ११।।

प्रजापत इत्यस्य देववात ऋषि: । प्रजापतिर्देवता । स्वराइतिधृतिद्दछन्द: । पड्ज: स्वर: । मनुष्यों को चाहिये कि ईदवर की उपासना और उसकी आज्ञा पालने से सब कामनाओं को प्राप्त हों यह वि० ॥

प्रजापते न स्वदेतान्यन्यो विद्यां स्पाणि परि ता बंभूव। य-स्कांमास्ते जुहुमस्त्रज्ञो ग्रस्त्वयम्भुष्यं पिताऽसावस्य पिता व्य४ स्यांम पर्तयो रग्रीणा र स्वाहां। स्व्यक्ते कित्वि परं नाम तस्मिन् हुतमस्यमेष्टमंसि स्वाहां॥ २०॥

पदार्थ:—हें (प्रजापते) प्रजा के स्वामी ईश्वर ! जो ( एतानि ) जीव प्रकृति आदि

षस्तु (विश्वा) सव ( रूपाणि ) इच्छा रूप आदि गुणों से युक्त हैं (ता ) उनके ऊपर आप से ( अन्य: ) दूसरा कीई ( न ) नहीं ( परिवभूत्र ) जान सकता ( ते ) आप के सेवन से ( बत्कामा: ) जिस २ पदार्थ की कामना वाले होते हुए ( वयम् ) हम लोग ( जुहुम: ) आप का सेवन करते हैं । वह २ पदार्थ आप की हमा से ( न: ) हम लोगों के लिये ( अस्तु ) प्राप्त होवे । जैसे आप ( अमुष्य ) उस परोक्ष जगत् के ( पिता ) रक्षा करने हारे हैं (असी) सो आप इस प्रत्यक्ष जगत् के रक्षक हैं । वसे हम लोग (स्वाहा) सत्य वाणों से ( रयीणाम् ) विद्या और चक्रवित्ते राज्य आदि से उत्पन्न हुई लक्ष्मी के ( पत्य: ) रक्षा करने वाले ( स्वाम ) हों । हे ( रुद्र ) दुष्टों को रलाने हार परमेश्वर! ( ते ) आप का जो ( किवि ) दुःखों से खुड़ाने का हेतु ( परम् ) उत्तम ( नाम ) नाम है ( तिस्मन् ) उस में आप ( हुनम् ) स्वोकार किये ( अति ) हैं ( अमेष्टम् ) घर में इष्ट (असि ) हैं उन आप को हम लोग (स्वाहा) सत्य वाणों से ग्रहण करते हैं ॥ २० ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यों जो सब जगत् में व्याप्त सब के लिये माता पिता के समान वर्त्तमान दु<u>ष्टों को दण्ड देने हारा उपासना करने को इष्ट है इसी जगदीदवर</u> की उपासना करों। इस प्रकार के अनुष्टान से तुम्हारी सब कामना अवद्य सिद्धि हो जादेंगी ।। २०।।

इन्द्रस्थेत्यस्य देववात ऋषिः। क्षत्रपतिदेवता । भुरिग्त्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यम स्वरः ॥
फिर विद्वान् पृष्ट्पी को क्या करना चाहिथे इस० ॥

इन्द्रंस्य बज्रोऽसि मित्रावर्रणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषां युन-जिम । अव्यंथाये स्वा स्वथाये त्वाऽरिष्टो अज्ञीनो मुद्दतां प्रस्वेनं ज्यापाम मनमा समिन्द्रियेणं ॥ २१ ॥

पदार्थ:—हे राजन ! जो आप ( अरिष्ट: ) किसी के मारने में न आने वाले ( य-जुन: ) प्रशंसा के योग्य रूप से युक्त ( इन्द्रस्य ) परम ऐइवर्ग्य वाले का ( दक्क: ) शत्रुओं के लिये वज्र के समान (अमि) हैं जिस (त्या ) आप का ( अव्यथायें ) पीड़ा न होने के लिये (प्रशास्त्रो: ) सब को शिक्षा देने वाले ( मित्रावरुणयो: ) सभा और सेना के स्थामी की ( प्रशिपा ) शिक्षा से ( युनन्ति ) समाहित करता हूं (महताम् ) ऋत्विज लोगों के (प्रसचेत ) कहने से ( स्थायें ) अपनी चीज़ को धारण करना रूप राजनीति के लिये जिस (त्या ) आप का योगाभ्याम से चिन्तन करता हूं (मनसा ) विचारशील मन ( इन्द्रियेण ) जीवने सेवे हुए इन्द्रिय से जिस (त्या ) आप को हम लोग ( समापाम ) सम्यक् प्राप्त होते हैं । सो आप ( जय ) दुष्टों को जीत के निश्चिन्त उत्हाह हुजिये ॥ २१ ॥

भाषार्थ:—विद्वानों को चाहिये कि राजा और प्रजापुरुषों को धर्म और अर्थ की सिद्धि के लिये सदा शिक्षा देवें। जिस से ये किसी को पीड़ा देने रूप राजनीति से विरुद्ध कर्म न करें। सब प्रकार बलवान हो के शत्रुओं को जीतें। जिस से कभी धन सम्पत्ति की हानि न होते। २१॥

मातहत्यस्य देववात ऋषिः । इन्होदेवता । निचृदार्थः तिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
प्रजा पुरुपों का राजा के साथ कैसे वर्तना चाहिये यह वि० ॥
मा तं इन्द्र ते वृगं तुराषाडयुक्तासो अब्रुह्मता वि दंसाम ।
तिष्ठा रथमधि यं वंजहस्ता रुद्मीन्देव गमसे स्वद्यांन ॥ २२ ॥

पदार्थ:—हे (देव) प्रकाशमान (इन्द्र) सभापित राजन्! (वजहस्त) जिस के हाथों में वज्र के समान शस्त्र हो उस आप के साथ (वयन्) हम राजप्रजा पुरुष (ते) आप के सम्बन्ध में (अयुक्ताम:) अधर्मकारी (मा) न होवें (ते) आप की (अब्रह्मता) चेद तथा ईश्वर में रहित निष्टा (मा) न हा और न (विद्साम्) नष्ट करें जो (तुराषाद्) शोवकारी शत्रुओं के। सहने हारे आप जिन (रदमीन्) घोड़े के लगाम की रस्ती और (स्वश्वान्) सुन्दर घोड़ों के। (यमसं) नियम से रखते हैं। और जिस (रथम्) रथ के उत्तर (अधितिष्ट) बेठें उन घेड़ों और उस रथ के हम लोग भी अधिष्टाता होतें। २२।

भावार्थ:— राजा और प्रजा के पुरुषों की धाम्य है कि राजा के साथ अथे। य ट्य-बहार कभी न करें तथा राजा भी इन प्रजाजनों के साथ अन्याय न करे वेद और ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सब छोग एक सवारी एक विछोने पर वैठें और एकसा व्यवहार करने वाले होवें। और कभी आलस्य प्रमाद से ईश्वर और वेदों की निन्दा वा नास्तिकता में न फर्सें !! २२ !!

आनयइत्यस्य देववातऋषि: | अञ्चादयो मंत्रोका देवता: | जगती छन्दः । निषाद: स्वरः | | ं अब माता और पुत्र आपस में कैसे संवाद करें यह वि० | |

<u>अग्नये गृहपंतये स्वाहा सोमांय बनस्पतंये</u> स्वाहा <u>मठता</u>मी-जं<u>से</u> स्वाहेन्द्रंस्पेन्द्रियाय स्वाहां। पृथिवि मातुमी मां हिछ <u>सी</u>-मीं अहं त्वाम् ॥ २३ ॥

पदार्थ:—हे प्रजा के मनुष्यो ! जैसे राजा और राज पुरुप हम लोग ( गृहपतये ) गृहाश्रम के स्वामी ( अप्रथे ) धम और विज्ञान से युक्त पुरुप के लिये ( स्वाहा ) सत्य नीति ( सोमाय ) सोमलता आदि ओपधि अर (वनस्पतये) बनों की रक्षा करने हारे पीपल आदि के लिये ( स्वाहा ) बैचक शास्त्र के बोध से उत्पन्न हुई किया (मस्ताम्) प्राणों वा ऋत्विज लोगों के ( ओजसे ) बल के लिये ( स्वाहा ) योगाभ्यास और शान्ति की देने हारी वाणी और ( इन्द्रस्य ) जीव के ( इन्द्रियाय ) मन इन्द्रिय के लिये ( स्वाहा ) अच्छी शिक्षा से युक्त उपदेश का आचरण करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो | हे ( पृथिवी ) भूमि के समान बहुत से शुभ लक्षणों से युक्त ( मात: ) मान्य करने हारी जननी तू ( मा ) मुझ को ( मा ) मत ( हिंसी ) बुरी शिक्षा से दुःख दे और (त्वाम् ) तुझ को ( अहम् ) मैं भी ( मो ) न दुःख देऊं ॥ २३ ॥

भावार्थ:—राजा आदि राज पुरुषों को प्रजा के हित प्रजा पुरुषों के। राज पुरुषों के सुख और सब की उन्नति के लिये परस्पर वर्तना चाहिये। माता को योग्य है कि बुरी शिक्षा और मूर्जता रूप अविद्या देकर सन्तानों की बुद्धि नष्ट न करे । और स-तानों को उचित है कि अपनी माता के साथ कभी द्वेष न करें ॥ २३ ॥ इस इत्यस्य वामदेव ऋषिः। सूर्व्यो देवता। भुरिगार्पी जगती छन्दः। निपदः स्वरः॥ प्रमुख्य लोग ईश्वर की उपासना पूर्वक सब के लिये न्याय और अच्छी

शिक्षा करें यह वि० ॥

हु सः शृंचिषद्रस्रंरन्तरिक्षसङ्गतां वेदिषद्तिथिर्दुरोणसत् । स्न

पदार्थ:—हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिये कि जो परमेइवर (हंस: ) सब प्र-दार्थों को स्थूल करता (शुचिषत् ) पिवत्र पदार्थों में स्थित (वसु: ) निवास कर-ता और कराता (अन्तरिक्षसत् ) अवकाश में रहता (होता ) सब पदार्थ देता प्रहण करता और प्रलय करता (वेदिषत् ) पृथिवी में व्यापक (अतिथि: ) अभ्यागत के समान सत्कार करने योग्य (दुरोणसत् ) घर में स्थित (नृपत् ) मनुष्यों के भीतर रहता (वरसत् ) उत्तम पदार्थों में बसता (ऋतसत् ) सत्य प्रकृति आदि नाम वाले कारण में स्थित (व्योमसत् ) पोल में रहता (अन्ता:) जलों को प्रसिद्ध करता (गो-जा: ) पृथिवी आदि तत्वों को उत्पन्न करता (ऋतजा: ) सत्य विद्याओं के पुस्तक वेदों को प्रसिद्ध करता (अद्विजा: ) मेघ पर्यंत और वृक्ष आदि को रखता (ऋतम् ) सत्यस्वक्षप और (बृहत् ) सब से बड़ा अनन्त है उसी की उपासना करो ॥ २४ ॥

भावार्थ:—प्रजुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करने हारे ब्रह्म परमात्मा ही की उपासना करें क्योंकि उस की उपासना के बिना किसी को धर्म अर्थ काम मोक्ष से होने बाला पूर्ण सुख कभी नहीं हो सकता ॥ २४॥

इयदिखस्य वामदेव ऋषिः । सूर्यो देवता । आर्पः जगती छन्दः । विपादः स्वरः ॥

मनुष्य ईइवर की उपासना क्यों कर यह कि ।।

इयंद्रस्यायुंद्रस्यायुर्मिये घेष्टि युड्ङं मि वचाँ ऽसि वचाँ मिये धे-कर्गुर्स्यू जर्जे मिये घेष्टि । इन्द्रंस्य वां वीर्युकृतो खाह् अंश्युपार्व-इरामि ॥ २५ ॥

पदार्थ:—हे परमेदवर! आप ( इयत् ) इतना ( आयु; ) जीवन ( मिय ) मुझ में ( धेहि ) धरिये जिस से आप ( युङ् ) सब को समाधि कराने वाले ( असि ) हैं (व-वै; ) स्वयं प्रकाश स्वरूप ( असि ) हैं इस कारण ( उक् ) अत्यन्त बलवान् ( असि ) हैं इस लिखे ( उर्जम् ) बल पराक्रम को ( मिय ) मेरे में ( धेहि ) धारण की जिये । है राज और प्रजा के पुरुषो ( वीर्च्य इत: ) बल पराक्रम को बढ़ाने हारे ( इन्द्रस्य ) पेइवर्ण्य और परमातमा के आश्रय से ( वाम् ) तुम राज प्रजा पुरुषों के ( बाह्र ) बल और पराक्रम को ( अन्युपावहरामि ) सब प्रकार तुम्हारे समीप में स्थापन करता हूं | । २५ | ।

भाषार्थ:—को मनुष्य अपने इत्य में ईश्वर की उपासना करते हैं वे सुम्दर जीवन भादि के सुक्षों को भोगते हैं और कोई भी पुरुष ईश्वर के आश्रय के विना पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं हो सकता || २५ ||

स्रोनासीत्यस्य वामदेव ऋषिः । आसन्दी राजपक्षी देवता । भुरिगनुष्टुण्डन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

स्त्रियों का न्याय विद्या और उन को शिक्षा स्त्री छोग ही करें और पुरुषों के किये पुरुष इस वि० |}

स्योगासि सुषद्गिस क्षत्रस्य योतिरसि । स्योगामा सीद सु-

पदार्थ:—हे राणी! जिस लिये आप (स्योना) सुख रूप (असि) हैं (सुषदा) सुखर व्यवहार करने वाली (असि) हैं (क्षत्रस्य) राज्य के न्याय के (योनः) करने वाली (असि) हैं। इस लिये आप (स्योनाम्) सुखकारक अच्छी शिक्षा में (आसीद) तत्पर हुजिये (सुपदाम्) अच्छे सुख देने हारी विद्या को (आसीद) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये तथा कराइये और (क्षत्रस्य) क्षत्रिय कुल की (योनिः) राजनीति को (आसीद) सब स्त्रियों को जनाइये ॥ २६॥

भाषार्थ:—राजाओं की स्त्रियों को चाहिये कि सब स्त्रियों के लिये न्याय और अच्छी शिक्षा देवें और स्त्रियों का न्यायादि पुरुष न करें क्योंकि पुरुषों के सामने स्त्री लिजित और भय युक्त होकर यथावत् बोल वा पढ़ ही नहीं सकतों ॥ २६॥

निषसादेखस्य शुनःशेष ऋषिः । वरुणो देवता । पिपीलिका मध्या विराह्णायत्री छन्दः । पड्जः स्वरः ।)

चाजा के समान राणी भी राजधेमें का आवरण करें यह वि० ॥ नि वसाद धृतवंतो वर्षणः पुस्तग्नास्वा । साम्झांज्याय सुक्रतुः॥२९॥

पदार्थ:—हें राणी ! जैसे आप का (धृतव्रतः) सत्य का आचरण और ब्रह्मचर्य आदि ब्रतों का धारण करने हारा (सुक्रतुः) सुन्दर बुद्धि वा क्रिया से युक्त (वरुणः) उत्तमपति (साम्राज्याय) चक्रवर्त्ति राज्य होने और उस के काम करने के लिये (पस्त्वासु) न्यायवरों में (आ) निरन्तर (नि) नित्य ही (ससाद) बैठ के न्याय करे बैसे तू भी न्यायकारिणी हो ॥ २७॥

भाषार्थ:—जैसे चक्रवर्त्ता राजा चक्रवर्त्ता राज्य की रक्षा के लिये स्थाय की गदी पर बैठ के पुरुषों का ठांक २ न्याय करे वैसे ही नित्यमित राणी लोग स्त्रियों का न्या-य करें। इस से क्या आया कि जैसा नीति विद्या और धर्म से युक्त पति हो बैसी ही स्त्री को भी होना चाहिये।। २७।।

अभिभूरिखस्य शुनःशेप ऋषिः । यजमानो दिवता । धृतिरखन्दः । ऋषभः स्वरः ॥ फिर यह राजा कैसा हो के किस के लिये क्या करे इस वि०॥

अभिभूरंखेतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्ताम्ब्रह्यस्यं ब्रह्मासि स-

बितासि सुरावंसको वर्षणोऽसि सुरावैका इन्ह्रोऽसि विद्योजा इह्रोऽसि सुदावंः । बहुकार् श्रेयंस्कर् भ्यंस्करेन्द्रस्य बज्रोऽसि तेतं मे रच्य ॥ २८ ॥

पदार्थ:—है (बहुकार) बहुत सुझों (श्रेयस्कर) कल्याण और (श्र्यस्कर) बार २ अनुष्ठान करने वाले (श्र्यान् ) आत्मिश्चा को प्राप्त हुए जैसे जिस (ते) आप के (पताः) ये पञ्च पूर्व आदि चार और ऊपर नीचे एक (दिशः) पांच दिशा सामध्ये युक्त हो वेसे मेरे लिये आप की पत्नी की की की से मी (कल्पन्ताम्) सुझ युक्त होवें। जैसे आप (अभिभूः) दुष्टों का तिरस्कार करने वाले (असि) हैं (सिवता) पेशवर्थ्य के उत्पन्न करने हारे (असि) हैं (सत्यप्रसवः) सत्य की प्रेरणा से सुन्दर सुझ युक्त (बदः) शत्रु और दुष्टों को वलाने वाले (असि) हैं (इन्द्रस्सः) पेशवर्थ के (बजः) प्राप्त कराने हारे (असि) हैं वैसे में भी होऊं जैसे में आप के वास्ते का दि सिद्ध कदः बेसे (तेन) वस से (मे) मेरे लिये (रध्य) कार्यं करने का सामध्यं की जिये | २८ |

भाषार्थ:—सब मनुष्यों को चाहिये कि जैसा पुरुष सब दिशाओं में कीर्सि युक्त वेदों को जानने अनुबंद और सर्थवेद की विद्या में प्रवीण सत्य करने और सब को सुख देने वाला घर्मीरमा पुरुष होवे उस की स्त्री भी वैसे ही होवे उनको राजधर्म में स्थापन करके बहुत सुख और बहुत सी शोभा को प्राप्त हों। २८।

मग्निरित्यस्य शुनःशेष ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्था जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा के जन किस के समान क्या करें यह विश्री

अतिनः पृथुर्धमे<u>णस्पतिर्जुषाणो अ</u>तिनः पृथुर्वमेणस्यित्राज्यंस्य वेतु स्वाद्यो । स्वादांकृताः सूर्यस्य रुदिमभिर्यतप्रयक्ष सञ्चातानां सध्यमेष्ठयांग ॥ २६ ॥

पदार्थ:—हे राजन् वा राजपित ! जैसे ( पृयु: ) महापुरुषार्थ युक्त धर्म का ( पित: ) रक्षक ( जुवाण: ) सेवक ( अप्तः ) विज्ञली समान व्यापक ( गजातामाम् ) उत्पन्न हुए पदार्थों के साथ वर्तमान पदार्थों के ( मध्यमेष्ठधाय ) मध्य में स्थित हो के ( स्वाहा ) सत्य किया से ( आज्यस्य ) धृत आदि होम के पदार्थों को प्राप्त कराता हुआ (सूर्व्य-स्य ) सूर्व्य की ( रिव्यक्तिः ) किरणों के साथ होम किये पदार्थों को फैला के सुख दे-ता है वैसे ( धर्मण: ) न्याय के ( पित: ) रक्षक ( पृथु: ) वड़े ( जुवाण: ) सेवा करने वाला ( अप्ति: ) तेजस्वो आप राज्य को ( वेतु ) प्राप्त हुजिये | यैसे हो हे (स्वाहा हुताः) सह्य काम करने वाले सभासद पुरुषों वा स्त्री लोगो ! तुम ( यतध्वम् ) प्रयक्ष किया करो || २: ||

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलु०--हे राज शीर प्रजा के पुरुषी तथा राणी वा रा-णी के सभासदी ! तुम लोग सूर्य्य प्रसिद्ध और विद्युत् भग्नि के समान वर्स पक्षपात छोड़ एक जन्म में मध्यस्थ होके न्याय करी । वैसे यह अग्नि सूर्य्य के प्रकाश में और व यु में ज़ुगन्धि युक्त द्रव्यों को प्राप्त करा वायु जल और ओषधियों की शुद्धि हारा सब प्राणिओं को सुख देता है वैसे ही न्याय युक्त करों के साथ आचरण करने व ले होके सब प्रजाओं को सुख युक्त करो ॥ २९॥

सिवत्रत्यस्य शुनःशेष ऋषिः । सिवत्रादिमंत्रोक्ता देवताः । स्वराड्याद्वी त्रिष्टुण् छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

🕂 राजा वा राणी को कैसे गुणों से युक्त होना चाहिये इस० ॥

स्वित्रा पंस्रवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वब्द्रो रूपैः पूष्णा पुद्युः भिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वर्षणेनी जेसाऽनिनना तेजेसा सोमेन राज्ञा विष्णुंना दशास्या देवतंशा प्रस्ताः प्रसंपामि ॥३०॥

पदार्थ:—हं प्रजा और राजपुरुषो ! जेसे में (प्रसिवत्रा) प्रेरणा करने वाले वायु (सिवत्रा) सम्पूर्ण चेष्ठा उत्पन्न कराने हारे के समान शुभ कर्म (सरस्वरा) प्रशं-सित विज्ञान और किया से युक्त (वाचा) वेद वाणी के समान सत्य भाषण (त्वप्टा) छेदक और प्रताप युक्त सूर्य के समान न्याय (करें:) सुद्ध कप (पूष्णा) पृथिवी (पशुक्तां) के समान प्रजा के पाळन (इस्ट्रेण) बिज्जली (अस्से) हम (बृहस्पतिता) बड़ों के रक्षक चार वेदों के जानने हारे विद्वान के समान विद्या और सुन्दर शिक्षा के प्रचार (ओजसा) वल (वरुणेन) जल के समुद्दाय (तेजसा) तीश्ण ज्योति के समान शत्रुओं के चलाने (अग्निना) अग्नि (राज्ञा) प्रकाशमान आनन्द के होने (सोमेन) चन्द्रमा (दशम्या) दशसंख्या को पूर्ण करने वाली (देवतया) प्रकाशमान और (विष्णुना) व्यापक ईश्वर के समान शुभ गुण कर्म और स्वभाव से (प्रसूतः) प्रेरणा किया हुआ में (प्रसर्पामि) अच्छे प्रकार चलता हूं। वैसे तुम लोग माँ चलो ॥ ३० ॥

भावार्थ:—जो मनुष्य सूर्य्यादि के गुणों से युक्त पिता के समान रक्षा करने हारा हो वह राजा होने के योग्य है। और जो पुत्र के समान वर्त्तमान करे वह प्रजा होने येग्य है।

अद्दिबभ्यामित्यस्य शुनःशेप ऋषि: । क्षत्रपतिद्वेवता । आर्षी त्रिष्टु प्छन्द: । धैवत:स्वर:)। फिर मनुष्य कैसे होके क्या करें यह वि० ॥

अदिनभ्यां पच्यस्य सरंस्वत्ये पच्यस्वन्द्रांय सुत्राम्णे पच्यस्य। बागुः पूतः प्रविश्रेण प्रत्यङ्कसोमो स्रतिस्रुतः । इन्द्रंस्य युज्यः स-खीः॥ ३१॥

पदार्थ: — हे राजा तथा प्रजा पुरुपो ! तुम ( अध्वक्याम् ) सूर्य चन्द्रमा के समान अध्यापक और उपदेशक (पच्यस्व ) शुद्ध बुद्धि वाले हो ( सरस्वत्ये ) अच्छी शिक्षा युक्त वाणी के लिये (पच्यस्व ) उद्यत हो (सूत्राम्भे ) अच्छी रक्षा करने हारे (इन्द्राय ) परमेशवर्यं के लिये ( पच्यस्व ) दृढ़ पुरुषार्थं करो ( पवित्रेण ) शुद्धधर्मं के आचरण से ( बायु: ) वायु के समान ( पूत: ) निर्दोष (प्रत्य क्) पूजा को प्राप्त (सोम:) अरुष्ठे गुणां से युक्त पेशवर्यं वाले ( अतिस्नृत: ) अत्यन्त ज्ञानवान ( इन्द्रस्य ) परमेशवर के ( युज्य: ) योगाभ्यास सहित ( सखा ) मित्र हो || ३१ ||

भावार्थः—मनुष्य को चाहिथे कि सत्यवादी धर्मातमा आप्त अध्यापक और उ-पदेशक से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हा शुद्ध धर्म के आचरण से अपने आत्मा को पवित्र योग के अङ्गों से ईश्वर की उपासना और संपत्ति होने के लिथे प्रयत्न कर के आपस में मित्रभाव से बत्ते !! ३१ !!

कुविदक्के त्यस्य शुनःशेप ऋषिः । क्षत्रपतिदंवता । निचृद्वाद्यां ज्ञिष्टुप्छन्दः । धेवतः स्वरः ॥

राजा अदि सभा के पुरुष किस के तुल्य क्या २ करें यह वि० ॥
कुविदुङ्ग धर्वमन्तो धर्व चिच्छा दान्त्यंनुपूर्व चिछूर्य । हुईहैं षां
कुर्णुह भोजनानि ये बुईह्यां नमं उक्ति धर्जान्त । उप्यामगृही-

तोऽस्युद्धिवभ्यां त्वा सरंस्वत्ये त्वेन्द्रांय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३२ ॥

पदार्थ:—हे (अङ्क) ज्ञानवान राजन ! जो (कृवित्) बहुत ऐइवर्य वाले आप (अइवश्याम्) विद्या को प्र.प्त हुए शिक्षक लोगों के लिये (उपयामगृहीतः) म्रह्मचर्यं के नियमों से स्वीकार किये (असि) हैं उन (सरस्वये) विद्या सक्त वाणों के लिये (त्वा) आप को (इन्द्राय) उत्तम ऐइवर्यं के लिये (त्वा) आप को और (सुन्नाम्णे) अच्छो रक्षा के लिये (त्वा) आप को हम लोग स्वीकार करते हैं। उन के लिये सकार के साथ भोजन आदि दीजिये। जैसे (यवमन्तः) बहुत जो आदि धान्य से युक्त खेती करने हारं लोग (इहेह) इस २ व्यवहार में (यवम्) यवादि अन्न को (अनुपूर्वम्) कम से (दान्ति) लुनते (काटते) हैं। मुस से (चित्) भी (यवम्) जवों को (विय्य) पृथक् करके रक्षा करते हैं वैसे सत्य असत्य को ठीक २ विचार के इन की रक्षा की जिये। ३२ ॥

भावार्थ: — इस मंत्र में उपमालं — जैसे खेती करने वाले लोग परिश्रम के साथ पृथिवी से अनेक फलों को उत्पन्न और रक्षा करके भोगते और असार को फेंकते हैं और जैसे ठींक २ राज्य का भाग राजा की देते हैं वैसे ही राजा आदि पुरुपों को चाहिये कि अत्यन्त परिश्रम से इन की रक्षा न्याय के आचरण से ऐस्वर्य को उत्पन्न कर और सुपात्रों के लिये देतेहुए आनन्द को भोगें ॥ ३२ ॥

युवमित्यस्य शुनःशेष ऋषिः । अदिवनौ देवते । निचृदनुष्टुष् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सभा और सेनापित प्रयक्त से वैश्यों की रक्षा कर यह वि० ॥ १० युवर सुरार्ममिदिवना नर्मुचावासुरे सर्चा । वि<u>षिषाना श्र</u>ेभिर स्प<u>र्ता</u> इन्द्रं कर्में मुख्यतम् ॥ ३३ ॥

पदार्थ:-है (सचा) मिले हुए (विषिषाना) विविध राज्य के रक्षक (शुभ:)

कल्याण कारक व्यवहार के (पतों) पालन करने हारे ( अधिवना ) सृद्धें चन्द्रमा के समान समापति और सेनापति ( युवम् ) तुम दोनों ( नमुचों ) जो अपने दुध कर्म को न छोड़े ( आसुरे ) मेघ के व्यवहार में ( कर्मसु ) खेती आदि कर्मों में बसमान (सुरामम् ) अच्छी तरह जिस में रमण करें ऐसे ( एन्ट्रम् ) परमैश्वर्यं व छे धनी की निरानतर ( आवतम् ) रक्षा करों ॥ ३३॥

मावार्य:—दुष्टों से श्रेष्ठों की रक्षा के लिये ही राजा होता है राज्य की रक्षा के विना किसी चेष्टावान नर की कार्य में निर्विष्न प्रवृत्ति कभी नहीं हो सकती | और न प्रजा जनों के अनुकूछ हुए विना राजपुरुषों को स्थिरता होती है। इसलिये वन के सिहों के समान परस्पर सहायों हो के सब राज और प्रजा के महुष्य सदा आनन्द

में रहें || ३३ ||

पुत्रमिवेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अभ्विनौ देषते । भुरिक् पंक्तिरुख्यः । पञ्चमः स्वरः ॥

राजा और प्रजा को पिता पुत्र के समान वर्तना चाहिये यह विव ॥

प्रकारिक विवर्णन विवर्णने विवर्णने समान

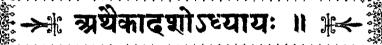
पुत्रमिव पितरां बहिन नो भेन्द्रावशुः काव्ये र्टेश सनाभिः । पः

त्सुरामं व्यपिषः द्वाची भिः सर्रस्वती त्वा मघवन्न भिष्णक् । ३४॥ पदार्थः — हे (मघवन्) विशेष धन के होने से सत्कार के योग्य (इन्द्र) सब सभाओं के मालिक राजन् ! (यत्) जो आप (शचीमिः) अपनी बुद्धियों के बल से (सुरामम्) अव्छा आराम देने हारे रस को (व्यपिवः) विविध प्रकार से पौर्वे उस आप का (सरस्वती) विद्या से अव्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वाणी के समान स्त्री (अभिष्णक्) सेवन करे (अधिवना) राजा से आज्ञा को प्राप्त हुए (उमा) तुम दानों सेनापित और न्यायाधाश (काव्यः) परम विद्वान् धर्मात्मा लोगों ने किये (दंसना-भिः) कर्मों से (पितरी) जैसे माता पिता (पुत्रम्) अपने सन्तान की रक्षा करते हैं वैसे सब राज्य की (आवशुः) रक्षा करो ॥ ३४॥

भावार्थ:—सब अच्छे २ गुणों से युक्त राजधर्म का सेवने हारा धर्मातमा अध्यापक और पूर्ण युवा अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष अपने हृदय को प्यारी अपने योग्य अच्छे छक्षणों से युक्त रूप और लावण्य आदि गुणों से शोभायमान विद्वान स्त्रों के साथ विश्वाह करें। जो कि निरन्तर पति के अनुकूछ हो। और पति भी उस के सम्मति का हो। राजा अपने मन्त्रों नीकर और स्त्रों के सहित प्रजाओं में सत्पुरुषों की रीति पर पिता के समान और प्रजा पुरुष पुत्र के समान राजा के साथ वर्ते। इस प्रकार आपस में प्रीति के साथ मिल के आनन्दित होगें। ३४॥

५ इस अध्याय में राजा प्रजा के धर्म का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ को पूर्व अध्याय के साथ संगति जाननो चाहिये ||

पह दशवां भध्याय समाप्त हुआ।



# विश्वांनि दवे सवितर्दुरितानि परांसुव । यद्भद्रं तन्न आसुंव ॥

युञ्जानइत्यस्य प्रजापतिऋषिः। सिवता देवता। विराहा-दर्वनुष्टुख्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब ग्यारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है। इस के प्रथम मन्त्र में योगाभ्यास और भूगर्भ विद्याका उपदेश किया है।।

युञ्जानः प्रंथमं मनस्तत्त्वायं सविता धियः । अग्नेज्योतिर्निचाय्यं पृथिव्याअध्यामंरत्॥ १॥

पदार्थ:-जो (मिन्निता) ऐश्वर्ध की चाहने वाला मनुष्य (तस्वाय) उन परमेश्वर भादि पदार्थों के झान है।ने के लिये (प्रथमम्) पहिले (मनः) विचार स्वक्रप अन्तः करण की वृत्तियों को (युज्जानः) योगाभ्यास और भूगर्भविद्या में युक्त करता हुआ (अग्नेः) एथिबी आदि में रहने वाली बिजुली के (क्योतिः) प्रशास को (निचार्य) निश्चय कर के (एथित्याः) सूमि के (जिथ ) ज्ञावर (आभारत्) अच्छे प्रकार धारण करे वह योगी और भूगर्भ विद्या कर् कर्म करनेवाला होने।। १॥

भावार्थः — की पुरुष योगाभ्यास भीर भूगर्भविद्या किया काहे वह यम आदि योग के अङ्ग और किया कीशकों के अपने प्रदय की शुद्ध सत्यों के जान बुद्धि को प्राप्त और इम की गुणकर्म तथा स्त्रभाव से जान के उपयोग लेते। फिर जी प्रकाशमान सूर्यादि एदार्थ हैं उन का भी प्रकाशक ईश्वर है उस को जान और अपने भारमा में निश्चय कर के अपने और दूसरों के सब प्रयोजनों जो सिद्ध करें॥ १॥

युक्तेनत्यस्य प्रजापतिर्फापः। सिवता देवता । ज्ञाङ्कुमती गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥ किर भी उक्त विषय ही अगले मंत्र में कहा है॥

#### युक्तेन मनंसा व्यं देवस्यं सवितुः सवे। स्वग्याय शक्त्यां॥२॥

पदार्थ:—हे योग और तस्विद्या को जामने की इच्छा करने हारे मनुष्यो जैसे (वयम्) हम योगी लोग (युक्तेन ) योगाभ्यास किये (मनसा) विद्यान और (शक्त्या) समर्थ से (देवस्य) सब को चिताने तथा (सिवतुः) समग्र संवार को उत्यस करने हारे देश्वर के (सबे) जगत् रूप इस ऐश्वर्य में (स्वर्याय) सुख प्राप्ति के लिये प्रकाश की क्षिथकाई से धारण करें दैसे तुम लोग भी प्रकाश को धारण करों।। २॥

भावार्थः — इस मंत्र में अरपक्तुः – जो मनुष्य परमेश्वर की इस सृष्टि में समाहित हुए योगाभ्यास और तत्त्यिकिया को यथाशक्ति सेवन करें उन में सुन्दर आश्मक्तान के प्रकाश से गुक्त हुए योग और प्रदार्थविद्या का अभ्यास करें तो अवश्य सिद्धियों की प्राप्त हो जावें॥ २॥

युक्तायेत्यस्य प्रजापितर्ऋषिः ! सविता देवता । निवृद्नुष्टुष् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर भी उक्त विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

युक्तवायं सिवता देवान्त्स्वंर्य्यतो धिया दि-वम् । वृहज्ज्योतिः करिष्यतः संविता प्रसुवाति तान् ॥ ३ ॥ पदार्थ: -जिन को (सिंतता) योग के पदार्थों के ज्ञान के चरने हारा जन परमारना में मन को (युक्त्वाय) युक्त करके (थिया) बुद्धि चे (दिवम्) विद्या के प्रकाश को (स्वः) सुख को (यतः) प्राप्त कराने वाखे (खहत्त) बड़े (ज्योतिः) विद्यान को (करिव्यतः) जो करेंगे उन (दे-वाज् दिव्य गुर्शों को (प्रसुवाति) उत्यन्त करे (तान्) उन को अन्य भी उत्यादक जन उत्पन्न करे ॥ ३॥

भाषार्थ: — जो पुरुष योगाम्याम काते हैं वे अविद्या आदि क्रिशों की इटाने वाले जुहुगुणों की प्रकट कर सक्ते हैं। जो उपदेशक पुरुष में योग और तत्व ज्ञान को प्राप्त होने ऐना अभ्याम करें बहु भी इन गुणीं की प्राप्त होने ॥ ३॥

युक्रजतहत्वस्य प्रजापतिक्रींपः । सविता दंबता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥ योगाभवास करके महुष्य क्या करें यह विव ॥

युञ्जते मनं उत युञ्जते धियो विष्टा विष्रस्य रहतो विपश्चितः । वि होत्रां दधे वयुनाविदेक इनमही देवस्यं सित्ततुः परिष्टृतिः ॥ ४॥

पदार्थ: -- जो (होत्राः) दान देने छेने के स्वभाव वाले (लिप्राः) बुहुमान् पुरुष जिन्न (बहुनः) बहे (विषश्चितः) सम्पूर्ण विद्यानां से युक्त आप्त पुरुष के समान वर्त्तमान (विष्रस्य) मत्र शास्त्रों के जानने हारे बुहु-मान् पुरुष मे विद्याभों को प्राप्त हुए विद्वाभों से विज्ञान युक्त जन (भविन्तः) सब जगत् को उत्पन्न और (देवस्य) सब के प्रकाशक जगदीप्रवर की (मही) बड़ी (पिष्टुतिः) सब प्रकार की स्तुति है उस तत्वज्ञान के विषय में जैसे (मनः) अपने चिक्त को (युंजते) समाधान करते भीर (धिर्धः) अपनी बुह्विणों को युक्त करते हैं वैसे ही (वयुनावित् ) प्रकृष्ट्यान वाला (एकः) अन्य के सहाय की अपेक्षा से रहित (हते) ही में (विद्विष्ट) विधान करता हूं ॥ ४॥

आयार्थः — इस संत्र से वानकलुः - जो नियस से आहार विहार करने हारे जिलेन्द्रिय पुरुष एकान्त देशमें परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं वे तत्वकान को प्राप्त होकर नित्य ही हुत भोगते हैं॥ ४॥

> गुजेवासित्यस्य प्रजापतिर्क्तिषः । समिता देवता । विराडार्षी त्रिप्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ भनुष्य छोग ईश्वर की प्राप्ति कैसे करें इस बि०॥

गुजे वां ब्रह्मं पूर्व्य नमोभिर्विश्लोकं एतु प्र-थ्येव सूरेः । शृण्वन्तु विश्वे अमृतंस्य पुत्रा आ-ये धामानि द्विच्यानि तुस्थुः ॥ ५ ॥

पद्धि: — है योगगास्त के सान की इच्छ। करने वाले मनुष्यो आप लीग जैसे (प्रलोक: ) सत्य वाणी से संयुक्त में (नगंभि: ) सरकारों में जिस (पूर्व्यम् ) पूर्व के योगियों ने प्रत्यक्ष किये (ब्रह्म ) सब से बड़े उथापक हैं इवर की (युक्त ) अपने आत्मा में युक्त करता हूं वह ईप्रवर (वाम् ) तुम योग के अनुष्ठाम और उपदेश करने हारे दोनों को (सूरे: ) विद्वान् को (प्रथ्येत ) उक्त गति के अर्थ मार्ग प्राप्त होता है वैसे (व्येतु ) विविध प्रकार से प्राप्त होते । जैमें (विश्वं ) मब (पुत्रा: ) अच्छे सन्तानों के तुस्य आझाकारी मोझ को प्राप्त हुए विद्वान् लोग (असृतस्य ) अविनाशी ईश्वर को योग से (दिस्यानि ) सुस के प्रकाश में होने काले (धामानि ) स्थानों को (आतस्य: ) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं वैसे मैं भी उन को प्राप्त होन्हों । धाम

भावाधी: इस मंत्र में उपमालंग-योगाम्यास के झान की चाहने वाले मनुष्यों की चाहिये कि योग में कुणल विद्वानों का सङ्ग करें। उन के संग से योग की विधि की जान के अस्त्रज्ञान का अभ्यास करें। जैसे विद्वान् का प्र-काशिल किया हुआ मार्ग सब की सुख से प्राप्त होता है वैसे ही योगाम्या-सियों के संग से योग विधि सहज में प्राप्त होती है। कोई भी जीवात्मा इस संग और अस्त्रज्ञान के अभ्यास की जिना पवित्र होकर सब सुखों की प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये उस योगवि। श्रें साथही सब मनुष्य परश्रेश्व की उपासना करें। । ५॥

> यस्पप्रयासामित्यस्य प्रजापतिर्क्कावः । मिनता देवता । आर्थात्त्रप्रुप् छन्दः । घेवतः स्वरः ॥ मनुष्य किस की उपामना कर्षे यह वि०॥

यस्यं ययाणमन्द्रन्य इद्ययुर्देवा देवस्यं महि-मानुमोजंसा । यः पार्थिवानि विसुम स एतंशो रजांक्षसि देवः संविता मंहित्द्रना ॥ ६॥

पदार्थ:—हे गोगी पुरुषो ! तुल को चाहिंग कि ( यस्य ) जिस ( दे वस्य ) सब सुख देने हारे हेश्वर के ( मिह्नमानम् ) स्तुति विषय को ( प्र-याणम् ) कि जिम रे सब सुख प्राप्त होते उम के ( अनु ) पीछे (अन्ये) जी-वादि और ( देवा: ) विद्वान् छोग ( ययः ) प्राप्त होतें ( यः ) जो (एतशः) सब जगत में अपनी ठगाप्ति से प्राप्त हुआ ( मित्रता ) सब जगत का रचने हारा ( देव: ) शुदुस्वक्षप भगवान् ( मिहत्वना ) अपनी मिहमा और (ओ-जसा ) पराक्रम से ( पार्थिवानि ) एथिवी पर प्रमिद्ध (रजांसि) मब छोकों को ( विमसे ) विमान आदि यानों के समान रचता है वह ( इत ) हो नि-रम्तर उपामगीय मानो ॥ ६ ॥

भावार्थ:- को विद्वान् लोग मस जगत् के बीचर पोल में अपने अनन्त बल से धारण करने, रखने और सुख देने हारे गृह सर्वशक्तिमान् मब के हु-द्यों में ठपापक ईश्वर की जपासना करते हैं वेही सुख पाते हैं अन्य नहीं॥६॥

देवसवितरित्यस्य प्रजापतिर्क्षायः। मविता देवता।

आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

भव किगलिये परमेश्वाकी उपासना और प्रार्थना करनी चाहिये यह विव॥

देवं सवितः प्र सुंव यज्ञं प्र सुंव प्रज्ञपंतिं भ-

### गाय । दिव्यो गन्धर्वः केत्रपूः केतन्नः पुनातु वा-चस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ ७ ॥

पदार्थ:—ह (देव) सत्ययोग विद्या से चपासना के योग्य शुद्ध जान देने (स्वतः) और सब सिद्धियों को उत्त्र करने हारे परमेश्वर आप (नः) इनारे (यज्ञम्) सुखों को प्राप्त कराने हारे व्यवहार को (प्रसुव) उत्पन्न की जिये तथा (यज्ञपतिम्) इत सुख्रायक व्यवहार के रक्षक जन को (प्रसुव) उत्पन्न की जिये (गन्धवः) पृथिवी को घरने (दिव्यः) शुद्ध गुण कर्म और स्वनावों में उत्तर और (केतपूः) विद्यान से पवित्र करने हारे आप (नः) हमारे (केतम्) विज्ञान को (पुनातु) पवित्र की जिये और (बावस्पतिः) सत्य बिद्याओं से युक्त वेदवाणी के प्रचार से रक्षा क रने बाले आप (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को स्वादिष्ट अर्थात् को मल स्थुर की जिये ॥ 9 ॥

भावार्थ: जो पुन्य सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त शुदु निर्मल ब्रह्म की उपासना और योगविद्या की प्राप्टित के लिये प्रार्थना काते हैं वे सब ऐ-श्वर्य को प्राप्ट अवने आत्मा की शुदु और योगिवद्या को सिद्ध कर स-कते हैं वे सत्यवादी हो के सब किया भी के फलों को प्राप्ट होते हैं 169 11

इमं न इत्यस्य प्रजापतिक्रीयः। सिंधता देवता।

शकरीः छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी विषय की अगले मंत्र में कहा है।

इमं नो देव सवितर्यक्षं प्रगांय देवाव्यक्षस-खिविदंक्षसत्राजितंन्धनजितकस्वर्जितंम्।ऋचा स्तोमकसमर्थयगायत्रेणं रथन्त्रं बृहद्गांयत्रवं-त्तिन स्वाहां ॥ ८॥

पदार्थ:-इ (देव) सत्य कामनाओं को पूर्ण करने और (सवितः)

अन्तयां नि रूप से प्रेरणा करने हारे जगदी इवर आप (नः) हमारे (ह-मम्) पी छे कहे और आगे जिस को कहेंगे उस (देवाठ्यम्) दिट्य बिद्वान् या दिव्य गुणों की जिस से रक्षा हो (मिखिविदम्) मिन्नों की जिस से शाप्त हैं। (मन्नाजितम्) सत्य को जिस से जीतें (धनजितम्) धन की जिस से उक्रति है: वे (स्वर्जितम्) सुख को जिस से बढ़ावें। और (ऋषा) ऋग्वेद से जिस की (स्तोमम्) स्तुति है। उस (यहम्) विद्या और धर्म का सं-पीग कराने हारे यक्त को (स्वाहा) सत्य किया के साथ (प्रणय) प्राप्त की जिये (गायन्रेण) गायन्त्री आदि छन्द से (गायन्त्रवर्णनि) गायन्त्री आदि छन्दों की गान विद्या (हहत्) बड़े (रथ-ताम्) अच्छे र यानों से जिस के पार हों उन मार्ग को (समर्थय) अच्छे प्रकार बढाइये॥ ६॥

आवार्थ:-को मनुष्य ईष्वी द्वेष आदि दोषोंको छोड़ ईप्रश्के समान सब कीवों के साथ निश्रमाव रखते हैं। वे संयत् को प्राप्त होते हैं॥ ८॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्श्वविः । स्रविता देवता । भुरिगः

तिश्वकरीछन्दः। पश्चमः स्वरः॥

मनुष्य भूनि आदि तरको वे विज्ञही का यहण करें यह विश् ॥ १ देवस्यं त्वा स्वितुः प्रंस्वेडिश्वनीर्वाहुभ्यां पू-प्राहिस्तांभ्याम् । आदंदे गायत्रेणछन्दंसाङ्गिर्-स्वत्ष्ट्रंथिव्याः सधस्थांद्रिनपुंश्व्यमङ्गिर्स्वदा-भर् त्रेष्ट्रंभेन छन्दंसाङ्गिर्स्वत् ॥ ९ ॥

पदार्थ:-हे विद्वन् पुरुष मैं जित्त (स्वा) आप की (देवस्य) सूर्यं आदि सब जगत् के प्रकाश करने और (सिवतु:) सब ऐस्वर्यं में (अ-शिवनी:) प्राण और उदान के (बाहुन्याम्) बल और आकर्षेण से तथा (पूछ्ण:) पृष्टि कारक बिजुली के (इस्ताम्याम्) धारण और आकर्षण (अक्रिर्वत्त्र) अंगारों के समान (आददे) ग्रहण करता हूं सो आप (गा-यत्रेण) गायत्री मंत्रसे निकले (छन्दसा) आनम्द्दायक अर्थ के साथ (ए-

चिठ्याः ) एचिवी के (सथस्थात् ) एक स्थान से (अञ्जित्स्वत् ) प्राणों के तुस्य और (जिन्दुमेन ) जिन्दुय मंत्र से निकले ( छन्दसा ) स्वतंत्र अर्थ के साथ (अङ्गिरस्वत् ) जिन्हीं के मदृश (पुरीव्यम् ) जल को जल्पक करने हारे ( जिन्तम् ) विजुली आदि तीन प्रकार के आंग्त को , आभर ) धारख की जिये ॥ ए ॥

भावार्थ: इस मंत्र में उपमालकार है। मनुष्यों की चाहिये कि इंश्वर की सृष्टि के गुणों की जारूने हारे विद्वान् की अच्छे प्रकार मेवा करने और पृथिबी कादि पदार्थों में रहने बाले अग्नि की स्वीकार करें।। ए।।

म्राभ्रिसीत्यस्य प्रजापतिकीषः । स्विता देवता । भुरिग-

नुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्य लोग भूमि आदि से सुदर्श आदि पदार्थों को कैसे प्राप्त हों में यह विशा

# अभिरमि नार्यमि त्वयां <u>वयमिश्वशंकम</u> खनि-तुष्ठमुधस्थुआ । जागंते नु छन्दंसाङ्गिरस्वत् ॥ १०॥

पदार्थ: हे कारीगा पूराय जिंद तथया ) रेरे माथ ( सघस्थे ) एक स्थान में वर्णमान ( वयम् ) हमलोग जी ( अभि: ) भूमि खोदने और (मार्-री) विवाहित उस्म खों के समान कार्यों को भिट्ठ करने हारी लोहे आर्दि की कसी ( अमि ) है जिस से कारीगर लोग भूगर्भ विद्या को जान सकें उस को ग्रहण करके ( सागतेन ) सगती मंत्र से विधान किये ( उन्द्रमा ) सुखदायक स्थानन्त्र साधन से ( अङ्ग्रिस्थत् ) धाणों के तुल्य ( अश्विम् ) विद्युत्त आदि अग्विम को ( खनितुम् ) खोदने के लिये ( आश्वेम ) स्थ प्रकार समर्थ हैं। उसकी तू समा ॥ १०॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित्त है कि अब्छे खोर्ने के माधनों से ए-षिवी को खोद और अग्नि के साथ मंयुक्त कर के सुवर्ण आदि पदार्थों की बतावें | परन्तु पहिले भूगमं की रुख विद्या को अग्न है। के ऐसा कर स-कते हैं ऐसा निश्चित जानना चाहिये || १० || हस्तहत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। ग्रार्षी छन्दः। पञ्चमः स्वरः।। फिर भी उसी उक्त वि०॥

#### हस्त आधायं सिवता विश्वदिश्रंथ हिर्ण्य-यीम् । अग्नेज्योतिर्निचाय्यं पृथिव्या ऋध्या-भरदानुष्टुभेन छन्दंसाङ्गिर्स्वत् ॥ ११॥

पदार्थः—( सविता ) ऐश्वर्य का उत्पक्त करने हारा कारीगर मनुष्य ( आनुष्टुभेन ) अनुष्टुप् छन्द में कहे हुए ( छन्दमा ) स्वतन्त्र अर्थ के योग से ( हिरगययीम् ) तेजोमय शुद्ध घातु से बने ( अश्विम् ) स्थादने के श्रीं को ( हस्ते ) हाथ में लिये हुए (अङ्कार्यत्र) प्राण के तुल्य ( अश्नेः ) विद्युत् आदि अग्नि के ( ज्योतिः ) तेज को (निचाय्य ) निश्चय करके (एथिव्याः) एथिवी के ( अधि ) जपर ( आमान्त् ) अष्टि प्रकार धारण करें ॥ ११॥

भावार्ध: — मनुष्यों को चाहिये कि जैसे छोहे और पर्वशों में धिजुली रहती है वैसे ही सब पदार्थों में प्रवेश कर रही है। उसकी विद्या की ठीक ठीक जान और कार्यों में उप्युक्त कर के इस पृथिवी पर आग्नेय आहि अद्या और विमान आदि यानों की सिद्ध करें। ११॥

प्रतूर्त्तिमित्यस्पनाभानेदिष्ठ ऋषिः । वाजी देवता । ग्रास्तारपिङ्कः इछन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

फिर भी बही वि०॥

प्रतूर्त्तं वाजिन्ना द्रंव वरिष्ठामनं सम्वतंम् । दिवि ते जनमं परममन्तरिक्षे तव नाभिः प्राथि-व्यामिष् योनिरित् ॥ १२ ॥

पदार्थ: — है (बाजिन्) प्रशंसित श्वान से युक्त विद्वान् जिस (ते) आप का शिल्प विद्या से (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (परमम्) उत्तम

(जन्म) प्रसिद्धि (तय) आप का (अन्ति । आकाश में (नाभिः) बन्धन और (पृथिव्याम्) इस पृथिवी में (योनिः) निमित्त प्रयोजन है सी आप विमानादि यानों के अधिष्ठाता होकर (विशिश्यम्) अल्यन्त उत्तम (सन्वतम्) अच्छे प्रकार विमाग की हुई गति को (प्रतूर्तम्) अतिशीप्र (इत्) ही (अनु) पश्चात (आ) (द्व) अच्छे प्रकार चिछिये॥ १२ ।

भाषाधः — जब मनुष्य लोग विद्या और किया के बीज में परम प्र यत्न के साथ प्रसिद्ध हो और विमान आदि यानों को रच के शीघ्र जाना आना करते हैं तब उन को धन की प्राप्ति सुगम होती है।। १२।।

गुञ्जाथामित्यस्य कुश्चिर्कापः। वाजी दंवता । गागत्री

छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या कहां जोड़ना चाहिये यह वि०॥

#### युञ्जाञ्याधरांसभं युवम्सिमन् यामें रुपण्वसू। अग्नि भरंन्तमस्मयुम् ॥ १३॥

पदार्थ: — है ( युष्यवसू ) सूर्य भीर वायु के समान सुव वर्षाने वा सुख में वसने हारे कारीगर तथा उस के स्वामी लोगो ( युवम् ) तुन दीनों ( अस्मिन् ) इस ( यामे ) यान में ( रासभम् ) जल और अग्नि के वेगगुण- स्व अश्व तथा ( अस्मयुष् ) हम को लेनलने तथा ( भरन्तम् ) धारण कर्ने हारे ( अग्निम् ) प्रसिद्ध वा बिजुलीस्व अग्नि को ( युष्टकाथाम् ) युक्त करो ॥ १३ ॥

भावार्थ:-जो मनुष्य इम विमान आदि यान में यत्र कला जल और अग्नि के प्रयोग करते हैं वे सुख मे तूमरे देशों में जाने की समर्थ है।ते हैं॥ १३॥

योगयागइत्यस्य ज्ञानःश्रेप ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता।

गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

प्रजाजन कैसे पुरुष की राजा माने यह विश्री

योगेयोगे त्वस्तंरं वाजेवाजे हवामहे। सर्वाय इन्द्रंमृतये॥ १४॥ पद्धि: --हे (सखाय:) परस्पर मित्रता रखने हारे छोगो जैसे इस-छोग (कतये) रक्षा आदि के लिथे (योगेयोगे) जिस २ में (बाजेवाजे) हो सङ्ग्राम २ के बीच (तबस्तरम्) अत्यन्त बलवान् (इन्द्रम्) परमैश्वर्य युक्त पुरुष को राजा (इवामहे) मानते हैं वैसे ही तुमलोग भी मानो॥ १४॥

भावार्थ: — जो मनुष्य परस्पर नित्र हो के एक दूसरे की रक्षा के खिये अत्यन्त बलवान् धर्मात्मा पुरुष को राजा सानते हैं वे सब विध्नों से अल्ला हो के सुख की उन्नति कर सकते हैं ॥ १४॥

प्र तूर्वितित्यस्य शुनःशंप ऋषिः। गणपतिर्देवता । आर्षी जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥ फिर राजा वया करके किस की प्राप्त है। यह वि०॥

ष्ठ तुर्वृज्ञेद्यंवक्रामुन्नशंस्ती रुद्रस्य गार्गापत्यं म-योभूरेहि । उर्वुन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यंतिरमं-यानि कृण्वन् पूट्गा सुयुजां सह ॥ १५॥

पदार्थ: — हे राजन् (स्वतिगव्यू ति:) झुल के माथ जिस का मार्ग है ऐसे आप (मयुजा) एक साथ युक्त करने वाली (पूरणा) बल पुष्टि से युक्त अपनी सेना के (मह) साथ (अशस्ती:) निन्दित अनुओं की सेनाओं को (मतूवंन्) मारते हुए (एहि) प्राप्त हूजिये। अनुभों के देशों का (अव-कामन्) उल्लह्धन करते हुए (एहि) आइये (मयोभू:) अस को उत्पन्न करते आप (स्द्रस्य) अनुओं को स्लाने हारे अपने सेनापति के (गाण-पत्यम्) सेना समूह के स्वामीपन को (एहि) प्राप्त हूजिये। और (अन्त्राप्ति) अपने राज्य में सब प्राणियों को भय रहित (क्यवन्) करते हुए (अन्तरिक्षम्) उत्त परिपूर्ण आकाश को (वीहि) विविध प्रकार से प्राप्त हूजिये। १५।।

भावार्थ: -- राजा को अति उचित है कि अपनी सेना को सदीव अ-च्छी शिक्षा हवं उत्साह और पोषण से युक्त रक्खे। जब शतुओं के साथ युद्ध किया चाहे तब अपने राज्य को उपद्रव रहित कर युक्ति स्था कुछ से शतुओं को नारे और राज्यनों की रक्षा करके सर्वत्र सुग्दर की ति पैखावे ॥१४॥
पृथिच्या इत्यस्य शुनःशेष ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी
क्रिष्ठुष् छन्दः। धैवतः स्वरः॥
क्रुच्य किस पदार्थ से बिजुडी का यहण करें यह वि०॥
पृथिच्याः सधस्थां द्विन पुरीष्यमङ्गिर्स्वदाभरागिन पुरीष्यमङ्गिर्स्वदच्छे मोऽगिन पुरीष्य-

मङ्गिर्म्बद्धरिष्यामः ॥ १६ ॥

पदार्थ:— हे विद्वन् जैने इन छोग ( पृथिन्याः ) भूमि और अन्तरिक्ष के ( सथस्थात् ) एक स्थान से ( अङ्गिरस्वत् ) प्राचों के समान (पुरीन्यम् ) अच्छा सुख देने हारे ( अग्निम् ) भूमि मएइल की बिजुली को ( अच्छ ) उत्तम रीति से ( इमः ) प्राप्त होते और जैसे ( अङ्गिरस्वत् ) प्राचों के समान (पुरीन्यम्) उत्तम सुखदायक ( अग्निम् ) अन्तरिक्षस्थ बिजुली को (भरित्यामः ) धारण करें दैसे आप भी ( अङ्गिरस्वत् ) सूर्य के समान (पुरीन्यम् ) उत्तम सुख देने वाले ( अग्निम् ) पृथिशो पर वर्त्तमान अग्नि को ( आभर ) अच्छे प्रकार धारण को जिये ॥ १६ ॥

भावार्थः — इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु० — मनुष्यों को चाहि-ये कि विद्वानों के ममान काम करें मूर्खंवत् नहीं। और सब काल में उत्साह के साथ अग्नि आदि की पदार्थविद्या का ग्रहण करके सुख बढ़ाते रहें॥१६॥ अन्विग्निरित्यस्य पुरोधा ऋषिः। ग्राग्निर्देवता। निज्दार्थी

> त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ विद्वान् छोग किश्वते समान स्या करें यह वि०॥

अन्व्गिन्छष्मामग्रंमख्यदन्वहांनि प्रथमो जातवेदाः । अनु सूर्यस्य पुरुत्रा चं गुरुमीननु द्यावीपृथिवी त्रातंतन्थ ॥ १७॥ पदार्थ: — हे निद्वन् आप जैसे (प्रथम: ) (जातवेदाः ) उत्पक्ष हुए पर् दार्थों में पहिले हो विद्यमान सूर्य लोक और (अग्नः ) (उपसाम्) उपः काल से (अग्रम्) पहिले हो (अहानि ) दिनों को (अन्वरूपात् ) प्रविद्व करता है (मूर्यस्य ) सूर्य के (अग्रम्) पहिले (पुरुत्रा) बहुत (रहमीन् ) किरशों को (अन्याततन्य ) फैलाता तथा (द्यावापृथिवी ) सूर्य और प्रशिक्षी लोक को प्रसिद्ध करता है । वैसे विद्या के उपवहारों की प्रवृत्ति की-जिये ॥ १३ ॥

भावार्थ: - इस मन्त्र में वाचकलु०-जीने कारण रूप विद्युत् और कारण रूप प्रसिद्ध अपन कमने मूर्य, उषःकाल और दिनों के। उत्पन्न करके पृण्यियी आदि पदार्थों के। प्रकाशित करते हैं। वैने हो विद्वानें को चाहिये कि सुन्दर शिक्षा दे अस्मचर्य विद्या धम्मं के अनुष्ठान और अच्छे स्वभाव आदि का मर्धत्र प्रचार करके सब मनुष्यों के। ज्ञान और आतन्द से प्रकाश युक्त करें। १९॥

ग्रागत्येत्यस्य मयोञ्जर्ऋषिः । ग्राग्नर्देवता । निचृद्नुष्टुप् इन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सभापति राजा किस के ममान क्या करें यह वि०॥

आगत्यं वाज्यध्वां नुष्ठ सर्वा मृधो वि धूंनुते। अग्निष्ठ मुधस्थें महति चत्तुंषा नि चिंकीषते॥

#### 11 96 11

पदार्थ:—हे राजन् आप जैसे (वाजी) वेगवान घोड़ा (अध्वानस्) अपने सार्ग को (आगत्य) प्राप्त होके (सर्वा) सब (स्वः) सङ्ग्रामोंको (विधूनुते) कंपाता है और जैसे गृहस्य पुरुष (चतुषा) नेत्रों से (सहति) सुन्दर (सथस्थे) एक स्थान में (अग्निम्) अग्नि का (निचिकीयते) स्थन किया चाहता है | वैसे सब सङ्ग्रामों को कंपाइये और घर २ में विद्या का प्रचार की जिये ॥ १८॥

भावार्थः — इस मंत्र में बाचक तु॰ — गृहस्थों की चाहिये कि घोड़ें। के समान जाना आना कर, शत्रुओं की जीत, आग्नेयादि अखाविद्या की सिद्ध कर, अपने बलाऽबल की विचार भीर राग द्वेष आदि दोषों की शान्ति कर के अधर्मी शत्रुओं को जीतें॥ १८॥

ग्रात्रम्येत्यस्य मयोभूर्ऋषिः। ग्राग्निर्दवता। निचृद्षृप् इन्दः।गान्धारः स्वरः॥

मनुष्य जन्म पा, और बिद्या पढ़ के पश्चात क्या करे यह बिल्।।

# ञ्राक्रम्यं वाजिन्ष्यथिवीम्गिनिर्मिच्छ हुचा त्वम् । भूम्यां वृत्वायं नो ब्रूहि यतः खनेम् तं व्यम् ॥ १९॥

पदार्थः है (वाजिन्) प्रशंकित ज्ञान वाले सभापति विद्वान् राजा (त्वम्) आप (रुषा) प्रीति से श्रृष्ठों को (आक्रम्य) पादाक्रान्त कर (प्राथवीम्) भूमि के राज्य और (अस्मिम्) विद्या की (४००) इच्छा की जिये। और (भूम्याः) प्रथिवी के बीच (नः) हमलोगें को (छत्वाय) स्वीकार करके हमारे लिये (बृहि) भूगर्भ और अस्ति विद्या का उपदेश की जिये (यतः) जिस से (वयम्) इमलोग (तम्) उस विद्या में (खनेम) प्रविष्ठ होवें॥ १८॥

भावार्थ:—मनुष्यां को चाहिये कि भूगमं और अग्नि विद्या से पृथिन वी के पदार्थों को अच्छे प्रकार परीक्षा करके सुवर्ण आदि रत्नों की स्टमाह के साथ प्राप्त होवें। और जो पृथिवी की खोदने वासे नीकर चाकर हैं उन की इस विद्या का उपदेश करें॥ १९॥

चौस्तइत्यत्य मयोभूर्ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥ मनुष्य क्या कर के क्या सिद्ध करें यह विश्र॥

चौस्ते पृष्ठं प्रंथिवीसधस्थंमात्मान्तरिक्षक

#### समुद्रो योनिः । विख्याय चक्षंषा त्वम्भितिष्ठ पृतन्युतः ॥ २०॥

पदार्थ:- हे विद्वन् राजन् जिम (ते) आप का (द्यौः) प्रकाश के तुस्य विनय (पृष्ठम्) इधर का ठण्यहार (पृथिवी) भूमि के समान (मध-स्थम्) साथ स्थिति (अन्तरिक्षम्) आकाश के समान अविनाशी धैर्णयुक्त (आत्मा) अपना स्वक्रप और (समुद्रः) ममुद्र के तुस्य (धानिः) निर्मित्त है से। (त्थम्) आप (चहुपः) विचार के माथ (विख्याय) अपना ऐश्वर्षे प्रसिद्ध करके (पृतन्यतः) अपनी सेना को छड़ाने की इच्छा करते हुए मनुष्य के (अभि) सन्मुख (तिष्ठ) स्थित हू जिये॥ २०॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुष न्यायमार्ग के अनुमार उत्साह, स्थान, और आतमा जिम के दूढ़ हों विचार से सिद्ध करने येश्य जिस के प्रयोजन हों उम की सेना बीर होती है वह निश्चल विजय करने को समर्थ होते॥ २०॥

उत्कामित्यस्य मयोभ्केषिः। द्विणोदा देवता। आर्षी पङ्क्तिइछन्दः। पञ्चमः स्वरः॥ सनुष्यों को योग्य है कि इस संसार में परम पुरुषार्थ से ऐएत्रस्य जल्पन करें यह विश्व।

#### उत्क्रामं महते संभिगायास्मादास्थानांद् द्र-विणोदा वांजिन् । व्यथस्यांम सुमृता प्रथिव्या अग्नि खनंन्त उपस्थे अस्याः ॥ २१ ॥

पदार्थ:-हे (वाजिन्) ऐश्वर्यं को प्राप्त हुए विद्वन् जैने (द्रविणोदाः) धनदाता (अस्याः) इस (एधिव्याः) भूमि के (अस्मात्) इस (आस्यानता ) निवास के स्थान से (उपस्थे) समीप में (अग्निम्) अग्नि विद्या का (खनन्तः) खोज काते हुए (वयम्) हम लोग (महते) बड़े (सी-भग्य) सुन्दर ऐश्वर्यं के लिये (सुनती) अच्छीं बुद्धि में प्रवृत्त (स्याम) होर्वे वैसे आप (सुनकाम) उस्नति को प्राप्त हूजिये ॥ २१॥

भावार्थ:- मनुष्यों को उचित है कि इस संसार में ऐश्वर्य पाने के छिये निरन्तर उद्यत रहें। और आपस में हिल निल के एथियी आदि पदार्थी से रहों को प्राप्त होवें॥ २१॥

उदक्रमीदित्यस्य मयोभूक्षेषिः । द्रविणोदा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य इस संसार में किस के समान है। के किस के।

प्राप्त हैं। यह विश् ॥

उदंक्रमीद्द्रविणोदा वाज्यवीकः सुलोकथसु-कृतं प्रथिव्याम् । ततंः खनेम सुप्रतीकम्गिनथ स्वो रहाणा अधिनाकंमुत्तमम् ॥ २२ ॥

पद्र्थि:- हे भूगर्भ विद्या के जानने हारे विद्वान् (द्रविणोदा:) धन द्राता आप जैते (वाजी) बल वाला (अर्वा) घेड़ा ऊपर की उछलेंता है वैसे (पृथिव्याम्) पृथिकी के बीच (अधि) ( उदक्रमीत्) सब से अधिक उन्नति की प्राप्त हुजिये (सुरुतम्) धर्माचरण से प्राप्त होने येग्य (सुलेक्स्) अञ्चा देखने येग्य (उन्नम्) अतिश्रेष्ठ (नाकम्) सद दुःखें से रहित सुख की (अकः) सिद्ध की जिये (ततः) इम के पश्चात् (स्वः) सुल्युकं (कहाणाः) प्रकट होते हुए हम लोग भी इम पृथिवी पर (सुम्मतिकम्) सुन्दर प्रीति का विषय (अग्निम्) व्यापक बिजुली कृप अग्निका (स्वनेम) खेला करें ॥ २२ ॥

भावार्थ:-इस मंत्र में वाचकलु० - हे मनुष्यो जैसे पृथियी पर घेर हैं भच्छी २ चाल चलते हैं वैसे इम तुम सब मिलकर पुरुषार्थी हैं। पृथिबी आदि की पदार्थ विद्या की प्राप्त हो और दुःखों के दूर करके सबसे उत्तम सुख की प्राप्त हैं। । २२ ।।

आत्वेत्यस्य गृत्समद् ऋषिः। प्रजापतिर्देवता । ऋाषीं त्रिष्टुण्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ मनुष्य त्रयापक वायु की किस साधन से जाने यह वि० ॥

# आ त्वां जिघर्मि मनसा घृतेनं प्रतिश्चियन्तं सुवंनानि विश्वां । पृथुं तिरश्चा वयंसा वृहन्तं व्यचिष्ठमन्नैरभसं दृशांनम् ॥ २३ ॥

पदार्थ:- इ जान चाहने वाले पुरुष जैमें में (जनमा) मन तथा ( घूतेन ) घो के साथ (विश्वा ) सब ( भुवनानि ) ले। करण वस्तुओं में ( प्रतिक्षियन्तम् ) प्रत्यक्ष निवास और निश्चय कारक (तिरश्चा ) तिरले चलने कप (वयसा ) जीवन से ( पृथुम् ) विस्तार युक्त (स्वर्गतम् ) बड़े (अनी: ) जी आदि असों के साथ (रभसम् ) बल वाले (वयि म् ) अतिशय
करके फेंकने वाले (दूशानम् ) देखने योग्य वायु के गुणें को ( आजियमिं )
अच्छे प्रकार प्रकाशित करता हूं वैसे ( नवाम् ) आप को सी इन वायु के
गुणें को धारण कराता हूं | २३ ||

भावार्थः — इस मन्त्र में वाचकलु० — मनुष्य अग्नि के द्वारा मुगन्धि भादि द्वें हों को वायु में पहुंचा उस सुगन्ध से रोगों को दूर कर आधिक अवस्था को प्राप्त होतें।। २३॥

ग्राबिइवतइत्यस्य गृत्सपद ऋषिः। अभिनर्देवता । आर्षीप-

ङ्किर्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर बायु और अभिन कैते गुण बाले हैं इम बि०॥

आ विश्वतंः प्रत्यश्चै जिघम्पेग्क्षमामनेमा तज्जेषेत । मर्थ्यश्रीः स्पृह्यद्वंणी आग्निनामि-मृशे तुन्द्वा जंभुरागाः॥ २४॥

पदार्थ:-हे मनुष्य (न) जैसे (विश्वतः) सब ओर मे (अश्वः) बिजुली और प्राण वायु शरीर में उपापक होके (अभिमृशे) सहने बाले के लिये हि-सकारी हैं जैसे (तन्या) शरीर से (जर्मुराणः) शीध्र हाथ पांव आदि स- क्रों की चलाता हुआ (स्पृह्यद्वर्णः) इच्छा बालों ने स्वीकार किये हुए के समान (भर्यक्रीः) यमुद्यों की शेष्मा के तुल्य वायु के ममान बेग बाला होने में जिस (प्रत्यक्षम्) शरीर के वायु के निरण्तर चलाने बाली विद्युत्त का ( क्रांससा ) राक्षसों की दुष्टता से रहित ( मनसा ) चित्त से ( क्षांकि प्रिने ) प्रकाशित करता हूं जैसे ( तत् ) सस तेज के ( जुवेत ) सेवन कर ।। २४ ॥

भाषार्थ: —इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु० है मनुष्या तुम छाग सहमी प्राप्त कराने हारे अग्नि आदि पदार्थों का जान और उन की कार्यों में संयुक्त कर के पनवान् हें जो ॥ २४॥

परिवाजपितरित्यस्य सोमक ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥ फिर वह कैया होवे यह विश्॥

# परि वाजंपतिः क्विर्गिनर्हव्यान्यक्रमीत । द्धद्रत्नांनि द्वाशुपे ॥ २५ ॥

पदार्थ: — हे विद्वन् जो (वाजयित:) अक आदि की रक्षा करने हारे गु इस्थों के समान (किवः) बहु दशीं दाता गृहस्थ पुरुष (दृश्युषे) दान दे ने योग्य विद्वान् के लिये (रल्लान) सुवर्गा आदि उत्तम पदार्थ (द्रथत्) धा-रणं करते हुए के समान (अद्मि:) प्रकाशमान पुरुष (इट्यानि) देने योग्य वस्तुओं को (परि) सब भीर ने (अक्रमीत) प्राप्त होता है उस की तू

भावार्थ: - इस मन्त्र में वाचक लु॰ - विद्वान् पुरुष की चाहिये कि अग्नि विद्या के सहाय से एथिवी के पदार्थों ने धन की प्राप्त हो अच्छे मार्ग में सर्व कर और धर्मात्माओं की दान दें के विद्या के प्रचार से सब की सुख पहुंचा-वै॥ २५ ॥

परित्वेत्पस्य पायुर्ऋषिः । ग्राग्निर्देवता । अनुष्टुप् क्कन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ कैसा सेनायति करना चाहिये इस वि० ॥

# परिं त्वाग्ने पुरं व्यं विप्रंथसहस्य धीमहि । धृषद्दंर्णं द्विवेदिवे हृन्तारं मङ्गुरावताम् ॥ २६॥

पदार्थ:-है ( सहस्य ) अपने को खल चाहते वाले ( अग्नि ) अग्नि-वस् विद्या से प्रकाशनान विद्वान् पुरुष जैते ( व्यम् ) हम लोग (दिने दिवे) प्रतिदिन ( भङ्ग्रावताम् ) खोटे स्वभाव वालीं के ( पुरम् ) नगर को अ-ग्नि के समान ( हन्तारम् ) मारने ( पृण्ट्वणम् ) दृष्ट सुन्दर वर्ण से युक्त (वि-प्रम् ) विद्वान् ( त्या ) आप को ( परि ) सब प्रकार से ( धीमहि ) धारण करें वैसे सूहम को धारण कर ॥ २६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में बाचकलु०-राजा और प्रजा के पुरुषों को चा-हिये कि न्याय से प्रजा की स्वा कः ने अध्न के समान शत्रुओं की मारने भीर सब काल में सुख देने हारे पुरुष को सेनापति करें॥ २६॥

> त्वमानइत्यस्य गृतस्मद् ऋषिः। ऋगिनर्देवता पङ्क्तिइछन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

किर सभाष्यक्ष कैना होना चाहिये यह वि०॥

त्वमंग्ने द्युभिस्त्वमंशिशुक्षणिस्त्वमइमंन-स्परिं । त्वंवनेंभ्यस्त्वमोपंधिभ्यस्त्वं नृगां नृपते जायसे शुचिः॥ २७॥

पदार्थः — हे ( नृति ) मनुष्यों के पास्त हारे ( काने ) अगि के स-मान प्रकाशमान न्यायाधीश राजन् ( त्वम् ) आप ( द्युप्तिः ) दिनों के स-मान प्रकाशमान न्याय आदि गुणों से सूर्यों के समान ( त्वम् ) आप (आ-शुशुक्तणिः ) शीध २ दुष्टों को मारने हारे ( त्वम् ) आप ( अद्भाः ) वायु बा जलों से ( त्वम् ) आप (अश्मनः) मेच वा पाषाणादि से ( त्वम् ) आप ( वनेम्यः ) जङ्गल वा किरणों से ( त्वम् ) आप ( ओवधिम्यः ) सीमस्ता भादि ओषधियों से (त्थम्) आप (तृणाम्) मनुष्यों के बीच (शुचिः) पवित्र (परि) सब प्रकार (जायमे) प्रसिद्ध होते ही इस कारण आप का आश्रय सेके इस सोग भी ऐसे ही हं वें ॥ २३॥

भावार्ध:—को राजा समामद् वा मजा का पुरुष सब पदार्थी से गुण प्रहण और विद्या तथा किया की कुशलता से उपकार ले सकता धर्म के सामरण से पवित्र तथा शीचकारी होता है वही सब सुखा को प्राप्त हो स-कता है अन्य आलसी पुरुष नहीं ॥ २९॥

> दंबस्पत्वेत्यस्य गृतसमदऋषिः। अग्निदंबता । भृतिक् प्रकृतिङ्खन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्य क्या करके किस पदार्थ से बिजुली का ग्रहण करें यह विश्व।

देवस्यं त्वा सिवतुः प्रस्वेऽश्विनोब्हिभ्यां पूट्यो। हस्तांभ्यास् । पृथिट्याः सधस्थाद्विनं पृशिद्यमङ्गिर्म्वत्वनामि । ज्योतिष्मन्तं त्वा-गने सुप्रतीक्षमजंस्रेगा धानुना दीद्यंतम् । शिवं-प्रजाभ्योऽहिष्ठसन्तंष्ठ्याः सधस्थाद्विनं पुरी-ष्यमङ्गिरस्वत्वनामः ॥ २८॥

पदार्थ:— हे ( करने ) सूगर्भ तथा शिल्य विद्या के जानने हारे विद्वान् जैसे में ( सवितुः ) सब जगत के उत्पन्न करने हारे ( देवस्य ) प्रकाशमान ईश्वर के ( प्रसवे ) उत्पन्न किये संसार में ( अश्विनोः ) आकाश
कीर पृथिवी के ( बाहुस्याम् ) आकर्षण तथा धारण द्वा बाहु भों के समान
कीर ( पूष्णः ) प्राण के ( हस्तास्याम् ) बल और पश्चमम के तुल्य (त्वा)
आप की आगे करके ( पृथित्याः ) सूनि के ( सथस्थात् ) एक स्थान से (पुरोध्यम् ) पूर्ण संव देने हारे ( ज्योतिष्मन्तम् ) बहुत ज्योति वासे ( अज-

कोण ) निरन्तर (भानुना ) दीप्ति चे (दीद्यतम्) अत्यन्त प्रकाशनान (पु-रीज्यम्) धुन्दर रक्षा करने (अन्निम्) वायु में रहने वाली विजुली की (अङ्गिरस्वत्) वायु के समान (खनानि) मिद्ध करता हूं। और जैसे (स्वा) आप का आश्रय लेके इन लोग (पृथित्याः) अन्तरिक्ष के (स्थस्यात्) एक प्रदेश से (अङ्गिरस्वत्) सूत्रारमवायु के ममान वर्त्तमान (अहिंसन्तम्) को कि ताइना न करे ऐसे (पुरीज्यम्) पालनेहारे पदार्थों में उत्तम (प्र-जाभ्यः) प्रजा के लिये (शिवम्) मङ्गल कारक (अग्निम्) अग्नि को (स्नानः) प्रकट करते हैं वैसे सब लोग किया करें।। २६।।

भाषार्थ: — जो राज्य और प्रजा के पुरुष सर्वत्र रहने वाले बिजुली करित को सब पदार्थों से साधन तथा उपसाधनों के द्वारा प्रसिद्ध कर के कार्यों में प्रयुक्त करते हैं वे कल्याण कारक ऐष्ट्रवर्य की प्राप्त होते हैं। कोई भी उत्पक्त हुआ पदार्थ बिजुली की व्याप्ति के बिना खाली नहीं रहन्ता ऐना तुम सब लोग जानी॥ २८॥

अपांपृष्ठमित्यस्य गृतसमद् ऋषिः । अग्निर्देषता । स्वराष्ट्प-

ड्रिइछन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर मनुष्य कैपी बिजुली का ग्रहण करें यह वि०॥

अपां पृष्ठमंसि योनिर्गनेः संमुद्रम्भितः पि-न्वमानम् । वधमानो महाँ २ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वर्षिमणा प्रथस्व ॥ २९ ॥

पदार्थ:— है विद्वन् जिस कारण ( काने: ) सर्वत्र अभिन्यास विजुली कृप अग्नि से ( योति: ) संयोग वियोगों के जानने ( महान् ) पूजनीय (वर्धमान: ) विद्या तथा किया की कुशलता से नित्य बढ़ने वाले आप ( अश्वि: ) हैं । इस लिये ( अभितः ) सब ओर से ( पिन्वमानम् ) जल वर्षाते हुए ( अपान् ) जलों के ( एष्टम् ) आधार भूत ( पुन्करे ) अन्तरिस में वर्णमान ( दिव: ) दीसि के ( मात्रया ) विभाग बढ़े हुए ( समुद्रम् ) अन्तरे

प्रकार जिस में कापर की जल उठते हैं उस समुद्र (च) और वहां के सब पदार्थी की जान के (विरम्णा) बहुत्व के साथ (आप्रयस्य) अच्छे प्रकार सुकों को विस्तार करने वाले हू जिये ॥ २९॥

भावार्थ: — हे मनुष्यो तुम लोग एथिबी आदि स्यूल पदार्थी में बि-जुली जिस प्रकार वर्तमान है वैसे ही जलों में भी है ऐसा समक्ष और उस से उपकार लेके बड़े २ विस्तार युक्त सुखों की सिद्ध करो ॥ २९॥

शर्मचेत्यस्य गृत्समद् ऋषिः। दम्पती देवते । विराडार्ष्यनु-

ष्ट्रप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

का स्त्री और पुरुष घर में रह के क्या २ सिद्ध करें यह विश्र

#### शमै च स्थो वमै च स्थाऽछिद्रे बहुले उमे । व्यचस्वती संवंसाथां मृतम्प्रिं पुर्शिष्यम् ॥३०॥

पदार्थ: — हे स्त्री पुरुषो तुन दोनों ( शर्म ) ग्रहाश्रम ( च ) अर्थे द्वा स्त्री को प्राप्त हुए ( स्यः ) हो ( वर्म ) स्त्र ओर उस के संह्रायकारी पदार्थों को ( उमे ) दो ( बहुछे ) बहुत अर्थों को ग्रहण करने हारे ( व्य- च्यां को व्याप्ति न युक्त ( अध्वद्धे ) निर्दोष बिजुली और अन्तरिक्ष के समान जिस घर में धर्म अर्थ के कार्य ( स्थः ) हैं। उस घर में ( भृतम् ) योषण करने हारे ( पुरीष्यम् ) रक्षा करने में उक्षम ( अग्निम् ) अर्थन को ग्रहण करके ( संवस्थाम् ) अच्छे प्रकार आच्छादन करके वसी ॥ ३०॥

भावार्थ: - गृहस्य लेगों के। चाहिये कि ब्रह्मचर्य के साथ सरकार भी-र उपकार पूर्वक किया की कुशलता और विद्या का ग्रहण कर बहुत द्वारों से गुक्त सब ऋतुओं में सुखदायक सब ओर की रक्षा और अग्नि आदि सा-धनो से युक्त घरों की बना के उन में सुख पूर्वक निवास करें। ३०।।

संवसाथाामित्यस्य गृत्सगद्ऋषिः। जावापती देवते। निचृ

दनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर भी वही उक्त वि० ॥

#### सं वंसाथाक्षस्वर्विदां समीचीउर्सात्मनां । अग्निमन्तर्भारेष्यन्ती ज्योतिष्मनतुमजस्मित्। ॥३१॥

पद्धिः-हे स्त्री पुरुषा तुम दोनों जे। (समीची) अच्छेप्र कार पदार्थी की। जानने (भिष्यन्ति) और सब का पालन करने हारे (स्वर्षिद्रा) सुः ख की। माप्त होते हुए (ज्ये।तिषान्तम्) अच्छे प्रकार से युक्त (अन्तः) मृः ख पदार्थी के बीच वर्त्तमान (अग्निम्) बिजुली की। (इत्) ही (त्मना) (उरसा) अपने अन्तः करण से (अजस्त्रम्) निरन्तर (संवसासाम्) अ-च्छीतरह आच्छादन करी ते। लक्ष्मी की। भी। भकी। । ३१।।

भावार्थः - जे। गृहस्य मभुष्य बिजुली की उत्पन्न करके ग्रहण कर सकः ते हैं वे व्यवहार में द्विद्र कभी नहीं है।ते ॥ ३१ ॥

पुरीष्यइत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। अग्निदंवता । जिष्टुप्छ-

न्दः। धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् पुरुष विजुली की कैने उत्तव करे यह विव ॥

पुरिष्योऽसि विश्वभंग अथर्वा त्वा प्रथमो निरंमन्थदग्ने । त्वामंग्ने पुष्कंगद्यथंर्वा निरं-मन्थत । मूर्झो विश्वंस्य वाघतंः ॥ ३२ ॥

पदार्थः- हे (अग्ने) क्रिया की कुशलता की सिंह करने हारे विद्वन् जो (बायतः) शास्त्रवित् आप (पुरीव्यः) एशुओं की सुख देने हारे (अ-रि) हैं उस (त्वा) आप की (अथर्वा) रक्षक (प्रयमः) उत्तम (विश्व-भराः) सब का पेषक विद्वान् (विश्वस्य) सब संसार के (प्रूप्तः) जापर वर्त्तमान (पुष्करात्) अन्तरिक्षसे (अथि) समीप अश्वि को (निरमन्थत्) नित्य मन्थन करके ग्रहण करता है वह ऐश्वर्यं को प्राप्त होता है ॥ ३२॥ भावार्थः-जो इस जगत् में विद्वान् पुरुष होवें वे अपने अब्छे विश्वा- र और पुरुषार्थ से अग्नि भादि की पदार्थ विद्या को प्रसिद्ध करके सब मनु-च्यों को शिक्षा करें॥ ३२॥

तमुत्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। ग्राग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥ फिर भी उक्त वि०॥

# तमुं त्वा द्रध्यङ्कृषिः पुत्र ईंध् अथंवर्णः । वृत्रहणं पुरन्द्रम्॥ ३३॥

पदार्थ: — हे राजन् जैमे ( अर्थवणः ) रक्षक विद्वान् का ( पुत्रः ) पवित्र शिष्य ( दण्यक् ) सुख दायक अग्नि आदि पदार्थों को प्राप्त हुआ ( ऋषिः ) (विदार्थ जान्ने हारा ( ट ) तर्क वितर्क के साथ सपूर्ण विद्याओं का वेक्ता जिन ( वृत्रहणम् ) सूर्य के समान् शत्रुओं को मारने और ( पुरन्दरम् ) शत्रुओं के नगरों की नष्ट करने वाले आप की ( इंघे ) तेजस्वी करता है वैमे उन आ-प की सब विद्वान् छोग विद्या और विनय से उन्नति युक्त करें ॥ ३३॥

भावार्धः - को पुरुष वा स्त्री साङ्गोपाङ्ग सार्थक वेदों को पढ़ के विद्वान् वा विदुषी होर्वे वे राजपुत्र और राजकन्याओं को विद्वान् भीर विदुषी कर के उनसे धर्मानुकूल राज्य तथा प्रका का ठपत्रहार करवावें॥ ३३॥

तमुत्वेत्यस्य भारहाज ऋषिः। अग्निदंवता ।

निचृद्गायत्री छन्दः।षड्जः स्वरः॥ फिर्भी उक्त विश्॥

# तमुं त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तंमम्। धनुञ्ज्यक्षरणेरणे ॥ ३४ ॥

पदार्थ: — हे बीर पुरुष जो आप (पाष्य:) अस अल आदि पदार्थी की सिद्धि में कुशल ( वृषा ) पराक्रमी शूरता आदि युक्त विद्वान् हैं (तम् ) पूर्वी क पदार्थ विद्या जानने ( धनंजयम् ) शत्रुओं से धन जीतने ( उ ) और

(दस्युइन्तमञ् ) अतिशय करके हाकुओं की मारनेवाछे (स्वा ) आर्य की बीरें की देशा राजधाने की शिक्षा छे (समीचे ) प्रदीस करें ॥ ३४ ॥

भाषार्थ:—राजा तथा राजपुरुषें को चाहिये कि आग्न घर्नास्मा विदानों से विनय और युद्धविद्या को प्राप्त हो प्रजा की रक्षा के लिये चेरिं।
को मार शब्दीं को जीत कर परन ऐश्वर्य की उन्नति करें ॥ ३४ ॥

सीदेत्यस्य देवश्रवोदेववातावृद्या । होतादेवता ।

निचृत्तिष्टुप्छन्दः। धैत्रतः स्वरः॥ फिर विद्वान् का क्या काम है यह वि०॥

सीदं होतः स्व उं छोके चिकित्वान्त्मादयां यज्ञथ सुंकृतस्य योनौं । देवावीर्देवान्हविषां यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयांधाः॥ ३५॥

पदार्थ: -- है (अभने) तेजस्वी विद्वन् (होतः) दान देने वाले (चिकि स्थान्) विज्ञान् से एक आप (लोके) देखने यंश्व (स्वे) सुख में (सीद) स्थित हूजिये (सुकतस्य) अच्छे करने योग्यकर्म करने हारे धम्मात्मा के (योनी) कारण में (यज्ञम्) धम्युक्त राज्य और प्रजा के व्यवहार की (साद्य) प्राप्त कराइये (हविषा) देने खेने येग्य न्याय से (देवान्) विद्वानों वा दिव्य गुवों को (यज्ञासि) सत्कार सेवा संयोग की जिये (क्जमाने) राजा आदि मनुष्यों में (वयः) बड़ी सनर को (धाः) धारण की जिये ॥ ३५॥

भावार्ध:—विद्वान् छोगों को चाहिये कि इस जगत में दो कमें निर-गतर करें। प्रथम ब्रह्मचर्य भीर जितेन्द्रियता आदि की शिक्षा से शरीर की रोग रहित बलसे युक्त भीर पूर्ण अवस्थावाला करें। दूमरे विद्या और क्रिया की कुशलता के प्रहण से आत्मा का बल अच्छे प्रकार सार्थे कि जिस से सब मनुष्य शरीर भीर भारमा से बल से युक्त हुए सब काल में मानन्द मोगें ॥३५॥

निहोतेत्यस्य गृतस्तद् ऋषिः । स्रश्निदेवता । त्रिष्टुष् छन्दः । धैनतः स्वरः ॥ फिर सनुष्यों का कर्त्तंत्र्य अग०॥

# नि होतां होतृषदंने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ२॥ अंसदत्सुदक्षः । अंदब्धव्रतप्रमितविंसिष्ठः सहस्र म्मरः शुचिजिह्वां अगिनः ॥ ३६ ॥

पदार्थ:— को जन मनुष्यजनम की पा के होत्वदने ) दानशील वि द्वानों के स्थान में (दीदिवान् ) धर्मयुक्त व्यवहार का चाहने (त्वेष: ) गुभगुकों से प्रकाशमान (विदान: ) ज्ञान बढ़ाने की इच्छा रखने (श्विचित्वः: ) सत्यसाषण से पवित्र वाणीयुक्त (सुदक्ष: ) अच्छे बल वाला (अ द्वधन्नतप्रमति: ) रक्षा करने योग्य धर्माचरणहायी व्रतों से उत्तम बुद्धियुक्त (विसिष्ठः ) अत्यन्त वसने (सहस्त्रम्मरः ) असंख्य शुभगुकों को धारण करने वाला (होता ) शुभगुकों का ग्राहक पुरुष निरन्तर (न्यमद्त) स्थित होते तो वह संपूर्ण सुल को प्राप्त हो जावे।। ३६॥

भावाधी: - जब माता विना अपने पुत्र तथा कन्याओं की अच्छी जिन्सा देने पीछे विद्वान् और विदुषी के समीप बहुन काल तक स्थितिपूर्वक पढ़वार्वे तब वे कन्या और पुत्र मृद्ये के समान अपने कुछ और देश के प्रकाशक हो। । ३६॥

संसीद्स्वत्यंतस्य प्रस्कण्यै ऋषिः। आग्निर्द्वता। निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

इस पठनपाठन विषय में अध्यापक कीता हीवे यह विग्री

सक्ष सींदस्व महाँ २॥ अंसि शाचंस्व देववी-तमः । विधूममंग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रंशस्त दर्शतम् ॥ ३७॥

पदार्थ: — हे (प्रशस्त ) प्रशंसा के यीग्य ( नियेष्य ) दुष्टी की एथक् करने वासे ( अग्ने ) तेजस्वी विद्वान् ( देववीतमः ) विद्वानीं की अत्यस्त इष्ट आप ( विश्वनम् ) निर्मल ( दर्शतम् ) देखने योग्य ( अरुवम् ) दुन्दर रूप को ( सन्न ) निष्ठ कीजिये तथा ( शोचस्व ) पथित्र हूजिये । जिस का-रण आप ( महान् ) कड़े २ गुणों में युक्त विद्वान् ( असि ) हैं । इसिंखिये पढ़ाने की गद्दी पर ( संसीदस्व ) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थ:— जो मनुष्य विद्वानों का अत्यन्त प्रिय अच्छे क्रयगुण और छावग्य से युक्त पवित्र बड़ा धर्मात्मा आप्त विद्वान् होवे वही ग्रास्त्रों के प-ढ़ाने को समर्थ होता है ॥ ३९ ॥

अपंदिवीरित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । ग्रापो देवताः । न्यङ्कु-सारिणीयृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥ 💢 भागे जल भादि पदार्थों के शोधने मे प्रजा में क्या होता है इस वि०॥

अपो देवीरुपं सृज मधुमतीर्यक्ष्मायं प्रजा-भ्यंः । तासांमास्थानादुजिहतामोषंघयः सुपि-

पुलाः ॥ ३८ ॥

पदार्थ: -हे श्रेष्ठ वैद्य पुरुष आप ( मधुनतीः ) प्रशंसित सधुर आदि गुण्युक्त ( देवीः ) पवित्र ( अवः ) कलें को ( उपस्त ) उत्पक्त की जिये जिस से ( तासाम ) उन जलें को ( अस्थानात् ) अग्रय मे ( सुपिष्वलाः ) सुन्दर फलें बाली ( ओषधयः ) सोमलना आदि ओषधियों को ( प्रजाम्यः ) रक्षा करने योग्य प्राणियों के (अध्काय) यक्षमा आदि रोगें की निवृत्ति के लिये ( उज्जिहताम् ) प्राप्त हूजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थ: — राजा को चाहिये कि दो प्रकार के वैद्य ग्वस्ते। एक तो सु-गन्ध आदि पदार्थों के होन से वायु वर्षा जल और ओषधियों को शुद्ध करें। दूसरे श्रेष्ठ विद्वान् वैद्य होकर निदान आदि के द्वारा सब प्राणियों की रेश रहित स्वस्ते। इस कर्म के विना संमार में सार्वजनिक सुख नहीं है। सकता ॥३६॥

> सन्तइत्यस्य सिन्धृद्धीप ऋषिः। वागुर्देवता। विराट् त्रिष्टुष् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

् बब बीयुडव डा कर्तव्य कर्न अगडे नन्त्र में कहा है।।
सन्तें वायुमीत्रिश्वां दधात्त्तानाया हृंदयं
यद्विकंस्तम्। यां देवानां चरंसि प्राणथेन क-समैं देव वर्षडस्तु तुभ्यंम्॥ ३९॥

पदार्थ:—हे पत्नि राणी (उत्तानायाः) बहे शुभलक्षणों के विस्तार से युक्त (ते) आप का (यत्) जो (विकस्तम्) अनेक प्रकार से शिक्षा को प्राप्त हुआ (हृत्यम्) अन्तः करण है। उस की यक्त से शुद्ध हुमा (मातरिश्वा) आकाश में चलने वाला (वायुः) पवन (संद्धातु) अच्छे प्रकार पृष्ट करे हे (देन) अच्छे सुख देने हारे पति स्वामी (यः) जे। विद्वान् आप (प्राणयेन) सुख के हेतु प्राण वायु से (देवानाम्) धर्मात्मा विद्वानों का जिस अनेक प्रकार से शिक्षित हृद्य की (चरित) प्राप्त है।ते ही उस (कस्मी) सुखक्त (तुम्यम्) आप के लिये मुक्त से (वषद्) किया की कुश्रस्ता (अस्तु) प्राप्त है।वे ।। ३१।।

भावार्थ:-पूर्ण जवान पुरुष जिम ब्रह्मवारिणी कुमारी कन्या के साथ विवाह करें उन के साथ विस्तु कभी न करें। को कन्या पूर्ण युवती स्त्री जिस कुमार ब्रह्मवारी के माथ विवाह करें उस का अनिष्ट कसी मन से भी न विवार इस प्रकार देनों परस्पर प्रसन्न हुए प्रीति के साथ घर कार्या संसालें॥ ३९॥

सुजातइत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। श्राग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अ।

मुजातो ज्योतिषा मह शर्म वरूथमासंदृत्स्तुः। बासो अग्ने वि्रवरूप्थ संव्ययस्व विभावसो ॥ ४०॥ पदार्थ: — हे (विभावनी) प्रकाश सहित थन ने युक्त ( अमी) अधि के तुल्य तेजस्वी ( ज्ये।तिषा ) विद्या प्रकाश के नाथ ( श्रुतात: ) अच्छे प्र-किंद्ध आप ( स्व: ) शुखदायक ( वक्तयम् ) श्रेष्ठ ( श्रुम्म ) घा की ( भान-दस्त् ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ( विश्वक्तपम् ) अनेक चित्र विचित्रक्रपी ( वास: ) वक्त की ( संवयस्व ) घारण की जिये ॥ ४०॥

भावार्थ: - इस मन्त्र में वाचक लुश्विवाहित स्त्री पुरुषों की चाहिये कि जैसे सूर्यों अपने प्रकाश में सब जगत् की प्रकाशित करता है वैसे ही अपने सुन्दर बस्त और आभूषणों से शाभायमान है के घर आदि वस्तुओं की नदा पवित्र स्वर्ते ॥ ४०॥

उदुतिष्ठेत्यस्य विश्वमना ऋषिः। ग्राग्निदेवता । भुरिगनुष्ठुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी विद्वानीं का कत्य अगले मन्त्र में कहा है।।

उदं तिष्ठ स्वध्वरावां नो देव्या धिया । हशै च भासा रहता संशुक्किनराग्ने याहि सुशस्ति-भिः ॥ ४१ ॥

पदार्थ:—ह (स्वष्वर) अच्छे माननीय व्यवहार करने वाले सक्तन विद्वन् ग्रहस्य आप निरन्तर (चित्रष्ठ) पुरुषार्थ से उन्नित की प्राप्त हो के अन्य मनुष्यों को प्राप्त सदा किया की जिये (देव्या) शुद्ध विद्या और शिक्षा से युक्त (धिया) खुद्धि वा किया से (मः) हम लोगों की (अव) नहां की जिये हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान (सशुक्तिनः) अच्छे पवित्र पदार्थों के विभाग करने हारे आप (उ) तर्क के साथ (दूशे) देखने की (सहता) बड़े (भाषा) प्रकाशक्तप सूर्य के तुल्य (सशस्तिनः) सुन्दर प्रशंसित गुणों के साथ सब विद्याओं को (याहि) प्राप्त हू जिये। और हमारे लिये भी सब विद्याओं को प्राप्त की जिये ॥ ४१॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाषकलु०-विद्वान् लोगें की चाहिये कि शुहु विद्या और बुद्धि के दान से सब मनुष्यों की निरन्तर रक्षा करें। वयों कि अच्छी शिक्षा के विना मनुष्यों के सुख के लिये और कोई भी आग्रय नहीं है। इसलिये सब की उचित है कि आलस्य और कपट आदि कुकमों की खेड़ के विद्या के प्रचार के लिये सदा प्रयत्न किया करें।। ४१।।

ऊर्ध्वइत्यस्य कण्वऋषिः। अग्निर्देवता । उपरिष्ठाद्वृह्ती

छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है।

# क्रध्वं क षुण क्रतये तिष्ठां देवो न संविता। क्रध्वो वाजंस्य सनिता यद्यञ्जिभिर्वाघद्गिर्विद्व-यांमहे ॥ ४२ ॥

पदार्थ: —हे अध्यापक विद्वान् आप ( ऊर्ध्वः ) ऊपर आकाश में रहने वाले ( देवः ) मकाशक ( सविता ) सूर्ध्य के ( न ) ममान ( नः ) हमारी ( ऊत्ये ) रहा आदि के लिये ( स्वित्य ) अच्छे प्रकार स्थित हू जिये ( यत् ) जी आप ( अजिभिः ) प्रकट करने हारे किर्यों के मटूश ( बाधिद्धः ) युहु विद्या में कुशल बुद्धिमानें के माथ ( वाजस्य ) विज्ञान के ( सनिता ) सेवन हारे हू जिये ( र ) उसी को हम लोग ( विहूधामहे ) विशेष करके बुलाते हैं ॥ ४२ ॥

भावार्धः - इस मन्त्र में बाचकलु० - अध्यापक और उपदेशक विद्वान की चाहिये कि जैसे सूर्य भूमि और मन्द्रमा आदि लोकों से जपर स्थित होके अ-पनी किरखें। दे सब जगत् की रक्षा के लिये प्रकाश करता है। वैसे उत्तम गुखें। से विद्या और ज्याय का प्रकाश करके सब प्रजाओं की सदा सुशे। भित करें। 1221

सजात इत्यस्य त्रित ऋषिः। ग्राग्निर्देवता।

विराट्तिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब पिता पुत्र का व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है।।

#### सजातो गर्भो असि रोदंस्योरग्ने चार्ह्विसृंत ओषंधीषु । चित्रः शिशुः परि तमां अस्यक्तून प्र-मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥ ४३ ॥

पदार्थ:—हं (अश्ने ) विद्वन् जो आप जैमे (रेाद्स्योः) आकाश और पृथित्री में (जातः) प्रसिद्ध (चारुः) सुन्दर (ओषधीषु) सोसलतादि ओ-षियों में (विभूतः) विशेष करके धारण वा पोषण किया (चित्रः) आस्त्रियं (गर्भः) स्त्रीकार करने येश्य सूर्य् (मःत्रुभ्यः) मान्य करने-सारी माता अर्थात् किरणों से (समासि) रात्रियों तथा (अक्तून्) अधिरों को (पर्याधकनिकद्त्) सब ओर से अधिक करके चलता हुआ (गाः) चलाता है वैसे ही (शिशुः) बालक (गाः) विद्या को प्राप्त होवें॥ ४३॥

भावार्थ: — जैमे ब्रह्म चर्ष आदि अच्छे नियमों से उत्पन्न किया पुत्र विद्या पढ़ के माता पिता की मुख देता है बैमे ही माता पिता की चाहिये कि प्रजा को सुख देवें॥ ४३॥

> स्थिरोभवेत्यस्य त्रित ऋषिः ग्राग्निर्देवदा विराडनुष्टुण् छन्दः। गान्धारः स्वगः॥

अब माता विता भवने सन्तानों को किस प्रकार 🗶

#### स्थिरो भंव बीड्वुङ्ग आशुभैव वाज्यवन् । पृथुभैव सुषद्रस्त्वमुग्नेः पुरीष्वाहणः ॥ ४४ ॥

पदार्थ: — हे (भर्वन्) विज्ञान युक्त पुत्र तू विद्याग्रहण के लिये (स्थितः) दूढ़ ( भव ) हो ( वाजी ) नीति को प्राप्त होके ( वीडुक्नः ) दूढ़ भित बल-वान् अवयवों से युक्त ( आणुः ) शीघ्र कर्म करने वाला ( भव ) हो तू (अग्नेः ) अग्नी संबन्धी ( सुषद्ः ) सुन्दर व्यत्रहारों में स्थित और ( पुरीषवा-हणः ) पालन आदि शुभकर्मों को प्राप्त कराने वाला ( पृथुः ) सुल का विस्तार करने हारा ( भव ) हो ।। ४४ ।।

भाषार्थ: — हे अच्छे सन्तानों तुम को चाहिये कि ब्रह्मचर्य सेवन से शरीर का बल भीर विद्या तथा अच्छो शिक्षा से आरना का बल पूर्ण दूह कर स्थिरता से न्हा को और आग्नेय आदि अख किद्या से शत्रुओं का विमाश करी हम प्रकार माता विता अपने सन्तानों को शिक्षा करें। ४४ ॥

शिवइत्पस्य चित्र ऋषिः। अभिनर्देवता। विराद्पथ्या-

ष्हती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर उन को प्रका में कैसे वर्तना चाहिये इन विः ॥

#### क्षिवो भंव प्रजाभ्यो मानुंषिभ्यस्त्वमंङ्गिरः। मा द्यावांष्ट्रियिवी अभि शोचीर्मान्तिरक्षं मा व-नुस्पतीन् ॥ ४५॥

पदार्थ: — हे (अङ्गिर:) प्राचीं के समान पिय सुमन्तान तू (मानुबीभ्य:) मनुष्य आदि (प्रजाभ्य:) प्रमिद्ध प्रजाओं के लिए (शिष्ठ:) क स्थाणकारी मङ्गलमय (अव) हो (द्यावाएथित्री) बिजुली और भूमि के विषय में (मा) मत (अभिशोषीः) अतिशोष मत कर (अलिशिसम्) अन् वकाश के विषय में (मा) मत शोष कर और (यनस्पतीन्) बट आदि वनस्पतियों का शोष मत कर ॥ ४५॥

भावाधी: - सुमन्तानों को चाहिये कि प्रता के प्रति मङ्गलाचारी हो के पृथिबी आदि पदार्थों के विषय में शोक रहित होतें। किन्तु इन सब पदार्थों की रक्षा विधान कर उपकार के लिये उत्साह के साथ प्रयक्ष करें ॥४५॥

प्रैतुवाजीत्यस्य जित ऋषिः। अग्निदेवताः । ब्राह्मी-

वृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी उक्त वि०॥

प्रेतुं वाजी कनिकद्वन्नानंदद्रासंमः पत्वां । मरंक्रिप्तिं पुर्शिष्यं मा पाद्यायुंषः पुरा । स्थाप्तिं

#### वृषेणं भरंत्रुपां गर्भेष समुद्रियंम् । अग्न आ-यांहि वीतये ॥ ४६॥

पदार्थ:—है (अग्ने) विद्वन् उत्तम सन्तान तू (किनिकद्त्) चलते भीर (मानदत्) शीघ्र शब्द करते हुए (रासमः) देने योग्य (पत्वा) मन्छने वाले वा (वाजी) घोड़ा के समान (आयुषः) नियत वर्षों की अवस्था छे (पुरा) पहिले (मा) न (प्रेतु) मरे (पुरीष्यम्) रक्षा के हेतु पदार्थों में उत्तम (अग्नम्) बिजुली (मान्) घारण करता हुमा (माप्पादि) इधर उधर मत माग जैसे (यूषा) अविबल्जान् (भपाम्) जलों के (ममुद्रियम्) समुद्र में हुए (गर्भम्) स्वीकार करने योग्य (व्यवम्) वर्षोकरने हारे (अग्निम्) सूर्यं को (भरन्) धारणकरता हुमा (स्रीत्ये) सुखों की व्यासि के लिये (आयाहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

भाषार्थ: - राजा प्रादि मनुष्यों को योग्य है कि अपने सन्तानों की विषयों की लोलुपता में खुड़ा के ब्रह्म वर्ष्य के साथ पूर्ण अवस्था को धारण कर अग्नि आदि पदार्थों के विद्यान से धम्मे युक्त व्यवहार की उस्ति करांचें ॥ ४६॥

ऋति। मित्यस्य जितक्काषः । आग्निर्देवता । विराङ्ब्राह्मी जिन् प्रृप् छन्दः । धेवतः स्वरः ॥ मनुष्यों की क्या २ आचरण करना और क्या २ छोड़ना काहिये यह विश्रा

ऋतथ मृत्यमृतथ मृत्यम्गिन पुरिष्यमङ्गिः रुखद्भरामः । ओषंधयः प्रतिमोदध्वम्गिनमृतथः शिवमायन्तंमभ्यत्रं युष्माः । व्यस्यन् विश्वा अनिरात्रमीवानिषीदंद्वो अपं दुर्मतिंजंहि ॥४७॥ पद्धि: — हे तुसन्ताको जैसे इन लोग ( ऋनम् ) यथाये ( सत्यम् ) नाश रहित ( ऋतम् ) कठयित्र थारी ( सत्यम् ) सत्युक्षों में श्रेष्ठ तथा सत्य मानना बोलना और करना ( पुरी द्यम् ) रक्षा के साधनों में उत्तन ( अभिम् ) बिजुली को ( अङ्गिरस्वत् ) वायु के तुल्य ( भरामः ) धारण करते हैं ( एतम् ) इन पूर्वोक्ष ( आयन्तम् ) माप्त हुए ( शिवम् ) मङ्गलकारी ( अग्विम् ) बिजुली को माप्त हो के तुन लोग भी ( अभिमोद्ध्वम् ) आन्नित्त वही जो ( ओषध्यः ) जौ आदि ओषधि ( युद्धमाः ) तुम्हारे ( मनित्त वही जो ( ओषध्यः ) जौ आदि ओषधि ( युद्धमाः ) तुम्हारे ( मनित्त वही जो ( विश्वाः ) सब ( अनिराः ) जो निरन्तर देने योग्य न हों ( अभीवाः ) ऐसी रोगों की पीड़ा ( व्यस्यन् ) अनेक मकार से अलग करते और ( अत्र ) इस आयुर्वेद विद्या में ( निषीदन् ) स्थित हो के ( नः ) हम छोगों की ( दुर्मित्म् ) दृष्ट बुद्धि को ( अपकाहि ) सब मकार दूर की जिये इस प्रकार इस वैद्य की प्रार्थना करों ॥ ४०॥

भावार्थ:—हे मनुष्यो तुप लोगों को उचित है कि यथार्थ अविनाशी पर कारण ब्रह्म दूसरा करनण अधार्थ अविनाशी अठयक्त कीव सत्य भाग णादि तथा प्रकृति से उत्पन्न हुए अन्त और ओषधि आदि पदार्थों के धारण से शरीर के जबर आदि रोगों और आत्मा के अविद्या आदि दोषे। को खुड़ा के मद्य आदि द्रवेंगें के रयाग से अच्छी बुद्धि कर और सुख की प्राप्त हो के नित्य आनन्द में रहा। और कभी इस से विपरीत आचरण कर सुख की खेड़ के दु:खमागर में मत गिरी।। ४९।।

आंषधगइत्यस्य ज्ञित ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुष् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

क्षियों की क्या २ आचरण करना चाहिये यह विशा

त्रोषंधयः प्रति गृभ्गाति पुष्पंवतीः सुपिष्पुलाः। अयं वो गर्भ ऋत्वियंः प्रत्नक्षसधस्थमासंदत्॥४८॥ पदार्थः—हे विको तुन कोन को ( कोषवकः ) कोमखता कदि कोविष हैं जिन से ( अयम् ) यह ( ऋत्वियः ) ठीक आतुकाल की प्राप्त हुना (गर्भः) गर्भ ( वः ) तुद्धारे ( प्रक्षम् ) प्राचीन ( सधस्यम् ) नियत स्थान गर्भाशय की प्राप्त होते उन ( पुरुपवतीः ) श्रेष्ठ पुरुपों वाली ( सुविष्यलाः ) सुन्दर फ्लों से युक्त जीवधियों को ( प्रतिग्रन्थीत ) निश्चय करके ग्रहण करो ॥४८॥

भावार्थ: — माता विता को चाहिये कि अवनी कन्याओं की ठ्याकर-चा आदि शास्त्र पढ़ा के वैद्यकशास्त्र वढ़ावें | जिम से ये कन्या छोग रोगों का नाश और गर्भ का स्थापन करने वाकी ओषधियों को जान और अ-क्छे सन्तानों को उत्पन्न करके निरन्तर आनन्द भोगें || ४८ ||

विपाजसेत्यस्योत्कील ऋषिः। ग्राग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः।

धैवतः स्वरः॥ धरम्यदास्य

विवाह के समय खी और पुरुष क्या २ मतिशा करें यह विशी

विपाजंसा पृथुना शोशुंचानो वाधंस्व हिषो रत्तमो अमीवाः । सुशर्मेगो वृहतः शमैगि स्यामुग्नेरह७ सुहवस्य प्रगीतो ॥ ४९ ॥

पदार्थ:— हे पते जो आप ( पृथुना ) विस्तृत ( वि ) विविध प्रकार के ( पाजमा ) बल के माथ ( शोग्राचानः ) शोग्र शुदु नदा कर्ते और ( झ-मीबाः ) रोगों के समान प्राणियों की पीड़ा देने हारों ( रक्षसः ) दुष्ट द्वि-खः) शत्रु कर व्यक्षिचारिणी खियों को (बाधस्त्र) ताड़ना देवें तो मैं ( ख-हतः ) बड़े ( सुशर्मणः ) अच्छे शोभायमान ( सुहवस्य ) सुन्दर लेना देना, व्यवहार जिम में हो ऐसे ( अग्नेः ) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान आपके ( श्र-मेंणि ) सुखकारक घर में और ( प्रणीती ) सत्तम धर्मयुक्त नीति में आप की खी ( स्याम् ) शोजा। ४९॥

भावार्थ:—विवाह समय में खी पुरुष की चाहिये कि उपिनार छी। इने की प्रतिश्वा कर उपिनारिणी खी और समय पुरुषों का संग सर्वधा दे।इ आपस में भी अति विषयासक्ति की दे।इ और ऋतुगानी है।के पर- स्पर प्रीति के साथ पराक्रम वाले सन्तानों की उत्पक्त करें। क्यें कि क्षी वा पुरुष के लिये अपिय आयु का नाशक निन्दा की येग्य कर्म ठयिनचार के समान दूसरा को है भी नहीं है इसलिये इस ठयिनचार कर्म की सब प्रकार छे। इ और धर्माचरण करने वाला है। की पूर्ण अवस्था के शुख की। भीगें॥ ४९॥

> आपोहिष्ठत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब विवाह किये स्त्री और पुरुष आपन में कैने वर्त यह विवा

#### आपो हिष्ठा मंयोभुव्स्तानं ऊर्जे दंधातन । महे रगाांय चक्षंसे ॥ ५०॥

पदार्थ:-हे (आप:) जलों के समान शुनगुशों में ठपाप्त होने बाखी श्रेष्ठ खियो जो तुम लोग (मयोभुव:) सुल मोगने वाली (स्थ) हो (ता:) वे तुम (जर्जे) बलयुक्त पराक्रम और (महे) बड़े २ (चक्ष से) कहने योग्य (रणाय) संग्राम के लिये (न:) हम लोगों को (हि) निश्चप करके (द्धान्तन) धारण करो।। ५०।।

भावार्थः - इस मन्त्र में वाचक लु० - जैसे स्त्री अपने पतियों को रक्तें वैसे पति भी अपनी २ स्त्रियों को मदा सुख देवें। ये देानें। युद्ध कर्म में भी एषक् २ न वर्से। अर्थात् इकट्टे ही सदा वर्ताव रक्तें।। ५०।।

> योवहत्यस्य सिन्धुर्द्वाप करिषः। आपो देवताः। गायत्रीछन्दः। षड्जः स्वरः॥ किर भी बही उक्त विषय अगले मंत्र में कहा है॥

यो वंः शिवतंम्रो रसस्तस्यं भाजयतेह नंः । उशतीरिव मातरंः ॥ ५१ ॥ पदार्थः - हे खियो (वः) तुम्हारा और (नः) हमारा (इह् ) इस गृहाश्रम में जो (शिवतमः) अत्यन्त सुखकारी (रसः) कर्तव्य आनन्द है (तस्य) उस का (मातरः) (उश्तीरिख) जैसे कामयमान माता अपने पुत्रों की सेवन करती हैं वैसे (माजयत) सेवन करो ॥ ५१॥

भावार्थ:-स्त्रियों के। चाहिये कि जैसे माता पिता अपने पुत्रों का से-सन करते हैं वैसे अपने २ पतियों की प्रीतिपूर्वक सेवा करें। ऐसे ही अपनी२ स्त्रियों की पति भी सेवा करें। जैसे प्यांश प्राणियों के। जल त्रस करता है वैसे अच्छे स्वभाव के आनन्द से स्त्री पुरुष भी प्रत्यर प्रसन्न गहें।। ५१ ।।

तस्माइत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः।

गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। 🔻 💢

फिर भी उक्त विषय का उदेश अगले मंत्र में किया है।।

#### तस्मा अरंङ्गमाम वो यस्य क्षयांय जिन्वंथ। आपो जनयंथा च नंः॥ ५२॥

पदार्थ: — हे ( आपः ) ज जो के समान शान्त स्वभाव से वर्तमान खियो जी तुम लोग ( नः ) इम लोगों के ( क्षयाय ) निवासस्थान के लिये ( जिन्वय ) दूम और ( जनयथ ) अच्छे सन्तान उत्पन्न करी उन ( वः ) तुम लोगों के। इस लोग ( अरम् ) सामर्थ के साथ ( गमाम ) प्राप्त होवें। जिस्थम युक्त व्यवहार की प्रतिशा करें। उम का पालन करने वाली होओ सीर उसी का पालन करने वाले इस लोग भी होवें।। ५२ ।।

भावार्थः — जिस पुरुष की जें। खो वा जिस खो का जें। पुरुष है। वे भावस में किसी का अनिष्ट चिन्तन कदापि न करें ऐसे ही सुख और सन्तामें। से शिक्षायमान है। के धर्मा से घर के कार्य करें।। ५२।।

> मित्रहत्यस्य सिन्धुक्वीप ऋषिः। मित्रो देवताः। 🗶 उपरिष्ठाद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥ फिर भी बही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मित्रः सुध सुज्यं पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा

#### मह । सुजातं जातवेदसमयक्ष्मायं त्वासक्षसंजा-मि प्रजाभ्यः ॥ ५३ ॥

पदार्थ: — हे पते जो आप ( नित्र: ) सब के होके नित्र ( प्रजाम्य: ) पालने योग्य प्रभाओं को ( अयहनाय ) आरोग्य के लिये ( ज्योतिषा ) विद्या और न्याय की अच्छी शिक्षा के प्रकाश के ( सह ) साथ (प्रथिवीम्) अन्तरिक्ष ( च ) और ( भूनिम् ) पृथित्री के साथ ( संस्कृष ) सम्बन्ध कर के मुक्त की सुख देते हे। । उस ( सुजातम् ) अच्छे प्रकार प्रसिद्ध ( चानवेद सम् ) वेदों के जानने हारे ( त्वा ) आप की मैं ( संस्क्रानि ) प्रसिद्ध करनी हूं ॥ ५३ ॥

भावार्थ: — स्त्री पुरुषे। की चाहिये कि स्रेष्ठ गुणवान् विद्वाने। के संग मे शुद्ध आचार का ग्रहण कर शरीर और आत्मा के आरोग्य की प्राप्त हो के अच्छे २ सम्ताने। की उत्पन्न करें || ५३ ||

> रुद्राहत्यस्य सिन्धुद्धीप ऋषिः । रुद्रा देवताः । अनु-ष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ फिर भी वही विश्व॥

#### कुद्राः मुळ सृज्यं प्रिथिवीं बृहज्ज्योतिःसमी-धिरे । तेषीं भानुरजंस्र इच्कुको देवेषुं रोचते ॥ ५४ ॥

पदार्थ:—हे स्त्री पुरुषो (इत्) जैसे (ह्रदाः) प्राणवायु के अवयव क्रिय समानादि वायु (संस्त्रय) मूर्य को उत्पन्न कर के (पृथिवीम्) भू नि को (इह्त् ) बड़े (ज्यातिः) प्रकाश के साथ (समीधिरे) प्रकाशित करते हैं (तेषाम्) उन से उत्पन्न हुआ (गुक्तः) कान्तिमान् (भानुः) सूर्य (देवेषु) दिव्य पृथिवी आदि में (अजस्तः) निरम्तर (रोचते) प्रकाश करता है वैसेही विद्यास्त्री न्याय सूर्य का उत्पन्न कर के प्रजा पुरुषों का प्रकाशित और उन से प्रजाओं में दिव्य सुख का प्रचार करें। ॥ ५४॥

मावार्थः — इस मन्त्र में उपनालं — जैसे वायु सूर्य का सूर्य प्रकाश का प्रकाश नेत्रों से देखने के उपवद्यार का कारण है वैसे ही स्त्री पुरुष आ-पस के सुख के साधन उपनाधन करने वाले है। के सुखें के सिद्ध करें । १५४॥ संमुष्टा मित्यस्य सिन्धु द्वीप ऋषिः । सिनी वार्ला दंवता ।

विराइनुष्टुण्डन्दः। गान्धारः स्वरः॥
कियों के। किसी दानी रखनी चाहिये यह विश्व॥ 🗶
सक्षसृष्ट्रां वसुभी हुदैधीरैंः कर्मण्यां मृदंम् ।
हस्ताभ्यां मृद्धीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम्
॥ ५५॥

पदार्ध:—हे पते आप जैसे कारीगर मनुष्य (हस्ताम्याम् ) हाथें से (कर्मग्याम् ) किया से निद्ध की हुई (मृत्म्) महो की येग्य करता है वैसे (धीरैः ) अच्छा संपम रखने (वसुभिः । जे। चौक्षोम वर्ष ब्रह्मचर्य के से-सम से विद्या के। प्राप्त हुए (कद्रैः ) और जिन्होंने चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य के से-सम से विद्या बल के। पूर्ण किया है। उन्हों में (संस्कृष्म् ) अच्छी शि का का प्राप्त हुई है। उस ब्रह्मचारिणी युवती की (मृद्धीम् ) के। मल गुण स्वभाव वाली (क्योत् ) कीजिये भीर जे। स्त्री (मिनीवाली) प्रेमबद्ध क न्याओं की बलवान् करने वाली है (नाम् ) उस की अपनी स्त्री करके सु खी की जिये।। ५५॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलु - जैने कुम्हार आदि कारीगर छै। ग जल मही की कीमल कर उस ने घड़े आदि पदार्थ बना के छल के काम चिद्व करते हैं वैसे ही विद्वान् माता पिता से शिक्षा की माप्त हुई हृदय की प्रिय ब्रह्मवारिणी कन्याओं की पुरुष छै।ग विवाह के छिये ग्रहण करके सब काम सिद्ध करें। ५५।।

सिनीवालीत्यस्य सिन्धुबीप ऋषिः। अदितिर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥ किर भी पुर्वोक्त (व०॥

## े सिन्दि।ली सुंकपुर्दा सुंकुर्दारा स्वौपुशा। सा तुम्यमदिते मुद्योखां देधातु हस्तयोः॥ ५६॥

पदार्थ: — हे ( महि ) सत्कार के योग्य (अदिते) अखंडिन आनन्द भे। गने बाछी खी जो ( सिनीवाली ) प्रेम से युक्त ( सुकपदों ) अच्छे केशें बा-छी ( सुकुरीरा ) सुन्दर श्रेष्ठ कर्मों को सेवने हारी और ( स्वीपशा ) अच्छे स्वादिष्ट भीजन के पदार्थ बनाने वाली जिम ( तुभ्यम् ) तेरे ( इस्तयोः ) हाथों में ( उखाम् ) दाल आदि रांथने की बटले हे को ( दथातु ) धारण करे ( सा ) उस का तू नेवन कर ॥ ५६ ॥

भावार्थ:-- श्रीव्ठ स्त्रियों के। उचित है कि अव्ही शिक्षित चतुर दामियों की रक्सें कि जिस से सब पाक आदिकी सेवा ठीक २ मनय पर हातीरहे ॥५६॥

> उखामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। ग्रदितिर्देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥ फिर भी बही विश्र॥

उखां कृंणोतु शक्त्यां बाहुम्यामदितिर्धिया। माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिंमर्त्तुं गर्भ आ मुखस्य शिरोऽसि॥ ५७॥

पदार्थ: — हे गहरूच पुरुष जिम कारण तू ( सखस्य ) यक्त की ( शिरः) उत्तमाङ्ग की समान ( अमि ) है इम कारण आप ( थिया ) बुद्धि वा कमें से तथा ( शक्त्या ) पाक विद्या के मामर्थ्य और ( बाहुभ्याम् ) दोनों बाहु भां से ( उखाम् ) पकाने की बटलोई को ( कणोतु ) सिद्ध कर जो ( अदितिः ) जननी आप की खी है ( सा ) वह ( गर्भे ) अपनी कोख में ( यथा ) जैसे माता ( उपस्थे ) अपनी गोद में ( पुत्रम् ) पुत्र को सुख्यूर्वक बैठावे वैसे ( अग्निम् ) अग्न के समान तेजस्वी वीटर्ष को ( बिक्तर्सु ) धारणकरे ॥५॥

भावार्थ: -- इस मंत्र में उपमालंश-कुमार स्त्री पुरुषों की ग्रीश्व है कि अक्ष्मचर्य के साथ विद्या और अच्छी शिक्षा की पूर्ण कर बल बुद्धि और पराक्षनमुक्त सन्तान स्थम होने के लिये वैद्यक्षशास्त्र की रीति से बड़ी २ कोचियों से पाक बना के और विधियूर्वक गर्नाधान करके वीछे पच्य से रहें और आपस में नित्रता के साथ वर्ष के पुत्रें। के गर्भाचानादि कर्म किया करें। १९ ।

वसवस्त्वेत्यस्य सिंधुद्वीप ऋषिः । वसुरुद्रादित्यविद्ववेदेवा देवताः । पूर्वार्द्यस्योत्तरार्दस्य चोत्कृती छन्दसी । षड्जः स्वरः ॥

किर स्त्री पुरुष क्या कर के क्या करें पह दि? ।।

वर्सवस्त्वा कृण्वन्तु गायुत्रेण छन्दंसाऽङ्गिर्-स्वद्भवासि पृथिव्यसि धारणा मिय प्रजाक राय-स्पोषेङ्गौपत्यथ सुवीय्यंथ सजातान्यजंमानाय रुद्रास्त्वां कृणवन्तु त्रेष्ट्रंभेन् छन्दंसाऽङ्गिर्स्वद्रु-वास्युन्तरित्तमिस धारया मियं प्रजाध राय-स्पेषिङ्गीपत्यक्ष सुवीय्यैक्ष सज्जातान्यजमानाया-द्भवासि चौरंसि धारया मियं प्रजाक रायस्पोषं-ङ्गौपत्यथ सुवीय्यैथ सजातान्यजमानाय विश्वै त्वा देवा वैश्वान्राः कृण्वन्त्वातृष्टुमेन छन्दंसा-ङ्गिरुस्वद्भवामि दिशों ऽसि धारया मियं प्रजाध ग्रायस्पोषेङ्गोपत्यथ सुवीर्यथ सजातान्यजमा-नाय ॥ ५८ ॥

पदार्थ: - हे ब्रह्म कारिणी कुमारी स्त्रों को तू ( अङ्गित्स्वत् ) धनंतव प्राज वायु के समतुल्य ( ध्रुवा ) निञ्चल ( अमि ) है और ( एथिक्यसि ) वि-स्तृत सुख काने हारी है उस (त्वा ) तुम को (गायक्रेण ) वेद में विधान किये ( छन्द्रसा ) गायत्री आदि छन्दों से ( वसवः ) चौबीमधर्ष अस्तरस्यं रहने बाले विद्वान् लोग मेरी स्त्री (क्यवन्तु ) करें। हे कुमार अह्मचारी पुत्रव जी तू ( अङ्किरस्थत् ) प्राणवायु के समान निश्चल है और (एथियी) पृथिकी की समान क्षमायुक्त (अभि । है जिस (त्या) तुमा की (वमवः) चक्क ब्रह्म संज्ञक विद्वास् लोग (गायत्रेण) वेद में प्रतिपादन किये ( इन्द-सा ) गायत्री भादि छन्दों से मेरा पति ( रुग्वन्तु ) करें । सी तू ( मधि ) अपनी प्रियपत्नी सुक्त में (प्रजाम्) सुन्दर सन्तानों (राय:) धन की (पोषम्) पृष्टि (गीयत्यम्) गी पृश्यिवी वा वाणी के स्वामीयन और (सु-बोद्यंम् ) सुन्दर पराक्रम को (धारय) स्थापन कर । मैं तू दीनों (सजा-साम् ) एक गर्भाशय से उत्पन्न हुए सब भन्तानों को (यत्रमानाय) विद्या देने इ.र. साचार्यको विद्या ग्रहण के लिये समपंग करें। हे स्त्रिका तू ( अक्ट्रिस्टित्) आकाश के समान ( धुवा ) निञ्चल ( असि ) है और ( अ-म्तरिक्षम् ) अविनाशी प्रेम युक्त (असि ) है उस (त्वा) तुमः को (सद्राः) सद्भ संज्ञक चवालीमवर्ष ब्रक्त चर्य सेवने हारे विद्वान् लोग ( त्रैष्टुमेन ) वेद में कहे हुए ( छन्दमा ) त्रिष्टुप्छन्द से मेरी स्त्री ( क्रयवन्तु ) करें । हे बी<sup>र</sup> पुरुष जो सू भाकाश के समान निश्चल है और दूढ़ प्रेम से युक्त है जि<sup>स</sup> तुमः को चवालीसवर्षे त्रस्तचर्य काने हारे विद्वान् लोग वेद में प्रतिपा<sup>हिन</sup> किये त्रिष्टुप्छन्द से मेरा स्वामी करें। वह तू (मिय) अपनी ब्रियप्<sup>ता</sup> मुक्त में (प्रजाम्) बल तथा सत्यथर्म से युक्त सन्तामों (शय:) राज्य लि हमी की ( योषम् ) पुष्टि ( गीपत्यम् ) पढ़ाने के अधिष्ठातृत्व और ( धुर्वी-रुर्वम् ) अन्न छे पराक्रम को (धारय) धारण कर मैं तू दोनों (सभासान ) एक चदर से उत्वन हुए सब सन्तानों को अच्छी शिक्षा देकर वेद विद्या की शिक्षा होने के लिये ( यजमानाय ) अङ्ग उपाङ्गी के सहित वेद पहुँगने हारे अध्यापक को देवें। हे विद्वान खी जो तू ( अङ्गिरस्वत ) ( भुवा ) अवस ( असि ) है ( ह्योः ) चूर्य के सहूत प्रकाशार<sup>माम</sup>

( असि ) है उस ( त्या ) तुम को ( आदित्याः ) अहताली वसर्व अक्षाचर्य कर के पूर्ण विद्या और बल की प्राप्ति से आप सत्यवादी धर्मात्मा विद्वान् लोग ( जागतेन ) वेद में कहे ( छन्दसा ) जगनी छन्द से मेरी पत्नी ( हन-ववन्तु) करें । हे विद्वान् पुरुष जो तू आकाश के तुल्य दूढ़ और सूर्य के तुरुव तेजस्वी है उस तुभ को अड़तालीसवर्ष अस्मचर्य सेवन वाले पूर्व विद्या से युक्त धर्मातमा त्रिहान् लोग वेदोक्त जगती छन्द से मेरा पति करें। वह तू (मयि) अपनी प्रिय भाष्यों मुक्त में ( प्रजाम् ) गुभनुणों से युक्त सन्तानों (राय:) चक्रवर्त्ति राज्य लक्ष्मी को (योषम्) पृष्टि (गीपत्यम्) संपूर्ण विद्या के स्वामीपन भीर (सुवीर्यम्) सुन्दर पराक्रम की (धारय) धारण कर । मैं तू दोनों ( सजातान् ) अपने सम्तानों को जन्म से उपदेश करके सब विद्या ग्रहण करने के छिये ( यजमानाय ) किया कीशल के स-हित सब विद्याओं के पढ़ाने हारे आचार्य को समर्पण करें। हे सुन्दर है-इबर्य युक्त पित को तू ( सिङ्गास्थत् ) सूत्रात्मा प्राचायु के समान ( धू-वा) निश्चल (असि) है और (दशः) सब दिशानों में कोर्त्तिवाली (असि) है। उस तुमः को (वैद्यानराः) रुष मनुष्यों में शोसायमान (वि-क्षे ) सब ( देवा: ) सपदेशक त्रिद्धान् लोग ( आनुष्ट्भेन ) वेद में कहे ( छ-ग्द्सा ) अनुष्टुप्छन्द से मेरे आधीम ( क्रायन्तु ) करें । हे पुरुष जी तू सू बात्मा वायु के सदूश स्थित है (दिश: ) सब दिशाओं में की शिवाला (अ-सि ) है जिस (त्या ) तुभा की सब प्रजा में शो नायमान सब विद्वान छोग मेरे आधीन करें। सो भाव ( सिय ) मुक्त में ( प्रजाम् ) शुन लक्षण युक्त सन्तानों (राय:) सब ऐश्वर्यकी (पंष्यम्) पृष्टि (गीपत्यम्) वाणीकी चतुराई और ( बुवीरसीम् ) बुन्दर पराक्रम को ( धारव ) घारण कर । मैं तू दोनों जने अच्छा उपदेश होने के लिये (सजाताम् ) अपने सन्तानों को ( यजमानाय ) सत्य के उपदेशक अध्यापक के समीप समर्पण करें ॥ ५८ ॥

आवार्ध:—इस सन्त्र में उपनालंकार है। जब क्त्री पुरुष एक दूसरे की परीक्षा करके आपस में दूढ़ प्रीति वाले होवें। तब वेदोक्स रीति से यक्त काःविस्तार और वेदोक्स नियमानुसार विवाह करके धर्म से सन्तानें। की ナ

सरपक्ष करें। जब कल्या पुत्र काठ वर्ष के हो तब माता पिता समकी कर-क्छी शिक्षा देवें। इसके पीचे ब्रह्म नर्स्य भारण करा के विद्या पढ़ने के िये जिये अपने घर से बहुत दूर आप्त विद्वान् पुत्रयों और आप्त विद्वान् जियें। की पाठशालाओं में भेत्र देवें। वहां पाठशाला में जितने धन का ख़र्च क-रमा स्थित है। उतमा करें। क्यों कि सम्तानीं की विद्यादान के विना कोई सपकार वा धर्म नहीं सन सकता। इस लिये इस का निरम्तर अनुष्ठान किया करें।। ५८।।

> अदित्या इत्यस्य सिन्धुर्जीप ऋषिः। अदितिर्देषता । श्राषीत्रिष्टुप् छन्दः। धेयतः स्वरः॥ फिर भी बही बि०॥

श्रदित्ये रास्नास्यदितिष्टे बिलं ग्रम्णातु । कृत्वाय सा महीमुखाम्मून्मयीं यानिम्मन्ये । पु-त्रम्यः प्रायंच्छ्ददितिः श्रप्यानिति ॥ ५९॥

पदार्थः — हे पढ़ाने झारी शिद्धान् खी जिन कारण तू ( कदिस्ये ) वि-द्या प्रकाश के लिये ( रास्ना ) दानशीलु ( अपि ) है दसक्किये ( ते ) तुम्क से ( बिल् म्) ब्रह्म वर्ष्य की धारण ( क्रस्ताय ) का के ( अदितिः ) पुत्र की र कच्चा किद्या की ( श्रमणातु ) ग्रहण करें से ( सा ) तू ( कदितिः ) माधा ( सुन्त्रयीम् ) नहीं की ( ये। निम् ) मिली और एषक् ( महीम् ) बड़ीं ( खः खाम् ) पदाने की बटलोई को ( अन्त्रये ) अन्ति के निकट ( पुत्रेच्यः ) धु-त्रीं की ( प्रायण्यत् ) देवे विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त बटलोई में ( के ति ) इस प्रकार ( अप्यान् ) अकादि पदार्थों को प्रकाओ ॥ ५०॥

भाषार्थः — छड्के पुरुषे। भीर छड्कियां स्त्रियों की पाठशासा में बा क्रम्मवर्ष की विधिपूर्वक स्थीसता से विद्या कीर भेग्नन बनाने की किया सी की भीर भाषार विद्यार भी अच्छे नियम से सेवें। कभी विषय की अध्या म सुनें। मद्य मांन आस्ट्य और भत्यमत निद्रा की त्यान के सहस्ते आसी की सेवा और उस के अनुकूत वर्ष के अच्छे नियमें की बार्क करें। भूरान वसवस्त्वेत्यस्य सिन्धुद्वीय माधिः। वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवता । स्वराट् संकृतीइछन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ किर विद्वान् छोग पदने हारे और उपदेश के येग्य ननुर्धो के। किरे शुद्ध करें यह वि०॥

वसंवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दंसाङ्गिर्-स्वद्रुद्रास्त्वां धूपयन्तु त्रेष्ट्रं भेन छन्दंसाङ्गिर्स्व-दांदित्यास्त्वां धूपयन्तु जागंतेन छन्दंसाङ्गिर्स्व-त् । विश्वें त्वा देवा वैश्वान्रा धूपयन्त्वानुष्टुभे-न छन्दंसाङ्गिर्स्वदिन्द्रंस्त्वा धूपयतु वरुगास्त्वा धूपयतु विष्णुंस्त्वा धूपयतु ॥ ६०॥

पदार्थः — हे ब्रह्मवारिणि जो ( वसवः ) प्रथम िद्वान् छोग ( गाय- क्रेष ) वेद के ( छण्दमा ) गायत्री छन्द से ( तवा ) तुम की ( अङ्गास्थत् ) प्राणों के तुल्य सुगन्धित अकादि पदार्थों के समान ( धूपपण्तु ) संस्कार युक्त करें ( सद्दाः ) मध्यम विद्वान् छोग ( त्रेब्टुभेन ) वेदोक्त ( छन्दमा ) किट्टुप् छण्द से ( अङ्गास्थत् ) विज्ञान के समान ( त्या ) तेरा ( धूपपण्तु ) विद्या और अच्छी शिक्षा से संस्कार करें । ( आदित्याः ) सर्वोत्तम अध्यापक विद्वान् छोग ( क्षागतेन ) ( छण्दसा ) वेदोक्त अगती छण्द से ( अङ्गिर- स्वत् ) ब्रह्मावह के शुद्ध वायु के सदूश ( त्या ) तेरा ( धूपपन्तु ) धर्म युक्त हथबद्दार के प्रकृष्ण से संस्कार करें ( विद्यानराः ) सब मनुष्यों में सत्य धर्म और विद्या के प्रकाश करने वाले ( विद्ये ) सब ( देवाः ) सत्योपदेश विद्यान हमने अपनि ( अङ्गान्यतः ) विद्यान ( अनुष्टुमेन ) वेदोक्त अनुष्टुप् ( छन्दमा ) छन्द से ( अङ्गान्यतः ) विश्वान्त । वरमे संस्कार करें ( विद्यान ) तेरा ( धूपपन्तु ) सत्योपदेश से संस्कार करें ( वृष्यम्तु ) सर्योपदेश से संस्कार करें ( वृष्यम्तु ) से संस्कार करें । ( वृष्य

पयतु) न्याय किया से संयुक्त करे और (विष्णुः) सब विद्या और यो-गाक्नों का वेला योगीजन (त्वा) तुम्ह को (धूपयतु) योग विद्या से सं स्कार युक्त करे तू इन सब की सेवा किया कर ॥ ६०॥

भावार्थ:--सब अध्यापक स्त्री स्त्रीर पुनवों को चाहिये कि सब भेष्ठ कियाओं से कन्या पुत्रों को विद्या भीर शिक्षा से युक्त शीच्र करें। जिस से ये पूर्वा ब्रक्ष्यचर्य ही करके गृहाम्मन आदि का यथोक्त काल में आचरण करें॥ ६०॥

अदितिष्ट्वेत्यस्य सिन्धुर्द्वाप ऋषिः। श्रादित्यादयो लिंगोक्ता देवः ताः। भुरिक्कृतिइछन्दः। निषादः स्वरः। उखंबस्त्रीत्युक्तः रस्य प्रकृतिइछन्दः। धैवत स्वरः।

विद्वान् खियों कम्याओं को उत्तम शिक्षासे धर्मात्मा विद्या युक्त करके इसलोक और पग्लाक के सुत्तों के। प्राप्त करार्वे

यह वि०॥

अदितिष्ट्वा देवी विश्वदैव्यावती पृथिव्याः
मधस्थे अङ्गिर्म्वत् खंनत्ववट देवानां त्वा पत्नीर्देवीर्विश्वदेवयावतीः पृथिव्याः मधस्थे अङ्गिर्म्वहधंतूखे। धिषगांस्त्वा देवीर्विश्वदेवयावतीः पृथिव्याः मधस्थे अङ्गिर्म्वद्रमीन्धतामुग्ने वर्द्धंत्रीष्ट्रा देवीर्विश्वदेवयावतीः पृथिव्याः
मुधस्थे अङ्गिर्म्वच्छ्रंपयन्तृखेजनास्त्वां देवीविश्वदेवयावतीः पृथिव्याः मुधस्थे अङ्गिर्म्वत्पंचन्तुखे जनंयस्त्वा छिन्नपत्रा देवीर्विश्वदे-

## व्यावतीः प्रथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्पंचन्तू-खे॥६१॥

पदार्थ:-- हे ( अवट ) बुराई भीर निन्दा रहित बालक ( विश्वदेख्या-वती ) सम्पूर्ण विद्वानों में प्रशस्त ज्ञानवाली (अदिति:) असगड विद्या वहाने द्वारी (देवी) खिद्वान स्त्री (पृथित्या: ) भूमि के (सधस्थे ) एक शुभस्याम में (तथा) तुभः को ( भिक्तिरस्थत् ) अग्नि के समान ( सनत् ) जीते भूमि को खोद के कूप जल निष्णक करते हैं वैर तिद्यायुक्त करे। हे ( स्ते ) ज्ञानयुक्त कुमारी ( देवानाम् ) विद्वानों की ( पत्नी: ) स्त्री जो ( विश्वदेवयावतीः ) संपूर्ण विद्वानां में अधिक विद्यायुक्त ( देवी: ) बिदुषी (पृथिडया:) पृथिकी के ( मधस्थे ) एक स्थान में ( अङ्किरस्वत् ) प्राण के सदूश (त्वा) तुभ को (द्यतु) धारण करें। हे ( उसे ) विज्ञान की इच्छा करने वाली (विश्वदेश्यावती: ) सब विद्वानीं में उत्तम (धिषणा: ) प्रशं-सित काफीयुक्त युद्धिमती (देवी: ) विद्यायुक्त स्त्री छोग (पृथिवपा: ) पृ चिवी के ( सधस्ये ) एक स्थान में ( त्वा ) तुक्त को ( अङ्किरवस्त् ) प्राण के तुल्य (अभीन्यताम्) प्रदीप्त करें। हे (उसे) अब आदि पकाने की ब टलोई के समान विद्या को धारण करने हारी कन्ये (विश्व देवयावती:) उत्तम विदुषी (वस्त्रजी: ) विद्या ग्रहण के लिये स्वीकार करने योग्य (देवी: ) स्तः-पवती स्त्री लीग ( पृथिव्या: ) भूमि के ( सधस्ये ) एक शुद्व स्थान में (त्वा) तुभ को ( अङ्गिरस्थत् ) सूर्य के तुल्य ( अषयन्तु ) शुद्ध तेत्रश्थिनी करें । हे (उसे) ज्ञान चाइने हारी कुमारी (विश्व देवपावती:) बहुत विद्यावानी में उत्त-म (देवीः) शुद्ध विद्या से युक्त (ग्नाः) वेदवाणी को जानने बाली स्त्रीलीम (एचि-व्याः)भूमि के एक (सथस्थे) उत्तन स्थान में (त्या) तुभा को (सङ्गिरस्वत्) विजुली के तुरुष (पनन्तु) दूद बल धारिणी करें। हे (उसे) चान की बच्छा रखने बाली कुमारी ( विश्वदेठपावती: ) उत्तन विद्या पढ़ी ( अध्यक्षपत्रा: ) अ-स्विष्टत नवीन शुद्ध वस्त्रों को धारने बा याने। में चलने वाली (जनयः) शुभगुर्देश से प्रसिद्ध (देवी:) दिवय गुर्केश की देने द्वारी स्त्री छोग (प्रधि-

टपाः) पृथिवी के ( मधस्ये ) उत्तम प्रदेश में ( त्वा ) तुंभा की ( क्षित्र-स्वत् ) कोषधियों के रम के समाम ( पणन्तु ) संस्कार युक्त करें । हे कु-मारि कन्ये तू इन पूर्वीक्त सब खियों से ब्रह्मनर्थ के साथ विद्या प्रकृष कर ॥ ६ ! ॥

भाषार्थ: — माता विता आचार्य और अतिथि अर्थात् अवणशीस विरक्त पुरुषें को चाहिये कि जैसे रमोइया बटलोई आदि पार्त्री में अब का संस्कार कर के उत्तम मिद्र करते हैं। वैसे ही वाल्यावस्था से लेके विश्वाह से पहिले २ सहकों और सहकियों को उत्तम विद्या और शिक्षा से सम्मा करें ॥ ६१॥

मित्रस्येत्यस्य विद्वामित्र ऋषिः। मित्रो देवता। निष्दुगायत्रीछन्दः। षङ्जः स्वरः॥

की जिस पुरुष की ऋरी हो वे वह उस के ऐश्वरूप की निरम्तर रक्षा करें यह वि०॥

## मित्रस्यं चर्षणिधृतोऽत्रौ देवस्यं सानुसि। द्युम्नं चित्रश्रंवस्तमम्॥ ६२॥

पदार्थः — हे स्त्री तू ( घर्षणी घृतः ) अच्छी शिक्षा से मनुष्यां का घा-रण करने हारे ( नित्रस्य ) नित्र ( देवस्य ) कमनीय अपने पति के ( वि-त्रक्षवस्तमम् ) आश्चर्यक्रप अकादि पदार्थ जिम ने हा ऐमे ( साननि ) से-वने योग्य प्राचीन ( दान्नम् ) धन की ( क्ष्वः ) रक्षा कर ॥ ६२ ॥

भावार्थः - घर के काम करने में कुशल स्त्रों को चाहिये कि घर के भी-तर के सब काम अपने आधीन रख के ठीक २ बढ़ाया करें ॥ ६२॥

देवस्त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । स्विता देवता । सुरिश् षृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

द्वेवस्त्वां सवितोद्वंपतु सुपाशिः स्वंङ्गुरिः

#### मुंबाहुरुत शक्त्यां । अव्यंथमाना पृथ्वियामा-शा दिशुऽञ्जापूंण ॥ ६३ ॥

पदार्थ:—हे स्ति ( स्वाहु: ) अच्छे जिस के भुजा ( सुपाणि: ) सुन्दर हाथ और ( स्वहुित: ) शोभायुक्त जिस की अंगुली हो ऐसा ( सविता ) सूर्य के समान ऐश्वर्यदाता ( देव: ) अच्छे गुण कर्म और स्वमाओं से युक्त पति ( शक्त्या ) अपने सामर्थ से (एथिट्याम्) एथिवी पर स्थित (स्वा) सुक्त को ( सद्वपतु ) वृद्धि के साथ गर्भवती करे और तू भी अपने सामर्थ से ( अव्ययमाना ) निर्भय हुई पति के सेवन से अपनी ( आशाः ) इच्छा और कीर्ति से सब ( दिशः ) दिशाओं को ( आएण ) पूरण कर ॥ ६३ ॥

भावार्थ: स्त्री पुरुषों को चाहिये कि आपम में प्रसन्त एक दूसरे की हृदय से चाहने वाले परस्पर परीक्षा कर अपनी २ इच्छा से स्वयम्बर वि-वाह अत्यन्त विषयासक्ति को त्याग ऋतुकाल में गमन करने वाले होकर खपने सामर्थ्य की हानि कभी न करें। वयों कि इनी से जितेन्द्रिंग स्त्री पुरुषों के शरीर में कोई रोग प्रगट और बल की हानि भी नहीं होती। इन लिये इस का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए।। ६३!

उत्थायेत्यस्य विद्वागित्र ऋषः । अनुष्टुए छन्दः ।

सान्धारः स्दरः !!

फिर यह कैसी होवे यह विश् ॥

उत्थायं बहुती भवोदंतिष्ठ धुवा त्वम् । मि-त्रेतां तं उखां परिं ददाम्यमित्या एषा मा भे-दि ॥ ६४ ॥

पदार्थ:—हे विदुषि कन्ये तू ( धुत्रा ) गङ्गल कार्यों में निश्चित बुद्धि-बाली और ( स्ट्रिती ) बड़े पुरुषार्थ में युक्त ( भव ) हो । विवाह करने के लिये ( उत्तिष्ठ ) उत्तिष्ठ उद्यत हो ( उत्थाय ) आलस्य छंड़ के उठ कर इन

#### ४०(-पीक्षा में विवाह करें) यजुर्वेदमा खे-

पति का स्वीकार कर। हे ( नित्र ) नित्र ( ते ) तेरे लिये ( एतःम् ) इस ( उलाम् ) प्राप्त होने योग्य कन्या को ( अभित्ये ) भयाहित होने के लिये ( परिदर्शिन ) मब प्रकार देता हूं ( उ ) इसलिये तू ( एषा ) इस प्रत्यक्ष प्राप्त हुई स्त्री को ( मा मेदि ) भिन्न मत कर ॥ ६४ ॥

क्रिय को और पुरुष कन्या और वर को चाहिये कि अपनी २ प्रमक्षता में कन्या पुरुष की और पुरुष कन्या की आप ही परीक्षा करके ग्रहण करने की इ- क्छा करें अब दोनों का विवाह करने में निश्चय होवे तभी माता पिता और आचार्य आदि इन दोनों का विवाह करें और य दोनों आपन में भेद वा ठयिं कार कभी न करें। किन्तु अपनी खं के नियम में पुरुष और प्रतिवासों हो कर निछ के चर्छे।। ६४।।

वसवस्त्रेत्यस्य विद्रवामित्र ऋषः। वस्त्राद्यां विद्रांका देवताः। धृतिदछन्दः। पद्यः स्वरः॥ किर दन स्रां पुरुषां के प्रति निद्रान् छोग वया करें दन विष्णा वसंत्रस्त्वा छुन्दन्तु गाग्रत्रेण छन्दंमाऽङ्गिर्-स्वदुद्रास्त्वा छुन्दन्तु त्रिधुंसन् छन्दंसाऽङ्गिर्स्वदां-दित्यास्त्वा छुन्दन्तु जागतेन छन्दंसाऽङ्गिर्स्व-दिद्यास्त्वा छुन्दन्तु जागतेन छन्दंसाऽङ्गिर्स्व-दिद्वे त्वा देवा वद्वानुरा आछुन्दन्त्वानुष्टुमे-नुछन्दंमाऽङ्गिरस्वत् ॥ ६५॥

पदार्थ: — हे खि वा पुरुष (वनवः) प्रथम विद्वान् लोग (गाण्येण)
श्रेष्ठ विद्याओं का जिन से गान किया जावे उम वेद के विभाग रूप स्तोत्र
( छन्दमा ) गायत्रीछन्द से जिन (त्वां ) तुम्को ( अङ्ग्रिस्वत् ) अग्नि के
तुस्य ( झाड्यून्दन्तु ) प्रकाशमान करें ( रुद्राः ) मध्यम विद्वान् लोग ( न्नेद्रिमेन ) कर्म उपामना और ज्ञान जिम से स्थि हैं। उम (छन्दमा) वेद के
स्तोत्र भाग से ( अङ्गित्स्वत् ) प्राण के समान (त्वा ) तुम्म को ( आड्यून

नद्दन्तु ) प्रज्वलित करें (आदित्याः ) उत्तम विद्वान् छे। ग (कागतेन ) जन्मत् की विद्या प्रकाश करने हारे (छन्दमा ) वेद के स्तीत्र भाग से (स्वा ) तुभ को (अङ्गरस्त्रत् ) सूर्यं के मदूश ते प्रधारी (अष्टछन्दन्तु ) शुद्ध करें (विश्वानराः ) सम्पूर्णं मनुष्यों में शोभायमान (देवाः ) मत्य उपदेश देने हारे (थिश्वे ) सब विद्वान् छोग (आनुष्टुभेन) विद्या ग्रहण के प्रधात जिम से दु:खों को छुड़ायें उम (छन्दमा ) वेद भाग से (स्वा ) तुभ को ( अङ्गिरखत ) समस्त ओषधियों के रस के स्थान ( आष्ट्रस्त्र ) शुद्ध संपादित करें ॥ ६५ ॥

भावार्थ:-इम मन्त्र में उपमालं है खो पुनपी तुत देनों की चाहिये कि जो शिद्धान् खो लेग तुम को शरीर और आत्मा का बल कराने हारे उपदेश में सुशोभित करें उन की देवा और महमङ्ग निरन्तर करी और अन्य तुष्छ युद्धि वाले पुसर्षों वा खियों का मङ्ग कभी मन करें। ॥ ६५ ॥

ग्राक्तिमित्यस्य विद्वामित्रं ऋषिः। ग्राह्मस्यादयां संत्रोक्ता-द्वनाः । विराह्मत्रः स्विणुष्यस्यः । भैवतः स्वरः ॥

फिन्वे स्त्री पुरुष वया करें इम विवा 🚶

आकृतिम्गिनम्प्रयुज्ञ स्वाहा मनो मेधाम्-गिनम्प्रयुज्ञ स्वाहां चित्तं विज्ञांतम्गिनं प्रयुज्ञ स्वाहां विच्छेतिम्गिनम्प्रयुज्ञ स्वाहां । प्रजापंतये मनेवे स्वाहाज्यनये वैश्वान्राय स्वाहां ॥ ६६॥

पदार्थ:-हे स्त्री पुरुषा तुम लेग वेद के गायशी आदि मन्त्रों से (स्त्रा-इन ) सत्य किया से ( आकृतिम् ) उत्साह देने वाली क्रिया के ( प्रयुज्ञम् ) ग्रेरणा करने हारे (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (स्वाहा) मत्यत्राणी से (मनः) इच्छा के साधन को (मेथाम्) बुद्धि और (प्रयुजम्) सम्बन्ध करने हारी (अग्निम्) बिजुली को (स्वाहा) मत्य उपवहारों से (विज्ञातम्) जाने हुए विषय के (प्रयुजम्) उपवहारों में प्रयोग किये (अग्निम्) अग्नि के समान प्रकाशित (चित्तम्) चित्त को (स्वाहा) योग किया की रीति से (बाधः) बाणियों को (विधृतिम्) विविध प्रकार की धारणा को (प्रयुजम्) संप्रयोग किये हुए (अग्निम्) योगाभ्यास से उत्पन्न हुई बिजुली को (प्रजायतये) प्रजा के स्वामी (मनवे) मननशील पुनव के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी को और (अग्निये) विद्यान स्वरूप (विद्यानराय) सब मनुष्यों के बीच प्रकाशभान जगदीश्वर के लिये (स्वाहा) धर्मपुक्त किया को पुक्त कराके निरन्तर (आज्बन्दन्त्) अच्छे प्रकार शुद्ध करो ॥ ६६ ॥

भावार्थ: — यहां पूर्व मन्त्र से (आच्छून्दन्तु) इस पर की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से वेदादि शास्त्रों। को पढ़ और उत्साह आदि की बढ़ा कर व्यवहार परमार्थ की कियाओं के सम्बन्ध से इस लोक और परलोक के सुखें। की प्राप्त हैं। !! ६६ !!

विश्वो देवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः। सविता देवता। अनुष्टुप्

क्रन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर गृहरू यों की क्या करना चाहिये यह वि०॥

## विश्वों देवस्यं नेतुर्मतीं बुरीत सुख्यम्। वि-श्वों राय इंपुध्यति खुम्नं दंणीत पुष्यमे स्वाहां ॥ ६७॥

पदार्थ:—जैसे विद्वान् लोग ग्रहण करते हैं (विश्वः) सब ( नर्तः) मनुष्य ( नेतुः) सब के नायक ( देवस्य ) सब जगत् का प्रकाशक परमेश्वर के ( सस्यम् ) नित्रता को ( बुरीत ) स्वीकार करें ( विश्वः ) सब मनुष्य ( राये ) शोभा वा लक्ष्मी के लिये ( इषुष्यति ) वाणादि आयुधों को धारण करें ( स्वाहा ) सत्य वाणी और ( ह्युम्नम् ) प्रकाशयुक्त यश वा कक्ष

को (वृणीत ) ग्रहण करें। भीर जैसे इस से तू (पुष्यते ) पुष्ट होता है वैसे इन छोग भी होतें॥ ६०॥

भावार्थ: — इस मंत्र में वाचकलुंग-गृहस्थ मनुष्य की चाहिये कि पर-मेश्वर के साथ नित्रता कर सत्य व्यवहार से धन को प्राप्त हो के की तिं क-राने हारे कभी की नित्य किया को ॥ ६०॥

मास्वित्यस्य आत्रयऋषिः । अम्बा देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर माता विता के प्रति पुत्रादि क्या २ कहें यह विश् ॥

#### मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्वं धृष्णु <u>वी</u>रयं-स्<u>व</u> सु । <u>अ</u>ग्निर<u>्चे</u>दं कंरिष्यथः ॥ ६८ ॥

पदार्थ: -ह (अम्ब) माता तू इस की विद्या से (मा) मत ( सु-भित्या: ) खुड़ावे और (मा) मत (सुरिष: ) दुःख दे (पृष्तु ) दूढ़ता से (सुवीरयस्व) सुन्दर आरम्भ किये कम्मं की समाप्ति कर। ऐसे करते हुए तुम माता और पुत्र दोनों (अग्नि:) अग्नि के समान (च) (इद्म्) क-रने योग्य इस सब कम्मं को (करिष्यथ:) आवरण करो ॥ ६८॥

भावार्थः — माता को चाहिये कि अपने मन्तानों को अच्छी शिक्षा देवे जिस से ये परस्पर प्रीतियुक्त और वीर होवें। और जो करने योग्य है वही करें न करने योग्य कभी न करें।) ६८॥

दंहस्वेत्पस्पात्रेपऋषिः। ग्रम्या देवता। त्रिष्टुण्छन्दः। धेवतः स्वरः।

किर पति अपनी स्री से क्या २ कहे यह कि ॥ 十 हक्षहंस्व देवि प्रथिवी स्वस्तयं आसुरी माया स्वधयां कृतासिं। जुष्टं देवेभ्यं इदमस्तु ह्वयम-रिष्टा त्वमुदिंहि युज्ञे अस्मिन् ॥ ६९॥ पदार्थ: — है (प्रियो) मूनि के समान विद्या के विस्तार की प्राप्त हुई (देवि) विद्या रे युक्त पति तू ने (स्वस्तये) सुस के लिये (स्वध्या) अस वा जल से जो (आसुरी) प्राणयोषक पुनर्थों की (माया) बुद्धि है उस की (कता) सिद्ध की (असि) है। उस ने तू मुफ्त पति को (दंहस्त ) उसति दे (अरिष्टा) हिंसा रहित हुई (अस्मिन्) इस (यद्धे) संग कर्म योग्य गृहाग्रम में (उदिहि) प्रकाश की प्राप्त हो जो तू ने (जुष्टम्) सेवन किया (इदम्) यह (हरण्म्) देने लेने योग्य पदार्थ है वह (देवेम्पः) विद्वाभों वा उक्तम गुण होने के लिये (अस्तु) होवे।। ६०।।

भावार्थ:—जो स्त्री पति को प्राप्त हो के घर में बर्त्तती है वह अच्छी बुद्धि से सुख के लिये प्रयत्न करें। मब अन्त आदि खाने पीने के पदार्थ रुचि कारक बनवात्रे वा बनावे। और किसी को दुःख वा किसी के साथ बैर-बुद्धि कभी न करें॥ ६९॥

द्वन्नइत्यस्य सोमाहुतिऋषिः। ग्राग्निद्वता। विराह्णायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर वह स्त्री अपने पति से कैसे २ कहै यह वि०॥

द्वंद्रः मुर्पिरां सुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहंसस्पुत्रो ग्रद्धंतः ॥ ७० ॥

पदार्थ:—हे पते (द्र्तः ) वृक्षादि ओषि ही जिन के अन्न हैं ऐसे (सिपेरासुतिः) घृन आदि पदार्थों की शोधने वाले (प्रतः) मनातन (होता) देने लेने हारे (वरेगयः) स्वीकार करने योग्य (महनः) खलवान् के (पुत्रः) पुत्र (अद्भुतः) आश्रुर्या गुण कर्म और स्वभाव से युक्त आप सुल होने के लिये इस गृहात्रम के बीच शोभायमान हुजिये ॥ 90 ॥

भावार्थ: — यहां पूर्व मन्त्र से (स्वस्तये) (अस्मिन्) (यन्ने) (उ-दिहि) इन चार पदों की अनुस्ति आती है। कन्या को उचित है कि जिस का पिता ब्रह्मवर्ध्य से बलवान् हो और को पुरुषार्थ से बहुत अन्नादि प दार्थी की इक्ट्रा कर सके उस शुद्ध स्वभाव से युक्त पुरुष के साथ विवाह

परस्याइत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवताः । विराङ्गायत्री

छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर पति अपनी स्त्री की क्या २ उपदेश करें यह विव ॥

#### परंस्या अधि मुंबतोऽवंराँ२॥ अभ्यातंर। यत्राहमस्मि ताँ२॥ अंव ॥ ७१॥

पदार्थ — हे कन्ये िम (परस्या:) उत्तम कन्या तेरा मैं (अधि) स्वा-मी हुआ चाहता हूं भी तृ (सम्वत:) संविभाग को प्राप्त हुए (अवरान् ) नीच स्वभावों को (अभ्यातर) उल्लंघन और (यत्र) तिस कुछ में (अ-हम्) मैं (अस्म) हूं (तान्) उन उत्तम मनुष्यों की (अव) रक्षा कर ॥ १९॥

भावार्ध: — कन्या को चाहिये कि अपने से अधिक बल भीर विद्या वाले वा बराबर के पनि को स्वीकार करें किन्तु छोटे वा न्यून विद्या वाले को नहीं। जिस के साथ विवाह करें उस के सम्बन्धी और नित्रों को सब काल में प्रमन्न रक्षे।। 9? ॥

परमस्याइत्यस्य बार्खाणकेषिः। अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक

छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर वह स्त्री अपने स्वामी से क्या र कहे इस विश्व।

प्रमस्याः प्रावतो रोहिदंश्व इहा गंहि। पु-रीप्यः पुरुष्ट्रियोऽग्ने त्वं तंरा मुधः॥ ७२॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) पावक के समान तेजस्विन् विज्ञान युक्त पते (रो-हिद्द्व:) अग्नि आदि पदार्थों से युक्त वाहनों से युक्त (पुरीप्पः) पालने में श्रेष्ठ (पुरुषिपः) बहुत मनुष्यों की प्रीति रखने वाले (त्वम्) आप (इह) इस गृहाश्रम में (परावतः) दूर देश से (परमस्याः) अति उत्तम गुण रूप भीर स्वभाव वाली कन्या की कीर्ति सुन के (आगहि) आइये और उस के साथ (स्थः) दूसरों के पदार्थों की आकांक्षा करने हारे शत्रुओं का (तर) तिरस्कार की खिये ॥ १२॥

भावार्ध: - मनुष्यों को चाहिये कि अपनी कन्या वा पुत्र का समीप देश में विवाह कभी न करें। जितना ही दूर विवाह किया जावे उतना ही अधिक सुख होवे निकट करने में कलह ही होता है॥ १२॥

> यद्ग्ने इत्यस्य जमद्ग्निऋषिः। श्राग्निद्वता। निचृद्नुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर स्त्री पुरुषों के प्रति सम्बन्धी लेग क्या २ प्रतिद्वा करें और करावें यह विवा

#### यदंग्ने कानि कानि चिदा ते दारुंगि दृध्मसि। सर्वे तदंस्तु ते घृतं तज्जुंषस्व यविष्ठ्य ॥ ७३ ॥

पदार्थ:—है (यिवष्ठचं) अत्यन्त युवावस्था की प्राप्त हुए (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष वा स्त्री आप जैसे (कानि कानि चित्त्र) कोई २ भी वस्तु (ते) तेरी हैं वे इस लेग (दारुण) काष्ठ के पात्र में (दध्मिस) धारण करें। (यत्) जो कुछ इमारी चीज़ है (तत्) सो (सर्वम्) सब (ते) तेरी (अस्तु) होवे जो इमारा (घृतम्) घृतादि उपत्म पदार्थ है (तत्) उस को तू (जुषस्व) सेवन कर। जो कुछ तेरा पर्दार्थ है से सब इमारा हो जो तेरा घृतादि पदार्थ है उस को इस ग्रहण करें॥ 93॥

भावार्थ: — ब्रह्मवारी आदि मनुष्य अपने सब पदार्थ सब के उपकार के लिये रक्खें। किन्तु इंघ्यां से आपस में कभी भेद न करें जिस से सब के लिये सुखों की वृद्धि होते। और विघून उठें इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी पर्रस्पर वर्ते॥ 93 ॥

यदत्तीत्यस्य जमद्गिर्ऋषिः। आग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः।गान्धारः स्वरः॥

फर भी वही विषय अगले मंत्र में बहा है।

## यदत्त्यंपजिह्विंका यहुम्रो अंतिसपैति । सर्वे तदंस्तु ते घृतं तज्जुंषस्व यविष्ठ्य ॥ ७४ ॥ 🌂

पदार्थ: — है ( यिवष्ठिय ) अत्यन्त युवायस्था की प्राप्त हुए पते आप और ( उपितिह्निका ) जिस की जिहा इन्द्रिय अनुकूछ अर्थात् वश में है। ऐसी खी ( यत् ) जा ( अति ) मेरजन करें ( यत् ) जा ( वशः ) मुख चे बाहर निकाला प्राणवायु ( अतिमर्पति ) अत्यन्त चलता है (तत् ) वह ( सर्वम् ) सब ( ते ) तेरा ( अस्तु ) हे वि । जा तेरा ( घृतम् ) घी आदि उत्तम पदार्थ है ( तत् ) उस को ( जुबस्त ) सेवन किया कर ॥ १४ ॥

भावार्थ: — जिस पुरुष से पुरुष वा स्त्री का व्यवहार सिंह होता है। उस के अनुकूल स्त्री पुरुष देनों वसे । जो स्त्री का पदार्थ है वह पुरुष का और सो पुरुष का है वह स्त्री का भी होते। इस विषय में कभी द्वेष नहीं करना चाहिये किन्तु आपस में मिल के आजन्द भोगें। 92 ।।

अहरहरित्यस्य नामानिदिर्ऋषिः। ग्राग्निदेवता । विराद्तिष्दुः

प्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर गृहस्थ लेग आपस में कैसे बले यह विश् ।।

## अहरहरप्रयावं भर्न्तोऽइवांयेव तिष्ठंते घा-सर्मस्मै । टायस्पोषेण समिषा मद्रन्तोऽजने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥ ७५ ॥

पदार्थ:—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष (अहरहः) नित्यमित (तिष्ठते) वर्त्तनान (अश्वायेव) जैसे घोड़े के लिये घास आदि खाने का पदार्थ आने धाते हैं वैसे (अस्मे) इस ग्रहस्य पुरुष के लिये (अप्रयायम्) अन्याय से एषक् ग्रहामन के योग्य (घामम्) भोगने योग्य पदार्थी को (सरन्तः) धारण करते हुए (रायः) धन की (धोषण) पृष्टि लघा (इषा) असादि से (संनद्दतः) सम्यक् जानन्द को माप्त हुए (प्रतिवेशाः) धम्मं विषयक

प्रवेश के निश्चित इस छे।ग (ते ) तेरे ऐश्वर्य की (मारिवास ) कभी स-प्रन करें प्र9५ ॥

आखार्थ:—इस मन्त्र में उपमालंग-गृहस्य मनुष्यों की चाहिये कि जै-से घोड़े आदि पशुओं के खाने के लिये जी दूध आदि पदार्थों का पशुओं के पालक नित्य इक्ट्रें करते हैं वैसे अपने ऐश्वर्य की बढ़ा के सुक देवें। और धन के अहंकार से किसी के साथ ईच्चां कभी न करें किन्तु दूसरों की सृद्धि खा घन देख के मदा आनन्द मानें। 94 ॥

नाभेत्यस्य नाभानेदिर्फाषः। अग्निर्देवता । स्वराडार्षी स्त्रिष्ट्य छन्दः। धैवतः स्वरः॥

किर ये मनुष्य छाग आपस में कैसे संबाद करें यह विश् ।।

## नामां पृथिव्याः संमिधाने अग्नौ रायस्पोषांय बृहते हंवामहे । इर्म्मदं बृहदुंक्थं यजंत्रं जेतांरम-ग्निं प्रतंनासु सासहिम् ॥ ७६ ॥

पदार्थ:-ह गृहि छोगो जैसे इम छोग ( इहते ) बहें ( राय: ) छश्मी के ( पोषाय ) पुष्ट करने इारे पुरुष के छिपे ( पृष्टिया: ) पृथियी के ( नाभा ) बीच ( समिषाने ) अच्छे प्रकार प्रज्वछित हुए ( अग्नौ ) अग्नि में और ( एतनाबु ) सेनाओं में ( सासहिम् ) अत्यन्त सहनगीछ ( इरम्मदम् ) अब से आनन्दित होने वाछे ( यहदुक्थम् ) बही प्रशंसा से युक्त ( यजत्रम् ) संग्राम करने योग्य ( अग्निम् ) विजुछी के समान शीघ्रता करने हारे ( जेलारम् ) विजय शीछ सेनापति पुरुष का ( इवामहे ) बुछाते हैं । वैसे तुम क्रीग भी इस की बुछाओा ॥ १६॥

भावार्थ: -- पृथिबी का राज्य करते हुए मनुष्यों की चाहिये कि आफीय भादि अस्त्रों भीर तलवार भादि शक्तों का संसय कर भीर पूर्व बुद्धि तथा शरीर बल से युक्त पुरुष की सेनायित कर के निर्भयता के साथ वर्ते॥ ३६॥

> याः सेनाइत्यस्य नाभानेदिक्षिः। अग्निर्देषता । भुरिगनुष्ट्य छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

राज पुरुषों की येग्य है कि अपने प्रयक्त ने चोर आदि हुष्टों का बार २ निवारण करें यह विश् । 🗶 💯

याः सेनां अभीत्वंशीराव्याधिन्नीरुगंणा उत । ये स्तेना ये च तस्कंग्रास्ताँस्ते अग्नेऽपिं दधा-म्यास्ये ॥ ७७ ॥

पदार्थ:—है नेना भीर सभा के खानी जैसे में (या:) जा ( सभी-त्थरी:) संमुख है। के युद्ध करने हारी ( भाव्याधिनी:) सहुत रोगों से युक्त सा ताइमा देने हारी ( उगणा: ) शखों को लेके विरोध में उद्यत हुई ( सेना: ) सेना है उन ( उत ) और ( ये ) जा ( स्तेना: ) सुन्द्र लगा के दूनों के पदार्थों को हरने वाले ( च ) और ( ये ) जो ( तस्करा: ) दून भादि कपट से दूनरों के पदार्थ लेने हारे हैं ( तान् ) उन हो ( ते ) इन ( अन्ने ) अन्नि के ( अन्ये ) कलती हुई लपट में ( अपिद्धानि ) नेरता हूं वैसे तू भी इन को इस में अरा कर ॥ 99॥

भावार्थ:—इस नंत्र में वाचकलु - धर्मात्मा राजपुरुषों को चाहिये कि जी अपने अनुकूल सेना और प्रजा हैं। उन का निरम्तर सत्कार करें और जी सेना तथा प्रजा विरोधी हो तथा हाकू चीर खोटे वचन बोलने हारे निश्वादादी व्यभिचारी मनुष्य होवें उन की अग्नि से जलाने आदि अयंकर द्यहों से शीच्र ताहुना देकर वश में करें।

दंष्ट्राभ्यामित्यस्य नाभानेदिर्ऋषिः। ग्राग्निदंबता।
भारगुष्णिक्छन्दः। मत्यभः स्वरः॥ ५५००००
किर उन दुष्टी को किन २ मकार ताइना करें यह कि।।
दंष्ट्राभ्यां मुलिम्लून् जम्म्येस्तस्कंराँ२॥ उत।
हनुभ्याथस्तेनान् मंगवस्ताँस्त्वं खांद मुखांदिन्तान्।। ७८॥

٠.

पदार्थ:—हे (भगवः) ऐश्वर्य वाले समा के स्वामी जैने (त्वम्) आप (जम्भेषेः) सुल के जीम आदि अवयवें और (द्राभ्याम्) सीक्ष्म द्वितं से जिम (मिल्फ्लून) मलीम आवरण वाले सिंह आदि की सीर (इमुभ्याम्) महूंहों से (तस्करान्) चोरों के समाम वर्षमान (सुला-दिसान्) अन्याय से दूनरें के पदार्थों के भोगने और (स्तेमान्) रात में भीति आदि फोड़ तेरह के पराया माल मारने हारे मनुष्यें को (खाद्) जह से मह करें वैसे (तान्) उन के। हम लोग (उत्) भी मह करें ।। 30 ।।

भावार्थ: -- राज पुरुषों की चाहिये कि जी गी भादि बहे उपकार की पशुओं की मारने वाले सिंह भादि वा मनुष्य हो उन तथा जी चेर आदि मनुष्य हैं उन की अनेक प्रकार के बन्धनों से बांध ताइना दे नष्ट कर वश में खावें || 95 ||

येजनेष्टित्रसम्य नाभानेदिऋषि । सेनापतिर्द्वता ।

ि निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः॥
किर ये राजपुरुष किस २ का निवारण करें यह वि०॥

#### ये जनेषु मुलिम्लेवस्तेनामुस्तस्कंरा वने । ये कक्षंष्वघायवुस्तांस्तं दधामि जम्भयोः ॥ ७९ ॥

पदार्थ:— हे सभापते में चेनाध्यक्ष (थे) जो (कन्धु) मनुष्यों में (मलिम्लवः) मलीन स्त्रसाव से आते जाते (स्तेनासः) गुप्त चोर जो (वने) वन में (तस्कराः) प्रसिद्ध चेर लुटेरे और (ये) जो (कत्तेषु) कटरी आ दि में (अधायवः) पाप करते हुए जीयन की इच्छा करने वाले हैं (तान्) उन को (ते) आप के (जम्मयोः) फैलाये मुख में पास के समान (द-धामि) धरता हूं ॥ १९॥

भावार्थ:- सेनायति आदि राजपुरुषों की यही मुख्य कर्त्रव्य है कि जी। ग्राम भीर बनें में प्रशिष्ठ चेर तथा लुटेरे आदि पायी पुरुष हैं उन की राजा के आधीन करें।। ७०।।

योग्रस्मभ्यमित्यस्यनाभाने दिर्श्वाचेः। अध्यापकोपदेशकौ देवते । अनुष्टृप्छन्दः । गान्धारः स्वरः॥ पिर भी वहीं। वि ।।

#### यो अस्मम्यमरातीयाद्यश्चं नो हेषंते जनः। निन्दाद्यो अस्मान् धिप्सांच सर्वे तं मंस्मसा कुंरु॥ ८०॥

पदार्थ:—हे सभा और सेना के स्वामिन् आप (यः) जो (जन:)
मनुष्य (अस्मम्यम्) हम थम्मांत्माओं के लिये (अरातीयात्) शत्रुना
करे (यः) जे। (नः) इमारे साथ (द्वेषते) दुष्टता करें (च) और इमारी
(निन्दात्) निन्दा करें (यः) जे। (अस्मान्) हम के। (धिण्डात्) द्रमा
दिखावे और इमारे साथ छल करें (तम्) उन्न ( भवंम् ) सब को (भरमसा)
जला के संपूर्ण भरम (कुत्र ) की जिये।। ८०।।

भावार्थः — अध्यापक उपदेशक और राजपुत्रवें को चाहिये कि पढ़ाने शिक्षा उपदेश और दशह से निरन्तर विरोध का विनाश करें। [ 40 ]]

संशितिमत्यस्य नाभानेदिऋषिः । पुरोहितयजमानौ देवते । निचृदापी पंक्तिइछन्दः । पंचमः स्वर ॥ अब पुरोहित यजनान आदि से किस २ पदार्थ की ४०छा करे॥

## सक्ष शितं में ब्रह्म सक्ष शितं वृद्धिं वरुम् । सक्ष शितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८१ ॥

पदार्थ: —( अहम् ) में ( यस्य ) जिस यजनाम पुरुष का (पुरोहितः) प्रथम थारण अरने हारा ( अस्मि ) हूं उन का और ( मे ) मेरा ( संशित्म् ) प्रश्नम के योग्य ( ब्रष्टा ) बेद का विश्वाम । और उस यजमान का ( संशितम् प्रश्नम के योग्य ( वीर्यम् ) पराक्रम प्रशंसित ( ब्रुम् ) बरु ( संशितम् ) और प्रशंना के योग्य ( जिल्लु ) जय का स्वभाव वाला ( संश्रमम् ) क्षत्रिय कुल होते ॥ ८१ ॥

भावार्थ: -- को जिन का पुरोहित और जो जिस का यजमान है। वे दैं। में आयम में जिन विद्या के योग बल और घर्ना पर स सात्मा की चक्रति भीर ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियता तथा आरेश्यता से शरीर का बल बहे बही कर्म निरन्तर किया करें॥ ८१॥

खदेषामित्यस्य नाभानेदिर्श्वाषः । सभापतिर्यजमानो देवता । विराहनुष्टुष्कन्दः । गान्धारः स्वरः॥

किर यसमान पुरेहित के साथ कैसे वर्त्त यह बिट ॥

#### उदेषां बाह् अंतिरमुद्दचों त्र्रथो बलंम् । श्चिगोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामिस्वाँ २॥ अहम् ॥ ८२॥

पदार्थ: — ( अइम् ) में यजनान वा पुरे। हित ( ब्रह्मणा ) वेद श्रीर देखर के ज्ञान देने से ( एवाम् ) इन पूर्वोक्त चोर आदि दृष्टों के ( बाहू ) वल श्रीर पराक्रम की ( उदितरम् ) अच्छे प्रकार लल्लहुन कतं ( वर्ष: ) तेज तथा ( बलम् ) सामर्थ के श्रीर ( श्रीमंजन् ) श्रृजों की ( उरिक्षणों नि ) नारता हूं ( अथो ) इन के पञ्चात् ( स्वान् ) अपने मित्रों के तेज श्रीर सामर्थ को ( उल्लामि ) वृद्धि को साथ प्राप्त कर्ता। ८२।।

भावार्थ: — राजा आदि यजमान तथा पुरे हितों की चाहिये कि पा-पियों के सब पदार्थों का नाश और धर्मात्माओं के सब पदार्थों की वृद्धि सदैव सब प्रकार से किया करें।। ८२।।

ु अञ्चपतहत्यस्य नाभानोदिर्ऋषिः।यजमानपुरोहितौ देवते। उपरिष्ठाद्बृहती छन्दः। सध्यमः स्वरः॥ अब मनुष्यो के। इस संसार में कैसे २ वर्तना इस वि०॥

त्रुन्नंपतेऽन्नंस्य नो देह्यनम्।वस्यं शुष्मिर्गाः। प्रप्रं दातारं तारिष् ऊजी नो धोहि द्विपदे चतुंष्पदे

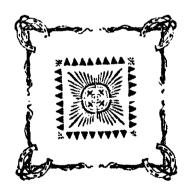
#### 11 63 11

पदार्थ:--हे ( अक्रवते ) जीवधि अक्षों के पालन करने हारे यजनान वा पुराहित आप ( नः ) हनारे लिये ( अनमीवस्य ) रीगों के नाश से श्वस के। बढ़ाने ( पुष्टिमण: ) बहुन बलकारी ( क्रमस्य ) अस के। ( प्रप्रदेखिं ) क्रितिप्रकर्ष के साथ दी जिये और इन अस के ( दातारम् ) देने हारे की। ( तारिष: ) त्रप्रकर तथा ( नः ) इनारे ( द्विपरें ) दे। पगवाले मनुष्या-दि तथा ( क्रमुंच्ये ) चार पगवाले गी आदि पशुओं से लिये ( क्रजंम् ) पराक्रम के। ( चेहि ) चारण कर ॥ ८३॥

भाषार्थ: --- मनुष्यं के चाहिये कि सदैव बसकारी आरोग्य कक जाय सेवें जीर दूसरें के देवें। मनुष्य नथा पशुक्रों के सुख और बस बढ़ावें। जिस से देवद की सृष्टिक मारनुकूल आचरण से सब के सुसों की सदा उन ति होते। दु।

इस अध्याय में गृहस्य राजा के पुरेशिहत सत्ता और सेना के अध्यक्ष और प्रजा के मनुष्यों के। करने येग्य कर्म भादि के वर्णन से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी च।हिये ।।

यह यजुर्वेद्भाष्य का ग्वारहकां ११ अध्याय पूरा हुआ ॥



#### त्र्राय द्वादशाध्यायारम्मः ॥

#### विश्वांनि देव सवितर्दुश्तितानि परांसुव । य-इद्वं तन्न आसुव ॥ १ ॥

ह्यानइत्यस्य वत्मप्री ऋषिः। ऋषिनर्देवता । भुरिकपश्कि-इछन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

भव बारहवें भध्याय का भारमा किया जाता है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणा का उपदेश किया है।। हुशानों कृषम उच्ची ठयंद्यींद्रुमधुमायुंः श्चिये रुंचानः । अग्निर्युतों अभवद्वयों भियदेनं द्यार-जनयत्मुरेतांः ॥ १॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो जैते (हशान:) दिखलाने हारा (द्यौ:) स्वयं प्रकाशस्वस्य (अन्तः) सूर्यस्य अन्ति (उद्यां) अतिरष्ट्रल भूमि के माध्य सब सूर्तिमाम् पदार्थों के (व्यद्यीत्) विविध प्रकार से प्रकाशिन करता है वैसे जो (जिये) (स्थानः) सीभामान्य लक्ष्मी के अर्थ स्थि कर्ता (स्वमः) सुशोभित जम (अभवत्) होता और जो (सुरेताः) उत्तम वोर्य युक्त (अमृतः) नाशरहित (दुर्मर्थम्) शत्रुओं के दुख से निवारण के योग्य (अग्युः) जीवन को (अजनयत्) प्रकट करता है (वयोनिः) अवस्थाओं के साथ (एनम्) इस विद्वान् पुरुष को प्रकट करता हो उस को तुम सदा निरम्तर सेवम करे।॥ १॥

भावार्थः — इस मन्त्र में वाचकलु० जैसे इस जगत् में सूर्य आदि सब पदार्थ अपने २ दूष्टान्त से परमेश्वर की निश्चय कराते हैं। वैसे ही मनुष्यें। को होना काहिये ॥ ९॥

> नक्तीषामृत्यस्य कुत्सक्ताषः । ग्राग्नदेवता । भृतिगाषीत्रिष्टुण्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ किर भी बही वि० ॥

#### नक्तंषामा समनमा विद्धेषे धापयेते शिशु-मेकंश्रसमीची। द्यावात्तामां कृक्मो अन्तर्विभां-ति देवा अगिनन्धार्यन्द्रविणोदाः॥ २॥

पद्धि:—हं मनुष्यो निष (अग्निम्) बिजुली की (द्रविणोदाः) बछदाता (देवाः) दिध्य प्राण (धारयम्) धारण करें जो (हक्मः) हिन्नकारक हो के (अन्तः) अन्तःकरण में (यिमाति) प्रकाशित होता है जो
(समनमा) एक विचार में विदित (बिक्पे) अन्धकार और प्रकाश से विहु युक्त (समीची) सब प्रकार सब को प्राप्त होने अली (द्यावाहामा)
प्रकाश और भूमि तथा (नक्तोचामा) रात्रि और दिन जैमे (एकम्) एक
(शिशुम्) बालक को दे। माता (धापयेते) दूध पिलाती हैं वैसे नस को
तुम लोग जानो।। २।।

भावार्थ:-इस मन्त्र में बाबकलु०-जैसे जननी माता और धायी बा-छक की दूध पिछाली हैं वैसे ही दिन और रात्रि सब की रक्षा करती है और जो बिजुड़ी के स्त्रक्षप से सर्वत्र व्यापक है इस बात का तुम सब जि-बाब करो।। २॥

बिह्वारूपाणीत्यस्य इयावाद्दवऋषिः। सविता देवता।
विराइजगती इन्दः। निषादः स्वरः॥
भव भगछे नम्त्रुमें परमेश्वर के कर्त्तव्य का उपदेश किया है॥
विद्वां रूपाणि प्रतिमुञ्जते कृविः प्रास्तिन

## <u>इदं हिपदे</u> चतुंष्पदे। विनाकंमख्यत्स<u>विता वरे</u>-ण्योऽनुं प्रयागांमुष्मो विराजिति ॥ ३ ॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो जो ( वरेषयः ) ग्रहण करने योग्य ( किवः ) जिल की दृष्टि भीर खुद्धि सर्वत्र है वा सर्वत्र ( स्विता ) सब संसार का स्ट्यादक जगदीश्वर वा भूट्यं ( उपमः ) प्रातःकाल का समय ( प्रथाणम् ) प्राप्त का को (अनुविराजित) प्रकाशित होता है ( विश्वा ) सब ( क्र्याणि ) पर्वार्थों के स्वरूप ( प्रतिमुक्ति ) प्रिवृद्ध करता है भीर ( द्विपदे ) मनुष्यादि दो प्रग वाले ( चतुष्यदे ) तथा भी कादि चार प्रग वाले प्राणियों के लिये ( साकत्र ) सब दुः माँ ने प्यक् ( भद्रम् ) सेवने योग्य खुख को ( ठपक्यम् ) प्रकाशित करता और ( प्रामावीत् ) सकति करता है ऐने उस मूर्य लोक को उत्यक्ष करते वाले ईपवर को तुम लोग जानो । । ३ ॥

आवार्थः — इन मन्त्र में इहिवाहं 0 — जिन परमेश्वर ने संपूर्ण इरण्वाम् दूर्वों का वकाशक प्राणियों के सुख का हेतु प्रकाणनान सूर्य हो करका है सुसी की भक्ति सब समुख्य करें।

सुपर्णोऽसीत्यस्य इयायाद्व ऋषिः। गरुत्मान् देवता । भृतिइछन्दः। ऋष सः स्वरः॥ विर विद्वानीं के गुणीं का स्वरः॥

मुप्णें। सि गुरुत्मीं स्ति खते शिरी गायत्रं च-क्षंतृहद्रथनतरे पृक्षी स्तोमं आत्मा छन्द्राधस्यङ्गी-नि यज्रं धिष्पे नामं । सामं तेतन् वीमुद्देव्यं यंज्ञा-यि ये पुच्छं धिष्पे थे शिष्पे । सुप्णें। सुप्णें। सुप्णें। रत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥ ४॥ पाद्यः — है विद्वन् जिस ने ( ते ) आपका ( तिवत् ) तीन करमें एपासना और जानों से युक्त (शिरः) दुःखों का जिस से नाश हो (गायत्रम्)
गायत्री छग्द से कहे विज्ञानकृत अर्थ ( जलुः ) नेत्र हहद्रमन्तरे बहे २ रथों
के सहाय से दुःखों को छुड़ाने वाले ( गसी ) इथर रुधर के अवयव (स्तोमः)
स्तुति के योग्य कानेद ( आत्मा ) अपना स्वकृत ( छग्दांनि) तिष्णक् आदि
छग्द ( अङ्गानि) कान आदि ( यहूंचि ) यजुर्वेद के नन्त्र ( नाम ) नाम (यज्ञायित्रयम्) ग्रहण करने और छोड़ने घोष्य त्यवहारों के योग्य (वामदेव्यम्)
(वामदेव ऋषि ने जाने वा पदाये है ( साम ) मीनरे सामवेद ( ते ) आपका
( तत्रः ) शारीर है इमसे आप ( गरुतमान् ) महात्मा ( द्वपणः ) खुन्दर संपूर्णे लक्षणों से युक्त ( अनि ) है । जिम से ( धिट्यपाः ) शहर काने के हेतुभों में साधु ( शक्ता ) खुन तथा ( पुक्छम् ) अर्ड़ी पूंछ के समाम अन्त्य का
अवयव है दम के ममान जेर ( गरुतमान् ) प्रशंनित शहरोष्ट्रारण से युक्त ( सुपर्णः) छन्दर तहने वाले ( आम ) है तम पर्शा के समान आप ( दिवस् )
छन्दर विज्ञान की ( गरुछ ) भाग्न हू निये और ( स्वः ) सुस् की ( पत्र ) ग्रइण की विये । ४ ॥

भाषाथी:— इस मन्त्र में बाचकलु० - जैसे सुन्दर शास्ता पत्र पुष्प कर भीर मूलें से युक्त खुक शिमित होते हैं। दैसे ही बंद।दि शास्त्रों के पढ़ने और पड़ाने हारे सुशामित होते हैं। जैसे पशु पूंछ आदि अवचर्ता से अ-पने काम काते और जैसे पर्ता पति। पति। पति। से आक श मार्ग में काते आते आत- रिद्त होते हैं दैसे मनुष्य विद्या और अच्छी शिक्षा की प्राप्त हो। पुनवार्ष के साथ सुन्दों की प्राप्त हों। 8 |

विष्णोः क्रमइत्यस्य इयाबाइव क्रिषः। विष्णुरैवता सुरिग्र-त्कृतिइक्कन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर भी अगले मन्त्र में राजधर्म का नपदेश किया है।।

विष्णोः क्रमींऽसि सपत्नुहा गांयुत्रं छन्द् आ-रोंह प्रथिवीमनु वि क्रमस्व विष्णोः क्रमींऽस्य- मिमातिहा त्रेष्ट्रमं छन्द आरोहान्तिरक्षमनु वि क्रमस्व । विष्णोःक्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जा-गंतं छन्द आरोह दिवमनु विक्रमस्व विष्णोःक-मोऽसि शत्र्यतो हन्ताऽऽन्तंष्टुमं छन्द ग्रारोह दिशोऽनु विक्रमस्व ॥ ५ ॥

पटार्थ: है विद्वन पुरुष जिम से आप ( विष्णोः ) ठ्यापक जगदीश्वर की (फ्रामः) ठववहार से शोधक (सपलहा) और शत्रुओं की कारने हारे ( असि ) हो इस से ( गायश्रम् ) गायश्री मन्त्र में निकले ( छन्दः ) शुद्ध अर्थ पर ( कारोइ ) आऋढ़ हू जिये । पृथिवीम् ) पृथिवगदि पदार्थी से ( अनु-विकानस्व ) अपने अनुकूल व्यवहार साधिये तथा जिस कारण आप ( वि-डणी: ) ठयापक कारण की ( क्रम: ) कार्य कृत ( अभिनातिहा ) अभिना-नियों को मारने इपरें (असि ) हैं इस से आप ( श्रेब्ट्सम् ) तीन प्रकार की सुकों से मंयुक्त ( छन्दः ) बलदायक वेदार्थ को ( भारोह ) ग्रहण और। भ-न्तरिक्षम् ) आकाश की ( अनुविक्रमस्व ) अनुकूलव्यवद्वार में युक्त कौतिये जिस से काप (विष्यो:) ठयापनशील बिजुली काय अगिन के (कन:) कानने इन्हें ( अरातीयतः ) विद्या आदि दान के विरोधी पुरुष के (इन्ता) माश करने हारे ( असि ) हैं इस से आप ( कागतम् ) नगत को कानने का हेतु ( खन्दः ) स्रष्टि विद्याको अलयुक्त कः ने द्वारे विद्यान को ( आरोइ ) माप्त हू जिये और ( दिवम् ) सूर्य आदि अधिन को ( अनुविकास्त ) अनु-कम से उपयुक्त की जिये जो आप ( विष्णो: ) हिरववगर्भ वायु के ( कमः ) भागक तथा ( प्रत्रूयतः ) अपने को शत्रु का आवरता करने वाले पुरुषों के ( इन्ता ) सारने बाले ( असि ) हैं मी आप ( आनुष्टु भम् ) अनुकूलता के साथ ग्रुस सम्बन्ध के हेतु ( छन्दः ) भानन्दकारक देद भाग को ( भारीह ) उपयुक्त की जिये और (दिशः) पूर्व आदि दिशाओं के ( अनुविक्तमस्व ) अनुकुछ प्रगत्न की जिथे ॥ ५॥

भाषार्थ: — मनुष्यों का चाहिये कि वेद विद्या में भूगर्भ विद्याओं का निद्यय तथा पराक्रम से सम की सकति करके रेग्य भीर शत्रकों का नाश करें।। प्रा

अऋन्द्दित्यस्य बत्समी ऋषिः। भगिनर्देवता। निष्टृदार्षी चिष्टृप्छन्दः। धैवनः स्वरः॥ फिल्मी वशी विश्वा

## श्रक्रेन्द्रुग्निस्तुनयंत्रित्र द्याः क्षामा रेरिहर्द्याः रुधः ममञ्जन । मद्यो जंज्ञानो विहीमिद्धा श्र-ख्यदा रादंभी भानुनां भात्यन्तः ॥ ६ ॥

पदार्थ: — हे मनुष्यों को मभापति ( मदाः ) एक दिन में ( जञ्चानः ) प्रमिद्ध हुआ ( द्यौः ) मूर्य प्रकाश रूप ( अग्निः ) विद्युत् अग्नि से समान ( स्नमपत्तिव ) शब्द करना हुआ शब्द मों को ( अक्रन्दत् ) प्राप्त होता है जैसे ( सामा ) एथिबी (बीमपः) वृक्षों को फल फूलों मे युक्त करती है वैसे प्रजाओं के लिये सुखों को ( रेग्हित् ) अच्छे बुरे कमों का शीघ्र फल देता है जैसे सूर्य ( इद्वः ) प्रदीप्त और ( मनव्जन् ) मन्यक पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ ( रोदमी ) आकाश और प्रथिबी को (व्यव्यत्) प्रनिद्ध करता कीर ( मानुना ) अपनी दीप्ति के माथ ( अन्तः ) सब लोकों के बीच (आन्ताति ) प्रकाशित होता है । वैसे जो मभापति शुप्त गुण कमों से प्रकाशित हो उस को तुम लोग राज कार्यों में स्यक्त करो ।। ६ ॥

भावाध:-- इन मन्त्र में उपमा और वाचकलु०-- हे मनुष्यो जैसे पूर्य सब लोकों के बीच में स्थित हुआ सब की प्रकाशित और आकर्षण करता है और जैसे पृथित्री बहुत फलों को देती है। बैमे ही मनुष्य को राज्य के कार्यों में अब्दे प्रकार से उपयुक्त करी ॥ ६॥

ग्रागहत्यस्य बत्सपी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्ष्यः नुष्ठुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ कर विद्वानों के गुके का उन्देश अगले मन्त्र में करता है।।
अग्नें ऽभ्यावर्त्तिन्नुभि मा नि वंर्त्तस्वायुंखा
वर्चेसा प्रजया धनेन । मन्या मध्या गृथ्यां पोवेण ॥ ७॥

पदार्थ: — है ( अभ्यावर्त्तम् ) सन्मुख हो के वर्त्तने वाले ( अग्ने ) ते-चर्ची पुरुषार्थी विद्वान् पुरुष आप ( अग्युषा ) कहे जीवन ( वर्षमा ) अस तथा पढ़ने आदि ( प्रजया ) सन्तानों ( पर्नत ) धन ( एन्या ) सब विद्या-ओं का बिसाग करने हारी ( सेधया ) बुद्धि (रच्या) विद्या की जीभा और ( योषेण ) पुष्टि के माथ ( अभिनिवर्त्तस्व ) निरन्तर वर्त्तमान हूलिये और ( सा ) सुक्त को भी इन उक्त पदार्थों ने संयुक्त की जिये ॥ 9 ॥

भावार्थ: - मनुष्य लोग भूगभोदि विद्या के विना ऐक्वर्य की प्राप्त भीर बुद्धि के विना विद्या भी नहीं हो पकती ॥ 9 ॥

स्रानेस्रङ्गिरहत्यस्य बरसत्री ऋषः। अग्निदंवना । आर्थोः त्रिष्ट्रण्डन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर विद्याभ्यास करणा चाहिये यह विश्रा

अग्ने ग्रङ्गिरः शतं ते सन्त्वारतः महस्रं त उपावृतः । अधा पोषंस्य पोषंण पुननी नष्टमा कृधि पुननी रुपिमा कृधि ॥ ८ ॥

पद्मिं:—है (अग्ने) पदार्थ विद्या के जानने हारे (अङ्गरः) विद्या के बिक्क विद्वान् पुरुष जिन पुरुषाधीं (ते) आप को अग्नि के मनान (शरुष) सैकड़ें (आवृतः) आवृत्तिरूप क्रिया और (महस्त्रम्) हजारह (ते) आप के (स्वावृतः) आवृत्ति रूप सुखें के भाग (सन्तु) हे।वें (अध) इस के पश्चात् नाप इन से (पोषस्य) पे।यक मनुष्य की (पोषण) ग्ला मे (महम्) परीक्ष भी विद्यान की (नः) हमारे लिये (पुनः) किर भी

( आक्रिय ) अच्छे प्रकार की जिये सथा बिगड़ी हुई (रियम्) प्रश्रेषित ही-प्रा की ( पुनः ) फिर भी ( नः ) हमारे अर्थ ( आकृषि ) अच्छे प्रकार की-जिये ॥ ८ ॥

भावाथ:—मनुष्यां का याग्य है कि विद्याओं में सैकड़ें। आवृत्ति और शिम्प विद्याओं में इजारह प्रकार की प्रवृत्ति से विद्याओं का प्रकाश कर

पुनरुर्जेत्यस्य वत्सर्वा ऋषिः। अग्निदेवता । निचृदार्षीगा-

पत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर पढ़ाने इस्रे का कर्लाव्य अगले मंत्र में कहा है॥

# पुर्नर्ङ्जो निवर्त्तस्<u>व</u> पुर्नर्ग्न इपायुपा । पुर्न-

र्नः पाद्यक्षहंसः ॥ ९ ॥

पदार्थ:—है ( अन्ते ) अग्नि के समान तेजस्वी अध्यापक विद्वाम् जान आग्न ( मः ) इन लंगें। को ( अंहनः ) पापें। से ( पुनः ) बार २ (निवर्तस्व) बचाइये ( पुनः ) फिर इन लोगें। की ( पाहि ) रसा की जिये और ( पुनः ) फिर ( इवाः ) इच्छा तथा ( आयुवा ) अन्न से ( कार्को ) पराक्रमयुक्त कर्मी को प्राप्त की जिये ॥ ८॥

भावार्थ: - विद्वान् होगों की चाहिये कि सब उपदेश के योग्य मनुर्चेत को पापों से निरन्तर इटा के शरीर और मात्मा के बढ़ से युक्त करें और भाप भी पापों से बच के परम पुरुषार्थी होतें। ए॥

सह रयोत्यस्य बत्सभी ऋषिः। ग्रग्निर्वेवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर भी उक्त विश्व।

मह रया निवंर्त्तस्वाग्ने पिन्वंस्व धारंया । विश्वप्रन्यां विश्वतस्परिं॥ १०॥ पदार्थ:—है ( अने ) तेजस्वी विद्वान् पुरुष आप दुष्ट व्यवहारों है ( निवर्तस्व ) एथक् हू जिये ( विद्याप्तन्या ) सब भागने येल्य पदार्थी की भुनवाने झारी ( धारया ) संपूर्ण विद्याओं के धारण करने का हेतु वाणी तथा ( रच्या ) धन के ( सह ) साथ ( विश्वतः ) सब ओर से ( परि ) सब प्रकार ( पिन्वस्व ) सुर्शे का नेवन की जिये ॥ १०॥

भावार्थः — विद्वान् पुरुषें को चाचिये कि कन्नी अधम्में का आचरण न करें। और दूनरें को वैना उपदेश भी न करें इन प्रकार सब शास भीर विद्याओं ने विराजनान हुए प्रशंना के योग्य होवें।। १०॥

भ्राचेत्यस्य ध्रुव ऋषः । अग्निद्वता । भार्यनुष्टुष्कन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर राजा और मजा के कम्मों का उपरेश मगडे मंत्र में किया है। आ त्वांहार्षम्नत्तरं मूर्धुवस्तिष्ठाविचाचितः। विशंस्त्वा सर्वा वांञ्छन्तु मा त्वढाष्ट्रमधिभ्र-शत्॥ ११॥

पदार्थः — हे शुभ गुण और लक्षणों से युक्त सभापति राजा (त्वा) आप को राज्य की रक्षा के लिये में (अन्तः) सभा के बीच (आइ। धंम्) अच्छे प्रकार ग्रहण कक्षं। आप सभा में (अन्नः) विराज्यमान हू जिये (अ-विचाचलिः) मर्वया निवल (भूवः) न्याय से राज्य पालन में निवित बुद्धि हो कर (तिष्ठ) स्थिर हू जिये (सर्वाः) संपूर्ण (विषः) प्रका (त्वाः) आप को (वाक्छन्तु) चाहना करें। (त्वत्) आप को पालने से (राष्ट्रम्) राज्य (माधिअशत्) नष्टश्रष्ट न होते। १९॥

भावार्थ: -- उत्तम प्रकाशनों को चाहिये कि सब से उत्तम पुरुष को सभाष्यक्ष राजा मान के उस को उपदेश करें कि आप जितेन्द्रिय हुए सब काल में धार्मिक पुरुषार्थी हूजिये। आप के बुरे आवरणों से राज्य कभी मह न होते। जिस से सब प्रजा पुरुष आप के अनुकूल वर्ते। ११॥

खदुत्तममित्यस्य शुनःशेष ऋषिः। वरुषो देवता । विराहाः र्षी श्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ फिर भी वही बि०॥

# उदुंत्तमं वंरुण पाशंमुस्मदवांधमं वि मंध्युम् श्रंथाय । ग्रथांव्यमांदित्य व्रते तवानांगमो अ-दित्ये स्याम॥ १२॥

पद्रार्थ: -- हे ( वरुण ) शतुओं की बांधने ( आदित्य ) कारत से किन्ति विद्वान् आप विमाशी सूद्ये के समान सत्य न्याय का प्रकाशक सभापति विद्वान् आप ( जस्मत् ) इस से ( अध्यम् ) निरुष्ट ( मध्यमम् ) मध्यस्य और ( उस्मान् म् ) रुत्तन ( पाशम् ) बन्धन को ( उद्वविश्रधाय ) विविध प्रकार से खुड़ा । इये ( अध ) इस के पञ्चात् ( वयम् ) इन प्रका के पुरुष ( अदित्ये ) पृथिने वी के अखिरत राज्य के लिये ( तव ) आप के ( व्रते ) सत्य न्याय के पान् लन रूप नियम में ( अनागसः ) अधराध रहित ( स्थाम ) होतें ॥ १२ ॥

भावार्ध:- जैसे इंश्वर के गुण कर्न और स्वभाव के अनुकूछ सत्य जा- है। चर्या में वर्शनान हुए भर्मात्मा मनुष्य पाप के बन्धने से छूट के सुकी होते हैं जैसे ही समन राजा को प्राप्त है। के प्रजा के पुरुष आनन्दित होते हैं॥ १२॥

> म्बरनेषृहक्षित्यस्य चितन्त्रक्षिः । म्बरिनदेवता । भुरि-गार्षी पंक्तिइक्टन्दः । पश्चमः स्वरः ॥

> > फिर भी बड़ी वि०॥

अग्रें बुहन्नुषसांमूध्वों अस्थान्निर्जग्नवान् तमंसो ज्योतिषागांत् । अग्निर्मानुना रुशंता स्वङ्ग आजातो विश्वासर्मान्यप्राः ॥ १३॥

पदार्थ:—हे राजन् को भाष ( अन्ने ) पहिले से जैसे सूर्य ( स्वक्नः ) क्षम्दर अवपने से युक्त ( अकातः ) प्रकट हुआ ( एहन् ) बड़ा ( उपसाम् ) प्रभातों के ( कथ्वैः ) कपर आकाश में ( अस्थात् ) स्थिर होता और (ह-धता ) हन्दर ( भानुना ) दीप्ति तथा ( उपोतिषा ) प्रकाश से ( तनसः )

अन्थकार की (निर्जगन्वान्) निरन्तर षृथक् करता क्षुआ (आगात्) सब लेक लेकान्तरीं के। प्राप्त होता है (विश्वा) सब (सद्मानि) स्थूल स्प्रभीं की (अप्राः) प्राप्त होता है उस के समाम प्रचा के बीच आप दूर्-जिये॥ १३॥

भावार्थः — जे। सूर्यं के समान मेष्ठ गुन्ने से प्रकाशित सत्पुक्षों की क्रिका से उत्कृष्ट खुरे व्यक्षने। से अलग मत्य न्याय से प्रकाशित सुग्दर अव संख वाला सर्वत्र प्रसिद्ध सब के सत्कार और जानने येग्य व्यवहारें। का क्रीका और दूतों के द्वारा सब ममुख्यों के आशय की जानने वाला शुद्ध स्थाय से प्रजाकों में प्रदेश करता है वही पुरुष राजा होने के योग्य होता है।।१३।।

हंसइत्यस्य जितन्निषः। जीवेदवरी देवते। स्दराङ्-

जगर्ता छन्दः। निषादः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में परमात्मा भीर जीबाँके लक्षण कहे हैं।।

हथसः शुंचिषदसुरन्तरिक्षसद्धोतां वेदिषद-तिथिईरोणसत् । नृषदंरमदंत्सद्व्यं।मसद्ब्जा ग्रांजा ऋंतजा अंद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ १४॥

पद्धि:—हे प्रजा के पुरुषं तुन लः गर्जा (हंसः) दुष्ट कम्मी का नाशक (शुचिषत्) पवित्र व्यवहारों में वर्तमान (बद्धः) सज्जनों में वसने वा
उन को वसाने वाला (भन्तिरक्षमत्) धर्म के अवकाश में स्थित (होता)
सत्य का ग्रहण करने और कराने वाला (वेद्यत्) सब पृथिकी वा यश्च
के स्थान में स्थित (अतिथिः) पूजनीय वा राज्य की रक्षा के लिये यथीचित समय में अनण करने वाला (दुरोणसत्) क्षतुओं में सुखद्ायक आकाश में व्याप्त बा घर में रहने वाला (च्यत्) सेना आदि के नायकों का
अधिष्ठाता (वरमत्) उत्तम विद्वानों की आज्ञा में स्थित (ऋतसत्) सत्याचरगी में आहड़ (व्योगसत्) आकाश के समान सर्व व्यापक इंश्वर वा
जीव स्थित (अठजाः) प्रागी के प्रकट करने हारा (गोजाः) इन्द्रिय वा

पशुओं की प्रसिद्ध करने द्वारा (ऋतजाः) सत्य विद्यान की सत्यक्ष करने द्वारा (अद्विजाः) मेचें का वर्षाने वास्ता विद्वान् (ऋतम्) सत्य स्वद्धप (वृद्धत्) अननतब्रह्म और जीव की जाने उस पुरुष की सभा का स्वामी राजा बना के निरन्सर आनन्द में रही !! १४ !!

भावार्धः — जो पुरुष ईश्वर के समान प्रजाओं की पालने और सुख देने को ममर्थ हो बही राजा होने के योग्य होता है। और ऐसे राजा के विना प्रजाओं के सुख भी नहीं हा सकता ॥ १४॥

सीद त्वमित्यस्य जित ऋषिः। अग्निर्देवता। विराद जिष्टुप्

छन्दः। घैततः स्वरः॥

माता का कम्मे अग०॥

सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे विश्वांन्यग्ने वयु-नानि विद्वान् । मनां तपंमा मार्चिषाऽभिशों- -चीर्नतरंस्याथ शुक्रज्जयोतिर्वि भांहि॥ १५॥

पदार्थ: — हे ( अने ) विद्या की चाहने वाले पुरुष ( तवन् ) आप ( कर्माम् ) इस माना के विद्यमान होने में ( विसाहि ) प्रकाशित हो (शु-क्रस्पोतिः ) शुद्ध आप गों के प्रकाश से युक्त ( विद्वान् ) विद्यावान् आप प्रविश्वों के समान आधार ( मातुः ) इन माना की ( खपस्ये ) गोंद में (मी-द् ) स्थित हू जिये । इस माना से ( विश्वानि ) सब प्रकार की (श्वयुनानि) खुद्धियों की प्राप्त हू जिये । इस माना को ( अन्तः ) अन्तः करण में ( मा ) मन ( तपसा ) सन्ताप से तथा ( अर्थिषा ) तेज से ( मा ) मन ( अपि-शोधीः ) शोक युक्त की जिये । किन्तु इस माना में शिक्षा को प्राप्त हो के प्रकाशित हू जिये ॥ १५ ॥

भाषार्थ:— जो विद्वान् माता ने विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त किया माता का सेवक जैसे माता पुत्रों को पाछती है वैसे प्रजाओं का पा-पन करे वह पुरुष राजा के ऐश्वर्ष से प्रकाशित होते ॥ १५ ॥ म्रान्तरम्बङ्गस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । बिराह्मनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ फिर राजा क्या करे इस वि०॥

#### अन्तरंगने रुचात्वमुखायाः सदंने स्वे । त-स्यास्त्वक्ष हरंमात प्ञ्जातं वेदः शिवोभंव॥१६॥

पदार्थ:—है (जातवेदः) वेदों के जाता (अभी) तेजस्वी विद्वान् आप जित (उखायाः) प्राप्त हुई प्रजा के नीचे ने अग्नि के समान (स्त्रे) अपने (स्देने) पढ़ने के स्थान में (तपन्) शत्रुओं को संताप कराते हुए (अन्तः) मध्य में (क्या) प्रीति से वर्ती (तस्याः) उस प्रजा के (इरसा) प्रज्ञिति तेज से आप शत्रुओं का निवारण करते हुए (शिवः) मन्ह्रकारी (अव) हूजिये॥ १६॥

ह भाषार्थ: — इस मन्त्र में वाचकलु० – तीसे समाध्यक्ष राजा की चाहिये कि न्याय करने की गद्दी पर बैठ के अत्यन्त प्रीति के नाथ राज्य के पालन कृप कार्यों की करें वैसे प्रजाओं की चाहिये कि राजा की सुख देती हुई हुएों की ताड़ना करें॥ १६॥

शिवोभ्रत्वेत्पस्य जित ऋषिः। अग्निर्देवता । विराष्ट्रमुपु

छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही वि०॥

शिवो मूत्वा मह्यमग्ने अथो सीद शिवस्त्व-म् । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिसिहा-संदः ॥ १७॥

पदार्थ: ~ हे ( अन्ते ) अन्ति के समान शतु मों को सलाने वाले वि-द्वान् पुरुष ( स्वम् ) भाष ( मह्मम् ) हम प्रजाजनों के लिये ( शिवः ) मङ्ग-लायरण करने हारे ( भूत्वा ) होकर ( इह ) इस संसार में ( शिवः ) म-इलकारी हुए ( सर्वाः ) सब ( दिशः ) दिशाओं में रहने हारी प्रकालों को (शिवाः) मङ्गलापरण से युक्त (क्टवा) करके (स्थम्) अपने (यानिम्) राज धर्म के आसन पर (आसदः) बैठिये। और (अयो) इस के प्रवात् राजधर्म में (सीद्) स्थिर हूलिये॥ १९॥

भाषार्थ: — राजा की चाहिये कि आप धर्मात्मा हो के प्रजा के सनु चों की पार्मिक कर भीर म्याय की गद्दी पर बैठ के निरन्तर न्याय किया करें || १९ ||

दिवस्परीत्यस्य बत्समीऋषिः। अग्निर्देवता । निचृदार्षी श्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर राज धर्म का उपदेश भगले मन्त्र में किया है।

ं दिवस्परि प्रथमं जंज्ञे अग्निर्ममद्दितीयं पर् रिं जातवेदाः । तृतीयंमुप्म नूमणा अजंस्रमिर् न्धान एनं जरते स्वाधीः ॥ १८ ॥

पदार्थ — है समापित राजन् जो ( अग्नि: ) अग्नि के समान आप (अ-हमत्) इन लोगों ये ( दिवः ) बिजुली के ( परि ) ऊपर ( जज्ञे ) प्रकट होते हैं उन ( एनम् ) आप को ( प्रथमम् ) पहिन्ने को ( जातबेदाः ) बुद्धि-मानों में प्रसिद्ध उत्पन्न हुए उस आप को ( द्वितीयम् ) दूसरे जो ( तृमणाः) मनुष्यों में बिचारशीस आप ( तृतीयम् ) तीसरे (अप्सु) प्राण बा सस्त्रि-याओं में विदित हुए उस आप को ( अजस्त्रम् ) निरन्तर ( इन्धानः ) प्र-काशित करता हुआ विद्वान् ( जरते ) सब प्रकार स्तुति करता है सो आप ( स्वाधीः ) सुन्दर ध्यान से युक्त प्रकाशों के। प्रकाशित की जिये ॥ १८ ॥

भावार्थ:-मनुष्यां को चाहिये कि प्रथम झस्तचय्यांश्रम के सहित विद्या तथा शिक्षा का ग्रहण दूसरे गृहाश्रम से घन का संचय तीनरे वानप्रस्थ का-श्रम से तथ का आचरण और चीचे संन्यास छेकर वेद्बिद्या और चर्न का नित्य प्रकाश करें || १८ ||

विद्यातहत्यस्य वत्सर्पा ऋषिः। ऋग्निर्देवता। निचृदार्षी श्रिष्टप्छन्दः। घैवतः स्वरः॥ फिर भी वही वि०॥

### विद्या ते अग्ने त्रेधा त्र्याणि विद्या ते धाम वि-भृंता पुरुत्रा । विद्या ते नामं प्रमं गुहा यहि-द्या तमुत्सुं यतं आज्यन्थं ॥ १९॥

पदार्थ: — है (काने) विद्वान् पुरुष (ते) आप के जो (जेणा) तीन प्रकार से जयाणि लीन कर्स हैं उन को इस लोग (विद्या) जानें। हे स्थानों के स्वामी (ते) आप के जो (विभृत) विशेष कर के धारण करने योग्य (पुरुषा) बहुत (धाम) नाम जन्म और स्थान रूप हैं उन की हम लेगा (विद्या) जानें हे विद्वान् पुरुष (ते) आप का (यत्) जो (गुहा) बुद्धि में स्थित गुप्त (परमम्) श्रेष्ट (नाम) नाम है उन की इस लेगा (विद्या) जानें (यतः) जिस कारण आप (आजगन्थ) अच्छे प्रकार प्राप्त हो वें (तम्) उस (उत्मम्) कृप के तुल्य तर करने हारे आप की (विद्या) हम लेगा जानें । १९।

भावार्थ:-प्रजा के पुरुष और राजा की ये या है कि राजनीति के कामें सब स्थानें और सब पदार्थों के नारें की जानें। जैसे कुए से जल निकाल खेत आदि की तृप्त करते हैं वैसे ही धनादि पदार्थों से प्रजा राजा की और राजा प्रजाओं के। तृप्त करें।। १८॥

समुद्रइत्यस्य बहस्त्री क्रिषः । अग्निर्देवता । निचृद्। वी

फिर भी राजा और प्रजा के सम्बन्ध का उपना

समुद्रे त्वां नृमगां अप्स्वॄन्तर्नृचत्तां ईघं हि-वो अंग्नुऊधंन् । तृतीयें त्वा रजंसि तस्थिवा-धर्ममुपामुपस्थं महिषा अंवर्धन् ॥ २०॥ पदार्थ: — है ( अगे ) विद्वान् पुरुष ( तृगणाः ) सायक पुरुषों की वि-षारने वाला में जिस ( स्वा ) आप को ( समुद्रे ) आकाश में अग्नि के स-मान ( देंचे ) प्रदीप्त करता हूं ( तृषक्षः ) बहुत मनुष्यों का देखने वाला में ( अप्सु ) भन्न वा जलों के ( भन्तः ) बीच प्रकाशित करता हूं ( दिवः ) सूर्य के प्रकाश के ( ऊपन् ) प्रातःकाल में प्रकाशित करता हूं ( तृतीये ) सी-सरे ( रजिन ) लोक में ( तस्थिवान्सम् ) स्थित हुए सूर्य के तृल्य जिम आप को ( अपाम् ) जलों के ( उपस्ये ) सभीप (महिषः ) महात्मा विद्वान् लोग ( अवधंन् ) उस्ति को प्राप्त करें सो आप इस लोगों की निरन्तर उन्नति की जिये ॥ २०॥

भावार्थः -- प्रका के बीच वर्तमान मब श्रेष्ठ पुरुष राजकार्यों को भीर राजपुरुष प्रका पुरुषों को नित्य बढ़ाते रहें।। २०॥

ग्रक्रन्द्दित्यस्य वत्सर्था क्रथिः। अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुष्क्रन्दः। धैवतः,स्वरः॥

अब मनुष्यों को कैना होना चाहिये यह वि०॥

श्रक्रंन्ददुग्निस्तुनयंत्रित् द्याः क्षामारेरिहंद्वी-

रुधंःसमुञ्जन । मुद्या जंज्ञानो विहीमिद्यो अ-

च्यदा रोदंसी भारतनां भारयन्तः ॥ २१ ॥

पद्धि:—हे मनुष्या जैसे (द्यी:) मूर्य लोक (अर्थन:) विद्युत् अश्मि (स्तनयित्व ) शब्द करते हुए के समान (बीरुषः) ओषधियों को (सम- क्जन्) प्रकट करता हुआ (सद्यः) शीघ्र (हि) ही (अक्जन्दत्) पदार्थी को इधर स्थर चलाता (क्षामा) पृथिवी को (रेरिइत्) कंपाता और यह (जज्ञानः) प्रमिद्ध हुआ (इद्धः) प्रकाशमान हो कर (भानुना) किरणों के माय (रोदमी) प्रकाश और पृथिवी को (ईम्) सब और से (ब्यस्पन्त्र) विख्यात करता है। और ब्रह्माग्ड के (अन्तः) बीच (आसाति) अच्छे प्रकार शोभायमान होता है। वैसे तुम लोग भी होओ।। २१।। भावार्थः—ईश्वर ने जिस लिये सूर्य लोक के। स्टाय्क किया है इसी

लिये वह विजुली के समान सब लोकों का आकर्षण कर और शोषिष आ-दि पदार्थों के। बढ़ाने का हेतु और सब भूगोलें। के बीच जैसे शोपायमान होता है वैसे राजा आदि पुरुषों को भी होना चाहिये॥ २९॥

श्रीणामित्यस्य वत्समी ऋषिः। ग्राग्निदेवता । निचृदार्षी

त्रिष्टुष्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इन राजकार्यों में कैने पुरुष को राजा झनार्वे यह वि०।।

श्रीगामुंद्वारो धुरुणों रयीणां मंनीषाणां प्रा-पैणः सोमंगोपाः । वसुंः सूनुः सहंसो अप्सुराजा वि भात्यत्रं उषसांमिधानः ॥ २२ ॥

पदार्थ:— हे मनुष्यो सुम लोगों को चाहिये कि जो पुरुष ( उषसाम् ) प्रभात समय के ( अग्रे ) आरम्भ में ( इधान: ) प्रदीष्पमान सूर्य के समाम ( श्रीणाम् ) सब समाम लिहमयों के मध्य ( सदार: ) परीक्षित पदार्थी का देने (रयीणाम् ) धनों का (धरुण:) धारण करने ( मनीबाणाम् ) बुद्धियों का ( प्रापंण: ) प्राप्त कराने और ( सोमगोपा: ) भोवधियों ता ऐड्डपर्यों की रक्षा करने ( सहसः ) ब्रह्मवर्य किये जितेन्द्रिय बलवाम् पिता का ( मृतु: ) पुत्र ( बहु: ) ब्रह्मवर्यात्रम करता हुआ ( अष्हु ) प्राणों में ( राजा ) प्रकाशयुक्त हो कर ( विभाति ) शुभ गुणों का प्रकाश करता हो सब को सब का अध्यक्ष करो ॥ २२ ॥

भावार्थ:—सब मनुष्यों को रिषत है कि सुपात्रों को दान देने धन का उपर्य खर्च न करने सब को विद्या बुद्धि देने जिस ने अक्षाचरमांत्रम से-बन किया हो अपने इन्द्रिय जिस के बश में हों योग के यम आदि आठ अर्क्षों के सेवन से प्रकाशमान सूर्य के समाम अच्छे गुण कर्म और स्वन्नावें से सुशोभित और पिता के समाम अच्छे प्रकाओं का पालम करने हारा पु-रुष हो उस की राज्य करने के लिये स्थापित करें॥ २२॥

> विइवस्येत्यस्य वत्सप्रीक्षिः। अग्निर्देवता । ग्रार्ची-त्रिष्ट्रपुछन्दः । घैषतः स्वरः ॥

फिर भी बड़ी विश्र

# विश्वंस्य केतुर्भुवंनस्य गर्भ आ रोदंसी अप्ट-णाज्जायंमानः । वीदुं चिदद्रिमभिनत् परायन् जना यद्गिनमयंजन्तु पञ्चं॥ २३॥

पदार्थ:- हे मनुष्या तुन लोग ( यत् ) जो विद्वान् ( विश्वस्य ) सब (भु-वनस्य ) लोकों का ( केतु: ) पिता के समान रक्षक प्रकाशने हारा (गर्भः ) दन के मध्य में रहने ( जायमानः ) दल्पक होने वाला ( परायन् ) शत्रुओं। को प्राप्त होता हुआ ( रोदमी ) प्रकाश और पृथित्री को ( आपणात् ) पू-रण कर्ता हो ( वीहुम् ) अत्यन्त बलवान् ( शद्रिम् ) मेच को ( अभिनत् ) छिन भिन्न करे ( पंच ) पांच ( जनाः ) प्राण ( अन्तिम् ) बिजुली को (अ-जयन्त ) संयुक्त काते हैं ( चित् ) इसी प्रकार को विद्या आदि शुन गुर्शे। का प्रकाश करे उस को स्थायाधीश राजा गाना ॥ २३॥

भावार्थ:-उस मन्त्र में उपमालं?-जैसे ब्रह्माएड के बीच सूर्य लेक आ-पनी बाक्षंण शक्ति से सब का धारण करता और मेघ को फाटने वाला तथा प्राणों से प्रसिद्ध हुए के समान सब बिद्याओं को जताने और जैसे मा-ता गर्भ की रक्षा करे बैसे प्रभा का पालने द्वारा विद्वान् पुरुष हो एस को राज्याधिकार देना चाहिये ॥ २३॥

उद्गिशित्यस्य बत्सवी ऋषिः। अश्निदेवता । निष्नृद्।पी न्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ पिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि०॥

उशिक् पांवको श्रंगतिः संमेधा मत्यैष्वग्निग्रमतो निधायि । इयंर्तिधूममंठपम्भरिंमृदुच्छुकेणं शोचिषा द्यामिनंक्षन् ॥ २४ ॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो तुम लोग ईश्वर ने (मर्त्येषु) मनुष्या में लो (स्थिक्) मानने योग्य (पायकः) पवित्र करने हारा (भरितः) ज्ञान वाला (सुमेधाः) अच्छी तुद्धि से युक्त (भ्रम्तः) मग्ण धर्म रहित (भ्र-श्चिः) आकारकप ज्ञान का प्रकाश (निधायि) स्थापित किया है जो (शुक्रेण) शीघ्रकारी (शोचिषा) प्रकाश से (द्याम्) सूर्यलोक को (इन-सन्) स्थाप होता हुमा (धूमन्) धुंए (अरुष्य) क्रय को (मरिस्त्) अत्यन्त धारण वा पृष्ट करता हुगा (उद्यिक्तं) ग्राप्त होता है स्थी देखर की स्थापना करो वा उस अग्नि से स्थकार लेगे॥ २४॥

भावाधी: -- मनुष्यों को चाहिये कि कार्य कारण के अनुमार देशकर के रचे हुए तब पदार्थों को ठीक २ जान के अपनी खुद्धि बढ़ावें ॥ २४॥

ह्यानइत्यस्य बत्सप्रीऋषिः। ग्राग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिः

इछन्दः । पत्रचमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को व्यान जानना चाहिये यह विश्री

हुशानो हुनम डुव्या व्यंद्यौहुर्मर्पमायुः श्चिये रुचानः । अग्निर्सृतो अभवद्दयोभिर्यदेनंद्यौर-

जंनयत्म्ररेताः॥ २५॥

पदार्थः—हे मनुष्यां तुमलोग (यत्) निम कारण (ष्ट्रशानः) दिलाने हारा (क्वमः) क्रिका हेतु (श्रिये) शोभा का (क्वामः) प्रकाशक (दुर्मर्थम्) सब दुःखों से रहित (आयुः) जीवन काता हुमा (अयुतः) नाशरहित (अग्निः) तेजस्वरूप (स्ट्रयों) पृथियों के साथ (द्रपद्यौत्) प्रकाशित होता है (वयंभिः) व्यापक गुणों के माथ (अभवत्) स्ट्रय होता और जो (द्योः) प्रकाशक (सुरेताः) सुन्दर पराक्रम बाला जगदी एवर (यत्) निम के लिये (एनम्) इन अग्नि के। (अन्नयत्) स्ट्रय करता है सस्वर आयु और विद्युत् क्षत्र अग्नि को जानो । २५॥

आवार्ध:-को मनुष्य गुण कर्म और स्वप्तावों के बहित जगत् रचने

बाडे जनादि इंडवर और जगत् के कारण के। ठीकर जान के उपायना करते जीर उपयोग छेते हैं वे चिरंजीव है। कर लक्ष्मी के। प्राप्त हे।ते हैं॥ २५॥

> यस्तइत्यस्य बत्समिक्षिषः। अग्निर्द्यता । विराहार्षी त्रिष्टुप्छन्दः।धैवतः स्वरः॥

किर विद्वान् छीग कैंदे रहे।इया का स्वीकार करें यह वि०॥ 🗡

यस्तै अद्य कृणवंद्धद्रशोचेऽपूपं देव घतवं-न्तमग्ने । प्र तं नंय प्रत्रं वस्यो अच्छाभिसु-म्नं देवमंक्तं यविष्ठ ॥ २६ ॥

पदार्थ:—है (भद्रशेषि) सेवने ये। य दीप्ति से युक्त (यिष्ठ ) तरुण अवस्था वाले (देव ) दिव्य भे। ये। के दाता (अपने ) विद्वान् पुरुष (यः ) जे। (ते ) आवका (घृतवन्तम् ) बहुत घृत आदि पदार्थों से संयुक्त (अभि ) मब प्रकार से (इसम् ) सुस्क्रप (देवशक्तम् ) विद्वानों के सेवने ये। य (अपूपम् ) भे। जन के ये। य पदार्थों वाला (वस्यः ) अत्यन्त भे। य (अच्छ ) अच्छे २ पदार्थों के। (कृणवत् ) वनावे (तम् ) सत् (प्रतस्म् ) पास स्वाने हारे पुरुष को आप (अद्य) आज (प्रत्रय) प्राप्त हुजिये।। २६॥

भावार्थ:--मनुष्यों की चाहिये कि विद्वानों से अच्छी शिक्षा की माप्त हुए भति उत्तम व्यव्जन और शब्कुली आदि सथा शाक आदि स्वाद से युक्त हिकारक पदार्थों की बनाने वाले पायक पुरुष का सहण करें।। २६।।

> भातमित्यस्य बत्सप्रीऋषिः। अग्निदंबता। विराहः। षी न्निष्ठुप्छन्दः। घैतनः स्वरः॥ षिर वही ६०॥

आतं मंज सौश्रवसेष्वंग्न उक्थ उक्<u>थ</u> ग्रा मंज श्रस्यमाने । प्रियःसूर्य्ये प्रियो अग्ना मंवा-त्युज्जातेनं भिनददुज्जिनित्वैः ॥ २७ ॥ पदार्थ: है ( अने ) विद्वान पुरुष आप को (भी अवसेषु) सुरुद्द धन वालों में वर्तमान हो ( तम् ) उस को ( आभन ) सेवन की जिये जो ( शन्यमाने ) स्तृति के योग्य ( सक्ये उनथे ) अत्यन्त कहने योग्य उपवहार में ( विय: ) प्रीति रक्से (सूर्ये) स्तृति कारक पुरुषों में हुए उपवहार (अगन) और अग्नि विद्या में ( प्रिय: ) सेवने योग्य ( जातेन ) उत्यक्त हुए और (जातिनथे: ) उत्पन्न होने बालों के साथ ( उद्भवाति ) उत्पन्न होने बालें स्वाय ( उद्भवाति ) उत्पन्न होने बालें स्वाय ( अगन) में को साथ ( अगने ) सेवन की लिये !! २९ !!

भाषार्थ: — मनुर्धात को चाहिये कि को पाक करने में साधु सब का हितकारी अन्त्र और उपन्तिमें को अच्छे प्रकार बनावे उस की अवश्य ग्रः इण करें ॥ २९ ॥

त्वामग्नइस्यस्य बत्मप्री ऋषिः। ग्राग्निर्देवताः। विराष्टार्षी चिष्ठुष् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

किर मनुष्य छे।य बिद्या को किस प्रकार बढ़ावें इन वि० ॥

#### त्वामंग्ने यजमाना अनु द्यून् विश्वा वसुं द-धिरे वार्यांशाि । त्वयां सह द्रविंगामिच्छमाना ब्रुजं गोमंन्तमुशिजा विवंद्यः ॥ २८॥

पद्रार्थ: — हे ( अन्ते ) विद्वान् पुरूष जिस ( स्वम् ) आपका माश्रय छे कर ( उशिज: ) बुद्धिमान् ( यजधाना: ) संगतिकारक छे।ग ( त्वया ) आप से ( सह ) साथ ( विश्वा ) सब ( वायांणि ) ग्रहण करने ये।ग्य ( अनुद्यून् ) दिनों में ( वसु ) द्रुव्यों की ( दिचरे ) धारण करें ( द्रविणम् ) धन की (इ- च्छमाना: ) इच्छा करते हुए ( ते।मस्तम् ) सुन्दर किरयों के कृप से युक्त ( क्रजम् ) मेच वा गे।स्थान की ( विश्वा ) विवध प्रकार से ग्रहण करें वैसे इम छोग भी होवें ॥ २८॥

भावार्थ: — मनुर्था की चाहिये कि प्रयक्षणील विद्वानी के मझ रे पु-रुवार्थ के साथ विद्या भीर सुख की नित्य प्रति बढ़ ते कार्वे ॥ २६ ॥ अस्ताबीत्यस्य बत्सप्रीक्षविः। ग्रान्निर्देवता । विराहाषी

ब्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उन विद्वानीं के संग से क्या हाता है यह वि० ॥

# अस्तांव्यग्निर्नश्थ सुशेवों वैश्वान् ऋषिं भिः सोमंगोपाः । अद्देषे द्यांवाष्ट्रश्चिवी हुंवेम देवां धत्त रियम्समे सुवीरंम् ॥ २९ ॥

पदार्थ:—है (देवा:) शत्रुओं की जीतने की इच्छा वाले विद्वानी जिन (ऋषि:) ऋषि तुम लेगों में (मराम्) गायक विद्वानों में (हरीव:) सुन्दः सुख युक्त (देशामाः) सब ममुख्यों के आधार (अन्तः) परमेश्वर की (अस्तावि) स्तुति की है जो तुम लेग (अस्मे) हमारे लिये (सुत्री-रम्) जिम से सुन्दर बीर पुरुष हों हस (रिवम्) राज्यलहमी की (धक्त) खारण करें। उम से आत्रित (सेममोत्पाः) ऐश्वयं के रक्षक हम लेग (अदिवे) द्वेष करने के अयोग्य मीति के विषय में (द्यावाप्णिकी) प्रकाश रूप राजनीति भीर पृथिषी के राज्य का (हुवेम, ग्रहण करें।। २९।।

भावार्थ:—जो सिंद्यतम्द स्वरूप दंशा के सेवक धर्मातमा विद्वान् लोग हैं वे परे। पकारी है। में भे आप्त यथार्थवक्ता है। ते हैं ऐसे पुरुषों के स-रसंग के विका स्थिर विद्या और राज्य की कोई भी नहीं कर सकता। (२०)।

सिवधारिनमित्यस्य विरूपाक्ष ऋषिः। अरिनर्देवता । गायत्री
छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य किन का सेवन करें यह वि०॥

### मुमिधाग्नि दुंवस्यत घृतैबींधयतातिथिम् । आस्मिन् हुव्या जुंहातन ॥ ३० ॥

पदार्थ: — है महस्यो तुम लेश जैसे (सिमधा) अच्छे प्रकार हन्धनों हे (अग्निम्) अग्निको प्रकाशित करते हैं वैसे उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष को ( दुवस्यत ) सेवा करें। भीर जैसे झुसंस्कृत श्रव्य तथा ( श्रृतैः ) घी आदि पदार्थों से अन्त में श्लोम कर के जगदुवकार करते हैं वैसे ( अतिथि म् ) जिस के आने जाने के समय का नियम न है। उस उपदेशक पुरुष की ( बोध्यत ) खागत सरसाहादि से चैतन्य करें। भीर ( अस्मिन् ) इस जगत् में (इत्या) देने योग्य पदार्थों के (अञ्जुहेत्तन) अच्छे प्रकार दिया करो ॥३०॥

भावार्थ: — मनुष्यों को चाहिये कि सत्पुरुषे। ही की सेवा और सुपान्त्रों ही की दान दिया करें जैसे अग्नि में घी आदि पदार्थों का इवल करके संनार का उपकार करते हैं वैसे ही विद्वानों में उत्तम पदार्थों का दान कर के जगत् में विद्या और अच्छी शिक्षा की बढ़ा के विद्वा की सुखी करें "३०॥

उदुःवेत्यस्य तापस ऋषिः। अभिनर्देवता । विराहनुष्टुष्क्रन्दः। गान्धारः स्वरः॥

विद्वान् मनुष्य के। चाहियं कि अवने तुल्य अन्य मनुष्यों को विद्वान् करें यह वि०॥

#### उदुं त्वा विश्वं देवा अग्ने भरंन्तु चित्तिभिः । स नो भव शिवस्त्वथ सुप्रतीको विभावंसुः॥३१॥

पदार्थ: — हे ( अग्ने ) विद्वन् जिस ( त्वा ) आप को ( विश्वे ) सब ( देवाः ) विद्वान् लोग ( चित्ति कि: ) अच्छे विद्वानों के माथ अग्नि के स-मान ( उदुभरःतु ) पृष्ट करें ( सः ) सो ( विभावसः ) जिन से विविध प्रकार को शेक्षा वा विद्या प्रकाशित हों ( सुप्रतीकः ) सुन्दर एसगों से युक्त (त्व म् ) आप ( नः । हम छे। गें के लिये ( शिवः ) मङ्गलमय वचनों के सपदे-शक ( भव ) हु जिये ॥ ३१ ॥

भावाधी: — जी मनुष्य जैसे विद्वानी से विद्या का संबय करता है वह वैसे ही दूनरें के लिये विद्या का प्रचार करें || ३१ ||

प्रेद्ग्नइत्यस्य तापस्र ऋषिः। ग्राग्निर्देवता। विराडनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

किर राजा क्या कर के किन की प्राप्त है। वे यह वि० ॥

### प्रदंग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिर्यचिमि-ष्टम् । बृहिद्धिर्मानुभिर्मामन् । माहिंक सीस्तन्व। प्रजाः ॥ ३२ ॥

पदार्थ:—है (अने) विद्या प्रकाश करने हारे विद्वन् (त्यम्) तू जैसे (क्योतिक्मान्) सूर्यक्योतियों ने सुक्त (शिवेभिः) मङ्गलकारी (अनिभिः) सत्कार के साधन (खहद्भिः) महे २ (भानृभिः) प्रकाश गुणें से (सत् ) ही (भानन्) प्रकाशमान है वैने (प्रयाहि) सुसें का प्राप्त हू जिन्ये और (तन्वा) शरीर से (प्रजाः) पालने ये। व्याणियों की (मा) मत (हिंसी) मारिये॥ ३२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलु० है सेनापति आदि राज पुरुषों के महिन राजन् आप अपने शरीर से किसी अनपराधी माशी को न भार की विद्या और न्याय के प्रकाश से प्रजाओं का पालन करके जीवने हुए संनार के सुख की और शरीर छूटने के पश्चात् मुक्ति के इस की प्राप्त हूजिये ॥३२॥

अऋन्द्दित्यस्य बरसाधिक्षाः । अभिनर्देवता । निचृद्।षीं

्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ राज्यका प्रसन्ध कीने करे यह वि०॥

अक्रन्दद्विनस्तनयंत्रिव द्यौः क्षामा रेरिंह-द्वीरुधंः समुञ्जन् । सद्यो जंज्ञानं विहीमिद्यो ग्र-ख्यदारोदंसी भानुनां भात्यन्तः ॥ ३३॥ 🗡

पदार्थ: — है पना के लोगो तुम लोगों के। चाहिये कि जैते (दी:)
सूर्य प्रकाश कर्ना है वैसे विद्या और न्याय का प्रकाश करने और (अकि:)
पावक के तुल्य शत्रुओं का नष्ट करने हारा विद्वान् (स्नमय का न विद्वान् (स्नमय का न विद्वान् ) विजुनी के सनान (अकन्दत् ) गर्जाना और (नीरुधः) वन के वृक्षों की (ममञ्जन् )
अच्छे प्रकार यहा करना हुआ (कामा) एथियी पर (रेग्डिस्) युद्ध करे

(जज्ञान:) गजनीति से प्रसिद्ध हुआ (इद्धः) शुभ लक्ष्यों से प्रकाशित (सद्धः) शीघ्र (व्यक्ष्यतः धर्ममुक्त हपदेश करे तथा (अःमुना) पुरुषार्थे के प्रकाश से (हि) ही (रेव्यमी) क्षित्र और भूमि की (क्षम्तः) राज-धर्म में स्थिर करता हुआ (क्षाभाति) अच्छे प्रकार प्रकाश करता है वह पुरुष राजा होने के ये। ग्रा है ऐना निश्चित जानो ॥ ३३॥

भावार्थ: - इस मन्त्र में उपमा और वाचक्छ वस के वृक्षें। की रक्षा के विना बहुत वर्षा भीर रेगों की न्यूनता नहीं होशी भीर विजुली के तु-ह्य दूर के ममाचारीं से शत्रुओं के। साम्ने और विद्या तथा न्याय के प्रका-श के विना अच्छा स्थिर राज्य ही नहीं हो सकता। ३३॥

प्रप्रायमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता । आर्षीत्रिष्ठुप् ह्यन्दः । धेवतः स्वरः ॥

किर कैरे पुरुष के। राजव्यवहार में नियुक्त करें यह विवा

प्रप्रायम् रिनभैरतस्यं शृण्वे वियत्सूर्यो न रो-चंते बृहद्गः । अभि यः पूरुं पृतंनासु तस्थौ द्वीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥ ३४॥

पदार्थ: — हे राजा और प्रका के पुरुषे। तुम लेगि। के। चाहिये कि (यत्) जो ( अयम् ) यह ( अभिनः ) रेमापित ( सूर्यः ) सूर्ये के ( म ) समाम ( हरद्वाः ) अत्यन्त प्रकाश में युक्त ( प्रप्र ) अति प्रकर्ष के साथ ( रेखते ) प्रकाशित होता है ( यः ) जो ( नः ) हमारी ( एतना हु ) से माओं में ( पूरुम् ) पूर्णयल युक्त सेनाष्ट्रयक्ष के निकट ( अभितस्यो ) सब प्रकार स्थित होते ( दैठयः ) विद्वानों का प्रिय ( अतिथः ) नित्य अपण करने हारा अतिथि ( शिवः ) म्झूलदाता विद्वान् पुरुष ( दीवाय ) विद्या और अमें की प्रकाशित करें जिस को में ( भरतस्य ) सेवने योग्य राज्य का रक्षक ( श्रुषे ) मुन्ता हूं । उस की सेना का अधियित करें ॥ ३३ ॥

भावार्थ:--इस मन्त्र में उपमालंश-ममुख्या की चाहिये कि किस

पुरवकीर्ति पुरुष का शत्रुओं में विजय भीर विद्या प्रचार सुनाजावे उस कु

भाषइत्यस्य विशिष्ठ ऋषिः । आयो देवताः । स्राचीत्रिष्ठुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सब मनुष्यें। के। स्वयम्बर विवाह करना चाहिये यह विवा

आपो दे<u>वीः प्रतियम्माति मस्मैतत्स्योने</u> क्रं-णुध्वक्ष मुरुमा उं छोके । तस्मै नमन्तां जनंयः

मुपत्नीम् तिवं पुत्रं विभृतापरहेनत् ॥ ३५॥

पदार्थ:— है विद्वान् मनुष्यों जो (अ।पः) पवित्र कलों के तुस्य संपूर्ण पुत्रगुण और विद्याओं में व्याप्त बुद्धि (देवीः) सुन्दर कर और स्त्रभाव वालों कन्या (सुन्ती) ऐक्कर्य के प्रकाश से युक्त (लेकि) देखने योग्य लेकि। में अपने पतियों की प्रसन्त करें उन के। (प्रतिग्रमणीत) स्वीकार करीं तथा उनकी सुख युक्त (क्ष्णुध्वम्) करें। जी। (एतत्) यह (भरम्) प्रकाशक तेत्र हैं (तस्मी) उन के लिये जी। (सुप्रनीः) सुन्दर (जनयः) विद्या और अच्छी शिला ने मिनदु हुई स्त्री नमती हैं उन के प्रति आप लेग भी। नमन्ताम्) नम्र हूजिये (उ) और तुम स्त्री पुरुष दोनों मिल के। पुत्रम् ) पुत्र को। (मातेत्र) माता के तुन्य (अप्सु) प्राणीः में (प्रत्र) इस पुत्र को। (क्रिन्त) धारण करें। ।। ३५॥

भावाधी:— इस मन्त्र में उपमालंग-मनुष्यां की चाहिये कि परस्पर प्रमुखता के साथ स्वयंवर विवाह धर्म के अनुनार पुत्री की उत्पक्त और उ न की विद्वान करके यहात्रम के ऐश्वर्थ की उन्नति करें॥ ३५॥

अप्स्वरमहत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता । निचृद्गाय-

श्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥ 🗶 अव जीव कित २ प्रकार पुनर्जन्त केः प्राप्त द्वेति 🝍 यह वि०॥

### अप्स्<u>वृ</u>श्चे सिष्टि<u>ष्ट</u> सौषंधीरतंरुध्यसे । गर्भे सन् जांयसे पुनंः ॥ ३६ ॥

पदार्थ: — है ( भग्ने ) अग्नि से तुल्य विद्वन् जीव जो तू ( स्थि: ) सः इनशील ( भएतु ) जलों में ( भोषधीः ) सोमलता आदि आषियों को ( भनुक्ष्यते ) प्राप्त होता है ( सः ) गर्भ में ( सन् ) स्थित हो कर (पुनः ) फिर २ जन्म मरण ( तव ) तेरे हैं ऐपा जाम । ३६॥

ें आवार्थ: -- को कीव शरीर को के। इने हैं वे वायु और ओविध आदि पदार्थी में समग्र करते २ गर्भाशय की। प्राप्त होके नियत समय पर शरीर धारण कर के प्रकट होते हैं ॥ ३६॥

गर्भो असीत्यस्य विक्य ऋषिः । अभिनर्देवता । भुरिगार्ष्युः

ष्टिणक् छन्दः। **ऋषभः स्वरः**॥

फिर जीव कहां २ जाता है गई वि०॥

# गर्भी अस्योषंधी<u>नां गर्मो वनस्पतीनाम् ।</u> गर्मो विश्वंस्य मूतस्याग्ने गर्मी अपार्माम् ॥३०॥

पद्धि: - है (अश्ने) दूसरे शरीर की प्राप्त होने वाले जीव जिम से सू अश्नि के समान जो (अंग्रिथीनाम्) मीमलता आदि वा यथ।दि आष-धियों के (गर्भः) दें पों के मध्य (गर्भः) गर्भ (वमस्पतीनाम्) पीपल आ-दि वनस्पतियों के बीच (गर्भः) शोधक (विश्वस्य) सब (भूतस्य) स्त्य- ल हुए संसार के मध्य (गर्भः) ग्रहण करने हारा और जो (अपाम्) प्राण वा जलों का (गर्भः) गर्भ रूप भीतर रहने हारा (असि) है इस लिये तू अज अर्थात स्वयं जन्म रहित (असि) है। ३९॥

भावार्ध:—इस मन्त्र में बाचकलुंश-हे मनुष्यो तुन ले। गेरं की चाहिये कि जो बिजुली के समान सब के अन्तर्गत जीव जन्म लेने वाले हैं उन की जानी ॥ ३९॥

प्रसचेत्यस्य विरूप क्रविः। अभिनर्देवता । निचृदार्थनुष्टुण्छ-न्दः। धैवतः स्वरः॥

मरण समय शरीर का क्या होंना चाहिये यह विंठ ॥

#### प्रसद्य भस्मेना योनिमपइचं प्रथिवीमंग्ने । मुक्षसुज्यं मातृभिष्टं ज्योतिष्मान्युन्रासंदः ॥३८॥

पदार्थ: — हे ( अन्ते ) प्रकाशमान पुरुष सुद्धे के समान ( प्रयोतिहमान ) प्रशंतित प्रकाश से युक्त जीव तू ( भरमना ) शरीर दाह के पीछे ( पृष्टिशम् ) पृथिवी ( च ) अगिन आदि और ( अपः ) जलों के बीच (योनिन्म् ) देह धारण के कारण के ( प्रसद्ध ) प्राप्त हें। और ( माल्किः ) माता- ओं के चदर में वान कर के ( पुनः ) फिर ( आसदः ) शरीर को प्राप्त होता है ॥ इट ॥

भावार्थः — इस मन्त्र में वाषक हु॰ — हे जीवा तुम छोग सब शरीर को छे हो तब यह शरीर राख कर प करके प्रविधी आदि पांच भूनों के साथ युक्त करों। तुम और तुम्हारे आत्मा माता के शरीर में गर्माशय में घहुंब किर शरीर धारण किये हुए विद्यमान होते हैं। ॥ ३८॥

पुनरास्रचेत्वस्य विरूप ऋषिः। आग्निर्देवता । निचृद्नुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

भव माता विता और पुत्र आपम में किसे वर्त्त यह विशा

### पुर्नग्रासद्य सदेनम्पइचं पृथिवीमंग्ने । शेषें मातुर्यथोपस्थेऽन्तरंस्याध शिवतंमः ॥ ३९॥

पदार्थ:—है ( अन्ते ) इच्छा आदि गुणों से प्रकाशित जन जिस का-रण तू ( पुनः ) फिर र ( भासदा ) प्राप्त हो की ( कर्याम् ) इस माता के ( अन्तः ) गर्नाशय में ( शिवतनः ) मङ्गलकारी हो के ( यथा ) जैसे बालक ( सातुः ) माता की ( उपस्थे ) गोद में ( शेषे ) सोता है वैसे ही साता की सेवा में मङ्गलकारी है। ॥ ३० ॥ भावार्थः — पुत्रें। को चाहिये कि जैसे माता अपने पुत्रों को झुख देती है थैसे ही अनुकूल सेवा से अपनी माताओं की निरम्तर आनिश्त करें। भीर माता पिता के साथ विरोध कभी न करें। भीर माता पिता की भी चाहिये कि अपने पुत्रें। की अधर्म और कुशिक्षा से युक्त कभी न करें॥ ३९॥

पुनरूर्जेत्यस्य वत्सर्या ऋषिः। ग्राग्निर्देवता । निचृदार्षी गाय-

त्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर पुत्रों की माता विता के विषय में परस्वर येश्य वर्तनान

करना चाहिये यह विश् ।।

# पुनंस्जा निवर्त्तस्य पुनंरग्न इपायुंषा ।पुनर्नः

पाह्यक्षहंसः॥ ४०॥

पद्धि: — हे ( अन्ते ) तेनाहे बन् माता पिता भाष ( इषायुषा ) भन्न भीर जीवन के साथ ( मः ) इस छीं में की बढ़ाइये ( पुनः ) बारम्बार (अं-इसः ) दुष्ट आवश्यों से ( पाहि ) रक्षा की जिये । हे पुत्र तू ( कार्ना ) पराक्रम के साथ पापों से ( निवर्त्तहत्र ) अलग हु जिये और । पुनः ) फिर इस लेंगों को भी पापों से पुषक् रिस्पे ॥ ४०॥

भावार्थः — जैने विद्वान् माना पिता अपने मन्तानों की विद्या और भच्छी शिक्षा में दुष्टावारों में एयक गक्षें वैमे ही सन्तानों को भी चाहिये कि इन माता पिताओं की खुरे उपवहारों में निरन्तर खचायें। क्यों कि इस प्रकार किये जिना सब मनुष्य धार्मातमा नहीं है। सकते || 80 ||

सह रच्येत्यस्य वत्समी ऋषिः। अभिनेदेवता। निवृद्धापन्नी

छन्दः। षड्जः स्वरः॥

विद्वानों को कैसे वर्त्तना चाहिये यह।।

सह रूप्या निवंर्त्तस्वारते पिन्वंस्य धारंया । वि-इवप्सन्यां विश्वतस्परिं ॥ ४१ ॥ पदार्थ: — है ( अग्ने ) विद्वान् पुत्तव आप ( विषव्दरन्या ) सब पदा-र्थों के भोगने का साधन ( धारया ) अध्छी सरहनवाणी के ( सह ) साथ ( विश्वतस्परि ) सब संगार के बीच ( नि ) निरन्तर ( वर्तस्व ) वर्त्तमान हूजिये और इन छोगों का ( पिन्वस्व ) सेवन की जिये ॥ ४२ ॥

भावार्थः — विद्वान् मनुष्ये। केः चाहिये कि इस जगत् में अच्छी बुद्धि भीर पुरुषार्थे के साथ श्रीमान् हो कर अन्य मनुष्ये। की भी पनवान् करें॥४२॥ बोधामहत्यस्य दीर्घनमात्रमृषिः। अस्मिदेवताः विराहार्षी

त्रिप्रुप्छन्दः । घैवतः स्वरः ॥

मनुष्य छोग आपस में कैसे पहें और पहार्वे इस विवा

बोधां में अस्य वर्चमो यिवष्ट मक्षिष्टंष्टस्य प्रमृंतस्य स्वधावः । पीयंति त्वो अनुं त्वो ग्र-गाति वन्दारुंष्टे तुन्वुं वन्दे अग्ने ॥ ४२ ॥

पदार्थ: — हे (यिकिट्ट) अत्यन्त ज्यान (स्वधाय:) प्रशंसित बहुत अस्त्रों वाले (अग्ने) उपदेश के येग्य स्रोता जन तू (मे) भेरे (प्रभृतस्य) अच्छे प्रकार से धारण वा पोषण करने वाले (संहिष्टस्य) अत्यन्त कहने योग्य बहे तेरी जो (त्यः) यह निग्दक पुरुष (पीयित) निग्दा करे (त्यः) कोई (अनु) परोक्ष में (गृणाति) स्तृति करे उम (ते) आप के (तग्यम् शरीर को (बन्दारुः) अभिवादन शील में स्तृति करता हूं ॥ ४२ ॥

भावाधी:-जब कोई किसी को पढ़ावे या उपदेश करे तब पढ़ने वाला ध्यान देकर पढ़े वा सुने। जब सत्य वा निष्या का निश्चय हो जावे तब सत्य ग्रहण और असत्य का त्याग कर देवे। ऐने काने में कोई निन्दा और कोई स्तुति करें तो कसी न छोड़े और निष्या का ग्रहण कभी न करें। यही समुद्धीं के लिये विशेष गुण है।। ४२।।

> स बांधीत्यस्य सामाद्यांतर्ऋषिः। श्राभिनदेवता। श्राची पंक्तिइछन्दः। पंचमः स्वरः॥

मनुष्य छै। गक्या कथ्के किस को प्राप्त हों यह नि०॥

### स बोधि सूरिर्म्घवा वस्पते वसुंदावन् । यु-योध्युस्मद्देषां असि विश्वकर्मणे स्वाहां ॥ ४३ ॥

पदार्थ: — है ( वसुनते ) धनों के पालक ( वसुदावन् ) सुपुत्रों के लिये धन देने वाले जो ( नचवा ) प्रशंसित विद्या से युक्त सूरिः। बुद्धिमान् नाप सत्य को ( बोधि । जानें । सः ) सो आप ( विश्वकर्मणे ) संपूर्ण शुभ करनीं के अनुष्ठान के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी का उपदेश करते हुए आप (मर्मत्) हम से (द्वेषांसि) द्वेष युक्त कर्मों का (वियुगेरिध) एथक् की निये। ४३।।

भावार्थ: — जो मनुष्य ब्रष्टा चर्य के माथ जिलेन्द्रिय हो द्वेष को छोड़ धर्मानुमार उपदेश कर और सुन के प्रयत्न करते हैं वे हो धर्मातमा विद्वान् छोग संपूर्ण सत्य अतत्य के जानने और उपदेश करने के योग्य होते हैं और अन्य इट अभिमान युक्त सुद्र पुरुष नहीं !! ४३ !!

पुनस्त्वेत्यस्य सामाहृतिक्षेषः । आग्निदेवता । स्वराष्टार्षी-

त्रिष्टप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

कैसे मनुष्यां के संकल्य मिद्ध होते हैं हम विव !।

पुनंस्त्वाऽऽदित्या हुद्रा वसंवः सिनंधतां पु-नंब्र्ह्मागाों वसुनीथ युज्ञैः । घृतेन त्वं तुन्वं व-र्धयस्व सृत्याः संन्तु यजमानस्य कामाः॥४४॥

पदार्थः - है ( वसुनीय ) वेदादि शास्त्रों के बोधस्तप और सुनर्णादि धन प्राप्त कराने वाले आप ( यश्नीः ) पढ़ने पढ़ः ने आदि कियास्तप यश्नों और ( घृतेन ) अच्छे संस्कार किये हुए घी आदि वा जल से ( तन्वम् ) शरीर को नित्य ( वर्धयस्व ) बढ़ाइये ( पुनः ) पढ़ने पढ़ाने के पीछे (स्वा ) आप को ( भादित्याः ) पूर्ण विद्या के बल से युक्त (सद्राः) मण्यस्थ विद्वान् और ( वसवः ) प्रथम विद्वान् लोग ( ब्रह्माणः ) चार वेदों को पढ़ के ब्रह्मा की पदवी को पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् (सिन्धताम्) मन्यक् प्रकाशित करें। इस प्रकार के अनुष्ठान से (यजनानस्य) यज्ञ सत्संग और विद्वानीं का सत्कार करने वाले पुरुष की (कामाः) कामना (सत्याः) सत्य (सन्तु) कोर्से ॥ ४४ ॥

आधार्थ: — को मनुष्य प्रयत्न के माय सब विद्याओं को पढ़ और प्र ढ़ा के बारंबार जरसंग करते हैं कुश्य और विषय के त्याग से शरीर तथा आत्मा के रोग को इटा के नित्य पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं उन्हीं के संकल्प मत्य है। ते हैं दूनरों के नहीं ॥ ५४॥

अप्रतेत्यस्य सोमाहृतिर्श्वाषः। पितरा देवताः। निचृदार्षी त्रिष्ठपुछन्दः। धेवतः स्वरः॥

मन्तान और विता माना परस्पर किन २ कमी का आचरण करें यह वि०॥

त्रपंत द्यीत वि चं सर्पता तो येऽत्रस्थ पुंराणा य च नूतंनाः । अदांद्यमोऽवमानं प्रिथ्विया अ-कंक्षिमं पितरों छोकमंस्मे ॥ ४५ ॥

पदार्थ:—हे विद्वान् लोगो (ये) जो (अन्न) इम ममय (एथिठयाः) भूमि के बीच असमान (पुराणाः । प्रथम विद्या पढ़ चुके (च) और (ये) जी (नूनना) वर्णमान समय में विद्या भ्यान करने हारे (वितरः) विता पढ़ने उपदेश करने और परीक्षा करने वाले (स्य) हों वें ते) वे (अस्मै) इस सत्यस्करूपी मनुष्य के लिये (इमम्) इम् (लाकम्) वैदिक ज्ञान सिद्ध लोक को (अकन्) सिद्ध करें जिन तुम लेगों को (यमः) प्राप्त हुमा परीक्षक पुरुष (अवसानम्) अवकाश वा अधिकार को (अदात्) देवे वे तुम लेगा (अतः) इस अधर्म से (अपेत) एथक् रहे। और धर्म की (वीन) विशेष कर प्राप्त है। जो (अन्न) और इमी में (विष्णंत) विशेषता से गमन करे। ॥ ४५ ॥

भावार्थ:-- नाता विता और आचार्य का यही परम धर्न है जेर

सन्तानों के लिये दिद्या और अच्छी शिक्षा का प्राप्त करना । जे। अधर्म से एवक् और धर्म से युक्त परोपकार में प्रीति रखने वाले वृह और एवान विद्वान् लेग हैं वे निरन्तर सत्य उपदेशसे अविद्याका निवारण और दिद्या की प्रवृत्ति करके कतकृत्य है।वें ॥ ४५ ।।

संज्ञानिमत्यस्य सोमाहुतिर्श्वषिः। अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्ठुप्छन्दः। धेवतः स्वरः ॥ पढ्ने पढ्ने वाले वया करके सुखी हों इस बि०॥

#### मंज्ञानंमिस कामधरंणम्मियं ते कामधरंण-म्मूयात् । अग्नेभ्मांस्यग्नेः पुरीपमिस चितं-स्थ परिचितं ऊर्ध्वचितंः श्रयध्वम् ॥ ४६॥

पदार्थ:—है विद्वन् आप जिन (संज्ञानम्) पूरे विज्ञान की प्राप्त (अनि) हुए हैं। जो आप (अग्नेः) अग्नि में हुई (अस्म) राख के समान देशों की अस्म करता (अमि) हैं। (अग्नेः) कि जुली के जिम (पुरी यम्) पूर्ण कल की प्राप्त हुए (असि) हैं। उस विज्ञान भस्म और बल की मेरे लिथे भी दीजिये जिम (ते) आप का जी (कामधरणम्) संकल्पों का आधार अन्तः करण है वह (कामधरणम्) कामना का आधार (मयि) मुक्त में (भूपात्) हैं। वे। जैसे तुम लोग विद्या आदि शुमगुणों में (चितः) कहें हुए (पिचितः) मब पदार्थों की मब और से इक्ट्रे करने हारे (जध्वचितः) उत्कृष्ट गुत्यों के संवय कर्ला पुरुषार्थ की (अपध्वम्) सेवन करी वैसे इम लोग भी करें॥ ४६॥

भाषार्थ: — जिल्लासु मनुष्यों की चाहिये कि मदैव विद्वानों से विद्या की रुखा कर प्रश्न किया करें कि जितमा तुम छोगों में पदार्थों का विद्यान है उतना मस तुम छे। यहम छे। गें में धारण करे। । और जितनी हस्तकि या भाष जानते हैं उतनी मस हम छोगों की दिखारये।। ४६।।

म्रयंसहत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। म्राग्निर्देवता। आर्षी न्नि-ष्टुप्छन्दः। घेवतः स्वरः॥ मनुर्थों की उत्तम आचरकों के अनुसार धर्तना थाहिये यह वि० ॥

#### अयथमो अग्निर्याश्मिनमे!मिमिन्द्रंः सुतं ह-धे जठरें वावशानः । महस्त्रियं वाजमत्यं न स-प्रिंथ समुवान्त्सन्त्स्त्यंसे जातवेदः ॥४७॥

पदार्थ:—है (जातवेदः) विज्ञान की प्राप्त हुए विद्वान् जैने (सन्वान्) दान देते (सन्) हुए आप (क्तृयन्ते) प्रशंना के योग्य हो (अय-म्) यह (अयनः) भश्ति और (इन्द्रः) सूर्य (यहिमम्) जिस में (सो-म्य्) नव ओपिधियों के रस की धारण करता है जिस (सुत्रम्) मिद्र हुए पदार्थ को (जठरे) पेट में में (द्धे) धारण करता हूं (सः) वह में (बा-वशानः) शीघ्र कामना करता हुआ (मह्स्वयम्) माथ वर्तनान अपनी स्त्री को धारण करता हूं आप के साथ (वाजम्) अस आद्र पदार्थों को (अत्यम्) उपाप्त होने योग्य के (न) समान (सिम्म्) घोड़े को (द्धे) धारण करता हूं वैसा ही तू भी हो।। ४९॥

भावाधी: — इम मनत्र में वाचकलुप्तीय० और खपमालं - जीने बिजुली और मूर्य, मब रमों का ग्रहण का जात को रमयूक्त काते हैं वा जीने पति के माथ छो। और र्ह्मा के माथ पति आनन्द में। गते हैं तैने में इम मब का धारण करता हूं जीने ब्रेष्ठ गुगों से युक्त आप प्रशंसा के योग्य हो जैसे में भी प्रशंसा के योग्य हो छा। ४९॥

अग्नेयत्त इत्यस्य विद्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता । सुरि-गार्षी पाङ्कद्वह्दः। पञ्चमः स्वरः॥ अथ्यापक छोगे। के। निष्कपट में सब विद्यार्थीतन पदाने चाहिये X यह निश्न।

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः ष्टश्विव्यां यदोषंधी-ष्वप्स्वा यंजत्र । यन्त्रान्तिरिक्षमुर्वित्ततन्थं त्वेषः स भानुरंर्णवो नृचक्षाः ॥ ४८ ॥ पदार्थः — है ( यजज ) संगम करने योश्य ( अरने ) विद्वन् ( यस् ) जिस् स ( ते ) आपका अश्नि के समान ( दिवि ) द्योतन शील आस्मा में ( वर्षः ) विद्वान का प्रकाश ( गत् ) जो ( प्रिक्याम् ) प्रिवि ( ओषघीषु ) यवा- दि ओषियों और ( अप्तु ) प्राचीं वा जलों में ( वर्षः ) तेज है ( येन ) जिस से ( मुक्ताः ) समुदर्यों को दिखाने वाला ( भामुः ) सूर्य ( अर्थवः ) बहुत जलों को वर्षाने हारा ( स्वेपः ) प्रकाश है ( येन ) जिन से ( अस्त-रिक्षम् ) आकाश को ( उक्त ) बहुत ( आ, ततन्य ) विस्तार युक्त करते हो ( सः ) सो आप बहु सब हम लोगों में घारण की जिये ॥ ४८ ॥

भावार्थ: --- यहां वाचक लु॰ - इस जगत् में जिम को सृष्टि के पदार्थी का विज्ञान जैसा है। वे बैमा ही शीघ दूमरों को बताबे जा कदाचित दूमरों को न बताबे ता वह नष्ट हुआ किसी की प्राप्त नहीं हो उने ॥ ४८॥

भागनेदिवहत्यस्य विद्यामित्र ऋषिः। अभिनदेवता । सुरि-गार्षी पाङ्किदछन्दः। पञ्चमः स्वरः।

फिर वही विश्व

अग्ने दिवो अर्णमच्छां जिग्रास्यच्छांदेवाँ २॥ ऊंचिष धिष्ण्या ये। या रोचने प्रस्तात् मूर्यस्य याश्चावरतांदुप्तिष्ठंन्त आपंः॥ ४९॥

पदार्थ:—है (अन्ते) तिद्वान् जो आव (दिवः) प्रकाश में (अणंम्) विज्ञान को (याः) जे। (आयः) प्राण वा जल (सूर्यंस्य) सूर्यं के (राचने) प्रकाश में (पास्तात्) पर है (च) और (याः) को (अव स्तात्) मीचे (अपिष्ठाते) समीप में स्थित है उन के। (अच्छ) सम्मक् (जिगामि) स्तृति करते हो (ये) जो। धिरुएपाः) बोलने वाले हैं उन (देवाम्) दिव्यगुण विद्यार्थियों वा विद्वामों के प्रति विज्ञान को (अच्छ) अच्छे प्रकार (जिन्धे) कहते हो सो आप इमारे लिये उपदेश की जिए। अर्थ

भावार्थ:—जो अच्छे विचार से विजुली और सूर्य के कि: हों में ज-पर भीचे रहने वाले जलों भीर वायुओं के बोध का प्राप्त होते हैं वे दूसरों को निरन्तर उपदेश करें।। ४९ ॥

पुरीष्यास इत्यस्य विद्वामित्र ऋषिः । आग्निर्देवता । स्नार्थी पांङ्कद्दान्दः । पञ्चमः स्वरः ॥ ननुष्यों के। द्वेषादिक् छे।इ के आनन्द् में रक्षमा चाहिये इस विदय का चप्रदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पुरीष्यामो अग्नयंः प्रावशोभिः मुजोषंसः । जुपन्तां यज्ञमुदुहोऽनमीवा इपो मुहीः॥ ५०॥

पदार्थ: — सब मनुद्धां को चाहिये कि ( प्रावसिम: ) विज्ञानों के साथ वर्तमान हुए ( अननीवा: ) रोगरिहन ( अहुद्ध: ) द्रोह से पृथक ( सजी- सम: ) एक प्रकार की सेवा-और प्रीति वाले ( पुरीद्याम: ) पूर्ण गुणकि- याओं में निपुण ( अग्नयः ) अग्नि के समान वर्तमान तेजन्वी विद्वान् छे।ग ( यज्ञम् ) विद्याविज्ञान दान और ग्रहणस्य यज्ञ और ( मही: ) बड़ी २ ( इष: ) इच्छा मां की ( जुमन्ताम् ) सेवन करें ॥ ५०॥

आवार्थ: - इम सन्त्र में वाचलुक०- जैसे विजुली अनुकूल हुई मगान भाव मे सब पदार्थों का सेवन करनी है वैसे ही रोग द्रोहादि दोषों से रहिन भाषस में भीति वासे हो के विद्वान् लोग विज्ञान बढ़ाने वासे यक्त की विस्तृत कर के बहे र सुखे। की निरम्तर भीगें।। ५०॥

हडामरनत्यस्य विश्ववाधित्र ऋषः। ऋरिनर्देवता । सुरि-गःषी पर्देक्षहरूदः । पञ्चमः स्वरः ॥ मनुष्य गर्भाषःनादि सरकारों से बालकों का सरकार करें इस विश्व।

इडांमग्ने पुरुद्धसंध स्निं गोः शंश्वत्मध हवंमानाय साथ। स्यान्नः स्नुः स्तनंयो विजा-वाऽग्ने सा ते सुमृतिभूत्वसमे ॥ ५१॥ पदार्थ:— है ( अश्ने ) विद्वान् (ते ) आप की ( सा ) वह ( सुनितः) सुन्दर सुद्धि ( अश्मे ) इन लोगों के लिये ( भूतु ) होने जिस से आप का ( मः ) और हमारा जो ( विवावा ) विविध प्रकार के ऐश्वर्यों का लत्पा-दक ( सुनुः ) उत्पन्न होने बाला ( तनयः ) पुत्र ( स्थात् ) होने उन बुद्धि से उस ( हवमानाय ) विद्या ग्रहण करते हुए के लिये ( इडाम् ) स्तुनि के योग्य वाणी को (गोः) वाणी के मम्बन्धी (शश्वत्तमम् ) अनादि इत्य अत्यन्त वेदद्यान को और ( पुरुद्तम् ) बहुत कर्म जिस से निद्ध हो ऐसे ( तिम् ) आव्यद्वादि वेदविद्याग को (वाध) सिद्ध की जिये और है अध्यापक हम लोग भी सिद्ध करें ॥ ५१ ॥

भाषार्थ: — माता पिता और भाषार्थ को चाहिये कि सावधानी वे गर्माघान आदि संस्कारों की रीति के अनुकूल अच्छे सन्तान चटपक कर के उन में बेद देश्वर और विद्या युक्त बुद्धि उटपक करें क्यों कि ऐना अन्य घमें अवत्य सुख का द्वितकारी कोई नहीं है ऐना निश्चय रखना चाहिये ॥ ५१॥

अयंत इत्यस्य विद्वामित्र ऋषिः। ग्राग्निर्देवता। निषृदा-वर्णनुष्ट्पक्रन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ माता विता और पुत्राद्कों की परस्वर क्या करना चाहिये यह वि।

अयन्ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोच-थाः।तंजानत्रंग्न आ रोहाथांनो वर्धयार्यम् ॥ ५२॥

पदार्थः -- हे ( भग्ने ) अहा के सनान शुद्ध अन्तः करण बाले बिद्धान् पुरुष जो ( ते ) आप का ( ऋत्वियः ) ऋतुकाल में प्राप्त हुना ( अयम् ) यह प्रत्यक्ष ( योनिः ) दुः लों का नाशक और सुखदायक व्यवहार है (यतः) जिस से ( जातः ) स्टब्ल हुए भाष ( अरोक्ष्याः ) प्रकाशित है। वें ( तम् ) स्त को ( जानम् ) जानते हुए भाष ( आरोह ) श्वनशुणों पर आहर हू- जिये ( अथ ) इस के पश्चात् ( न: ) इस छोनें के छिये ( रिवस् ) प्रशंसित सहनी के ( वर्षय ) बदाइये ॥ ५२ ॥

भावार्थः-हे माता विना भीर आचार्य ! तुम छाग पुत्र भीर कत्या-भें। के। धर्मानुकूछ मेवन किये ब्रह्मवर्य से ख्रेग्डिनिद्या की प्रतिद्व कर उपरेश करे। हे सन्ताना ! तुम छाग सत्यविद्या भीर सदाचार के साथ इम के। भण्डी सेवा भीर धन से निरस्तर सुख युक्त करे। ॥ ५२ ॥

चिद्सीत्यस्य विद्वामित्र ऋषिः। ग्राग्निर्देवता स्वराश-

नुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कन्याओं की क्या करके क्या करना चाहिये यह विक्री

# चिदंसि तयां देवतंयाङ्गिर्मवद् ध्रुवा सींद । परिचिदंसि तयां देवतंयाङ्गिर्मवद् ध्रुवा सींद

#### ॥ ५३॥

पदार्थ:—हे कन्ये जा तू ( वित ) जिताई ( असि ) हुई (तया) उम ( देवतया ) दिव्यगुण प्राप्त कराने हारी विद्वान् को के माथ ( अङ्गिख्यत् ) प्राचीं के तुल्य ( प्रवा ) निश्चल ( सीद ) स्थि हा । हे अक्षाचारिणी जा तू ( परिक्ति ) विविध विद्या का प्राप्त हुई ( असि ) है सा तू ( तया ) उस ( देवतया ) धर्मानुष्ठाम ने युक्तद्व्यसुखदायक किया के साथ ( अङ्गिर-स्वत् ) ईश्वर के समान ( प्रवा ) अचल ( सीद ) अवस्थित हो ॥ ५३॥

सावार्धः -- मण माता पिता और पढ़ाने हारी विद्वान् कियों की चा-हिये कि कन्याओं की सम्यक् बुद्धिमती करें। है कन्या छै। ये। तुम जी पूर्ण अवंदित ब्रद्धावर्य से संपूर्ण विद्या और अवद्यी शिक्षा की प्राप्त युवति है। कर अपने तुस्य वरीं के साथ स्वयंवर विवाह करके यहा प्रम का सेवन करे। ती सब सुकों की प्राप्त है। और सन्तान भी अवदे हैं। वें। ५३।।

लोकंपृणंत्यस्य विद्वामित्र ऋषिः। ग्राग्निर्देवता । विराद्यः

नुष्टुत् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

र्भ फिर भी बड़ी विषय अगले मंत्र में कहा है।

#### लोकं प्रंण छिद्रं पृगाथों सीद ध्रुवात्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बहस्पतिरस्मिन् यानावसीष-दन् ॥ ४४॥

पदार्थः — हे कन्ये जिम (त्था) तुक्त की (ये।नै।) बन्ध के छे दक मे सामासि के हेतु (अस्मिन्) इम विद्या के बोध में (इन्द्राकी) माना पिता तथा। सहस्पतिः) बड़ी २ वेदवाणियों की गक्षा काने वासी अध्या पिका स्त्री (अमीपदन्) प्राप्त कार्वे उस में (त्थम्) तू ध्रुवा) दृढ़ निश्चय के बाथ (सीद्) स्थित है। (अथे।) इन के अनाता (खिद्रम्) छिद्र की। (प्रण) पूर्व कर और (से।कम्) देखने येग्य प्राणियों की। (प्रण) तुस्

भाषार्थ: — माता पिता और आणार्थों की माहिये कि इस प्रकार की धर्मयुक्त विद्या और शिला करें कि जिनकी ग्रहण कर कन्म लेग चिन्ता रहित हो सब बुरे द्यसनों की त्याग भीर नमावतंत्र संस्कार के पंद्यास स्व-यंवर विवाह का के पुरुषार्थ के साथ भानन्द में गईं॥ ५४॥

ताअस्यत्यस्य प्रियमेघा ऋषिः । आपो देवता । दिराडनृष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वर ॥

कि भी भी वर्ग निषय का वप्देश सगक्षे सब में किया है।।
ता अंस्य सूदंदोहमः सोमंछ श्रीगान्ति एइनंयः। जनमंन्द्रेवानां विशंस्त्रिष्टवा रांचन दिवः

॥ ५५ ॥

पदार्थः — जो (देवानाम् ) दिश्य विद्वान् पतियो की (वृद्देश्यः) शुन्दर वरोश्या भीर गी भादि के दुइने वाले मंबका वाली (प्रश्यः )की-मल शरीर सूक्षन अङ्ग युक्त को दूबरं (जन्मन् ) विद्यास्य जन्म में विद्यो है। के (दिवः) दिवप ( अस्य ) दन गृहाम्रम के ( कोमम् ) उत्तम भोष थियों के रस ते युक्त भेःजन ( श्रीणन्त ) पकाती हैं (ताः ) वे ब्रह्मचारि-णी ( अरोचने ) अच्छो रुचिकारक ठयवहार में ( त्रिषु ) तीनें। अर्थात् गत अर्गामी और वर्त्तमान कण्ड विभागों में सुस देने वाली होती तथा ( विशः ) उत्तन सन्तानों की भी प्राप्त होती हैं। ५५॥

भावार्थः — जब अच्छी जिसा का प्राप्त हुए युवा विद्वानी की अपने मदूश रूप भीर गुण से युक्त की है वें ते। गृराश्रम में मर्बदा सुख और अ-च्छी मन्तान सत्पन्न है।वें। इस प्रकार किये विना संमार का सुख और श्रारीर सूटने के प्रश्नास् में सा कभी प्राप्त नहीं है। सकता । ५५॥

इन्द्रं विद्वेत्यस्य स्वजेत्मधुच्छःदा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टृप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कुमार भीर कुमारियों के। इस प्रकार करना चाहिये यह विषय अगले भन्न में कहा है।।

# इन्द्रं विश्वां ग्रवीद्यधन्त्समुद्रव्यंचमं गिरंः। रथीतंमधर्थीनां वाजांनाध सत्पंतिं पतिम्॥५६॥

पद्धि:--हे स्त्री पुन्न थे जैसे (विश्वाः) सस्त (गिरः) वेद्विद्या से सस्कार की हुई वाणी (म्सुद्रव्यचमम्) ससुद्र की व्यासि के समान द्यांस्र जिस में हो उन (वाजानाम्) संप्रामें और (रथीनाम्) प्रशंसित रथे। वाले बीर पुन्न में (रथीतमम्) अत्यान प्रशंसित रथवाले (मन्पतिम्) सत्य ईश्वर बेद धर्म वा श्रेष्ठ पुन्न में के रक्षक (पतिम्) मस ऐश्वर्य के स्थान्त्री की (अवीव्यन्) बढ़ वें और (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को बढ़ावें वैसे सब प्राणियों को बढ़ावों ॥ ५६ ।

आवार्थ: — जो कुनार और कुनानी दीघं ब्रह्मचर्य नेवन से माङ्गोणाङ्ग वेदीं को पढ़ और अपनी २ प्रमणना से स्वयंवर निवाह करके ऐश्वर्य के लिये प्रयक्त करें। धर्मयुक्त व्यवहार से व्यक्तियार को छोड़ के सुन्दर सन्ता नें को उत्पक्त करके वरीयकार करने में प्रयत्न करें वे इस संसार और पर-लेक में सुख भोगें। और इन से विरुद्ध जानें की नहीं है। तकता ॥ ५६ ॥ सिनतिनित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। आग्निर्द्वता । भुरिगुर्विणक् कन्दः। ऋषमः स्वरः॥ प्रकार विवाह करके कैसे वर्षे इस विषय का सपदेश अगले मंत्र में किया है॥

समित्र ७ संक्षेत्र १ से स्वर्ण संमन्-स्यमानौ । इष्मूर्जं मि मुंवसानौ ॥ ५७ ॥

पदार्थः - हे विवाहित स्त्री पुरुषो तुम (संभियौ) भाषस में सम्यक् भीति वाले (रोजिस्णू) विवयाशक्ति से एयक् प्रकाशमान (सुमनस्यनानौ) मित्र विद्वान् पुरुषों के ममान वर्त्तमान (सम्वसानौ) सुन्दर वस्त्र और आ-भूषयों से युक्त हुए (इषम्) इच्छा को (सिनतम्) इक्ट्ठे प्राप्त होओं और (सर्जम्) पराक्तन को (भिन्न) सन्मुख (सङ्करूपेयाम्) एक अभिप्राय में समर्थित करो ॥ ५९ ॥

आयार्थ:—को क्यो पुरुष सर्वथा विशेष की छोड़ के एक दूसरे की प्रीति में तरपर, विद्या के विचार से युक्त तथा अब्बे २ ब्रह्म और काभूषण धारण करने वाले है। के प्रयत्न करें तो घर में कलपाण और आरोग्य बढ़ें। और को परस्पर विशोधी हों तो दु:ख सागर में अवश्य हुई ॥ ५९ ॥

संवामित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । ग्राग्निद्वता । मुरिगुपरिष्ठाः

्रेट्टूहरी छन्दः। मध्यमः स्थरः॥
आध्यापक और उपदेशक लेगों को चाहिये कि जितना सामध्ये
है। उतना ही बंदों को पढ़ग्वें और उपदेश करें यह विषय
अगले गन्त्र में कहा है॥

सं वा मनांक्षमि सं व्रता समुंचित्तान्याकरम्। अग्ने पुरीष्याधिपा भंव त्वं न इष्मूर्जं यर्जमा-नाय धाहे ॥ ५८॥ पदार्थ: — हे की पुरुषो जैने में आधार्य ( वाम् ) तुन दोनों के ( धंन्तांति ) एक धर्म में तथा महून्य विकल्प आदि अन्त: करण की स्तियों के। ( धंन्नता ) सत्यमाषणादि ( स ) और ( सम्, चित्तानि ) सम्यक् जाने हुए कर्मों में ( का ) अच्छे प्रकार ( अकरम् ) कर्म । वैसे तुन दोनों मेरी प्रीति के अनुकूल विचारों हे ( पुरीधा ) रक्षा के योग्य उपवहारों में हुए ( अग्ने ) उपदेशक आधार्य सा राजन् ( त्वम् ) आप ( नः ) इनारे ( अन्थियाः ) अधिक न्क्षा करने दारे ( अञ्च ) हू जिये ( यजमानाय ) धर्मानुकूल सत्मक्त के स्त्रभाव बाले पुरुष का ऐसी स्त्री के लिये ( दयम् ) अन्न आदि उन्तम पदार्थ और ( क्रजंग् ) शरीर तथा आस्ता के बल की ( पेहि ) धारण की जिये ॥ पुरुष

भावार्थः - चपदेशक मनुष्यों की चाहिये कि जिनका मामध्ये हो छ-तमा सब मनुष्यों का एक धम्मं एक कर्म्स एक एकार की कि सबित और बरा-बर सुल दुःख जैने हो धैने ही जिला करें। मन स्त्री पुन्तीं को योग्य है कि साम निद्वान् हो की जन्देशक और अध्यावक मान के सेवन करें और उप-देशक वा अध्यावक इन के ऐएनर्थ और परास्त्रम को बहातों। और सब म-नुष्यों के एक धर्म आदि के बिना आत्मानीं में नित्रता नहीं होती और नित्रता के बिना निरन्तर सुल भी नहीं हो सकता।। एट।।

ध्यरंने त्विधित्यस्य मधुक्छन्दा कदिः। अग्निर्देवता । श्विरिगु-ब्लिक् छन्दः । क्षण्यः स्वरः ॥

किन को पढ़ाने और उपदेश के लिये निमुक्त करना चाहिये।॥

अग्ने त्वं पुरीष्यो रियमान् पृष्टिमाँ २॥ असि । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमि-हासदः ॥ ५९॥

पदार्थ: — है ( भग्ने ) उपदेशक विद्वन् जिस से ( त्वम् ) भाप ( दह) इस संवार में ( पुरीष्य: ) एक मत के पालने में तत्पर ( रिवनान् ) विद्या विश्वान और यन वे युक्त और (पुष्टिमान्) प्रशंकित शरीर और आश्मा के बहु से सहित ( असि ) हैं इस्डिये ( सर्वाः ) सब ( दिशः ) स्पर्देश के योग्य प्रका (शिवाः) कश्याणदापी सपदेश से युक्त (करवा) कर के ( स्वम् ) अपने ( योगम् ) सुखदायक दुःस नाशक सपदेश के घर को ( आसदः ) प्राप्त कृतिये ॥ ५९॥

भावार्थः -- राजा और प्रजाननों की चाहिये कि जो जितेन्द्रिय धर्माः हमा प्ररोपकार में प्रीति रखने वाले विद्वान् होर्वे उन को प्रजा में धर्मीय-देश के लिये नियुक्त करें भीर उपदेशकों की चाहिये कि प्रयक्ष के साथ सब को अच्छी शिक्षा से एकधर्म में निरन्तर विरोध को छोड़ के सुखी करें ॥५६॥

भवतन्न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। दम्पती देवता।
आर्थी पङ्क्तिइछन्दः। पञ्चमः स्वरः॥
फिर सब की चाहिये कि विद्या देने के लिये माप्त विद्वानी की
प्रार्थना की इस विश्व।

भवंतन्नः समनमी सर्चेतसावरेपसौ । मा युज्ञ छ हिं छसिष्टं मा युज्ञपंतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमुद्य नंः ॥ ६०॥

पदार्थः — हे विवाह किये हुए क्कीपुत्रको तुम दोनों ( नः ) इस छोगों की लिये ( नमनती ) एक से विनार और ( मचेतसी ) एक से बोध वाले ( अरेप्सी ) अपराध रहित ( भवतम् ) हू जिये ( यक्तम् ) प्राप्त होने योग्य धर्म को ( भा ) मत ( हि सिष्टम् ) विगाहे। और ( यक्तपित् ) उपदेश से धर्म के रक्षक पुन्च को ( मा ) मन मारो ( अद्य ) आज ( मः ) इमारे लिये ( जातवेदनी ) संपूर्ण विकान को प्राप्त हुए ( शिथी ) मंगलकारी ( भवतम् ) हू जिये ॥ ६० ॥

भावार्थः-कीपुरवननों की चाहिये कि सत्य उपदेश और पडाने के लिये सब विद्यानों ने युक्त प्रगतन निय्कष्ट धर्मातना सत्यविय पुरुषों की नित्य मार्थमा और उन की वेबा करें। और विद्वान छोग सब के छिये ऐसा उपदेश करें कि जिस से सब धर्माषरण करने वासे हो जार्थे।। ६०।।

मातेषेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। पत्नी देवता । आर्षी त्रिष्ठुप् ह्वन्दः । घैषतः स्वरः॥

माति वे पुत्रं प्रिधिवी पुर्विष्युम् रिन्धस्वे योनां-माति वे पुत्रं प्रिधिवी पुर्विष्युम् रिन्धस्वे योनां-वभाक्त्वा । तां विश्वैर्टेवैर्ऋतुभिः संविद्धानः प्रजापितिर्विश्वकंम्मां वि मुंश्चतु ॥ ६१ ॥

पदार्थ:-जो ( उसा ) जानने योग्य ( पृथिवी ) सूनि के उसाम वर्ते मान विद्वान् को ( स्वे ) अपने ( बोनी ) गर्नाशय में ( पृशेक्षम् ) पृष्टिकारक गुणों में हुए ( अग्निम् ) विज्ञुली के तुल्य च्च्छे प्रकाश से युक्त गर्ने क्रिय ( पृत्रम् ) पृत्र को ( मातेव ) माता के समान ( असा: ) पृष्ट वर धारण करनी है ( नाम् ) जन को ( संविदानः ) सम्यक् बोध करना हुमा ( विद्यवन्तां ) सब उत्तम कर्म करने वाला ( प्रजापतिः ) परमेखद ( विद्ये: ) सब ( देवै: ) दिल्य गुणों और ( ऋतुमिः ) वतन्त कादि ऋतुओं के साथ निरन्तर दुःस से ( वि,मुल्यतु ) खुदावे ॥ ६१ ॥

भावार्थः - इम नंत्र में उपमालं - जैसे माता सम्मानें। की उत्पक्ष कर पालती है जैमे की प्रिणी कारण क्ष्य कि जुली को प्रसिद्ध करके रक्षा करती है। जैमे परमेखर ठीक र पृथिवी आदि के गुणों को जानता और नियस समय पर नरे हुओं और पृथिवी आदि को धारण कर जपने र नियस परिथि से चला के प्रलय समय में तब को निया करता है जैसे ही विद्वानें। को चार्थि के अपनी बुद्धि के अनुसार हम सब पदार्थों को जान के का- दर्पनिद्धि के लिये प्रयक्ष करें। ६१॥

सनुन्दतमित्यस्य मधुच्छन्दाः ऋषिः । निर्ऋतिदेवता । निर्मृत्त्रिद्युप्छन्दः । धेवतः स्वरः ॥ असुन्वन्तुभयंजभानभिच्छस्तुनस्येत्याम-निविद्यि तस्करस्य । अन्यस्मादिच्छ सा तं इ-त्या नमों देवि निर्ऋते तुभ्यंमस्तु ॥ ६२॥

पदार्थ:—है (निर्मात ) पृथित्री के तुल्य वर्शनान (देवि) विद्वान् खी तू ( अस्मत् ) हम से भिन्न (स्तेनस्य) अग्रमिद्ध चोर और (तस्करस्य) प्रसिद्ध चोर के सम्बन्धी की छोड़ के (अस्मम् ) भिन्न की (इच्छ) इच्छा कर और (असुन्वस्तम् ) अभिषव आदि कियाओं के अनुष्ठान से रहित (अयजमानम् ) दान धर्म से रहित पुरुष की (इच्छ) इच्छा मत कर और तू जिस (इत्याम् ) प्राप्त होने योग्य किया को (अन्विद्धि) ढूंढ़ें (सा) वह (इत्या) किया (ते) तेरी हो तथा उस (तुम्यम् ) तेरे लिये (नमः) अन्न वा मत्कार (अस्तु ) होंगे ॥ ६२ ॥

आयार्थ: — हे खिटा तुम लोगों की चाहिये कि पुरुषार्थरित चोरों के सम्झन्धी पुरुषों की अपने पनि करने की कुछला न करो । आम पुरुषों की नीति के तुस्य मीति वाले पुरुषों को ग्रहण करें। जैसे पृथिवी अनेक उत्तम फलों के दान ने मनुष्यों को संगुक्त करती है वैशी हो जो। ऐने गुणों बाली तुम के। हम लेगा नमस्कार करते हैं। जैसे इम लेग आलकी चेगों के साथ न वर्ते बैने तुम लेगा भी मन वर्ता। ६२॥

नमःमुत इत्यस्य मधुच्छन्दाक्षिः। निक्रितिदेवता। भुरिः
गार्घी पङ्क्तिइछन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

क्रिया थे एको की नी हैं। इस विवय का नवदेश अगले सम्ब्र में कि रा है।।

नमः मुतं निर्ऋते तिग्मतेजोऽयसम्यं विचृं-ता बन्धमेतम् । यमेन त्वं यम्या संविद्यानात्त-मं नाके अधि रोहयैनम् ॥ ६३ ॥ पदार्थ: — है (निश्चंते) निरन्तर सत्य आचाणों से युक्त छी जिम (ते) तेरे (तिरनतेजः) तीव्र तेजों वाले (अयस्वयम्) सुपर्णाद् गीर (नमः) अकादि पदार्थ हैं सो (त्वम्) तू (एतम्) इस (अन्यम्) आंधने के हेतु अञ्चान का (स्विचृत) अच्छे प्रकार (यसेत) न्यायाधीश तथा (यस्या) स्थाय करने हारी छी के साथ (संविद्याना) मस्यक् खुद्धि युक्त हो कर (एतम्) इस अपने पति की (उक्तमे) उक्तम (नाके) आनन्द सोगने में (अधिरोह्य) आहत् कर ॥ ६३॥

भाषार्थ: — है खिये तुम को चाहिये कि जैमे यह एथियी अग्नि तथा सुत्रका अकादि पदार्थी से मन्यन्थ रखती है वैमे तुम भी हो भी । जैसे तु महारे पति न्यायाथीश हो कर अपराथी और अपराथरहित मनुष्यों का मत्य न्याय से विवार कर के अपराथियों की द्यह देने और अपराथ रहितां का मत्कार करते हैं तुम छोगों के छिये अत्यन्त आगःद देते हैं वैसे तुम छोगा भी होओ ।। ६३ ॥

यस्पास्त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । निर्मातिर्देवता ।
आर्थाांत्रष्टुप्छन्दः । धंत्रतः स्वरः ॥
किर प्रयोजन के लिये खां पुरुष संयुक्त है।वें यह विषय भगहे
संत्र में कहा है ॥

यस्यांस्ते घोर आसन् जुहोम्येषां वन्धानां-मवसर्जनाय। यां त्वा जन्रो सूमिरितिं प्रमन्देते निर्द्धतिं त्वाहं परिं वेद विश्वतः॥ ६४॥

पदार्थ: — है (पे।रे) दुष्टों की भय करने हारी खी (यस्पाः) जिन शुन्दर नियम युक्त (ते) तेरे (आमन् । शुस्त में (एषाम्) इन (बन्धा-नाम्) दुःख देते हुए रेकिने वालों के (अन, मर्जनाय) त्यान के लिये अ-मतस्त्र अक्षादि पदार्थों के (जुहेर्तम) देता हूं जी (जनः) मनुष्य । भू निरिति ) ए थंथों की समान (याम्) जिस्त (स्वा) तुक्त की (प्रमन्दते) आमन्दित करता है उन तुमा की (अहम्) में (विश्वतः) सब ओर चे (निर्श्वतिम्) पृथिती के समाम (त्वा) (परि) मब प्रकार चे (वेद्) सामूं। चेत्र सुभी इस प्रकार सुभा की जान ॥ ६४॥

आवार्थ: - इस मंत्र में उपमा भीर वाषकलु०- जैसे पति अपने आन-न्त की लिये आपों का ग्रहण करते हैं। वैने ही खो भी पनियों का ग्रहण करें इस ग्रहामन में पतिव्रता खो और खोव्रत पति सुद्ध का कीश होता है। केनक्षप खी और बोक्तप्रपुरुष लें। इन शुद्ध बलवान् देनों के समा-गम से उत्तन विविध प्रकार के सन्तान हों तो सर्वदा कस्याख ही बढ़ता रहता है ऐना जानना चाहिये।। (४)।

यं ते दंवीस्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। यजमानो देवता । आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

- विवाह मनय में की भी २ प्रतिश्वाकरें इस कि।

यन्ते देवी निऋँतिराब्बन्ध पाशं ग्रीवास्वं-विचृत्यम् । तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमंद्धि प्रसूतः । नमो भूत्ये यदं चकारं॥६५॥

पदार्थ: — को कहे कि है पते ( निर्मातः ) प्रियो के समाम में (ते। तेरे ( ग्रीना क्ष ) काठीं में ( अविष्यम् ) न छोड़ने योग्य ( ग्रम् ) जिम ( ग्राम् ) धर्म युक्त सम्धन को ( आस्थन्य ) अच्छे प्रकार सांचती हूं तम् ) उनको (ते) तेरे लिये भी प्रवेश कानी हूं (आयुषः) अवस्था के साधन अक्ष के न) ममान (वि,स्पानि) प्रिष्टि है। ती हूं (अध) इन के प्रवात् ( मच्चात् ) में तू दे नों में से के हैं भी निगम से निरुद्ध न चले जैने में ( एनम् ) इस ( ग्रिम् ) अव्यादि प्रदार्थ को भेशनती हूं वैमे ( प्रमुनः ) स्रव्य हुमा तू इन अव्यादि प्रदार्थ को भेशनती हूं वैमे ( प्रमुनः ) स्रव्य हुमा तू इन अव्यादि को ( अद्वि ) भेशन। है क्यों ( या ) जी। ( देवी ) दिव्य गुण वाली तू ( इदम् ) इन प्रतिव्यत् क्रव धर्म से संस्कार किये हुए प्रत्यक्ष नियम के। ( वकार ) करे जन ( भूत्ये ) ऐइवर्ष करने हारी तेरे लिये (नमः अव्यादि प्रदार्थ को देना हूं।। ई४।।

भाषाधी:—इन मंत्र में उपनालं!—विवाह मनय में जिन व्यक्तिकार के स्थाग आदि नियमें। को करें उन से विरुद्ध कभी न चले क्यों कि पुरुष अब विवाह सनय में श्ली का हाथ ग्रहण करता है तभी पुरुष का जितना ध-दार्थ है वह नव श्ली का और जितना श्ली का है वह सब पुरुष का सनभा जाता है। जै। पुरुष अपनी विवाहित श्ली को छे। इ अन्य श्ली के निकट जावे वा श्ली दूनरे पुरुष की इच्छा करें ते। वे देशों श्लीर की समान पापी हे। ते हैं दर्शालये स्त्री की सम्मति के विना पुरुष और पुरुष की माशा के विना श्ली कुछ भी कानन करें यही श्ली पुरुष में प्रद्शर ग्लीत बढ़ने वाला काम है कि जी। उपनिवार की सब समय में त्याग दें॥ ६५॥

निवेद्यान इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । अजिन्देवता । विराहाणी त्रिष्टृप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैरे क्वीपुरुष ग्रहात्रन करने के येग्य हाते हैं यह विषय अगले संत्र में कहा है।।

निवेशनः सङ्गर्मनो वर्मनां विश्वां रूपाऽभि-चंष्टे शचींभिः । देवइंव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तंस्थी समुरे पंथीनाम् ॥ ६६ ॥

पदार्थः -- जें (सत्यथनं) मत्य थर्म से युक्त (सिवता) सथ अगत् की रमने वाले (देन्द्रव) देश्वर के समान (निवेशनः) स्त्री का साथी (सन्द्रमनः) शी प्रगति से युक्त (श्राची भिः) बुद्धि वा कर्मों से (वसूनाम्) प्रचिवी आदि पदार्थों कं (विश्वा) स्व (द्रापा) स्त्रपों कें। (अभिवब्दे) देखता है (इन्द्रः) सूर्य के (न) ममान (समरे) युद्ध में (पथीनाम्) चलते हुए मनुर्धों के सम्भुख (तस्यी) स्थित है।वे वही ग्रहासन के येश्व है।ता है। ६६॥

भावार्थ:-- इस मन्त्र में देा उपमाल - मनुष्यों की ये। व है कि जैसे इंग्रा ने सब के उपकार के लिये कारण से कार्यक्रय अनेक पदार्थरय के उप- युक्त करे हैं। जैसे सूर्य मेघ के साथ युद्ध करके जगत् का खपकार करता है वैसे रचना ऋम के विश्वःन सुन्दर ऋिया से एथिश्री आदि पदार्थों से अनेक स्ववहार मिद्ध कर प्रजा की सुख देवें॥ ६६॥

सीरा इत्यस्य विद्वावसुर्ऋषः। कृषीवलाः कषयो देवताः। गायत्रीछन्दः। षड्जः स्वरः॥

आब सेनी काने की विद्या अगले मन्त्र में कही हैं।

## सीरो युञ्जान्ति क्वयों युगा वि तन्वते प्र-थंक् । धीरां देवेषुं सुम्नया ॥ ६७ ॥

पदार्थ:— हे मनुष्या जैने ( घीरा: ) ध्यानशील ( कवय: ) खुद्धिमान् लेग ( सीरा: ) हलें। भीर ( युगा ) जुमा भादि को ( युज्जन्ति ) युक्त करते भीर ( सुन्नया ) सुख के साथ ( देखेषु ) विद्वानों में ( एयक् ) भलग ( वि तन्वते ) विस्तार युक्त करते वैसे मव लेग इन खेती कर्म का सेवन करें।। ६९॥

भावाधी:—इप मन्त्रमें बानकलु = मनुष्यों की चाहियं कि विद्वानों की शिक्षा से क्षिकर्म की एकाने करें। जैने ये। गी नाड़ियों में पन्मेश्वर की म-माधियाग से पाप्त है।ते हैं। वैमे ही क्षित्रमें द्वारा सुस्तें की प्राप्त है।वें ॥६॥। यूनक्तेत्यस्य विश्वावस्त्रक्तंत्यः। क्षुष्वावलाः सवयो वा देवताः।

विराडार्षी जिन्दुप्छन्दः। धैवनः स्वरः॥ फिर्भो नही विषय भगले मंत्र में कहा है॥

युनक्त मीरा वि युगा तंत्रध्वं कृते योनौं व-पतेह बीजंम् । गिरा चं श्रुष्टिः सर्मरा असंद्रो नेदीय इत्सृण्यः पुक्रभयात् ॥ ६८ ॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो तुमलेग (इह) इस पृथियी वा बुद्धि में मधानी की (विननुष्यम्) विविध प्रकार से विस्तारयुक्त करें। (सीरा) खेती की साधन इस आदि वा नाहियां और (युगा) जुमाओं की (युनक्क) युक्त करें। (कते) हल आदि से जीने वा येग्ग की अंगी से शुद्ध किये सन्तःकरक

(योनी) खेत में (खोतम्) यव आदि वा सिद्धि के मूल की (वपत् ) बी-या करें। (गिरा) खेती विषयक कमी की उपयोगी सुशिक्षित वाणी (च) भीर अच्छे विचार से (सत्तराः) एक प्रकार के घारण और पेश्वण में युक्त (श्रृष्टिः) शीच्च हूजिये जी। (स्वयः) खेतों में उत्पक्त हुए यव आदि अक्ष-जाति के पदः ये हैं उन में औ। (नेदीयः) अत्यन्त समीप (पक्तम्) पका-हुआ (असत्) है। वे वह (इत्) ही (मः) हमले। ये। की (आ) (इयात्) प्राप्त है। वे।। ६८॥

भावाधः - हे मनुष्यो तुम लेगों को उचित है कि विद्वानों से योगा-भवास और खेती करने हारों से कृषि कर्म की शिक्षा की श्राप्त है। और अ-नेक साधनों की बना के खेती और योगाभ्याम करें। इससे जे। २ आका-दि पका है। उस २ का ग्रहण कर भी तन करें। और दूसरों की कराओ ॥६०॥

श्वनिमत्यस्य कुपारहारित ऋषिः । कृषीवला देवताः । जि-

प्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥ भिरं भी वही वि०॥

शुन्ध सुफाला वि क्षंपन्तु स्मिॐशुनं की-नाशां अभि यंन्तु वाहैः । शुनांसीरा हविषा तोशंमाना सुपिष्पुला ओपंधीः कर्त्तनास्मे॥६९॥

पदार्थ:—जो (की नाशाः) पित्रम से क्लेशमें।का खेती काने हारे हैं बे (फालाः) जिन से पृथिती की जीतें तन फालों से (बाहै:) बैल आ दि के साथ वर्तमान हल आदि से (भूनिम्) पृथिती की (विक्वन्तु) जीतें और (शुनम्) सुस को (अभियन्तु) आह हे वें (इविषा) शुद्र किये घी आदि से शुद्र (तेशमाना) सन्तोषकारक (शुनासीरा) वायु और सूटर्ष के समान खेती के साधन (सस्मे) हमारे लिये (स्विप्यलाः) सन्तर फलें से युक्त (कोवधीः) जी आदि (कर्तन) करें और उन अंविष्यति से शुनादी हि शु शुन्दर (शुनम्) सस्म में।। इंट ॥

भावार्थ: -- जो चतुर खेती करने हारे गै। और बैल आदि की रहा करके विचार के साथ खेती करते हैं वे अत्यन्त सुख की प्राप्त हे।ते हैं। इन खेती में विष्ठा आदि मलीन पदार्थ गहीं हालने चाहियें किन्तु बीच सुग-निध आदि से युक्त करके ही बेविं कि जिस से अका भी रेग रहित सरपका है। कर मनुष्यादि की बुद्धि को बढ़ावें।। ६९।।

घृतेनेत्यस्य कुमारहारित ऋषिः। कृषीबला देवताः। आषी श्रिष्टुण्छन्दः। घैवतः स्वरः॥ फिर भी बही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

# घृतेन सीता मधुना समंज्यतां विश्वैर्टेवैरनुं-मतामरुद्भिः । ऊजैस्वती पर्यसा पिन्वंमाना-स्मान्त्सीतेपर्यसाभ्या वंद्यतस्व ॥ ७० ॥

पदार्थः—(विश्वै:) सब (देवै:) अन्नादिपदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान् (महिद्धः) जनुष्यों की (अनुनता) आज्ञा से प्राप्त हुआ (पयमा) जल वा दृश्य में (कर्जस्वती:) पराक्रम संबन्धी (विन्वमाना) सींचा वा सेवन किया हुआ (सीता) पटेला (प्तेन) घी तथा (मधुना) सहत वा शहर आदि से (ममज्यताम्) संयुक्त करें। (सीते) पटेला (अस्मान्) इन लेगों की घी आदि पदार्थी से संयुक्त करेगा इस हेतु से (प्रमा) जल से (अस्पाव्युत्सव) बार २ वर्षाओं।। 90।।

आवार्थ:—सब विद्वानी की चाहिये कि किमान छीग विद्या के अनु कूल घी मीठा और कल आदि ने संस्कार कर स्वीकार की हुई खेन की पृ-थित्री की अन्न की सिद्ध काने वाली करें। जैसे बीज सुगन्धि आदि युक्त कर के बोते हैं बैमे इस पृथित्री की भी संस्कार युक्त करें॥ 90 ॥

लाङ्गलांमत्यस्य कुमारहारित ऋषिः। कृषीयला देवताः।

बिराट् पर्ङ्काइक्कन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥ फिल्मी उसी विश्रः!

# लाङ्गंलं पवीरवत्सुशेवंथ सोम्। पित्संरु । तदुर्दं-पित गामिवं प्रफुर्वं च पीवंरीं प्रस्थावंद्रथुवा-हंनम् ॥ ७१ ॥

पद्धि:—है किमाना तुम छाग जो ( मोमिवित्सक ) जी आदि श्रीम थियों के रक्षकों की टेढा चलावे ( पर्योख्य ) प्रशंसित फाल से युक्त ( धु-शेवम् ) सन्दर सुखदायक ( लाङ्गलम् ) फाले के धीछे जी दृढ़ता के लिये काष्ठ लगाया जाता है वह ( च ) और ( प्रफट्यम् ) चलाने येग्य ( प्रस्थान्यत् ) प्रशनित प्रस्थान वाला ( रथवाइनम् ) रच के चलने का साधन है जिस से ( अविम् ) रक्षा आदि के हेतु ( पीवरीम् ) सब पदार्थों की भुगाने का हेतु स्थ्म ( गाम् ) एथिवी का ( सद्वपति ) सखाइते हैं ( तत् ) दस का तुम भी सिद्ध करों ॥ १ ॥

भावार्ध: — किसान छे। गें के। उचित है कि में टी मही जल आदि की उटपित से रक्षा करने हारी एपिशी की अच्छे प्रकार परीक्षा करके हल अदि साधनों से जीत एकतार कर शुन्दर संस्कार किये बीज के उत्तन धान्य उटपन करके भीगें॥ ३१॥

कामित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । मित्राद्यो लिङ्गोक्ता द्वताः । आची पङ्क्तिइछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥ पकानेहारी स्त्री अच्छे यत्म से सुन्दर अक और उद्विजनीं की सनामें यह विषय अग्रे मंत्र में कहा है ॥

कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुंगाय च। इन्द्रंग्यादिवम्यां पूष्गो प्रजाम्य ओषंघीम्यः ॥७२॥ पदार्थ: -- हे (कामदुचे) इच्छा को पूर्ण करने हारी रसीय्यास्त्री सू धृषित्री के समान सुन्दर संस्कार किये असों से (मित्राय) नित्र (करूणाय) सत्तम विद्वान् (ध) अतिथि अभ्यागन (इन्द्राय) परम ऐश्वय्यं से युक्तः (अश्वयम् ) प्राण अयान (पूष्णे) पृष्टिकारक जन (प्रजाभ्यः) सन्तानों और (अश्वयभियः) सेमस्ता आदि अश्वथियों से (कामम्) इच्छा की (धृष्टत्र) पूर्ण कर ॥ १२ ॥

भावाथी: — जी की वा पुरुष भी जन बनावे उम की चाहिये कि प-काने की विद्या सीख प्रिय पदार्थ पका और उन का भी जन करा के सब की रेग रिहत रक्खें || 92 ||

विमुच्यध्वामित्यस्य क्रमारहारित ऋषिः। अध्न्या देवताः।

भारिमावी गायत्री ह्यन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्यां की नै। आदि पशुर्जी की बढ़ा उन से दूच घी आदि की मृद्धि कर

भानन्द् में रहना चाहिये इस वि०॥

#### विमुंच्यध्वमध्न्या देवया<u>ना</u> अर्गन्म तमस-स्पारमस्य । ज्यातिरापाम ॥ ७३ ॥

पदार्थः - हे मनुष्या जैसे तुम लोग ( अध्न्याः ) ग्झा के येश्य (देवयानाः) दिवय भे।गें। की प्राप्ति के हेतु गै। जें। की प्राप्त हें। खुन्दर संस्कार किये असी का भंजन करके रोगों से ( विमुख्यध्वम् ) एयक् ग्हते हो । वैसे इम लोग भी खर्चें । जैसे तुन लोग ( तगनः ) राश्वि के ( पारम् ) पार की प्राप्त होते हो वैसे इम भी ( अगन्म ) प्राप्त होतें । जैसे तुम लोग ( अस्य ) इस सूर्य के ( जयोतिः ) प्रकाश को व्याप्त होते हो वैसे हम भी ( आपना ) व्याप्त होतें ॥ १३॥

भाषार्थः — इस सन्त्र में बायकतु० - मनुष्यों की चाहिये कि गी आदि पशुओं की कभी न मारें। और न मरनार्वे तथान किसी की मारने दें। जैसे सूर्व के सदय से राजि निवृत्ति हे ती है वैने वैद्यहशास्त्र की रीति से पश्य अनादि पदार्थों का सेवन कर रीगों से बचे। ॥ १३ ॥

सज्रव्ह इत्यस्य कुमारहारित क्रांषः। अदिवनी देवते।
आर्थी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥
मनुष्यों केर किन प्रकार पास्यर हाथी है। ना चार्यके यह विश्व॥
मुजूरब्दो अयंवोभिः मुजूरुषा अर्रगाभिः।
मजोषंसावृद्धिनाद्धसोभिः मुजूरुष प्रतंशनमजूर्वेदवान् इदंया घृतेनस्वाहां॥ ७४॥

पदार्थ:— है मनुष्या हम सब लाग खी पुरुष की (अयवािमः) एक रम झणादि काल के अवपवाें से (मजूः) संयुक्त (अठदः) वर्ष (अठदः) प्रभात सम्मा (दंगािमाः) कर्मीं से (मजाप्ती) एकमा वर्माव व ले (अविवा) प्राप और अवान के समान खी पुरुष वा (एतशेन) चलते चाे हे के समान ठ्याप्तिशील वेगवाले किरवा निमित्त पवन के (मजूः) साथ वर्ममान (सूरः) मूर्य (इड्या) अन्न भादि का निमित्त क्य पृथिवां वा (चृतेन) जल से (स्वाहा) मत्य वाणीके (सजूः) माथ (विश्वानरः) विजलीक्य अश्नि वर्ममान है विमे ही प्रीति से वर्मी। 98॥

भावार्थः — मनुर्धोः में जितनी परस्पर मित्रता हो उतना ही सुख और जितना विरोध उतना ही दुःख है। ता है। उस से सब छे। ग स्त्रीपुरुष पर-स्पर उपकार करने के साथ ही सदा बतें ॥ 98 ॥

या आंषधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुक्

छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों की अवश्य औषिथि सेवन कर रेशों से बचना चाहिये यह विषय अगले मंत्र में कहा है।

या ओषंधीः पूर्वी जाता देवेभ्यंस्त्रियुगं पुरा। मने न वस्रूगांमुहकशतं धामांनि मुप्त चं॥७५॥ पदार्थ: — ( अहम् ) मैं ( याः ) जा ( ओषधीः ) सामल ना आदि ओषधी ( देवेश्यः ) पृथिती आदि से ( त्रियुगम् ) तीन वर्ष ( पुगा ) पहि-छे ( पूर्ताः ) पूणं सुख दान में उत्तम ( जाताः ) श्रीसह हुई जा ( बश्चूणाम् ) धारण अन्ते हारे रागियों के ( शतम् ) सी ( च ) और ( स्प्त ) सात ( धा मानि ) जन्म वा नाड़ियां के ममी में ठयाप्त होती हैं उन की ( नु ) शीध्र ( मनि ) जानूं ॥ ३५॥

भाषार्थ: — मनुष्यां की योग्य है कि जी एथिवी और जल में आेवधी उत्पन्न होती हैं उन तीन वर्ष के पीछे ठीक २ पकी हुई की यहण कर वैद्या कशास्त्र के अनुकूल विधान से मेवन करें। मेवन की हुई वेओवधि शरीर के मब अंशी में व्यास है। के शरीर के रेगों की खुड़ा सुसें की शीघ करती हैं। 94।

श्वातम्ब इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । अनुष्ठुप् छन्दः । गांधारः स्वरः ॥ समुख्य क्या काके किस के। सिद्ध करें यह विश्रा

# शतं वे। अम्ब धामांति । महस्रमुत बो रुहंः । अधां शतऋत्वां यूयमिमं में अगदं कृत ॥ ७६॥

पद्धि:—है (शनक्रत्वः) सैन्हों प्रकार की बुद्धि वा कियाओं से युक्त मनुष्या (यूयम् ) तुम लेग जिन के (शनम् ) सैकहों (उत्त ) वा (महस्त्रम् ) इनार हों (कहः ) नाहियों के अङ्कुर हैं उत्त ओषधियों से (से ) सेरे (इनम् ) इन शरीर के। (अगः स् नोरेग कत् ) करें। (अध) इम के पश्चात् (वाः) आप अपने शरीरों को भी रेगगहित करों जो। वः ) तुन्हारे असंख्य (धामानि ) मर्स्स स्थान हैं उन को प्राप्त है। और है (अन्य) माता तू भी ऐसा ही आच्चण कर ॥ ९६ ॥

भावार्थः -- मनुर्धा को बाहिये कि सब से पहिले के विधियों का सेवन, पथ्य का आवरण और नियम पूर्वक ठ०वहार कर के शरीर को रेगर्गहत

. ×3

करें। क्योंकि इस के विना धर्म, अर्थ, काम और मेक्से का समुष्ठान कर-ने का के कि ई भी समर्थ नहीं है। सकता ॥ ७६॥

अरेषधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । निचृद्नुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

कैनी भोषियों का नेवन करना चारिये यह विषयः॥ ओष्धीः प्रति मोदध्वं पुष्पंततीः प्रमूवंशेः। ग्रद्भवांइव मुजित्वंशीर्वीरुधंः पार्यिष्णवः॥७७॥

पदार्थः — हे मनुष्ये। तुम छे। ग ( कश्चाइव ) घे। हैं। के समान ( सिजिख्याः) शारीरें। के माथ मयुक्त रे। गें। के। जीतने वाछे (वीत्तघः) से। मछता मादि ( पार्रायण्यः ) दुःखें से पार करने के ये। ग ( पुष्पवनीः ) अशंवित पुरुषें से युक्त ( प्रमूवरीः ) सुख देने हारी (ओ। घधीः ) ओ। विधियों के। प्राप्त है। कर ( प्रतिमे। दुःखम् ) नित्य आनन्द मे। गे। 99 ।।

भावार्थः — इस मंत्र में उपमालंश- जैसे पे हों पर चढ़े थीर पुरुष श-मुर्जें। की जीत विजय की प्राप्त है। की आनन्द करते हैं वैमे श्रेष्ठ अध्विधिर्ध के सेवन और पच्चाहार करने हारे जितेन्द्रिय मनुष्य रेगों से छूट आरी-न्य की प्राप्त है। के नित्य आनन्द भेग्यते हैं ॥ 99 ॥

आंषधारितीत्यस्य भिषगृषिः । चिकित्मृर्देवता । अनुष्ठुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर विता भीर पुत्र आवस में कैसे बर्स यह ति।

## त्रोषंधीरिति मातरुस्तद्दों देवीरुपंत्रवे सनेय-मर्खं गां वासं आत्मानं तवं पूरुषः॥ ७८॥

मूद्रार्थ:—ह ( ओषधी: ) ओषधियों के ( इति ) समान सुखदायक ( देवी: ) सुनदा विद्वान स्त्री ( मातरः ) माता मैं पुत्र (वः ) तुम की (तत्) श्रेष्ठ पष्टयस्त्रप कर्मा ( उपझ्ते ) समीपस्थित हे कर उपदेश कर्स हे (पूरुष) पुरुषार्थी श्रेष्ठ सन्तानों मैं माता (तब) तेरे (अश्वम्) घे। है आदि (गाम्) गै। आदि वा पृथित्री आदि (वामः) क्या अ। दिवा घर भीर (आत्मा-नम्) जीव की निरन्तर (मनेयम्) सेवन कर्सः ॥ ९८॥

भाषाधी-इस मंत्र में उपमालं - जिसे जी आदि आधि सेवन की हुई शरीरों के पृष्ट करती हैं वैसे की माना विद्या, अच्छी शिक्षा और उपदेश में सन्तानों की पृष्ट करें। जी माना का धन है वह भाग मन्तान का और जी सन्तान का है वह माना का ऐने मुख परस्पर मीति से वर्ष कर निर्म्तर सुख की बढ़ावें।। 95 ।।

ग्रहवत्थ इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । अनुष्ठुः छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य छोग नित्य कैमा विचार करें यह वि०॥

# अश्वत्थे वो निषदंनं पर्णे वो वस्तिष्कृता। गोभाज इत् किलांसथ यत् सनवंथ पूरुंषम्॥ ७६॥

पदार्थ: — हे मनुष्यो ओषधियों के ममान (यत्) जिम कारण (वः) तुष्यारा (अश्वत्ये) कल रहे था म रहे ऐसे शारि में (निष्मम् ) निवास है। और (वः) तुष्यारा (पर्णे) कमल के पन्ने पर जल के ममान कलाय मान संवार में हेश्वर ने (वमितः) निवास (कता) किया है इन से (गी-भाजः) पृथिषी की सेवन करते हुए (किल ) ही (पून्यम्) आमा आदि से पूर्णदेह वाले पुरुष को (मनवष) आंषिय देकर सेवन करों और सुख को प्रमुष्ठ होते हुए (इत्) इस संवार में (अनय) रहे। ॥ ७० ॥

भावाधी: -- मनुष्यों को ऐवा विषरना चाहिये कि हमारे शरीर का नित्य और स्थिति चलायमान है इस में शरीर को रे। गें से खबा कर धर्म्म, अर्थ, काम तथामाल का अनुष्ठान श्रीष्ठ करके अनित्य माधनों से कित्य मी- स की हुए की मान्न हेग्वें। जैने ओषिय औरतृण कादि फल फूल पत्ते स्क-म्थ और शाखा आदि से श्रीःभित हे।ते हैं बैचे ही रे।गर्राहत शरीरों से श्री- भायमान हैं। ॥ ७९ ॥

n

यत्रीषधीरित्यस्य भिषगृषिः। स्रोषपयो देवता। सनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः।।

बार २ मेष्ठ वैद्यों का सेवन करें यह बि० ॥

#### यत्रीषंधीः समग्मंत राजांनः समिताविव ।

#### विष्टः स उच्यते भिषग्रेश्चोहामीवचातंनः ॥८०॥

पदार्थ:— हे मनुष्यो तुम लेग ( यम ) किन स्थलें में ( ओषधी: ) सेमलता आदि ओषधी: होती हैं। उम की जैसे ( राजान: ) राज धर्म से युक्त बीरपुरुष ( सिताबिव ) युद्ध में शत्रुओं को प्राप्त हें।ते हैं वैसे ( समन्त्रमत ) प्राप्त हो जो। ( रक्षे हा ) दुष्ट रेगों का नाशक ( अमीवचातन: ) रेगों को निवृत्ति करने वाला ( निव्र ) बुद्धिमान् ( भिषक् ) वैद्य है। (सः) वह तुस्तरे प्रति ( रुप्तते ) ओषधियों के गुयों का सपदेश करें और ओषधियों का तथा उस वैद्य का सेवन करें। ।। ८० ।।

भावार्थः — इस मंत्र में वाषक हु? — जैने से नापति से शिक्षा की प्राप्त हुए राजा के वीर पुरुष अत्यन्त पुरुषार्थ से देशान्तर में जा शत्रुओं की जी-त के राज्य की प्राप्त होते हैं वैसे श्रेष्ठ वैद्य में शिक्षा की प्राप्त हुए तुम छोग ओषियों की विद्या की प्राप्त हो। जिस शुद्ध देश में ओषि हैं। वहां उन की जान के उपयोग में छाओं और दूसरें के छिये भी बताओं ॥ ८०॥

अइवाबतीमित्यस्य भिषगृषिः। वैद्यो देवता। अनुष्ठुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यां का नित्य पुरुषार्थं बढ़ाना चाहिये यह विश् ॥

अश्वावतीथ सोमावतीमूर्जयंन्तीमुदोंजसम्। आवित्मि सर्वा ओषंधीर्ममा अरिष्टतांतये॥॥ ८१॥

पदार्थ:--हेननुष्या जैसे में ( अरिष्टतातये ) दुःखदायक रागों के कु इन्ने के स्त्रिये ( अश्वावतीम् ) प्रशंसित शुभगुणों से युक्त ( सोनावतीम् ) बहुत रस से सहित ( उदी तसम् ) अति पराक्रम बढ़ाने हारी (अर्जेपन्तीम्) बल देती हुई श्रेष्ठ कोषधियों को ( आ ) सब प्रकार ( अवित्सि ) जानूं कि जिन से ( सर्वाः ) सब ( भोवधीः ) अ।षधी ( अस्मै ) इस मेरे लिये सुख देवें । इस लिये तुम लोग भी प्रयक्ष करो ॥ ८१॥

भावाधी:-इस मंत्र में बाचक लु०- मनुष्यों की चाहिये कि रेशों का निदान चिकित्सा को पि और पष्य के देवन से निवारण करें तथा ओ पियों के गुणों का यथावत् उपयोग लेवें कि जिस से रोगों की निवृत्ति हो कर पुरुष्यार्थ की वृद्धि होते ॥ ८१॥

उच्छुष्मा इत्यस्य भिषगुषिः। ग्रोपधयो देवताः। विराज्जनु-

ष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥ भोषधियों का क्या निकित्त है इन नि०॥

#### उच्छुष्मा ओपंघीनां गावां गोष्ठादिवेरते। घनं ७ सनिष्यन्तीं नामात्मानं तवं पूरुष ॥८२॥

पदार्थ: — हे ( पूरुप ) पुरुष शरीर में रो ने वाले वा देह धारी (धनम्) ऐश्वर्थ बढ़ाने वाले के ( सिनप्यन्तीन । म् ) सेवन करती हुई ( ओषधीन । म् ) सोमलता वा कै ( आदि ओषधियों के सम्बन्ध से जैमे ( गुड़ना: ) प्रशंतित बल करने हारी ( गाव: ) गी वा किरण ( गोष्ठादिव ) अपने स्थान से बखड़ें। वा पृथिवी की और ओषधियों का तस्य ( तय ) तेरी ( आत्मानम् ) आत्मा की ( चदीरते ) प्राप्त हो गा है जन सब का तू सेवन कर ॥ ८२ ।

भावार्थः — इस मंत्र में उपमालं > — हे मनुष्यों जैने रक्षा की हुई गै। अपने दूध गादि से अपने बच्चों और मनुष्य भादि की पुष्ट करके बख्यान् करती है। वैने ही ओवधियां नुस्तारे आत्मा और शरीर की पुष्ट कर पराक्रमी करती हैं जो के। हे न खावे तो कम से बल और बुद्धि की हानि है। जावे। इमलिये भोषधी ही बल बुद्धि का निमित्त है। दा।

इप्कृतिरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । निकृदनुष्टुष्

अच्छे प्रकार नेवन की हुई भीषधी वया करती हैं यह विश् ॥

# इष्क्रंतिर्नामं वो मातायों यूयक्ष स्थ निष्क्रं-तीः सीराः पंतात्रिगीं स्थन यंद्रामयति निष्क्रंथ ॥ ८३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो (यूगम्) तुम छोग जें (शः) तुम्हारी (इन्हातः) कार्य्यसिद्धि करने हारी (साता) माता के समान ओपर्था (मान ) प्रतिद्ध है उस की सेवा के तुल्ब मेवन की हुई ओवधियों की जानने वाले (स्थ) होओ (पत्रत्रिणीः) चलने वाली (सीराः) निद्यों के ममान (निन्हतीः) प्रत्युपकारीं की मिद्ध करने वाले (स्थन) होओ (अधो) इस के समन्तर (यत्) जी किया वा अंधिथी अधवा वैद्य (आमयति) रेग बढ़ावे उस की (निन्हण ) छोड़ा ॥ १३॥

भाषार्थः — इस मंत्र में बाचकलु > — हे मनुष्या जैने माता पिता तु-इसारी सेवा करते हैं. जैसे तुम भी उनकी मेत्रा करें। | जै। २ काम रोगकारी है। उस २ की छे हैं। | इस प्रकार सेवन की हुई भीवधी माना के समान प्रा-णियों की पृष्ट करती हैं। | प्र

त्रातिविद्या इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । विराडनुष्टु-प्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ कैने रोग निवृत्त हे।ते हैं यह विश्वा

अति विश्वाः पॅरिष्ठा स्तेनईव ब्रजमंक्रमुः । श्रोषंधीः प्राचुंच्यवुर्यत्किंचं तुन्द्वो रूपः ॥८४॥

पदार्थ:- हे मनुष्ये तुम छे। ग जो (परिष्ठाः) सब ओर से स्थित (वि-इवा) सब (कोवधीः) सीमलता और जी कादि ओवधी (व्रशम्) जैसे गोशाला को (स्तेन इव) भित्ति भीड़ के चेर जावे वैसे पृथिसी भीड़ के (अत्यक्तमुः) निकलती हैं (यह) जो (किन्न) कुछ (तन्वः) धरीर का (रपः) पापें के पाल के समान रे। गरूप दु: स है एस सब को (प्राच्यु-च्युः) नष्ट करती हैं एन ओवधियों की युक्ति से सेवन करे। ॥ ८४ ॥ भाषार्थः — इस संत्र में उपमाल - जिने गाओं के स्वामी ने अमका-या हुआ चेर भिति की फांद के भागता है वैसे ही श्रेष्ठ की विधियें चे ता-इना किये रेग नष्ट है। के भाग जाते हैं। ए।।

यदिमा इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्ठुष् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर भी स्ती विक्र॥

# यदिमा बाजयंश्वहमोषंधीर्हस्तं आद्धे। आ-तमा यक्ष्मंस्य नश्यति पुरा जीव्यमो यथा ॥ ८५॥

पदार्ध:— है सनुष्यो (यथा) जिन प्रकार (पुरा) पूर्व ( जालयन् ) प्राप्त करता हुआ ( अहम् ) में ( यत् ) की ( द्वनाः ) द्वन ( ओवधीः ) ओवधीं को ( हस्ते ) हाय में ( आद्धे ) धारण करता हूं जिन ने ( कीव ग्रमः ) जीव के ग्राह्मक डपाधि और ( यहमस्य ) सपी राजारेग का (आत्मा) मूलतत्त्व ( नश्यति ) नष्ट हो जाता है । उन ओविधियों की जिष्ट युक्तियों से स्पर्याग में लाओ। ॥ १५ ॥

भावार्थ:—इस मंत्र में बायक लु॰—मनुष्यों की वाहिये कि सुन्दर इस्त क्रिया से ओपिथियों की माधन कर ठीक २ कम से उपयाग में ला भीर क्रियों कादि बड़े रेजों के मिन्स करके जित्य भागन्द के लिये प्रयक्त करें ॥ ८५॥

यस्यीषधीरित्यस्य भिष्मृत्यः । वैद्यो देवता । निसृद्गृष्टुष् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ टीक २ सेवन की हुई ओषधी रोगें की कैने न तह करें यह ॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्ममङ्गं परुष्परुः । ततो यक्ष्मं विबोधध्व उग्रो मध्यमुशीरिव ॥ ८६ ॥ पदार्थ: — हे ननुष्यो तुमलोग ( यस्य ) जिन के ( अङ्गमङ्गम् ) सक ज-बच्चों और ( पत्रव्यतः ) नर्न २ के प्रति वर्त्तनान है उस के उस ( उसः ) सीझ ( यहनम् ) क्यो रोग को ( मध्यनशीरित्र ) बीच के नर्न स्थानों को काटते हुए के समान ( विश्वायध्ये ) विशेषकर निवृत्तकर ( ततः ) उस के पश्चात् ( ओवची: ) ओवधियों को ( प्रमर्थय ) प्राप्त होओ ॥ ६६ ॥

भावार्थः — को मनुष्य लोग शास्त्र के भनुसार भोवधियों का सेवन करें तो मब अवयवों से रोगों की निकास के सुस्ती रहते हैं।। ८६॥

साकिमित्यस्य भिषगृषिः । विराह्यनृष्टुण् ह्यन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ कैवे २ रोगों को नष्ट करें इस विषयका उपदेश भगले मन्त्र में कहा है ॥

#### माकं यंक्ष्म प्र पंत चाषेण किकि<u>दीविनां ।</u> साकंवातंस्य घ्राज्यां माकं नंदय निहाकंया॥८०॥

पद्धि:— हे वैद्य बिद्वान् पुरुष ( कि बिदी विना ) शान बढ़ाने हारे ( शावेण ) भाइतर से ( शाकम् ) भोवधि युक्त पदार्थों के साथ ( यहन ) राजरीत ( प्रवत ) हट जाता है जैसे सस ( वातस्य ) बायु की (प्राज्या ) गति की ( साकम् ) साथ ( नश्य ) नष्ट हो भीर ( निहाकया ) निरन्तर छोड़ने योग्य पीड़ा के ( साकम् ) साथ दूर हो वैसा प्रयत्न कर ॥ ८९ ॥

भावार्थ: -- मनुष्यें की चाहिये कि भीषधियों का सेवन योगाभ्यास भीर क्यायाम के सेवन से रोनें। की नष्ट कर सुक्ष से वर्ते॥ ८९ ॥

अन्याब इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । विराष्टनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

युक्ति से निलाई हुई जीविषयां रीगीं की नष्ट करती हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अन्यावी अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपवित । ताः सर्वीः संविद्याना इदं मे प्रावंता वर्चः ॥८८॥ पदार्थः — हे कियो (संविदानाः) भाषस में संवाद करती हुई तुम लीग (मे) मेरे (इदम्) इस (वचः) वचन को (प्रावत) पालन कारो (ताः) लग (सर्वाः) भोषधियों की (अन्याः) हूमरी (अन्यस्पाः) हूसरी की रक्षा के समान (स्पावतः) समीप से रक्षा करें। सैसे (अन्याः) एक (अन्याम्) हूसरी की रक्षा करती है वैसे (वः) तुम लागें। को पढ़ाने हारी को (भव-तु) तुम्हारी रक्षा करें। | ८८।।

भावार्थः - इस मन्त्र में बाचकलु०-जीवे श्रेष्ठ नियम वाली स्त्री एक दूसरे की रक्षा करती है वैवे की भनुकूलता से निलाई हुई ओवधी सब रेगों से स्ता करती हैं। है स्त्रियो तुम लोग ओयधिविद्या के लिये परस्पर सं-बाद करों।। दा।

या इत्यस्य भिषगृषिः । विराज्जनुष्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।। रेशों के निवृत्त हेले के लिये ही ओषधी देशर ने रची हैं यह विव ।।

याः फ्रिनीयां अंफुरा अंपुष्पा याश्चं पु-ष्पिणीः । रहस्पतिप्रसूतास्तानीं मुञ्चन्त्वध हंसः ॥ ८९ ॥

पद्धि:—हे मनुष्या ! (या:) जो (फिलिनी:) सहुत फिलां से युक्त (या:) जो (अफला:) फिलों से रहित (या:) जो (अपुष्या:) फूलों से रहित (या:) जो (अपुष्या:) फूलों से रहित (च) और जो (पृष्यिणी:) सहुत फूलों वाली (सहस्पतिप्रसूता:) वेदवाणी के स्वामी ईशवर ने स्टब्स की हुई ओषधी (न:) इस को (अं- इस:) दु:खदायी रोग से जैसे (सुष्यत्तु) खुड़ावें (ता:) वे तुम लोगों को सी वैसे रोगों से खुड़ावें ॥ दर ॥

भाषार्थ:-इस मंत्र में वाषकलु०-मनुष्यों की चाहिये कि जी ईश्वर में सब प्राणियों की अधिक अवस्था और रेशों की निवृत्ति के लिये जीवधी रची हैं सम से वैद्यकशास्त्र में कही हुई रीतियों से सब रेशों को निवृत्त कर और पापीं से अलग रह कर धर्म में नित्य प्रवृत्त रहें ॥ ८९॥ मुञ्चन्तु मेत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । भुरिगुरिणक् छन्दः । ऋषमः स्वरः ॥

कीन २ भीवधी किस २ से खुड़ाती है यह विषय भगले मंत्र में कहा है।।

#### मुञ्चन्तुं मा शपृथ्यु।दथों व्ररुप्यांदुत।अथों-यमस्य पद्गिशात्सवैस्मादेविकल्विषात् ॥९०॥

पदार्थः - दे जिद्वान् लोगा भाष जैने के - महीयधी रेगों से एथस् करती हैं ( शपथ्यः त् ) शपथ सम्बन्धी फर्म ( अथी ) और ( वहर्यात् ) शेंद्धों में हुए अपराध में ( अथी ) इन के पश्चः त् ( यमस्य ) न्यायाधीश के (पद्वीशात्) न्याय के विनतु शायरण में ( उत ) और ( सर्वस्मात ) सब (देवकिस्बि-धात् ) जिद्वानों के विषय अपराध से ( मा ) मुक्त को ( मुक्तन्तु ) एथक् रक्षें वैसे तुन होगों को भी पृथक् रक्षें ॥ ८०॥

आवार्थ: - इस मंत्र में वाचकलु०-मनुष्या के। चाहिये कि प्रमादका-रक पदार्थों के। छे। इसे अन्य पदार्थों का भे। जन करें और कभी सीगन्द, ब्रेष्टीं का भपराथ, न्याय में विरोध, और मुर्खों के समान देखों न करें।। ७०॥

अनपतन्तीरित्यस्य वरूण ऋषिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुष्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अध्यावक छी। ग सब की उत्तन भीषधी जनार्वे यह बिन्।।

# अव्पतंन्तीरवदन्दिव ओषंधय्रम्परि' । यं जीवम्रक्रवांमहै न स रिंघ्याति पूरुंषः ॥९१॥

पद्धि:— इस लेग्ग जो (दिवः) प्रकाश से ( अववतन्तीः ) नीचे की आती हुई (ओपध्यः) सोमलता आदि ओषधि हैं जिन का विद्वान् लेग्ग ( पर्यवदन् ) सब ओर से उपदेश करते हैं। जिन से (यम्) जिस (जीवम्) प्राणधारण की ( अञ्चश्रमहैं ) प्राप्त होवें ( सः ) वह ( पूरुषः ) पुरुष ( म ) कभी म ( रिज्याति ) रेगों से मष्ट होवे । ए ॥ आबार्थः — विद्वान् छाम सब मनुष्यों के लिये दिवय भोषधिविद्या का देवें जिस से सब छाम पूरी अवस्था का प्राप्त होतें। इन ओवधियों की के वें भी कभी नष्ट न करें ॥ ८९ ॥

या भ्रोषघीरित्यस्य वरुष ऋषिः। निष्टृद्नुष्टुष्छन्दः।
गान्धारः स्वरः।
स्त्री छोग अवश्य भेश्वधिविद्या का यहण करें यह विग्रा

#### या ओषंधीः सोमेराज्ञीर्बेद्धीः शतविचक्षणाः। तासामासि त्वमुत्तमारं कामाय शक्षदृदे ॥९२॥

पदार्थ:—हे कि जिन से (त्त्रम्) तू (याः) जे। (शतविषक्षणाः) असंस्थात शुमगुणें से युक्त (श्रद्धोः) बहुत (सोमराद्धोः) सोम जिन में राजा अर्थात सर्वोत्तम (ओषधीः) ओषधी हैं (तासाम्) उनके विषय में (उत्तमा) उत्तम विद्वान् (असि) है इस से ( शम्) कल्याणकारिणी (इदे) इत्य के लिये (धरम्) समर्थ (कामाय) इच्छासिद्धि के लिये या- व्य होती है इमारे लिये उन का उपदेश कर ॥ १२॥

भावार्थ:- खिथें को चाहिये कि ओविधिविद्या का ग्रहण अवस्य करें क्यों कि इस के विना पूर्णकामना सुखप्राप्ति और रोगें की निवृत्ति कभी महीं हो सकती ॥ ९२॥

या इत्यस्य वक्तण ऋषिः। विराहार्ष्यं नुष्टुण्छन्दः। गानधारः स्वरः॥ कीते सन्तानां का सत्यक्ष करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

या त्रोषंधीः सोमंराज्ञीविधिताः पृथिवीम-

नुं। बृह्स्पतिं प्रसूता अस्ये संदत्त विर्ध्म ॥९३॥

पदार्थ:— हे विवाहित पुरुष ! (याः) ने। ( से। नराश्चीः) से। म निम में सत्तम है वे ( सहस्पति म्लाः) बड़े कारण के रसक ईश्वर की रचता से सत्त्वक हुईं ( श्रोषधी ) श्रोषधियां ( एचवीम् ) ( अनु ) भूमि के उत्पर (वि-श्विताः) विशेष कर स्थित हैं सन से ( अस्यै ) इस की के लिये ( बीर्यम् ) बीज का दान दे। है विद्वानी भाष इन ओषधियों का विश्वान सब मनु-ष्यां के लिये (संदत्त ) अच्छे प्रकार दिया की जिये ॥ ९३॥

भाषार्थ: — स्त्री पुरुषों के उचित है कि बड़ी २ ओवधियों का सेवन करके अन्दर नियमें के साथ गर्भधारण करें और ओवधियों का विश्वान वि-द्वानें से सीखें॥ ए३॥

्याश्चेद्मित्यस्य वरुण ऋषिः। सिषजो देवताः। विराह-

नुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ शुद्ध देशे। से जीषधियों का ग्रहण करें यह वि०॥

याश्चेदमंपशृण्वन्तियाश्चं दूरं परांगताः । स-वीः संगत्यं वीरुधोऽस्य संदंत्त वीर्यम् ॥ ९४॥

पदार्ध:—हे विद्वानी! आप छाग (या:) जी (च) विदित हुई और जिन की (उपश्वावन्ति) सुनते हैं (या:) जी (च) सनीप हैं। और जी (दूरम्) दूर देश में (परागता:) प्राप्त ही सकती है उन (सवी:) सब (बीरुध:) छस आदि ओषधियों की (संगत्य) निकट प्राप्त कर (इदम्) इस (बीर्यम्) शरीर के पराक्रम की वैद्य मनुष्य छाग जैसे सिद्ध करते हैं वैसे उन ओषधियों का विज्ञान (अस्ये) इस कन्या की (संदत्त) सम्यक् प्रकार से दीजिये॥ ८४॥

भावार्थ: — हे ननुष्यो तुम छे। ग, जे। ओ। पियां दूर वा समीप में रे। गों की इरने और बल करने हारी सुनी जाती हैं सन के। उपकार में छा के रे। गरहित है। ओ। (४)।।

माब इत्यस्य बरुग ऋषिः। वैद्या देवताः। दिराङनुष्टुप् छन्दः। गान्धारःस्वरः॥

के। ई भी मनुष्य भोषधियाँ की हानि न करे यह वि०॥

# मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः। द्विपाचतुंष्पाद्वस्माकुथ सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ९५॥

पदार्थ: -- हे मनुष्यो ! ( अहम् ) मैं ( यस्मै ) जित्त प्रयोजन के लिये कोषधी को ( खनानि ) लपाइता का खेदता हूं वह ( खनिता ) खेदि हुई ( खः ) तुन की ( मा ) न ( दिवत् ) हुःख देवे जित्त से ( वः ) तुन्तारे जीर ( अस्माकम् ) इनारे ( द्विपात् ) दी पगवाले मनुष्य आदि तथा ( च-तुष्यात् ) गी आदि ( धर्वम् ) सब प्रजा सस ओषधी से ( अनातुरम् ) रोगों के दुःखों से दहित ( अस्तु ) हो वे ॥ ए५ ॥

भाषार्थ:— जी पुरुष जिन ओषधियों की खेरदे वह सन की जड़ न नेंटे जितना प्रयोजन है। उतनी लेकर नित्य रोगों की इटाता रहें भीषधियों की परम्परा की बढ़ाता रहे कि जिस से सब प्राणी रेगिंग के दुःखों से बस की हुखी होतें। ८५ ।

भोषधय इत्यस्य वरुणऋषिः। वैद्या देवताः। निचृद्नृष्टुप् छन्दः।गान्धारः स्वरः।।

क्या करने से जीविधियों का विज्ञान बढ़े यह विशा

ओषंधयः समंवदन्त सोमेन मह राज्ञां । य-स्मै कृगोति ब्राह्मण स्तळ रांजन् पार्यामिस ॥ ९६ ॥

पदार्थः - हे मनुष्य छागो जा ( सामेन ) (राजा) सर्वोत्तम से सकता के (सह) साथ वर्समान (ओषधयः) ओषधी हैं उन के विज्ञान के छिये आप छाग (मनवदन्त) आपन में संवाद करें। हे वैद्य (राजन्) राजपुरुष इन छाग (क्राइतणः) वेदें। और उपवेदें। का वेना पुरुष (यस्मै) जिन रोगी के छिये इन ओषधियें का महण ( रुणोति ) करता है ( तम् ) उस रोगी को रोग सागर से उन ओषधियों से ( पारवानित ) पार पहुंचाते हैं ॥ १६॥

भाषार्थः —वैद्य छोगां का योग्य है कि आपस में प्रक्रोशर पूर्वक निर-न्तर ओषधियां के ठीक २ जानसे रेशों से रोगी पुरुषों का पारकर निरन्तर हुसी करें। और देश इन में उत्तम विद्वाम् है। वह सब मनुष्यें। का वैद्यक शास पढ़ावे ॥ ९६ ॥

नाद्यायित्रीत्यस्य वरूण ऋषिः । भिष्यवरा देवताः । अनुष्ठुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

जितने राग हैं उतनी कोषधी हैं उन का सेवन करे यह विश् !!

# नाश्यित्री बलामस्याशैम उपचितांमिस । अथौ शतस्य यक्ष्मांगां पाकारोरंमि नाशंनी

॥ ९७॥

पदार्थ:—हे वैद्य लोगां जा (खलायस्य) प्रतिद्व हुए कफ की (अर्थसः) गुदेन्द्रिय की व्याधि वा (उपविताम्) अन्य बहे हुए रेगों की (नाश- विश्वी) नाश करने हारी (असि) ओषधि हैं (अयो) और जा (शत- स्य) असंख्यात (यह माणाम्) राजरेगों और अर्थात् अगन्दराद् और (पाकारोः) मुख रोगों और समी का छेदन करने हारे शूल की (नाशनी) निवारण करने हारी (असि) है उस ओषधी के तुम लेग जाने।। ए९।।

भाषार्थ: -- ममुखं के ऐसा जानना चाहिये कि जितने रोग हैं उत नीही जन की नाश करने हारी भोषधी भी हैं इन भोषधियों की नहीं जा-मने हारे पुरुष रेगों से पीड़ित है।ते हैं। जे। रेगों की कीवधी जानें ती जन रेगों की निवृत्ति करके निरम्तर सुखी होतें। ८९ ||

त्वां गन्भवी इत्यस्य वरुण ऋषिः। वैद्या देवताः। निचृ-

द्नुष्ठुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ कीन २ कोषधी का सनन करता है यह वि०॥

त्वां गेन्ध्वां अंखन्रस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्प-तिः । त्वामोषधे सोमो राजां विद्वान् यक्ष्मांद-मुच्यत् ॥ ९८ ॥ पदार्थ: - हे सनुष्यो ! तुम लोग जिम क्षेषधी से रोगी ( घहनात् ) सयरोग से ( अभुरुपत ) छूट जाय और जिस क्षेषधी को उपयुक्त करो ( त्वाम् ) उस की ( गन्धकोः ) गानिवद्या में कुशलपुत्तव ( असनन् ) प्रहण करें ( त्वाम् ) उस को ( उन्द्रः ) पाम ऐपवर्य से युक्त मनुष्य ( त्वाम् ) उस को ( स्वाम् ) उस को ( सोमः ) सन्दर गुणों से युक्त ( विद्वान् ) सब शास्त्रों का वित्ता (राजा) प्रकाशमान राजा (त्वाम् ) उस ओवधी को सोदे ॥ ९८॥

भावार्थ:-जो कोई ओपधी जहों से, कोई शासा आदि से, कोई पु-द्यों, कोई फलों और कोई मब अवयवों करके रोगों की बचाती हैं। उन ओषधियों का सेवन मनुष्यों की यथावत करना चाहिये॥ ९८॥

सहस्वेत्यस्य वरुण ऋषिः ! त्रांषधिद्वता । विराडनुष्टुण्डन्दः ।
गान्धारः स्वरः ।।

मनुष्यों की कवा काकी क्या काना चाहिये यह वि० ॥

सहस्य में अर्ग्ताः महस्य प्रतनायतः । सह-

#### स्व सर्वे पाप्सान्छ सहंमानास्योपधे ॥ ९९ ॥

पदार्थ:—( भोषधे ) श्रीयधी के सदूरा भीषधी विद्या की जानने हारी की जीवधी (महमाना) बल का निमित्त ( मिन ) है ( मे ) मेरे रे।गें। का निवारण करके बल बढ़ाती है वैमे ( अराती: ) शत्रुओं को ( सहस्व ) सहन कर अपने (प्रनायतः) ऐना युद्ध की इच्छा करते हुओं को (महस्व) सहन कर और ( सर्वम् ) गत्र ( पाटणाम्म् ) रे।गादि का ( सहस्व ) सहन कर ॥ १९।।

भावार्थ: — मनुर्धो की भाहिये कि ओ विधियों के मेवन से बल बढ़ा भीर प्रजा के तथा अपने शबुओं भीर पापी जतें। की बश में करके सब माणियों के सुर्खी करें॥ ८८॥

> द्धिगुस्त इत्यस्य वस्याऋषिः। वैद्या देवताः। विराद्यपृहती छन्दः। सध्यमः स्वरः॥ मनुष्य कैने हेक्के दूवरें का कैने करें यह विश्वा

# द्यीर्घायुंस्त ओषधे खिनता यस्मै च त्वा ख-नांम्यहम् । अश्वो त्वं द्यीर्घायुं भूत्वा शतवं ह्या वि रोहतात् ॥ १००॥

पदार्थ:—है ( ओषपे ) ओषि के तुल्य ओषियों के गुण देश जा-ननेहारे पुरुष जिस से (ते ) तेरी जिस ओषि का ( सनिता ) नेवन करने हारा ( अहम् ) में ( यस्मै ) जिस प्रयोजन के लिये ( च ) और जिस पुरुष के लिये ( सनामि ) से दूं उस से तू ( दीषांयु: ) आधिक अवस्था बाला है। ( अथे। ) और (दीषांयु: ) बड़ी अवस्था बाला (भूतवा) है। कार ( त्वम् ) तू जो ( शतवल्या ) बहुत अङ्कुरा से युक्त ओषि हैं ( त्वा ) उस की सेवन करके सुखी है। और ( वि,राहतात् ) प्रमिद्ध है। ॥ १००॥

भावार्थ: — हे मनुष्या तुमलाग काषधिया के सेवन से अधिक अवस्था वाले हाओ और धर्म का आचरण करने हारे हेकर मब मनुष्या की ओ-षधिया के सेवन से दीर्घ अवस्था वाले करे। । १०० ।।

त्वमुत्तमासीत्वस्य बम्ण ऋषिः। भियजां देवताः । निचृद्नुष्टुष् ह्वन्दः। गान्धारः स्वरः॥

किर वह ओ। वधी किम मकार की है इस विश्

त्वमुंत्तमास्योपधे तर्व वृत्ता उपस्तयः। उप-स्तिरस्तु स्रोऽस्माकं यो अस्माँ२॥ श्रंभिदासं-ति ॥ १०१॥

पदार्थ:— हे वैद्य जन (यः) जा ( अस्मान् ) हम की (अभिदासति) अभीष्ट सुख देता है (सः) वह (त्यम्) तू ( अस्माकम् ) हमारा ( उप-स्तिः ) संगी (अस्तु) हे। जो ( उत्तमा ) उत्तन ( ओषपे ) ओषपी (असि) है (तय ) जिन के ( वृक्षाः ) बट आदि वृक्ष ( उपस्तपः ) समीप इकहें होने वाले हैं तस ओषपी से हमारे लिये सुख दे॥ १०१॥

भावार्थः -- मनुष्यां का चाहिये कि विराधी दैश की ओविष कभी म ग्रहण करें किन्तु जा दैशक शास्त्र जिसका की है शत्र के शामित्य की किन्तु जा देशक शास्त्र जिसका की है शत्र के शामित्य की मामेत्य की है उन से शामित्य विद्या ग्रहण करें ॥ १०१ ॥ मामेत्यस्य हिरण्यगर्भ भाविः। की देवता। निष्ट्राधी

्रिष्ठुष् ह्यन्दः । धैवतः स्वरः ॥

भव किविक्षि रेबर की मार्चना करनी चारिये पर विश्वा मा मां हिथ्न सीज्ञिनिता यः ष्ट्रांथिव्या यो वा दिवंश्व सुत्यर्धमां व्यानंद् । यञ्चापञ्चन्द्राः प्रं-

<u>थमो जजान कस्मैं देवायं हिवषां विधेम ॥१०२॥</u>

पदार्थ:-(यः) जो (सत्यथमां) सत्यथमं वाला जगदीश्वा (प्रिःव्याः) प्रिवी का (जिनता) उत्यक्त करने वाला (वा) अपवा (यः) जो (दिवस्) सूर्य आदि जगत को (च) और (प्रिवी) तथा (अपः) जल और वायु को (व्यानट्) उत्यक्त कर के व्याप्त होता है (चन्द्राः) जीर जो चन्द्रमा आदि लोकों को (जनान) उत्यक्त करता है। जिस (कःसी) सुलस्वक्तप सुख करने हारे (देवाय) दिव्य सुलों के दाला विद्यानस्वक्तप हैं व्यवा ) ग्रहण करने योग्य मिक्तयोग से हम लोग (विचेष ) सेवन करें। वह जगदीश्वर (मा) मुक्त को (मा) नहीं (हिंसीत्) कुरंग से ताहित न होने देवे।। १०२।।

भावार्थ:-- मनुष्यों को चाहिये कि सत्यधर्म की प्राप्ति और कीयि आदि के विद्यान के छिये परमेश्वर की प्रार्थना करें॥ १०२॥

ग्रम्यावर्त्तस्वेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। अभिनद्वेषता।

निचृद्धिणक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥
पथिवी के पदार्थी का विज्ञान केने करना चाहिये यह विश्व॥
अभ्यार्वत्तस्य प्रथिवि युज्ञेन पर्यसा सह व-

पान्ते । अग्निरिष्वितो अरोहत् ॥ १०३ ॥

पदार्थ:—हे ननुष्य ! तू तो (प्रधिवी) भूनि (यद्येन) संगम के यो-ग्य (प्रयसा) कल के (सह) साथ वर्तती है उस के। (अम्यावर्तस्य) दोनों ओर से श्रीघ्र वर्ताव की किये जो (ते) आप के (वपाम्) बोने को (इ-बितः) प्रेरणा किया (अग्नः) अग्नि (अरोहत्) स्थक करता है वह काग्नि गुण कर्म और स्थनाव के साथ सब को जानना चाहिये ॥ १०३॥

आवार्धः - जे। एचिवी सब का आधार उत्तम रतादि पदार्थी की दासा जीवन का हेतु विजुती से युक्त है उस का विज्ञान भूगर्भ विद्या से सब न-मुख्यों को करना चाबिये॥ १०६॥

अग्रनेयत्त इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । ग्राग्निर्देशता । भृश्गिगायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥ किस लिये अग्रि विद्या का क्षेत्र करना चाहिये यह वि०॥

# अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यर्च युज्ञि-यम् । तद्देवभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥

पदार्थ:—हे ( अन्ते ) विद्वन् पुत्रष ( यत् ) को अन्ति का ( शुक्रम् ) श्रीप्रकारी ( यत् ) को ( चन्द्रम् ) श्रुवर्ष के समान आनम्द देने द्वारा ( य-त् ) को ( पूतम् ) पवित्र ( च ) और ( यत् ) को ( यश्चिवम् ) यञ्चानुष्ठान के योग्य स्वक्रय है ( तत् ) वह ( ते ) आय के और ( देवेम्यः ) दिव्यमुण होने के लिये ( भरामसि ) इस लेग धारण करें ॥ १०४ ॥

भावार्थ:--- मनुष्यों को चाहिये कि ब्रेट्ट गुण और कर्मी की विद्धि के खिये बिजुली आदि अभि विद्या की विचारें || १०४ ||

इषम्जंमित्यस्य हिरण्यगर्भे कषः। विद्यान् देवता। विराद्

ब्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

जब ठीक २ आहार बिहार करें वह वि० ॥

# इष्मूर्जंमहमित आदेमृतस्य योनिं माहिषस्य धारांम् । आ मा गोषुं विशत्वा तनूषु जहांमि मेदिमनिराममीवाम् ॥ १०५॥

पदार्ध:—हे मनुष्यो जैसे (अहम्) में (इतः) इस पूर्वोक्त विद्युत्त स्वक्ष्य से (आदम्) मेराने येरा (इषम्) अन्न (ऊफ्जंम्) पराक्रम (महिषस्य) खड़े (ऋतस्य) सत्यके (योनिम्) कारण (धाराम्) धारण करने वाली वाणी को प्राप्त होजं जैसे अन्न और पराक्रम (मा) मुक्त को (आविश्वतु) प्राप्त हो जिस से मेरे (गेःषु) इन्द्रियों और (तनूषु) शरीर में प्रविष्ट हुई (सेदिम्) दुःख का हेतु (अनिराम्) निम में अन्न का भोजन भी न कर सके ऐनी (अगीवाम्) रागों से उत्यन्न हुई पीड़ा को (आ, जहामि) खेड़ता हूं वैसे तुम लेरा भी करेरा। १०५॥

भाधार्थः — ननुष्यां के। चाहिये कि अग्नि का जी बीर्य आदि से युक्त स्वक्रप है उस के। प्रदीप्त करने से रेगों का नाश करें। इन्द्रिय और शरीर के। स्वस्थ रेग गहित करके कार्य कारण की जानने हारी विद्यायुक्त वाणी के। प्राप्त होवें और युक्ति से भाहार विहार भी करें। १०५॥

ग्राने तबत्यस्य पात्रकारिनर्ऋषिः। अरिनर्देवता । निचृत्पाङ्कि-

इछन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यां का कैसा है।ना चाहिये यह नि०॥

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्च-यो विभावसो । वृहंद्रानो शवंसा वाजंसुक्थ्युं दर्धासि टाशुषे कवे ॥ १०६॥

पदार्थः -हे ( सहद्वाना ) भाग्न के समाग अत्यन्त विद्याप्रकाश से युक्त (विभावसो ) विविधप्रकार की कान्ति में वसने हारे (कवे ) अत्यन्त

बुद्धिमान् (भग्ने) अभि के समान अर्थमान विद्वान् पुरुष विश्व से आप (श्वन्या) बड के साथ (दाश्ये) दान के येश्य विद्यार्थी के डिये (स्वस्थन्) कहने येश्य (बाजम्) विद्वान की (द्यासि) धारण करते है। इस में (तव) आप का अग्नि के समान (महि) अति पूजने येश्य (श्वनः) सुनने येश्य शब्द (वयः) योवन और (अर्थयः) दीसि (आजन्ते) प्रकाशित होती है।।१०६।।

भाषार्थ:-जेर मनुष्य अन्ति के समान गुणी और आहों के तुस्य मेह की तियों से प्रकाशित होते हैं वे परीयकार के खिये दूवरें। की विद्या विकय और धर्म का निरन्तर उपदेश करें।। १०६॥

पावकवर्षत्यस्य पावकागिनक्षिः । विद्वान् देवता । भारिगार्षी पङ्क्तिइछन्दः । पश्चमः स्वरः ॥ सक्षा विकाः सन्दानीं के प्रति स्था २ करें यह विषय सगर्छे मन्त्र में कहा है ॥

पावकवर्चाः शुक्रवंचा अन्नवर्चा उदियर्षि मानुनां। पुत्रो मातरां विचरन्नुपावसि पृणश्चि रोदंसी उमे ॥ १०७॥

पदार्धः — हे मनुष्य जैसे (पुत्रः) पुत्र अस्मवर्णात् भाग्रमों में (विषरम्) विवास हुना विद्या को प्राप्त होता और (भानुना) प्रकाश से (पावक-वर्षाः, शुक्रत्रणाः) विजुली और सूर्य के प्रकाश के समान न्याय करने और (अनुनवर्षाः) पूर्ण विद्याऽभ्यात करने हारा और जैसे (उभे) देगों (री-दसी) आकाश और पृथ्वि परस्पर सम्बन्ध करते हैं जैसे (इयि ) विद्या को को प्राप्त का (प्रणक्षि) सम्बन्ध कर्षा और (मातरा) माता पिता की ( स्थावि ) रक्षा कर्षा है इस से तू धर्मात्मा है॥ १०९ ॥

भावार्थ:-- माता पिताओं को यह श्रति एवित है वि सन्तानें को सत्यक कर बाल्याबस्था में भाव शिक्षा दे ब्रह्मचर्य करा आचार्य के कुछ में भेज के विद्याबुक्त करें। सन्तानें का चाहिये कि विद्या और अच्छी

शिक्षा से युक्त हो और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य की बढ़ा की शिक्षान भीर न-स्सरका रहित प्रीति से माता पिता की मन वाणी और कर्म से ययावत् सेवा करें। १०९॥

> ऊर्जोनपादित्यस्य पावकारिनर्ऋषिः । स्रारेनर्देवता । निचृत् पङ्क्तिइछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥ माता विता और पुत्र कैते हो इत विषय का डप० ॥

ऊर्जी नपाज्जातवेदः सुशास्तिमिर्मन्दंस्व धीतिभिर्हितः। त्वे इषः संदंधुर्भूरिवर्षसिश्चत्रो-तंयो वामजाताः॥ १०८॥

पदार्थ:—हे (जातवेदः) बुद्धि और धन ते युक्त पुत्र जिस ( स्वे ) तुक्त में (भूरिवर्णतः) बहुत मशंना के योग्य क्रवों से युक्त ( वित्रोतयः) आश्चर्य के तुल्य क्या आदि कर्म करने वाली ( वामजाताः) मशंना के योग्य कुलों वा कर्मों में प्रसिद्ध विद्यापिय अध्यापक माता आदि विद्वान् क्यिं ( इषः ) अलों की ( संद्धुः ) धरें भीजन करावें से तू (सशक्तिकिः ) उत्तम मशंसायुक्त क्रियाओं के साथ ( धीतिकिः ) अङ्गुष्ठियां से बुलाया हुआ। ( जर्जः ) ( नपात् ) धर्म के अनुकूल पराक्रमयुक्त सब के हित की धार्या सदा किये हुए ( मन्दस्व ) आनन्द में रह ॥ १०८॥

भावार्थः — जिन कुमार और कुमारियों की माता विद्याप्रिय विद्वान् हैं। वे ही निरन्तर सुख की। प्राप्त होते हैं और जिन माता विताओं। के स-न्तान विद्या अच्छी शिक्षा और ब्रष्टादर्य सेवन से शरीर और आत्मा के बस से युक्त धर्म का आधरण करने वाले हैं वे ही सदा सुखी हैं। ॥ ५०८॥

इरज्यानित्यस्य पावकानिक्रीषिः । आनिर्देवता । निचृदार्षी पङ्क्तिरछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥ मनुष्य कैना हे। यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

## इर्ज्यन्नंग्ने प्रथयस्य जन्तु भिर्मे रायो अ-मर्त्य । स दंश्तस्य वषुषो विराजिस पृणक्षिं सा-नुसिं कतुंम् ॥ १०९॥

पदार्थ — है ( अनत्यें ) नाश और संसारी मनुष्यां के स्वसाव से गिंदित स ( अभे ) अग्नि के समाम पुरुषार्थी जो ( इरज्यन् ) ऐक्वर्यं का संचय करते हुए भाष ( दशंतस्य ) देखने येग्य ( वपुषः ) छव की ( सामितम् ) मनातन ( कतुम् ) बुद्धि का ( एणिक्ष ) संबन्ध करते हैं। और उनी बुद्धि में विशेष कर के ( विराजिप ) शेरिसित होते हैं। ( सः ) से। अग्य (अस्मे) हम छै।गें। के लिये ( जन्तुभिः ) मनुष्यादि प्राणियों से ( रायः ) धनें। का ( प्रथयस्व ) विस्तार की जिये ॥ १०९॥

भाषार्थः — जो पुरुष ममुख्यां के लिये सनातन वेदिविद्या की देतां और सुन्दर आधार में विराजमान है। वही ऐश्वर्य की प्राप्त है। के दूनरी के लि-ये प्राप्त करा सकता है ॥ १०९ ॥

> इष्कर्त्तारिमत्यस्य पावकाग्निर्क्कांषः । विद्वान् देवता। आर्षी पङ्क्तिरुक्तन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥ काम पुरुष परोपकारी हे।ता है इस विषय का उप्र॥

डुष्क्रत्तारंमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयंन्तु छ राधंसो महः। रातिं वामस्यं सुभगां महीमिषं दर्धांसि सानसिक्षर्यिम्॥ ११०॥

पदार्थः — हे बिद्वान् पुरुष जे। आप (अध्वरस्ये) बढ़ाने ये। व यक्त के (इ. कर्क्तारम् ) सिद्ध करने वाले (प्रचेतसम्) शक्तम बुद्धिमान् (वामस्य) प्रशंसित (मइ: ) बड़े (राधसः ) धन के (रातिम्) देने और (स्वन्तम्) निवास करने वाले पुरुष और (इक्षमाम्) सुन्दर एक्ष्टर्थ की देने हारी (महीम्)

एथिबी तथा ( इवन् ) अन्त्र आदि की और ( सानसिम् ) प्राचीन (रियम् ) धन की (दथानि ) धारण करते हैं। इस से इन छोगों की सत्कार करने योग्य हो ॥ १९०॥

भावार्थः—जा ननुष्य जैने अवने लिये ग्रुन की इच्छा करे वैने ही दूर चरों के लिये भी करे वही आप्त सरकार के येण्य है।वे ॥ १९०॥ ऋतावानमित्यस्य पावकारिनर्ऋषिः।अग्निर्देवता । स्वराद्धार्षी पङ्क्तिइछन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

मनुष्यों की किन का अनुहार करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।

ऋतावांनं महिषं विश्वदंशंतमाग्नि सुम्नायं दिधरे पुरो जनाः । श्रुत्कंर्गाध सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैठ्यं मानुषा गुगा ॥ १११ ॥

पदार्थ:—है मनुष्य जैसे (जनाः) विद्या और विद्यान से प्रसिद्ध मनुष्य (गिरा) वाणीसे (सुम्नःय) हुत के लिये (दैश्यम्) विद्वानों में कुश्चल (सुम्कणंम्) बहुत्रुत (विश्वदर्शतम्) सब देखने हारे (सप्रथस्तमम्) अत्यम्त विद्या के विस्तार के साथ वर्षा नान (स्नावानम्) बहुन सत्या चरणं से युक्त (महिषम्) बहु (अगिनम्) विद्वान् के। (मामुषा) मनुष्यां के। (युगा) वर्ष वा सत्ययुग आदि (पुरः) प्रथम (द्धिरे) भारण करते हुये वैसे विद्वान् के। और इन वर्षों के। तू भी भारण कर यह (त्थां) तुभे सिखाता हूं। १११।

भावार्थः — इस सम्म में बाचकलु० - जी सरपुरुष है। युके हैं। उन्हीं का अनुकरण मनुष्य लेग करें अन्य अधिन यें। का मधीं । १११॥

> म्राप्यायस्वेत्यस्य गांतम ऋषिः। सोमो देवता। निचुद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥ राजपुरुष क्या करके कैरे हो यह वि०॥

# आ प्यांयस्ट समेंतु ते वि्रवतः सोम्रटणंयम्। भवा वाजस्य सङ्गर्थे ॥ ११२ ॥

पदार्थ:—ह ( छान ) चन्द्रमा के नमान कान्ति युक्त राजपुरुष कैने सेम गुण युक्त विद्वान् के संग से (ते ) तेरे लिये ( वृष्क्षम् ) वीर्ययपराक्रम बाले पुरुष के कर्म का ( विश्वतः ) सब ओर से ( समेतु ) संगत है। सस से आप ) आप्पायस्त्र ) बद्धिये (बाजस्य) विश्वान और वेग से संघान के जान-ने हारे ( संगये ) युद्ध में विजय करने बाले ( भव ) हूजिये ॥ ११२ ॥

भावार्थः — राजपुरुवे के नित्य पराक्षण बढ़ा के शतुकों से विजय प्राप्त देशना चाहिये ॥ ११२ ॥

सन्त इत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । भूरिगार्षी पङ्क्तिइछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

शरीर और भारमा के बल से युक्त पुरुष किस की प्राप्त होते हैं यह विश् ॥

सन्ते पर्याथमि समुयन्तु वाजाः संवृष्णयान्य-भिमातिषाहः । आप्यायमानो अमृताय सोम-दिवि श्रवांथस्युत्तमानि धिष्व ॥ ११३ ॥

पदार्थ:—हे (चेनन) शान्तियुक्त पुरुष जिस (ते) तुम्हारे लिये (पयांति) जल वा दुम्य (चंपन्तु) प्राप्त हे हिं (अभिनातियाहः) कानि-मानयुक्त श्रमुओं के। सहने वाले (वाजाः) धनुर्वेद के विश्वान (सम्) प्राप्त है।वें (च) और (शृष्यपानि) पराक्षन (सम्) प्राप्त है।वें सो (जाप्याय-मानः) अच्छे प्रकार बद्ते हुए आप (दिवि) प्रकाशस्त्रक्त्रप देश्वर में (अस्ताय) ने।क के लिये (चनानि, श्रवांति) सक्तम अवद्यों के। (चिष्ट्य) चारण की किये (चनानि, श्रवांति) सक्तम अवद्यों के। (चिष्ट्य)

भाषार्थः — जो मनुष्य शरीर भारता के बल के नित्य बढ़ाते हैं वे येगगभ्यास से प्रमेश्वर में मेख के आनन्द की प्राप्त होते हैं ॥ ११३॥ आप्यायस्वेत्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवताः। आर्द्युटिणक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥ संसार में कीन वृद्धि की प्राप्त होता है यह वि०॥

# त्राप्यांयस्व मदिन्तम् सोम्विश्वेभिर् ७१-भिः। भवांनः मुप्रथंस्तमः सखां वृधे ॥११४॥

पदार्थ:—है ( मदिन्तम ) अत्यन्त आनन्दी ( से।म ) ऐश्वर्य वा ले पुरुष आप ( अंशुनिः ) किरणें। से सूर्य के समान (विश्वेतिः) सब साधनें। से ( बाप्यायस्त्र ) वृद्धि की प्राप्त हूजिये ( सम्धरतमः ) अत्यन्त विस्तार-युक्त सुख करने हारे ( सखा ) मित्र हुए ( नः ) हमारे ( वृधे ) बढ़ाने के लिये ( भव ) तत्यर हूजिये ॥ १९४ ॥

भावार्थः - इस संगार में सब का हित करने हारा पुरुष सब प्रकार से वृद्धि की प्राप्त होता है ईच्चों करने वाला नहीं || १९४ ||

आत इत्यस्य वत्सार ऋषिः। ग्रग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

मनुष्यक्षेत्र किनके। वश में करके आनन्द की पाप्त है। वें यह विश्री
आ तें वृत्सी मनां यमत्परमाचित्मधस्थांत्।

#### श्राने त्वांकांमया गिरा ॥११५॥

पदार्थ:—हे (अग्ने) अग्नि के मनान तेत्रस्वी विद्वान् पुरुष (स्वा-द्वामणा) तुम्त की कामना करने के हेतु (गिरा) वाणी से जिम (ते) तेरा (मनः) चित्त जैसे (परमात्) अच्छे (सघस्थात्) एक से स्थान से (चित् ) भी (वत्मः) बछड़ा गी को प्राप्त है।वे वैमे (आ, यमत्) स्थिर हेत्ता है से तू मुक्ति की क्यों न प्राप्त है।वे ॥ १९५॥ भाषार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि मन और वाणी को सदैव अपने दश में रक्खें॥ ११४॥

> नुभ्यन्ता इत्यस्य विरूप ऋषिः । आग्निर्देषता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥ सब राजा स्या करे यह त्रिषय सगले संत्र में कहा है॥

## तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम् विश्वाः मुश्चितयः पृथंक्। त्राप्ते कामांय यमिरे ॥ ११६ ॥

पदार्थ: — है ( अङ्गिरस्तम ) अतिशय कर के सार के प्राहक (अग्ने ) प्रकाशमान् राजन् जो (विश्वाः ) मब ( सुक्षितयः ) श्रेष्ठ मनुष्यां बाखी प्रजा (प्रक्) अलग (कामाय ) इच्छा के साधक (तुम्यम् ) तुग्हारे लिये (येगिरे ) प्राप्त है वे (ताः ) उन प्रजाशों की काप निरन्तर रक्षा की जिये ॥ ११६ ॥

भावार्थः — जहां प्रका के लोग धर्मात्मा राजा की प्राप्त है। के अपनी अपनी इच्छा पूरी करते हैं वहां राजा की वृद्धि क्यों न है। वे ॥ ११६॥ स्विन्दित्यस्य प्रजापति ऋषिः । श्रानिर्देवता । गायत्री-

छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर मनुष्य लेग कैने देशकर वया २ करें इस वि०॥

# अग्निः प्रियेषु धामंमु कामों भूतस्य भव्यं-स्य । सुमाडेको विराजाति ॥ ११७॥

पदार्थ:—जा मनुष्य (सम्राट्) सम्यक् प्रकाशक (एक:) एक ही अनुष्ठाय परमेश्वर के स्टूश (कामः) स्त्रीकार के येग्य (अग्निः) अग्नि के समान वर्त्तमान सभापति स्नूतस्य) हो चुके और (भट्टपस्य) आनेवाले समय के (प्रियेषु) षष्ट (धामञ्ज) जन्म स्थान और नामें। में (विशानति) प्रकाशित होते वही राज्य का अधिकारी है।ने येग्य है।। १९७ ।।

भावार्थः—इस मन्द्र में बावबलु - जिन्मुख परमुख्य परमुख्य कर के मुक्त कर के बीर खप्ताव करते हैं वे ही क क्रवर्ती राज्य क्रोगने के योग्य होते हैं। ११७ ॥

इस अध्याय में को, पुरुष, राजा, प्रजा, खेती और पठन पाठन आदि कमें का वर्णन है इस से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति समझनी चाहिये ॥

यह यजुर्वेद भाष्यका बारहवां अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥



#### त्राय त्रयोदशाऽध्यायारम्भः॥

## त्रोम् विश्वांनि देव स वितर्दुरिता<u>नि</u> परां-सुव। यद्<u>मद्रं</u> तन्न आ सुवं॥

तत्र मिय गृह्णामीत्याद्यस्य बत्सार ऋषिः। अग्निर्देषता।
आर्ची पर्क्षक्तइह्नदः। पञ्चमः स्वरः॥
नव तेरहवे अध्याय का प्राप्तम है उन के प्रथम मंत्र में मनुष्या की पहली
अवस्था में क्या र काना चाहिये यह विषय कहा है॥
मिये गृह्णाम्यग्ने अग्निन्छ ग्रायस्पोषांय मु
प्रजास्त्वायं मुवीय्यीय। मामुं द्वेवताः सचन्तांम्
॥ १॥

पदार्थ:- हे कुमार वा कुमारिया जैने मैं ( अग्ने ) पहिछे ( मिय ) मुक्त में ( राण: ) विकास आदि धन के ( पे।वाय ) पृष्टि ( श्वप्रतास्त्वाय ) सुन्दर प्रतास्त्वाय ) सुन्दर प्रताक के कि के अर्थ ( अश्वर्य) उत्तम शिद्धान् के ( ग्रह्णानि ) घहण करता हूं जि स से ( माम् ) मुक्त की ( उ ) ही ( देवता: ) उत्तम विद्वान् वा उत्तन गुण , सचन्ताम् ) निह्नं वैसे तुम होग की करी ।। १॥

भावाधी:-- इस मन्द्र में बायकलु० - मनुष्टी की यह उचित है कि झ-

कर्म भीर देशवर की उपासना तथा ब्रह्मकान केर स्वीकार करें। जिस से श्रेष्ठ गुण भीर आह विद्वानों की प्राप्त है। के उत्तम थन सन्दानों भीर परा-कन केर प्राप्त है। वें॥ १॥

न्मपां पृष्ठमित्यस्य वत्सार् ऋषिः। अनिनर्देषता । विराद् श्चिष्टुष्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ शव परमेश्वर की उपासना का विश्व॥

#### अपां प्रष्ठमंसि योनिर्ग्ने संमुद्रम्भितः पिन्वं-मानम् । वर्धमानो मृहाँ २॥ आ च पुष्करे दि वो मात्रया वश्मिशा प्रथस्व ॥ २ ॥

पदार्ध:—हे विद्वन् पुरुष जी तू (अभितः) सब और से (अपाम्) सर्वत्र ह्यापक परमेश्वर आकाश दिशा विज्ञुली और प्रासीं वा जलों के (एछम्) अधिकरण (समुद्रम्) आकाश के समान सागर (पिन्वमानम्) सींचते हुए समुद्र की (अग्नेः) विज्ञुली आदि अग्नि के (ये।निः) कारण (दिवः) प्रकाशिल पदार्थी का (सात्रया) निर्माण करने हारी बुद्धि से (पुष्करे) हृद्दरुप अन्ति सि में (वर्धमानः) उन्नित की प्राप्त हुए (च) और (सहान्) सब श्रेष्ठ वा सब के पूज्य (अिन) हो से भाग हमारे लि

भावार्थः — मनुष्यां के जिस मत्, चित् और आनन्दस्वस्त्य, मस जन्यत् का रचने हारा, सर्वत्र ट्यायक, सब से उत्तम और सर्वश्रिकमान् इस्त की उपासना से सम्पूर्ण विद्यादि अनन्त गुण प्राप्त है ति हैं उसका सेवन क्यों न करना चाहिये॥ २॥

ब्रह्मजज्ञानिमित्यस्य घत्सार् ऋषिः। आदित्यो देवताः। आर्षी ब्रिष्टृष्क्वन्दः।धैवतः स्वरः॥

मनुष्यें। की किन स्वरूप वाला अस्त उपासना के येशम है यह विश् ॥

#### ब्रह्मं ज<u>जा</u>नं प्रंथमं पुरस्ताहिसीमृतः सुरुची वेन आंवः ।सबुध्न्या उपमा अंस्य विष्ठाः सतश्च यो<u>नि</u>मसंतर्च वि वंः ॥ ३॥

पद्धिः-जो (पुरस्तात्) सृष्टि की आदि में (जञ्चानम्) सब का उस्पादक भीर ज्ञाना (प्रयमम् ) विस्तार युक्त और विस्तार कर्ता (ब्रह्म )
सब से बड़ा जो (ब्रह्म :) ब्रुन्दर प्रकाशयुक्त और विस्तार कर्ता (ब्रह्म )
सब से बड़ा जो (ब्रह्म :) ब्रुन्दर प्रकाशयुक्त और सुन्दर रुचि का विषय
(वेन:) ग्रहण के येग्य जिन (अस्य ) इम के (ब्रुप्ट्याः) जल सम्बन्धो
आकाश में वर्त्तान मूट्य, चन्द्रमा, एथिनी और नक्षत्र आदि (विष्ठाः)
विविधस्थिलों में स्थित (उपमाः) इंग्रवर ज्ञान के दृष्टान्त लेक हैं उन सव्य के। (चः) बड़ (आवः) अपनी व्याप्ति से आच्छादम करता है वह
इंग्रवर (विभीमतः) मद्यादा से (सतः) विद्यमान देखने येग्य (च)
और (असनः) अव्यक्त (च) और कारण के (योनिम्) आकाशक्रप
स्थान को। (विवः) ग्रहण करता है उनी ब्रह्म की उपासना सब लेगी।
को नित्य अवष्य करनी चाहिये।। ३!

भावार्थ:—जिन ब्रह्म के जानने के लिये प्रसिद्ध और अप्रिविद्ध सब लोक दूष्टान्त हैं जो सर्वत्र ठग्राप्त हुआ सब का आवरण और सभा का प्र-काश करता है और सुन्दर नियम के साथ अपनी २ कक्षा में सब लीकों की रखता है वही मन्तर्यांनी परमात्मा सब मनुब्यों के निरन्तर उपासना के योग्य है इस से अन्य कोई पदार्थ मेवने योग्य नहीं ॥ ३॥

हिरण्यमभं इत्यस्य हिरण्यमभं ऋषिः। प्रजापतिर्देवता ।

आर्षी त्रिष्ठुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश भगले मन्त्र में किया है ॥

हिर्ण्यगर्भः समंवर्त्तताग्रं भूतस्यं जातः पनित्रेकं आसीत्। स दांधार पृथिवीं द्यासुतेमां कस्मै देवायं हविषां विधेम ॥ ४ ॥

पदार्थ: — हे मनुष्यो जीते इस छोग जी। इस ( भूतस्य ) उत्तम हुए सं-सार का ( जातः ) रचने और ( पितः ) पालन करने हारा ( एकः ) सहाय की अपेक्षा से रहित ( हिरत्यमंतः ) सूर्यादितेजीनय पदार्थों का आधार ( अग्रे ) अगत् रचने के पहिछे ( समवर्तत) वर्त्तमान ( आसीत् ) या (सः) वह ( इनाम् ) इस संवार के रचके ( उत ) और ( प्रियोम् ) प्रकाशर-हित और ( द्याम् ) प्रकाशसहित भूगीदिछे।कें। को ( दाघार ) धारण का-ता हुना उस ( कस्मे ) सुसक्त प्रजापालने वाले (देवाय) प्रकाशमान पर-मात्मा को ( इविया ) आत्मादि सामग्री से ( विधेन ) सेवा में सन्पर हों। वैते तुन लोग भी इस परमारमा का सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्धः - हे मनुष्या तुम का ये। ग्य है कि इस प्रमिद्ध सृष्टि के रचने से प्रमम परमेश्वर ही विद्यासम् या कीव गाढ़ निद्रा सुष्ट्रित में छीन और ज नत् का कारण अत्यानत सूक्ष्मावस्था में आकाश के समान एकरस स्थिर था जिसने सब जगत का रचने धारण किया और अन्त्यममय में प्रस्त करता है उसी परमात्मा की उपामना के ये। ग्य माना ॥ ॥ ॥

द्रप्त इत्यस्य हिरग्यमर्भ ऋषिः। ईश्वरो देवता। विराहार्षी त्रिष्टुच्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

फिर वह कीना है यह वि०॥

द्रप्तश्चस्कंन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनि-मनु यरच पूर्वः । सुमानं योनिमनुं संचरंन्तं द्रप्तं जुंहोम्यनुं सुप्त होत्रां ॥ ५ ॥

पदार्थः — हे मनुष्ये जैसे में जिन के (सप्त) पांच प्राण मन भीर आत्मा ये सात (हे।त्राः) अनुग्रहत्रक ने हारे (यः) जो (इमाम्) इस (प्रियोम्) पृथिती (द्याम्) प्रकाश (च) भीर (ये।तिम्) कारण के अनुकूछ जो (पूर्वः) सम्पूर्ण स्वस्त्व (द्रप्तः) आतन्द और उत्ताह के। (अनुकूछ ता से (चस्कन्द) प्राप्त है।ता है उस (ये।तिम्) स्थान के (अनुकूछता से (संवर्त्तम्) संवारी (समानम्) एक प्रकार के (द्र-

एनम् ) मर्बन्न अभिड्याम् आमन्द की मैं (अमुजुहेश्चि) अमुकूल ग्रहण करमा हूं वैहे तुम लेग्ग भी ग्रहण करें। । ।।

भावार्थ:—हे मनुष्यो तुम की चाहिये कि जिस जगदीप्रवर के भानग्द भीर खासर का सबंब लाभ होता है जन की प्राप्ति के लिए ये:गाम्यास करा॥ ५॥

नमोऽस्त्रित्रत्यस्य हिरण्यम मे ऋषिदेवता च । सुरिगृष्टिणक् छन्दः। ऋष मः स्वरः॥

ममुख्यां के। संस्कार में कैमे बत्तेना चाहिये यह तिया।

# नमें। उस्तु सर्पेभ्यो ये के चं पृथिवीमतुं। ये + अन्तरिक्षं ये दिवि तेभ्यः सुपेभ्योनमंः॥ ६॥ +

पदार्थ: — शि (के) कोई इस जगत् में लेक लेक लेक स्थार माणी हैं (तेम्य:) उन (सर्पेम्य:) लेकों के जंबों के लिये (मन:) सक्स (अस्तु) हो (ये) जे। (अन्तरिक्षे) आकाश में (ये) जे। (दिवि) प्रकाश मान सूर्य आदि लेकों में (च) और (ये) जे। (एथिंबीम्) भूनि के (अन्।) ज्यार चलते हैं उन (सर्पेम्य:) प्राणियों के लिये (नम:) अक्ष प्राप्त होवे।। ६।।

भाषार्थः - इं मनुष्यो जितने छाक दीख पड़ते हैं भीर जा नहीं दीख पड़ते हैं वे सब अपनी र क्क्षा में नियम से स्थिर हुए आकाश मार्ग में छू-मते हैं उन सबी में जा प्राणी चलने हैं उन के लिये अना भी ईप्रधा ने रका है कि जिस से इन सब का जीवन होता है इन बात की तुम छाय जाने। !! ६!!

या इषव इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः। स एव देवता च । अनुष्रुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः॥

फिर नमुखीं की कीना हाना चाहिये इस विवय का उपन ॥

## या इषंवो यातुधानांनां ये वा वन्स्पत्ती हैं॥ रतं । ये वांवटेषु शरंते तेम्यंः सपेंम्यो नमंः॥७॥

पदार्थ:—ह मनुष्या ! तुन छाग (याः) जी (यातुषानानाम्) पराये पदार्था की प्राप्त होके धारण करने वाले जने की (क्षवः) गति है (या) अथवा (ये) जी (वनस्पतीन्) बट आदि धनस्पतियों के (कतु) आफ्रित रहते हैं और (ये) जी (वा) अथवा (अवटेषु) गुप्तनार्गों में (शिते) सेति हैं (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) चंचल दुष्ट प्राणियों के लिये (नमः) वजा चलाओं !! 9 !!

भावार्थः — त्मनुष्यों की चाहिये कि जी मार्गी भीर बनें में उचक्की दुष्ट प्राची एकान्त में दिन के समय सेति हैं उन हाकुओं। भीर सबी की शस्त्र, ओर्घाध आदि से निवारण करें। 1991

ये वामीत्यस्य हिरण्यमर्भ ऋषिः । सूर्य्यो देवता । निचृद्रनुष्टुप् छन्दः ।गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों की कंटक और दुष्ट प्राणी कैसे इटाना चाहिये यह विश्व

ये वामी रोचने दिवो ये वा मूर्यंस्य गुरिमषुं। येषां मुप्सू सदंकृतं तेभ्यः मुपेभ्यो नमः॥ = ॥

पदार्थ:— हे मनुष्यो (ये) जी (अमी) वे परे। स में रहने वाले (दिवः) बिजुली के (रोचने ) प्रकाश में (वा ) अधवा (ये ) जी (सूर्वस्व ) मूर्व की (रिम्रापु ) किरणों में (वा ) अधवा (येपाम् ) जिन का (अट्यु) जलें में (सदः ) स्थान (क्रम् ) बना है (तेम्पः ) तन (सर्वम्यः ) दुष्ट प्राणियों की (नमः ) वजा से मारे ।।

भावार्थः (मनुष्येः की चाहित्रे कि जी जलीं में भाकाश में दुष्ट प्राची वा सर्प रहते हैं उन की शखां से निवृत्त करें)। ।।

कृणुडवेत्पस्य बामदेव ऋषिः । ग्राग्निर्देवता । भारिक् पङ्क्तिइछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥ राजपुत्रवेषं केष शत्रु कैते बांधने चाहिये यह विवा

## कृणुष्व पाजः प्रसित्तिं न पृथ्वीं याहि राजे-वामंवाँ २॥ इभेन । तृष्वीमनु प्रसितिं द्र्राानोऽ-स्तांसि विध्यं रक्षसस्तिपष्ठैः ॥ ९ ॥

पदार्थ:—हे सेनापते भाष (पाजः) बल को (स्युज्ध) कीजिये (प्रिमितिम्) जाल के (नः) मनान (एप्रवीम्) प्रूर्म को (याहि) प्राप्त हू जिये जिन से भाष (भस्ता) फेंकने वाले (अनि) हैं इस से (इभेन) हाची के माथ (अमवान्) बहुन दूतों वाले (राजेव) राजा के समान (तिपिछैः) अत्यन्नदुःखदायी शक्कों से (प्रिमितिम्) फांभी की मिद्ध कर (रक्षमः) शत्रुओं की (द्रूणानः) मारते हुए (सुद्धीम्) शीघ्र (अनु) सन्मुख हेकर (विष्य) ताहना की जिये ॥ १॥

आश्वार्थ: - इस मन्त्र में उपमालंग-सेनापति की चाहिये कि राजा के समान पूर्ण बल से युक्त है। अनेक फोर्कियों से धत्रुओं की बांध उनकी बाण आदि शस्त्रों से ताष्ट्रना दें और बंदीगृह में बन्द करके श्रेष्ठ पुरुषों की पाले। ए।

तव अभास इत्यस्य वामदेव ऋषिः। अभिनदेवता। भुरिक् पङ्क्तिइछन्दः। पश्चमः स्वरः॥ फिर वह सेनापति क्या करे यह विश्रा

तवं भ्रमासं आशुया पंतन्त्यतुं स्पृश धृष-ता शोर्श्यचानः । तपूंळव्यग्ने जुह्या पत्ङ्यान-संन्दितो विसृंज विष्वंगुल्काः॥ १०॥

पदार्थ: — हे (अन्ते) अनि के समान तेजस्त्री सेनापते होाशुक्रमः) अत्यन्त पवित्र आचरण करने द्वारे आप जी (तव) आप के (धनामः) धनण शील बीर पुरुष जैने (विष्वक्) सब ओर से (आशुक्र) शीम्र धन लने इस्सी ( जरूका: ) बिजुली की गतियां वैमे ( पनिन ) श्येनपक्षी के स-मान शत्रुओं के दल में तथा शत्रुओं में स्माते हैं उन की ( धृषता ) हुढ़ सेना मे ( अनु ) अनुकूल स्एश ) प्राप्त हु जिये और ( अमन्दिन: ) अख विहल हुए । जुहूर । घो के इयन का माधन लपट अस्नि के (तपूषि ) तेज के मुमान शत्रुओं के जायर नव और से बिजुलों को ( विस्न ) देश हिमें और ( पलङ्ग न् ) घाड़ों को सुन्दर शिक्षा युक्त की जिये ।। १०।।

भावार्थ: - इम मंत्र में वाचकलु > - सेनापति भीर सेना के भृत्यों की चाहिये कि भागम में प्रीति के माध बल बढ़ा बीर पुरुषों को क्षण दे भीर मस्यक् युद्ध का के अग्नि भादि अन्त्रों और भुनुंडों आदि शस्त्रों से शत्रुओं। के कार बिज्ञलों की वृष्टि करें जिससे शोध विजय है। । १०॥

प्रतिस्पदा इत्यस्य वामदेव ऋषिः। ग्रांग्नदेवता।

निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैनतः स्वरः॥

फिं यह कैना है। इन वि० ।

## प्राति स्पशो विषृंज तूर्णितमो भवां पायुर्विशो अस्या अदंब्धः । यो नो दूरे अघशंक्षमो यो अन्त्यग्ने मा किष्टं व्यथिरादंधर्षीत् ॥११॥

पदार्थ:—हे (अन्ते ) अन्ति के समान शमुओं के जलाने वाले पुड्य (ते ) अन्य का और (नः ) हमारा (यः ) जो (ठण्णः) ठण्णा देने हारा (अध्यंतः ) पाय करने में प्रवृत्त चीर शमु जन (दूरे ) दूर तथा (यः) जो (अन्ति ) निकट ह जीने यह हम लंगों को नाकिः नहीं (अन्द्रधर्शतः) दृःख देवे उम शमु के (प्रति ) प्रति आप (तूर्शितमः ) शीघ्र द्यष्ठ दाता होके (स्पशः ) बन्धनें को (विस्तुत्र ) रचिषं और (अस्पाः ) इस वर्षः मान (विशः ) प्रजा के (पायुः ) रक्षक (अद्वयः ) हिना रहित (भव ) हूलांग्रे ॥ ११ ॥

भाषार्थः - इम मंत्र में वायक्लुः - को मनीप वा दूर रहने वाले व जानों के दुःखदायी ड कू हैं उन को राजा आदि पुरुष माम, दाम, दग्रह भीर भेद वे श्रीष्र वश्र में लाके द्या और न्याय वे धर्मयुक्त प्रकाओं की निरन्तर रक्षा करें।। ११ !!

उद्ग्न इत्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। भृरिगार्षी पङ्क्तिइछन्दः। पञ्चमः स्वरः॥ किर बह क्या करे इत विश्व।

उदंग्ने तिष्ठ प्रत्या तंनुष्व न्युमित्राँ २॥ ओ-षतात्तिग्महेते। यो नो अरांतिक्षसमिधान चक्रे नीचा तं धंक्ष्यत सं न शुष्कंम् ॥ १२॥

पद्धि:—है (अभी) तेजधारी सभा के स्वामी आप राज धर्म के सीच ( उत्तिष्ठ ) उत्तित को प्राप्त हू जिये धर्मातमा पुरुषों के ( प्रति ) छिये (भा-तमुण्य) सुखों का विस्तार की जिये । है ( तिग्महेते ) तीव्रद्यष्ठ देने वाछे राजपुरुष ( भनित्रान् ) धर्म के द्वेषी शत्रुओं को ( न्योषतात् ) निरम्तर जलाइये । है ( निमधान ) भम्यक् तेजधारी जन ( यः ) जो ( नः ) इमारे ( भरातिम् ) शत्रु का उत्ताही ( चक्रे ) करता है ( तम् ) सस को (भीषा) नीची दशा में कर के (शुष्कम्) मूखे ( अतसम् ) काष्ठ के (म) समान (धिता) जलाइये ॥ १२ ॥

भावार्थः— इस नंत्र में तपमालं - राजा आदि सम्पन्नों की चा-दिये कि धर्म और विनय में समाहित हो के जल के समान मित्रों की धी-तल करें। अग्नि के समान शत्रुओं की जलावें। जो उदासीन हो कर हनारे शत्रुओं को बढ़ावे उस को दूढबन्धनों से बांध के निष्कारत राज्य करें ॥१२॥ जर्षों भवेत्यस्य बामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। मिचूदार्ध्यति जगती

छन्दः । निषादः स्वरः॥

किर बड़ राजा किस प्रकार का है। इस विश् ॥

क्रध्वों भंव प्रति विध्याध्यसमदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने । अवं स्थिरा तंनुहि यातुजूनां जा-

#### मिमजांमि प्रमृंगीहि शत्रून् । अग्नेष्टा तेजसा सादयामि ॥ १३॥

पदार्थ:-ह ( अन्ते ) तेणस्वन् विद्वान् पुरुष जिल लिये आव ( कःचं: ) उत्तम ( भव ) हूजिये धर्म के ( प्रति ) अनुकूल हे। के ( विष्य ) दृष्ट शत्रुकों को ताह्ना दीजिये ( अस्मत् ) हमारे ( स्वाग ) निश्चल ( दै- ह्यानि विद्वानों के रचे पदार्थों को ( आवि: ) प्रकट ( हमुख्य ) कीजिये हुने को ( तमुहि ) विस्तारिये ( यानुकूनाम् ) घर पदार्थों को प्राप्त है। ने और वेग वाले शत्रुकों के ( जानिम् ) भोजन के और ( अन्नानिम् ) अध्य स्वयहार के स्थान को ( अव ) अच्छे प्रकार विस्तार पूर्वक नष्ट की किये और ( शत्रुक् ) शत्रुकों को ( प्रमणीहि ) वल के साथ नारिये इन्न लिये और ( रखा ) आप को ( अन्ते: ) अन्ति के ( तेजसा ) प्रकाश के ( अधि ) सन्मुख ( नाद्यानि ) स्थापन करता हूं । १३ ।।

भावार्थ:—मनुष्टों को चाहिये कि राज्य के ऐश्वर्य की पाके उत्तम गुण, कमें, और स्वनावों से युक्त है।वें प्रजाओं। और दिन्द्रों को निरम्तर हु स देवें। दुष्ट अधर्माचारी मनुष्यों को निरम्तर शिक्षा करें। और सब से सत्तम पुरुष को सभावति मार्ने ।। १३ ।।

चारिनर्भू चेंत्यस्य बामदेव ऋषिः। आरिनर्देवता । सुरिगमुष्टु-

प्रुन्दः। गान्धारः स्वरः॥

किर वह राज पुरुष कैना है। यह वित ॥

अग्निर्मूर्डी दिवः क्कुत्पितिः प्रिथिव्या अ-यम् । अपाथ रेतांथिस जिन्वति । इन्द्रंस्य त्वीजंसा सादयामि॥ १४॥

पदार्थ: — हे राजन् जैवे ( अयम् ) यह ( अन्नि: ) सूर्य दिवः ) म-काशयुक्त आकाश के बीच और (पृथित्याः) भूजि का ( सूद्धां ) वस माजियेां के शिर के जनान उत्तन (ककुन्) तब वे बहा (पति: ) सक प्रदार्थी का रक्तक (अपाम्) जलों के वीर्याण चारों के प्राणिकों को (जिन्वति) स्वर करता है वैते आप भी हूजिये। मैं (श्वा) आप को (वन्द्रस्य) शु-यं के (ओजसा) पराक्रम के साथ राज्य के लिये (साइयानि) स्वापनी करता हूं || १४ ||

भावार्थः — इस मंत्र में बायक सुरू ने मुख्य सूर्य के समाम गुण कर्म और स्वमाय बाला न्याय से प्रता के पालन में तत्पर धर्मात्मा वि-द्वान हो सस को राज्याधिकारी सब लोग मार्ने ॥ १४॥

भुवो यज्ञस्येत्यस्यत्रिश्चारा श्वाविः । अभिनर्देवता । नियृ-दार्वित्रिष्टप्रकृत्यः । भैवतः स्वरः ॥

किर बड़ कैवा हो इस विषय का सपदेश जगले मन्त्र में किया है ।)

मुवों युज्ञस्य रर्जसञ्च नेता यत्रां नियुद्धिः सर्चसे शिवाभिः । दिवि मूर्द्धानं दिधेषे स्वर्षा

#### जिह्वामंग्ने चकुषे हव्यवाहंम् ॥ १४ ॥

पदार्थ:—हे ( अन्ने ) विद्वान् पुरुष ( यत्र ) जिन राज्य में आप जैने ( निद्वियुः ) वेग आदि मुखें के साथ वायु ( रजनः ) डोकें वा ऐस्ट्य का (नेता) चलाने हारा (दिवि) ज्याय के प्रकाश में ( सूद्वांनम् ) शिर को धारण करता है वैने (यत्र) जहां (शिवासिः) कर्याणकारक नीतियों के साव (भुवः) अपनी पृथिवी के ( यस्थ ) राजधमां के पालभ करने हें रे हैं। के (सचने) संयुक्त होता अच्छे पुरुषों से राज्य को ( दिधिषे ) घारण और ( हरुपका- हम् ) देने योग्य विद्वानों की प्राप्ति का हेतु ( ख्वांम् ) सुकों का नेवन कराने हारी ( जिष्टुाम् ) अच्छे विषयों की ग्राहक वाणी को ( चरुषे ) करते हैं। वहां चल सुल बढ़ते हैं यह निश्चित जानिये ॥ १५ ॥

आवार्थ:-जिस राज्य में राजा आदि सब राजपुरुष नंगलाचरण करने हारे चर्नातना होते चर्नानुकूल प्रजाओं का पालन करें नहां विद्या और अच्छो विद्या वे होने बाले हुस क्यों न बढ़ें | १५ ॥ ध्रुवासीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः। ग्राग्निर्देवता । स्वराद्यादर्थः

न् ष्ट्रप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किर सह राजयकी कैनी होते यह विश् ।।

धुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा । मा त्वां समुद्र उद्दंधीनमा सुंप्रगोंऽअव्यंथमाना पृथि-वीं दंधह ॥१६॥

पदार्थ: — हे राजा की स्त्री जिस कारण (विश्वकर्मणा) सब धर्मयुक्त काम करने वाले अपने पति के साथ वर्त्त सी हुई (आस्तृना) वस्त्र आसू वण और श्रेष्ठ गुणों से उपी हुई (धरुणा) विद्या और धर्म की धारणा करने हारी (ध्रुत्रा) निश्चल (असि) है सो तू (अठपथमाना) पीड़ा से रहित हुई (प्राथवीम्) अपनी राज्यभूमि को (टहंह) अच्छे प्रकार स- दा (ट्या) तुक्त को (समुद्रः) जार लेगें। का ठयवहार (मा) नत (ध-धीत्) सतावे और (सुप्रां:) सुन्दर रक्षा किये अवपनें से युक्त तेरा पति (मा) नहीं मारे ॥ १६॥

भाषार्थ: -- जैसी राजनीत विद्या को राजा पढ़ा हो वैसी ही उस की राजी भी पढ़ी हो नी चाहिये भदैश दोनों परस्पर पन्झिता खोल्लन हो के न्याय से पालन करें। उपित्रचार और काम की उयथा से रहित हो कर धन्मीनुकूल पुत्रों की उत्पन्न कर के खिल्यों का आहे राजी भीर पुरुषों का पुरुष राजा न्याय करें॥ १६ ।।

प्रजापतिष्ट्वेत्यस्य त्रिशिरा म्हाबिः । प्रजापतिर्देवता। त्रानुष्टुष्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥ किर समा अवभी सभी को सैते वर्तावे यह विश् ॥

प्रजापीतेष्टा सादयत्वपां पृष्ठे संग्रुद्रस्येमंत् । व्यचंस्वतीं प्रथंस्तीं प्रथंस्व प्रधिव्यसि ॥ १७॥ पदार्थ:— है विदुषि की जैने ( प्रजापति: ) प्रजा का खानी ( समुद्र-स्य ) समुद्र के ( अपाम् ) जलें के (एमन् ) प्राप्त होने योग्य स्थान के ( एक्टे ) जायर नीका के समान ( ट्यंचस्वतीम् ) बहुत विद्या की प्राप्ति और सत्कार से युक्त ( प्रयस्वतीम् ) प्रशंक्ति की क्ति वाली ( त्वा ) तुक्त को ( मा-द्यतु ) स्थापन करें । जिस कारच तू ( एथित्री ) भूनि के समान झुख देने बाली ( अति ) है इस्लिये खियों के न्याय करने में ( प्रथस्व ) प्रसिद्ध है। वैसे तेरा पति पुरुषों का न्याय करें ॥ १९ ॥

• भावार्थ: - इस मंत्र में वाषकलु० - राजपुरुष सादिकी षादिये कि आप जिन २ राज कार्य में प्रवृत्त हैं। उस २ कार्य में अपनी २ कियों की भी स्थायन करें जी २ राजपुरुष जिन २ पुरुषे का न्याय करे उस २ की स्त्री कियों का ज्याय किया करें ॥ १९ ॥

> भूरसीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । स्रग्निर्देवता । प्रस्तार-पङ्क्तिइछन्दः । पश्चमः स्वरः ॥

> > श्विर बड़ राजी कैसी हो यह वि०॥

भूरंसि भूमिर्स्यदितिरसि विश्वधाया वि-श्वंस्य भ्वंनस्य ध्रतीं । पृथ्विवीं यंच्छ पृथ्विवीं देशह पृथ्विवीं माहिं छंसीः ॥१८॥

पदार्थ:—हे राणी जिन से तू (भू:) भूनि के समाम (असि) है इन कारण (एथिबीम्) पृथिबी को (यड्छ) निरन्तर ग्रहण कर जिन लिये तू (विश्वधायाः) सब ग्रहाम्रम के और राजसम्बन्धी ठयवहारीं और (बिश्वध्य) सब (भुवनस्य) राज्य को (धर्मी) धारण करने हारी (भूकि) पृथिबी के समाम असि है इन लिये (एथिबीम्) एथिबी को (दूंह) बढ़ा और जिस कारण तू (अदितिः) अखग्र ऐश्वय्यं वाले आकाश के समाम कोभरहित (असि) है इस लिये (एथिबीम्) भूमि को (मा) मत (हिंसीः) बिगाइ।। १८।।

भाषार्थः — जो राजकुछ की की एथिबी आदि से समान धीरण आदि गुवैं। वे युक्त हो ती वेही राज्य करने के योग्य है।ती हैं।। १६॥

विद्यस्मा इत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः। आंग्नर्देवता। सुरिगति-

जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

किर वे की पुरुष अध्यक्त में कैने कर्ती यह विषय।॥

विश्वंसमे प्राणायांपानायं व्यानायोंदानायं प्रतिष्ठायें चरित्रांय। अग्निष्ट्यामिपातु मुद्या स्व-स्त्या छर्दिषा शन्तमेन तयां देवतंयाङ्गिर्स्वर धवा सींद॥ १९॥

पदार्थ:— हे कि जो ( अग्नः ) विज्ञानयुक्त तेरा पति ( जहां ) अही ( खहत्या ) सुस प्राप्त कराने हुने क्रिया और ( स्ट्रिंबा ) प्रकाशयुक्त ( शन्तमेन ) अत्यन्तसुस्यायक कर्म के साथ ( विश्वस्मे ) सम्पूर्ण ( प्राप्ताय ) क्षीवन के हेतु प्राप्ण ( अपानाय ) दुःखें। की निवृत्ति ( उपानाय ) अनेक प्रकार के उक्तन व्यवहारों की सिद्धि ( उद्दानाय ) उक्तन बल ( प्रतिष्ठाय ) सरकार और ( चरित्राय ) अर्म का आचाण करने के लिये जिस ( स्था ) तेरी ( अतिपातु ) सम्मुख होकर रक्षा करें को तू ( तया ) उस ( देवतया ) दिवयस्वद्य पति के साथ ( अङ्गास्वत् ) जैसे कार्य कारण का सम्बन्ध है वैसं ( भूवा ) निबल्ज हो के ( सीद ) प्रतिष्ठायुक्त हो ॥ १९॥

भावाधी: - पुरुषों को योग्य है कि अपनी २ कियों के सरकार है सुक्ष और उपनिचार से रहित होके प्रीतिपूर्वक आचरक और सन की रक्षा आहि निरुत्तर करें और इसी प्रकार को छोग की रहें। अपनी को को हो अन्य की की इच्छा न पुरुष और न अपने पनि को छोड़ हूसरे पुरुष का संम की करे ऐसे ही आपस में प्रीतिपूर्वक ही दोनें। सदा बसें ॥ १९ ॥

काण्डात्काच्डादित्यस्याऽग्निर्क्कावः। पत्नी देवता। सनुष्ठुः

'प्ह्यन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

चिर यह की बीची हो इस विषय का सबदेश अगले मंत्र में किया है ॥

#### काण्डोत्काण्डात्प्ररोहंन्ती परुंषः परुष्रस्परिं। एवा नों दूर्वे प्र तंतु महस्रेगा शतेनं च ॥२०॥

पदार्थः-हे कि तू जैते ( सहकोण ) असंख्णात ( च ) और ( शतेन ) बहुन प्रकार के न्याय ( कायहास्कारहात् ) सब अध्यवों और ( पर्रषः पर्रषः ) गांठ २ में ( परि ) सब ओर से ( प्रराहन्ती ) नत्यन्त बढ़ती हुई ( दूवें ) दूवां घास हेरती है वैसे ( एव ) ही ( नः ) इन की पुत्र पीत्र और ऐश्वर्य से ( प्रत्नु ) विस्तृत कर !! २३ !!

भावाधे: - इस मंत्र में बाचकलु०-तीसे दूर्वा श्रीवधी रोनें का नाग श्रीर सुखें की बढ़ाने हारी सुभ्दर विस्तार युक्त हे ती हुई बढ़नी है। वैसे ही विद्वान् स्त्री की चाहिये कि बहुत प्रकार से अपने कुल को बढ़ावे ॥२०॥

या शतेनंत्यस्यारिनर्ऋषिः । पत्नी देवता । निचृदनुष्ट्रप्

छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिल्बर कैनी हो यह विश् ॥

#### या शतेनं प्रतनोषिं महस्रेगा विरोहंसि।त-स्यांस्ते देवीष्टके विधेमं हविषा व्यम्॥२१॥

पदार्थ: — हे ( इष्टके ) इंट के समान टूढ़ भवपवों से युक्त शुम गुगों से शोभायमान ( देवि ) प्रकाश युक्त को जैसे इंट सैकड़ें। संख्या से मकान आदि का विस्तार और इजारइ से बहुन बढ़ा देती है वैसे ( या ) को तू इन छोगों को ( शतेन ) सैकड़ें। पुत्र पीत्रादि सम्पत्ति से ( प्रतनीवि ) विश्वायुक्त करती और ( सहस्त्रेण ) इजार प्रकार के पदार्थों से (विरोहिंस) विविध प्रकार बढ़ाती है ( तस्या ) उस ( ते ) तेरी ( इविधा ) देने योश्य पदार्थों से ( वयम् ) इन छोग ( विधेन ) सेवा करें।। २१।।

भावार्थः — इस मंत्र में वायकलु० - जैने चैकड़ें। प्रकार से इकारह हेंटें घर कर बन के तब प्राणियों को झुख देती हैं वैसे को ब्रेष्ठ की छोग पुत्र पीत्र ऐश्वर्य और भृत्य आदि से सब को आनम्द देवें उन का पुरुष छोग निरन्तर सरकार करें क्यों कि श्रेष्ठ पुरुष और खियों के श्रंग के विना शुन-गुवें से युक्त सन्तान कभी नहीं हो सकते। और ऐसे सन्तानों के विना माता पिता की शुल कब मिछ सकता है। २१॥

थास्त इत्यस्येनद्रागनी ऋषी । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

क्रिर वह की कैसी होबे यह विश् ॥

## यास्तै अग्ने सूर्यें रुचो दिवंमातुन्वन्ति र्-रिमभिः । ताभिनों अद्य सर्वामी रुचे जनाय नस्कृधि ॥ २२ ॥

पदार्थ:— है (अन्ते) अनि से समान तेत्रधारियो पढ़ाने हारी विद्वान् हो (या:) जो (ते) तेरी कवि है (तािशा) उन (सर्वाभा:) सब क नियों से युक्त (न:) हम को जैसे (कव:) दीिप्रयां (सूर्यें) सूर्यों में (रिश्निमिति। किरखें। में (दिवस्) प्रकाश को (आतन्त्रकित) अच्छे प्रकार विस्तार युक्त करती हैं वैसे तू भी अच्छे प्रकार विस्तान सुख्युक्त कर और (अद्य) आज (क्ये) किये करानेहारे (जनाय) प्रसिद्धं ममुख्य के लिये (न:) हम लंगों को प्रीति युक्त (कृष्य) कर।। २२॥

भाषार्थः — इम मंत्र में वाषकलु०- जैसे ब्रह्मागड में सूर्ये की दीहि मब वन्तुओं को प्रकाशित कर रुचि युक्त करती हैं वैसे ही विदुषी श्रेष्ठ पत्रिव्रता खियां घर के सब कार्यों का प्रकाश करती हैं। जिस कुछ में खी और पुरुष भाषत में प्रीतियुक्त हो बढ़ां सब विषयों में करपाण ही होता है। २२।।

या वो देवा इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । बृहस्पतिर्देवता । स्रनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब की पुरुषों को विकास की चिद्धि कैसे करती चाहिये यह विषय।।

## यावों देवाः सूर्यें रुचो गोष्वरवेषु या रुचंः। इन्द्रांग्नी ताभिः सर्वीभी रुचं नो धत्त रह-स्पते॥ २३॥

पदार्थ: --हे (देवाः) बिद्वानो तुन सब छोग (याः) जो (यः) तुम्हारी (सूर्ये) सूर्यो में (कवः) कवि और (याः) जो (गोषु) गीओं और (अश्चेषु) घोड़ों आदि में (कवः) ग्रीतियों से ममान ग्रीति हैं (ता-ितः) उन (सर्वाभः) सब कियों से (तः) इमारे बीच (कवम्) कामना को (इम्हाग्नी) बिजुली और सूर्यंवत् अध्वापक भीर उपदेशक जैसे घारण करे वैसे (घल्) घारण करो हे (शहस्पते) पक्षपात खोड़ के परीक्षा सरने हारे पूर्वविद्यायुक्त थाप (नः) इमारी परीक्षा की जिये ॥ २३॥

भावार्थ: - जबतक मनुष्य छोगें की विद्वानों के सङ्ग ईश्वर उतकी रचना में रुचि भीर परीक्षा नहीं होती तबतक विद्वान कमी नहीं बढ़ चकता ॥ २३ ॥

> विराड्डयोतिरित्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । प्रजापतिर्देवता । निष्ट्रबृहतीछन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

की उद्दर नावन में केव बने वह विवय जनले नव में कहा है। विराह्ण्योतिरधारयत्स्वराद्ण्योतिरधारयत्। प्रजापितिष्टा सादयतु पृष्ठे प्रंथिव्या ज्योतिष्म-तीं विश्वंसमें प्रागायांपानायं व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ अग्निष्टेऽधिंपित्स्तयां देवतंयाङ्गि-गुस्वद् ध्रुवासींद् ॥ २४॥

पदार्थ:-- को (विराष्ट्) अनेक प्रकार की विद्याओं में प्रकाशनाम क्यी ( क्रयोति: ) विद्या की उकति को ( अधार्यत् ) धारण करे करावे को (स्वराट्) व्याधार्म क्षाप्त क्ष्यकारी में शुद्धावारी पुरुष ( क्योतिः ) बि-जुला अ। दि के प्रकाश को (अधारदत् ) धारण करे करावे वे दोनें स्वी पुरुष संपूर्ण सुखें को प्राप्त होतें। है कि जी (अधिन: ) अधिन के समान तेजस्वी विज्ञानयुक्त ( से ) तेरा ( अधिपतिः ) स्वामी है ( तया ) उस (देवतया) सुन्दर देवस्वस्तव पति से साथ तू ( अङ्गिरस्वत् ) सूत्रात्मा वासु के समान ( ध्रुवा ) हढता से ( सीद ) हो । हे पुरुष जी अध्न के समान तैजधारिणी तेरी रक्षा के करने हारी स्त्री है उस देवी के साथ तूपाणों के चनान प्रीतिपूर्वेक निश्चय करके स्थित है। है खि( प्रजापतिः ) प्रजाका रक्षक त्रेरा पति ( एथिठया: ) भूनि के ( एछ्डे ) ऋपर ( विश्वस्मै ) सब (प्राणाय) मुख की चेष्टा के हेत् ( अपानाय ) दुःख इटाने के साधन ( दवानाय ) सब कुन्दर गुण कर्म भीर स्वामांत्रीं के प्रचार के हेतु प्राण विद्या के छिये जिस ( ज्योतियमतीम् ) प्रशंसित विद्या के ज्ञान से युक्त (त्वा ) तुक्त को ( साद-यतु ) उत्तम अधिकार पर स्थावित करे सी तू ( विश्वम् ) समग्र (ज्योतिः) विशान को ( यच्छ ) यहण कर भीर इस विशान की प्राप्ति के लिये अपने पति को स्थिर कर ॥ २४ ॥

भाषार्थ:— को की पुरुष सरसंग और बिद्या के अभ्यास से विद्युत् भादि पदार्थविद्या भीर भीति को नित्य बढ़ाते हैं वे इस संगार में सुख सोगते हैं। पति की का भीर स्त्री पति का मदा सरकार करें इस प्रकार भाषत में भीतिपूर्वक निष्ठ के ही सुख सोगें॥ २४॥

> मधुरचेत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी । भातवो देवताः । पूर्वस्य भृरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥ ये भाग्नय इत्युत्तरस्य सुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब अगले मंत्र में वसन्तश्चतुः का वर्षत किया है ।।-

मधुश्च मार्धवश्च वासंन्तिकावृत् अग्नेरंन्तः रेलेषोऽसि कल्पेतां द्यावांष्ट्रिश्चिवां कल्पंन्तामाप ओषंधयः कल्पंन्तामग्नयः पृथङ् मम् ज्येष्ठ्यांय
सर्वताः । ये अग्नयः समनसोऽन्त्रा द्यावांप्थिवी हमे वासंन्तिकावृत् असि कल्पंमाना
हन्द्रंमिव देवा असिसंविशन्तु तयां देवतंयाक्रिग्स्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ २५॥

पद्धि:— की वे ( मन ) मेरे (क्येष्ठवाय) क्येष्ठ महोने में हुए उपवहार का मेरी मेष्ठता के लिये की ( अक्ते: ) गरमी के निनित्त अक्ति से उत्पक्ष होने वाले जिन के (अक्तः प्रलेषः) मीतर बहुत एकार के वायु का सम्बन्ध ( अति ) हाता है वे ( मधुः ) मधुः गंधयुक्त के रम्बन्धी पदार्थ युक्त ( का शति है वे ( मधुः ) मधुः गंधयुक्त के सम्बन्धी पदार्थ युक्त ( बासंतिकी ) वसनत महोनों में हुए ( ऋतू ) सब को सुस्र प्राप्ति के साधन ऋतु सुख के लिये ( कल्पेताम् ) समर्थ होवे जिन के श्रीर वैशास महोनों के भाम्रय वे ( द्यावाप्यिवी ) सूर्य और भूमि ( आपः ) जल भी भोग में ( कल्पन्ताम् ) भानन्ददायक हों ( पृथक् ) निक्ष २ (भोषधयः) जी आदि वा सोमलता आदि भोषधि और ( अक्ताः ) विद्वाले आदि अग्ति भी ( कल्पन्ताम् ) कार्यसाधक हों हे ( सम्रताः ) निरन्तर वर्तमान सत्यसाय-णादि मतों से युक्त ( समनतः ) विद्वान वाले ( देशः ) तिद्वान् ( ये ) जो लोग ( वानन्तिकी ) ( ऋतू ) वसन्तऋतु में हुए केत्र वैशास भीर पूर्वक से ( अन्तराः ) बोच में हुए ( अन्तराः ) अग्ति है उन को ( अनिक्रस्पनानाः ) सन्तरा ) बोच में हुए ( अन्तराः ) अग्ति है उन को ( अनिक्रस्पनानाः )

ऐश्वरमें प्राप्त हों वैसे (अभिसंविधन्तु) सम ओर से प्रवेश करी जैसे (हमें)
ये ( द्यावाएथिवी ) प्रकाश भीर भूमि ( तथा ) उप ( देवतथा ) परमपूज्य
परमेश्वरक्षय देवता के सामध्यें के साथ ( अङ्गिरस्वत् ) प्राण के समाम ( भूषे ) दूढ़मा से वर्त्तते हैं वैसे तुम दीनों को पुरुष सदा संयुक्त (शीद्तम्) स्थिर रहो ॥ २५ ॥

भावार्थ:—है मनुष्यो तुम की चाहिये कि शित वनन्तश्चतु में फल पूल सरपक्ष होता है और जिस में ती अपकाश रूखी ए पियी जल मध्यम की पियां फल और फूलों से युक्त और अध्न की जवाला मिल र होती हैं उस को युक्त प्रेयन कर पुरुषायं से मब सुसों की प्राप्त हो भी जैसे विद्वान् लंग अस्यन्त प्रयक्ष के साथ सब श्चतुओं में सुझ के लिये चन्पित को बढ़ाते हैं वैसा तुम भी प्रयक्ष करों ॥ २५॥

ग्रवादासीत्यस्य सविता ऋषिः। क्षत्रपतिर्देवता। निष्टृत्नुष्टृत्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥ किर वह कैनी हो यह विश्व।

#### अषांदामि सहंमाना सहस्वारांतीः सहंस्व ए-तनायुतः । महस्रंवीय्यांमिसा मांजिन्व॥ २६॥

पदाधी:—है पत्नी जी तू (अयादा) शत्रु के असहते योग्य (अिन) है तू (सहमाना) पति आदि का सहत परती हुई अपने के उपदेश का (सहस्व) सहन कर जो तू (सहस्त्रशीय्यों) असंख्यात प्रकार के पराक्रमीं से युक्त (अ) है (सामि) सी तू (पृतनायतः) अपने आप नेना से युद्ध की दक्ता करते हुए (अरातीः) अतुओं की (सहस्व) सहन कर और जैसे मैं तुभा को प्रक्ता रखता हूं दैसे (मा) मुभा पति को (जिन्छ) सुप्त किया कर ॥ दही।

भावार्थ:-- के बहुत काल तक ब्रह्मकर्यात्रम से सेवन की हुई भत्य-नत बलवान् कितेन्द्रिय वमन्त भादि ब्रातुओं के एथक् २ कान जानने, पति के अपराच समा और शतुकों का निवारण करने वाली उत्तम पराक्षन के यु-काकी अपने स्थानी पति की द्वार करती है वही की पति भी नित्य आन-निद्दत धरता ही है ॥ २६ ॥

मधुवाता इत्यस्य गोतम माधिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृ-द्गायत्रीछन्दः। षड्जः स्वरः॥ जाने के मन्त्र में वसन्तवातु के अन्य गुणों का वर्षन किया है॥

मधुवातां ऋतायते मधुं क्षरन्ति सिन्धंवः।

माध्वीर्नः सुन्त्वेषिधीः ॥ २७ ॥

पदार्थः-इ ममुख्या जैसे वमन्त आतु में ( अ: ) इस लोगों के लिये (वा-स: ) वायु ( मधु ) मधुत्ता के माथ ( ऋतावते ) जल के समाम चलते ई ( सिन्धवः ) नदियां वा समुद्र ( मधु ) को नलता पूर्वक ( कान्ति ) वर्षते ई कीर ( को वधीः ) को विधियां ( माध्वीः ) मधुर रस के गुकें से युक्त ( सन्तु ) है वें वैसा प्रयक्ष इम किया करें ॥ २९ ।

भावार्थ:--- इस मंत्र में वायक सु०- जब वननत आतु आता है तब पुष्प आदि के खुगन्थों से युक्त वायु आदि पदार्थ है ति हैं उस ऋतु में भूवना हो सना पष्प है। ता है ऐना निश्चित जानना चाहिये॥ २०॥

मधुनक्तमित्यस्य गांतम ऋषिः। विद्वेदेवा देवताः।

गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥ चिर भी वही विषय भगन्ने संत्र में कहा है ॥

मधुनक्तंमुतोषमो मधुंमत्पार्थि<u>व</u>७ रर्जः । मधु द्यौरंस्तु नः <u>पि</u>ता ॥ २८॥

ं पदार्थ:—हे जनुष्यो जैदे वसन्त ऋतु में ( शक्तम् ) रात्रि ( मधु ) की-मक्षता से मुक्त ( सत ) और ( सबसः ) श्रातःकाल से लेकर दिन मधुर (पा- शिवम् ) प्रविश्वी का (रक्षः ) हृद्युक वा असरे सु कादि (अधुमत् ) अधुर गुक्षों से युक्त और (द्यीः ) प्रकाश भी (अधु ) अधुरतायुक्त (पिता ) र-क्षा काने हारे के समान समय (नः ) हमारे लिये ( अस्तु ) है। वे वैसे यु-क्ति से सम समन्तन्तत्त्वत् का सेवन तुष भी किया करें। । १८॥

भावार्थ:--- इस मन्त्र में वाचकछु०-जब वपनतऋतु भाता है तब पक्षी भी कोमछ मधुर २ घडर बोछते और अन्य सब प्राणी आनन्दित होते हैं ॥ २८ ॥

मधुमानित्यस्य गोतम ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद्गायत्री इत्दः। षड्जः स्वरः॥

अब वसन्तऋतु में मनुष्यां को कीना आचरण करना चाहिये इम विव ॥

## मधुमात्रो वनस्पतिर्मधुंमाँ २॥ श्रस्तु मृय्यैः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ २९॥

पदार्थः - हे विद्वान् लोगो जैसे वसन्तक्षतु में ( नः ) इनारे लिये (व नर्थातः ) पीपल जादि वनस्पति ( नधुमान् ) प्रशंसित कोमल गुवेर्ष वाले भीर ( सूर्यः ) सूर्यं भी ( मधुमान् ) प्रशंसित कोमल ताप्युक्त ( भरतु ) है। वे भीर ( नः ) इमारे लिये ( गावः ) गीओं है समान ( माध्यीः ) कोमल गुवेरं वाली किरवें ( भयन्तु ) हैं। वेना भी उपदेश करी ॥ २९॥

आदार्थ:—हे मनुष्ये तुन छोग वसन्तम्भतु को प्राप्त होकर जिल प्रकार के पदार्थी के होन से बनस्पति आदि कोमछ गुण्युक्त हैं। ऐने यज्ञ का अनुष्ठान करो और इस प्रकार वसन्तम्भतु के हुस को सब जने तुन छोग प्राप्त होओं।। २९॥

अपामित्यस्य गोतमऋषिः। प्रजापतिर्देवता। स्राषीपङ्किइछन्दः।

पश्रमः स्वरः॥

किर भी बही वि०॥

#### अपां गम्भंन्सीद्रमा त्वा सूर्योऽभिताप्सी-

#### नमाऽग्निवैरवान्रः । अच्छिन्नपत्राः प्रजा अ-नुवीक्षस्वानुत्वा हिट्या रृष्टिः सचताम् ॥ ३०॥

पदार्थ:—है ननुष्य तू समन्त ऋतु में (अवाम) कही के (गम्भन्) आधार कर्ता मेघ में (कीद) स्थिर हो जिस से (मृत्यं:) सूत्यं (स्वा) तुम को (मा) आ (असिताय्नीत्) नपावे (वैद्यानरः) स्व मनुष्यां में प्रकाशमान (अस्तः) कांग्न बिजुली (स्वा) तुम को (मा) म (असिताय्वीत्) तम करें (अध्वयमाः) सुन्दर पूर्वं अवयवें वाली (प्रजाः) प्रजा (अमुत्वा) तेरे अमुकूल और (दिव्या) शुद्ध गुकों से युक्त (सृष्टः) वर्षा (सचताम्) प्राप्त है।वे वैसे (अनुवीकस्त ) अनुकूलता से विशेष करके विचार कर ॥ ३०॥

भाषार्थ: — मनुष्य वनस्त और ग्रीडनम्बतु के बीच कलाशयस्य शीतल स्थान का हेवन करें जिस से गर्भी से दुस्ति न हों और जिस यद्य से बर्चा भी ठीक २ हो और मजा आमन्दित हो उस का देवन करी ।!३०॥

> श्रीतसमुद्रानित्यस्य गोतम ऋषिः । वक्ष्यो देवता । श्रिष्टुष्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब नमुख्यें को उस बतन्त में सुख्य। मि के लिये क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रीन्त्संमुद्रान्त्समंसृपत्स्वर्गान्पां पतिर्वृष्टम इ-ष्टंकानाम् । पुरीषं वसानः सुकृतस्यं लोके तत्रं

गच्छ यत्र पूर्वे परेताः॥ ३१॥

पदार्थ:-- हे विद्वान् पुरुष जैवे ( अपाम् ) प्राणों का ( पति: ) रक्षक ( स्वपाः ) वर्षा का हेतु ( पुरीषम् ) पूर्ण सुसकारक जल का ( वसानः ) धा-रण करता हुना सूर्य ( इष्टकानाम् ) काननाओं की प्राप्ति के हेतु पदार्थी की आधार कर ( त्रीम् ) स्वयर नीचे और भध्य में रहने वाले तीन प्रकार के ( समुद्राम् ) यद पदार्थी के स्थान भूत भविष्यत् और वर्तनान (खर्गान्) सुस प्राप्त कराने बारे लोकों की ( ननस्वात् ) प्राप्त हे तर है वैसे आप भी प्राप्त हू जिये ( यत्र ) जिन धर्मपुक्त कनन्त के नार्ग में ( सुरु-१ य ) सुन्दर धर्म करने इंदे पुरुष के ( लोके ) देखने योग्य स्थान वा नार्ग में ( पूर्व ) प्राचीन लोग ( परेताः ) सुस की प्राप्त हुए ( तत्र ) स्वी वसन्त के सेवन-क्षण नार्ग में आप भी ( गव्छ ) चल्ये ॥ ३१ ॥

भावार्थः — इस जंत्र में वाचकलु० — मनुष्यों की चाहिये कि धर्मीत्माः ओं के मार्ग से चलते हुए शारीर वाचिक और मानवतीनी प्रकार के सुद्धें की प्राप्त होतें। और क्षिस में कामना पूरी हैं। वैसे प्रयक्ष करें। जैना वस्तत आदि ऋतु नपने क्रम से वसंते हुए अपने २ विन्ह प्राप्त करते हैं वैसे ऋतु-ओं के अनुकूल उपवहार के आगन्द को प्राप्त है। वें॥ ३१॥

महीचौरित्यस्य गोतम ऋषिः। चाबापृथिव्यौ देवते। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥ नाना जिता अपने चन्तानांकी कैनी शिक्षा करें इस्रविश॥

#### मही द्योः प्रंथिवी चं न इमं यज्ञं मिमिक्ष-ताम । पिपृतां नो भरीमिभः ॥ ३२ ॥

पदार्थ: -- हे माताजिता जैसे (मही) बढ़ा (द्योः) सूर्यलेक (च) भीर (पृथिती) भूमि सब संगर की सींचते भीर पालन करने हैं वैते तुम देशों (तः) इमारे (इमम्) इस (यश्चम्) नेवने योग्य विद्याग्रहणक्ष्य व्यवहार की (मिनिक्षनाम्) नेचन अर्थात् पूणं हेशने की इच्छा करें। भीर (सरीनिक्षः) धारण पेषण आदि कर्नों से (नः) इमारा (पिपताम्) पा- छन करें। ॥ ३२ ॥

भाषार्थः — इस मन्त्र में वाचकलु :- जैसे वमन्तन्नतु में एथिवी और सूर्यो सब संसार का धारण प्रकाश और पालन काते हैं वैसे माता पिता की चाहिये कि अपने सन्तानों के लिये बसन्तादि चतुओं में अब विद्या-दान और अच्छी शिक्षा करके पूर्ण विद्वान् पुरुषार्थी करें ॥ ३२ ॥ विष्णाः कर्माणीत्पस्य गोतम कविः। विष्णुर्देवता । निष्टुद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

बिद्वानें के तुरुव अन्य मनुर्थी की आवरण करना चाहिये इसी विश्वा

विष्णोः कर्मांगि पश्यत यतो व्रतानि प-

स्पुशे । इन्द्रंस्य युज्यः सर्खा ॥ ३३ ॥

पदार्थ: — हे नमुखो जी। ( इन्द्रस्य ) परमेश्वर्य की इच्छा करने हारे जीव का ( युक्तः ) उपासना करने योग्य (सला) नित्र के ननान वर्त्तनाल है ( यतः ) जिन के प्रताय से यह जीव ( विच्छोः ) ठ्यापक इंश्वर् के ( कर्नाजि ) जगत् की रचना पालन प्रत्य काने जीर न्याय आदि कर्नी और ( प्रशानि ) सत्यप्रायणादि नियमों की ( प्रश्वरी ) स्वर्ध करता है इस लिये इस परमातमा के इन कर्नी और प्रशो की तुन छै। गभी (प्रश्वत) देखा धारण करे। || ३३ ||

भाषार्थ:-जैमे पामेश्यरका भित्र सपासक चर्नातमा बिद्वान् युद्ध पर-मारणा के गुण कर्म और स्थमार्थे। के अनुसार स्टिंड के कर्ने। के अनुकूछ आषरण करें और जाने वैसे ही अन्य मनुष्य करें और जार्ने । ३३॥

> भ्रुवासीत्यस्य गोतम ऋषिः। जानवंदा देवना । भ्रुरिक्त्रिप्रुप् ह्यन्दः। धैनतः स्वरः॥

बिद्वान् युस्कें के समान निद्वान् स्थितां भी उपदेश करें यह वि० ।।

ध्वासि धरुणेतो जंज्ञे प्रथममेम्यो योनिम्यो अधिजातवेदाः । स गांय्त्र्यात्रिष्टुभांऽनुष्टुभां च देवेम्यो हृव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ३४॥

पदार्थ: - हे कि जैते तू (घतका) शुप्तगुणें। का घारण करने हारी (भुवा) स्विर (असि) है जैते (एम्पः) इन (ये। निम्पः) कारकें से (शः) वह (जातवेदाः) प्रसिद्ध पदार्थीं में विद्यमान वायु (प्रयमम्) पहिले ( अधि अधि ) अधिकता से मकट देन्ता है वैसे ( इतः ) इस कर्म के अनुक्टान से नवींवित प्रसिद्ध हूं जिये जैसे तेरा पति ( गांयक्या ) गायकी ( जिक्टुना ) जिक्टुण् ( च ) और ( अनुक्टुना ) अनुक्टुण् नन्य से निष्ठु हुई विद्या से ( प्रजानन् ) बृद्धिमान् देनकर ( देने स्वः ) अब्द्येगुण सा विद्याने से ( इक्वम् ) देने लेने येन्य निष्ठान ( वहतु ) मास देनवे वैसे इन विद्या से बुद्धिमती देनके आप स्त्री लेनों से ब्रह्मणारिणी कन्या विद्यान के प्राप्त है से आप स्त्री लेनों से ब्रह्मणारिणी कन्या विद्यान के प्राप्त है से ॥ इन्ना

भावार्थ: — मनुष्य जगत् में इंखर की सृष्टि के कामें के निर्मित्तों की जान विद्वान् होका जैसे पुरुषों के श खों का उपदेश करते हैं वैसे ही खियों के भी चाहिये कि इन सृष्टिकम के निमित्तों की जान की खियों की वैदार्थनारी पदेशों की करें॥ ३४॥

इषं रायइत्यस्य गांतम ऋषिः। जातवेदा देवता। निचृद्यृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब को पुरुष विवाह करके कैसे वर्से इन बि०॥

इषे रायं रंमस्व सहसे चुम्न ऊर्जे अपंत्या-य। सम्राडीसे स्वराडीसे सारस्वती त्वात्सी प्रावंताम्॥ ३५॥

पदार्थ:— हे पुरुष जो तू (सम्बाट्) विद्यादिश्वभगुकों से स्वयं प्रकाश्यामान (असि) है। हे खां जो तू (स्वराट्) अपने खाप विद्यान नत्या चार से शीक्षायमान (असि) है से तुम देगों ( रघे ) विद्यान (गये) धन (सहसे) बल (द्युम्ने) यश और असा (सर्जो) पराक्रम और (अपयाय) मन्तानों की प्राप्ति के लिये (रमस्व) परम करो तथा (सरसी) कूथी दक के समान के मलता की प्राप्त हे कर (भारस्वती) वेदवाजों के सपदेश में कुशल है। के तुम देगों खी पुरुष दम स्वधारि और असादि पदार्थों की (प्राथमाम्) रसा आदि करी यह (स्वा) सुन की सरदेश देतान हूं ॥ इप ॥

आषार्थ:—विवाह करके स्थी पुरुष देगों आपस में प्रीति के दाध विद्वाण दें। कर पुरुषार्थ से धनवान श्रेष्ठगुर्णें। से युक्त देशके एक दूसरे की रक्षा करते हुए धम्मांनुकूछता से वसे के सम्तानों की सम्प्रक कर इस सं-सार में निष्य कीड़ा करें।। ३५ ।।

> भारतेयुद्धरेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । ग्रारीनर्देषता । निष्ट्रगायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब शतुओं के। कैंदे जीतना चाहिये यह वि० ॥

#### अप्नै युक्ष्वाहि ये तवार्श्वासो देव माधवंः । अरं वहन्ति मुन्यवे ॥ ३६ ॥

पदार्थ:—है (देव) श्रेष्ठविद्या वाले ( अग्ने ) तेत्रस्वी विद्वाम् (ये ) को (तव ) आप के ( साधवः ) अभीष्ट साधने वाले (अश्वासः) शिक्षित घं है ( सम्यवे ) शश्रुमीं के स्तर क्रोध के लिये ( अरम् ) मामधर्व के साध ( वडिन्त ) रय आदि यामां के स्वर्ध के सिंग हैं सम की ( हि ) निश्चय कर के ( युद्द ) संयुक्त की लिये ॥ ३६ ॥

भाषार्थः -- राजादिमनुष्यों के। चाहिये कि वसन्त सनु में पहिले घो-हैं। के। शिकादे जीर रथियों को रघें। पर नियुक्त करके शत्रुओं के जीतने के लिये यात्रा करें ॥ ३६ ॥

युक्ताइत्यस्य विरूप मधिः। अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः। षञ्जः स्वरः॥

अब राजपुरुषे। की क्या करना चाहिये यह विव ॥

युक्ष्वा हिदे<u>वहूतंमाँ</u>२॥ श्रक्वाँ२॥ अग्ने र्-थीरिव । निहोतां पूर्व्यः संदः ॥ ३७॥

पदार्थ:-- है ( अमे ) बिहान् पुरुष ( पूर्वाः ) पूर्व विहाने से विता की प्राप्त ( होता ) दानशील आप ( देवहूतनान् ) बिहाने से स्पर्ही वा शिका किये ( अञ्चान् ) घोड़ेर को ( रथीरिव ) शबुओं के साथ बहुत रथा-दि सेना अंग्युक्त योहा के समान ( युद्द ) युक्त की किये ( हि ) निष्यय करके न्यायासन पर ( निषद: ) निरम्तर स्थित हु किये ॥ ३९ ॥

भावार्थ: -- सेनापति जादि राजपुत्रयों की याहिये कि बड़े सेना के अंगयुक्त रथ वाले के सनान घोड़े मादि सेना के अवधवें की कार्यों में संयुक्त करें। और समापति आदि की पाहिये कि न्यायासन पर बैठ कर धर्मयुक्त न्याय किया करें। ३९॥

> सम्यक्स्रवन्तीत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्ठुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यों की कैते होके वाणी चारण करनी चाहिये यह वि० ॥

मम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेनां अन्तर्दुदा मनंसा पूयमांनाः । घृतस्य धारां अभिचांक-शीमि हिरण्यंयो वेतसो मध्यं अग्नेः ॥ ३८॥

पदार्थः — हे मनुष्यो जैमे ( अग्नेः ) विजुली के ( मध्ये ) बीच में वर्तः मान ( हिरवयपः ) तेजीक्षाग के समाम तेजस्वी की ति चहने और विद्याः की इच्छा रखने वाला में जो ( घृतस्य ) जल की ( वेतसः ) वेगवाली (धान्यः) मवाइक्र्य ( सरितः ), मदियों के ( न ) ममान ( अन्तः ) भीतर (हुरा) अग्नतःकरण के ( मनसा ) विद्यानकः वाले चित्त मे ( पूपमानाः ) पवित्र लई ( चेनाः ) वाणी ( मम्यक ) अच्छे प्रकार (स्त्रपन्ति) चलती हैं उन की अभिचाकशीनि ) सम्मुख होकर सब के लिये शीच्र प्रकाशित करता हूं वैचे शुम लोग भी दम वाणियों की प्राप्त होओ ॥ ३८ ॥

भावार्थ:-इस संत्र में उपमाल:-मनुष्यों को योग्य है कि जैसे अधिक श कम चलती गुद्ध हुई निदयां ममुद्र की प्राप्त हो कर स्थिर होती हैं वैसेही शबद्या शिक्षा और धर्म से पवित्र हुई निञ्चल वाणी की प्राप्त है।कर काओं की प्राप्त कर वें ॥ ६८ ॥ ऋचे त्वेत्यस्यविक्षपश्चविः। अग्निर्द्वता । निचृद्वृहतीः छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

विद्वार्गी से अन्य मनुष्यें। की भी भ्राम सेना चाहिये दन वि० ।।

ऋचे त्वां कृचेत्वां मासे त्वा ज्योतिषे त्वा। अमूद्धिं विश्वंस्य भुवंनस्य वाजिनमग्ने वैंश्वा-नुरस्यं च॥ ३९॥

पदार्थ: — है बिद्वाम् पुरुष जिस तुक्त को ( विश्वस्य ) मनश्त (सुक्षमरण) संसार के सक पदार्थों ( च ) और ( विश्वस्य ) संपूर्ण मनुष्यों में शी-भागमान ( अंग्ने: ) बिजुली कर ( वालिनम् ) क्वामी लेगों का अन्यव क्रप ( इदम् ) यह विक्वान ( अभूत ) प्रमिद्व हुआ है उन ( क्वाचे ) स्तुति के लिये ( स्वा ) तुक्त को ( रूचे ) प्रीति के वास्ते ( स्वा ) तुक्त को ( क्वा ) तुक्त को शामि के अर्थ ( स्वा ) तुक्त को और ( क्योरितिये ) न्याय के प्र-काश के लिये भी ( स्वा ) तुक्त को भीर ( क्योरितिये ) न्याय के प्र-काश के लिये भी ( स्वा ) तुक्त को स्वा लाग्नय काते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थ:-जिस मनुष्य की सगत के प्राथी का यथार्थ वेष्य हावे उसी के सेवन से मस मनुष्य प्रदार्थ। बद्धा की प्राप्त हार्वे॥ ३९ !!

अग्निज्योतिषेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निदेवता ।

निचृद्धिणक्क्रन्दः। ऋषभः स्वरः॥ फित्सी ७७ विषय का उपदेश क्ष्मछे नम्म में किया है॥

अग्निज्योतिषा ज्योतिष्मान् कुक्मो वर्षमा वर्षम्वान् । महस्रदा ग्रांसि महस्रांय त्वा॥ ४०॥

पदार्थ:— हे विद्वान् प्रस्थ के। आप ( ज्यातिया ) विद्या के प्रकाश से ( अनितः ) अनित के तुस्य ( ज्यातिष्मान् ) श्रांतित प्रकाश युक्त (वर्षमा) अपने तेश से ( वर्षसान् ) श्रांन देने वाले और ( रूपन ) की द्वार्ष श्रुस देवे वैसे असंस्य श्रुस के देने वाले ( अनि ) है चन ( त्या ) आप का (स स्त्राय ) अतुल विश्वान की प्राप्ति के लिये इन लेग सत्कार करें ॥ ४०॥

भाषार्थः — इत मन्त्र में वाचकलु० — मनुष्टी की घेत्व है कि जी अनित और सूर्य के समान विद्या से प्रकाशनान विद्वान् पुरुष है। उन से विद्या पढ़ के पूर्ण विद्या के ग्राहक है।वें || ४० ||

> भार्तित्वं गर्मिनत्वस्य विरूप ऋषिः। स्रिग्निर्देवता । त्रिष्टुप् ह्यन्दः। धैवतः स्वरः॥

किर के बिहुन्त्र को पुरुष क्या करें इस वि । ॥

आदित्यं गर्मे पयंमा समङ्धि सहसूर्य प्र-तिमां विश्वसंपम् । परिवृङ्धि हरंसामा भिम-थस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ ४१ ॥

पदार्थ:— हे विद्वान पुरुष भाष की बिजुली (प्रथमा) जल से (महक्रास्य) असंस्थ पदार्थों की (प्रतिमाम) परिमाण करने हारे सूर्य के ममान
विश्वय करने हारी बुद्धि और (विश्वक्रपम्) सब क्रप विषय की दिसाने
हारे (गर्भम्) स्तुनि के ये या (आदित्यम्) सुर्य्य की घारण करती है
वैमे अस्तःकरण की (ममङ्खि) अच्छे प्रकार शेर्ष्यि (हरसा) प्रक्ष्यलित
नेज से रोगों को (परि) सब और मे (हर्ष्य) हराइये और (घीयणामः) वृद्धि को प्राप्त होके (शतापुषम्) मी वर्ष की अवस्था बाडे सस्तान
को (स्शुडि) क्षीतिये और कर्मा (मा) मत (अभिगंद्धाः) अभिमान
की विश्व ॥ ४१ ।

आवार्थ:- है न्त्री पुरुषो तुम लोग सुगन्धिन पदार्थों के होन से सूर्यं के प्रकाश कल और वायु को शुद्ध कर और रोग रिवत है। कर सीवर्षं जाने वाले सन्तानों के। उत्पन्न करो जैसे विद्युत् अन्ति से बनाए हुए सूर्यं से क्रव वाले पदार्थों का दशन और पिरेनाण होता है वैसे विद्या वाले सन्तान सस दिसाने हारे है। ते हैं इनसे कभी अभिमानी होने विषयास कि से विद्या और आयु का विनाश सन किया करें। । ४१ ।।

बातस्यज्तिभित्यस्य विरूप क्रविः। स्राग्निर्देवता । निवृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः॥ भिर विद्वाम पुरुष के। क्या करना वास्य वह कि।।
वातस्यं जूर्ति वर्तणस्य नामिमद्वं जज्ञानथः
संशिरस्य मध्ये । शिशुं नदीनाथः हशिमद्रिबुधन-

मग्नं, माहिष्ठमीः पर्मे व्योमन् ॥ ४२ ॥

पदार्थः — हे ( जन्ने ) तेत्र स्वन् विद्वान् आप ( परमेठवीनन् ) मर्थ ध्याप्त उत्तम आकाश में ( वातस्य ) वायु के ( मध्ये ) मध्य में ( जूनिम् ) वेगस्य ( अध्वम् ) अध्व के ( प्रश्तिस्य ) जलमय ( वरुणस्य ) उत्तम मसुद्र के ( नात्तिम् ) बन्धन के। और ( नदीनाम् ) नदियों के प्रभावने ( जज्ञानम् ) प्रचट हुए ( शिशुन् ) बालक के तुल्य वर्णमान ( हृष्म् ) भीलवर्णयुक्त ( अद्बुध्नम् ) सूक्ष्म मेघ के। ( मा ) मत ( ह्रिनीः ) नष्ट की विये ॥ ४२।

भावार्थः - इम मन्त्र में शायकलुक्-मनुष्यों की चाहिये कि प्रमाद की द्वाइ के आकाश में वर्त्तमार याणु के वेग और वर्षा के प्रवन्ध स्त्र मेच का विमाश न करके अपनी २ अवस्था की बढ़ार्वे । ४२ ॥

> अजस्रिमित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता । निचृत्तित्रष्टुप् छन्दः। धेवतः स्वरः॥ किर वह विद्वान् क्या करे यह भगन्॥

त्रुजंस्निमन्दुंमरूपं भुंरूण्युम्गिनमीं दे पूर्विनि-तिं नमोभिः । सपर्वीभिऋतुशः कल्पमानो गां

#### माहिळसीरदिति विराजंम । ४३॥

पदार्थ:— हे विद्वान् पुरुष तीये में (पर्वक्ति:) पूर्व साथन युक्त (म मोति:) अवों के साथ बत्तनाम (इन्दुन्) अलक्तप (अरुषम्) पाई के सदूध (भुग्यपुन्) पोषण करने वाली (पूर्वितिम्) प्रथम निर्नित (अ-ग्रिस्) बिजुली को (अजकाम्) निरन्तर (इंडे) अधिकता से खोजता हूं एस को (आतुध:) प्रति ऋतु में (बश्यनाम:) समर्थ हो के करता हुआ ( अदितिम् ) अखिष्ठत ( विराजम् ) विविध प्रकार के पदार्थी से शोभा-यमान ( गाम् ) पृथिवी को नष्ट नहीं करता हूं वैसे ही (मः) भी आप इस अग्नि और इस पृथिवी को ( मा ) मत ( हिसीः ) नष्ट की जिये || ४३ |।

भावार्धः -- मनुष्यों को योग्य है कि ऋतुभों के अनुकूछ किया से अ ग्लिक्स और अल्लका सेवन कर के राज्य और पृथिवां की सदैव रक्षा करें जिस से सब सुख बाम होवें।। ४३।।

बरूत्रीमित्रस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता । निचृत्तिष्रष्टुप् क्रन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उम विद्वान् की क्या नहीं करना चाहिये यह वि०॥

वर्ह्यं त्वष्टुर्वरंगास्य नामिमवि जजानाथ रर्जाः परंस्मात् । महीथ सहिस्रीमसुरस्य मा-यामग्ते माहिथमी पर्मे व्योमन् ॥ ४४॥

पद्। थं:-हे ( अग्ने ) विद्वान् पुरुष भाष ( स्वब्दुः ) खेदम कर्सा सूर्यं के ( कर्म्योम् ) ग्रहण करने योग्य ( वरुणस्य ) ग्रष्ठ की ( नामिम् ) रोकने हारी ( परस्मात् ) श्रेष्ठ ( रजमा ) लोक से ( जन्नानाम् ) स्टब्स हुई ( अ-स्टिय ) मेच की ( मायाम् ) जन्मने वाली बिजुली को और ( साइस्तीम् ) असंख्य भूगोलयुक्त बहुत फल देने हारी (अविम्) रक्षा आदि का निनिष्त ( परमे ) मब से समान ( व्योमम् ) आकाश के समान व्याप्त जगदीसा में वर्त्तमान ( महीम् ) विस्तारयुक्त पृथिधी का ( मा ) नत ( हिंसीः ) नष्ट की जिये॥ ४४॥

आवार्थ: सब मनुष्यों की चाहिये कि की यह पृथिवी उत्तम का-रण से उत्त्यक हुई सूर्यों जिम का आकर्षण क्ली जल का आधार मेचका किसित्त असंस्थ सुख देने द्वारी परमेश्वर ने रची है उस की गुण कर्म भीर स्वभाव से जान के शुख के लिये उपयुक्त करें। १४ ।।

यो स्निरित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देषता । त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर इस विद्वान की क्या करना चाहिये यह विश्वा

## यो अग्निर्ग्ने रध्यजायत शोकांत्प्रथिव्या उत वो दिवस्परिं। येने प्रजा विश्वकंमां जजान तमंग्ने हेद्धः परिते दणक्तु ॥ ४५॥

पदार्थ:—ह (अग्ने) विद्वान् जन (यः) जो पृथिठयाः) पृथिवी के (श्रोकात् ) शुकाने हारे अध्य (उत्तवा) अथवा (दिवः) सूर्य से (अग्नेः) विज्ञुली कव अध्य से (अग्नेः) प्रत्यक्ष अग्नि (अध्यज्ञायत) उत्पन्न होता है (येन) जिस से (विश्वकर्मा) सब कर्मों का आधार हेश्वर (प्रजाः) प्रजाओं को (परि) सब ओर से (जजान) रचता है (तम्) उस अग्नि को (ते) तेरा (हेडः) क्रोध (परिवृणक्षु) सब प्रकार से छेदन करे।। ४५।।

भावार्ध:— हे विद्वानी तुम लीग जो श्रश्चियी की फोड़ के और जो सूर्य के प्रकाश से बिजुली निकलती है उस विष्टनकारी अग्नि से सब प्रा-णियों को रक्षित रक्को और जिस अग्नि से हेश्बर सब की रक्षा करता है उस अग्नि की विद्या की जानी ॥ ४५ ॥

चित्रं देवानामित्यस्य विरूप ऋषिः। स्र्यों देवता। निचृत्त्रिष्टुप्

छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब ईप्रवर कैसा है यह वि० ।।

चित्रं देवानामुदंगादनीकं चक्षीर्मेत्रस्य वर्रः गास्याग्नेः । आ प्रा द्यावां प्रथिवी अन्तरिक्षः मूर्यं आत्मा जगंतस्त्रस्थुषंश्च ॥ ४६ ॥

पदार्थ:-हे मनुष्या आप छान जा जनदीश्वर ( देवानाम् ) प्रथिबी आदि दिड्य पदार्थों के बीच ( चित्रम् ) आश्वर्य रूप ( अनीकम् ) रेना के समान किंग्बों में युक्त ( मित्रस्य ) प्राण ( बसणस्य ) उदान और (अग्नीः) प्राणिष्ठ अग्नि कें ( चल्लाः ) दिखानेवालें ( सूर्व्यः ) सूर्व्यं कें समान (उदगात्) उद्य के। प्राप्त है। रहा है उस के ममान ( जगतः ) चेनन ( च ) और ( न स्थुषः ) जह जगत् का (आत्मा) अन्तर्थकी है। के (द्यावाप्थिवी) प्रकाश अप्रकाश रूप जगत् और ( अन्तरिक्षम् ) आकाश कें। ( आ ) अच्छे प्रकार (अप्राः) उदाप्त है। रहा है उसी जगत् के रचने पालन काने और संझार-प्रलय करने हारे उपापक ब्रह्म की निरन्तर उपासना किया करें। ॥ १६॥

भाषार्थ: — इन मंत्र में वासकलुश - यह भूगत ऐमा नहीं कि जिस का कलां अधिष्ठाता का देश्वर की दें न हो वे जी। देंश्वर मब का अन्तरयों मी सब जीवों के पाप पुगर्यों के फलें को उपवस्था करने हारा और अनन्त ज्ञान का प्रकाश करने हारा है उसी की उपासना से धर्म अधं काम और मेश्व के फलें की सब मनुष्य प्राप्त है। वें ॥ १६॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवताः विराड ब्राह्मी पङ्क्तिइछन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

किर समुद्धी का क्या करना चाहिये यह विवा

हमं माहिश्वसी हिंपादं पशुश्व महस्राक्षा मधा-य चीयमानः।(मुयुं पशुं मधमग्ने जुपस्व)तेनं चिन्वानस्तन्त्रो निपीद । मुयुं ते शुरु च्छतु यं हिष्मस्तं ते शुगृंच्छतु ॥ ४७॥

पदार्थ:— है (अग्ने) मनुष्य के जन्म की प्राप्त हुए ( मेथाव ) सुख की प्राप्ति के लिये ( श्रीयमान: ) बढ़े हुए ( महस्त्राक्त: ) हजारह प्रकारकी दृष्टि वाले राजन् तू ( इमम् ) इस ( द्विपादम् ) दो पग वाले मनुष्यादि और ( मेथम् ) पवित्रकारक फलबद ( मयुम् ) जंगली ( पशुम् ) गवादि प-गु जीव की ( मा ) मत ( हिंसी: ) नारा कर उस ( पशुम् ) पशुक्री ( जुध- स्व ) मेबा कर (तेन ) उन पशु है ( विन्वानः ) बढ़ता हुआ तू ( तन्वः ) आहरीर में ( निवीद ) निरन्तर स्थिर है। यह (ते ) तेरे ने ( शुक् ) शोक ( मयुम् ) शस्पादिनाशक जंगली पशु की ( ऋच्छतु ) माप्त होवे (ते ) (तेरे ( यम् ) जिन शत्रु से हम लोग ( द्विष्मः ) द्वेष करें ( तम् ) उत की (शुक्) शोक ( ऋच्छतु ) माप्त होवे ॥ ४९ ॥ )

भाषाधी:—कोई भी मनुष्य मब के उपकार करने हारे पशुओं की क-भी न नारे किन्तु इन की अच्छे प्रकार रक्षा कर और इन से उपकार ले के मझ मनुष्यों को आमन्द देंथे(जिन जंगली पशुओं से ग्राम के पशु से नी और मनुष्यों की हानि है। उन की राजपुक्ष मारें और बंधन करें)। ४९॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः। आग्निर्देवता । निचृद्ब्राह्मी पङ्किरछन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह मनुष्य क्दा करें यह वि०॥

इमं मा हिंछम्।रेकंशफं पशुं कंनिक्कदं वाजि-नं वाजिनेषु । गुर्मागण्यमनुं ते दिशामि तेनं चिन्वानस्तन्द्रो निषीद । गौरं ते शुग्रंच्छनु यं हिष्मस्तं ते शुग्रंच्छतु ॥ ४८॥

पदार्थ:—हे राजम् तू (वाजिनेषु) मंग्राम के कानों में (क्षमम्) इन (एकशकम्) एक सुरयुक्त (किनिक्त रुष्) शीघ्र तिकल दृष्णा को प्राप्त हुए (वाजिनम्) वेगवाले (पशुम्) देखने येग्य पे हे आदि पशु को (मा) (हिंदी: ; मत सार में ईश्वर (ते) तेरे लिये (यम्) जिस् (आरायपम्) सङ्गली (गीरम्) गीरपशु को (दिज्ञामि) शिक्षा करता हूं (तेन) दस के रक्षण से (विन्वामः) वृद्धि को प्राप्त हुमा (तन्वः) शरीर में (निर्धाद) किरन्तर स्थर हो (ते) तेरे में (गीरम्) प्रवेत वर्ण वाले पशु के प्रति

( शुक्) शोक ( ऋष्छतु ) माप्त होवे और ( यम् ) जिस शत्रु के। इन छोत ( द्विष्म: ) द्वेष करें ( तम् ) उस के। ( ते ) तुक्त से ( शुक् । शेक (ऋष्छतु) माप्त होवे ॥ ४८॥

भावार्थः — मनुष्यों की उचित है कि एक खुर वाले चे। है आदि पशु ओं और उपकारक बन के पशुभों की भी कभी म नारें जिन के मारने से जगत की हानि और न मारने से मब का उपकार होता है उन का सदैव पालन पे। षण करें (और जी हानिकारक पशु है। उन की नारें)। ४८॥

इमर्थं साहस्रामित्यस्य विस्प ऋषिः । स्राग्नदेवता ।

कृतिइछन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर ममुख्यों की कीन पशुन मारने और कीन मारने चाहिये या ॥

इमक साहस्रक शतधारमृतमं वयच्यमांनक सरिरस्य मध्यं। धृतं दृहांनामदितिं जनायाग्ने मा हिंक्षमीः पर्मे व्यामन्। गुव्यमांरण्यमनुं ते दिशामि तेनं चिन्वानस्तुन्द्वो निपीद। गुव-यन्ते शुर्यंच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुर्यंच्छतु ॥४९॥

पदार्थ:-हे (अन्ने) द्या की प्राप्त हुए परे।पकारक राजन् तू (जनाय) मनुष्यादिप्राणी के लिये (इमम्) इस (माहस्त्रम्)असंक्य सुखें। का साधन (श-तधारम्) असंक्य दूध की धाराओं के निनित्त (ठयक्रयमानम्) अनेक प्रकार से पालनके योग्य ( तत्मम् ) कुए के समाम नक्षा करने हारे बीर्य्य से कही कीर ( घृतम् ) घी को ( दुइ नाम् ) पूर्ण करती हुई ( भदितिम् ) नहीं किर्मियोग्य गी के। ( माहिंसीः ) सत मार और ( ते ) तेरे राज्य में जिस (आरएयम्) सन में रहने वाले ( गवयम् ) गी के समान नीलगाय से खेती की हानि होती हो तो उस के। (अनुद्शाम ) उपदेश करता हूं ( तेन )

उस के मारने से सुरक्षित अक से ( परमे ) उत्कष्ट ( ट्योनन् ) सर्वत्र ट्यापक परमात्मा और ( सरिरस्य ) विस्तृत ट्यापक आकाश के ( मध्ये ) मध्य में ( चिन्वानः ) सृद्धि को प्राप्त हुना तू ( तन्वः ) शरीर मध्य में ( निवीद ) निवान कर ( ते तरा ( शुक् ) शोक ( तम् ) उस ( गवयम् ) रोक्त को ( ऋच्छतु ) प्राप्त होवे और ( यम् ) जिस ( ते ) तेरे शत्रु का ( द्विष्मः ) इन छोग द्वेष करें उस की भी ( शुक् । शेष्क ( ऋच्छतु ) प्राप्त होवे ॥४९॥

भावार्थः- इन मंत्र में वाश्कलु०-हेराजपुरुषं तुम लेग्नें की चाहिये कि जिन बैल मादि एशुओं के प्रभाव से खेनी आदि काम जिनगी आदि से दूथ घी आदि उत्तम पदार्थ है।ते हैं कि जिन के दूथ आदि से सब प्रजा की रक्षा है।ती है उन की कभी मत मारी और जो जन इन उपकारक पशुओं को मारें (उन की राजादि न्यायाधीश अत्यन्त दशह देवें और जो जंगल में रहने , बालें जीलगाय आदि पता की हानि करें वे मारने यें।य हैं)। ४९ ।।

इममृणायुमित्यस्य विरूप ऋषिः। अगिनदैवता । कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर किन पशुओं के। न मारना और किन को मारना चाहिये यह। ॥

ड्रमग्रंणांयं वर्रणस्य नाभि त्वचं पशूनां हि-पदां चतुंष्पदाम्। त्वष्टुंः प्रजानां प्रथमं जिन्त्र-मग्ने मा हिंथसीः प्रमे व्योमन्। उष्ट्रमारण्य-मुनुं ते दिशामि तेनं चिन्वानस्तुन्तुं। निर्षाद् । उष्ट्रं ते शृग्रंच्छतु यं हिष्मस्तं ते शृग्रंच्छतु ॥ ५०॥ अत्रिक्षाणी- देने-अधिने हे -

पदार्थः — हे ( अन्ते ) विद्या की प्राप्त हुए राजन् तूं (बरुणस्य) प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ सुख के ( नाशिम् ) संयोग करने हारे ( इसम् ) इस ( द्विप दाम् ) दो पगवाले मनुष्य पक्षी आदि ( चतुष्पदाम् ) चार पगवाले ( पशुः माम् ) गाय आदि पशुओं की ( त्यचम् ) चमड़े से ढांकने वाले और (त्य- घटुः ) शुल प्रकाशक देखर की ( प्रजानाम् ) प्रजालों के ( प्रथमम् ) आदि ( जनित्रम् ) उत्पत्ति के निमित्त ( परमे ) उत्तम ( ठ्ये।मन् ) आकाश में वर्त्तमान ( जर्णायुम् ) मेड़ आदि की ( माहिंभीः ) मत मार ( ते ) तेरे लिये में देखर ( यम् ) जिस (आरग्पम्) बनेले ( उष्ट्रम् ) हिंमक जंट की ( अनुदिशामि ) बतलाता हं ( तेन ) उस से शुरक्षित अम्नादि से (चिन्वानः) बढ़ना हुआ (तन्वः) शरीर में (नियीद) निवास कर। (ते) तेरा (शुक्) शे।क उस जंगली जंट की ( ऋष्यतु ) प्राप्त हो और जिम द्वेषी जन से इम लेग (हिन्दानः ) अप्रीति करें ( तम् ) उस की ( ते ) तेरा ( शुक् ) शे।क ( ऋष्यतु ) प्राप्त होते ॥ ५० ॥

भावार्थः — हे राजन् जिन भेड़ आदि के रोम और स्वका ममुख्यें के सुख के लिये हैं। ती है और जो ऊंट भार खटाते हुए मनुख्यें की सुख देते हैं उन की जी दुष्ट जन मारा चाहें उन की मंमार के दु: खदायी सम में। और उन की अब्दे प्रकार दग्रह देना चाहिये॥

अज इत्यस्य विरूप ऋषिः । अभिनर्देवता । भुरिक्कृइछन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यें। के। कीन में पशुन मारने <u>भौर कीन में मारने</u> चाहिये यह वि०॥

ञ्जो ह्यग्नेरजंनिष्ट शोकात्मो अंपरयज्ञानि-तार्मग्रे । तेनं देवादेवतामग्रंमायँस्तेन रोहंमा-यन्तुपमध्यांसः । शर्भमार्ण्यमतं ते दिशामि तेनं चिन्वानस्तन्त्रो निषीद । शर्भं ते शृग्रं-च्छतु यं द्विष्मस्तं ते शृग्रंच्छतु ॥ ५१ ॥ पदार्थः — हे राजन् मूं जी (हि) निश्चिन (अजः) बकरा (अजःनिष्ट) उत्पक्ष होता है (मः) वह (अग्रे) प्रथम (जिततारम्) उत्पादक की (अपश्चत् ) देखता है जिन में (मेध्यामः) पित्र हुए (देखाः) विद्वान् (अग्रम्) उत्पम शुख और (देवताम्) दिश्यगुणों के (उपायन्) उपाय की प्राप्त होते हैं और जिम से (राहम्) वृद्धियुक्त प्रमिद्धि की (आग्यम्) प्राप्त होवें (तेन) उन से उत्तम गुणां उत्तम शुख तथा (तेन) उस से वृद्धि की प्राप्त होने (आग्यम्) बनेली (शामम्) शेही (ते) तेरी प्रजा की हानि देने वाली है उम की (अनुदिशामि) बतलाता हूं (तेन) अम से बचाए हुए पदार्थ में (चिन्यानः) बढ़ता हुमा (तन्यः) शरीर में (निचीद) निवास कर और (तम्) उम (शरमम्) शल्यकी की (ते) तेरा (शुक् ) शोक ( ऋष्ठतु ) प्राप्त हो और (ते ) तेरे (यम्) जिम श्रम् से सम सेगा (द्विष्टमः) द्वेष करें उम की (श्वाम्त) शोककृष्य (कर्मः) अति से (शुक् ) शोक अर्थात् शोक से बढ़ कर शेक अत्यन्तशोक ( आग्रम से स्रम्त से (शुक् ) शोक अर्थात् शोक से बढ़ कर शेक अत्यन्तशोक ( आग्रम कर्मा) प्राप्त हो से ।

आवार्थः — मनुष्यों की उचित है कि बकरे और नेर आदि श्रेष्ठ पशु पिक्षणें की न मारें और इन की रक्षा करके उपकार के लिए सपुक्त करें और जी अच्छे पशुक्तों और पिक्षयों के मान्ने वाले हों। उन की शीघ्र ता-इना देवें हां (जी खेनी की उगाड़ने हारे प्रयाहों आदि पशु हैं उन की प्रशा की रक्षा के लिये मारें)। ५१।।

> त्वं यविष्ठेत्यस्योशना ऋषिः । आंग्नर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कर केने पश्चमंद की रक्षा करना <u>और इनना पाहिये यह कि ॥</u>
त्वं यंविष्ठ द्राशु<u>षों</u> नृन् पाहि शृणुधी गिरंः।
रत्तां तोकमुत तमनां॥ ५२॥

पदार्थः — हे ( यविष्ठ ) अत्यन्त युवा ( त्वम् ) तू रक्षा किये हुए इ-न पशुनेतं से ( दाशुवः ) सुखदाता ( नृन् ) धर्मरक्षक मनुष्यों की ( पाहि ) रक्षा कर इस (गिरः) मत्य वाणियों के। (शृक्षुणि) सुन और (श्यमा) अपने आत्मा से मनुष्य (सत्) और पशुओं के (तेकन्) बर्द्धी की (रक्षा) रक्षा कर ॥ ५२॥

भावार्थ:—को मनुष्य मनुष्यादि प्राणियों के रक्षक पशुक्षी की बढ़ाते हैं भीर कप्रामय उपदेशों की सुनते सुनाते हैं वे आन्तर्य सुख की प्राप्त है। ते हैं ॥ ५२ ॥

अपां त्वेमित्तित्यस्योद्याना ऋषिः। अश्यो देवताः। पूर्वस्य ब्राह्मी पङ्क्तिइछन्दः । पञ्चमः स्वरः । सरिरंत्वेति मध्यस्य ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। गायन्नेषो त्युत्तरस्य निचृद् ब्राह्मी पङ्क्तिइद्धन्दः॥

पश्रमः स्वरः ॥

अयां त्वेमंन्त्सादयाम्य्यां त्वोद्यंन्सादयाम्य-पान्त्वा भरमंन्सादयाम्य्यां त्वा ज्योतिषि सा-दयाम्य्यां त्वायंने सादयाम्यर्णवे त्वा सदेने साद-यामि समुद्रे त्वा सदंने सादयामि । सिर्रे त्वा सदंने सादयाम्य्यां त्वा त्त्ये सादयाम्य्यां त्वा सिर्धिष सादयाम्य्यां त्वा सदंने सादयाम्य्यां त्वा मध्यश्ये सादयाम्य्यां त्वा योनौ सादयाम्य्यां त्वा पुरीषे सादयाम्य्यां त्वा पार्थिस सादयामि गाय्त्रेगां त्वा छन्दंसा सादयामि त्रेष्टुंमेन त्वा

## छन्दंसा सादयामि जागंतेन त्वा छन्दंसा साद-याम्यानुष्टुमेन त्वा छन्दंसा सादयामि पाइक्तें-न त्वा छान्दंसा सादयामि ॥ ५३॥

पदार्थ:- हे मनुष्य जैने शिक्षा करने दाला में (अयाम्) गाणां की रक्षा के निनित्त ( एमन् ) गमनशील वायु में ( त्वा ) तुम को (माद्यामि) स्थापित करता हूं ( अवाम् ) कलीं की ( कोद्मत् ) भाद्रतायुक्त कोविधयीं में (त्या) तुम की (साद्यामि) स्वायन करता हूं (अयास्) प्राप्त हुए का-ष्ठों की ( भरमन् ) राख में ( त्या ) तुभः की ( सन्दयामि ) संयुक्त करता हूं (अवाम्) व्याप्त हुए बिजुली आदि अग्नि के (ज्योतियों) प्रकाश में (त्वा) तुक्त को (साद्यानि) नियुक्त करता हूं (अधाम्) अवकाश वा-है (अयने ) स्थान में (त्था ) मुक्त की ( साद्यानि ) बैठाता हूं (मद्ने) स्थिति के योग्य (अर्ण वं ) प्राणिबद्धा में (त्वा.) त्म की (सादयामि ) मंयुक्त करता हूं ( नदने ) गपनभील ( मसुद्रे ) मन के विषय में ( त्या ) तुफ की ( सादयानि ) सम्बद्ध करता हूं ( सद्ते ) प्राप्त है ने योग्य (स्रिरे) काणी के त्रिषय में (त्त्रा) तुका की (शाइयानि) संयुक्त करता हूं (अपाम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के मस्बन्धी (सारे) घर में (त्वा) तुक्त को (शाद-यामि ) स्याधित करता हूं (अधाम् ) अनेक प्रकार की उपाप्त शब्दों की संब-न्धी ( सिंधिषे ) उस पदार्थ में कि जिस में अने क शब्दों की समान यह जीव सुनना है अर्थात् कान के विषय में (त्या) तुमा को (सादयानि) स्थित करता हूं ( अपाम् ) जलों के ( सदने ) अन्ति (शक्त प स्थान में ( त्वा ) तुक्त को ( माद्यामि ) स्थावित करता हूं ( अपाम् ) जलों के ( सधस्थे ) तुल्य स्थान में (त्या) तुभाको (साद्यानि) स्थापित करता हूं (अपाम्) जलीं के (योनी) समुद्र में (त्वा) तुफा की (साद्यानि) नियुक्त काला हूं / (अवान्) जलों की (पुरीपे) रेती में त्वा तुमा को (साद्यानि) नियुक्त करता हूं (अन्याम्) जलों के (पायसि) अन्त्र में (स्वा) तुक्त को (साइ-

थानि ) प्रेरणा करता हूं (गायश्रेण ) गायश्री छन्द से निकले ( छन्द्सा ) स्वतन्त्र अर्थ के साथ ( त्वा ) तुम्त को ( साद्यानि ) नियुक्त करता हूं ( श्रे च्हुभेन ) त्रिष्टुण् मन्त्र से विहित ( छन्द्सा ) शुद्ध अर्थ के साथ ( त्वा ) तुम्त को ( साद्यामि ) नियुक्त करता हूं ( जागतेत ) जगती छन्द में कहे ( छन्द्सा ) आनन्द्रायक अर्थ के साथ ( त्वा ) तुम्त को ( साद्यामि ) नियुक्त करता हूं ( आनुष्टुभेन ) अनुष्टुण् मन्त्र में कहे ( छन्द्सा ) शुद्ध अर्थ के नाथ ( त्वा ) तुम्त को ( साद्यामि ) प्रेरणा करता हूं । और ( पाइक्तेन ) पङ्क्ति अंत्र से प्रकाशित हुए ( छन्द्मा ) निर्मल अर्थ के साथ ( त्वा ) तुम्त को ( साद्यामि ) प्रेरित करता हूं वैसे ही तू वर्त्तमान रह ॥ ५३ ॥

भावाधी:— विद्वानों की चाहिये कि सब पुरुषों की और मध सियों की बेद एड़ा और जगत के बायु आदि पदार्थों की विद्या में निपुण करके सन की उन पदार्थों ने स्योशान माधने में प्रवृत्त करें || ५३ ||

अयं पुर इत्यस्योदाना ऋषिः। प्राणा देवताः। स्वराङ् बार्ह्याः जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

**अब** मनुष्यों के। सृष्टि से कै। न २ उपकार छेने चाहिये यह दि० ॥

अयं पुरो मुव्हतस्यं प्रागो मौवायनो वंस-नतः प्राणायना गांयत्रा वासन्ती गांयत्र्यं गांयत्रं गांयत्रादुंपाधशुरुंपाधशोष्त्रिवृत् त्रिवृतों रथन्त्रं वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापंतिग्रहीतया त्वयां प्राणं गृहामि प्रजाम्यः ॥ ४४॥

पदार्थः — हे खि जैने (अयम्) यह (पुरी भुवः) प्रथम है ने वाला अनि है (तम्य) उम था (भीवायनः) सिंहु कारण से रचा हुआ (प्राचाः) जीवन का हेतु प्राण (प्राणायनः) प्राणीं की रचना का हेतु (वनन्तः) सुर्शन्थ आदि में वसाने हारा वसन्त ऋतु (वामन्ती) वनन्त ऋतु का जिस में व्याख्यान है। वह (गायत्री) गाते हुए का रक्षक गायत्री मंत्रार्थ है रवर (गायत्रये) गायत्री मंत्र का (गायत्रम्) गायत्री छन्द (गायत्रात्) गायत्री में (त्रवांशः) सनीप से ग्रहण किया जाय (त्रवांशः) सम जप से (त्रिवृत्) कमें त्रपामना और ज्ञान के महित वर्त्तमान फल (त्रिवृतः) तंत्र तीन प्रकार के फल से (रचन्तरम्) रमणीय पदार्थों से सार्त हारा सु ख और (विनिष्टः) छातिशय करके निवाम का हेतु (ऋषिः) सुख प्राप्त कराने हारा विद्वान् (प्रजापतिगृहीनया) अपने मन्तानी के रक्षक पति की ग्रहण करने वाली (स्वणा) तेरे माच (प्रजास्यः) मन्तानी स्व कि लिये (प्राणम्) बलयुक्त जीवन का ग्रहण करते हैं वैने तेरे भाय में मन्तान होने के लिये बल का एक्का का गहण करता हूं ॥ प्रशास मन्तान होने के लिये बल का एक्का ग्रहण करता हूं ॥ प्रशास

भावार्थः — हे की पुरुषातुम्की याग्य है कि आंग्न आदि पदार्थें की स्वयंग में ला के परस्वर प्रीति के साथ अति विषयसेवा की छोड़ और सब संगर में बल का प्रदण करके मन्तानें की वत्यक करें। | पुरु।

अयं दक्षिणेत्यस्पादाना ऋषिः। प्रजापतिर्देशनाः।
निचुद्रस्मितिधृनिरुष्ठन्दः। प्रस्तः स्वरः।'
अव गनुर्थे। का ग्रीव्मऋतु में कैमे वर्षना वाद्यि यह वि०॥

अयं दंशिगा विश्वकंमां तस्य मनों वश्वकंमः गां ग्रीष्मो मानुमिख्दुब् ग्रेज्नो श्चिप्टुभः स्वार-म् । स्वारादंन्तर्थामां उन्तर्थामात्पं खद्शः पंश्व-दशादृहद् भ्रद्धां ऋषिः प्रजापंतिगृहीतया त्वया मनो गृहणामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥

पदार्थ: — हे कि जैसे (दक्षिणा) दक्षिण दिशा से (अयम्) यह (विश्वकर्मा) सब कर्मों का निमित्र कायु के समान विद्वान् चलना है (तस्य) नस वायु के थोग से (वैश्वकर्मणम्) जिस से मब कर्म निद्व है ते हैं वह (सन:) विचारस्वरूप प्रेरक मन (सनस:) मनकी गर्मी से उत्पक्त के तुरुप (प्रोडमः) रसीं का नाशक ग्रीडमऋतु (प्रेडमी) प्रीडम ऋतु के ड्यास्थान वाला (निष्टुप्) विष्टुप् छन्द (निष्टुभः) निष्टुप् छन्द के (स्वारम्) ताप से हुआ तेज (स्वारात्) और तेज से (भन्नपानः) मण्यान्ह के प्रहर में विशेष दिन और (भन्तपानत्) मण्यान्ह के विशेष दिन और (पञ्चद्शः) पन्द्रह तिथियां की पूर्क स्तुति के योग्य पूर्णमासी (पष्टचद्शात्) तस पूर्णमासी से (सहस्) बड़ा (भरद्वाजः) अस्त्र वा विश्वाम् की पृष्टि और धारण का निनित्त (श्रविः) शब्दलान प्राप्त कराने हारा कान (प्रजापतिश्वदीत्या) प्रजापालक पति गज ने प्रहण की विद्या से न्याय का पहण करता है वेते में (त्वया) तरे माय (प्रजाम्यः) प्रजा और के सिये (सनः) विश्वास्त्रस्व विश्वान्युक्त चित्त का प्रहण विश्वान का (ग्रहणानि) प्रहण का ना हूं । ५४॥

आवार्ध:— स्त्री पुर्तिको चाहिये कि प्राणका मन और मन का प्रशण नियम काने हाला है ऐवा जान के प्राणवाम ने आहमा की शुद्ध करते हुए पुरुषों ने मंपूर्ण सृष्टि के बदार्थी का विद्यान स्त्रीकार करें ॥ ५५॥

> अयं पश्चादित्यस्थोदाना प्राप्तः। प्रजापानिर्देवता । निपृद् भृतिस्छन्दः। पड्जः स्वरः॥ अब स्त्रीपुत्रप भाषत् में कैसा भाषरण करें यह ति०॥

अयं प्रश्नाद विश्ववयंचास्तस्य चक्षंवेंश्ववय-चसं वर्पाश्चांशुन्धो जगंती वार्षी जगंत्या ऋक्-संमम् । ऋक्संमाच्छुकः शुक्तात्संप्रदशः संप्रद-शार्देख्यं जमदंग्निक्रंपिः प्रजापंतिगृहीत्या त्वया चक्षंगृह्णामि प्रजाम्यः ॥ ५६ ॥ पदार्थ:—हे उत्तम मुख वाली की जैसे ( अयम् ) यह मृत्यं के समाम विद्वान् ( विश्वत्यचाः ) सब संनार का चारें। ओर के प्रकःश से त्यापक हेर-कर प्रकट करता ( पश्चात् ) पश्चिम दिशा में बत्तंमान ( तस्य ) जन सूर्यं का ( देश्वत्यचसम् ) प्रकाशक किरण क्ष्य ( चतुः ) नेत्र ( चासुष्यः ) नेत्र से देख-ने योग्य ( बर्षाः ) जिस समय मेप वर्षते हें वह वर्षात्रतु ( वार्षो ) वर्षात्रतु के त्याख्यान वाला । जाती ) संत्रार में प्रमिद्ध जगती छन्द ( जगत्याः ) जगती छन्द से ( ऋक्समम् ) ऋकाओं के मेत्रन का हेतु विज्ञान ( ऋक्समत् ) उम विज्ञान से ( शुक्रः ) पराक्रम ( शुक्रात ) पराक्रम से ( मप्तद्रशः ) सत्रह तत्वें। का पूरक विज्ञान ( मप्तद्रशःत ) उम विज्ञान से ( येक्सपम् ) अनेक क्रयों का हेतु जगत् का ज्ञान और जैने ( जमद्गिनः ) प्रकाशवरूव ( ऋषिः ) क्रव का प्राप्त कराने हारा नेत्र ( प्रजापतिगृहीतया ) मन्तानः सक्त पनि ने प्रहण की हुई विद्यापुक्त स्त्री के माथ ( प्रजाभ्यः ) प्रजाओं के लिये ( चहुः) विद्यास्त्री नेत्रों का प्रहण करना है वैसे में तेरे साथ ससार से बल का ( ग्रह्णािक ) प्रहण करता हूं ॥ ५६ ॥

भावार्थ: — स्त्री पुरुषे। की चाहिये कि माम वेद के पड़ने से सूर्व आदि प्रसिद्ध जगत् की स्वभाव से जान के सब सृष्टि के गुणे। के दृष्टाम्त से अच्छा देखें और चित्रि ग्रहण करें ॥ ५६॥

इद्युत्तर।दित्यस्यांशना ऋषिः प्रजापनिर्देवता । स्वराङ् ब्राह्मी (त्रष्टुप् छन्दः। घेत्रतः स्वरः ॥ अब शरद ऋतु में कैसे वर्ते यह वि०॥

इदम्चारत स्वस्तस्य श्रात्रेथमोवधश्राख्रीत्रयनुष्टुप् शांग्यनुष्टुभं ऐडमेडान् मन्थी मन्थिनं एकविधश एकविधशाद वैराजं विश्वामित्र ऋषिः प्रजापंतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं एह्यामि प्रजाभ्यः॥ ५७॥ पदार्थ: -- हे सै। सायवती जैसे ( द्रम् ) यह ( उत्तरात् ) सब से उत्तर माग में ( स्वः ) सुखें का माधन दिशा रूप है ( तस्य ) उत्त के ( सै। त्रम् ) सुख का साधन ( त्रोत्रम् ) कान ( त्रीत्री ) कान की मम्बन्धी ( शरत् ) शादृतु ( शारदी ) शादृ ऋतु के उपास्पान वाला ( अनुष्टुप् ) मबद्ध अर्थ वाला अनु दुष्टुन्द् ( अनुष्टुमः ) उप से ( ऐडम् ) वाणी के उपास्पान से युक्त मन्त्र ( ऐडात् ) उन मन्त्र से ( सन्धो ) पदार्थों के मधने का साधन ( मन्धिनः ) उन साधन से ( एकिश्राः ) इक्कीन विद्याभों का पूर्ण करने हारा निद्धान्त ( एकिश्रात् ) उन निद्धान्त से ( वैरात्रम् ) विविध पदार्थों के प्रकाशक ( साम ) सामवेद के ज्ञान की प्राप्त हुमा ( विश्वानित्रः ) सब से नित्रता का हेतु ( ऋषिः ) शब्द ज्ञान काने हारा कान और (प्रजास्पः) उत्तव हुई श्रिजुन्ते भादि के लिपे ( त्रोत्रम् ) सुनने के नाधन को प्रहण करते हैं वैसे ( प्रजापतिगृहीत्या ) प्रजापान्तक पनि ने ग्रहण की ( न्यपा ) तेरे साथ में प्रनिद्ध हुई श्रिजुनी आदि से ( त्रोत्रम् । सुनने के नाधन कानकी ( ग्रह्णा की ) ग्रहण करता हूं । ५५।।

भावार्थ: — की पुरुषों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य के माथ विद्या पढ़ भीर विवाह करके बहुत्रुत होवें। और मत्यवक्ता आस्तानों से सुने विना पढ़ी हुई भी विद्या फलदायक नहीं होती इनलिये मदैव मज्जनों का उपदेश सुन के सत्य का धारण और निष्या को छे। इ देवें। 1911

> इयमुपरीत्यस्योदाना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । विराडाकृतिरज्ञन्दः पश्चमः स्वरः । अब देवनत ऋतु में किस प्रकार वर्ते यह विरु॥

इयमुपरि मृतिस्तस्य वाङ्मात्या हेम्नाो वा-च्यः पुङ्क्तिहैम्नती पुङ्क्त्य निधनंवन्निधनं-वत आग्रयुगाः। आग्रयुगात्त्रिणवत्रयस्त्रिधशौ

# त्रिणवत्रयस्त्रिधशाभ्यां शाकररेवते विश्व-कंमां ऋषिः प्रजापंतिगृहीतया त्वया वाचै गृह्णा-मि प्रजाभ्यः ॥ ५८॥ यहां तित्रवंकात्र क्षां तिनेन्य

पदार्थ:— है विद्वान् को जो (हणम्) यह (तपरि) सब से जायर विराजमान (मितः) बुद्धि है (तस्यै) तम (मत्या) बुद्धि का होना वा कर्म (बाक्) वाणी और (वाक्यः) तम का होना वा कर्म (हैमन्तः) गर्मी का नाशक हेमन्तन्नतु (हैमन्ती) हैमन्त ऋतु के व्याख्यान वाला (पङ्क्तः) पङ्क्ति कृन्द (पङ्क्त्यै) तम पङ्क्ति छन्द का (निधमवतः) सृत्यु का प्रशंमित व्याख्यान वाला सामवेद का भाग (निधमवतः) तम से (आग्रवणः) प्राप्ति का माधन ज्ञान का फल (आग्रवणःत्) तम से जिल्ला का मामवेद के स्तीत्र (त्रिणवन्नविरःशाम्याम्) तम स्तान्ते से (शाक्वारिवने) शक्ति भीर धन के माधक परार्थी को जान के (विश्वकर्मा) मच सकर्मों के सेवने वाला (ऋषिः) वेदार्थ का वक्ता पुरुष वक्ता है वैसे में (प्रजापित्यहीत्या) प्रजाय लक्त पति ने ग्रव्ण की (त्ववा) तेरे साथ (प्रजाम्यः) प्रजाओं के लिये (वाचम्) विद्या और भच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को (गृङ्खानि) ग्रहण काना हूं ॥ प्रमा।

भाषार्थ: — स्वीप्रदेश की चाहिये कि श्वद्वानों की शिक्षास्त्रप वाणी को सुन को अपनी खुद्धि बढ़ावें उस खुद्धि में हेनन्त ऋतु में कसंठय कमें और सामवेद के स्तीवों को जान महात्मा ऋषि छोगों के समान वर्साव कर विद्या और अच्छी शिक्षा से शुद्ध की वाणी का स्वीकार कर के अपने सन्तानों के छिये भी इन वाणियों का सप्देश स्दैव किया करें ॥ पृत्त ॥

इन अध्याय में इंखार छो पुरुष भीर ठवत्रहार का वर्णन करने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जानी॥

यह १३ तेरहवां अध्वाय पूर्ण हुआ।



# विश्वांनि देव सवितर्दुशितानि परांसुव। यद् मद्रं तन्न त्रासुव॥

ध्रुविक्षितिरित्यस्योज्ञाना ऋषिः। अदिवनी देवते। चिष्टप् छन्दः। धेवतः स्वरः॥ अब चैदहर्वे अध्याय का आरम्ब है इन के पहिले मन्त्र में खियों के लिये उपदेश किया है॥

र ध्रुविक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवािस ध्रुवं योनिमासीद सा ध्रुया । उरूपंस्य केतुं प्रथमं जुपागा अदिव-नांध्वर्षू सांदयतािम्ह त्वां ॥ १ ॥

पदार्थ: — हे कि जा तू ( माधुया ) श्रेष्ठ घमें के साथ ( सह्यहय ) ब टलोई में पकाये अल की सम्बन्धी और ( प्रथमम् ) विस्तारयुक्त (केतुम् ) बुद्धि की ( जुषाणा ) प्रीति से मेवन करती हुई ( प्रुविश्वातः ) निश्चल वान काने और ( प्रुवयोनि: ) निश्चल घा में रहने वाली ( प्रुवा ) दृढधम्मं से युक्त ( भनि ) है सो तू ( प्रुवम् ) निश्चल ( योनिम् ) घर में ( भानीद ) स्थार हो ( नवा ) तुक्त की ( इह ) इम गृहाग्रम में ( मध्ययू ) अपने लिये रक्षणीय गृहाग्रम आदि यद्या के चाइने हारे ( भाश्चना ) सब विद्याओं में ठ्यापक अध्यापक और सपदेशक ( साद्यताम् ) अध्ये प्रकार स्थापित सावार्थः - विद्वान् पढ़ाने और उपदेश काने हारी कियों को योग्य है कि कुनारी कत्याओं को झहाचर्य अवस्था में ग्रामन और धरमेशिका देके हन की ग्रेन्ट करें ॥ १॥

> कुलायिनीत्यस्योदाना ऋषिः। स्रदिवनौ देवते। ब्राह्मी मुहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर पूर्वीक्त विषय का अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

कुलायिनी घृतवंती पुरंन्धिः स्याने सींद्र सदंने प्रिधिव्याः। अभि त्वां कुद्रा वसंवो गृण-नित्वमा ब्रह्मं पीपिहि सौभंगाय । अधिवनाध्व-र्यू सांद्यतामिह त्वां ॥ २॥

पदार्थ: — हे (स्योने ने खुल करने हारी जिम (त्या) तुम की (वसवः) प्रथम की टिके जिद्वान् भीर (रुद्राः) मध्य कक्षः के विद्वान् (हमा) इन (ब्रह्म) विद्या धनें के देने वाले गृहस्थों की (अप्ति) अपितृत होने के लिये इन (ग्रान्तु) प्रशंना करें में तू (मीमगाय) सन्दर संपत्ति होने के लिये इन विद्या धन की (पीपिहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो (एनवती) बहुत जल और (प्रान्धः) बहुत जल पारण करने वाली (कुलायिनी) म्यांनित कुल की प्राप्ति से युक्त हुई (एचिठवाः) भण्नी भूनि के (मदने) घर में (सीद्र) स्थित हो (अध्या) अपने लिये स्थापीय गृहाश्रम आदि यस वाहने वाले (अश्वा) सब विद्याओं में ठ्यायक और सप्देशक पुरुष (स्था) तुम्स की (सह ) इस गृहा भून में (साद्यताम्) स्थापित करें। ई॥

भावार्थ:—कियों की येश्य है कि नङ्गोपाझ पूर्ण विद्या और धन ऐत्रवर्यों का सुख भीगने के लिये अपने स्टूश प्रतियों से विवाह कर के विद्या और सुक्कें कादि यन के पाके सब प्रातुओं में हुआ देने हारे घरीं में निवास करें तथा विद्वानें का संग और शाकीं का अभ्यास निरन्तर किया करें।। २ ।।

स्वैर्दश्लेरित्यस्योज्ञाना ऋषिः। ऋद्विनौ देवते। निचृद्
ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥
किर भी पूर्वोक्त विषय को ही अगले मन्द्र में कहा है॥

स्वैदंश्चेंदंश्वंपितेह सींद देवानां धसुम्ने हंहते र-णांय । पितेवैंधि मूनव त्रा मुशेवां स्वावेशा तन्वा संविशस्वादिवनां ध्वर्य सांदयनामिह त्वां ॥ ३ ॥

पद्र्थि:—हे खि तू जैने (स्वै:) अपने (द्सै:) बलों और भूत्यों के साथ वर्तता हुआ (देवानाम्) धम्मीत्मा विद्वानों के मध्य में वर्तमान (सृष्ट्रित) बड़े (रणाय) सग्राम के लिये (सुम्ने) सुल के विषय (द्स्विता) बलों वा चतुर भूत्यों का पालन करने हारा हो के विजय से बहुता है वैसे (इह ) इस लोक के मध्य में (एपि) बढ़ती रह (सुम्मे) सुल में (आसीद) स्थिर हो और (पितेव) जैमे पिता (सूनवे) अपने पुत्र के लिये सुम्दर सुल देना है वैसे (सुभेवा) सुम्दर सुल से युक्त (स्वावेशा) अच्छी मीति से सुम्दर शुद्ध शरीर वस्त्र अलंकार के। धारण करती हुई अपने पित के साथ प्रवेश करने हारी हो के (तम्बा) शरीर के साथ प्रवेश कर और (अध्वयू) गृहात्रमादि यक्त की अपने लिये इच्छा करने वाले (अधिना) पढ़ाने और उपदेश करने हारे जन रवा) तुम्ह को (इह ) इस गृहात्रम में (साद्यताम्) स्थित करें। ३॥

भावार्थः — इन मन्त्र में उपमालंग-श्वियों की चाहिये कि युद्ध में भी अवने पतियों के साथ स्थित रहें अपने भीकर पुत्र और पशु आर्द्द की विता के समान रक्षा करें और नित्य ही वक्ष और आसूचणों से अवने श्वारी की संयुक्त करके वन्ते। विद्वान् छेग्ग भी इन की सद्दा उपदेशक करें और स्वी भी इन विद्वानों के छिये सदा उपदेश करें ॥ ३॥

पृथिन्याः पुरीषित्यस्योद्याना कृषिः। अदिवतौ देवते।
स्वराङ्ब्राद्या वृहती कृत्दः। मध्यमः स्वरः॥
किर भी वही विषय अगन्ते मन्त्र में कहा है॥
पृथिन्याः पुरीषमस्यप्ता नाम तांत्वा विश्वे
अभि गृंणन्तु देवाः । स्तोमंपृष्ठा घृतवंतीह
सींद प्रजावंदसमे द्रविणा यंजस्वाश्विनांध्वर्णू
सांदयतामिह त्वां॥ ४॥

पदार्थ:— है कि जो (स्तोमएडा) स्तुतियों को जानने की इच्छा युक्त तू (इह) इस गृहाश्रम में (पृथिव्धाः) पृथित्री की (पृरीषम्) रक्षा (अटनः) सुन्दरस्य और (नाम) नाम और (घृतवती) सहुत घी आदि प्रशंसित पदार्थों से युक्त (असि) है (ताम्) उस (त्वा) तुक्त की (विध्वाः) विद्वान् छोग (अभिगुणन्तु) मत्कार करें (इह) इसी गृहाश्रम में (सीद) वर्त्तम। न्रह और जिम (त्वा) तुक्त को (अध्वर्षे) अपने छिगे रक्षणीय गृहाश्रमादि यद्या चाहने वाछे (अश्वना) व्यापक बुद्धि पदाने और स्पदिश काने हारे (इह) इस गृहाश्रम में (साद्यताम्) स्थित करें से तू (अस्मे) हमारे छिगे (प्रजावत्) प्रश्वित सन्तान है। ने का साधन (द्रविणा) धन (यजस्व) दे॥ ४॥

भावार्थ: - जे। स्त्री गृहाम्रम की विद्या और क्रिया कीशल में विद्वान् हैं। वे ही सब प्राणियों की शुख दे सकती हैं॥ ४।।

अदित्यास्त्वेत्यस्योशाना ऋषिः। अशिवनौ देवते । स्वराह् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

किर भी पूर्वीक विषय ही अगले मन्त्र में कहा है।।

त्र्रदित्यास्त्वा पृष्ठे सांदयाम्यन्ति स्थिस्य धर्त्री विष्टमर्मनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् । ऊर्मि-

### र्द्रप्तो अपामिस विश्वकर्मा त ऋषिरश्विनां-ध्वर्यू सांदयतामिह त्वां ॥ ५ ॥

पदार्थ:—हे कि जो (ते) तेरा (विश्वकर्मा) सब शुभ कर्मी ये युक्त (ऋषिः) विश्वान दाता पति मैं (अन्तिश्वर्य) अग्तः करण के नाश रहित विश्वान की (धर्मीम्) धारण करने (दिशाम्) पूर्वादि दिशाओं की (विष्टम्मनीम्) आधार और (भुवनानाम्) सन्तानोस्पत्ति के निमित्त घरें। की (अधिपत्नीम्) अधिष्ठता होने चे पालन करने वाली (स्वा) तुक्त की सूर्य की किरण के समान (अदित्याः) पृधिवी के (पृष्ठे) पीठपर (साद्यामि) घर की अधिकारिणी स्थापित करता हूं जा तू (अपाम्) जलें। की (जिनें:) तरङ्ग के सदूश (द्रप्तः) आनन्द्युक्त (अमि) है उन (त्वा) तुक्त को (इह) इस गृहाम में (अध्वर्यू) रक्षा के निमित्त यञ्च को करने वाले (अधिवना) विद्या में उपास खुद्ध अध्यापक और उपदेशक पुरुष (साद्यताम्) स्थापित करें।। पृ॥

भावार्थ:—इन मंत्र में वाचकलुन जा की अधिनाशी सुस देनेहारी सम दिशाओं में प्रभिद्ध की तिं वाली विद्वान् पितयों से युक्त सदा आनंदित हैं वेही गृहात्रम का धर्म पाछने और उस की उस्रति के लिये समर्थ होती हैं तेरहर्वे अध्वाय में जा (मधुवन) कहा है वहां से यहांतक वसंत ऋतु के गुणों की प्रधानता से ठपाख्यान किया है ऐसा जानना चाहिये॥ ५॥

शुक्रश्चेत्यस्योदाना ऋषिः। ग्रीष्मर्नुर्देक्ता । निचृदुत्कृतिः

इछन्दः। षड्जः स्वरः॥

किर भी ग्रीव्म ऋतुका व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है।।

शुक्ररच ग्रुचिरच ग्रेष्मांवृत् अग्नेरंन्तः रहे-षोऽसि कल्पेताम चावांष्ट्रथिवी कल्पंन्तामाप् ग्रोषंधयः कल्पंन्तामुग्नयः प्रथङ्मम् ज्येष्ठ्रयांय

## सन्नताः । ये अग्नयः समनसोऽन्त्रा द्यावांष्ट-थिवी इमे प्रैष्मावृत् अभिकल्पमाना इन्द्रंमिव देवा श्रंभिसंविंशन्तु तयां देवतंयाऽङ्गिरस्वद्धु-वेसींदतम् ॥ ६ ॥

पदार्थ:--हे स्त्री पुरुषो जैसे ( मम ) मेरे ( ज्यैष्टवाय ) प्रशंसा के या-ग्य है। ने के लिंग जा ( शुक्त: ) शीघ्र घूली की वर्षा और तीव्र ताप से आ-काश को सलीन करने हारा ज्यंदर ( च ) और ( शुचि: ) पवित्रतर का हेतु आधाद ( च ) पे देन्नें मिल के प्रत्येक । ग्रैडमी ) ग्रीडम ( ऋतु ) ऋ-तु कहाते हैं जिम ( अग्ने: ) अग्नि के ( अंत: इलेप: ) मध्य में कप के रेग का निवारण (अमि) हे।ता है जिन से ग्रोब्न ऋतु के महीनें से (द्या-वापृधिवी ) प्रकाश और अन्तरिक्ष (क्ल्पेताम् ) समर्थ हे।वें ( आपः ) ज ल ( कल्पन्ताम् ) समर्थे हों ( ओ। षथप: ) यव वा से। मलता भादि ओ। ष-चियां और ( अग्नयः ) बिजुली आदि अग्नि ( पृथक्) अलग २ ( कल्पन्ताम्) समर्थ हेर्न्वे जैमे (समनमः) विचारशील ( सन्नताः) सत्याचरणह्रप नियमें। से युक्त (अग्रवः ) अग्नि के तुल्य तेजस्त्री के। (अन्तरा ) (ग्रैक्नी ) ( ऋतु ) ( अभिक्लपमानाः ) सन्मुख हे।कर ममर्थ करते हुए ( देवाः ) बि-द्वान् छे।ग ( इन्द्रसिव ) बिजुली के समान उन अग्नियों की विद्या में ( अ भिसंविशन्त्) मब ओर से अच्छे प्रकार प्रत्रेश करें वैसे (तया) उस (देवतया) परमेश्वर देवता के साथ तुम दे। नां (इसे ) इन ( द्यावापृथिवी ) प्रकाश भीर पृथिवी की ( धुवे ) निश्चल स्वस्त्य से इन का भी ( अगिरस्वत्) अव यवां के कारणहाप रस के समान (सीदतम्) विशेष करके र्श्तमाम रहेग ॥ ६ ॥

आयार्थः — इस मन्त्र में उपमालंश-ससन्तक्षतु के ठणक्यान के पीसे चीष्म ऋतुकी ठवारूया करते हैं। हे मनुष्यो तुम छोग जे। एथिबी आदि एंच भूतों के शरीर सम्बन्धी वा मानस अग्नि हैं कि जिन के विना चीष्म ऋतु महीं है। सकता उन की जान और उपयाग में छा के सब प्राणियों की सुख दिया करी ॥ ६॥

सज्रीतिभिरित्यस्य विद्वेदेवा ऋषयः । वस्वाद्यो सम्बोक्ता देवतः । सज्र्रीतिभिरित्यस्य भुरिक्कृतिदछन्दः । धैवतः स्वरः ॥ सज्र्रीतिभिरिति द्वितीयस्य स्वराद्पङ्किः श्क्रन्दः । सज्रीतृभिरिति तृतीयस्य निचृदाः

कृतिइछन्दः। पञ्चमः स्वरश्च ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है।

मुजूर्ऋतुमिः मुजूर्विधामिः मुजूर्देवैः मुजूर्देवैवै-योन्।धेरुग्नयं त्वा वैश्वान्रायाश्विनांध्वर्यं सांद-यतामिहत्वां। मजूर्ऋतुभिः मजूर्विधाभिः मजू-र्वसुंभिः मुजूर्देवैवैयोनु।धैरग्नये त्वा वैश्वानुरा-यादिवनांऽध्वर्यूसांदयतामिह त्वां मुजूर्ऋतुभिः मुजुर्विधाभिः मुजूरुद्दैः मुजूर्देवैवैयोन्धिर्यये वैश्वानुराणांश्विनाध्वर्य सांदयतामिह त्वां सजुर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः मुजूर्देवैवैयोन्। धेरुग्नये त्वा वैश्वानुराय। श्विनां-ध्वर्यं सांदयतामिह त्वां मजूर्ऋतामः मजूर्विधा-भिः सुजुर्विद्वैदेवैः सुजुर्देवैवैयोन्।धैरुगनये त्वा वैद्यान्रायादिवनांध्यर्यं सांदयतामिहत्वां ॥७॥

यदार्थ:-हे खि वा पुरुष जिय ( स्वा ) तुभा की ( इह ) इस जगत् में ( अध्वयू ) रक्षा करने इस् ( अधिना ) सब विद्याओं में ह्याप्रक पहाले भीर सप्देश करने बाले पुरुष भीर स्त्री (वैद्यानराय ) संपूर्ण पदार्थी की प्राप्ति के निमित्त ( अग्नचे ) अग्निविद्या के लिये ( साद्यनाम् ) नियुक्त करें भीर इस लोग की जिस (त्था) तुम्त को स्थापित करें सो तूं (ऋतुनिः) वनन्त और वर्षा आदि ऋतुओं के साथ (मजू:) एक नी तृश्चिता सेवा से युक्त (विधानिः) नलों के साथ (मजूः) प्रितियुक्त (देवै:) अच्छे गुणें। के साथ ( सजू: ) प्रीति वाली वा प्रीति वाला और ( वर्षानार्थे ) जीवन आदि वा गायत्री आदि छन्टैं। के साथ मम्बन्थ के हेत् (देवैः) दिठय सुस देने हारे प्राची। के साथ ( मजू: ) समान सेवन से युक्त हो । हे पुरुषार्थ युक्त स्त्री वा पुरुष जिम (त्वा) तुभाकी (इड्) इन गृहाश्रम में (वैश्वा-नराय सब जगत् के नायक ( अग्नये ) विज्ञानदाता ईश्वर की प्राप्ति के लिये ( अध्वयू ) रक्षक ( अध्वना ) मच विद्याओं। में ठवाप्र अध्यापक और उप-देशक (मादयताम्) स्थापित करें और जिन (त्या) तुभाकी इस लोग नियन करें सी तू ( ऋतुसि: ) ऋतुओं के साथ (मजूः) पुरुषार्थी (विधासि:) विविध प्रकार की पद। थीं की धारण की हेतु प्रायों। की चेष्टाओं। की साथ (मजूः) ममान सेवन वाले (वसुनि: ) अग्नि आदि आठ पदार्थों के साथ ( सजू: ) मीति युक्त और (वयोगापै:) विज्ञान का मम्बन्ध करने हारे (देवै:) सु इद विद्वानों के नाथ ( सजू: ) समाम प्रीति वाले हों । है विद्या पढ़ने के िये प्रवृत्त हुए ब्रह्म वाग्णिका ब्रह्म वारी जिम (स्वा) तुभः को (इह) इस ब्रक्स क्टर्वात्रम में (वैद्यानराय) सब मनुष्यों के सुख के साधन (अग्नपे) शास्त्रों के विज्ञान के लिये (अध्वर्यू) पाछने हारे (अधिवना) पूर्व विद्या युक्त अध्यापक भीर उपदेशक छोग (साद्यताम् ) निपुक्त करें और जिस ( तथा ) तुमा की इम लोग स्थावित करें सो तू ( ऋतु'म: , ऋतुओं की साथ (रुजू:) अनुकूछ सेवन वाले (विधासि:) विविध प्रकार के पदार्थी के धारण के निनित्तं आब की चेष्टाओं से ( सजू: ) समान प्रीति वाले (कट्रै:) प्राण, अ-पान, ठयान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कुक्छ, देवद्या, धनजय और जीवा

स्मा इस रवार हो की (सजू: ) अनुमार सेवा करने हारे और (वयोगाधी: ) वेदादि शास्त्रों के जनाने का प्रवन्ध करने हारे (देवै:) विद्वानों के साथ ( सजू खराबर प्रीति वाले हें। हे पूर्ण त्रिद्या वाले स्त्री वा पुरुष निस (त्वा) तुमा को (इह) इस संमार में (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के लिये पूर्ण सुक् को साथ (अग्रये) पूर्णविज्ञान को लिये (अध्वयूँ) रक्षक (अध्वता) शीघ्र जानदाना छे। ग ( माद्यताम् ) नियत करें और जिन ( स्वा ) त्का की इप नियुक्त करें मो तू (ऋतुभि:) ऋतुओं के माथ (मजू:) अनुकूत आः चरण वाले (विधानि:) विश्रिष प्रकार की सत्यिकियाओं के माथ (सजुः) समान भीति वाले (भादित्यीः) वर्ष के बारह महीनें। के माथ (मजूः) अनुकृत आहार बिहार गुक्त और ( वयानाधैः ) पूर्व विद्या के विज्ञान और प्रचार के मम्बन्ध करने इस्रे (देवै:) पूर्ण विद्या युक्त विद्वःनी के (सजू:) भनुकुछ प्रीति बाले हों। हे सत्त्य अर्थों का उपदेश करने हारी स्त्री वा पु-रुव (जस (स्वा) तुभः को (इह) इन जगत् में (वैद्यानराय) मब मनु-च्यों के हितकारी (अग्रये) अच्छी शिक्षा के प्रकाश के लिये (अध्वयू ) ब्रह्मिबद्या के रक्षक (अश्विना ) शीप्र पढ़ाने और उपदेश करने हारे लेग ( शाद्यताम् ) स्थित करें और जिस (त्या) तुभः की इम छाग नियत करें से तु ( ऋतुनि: ) काल क्षण आदि सम भवयवीं के साथ ( कजू: ) अनुकृत सेवी (विधास: सुकों में ठवायक मब किया मों के साथ ( नजू: ) अनुमार होकर (विश्वै:) सब (देवै:) मत्योपदेशक पतियों के साथ (कजू:) समान प्रीति वाले और (वयोनाधी: ) कामयमान जीवन का मन्धन्ध कराने हारे (देवै: ) परे पकार के लिये मत्य अमत्य के जनाने वाले जनों के साथ ( सजू: ) समान मीति वाले हो ॥ 9 ॥

आवार्थ: इन समार में मनुष्य का जन्म पा के छी तथा पुरुष विद्वान् होका जिन ब्रह्म वर्ष्य मेवन विद्या और अच्छी शिक्षा के प्रद्रण आदि शुम गुण कमी में आप प्रवृत्त है। का जिन अन्य छे। गों की प्रवृत्त करें से उन में प्रवृत्त है। का पामेश्वा मे से का पृथियो पर्गन्त पद्धी के यथार्थ विद्यान से उपयोग ग्रहण का के मह अनुभों में आप सुकी गहें और अन्यों की। सुकी प्राचम्म इत्यस्य विद्वदेव काषः । इत्यति देवते । निवृद्दतिजगती छन्दः । निवाद स्वरः ॥ किर भी बही विषय अवले मन्त्र में कहा है ॥

प्राणम्में पाह्यपानम्में पाहि व्यानम्में पाहि चक्षमें उव्यो वि माहि श्रात्रम्मे रहोक्य । अ-पः पिन्वीषधीर्जिन्व द्विपादंव चतुष्पात्पाहि दि-षो रिष्टिमेर्य ॥ ८ ॥

पदार्थ:—है पते वा खि तू ( उठ्यों ) बहुत प्रकार की उत्तम किया ते कि मेरे ( प्राणम् ) नाभि से अपर की चलने वाले प्राणवायु की (पाहि ) रक्षा कर ( मे ) मेरे ( अपानम् ) नाभि के नीचे गुल्लेन्द्रिय मागं से निकलने वाले अपान वायु की ( पाहि ) रक्षा कर ( मे ) मेरे ( ठ्यानम् ) विविधः प्रकार की शरीर की संधियों में रहने बाले ठ्यान वायु की ( पाहि ) रक्षा कर ( मे ) मेरे ( चक्षु ) ने नों की ( विभाहि ) प्रकाशित कर ( मे ) मेरे ( श्रीत्रम् ) कानों की ( श्रीत्रम् ) शालों के श्रवण से संयुक्त कर ( अपर ) प्राणों की ( पिन्व ) पुष्ट कर ( ओर्चपीः ) सीमलता वा यव आदि ओष्टियों की ( किया ) प्राप्त हो ( द्विपात् ) मनुष्यादि दी पगवाले प्राणियों को ( अव ) रक्षा कर ( चतुष्टपात् ) चार पग वाले गी आदि की ( पाहि ) रक्षा कर और की सूर्य ( दिवः ) अपने प्रकाश से ( वृष्टिम् ) वर्षा करता है वैसे घर की कार्यों की ( एरम ) अच्छे प्रकार प्राप्त कर ॥ द॥

आवार्धः - इस मन्त्र में वाचकलुः - स्त्री पुरुषों की चाहिये कि स्वयंवर विवाह करके भति प्रेन के साथ आपस में प्रात्त के समान विवाचरण शा-स्त्रीं का सुनना ओविंच सरिंद् का देवन और यक्त के अनुष्ठान से वर्षः के रावें॥ द ॥

मूर्या वय इत्यस्य विद्वदेवा ऋषयः। प्रजायत्याङ्योः क्रेक्ताः। पूर्वस्य निष्टुद्वास्ति पाङ्कः। पुरुष इत्युत्तरस्य ब्रास्ती पाङ्कः

इछन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है।

मूर्धा वयंः प्रजापंति इछन्दंः श्वतं वयो मयंन्डं छन्दों विष्टमभो वयो ऽधिपति इछन्दों विश्वकं मां वयंः परमेष्ठी छन्दों वस्तो वयो विब्रुं छन्दों दृष्णिर्वयों विशाल छन्दंः पुरुषो वयंस्तुनद्रं छन्दों नदों न्याद्रो वयो नांधुष्टं छन्दंः मिछहो वयं इछन्देः दिइछन्दंः पष्टवाहवयों इहती छन्दं उत्ता वयंः कन्दुः कुप छन्दं ऋष्टमो वयंः मता इंहती छन्दंः ॥९॥

पदार्थः हे कि का पुनव । मूर्घा ) शिर के मुल्य उत्तम ब्राह्मण का कुछ ( प्रदार्थात: ) प्रका के रक्ष श्राका के ममान तू ( वय: ) कामना के योग्य ( मधन्दम् ) सुखद्गयक ( छन्दः ) बल्युक्त ( सत्रम् ) सन्निय कुल की ग्रेरणा कर ( विष्टम्भः ) वैष्ठक्षं की रक्षा का हेतु । अधिपति: ) अधिष्ठाना पुः हव नय की सभान तू ( वय: ) स्थाय विनय की प्राप्त हुए ( छन्द् ) स्था धीन पुत्रव की घेरणा कर ( शिश्वकन्मी ) मझ उत्तम कर्म करने इस्रे ( पर मेष्ठी) मक्ष के स्थानी राजा के ममान तू ( वयः ) चाइने योग्य ( छन्दः ) स्वतम्त्रता की (एरघ) दहा (ये (वस्त:) व्यवहारी से युक्त पुरुष की समान तू ( वयः ) अनिक तकार के स्यवहारीं में डवार्पा ( विवस्तम् ) कि विध्य बल के हेतु ( छन्दः ) भानन्द की कदा ( वृध्यतः ) सुख के रेचने वाले के मदूश तू ( विशालम् ) विस्तार युक्त ( वयः ) सुखदायक ( उन्दः ) स्वतन्त्रता की कड़ा ( पुनवः ) पुतवार्थ युक्त जन के तुलव तू ( वयः ) चा-इने योरव ( सत्द्रम् ) कुटुन्त्र के धारण साथ कम्में और ( सन्द्रः ) बल की खड़ा ( ठपाप्र: ) जी। चित्रिय प्रकार के पदार्थी की अच्छी प्रकार मूंचना है उन जन्तु के तुना राजातू ( वयः ) चाहने यीग्य ( अनाध्रष्टम् ) दूहः ( छन्दः ) बाल की बड़ार सिंहः ) पशु आरिद की मारन हारे सिंह की समान

पराक्रमी राक्षा तू ( बय: ) पराक्रम के साथ (छिदः ) निरोध और (छन्दः) प्रकाश को बहा ( पष्ठवाद् ) (पीठ से बोम उठाने वाले ऊट मादि के सहूश वैश्व) तूं ( इहती ) बहे ( वय: ) बलयुक्त ( छन्दः ) पराक्रम को प्रेरणा कर ( वदा ) सींचने हारे बैल के तुन्य शूद तू ( वय: ) अति बल का हेतु ( ककुण् ) दिशाओं और ( छन्दः ) जानन्द की बड़ा ( ऋषमः ) शीध्रणता पश्च के तुन्य भृत्य तू ( वय: ) बल के माथ ( मतीशहती ) सन्म बड़ी ( छन्दः ) स्वनम्बता की प्रेरणा कर ॥ ए॥

भाषार्थः— इत मन्त्र में श्लेय और यायक लु०- और पूर्व मन्त्र से एर्य पद की अनुवृत्ति आती है स्त्री पुन्त्यों की चाहिये कि ब्राह्मण आदि स्वर्णी को स्वतन्त्र येदादि शास्त्रों का प्रचार आलस्यादि त्याग और शत्रु भी का निवारण करके बड़े बल को सदा बढ़ावा करें।। ए।।

अन्द्वानित्यस्य विद्वतदेव ऋषिः । ि अस्ति देवनाः। स्वराहः

बाह्या बृहती हुन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी बड़ी विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

अनुद्वान्वयंः पृद्धिरुछन्दीं धनुर्वयो जगती छन्देस्त्रयाविर्वयांस्त्रिष्टुप् छन्दीं दित्यवाइ वयों विराद् छन्दः पंचांविर्वयो गायत्री छन्देस्त्रिब्व-त्मो वयं उप्णिक्छन्दं स्तुर्ध्यवाइ वयोंऽनुष्टुप् छन्दः ॥ १० ॥ लोक नापर जन्म

पदार्थ: — हे स्त्रि वा पुरुष ( अन्द्य न् ) ती और खेल के ममान ख-लवान् हो के तू ( पिंतु: ) प्रकट ( उन्दः ) स्वतंत्र ( वयः ) वल की ग्रेरणा कर ( पेनु: ) दूथ देने हारी गी के समाम तू लगती ) जगत् के स्वकारक ( उन्दः ) भागन्द की वयः कामना को बड़ा ( स्वविः ) मीन भेड़ बकरी भीर गी के अध्यक्ष के तुल्य वृद्धि युक्त हो के तू ( विष्टुष् ) कर्म उपामना

٠.

और ज्ञाम की स्तुति कें हितु ( छन्दः ) स्वतंत्र ( वयः ) तरपत्ति को बढ़ा ( दित्यवाह् ) पृथिवी खोदने से तरमस हुए जी भादि को प्राप्त कराने हारी किया के मुस्य तू ( विराद ) विविध प्रकाश पुक्त ( छन्दः ) सामन्द कारक ( वयः ) प्राप्ति को बहा ( पंचाविः ) पंच इन्द्रियों की श्रमा के हेतु भोषधि की समान तू ( गायत्री ) गायत्री ( छन्दः ) मंत्र की ( वयः ) विज्ञान को बढ़ा ( त्रिवत्सः ) कमें स्पामना और ज्ञान को बाहने हारे के तुस्य तू ( त्रिवत्सः ) कमें स्पामना और ज्ञान को बाहने हारे के तुस्य तू ( त्रिवत्सः ) चारों वेदों की प्राप्ति कराने हारे पुरुष के समान तू ( अनुब्दुप् ) अनुकूल स्तुति का निमित्त ( छन्दः ) स्वताधक ( वयः ) इन्ह्या की प्रतिदिन बढ़ाया कर ।। १० ।।

भावाधी:-इस मन्त्र में श्लेष और वासकलुर-- जैसे खेती करने हारे लोग बैल आदि साधनें की का से अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करके मब को सुख देते हैं वैसे ही विद्वान् लोग विद्या का मचार करके सब प्राणियों को आनन्द देते हैं ॥ १० ।

इन्द्रारनी इत्यस्य विश्वदंवा ऋषयः। इन्द्रारनी देवते।
सुरिशनुष्टुण्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥
फिर भी वृष्टी विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

#### इन्द्रांग्नी अव्यंथमानायिष्टंकां दक्षहतं यु-वम् । पृष्ठेन द्यावाष्ट्रियवी अन्तरिक्षं च वि बांधसे ॥ ११॥

पदार्थ: — हे ( इन्द्राग्ती ) बिजुली और सूर्य के समान वर्तमान स्त्री पुरुषो ( युवम् ) तुम दोनों ( अठवणमानाम् ) जमी हुई बुद्धि को प्राप्त है। को ( इष्टकाम् ) इंट के नमान ग्रहाश्रम को ( दूं इतम् ) दूढ़ करो जैसे ( द्या-वापृथिवी ) प्रकाश और भूमि ( एष्ट्रेन ) पीठ से आकाश की बाधते हैं वैसे तुम दुःख और शत्रुशों की बाधा करो हे पुरुष जैसे तू इस अपनी स्त्री की पोड़ा को ( विवाधसे) विशेष करके इटाता है वैसे यह स्त्री भी तेरी सक्छ पीड़ा को इरा करें ॥ १४ ॥

भावार्थ: — इस सन्त्र में प्रतेष भीर बादकालु० - जैसे खिजुली भीर सू-र्घ जल वर्षा के भोषि भादि पदार्थों को बढ़ात हैं वैसे ही खी पुरुष कु दुन्त्र को बढ़ावें जैसे प्रकाश भीर एथिवी आकाश का आवरण करते हैं वैसे ही गृहास्त्रम के उपवहारों की पूर्ण करें॥ ११॥

विरुवकर्मेत्यस्य विरुवकर्मार्वः। वायुर्देवता । विकृति-

इक्टन्दः। मध्यमः स्वरः॥

किर बढ़ी विषय अगले मंत्र में उपदेश किया है।।

विश्वकंमां त्वा सादयत्वन्तिरंत्तस्य पृष्ठे व्य-चंस्वतीं प्रथंस्वतीमन्तिरक्षं यच्छान्तिरंत्तं द्दकं हान्तिरिक्षं मा हिंकसीः। विश्वंसमे प्राणायोऽपा-नायं व्यानायोदानायं प्रतिष्ठाये चिर्त्राय वा-युष्टाऽभिऽपांतु मुद्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तयां देवतंयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सींद ॥ १२ ॥

पदार्थः - हे स्ति (विश्वकर्मा) संपूर्ण शुभ कर्म करने में कुशल पति
जिस (व्यवस्तिम्) प्रशंसित विद्यान वा सरकार से युक्त (प्रथस्वतीम्)
उत्तम विस्तृत थिद्या वाली (अन्तिश्वस्य) प्रकाश के (एट्टें) एक भाग
में (स्वा) तुक्त को (सादयतु) स्थापित करें मो तू (विश्वस्में) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान (व्यामाय) व्यान और (उदानाय)
सदानस्त्य शरीर के वायु तथा (प्रतिष्ठायें) प्रतिष्ठा (चरित्राय) और शुक्त
कर्मों के आचरण के लिये (अन्तिश्वम्) जलादि को (यच्छ) दिणा कर
(अन्तिश्वम्) प्रशनित शुद्ध किये जल से युक्त अन्त और धनादि को ।हंक)
बढ़ा और (अन्तिश्वम्) मधुन्ता आदि गुण युक्त रोग नाशक आकाशस्य
सब पदार्थों को (माहिंमी:) नष्ट मत कर जिम (स्वा) तुक्त को (वायुः)
प्राण के तुल्य प्रिय पति (सन्ता) बड़ी (स्वस्त्या) सुख स्व किया (स्व

भियातु ) सब कोर से रक्षा करें सी तू (तया) एस (देवतया) दिश्य शुस देने वाली क्रिया के साथ वर्तमान पति सूप देवता के साथ (अंगिरस्वत्) ध्यापक वायु के समान (धुता) निवल ज्ञान से गुक्त (मीद्) स्थिर हो ॥१२॥

भावार्थ:-- इस मन्त्र में प्रहेष और वाचक लु?-- जैसे पुरुष स्त्री को काष्ठे कर्मों में नियुक्त करें वैसे स्त्री भी कावने विशे को अष्छे कर्मों में मे-रणा करे जिस से निरन्तर आनन्द बढ़े।। (२।)

राइपसीत्यस्य विद्वदेव ऋषिः। दिशो देवताः। विराट् पङ्क्तिइछन्दः। पञ्चमः स्वरः॥ फिर वही विषय अगले मंत्र में कहा है॥

#### राइयंसि प्राची दिग्विराइंसि दक्षिणा दिक् सम्राइंसि प्रतीची दिक् स्वराहुस्युदींची दिग-धिंपत्न्यसि बहुती दिक्॥ १३॥

पदार्थः- हे स्त्रि जा तू (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के तुल्प (राक्षी) प्रकाशनाम ( असि ) है (दिस्पा) दक्षिण (दिक्) दिशा के समान (विराट्) अनेक प्रकार का विनय और विद्या के प्रकाश से युक्त (असि) है (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के महुश ( सन्नाट्) चक्रवर्ती राजा के सहुश अ- कि हुस युक्त एथिवी पर प्रकाशनान ( अनि ) है ( उदीची ) उत्तर (दिक्) दिशा के तुल्प ( स्वराट्) स्वयं प्रकाशनान ( असि ) ( सहती ) का हो (दिक्) जपर नीचे की दिशा के तुल्प ( अधिपक्षी ) घर में अधिकार की प्राप्त हुई ( असि ) है सी तू नक्ष पति आदि को तुप्त कर ॥ १३॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में बाचकलु - जैसे दिशा सब भीर से भाषि-ठयाम बोध करने हारी चंचलतारहित हैं वैसे ही स्त्री शुमगुण कर्म भीर स्वमावों से युक्त होते ॥ १३ ॥

> विद्वकर्मत्यस्य विद्वेदेवा ऋषयः वायुर्देवता । स्वराह् ब्राह्मी बृहर्ता छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥ फिर भी उक्तविषय ही भगले मन्त्र में कहा है ॥

## विश्वकंमित्वा सादयत्वन्तिरक्षस्यपृष्ठे ज्यो-तिष्मतीम् । विश्वंसमै प्राणायांऽपानायं व्याना-य विश्वं ज्योतिर्यच्छ । वायुष्टेऽधिपतिस्तयां देवतंयाङ्गिरस्वदध्रुवा सींद ॥ १४ ॥

पदार्थ:-हे स्ति जिस (क्योतिक्सतीम्) बहुत विद्यान वाली (स्वा)
तुक्त की (विश्वस्मै) सब (प्राणाय ) प्राण (अपानाय) अपान और
(ठपानाय) ठपान की पृष्टि के लिये (अन्तिरिक्षस्य ) जल के (पृष्ठे)
क्रायाले भाग में (विश्वकर्मा) नव शुप्त कर्मी का चाइने झारा पति (सा-द्यतु स्थापित करें मो तू (विश्वम्) संपूर्ण (क्योतिः) विद्यान को (य
क्छ) ग्रहण कर जो (वागुः) प्राण के समान विष्य (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी है (नया) उप (देवतया) देवस्यक्रप पति के साथ (प्रुवा)
दृढ़ (अङ्गिरस्वत् ) सूर्य के समान (सीद् ) स्थि हो ।।
आवार्थ:-को को जितत है कि ब्रह्मचर्यांग्रन के साथ आप विद्वान् हो

आवार्ध: - क्यों को उचित है कि ब्रह्मचय्योग्रन के साथ आप विद्वान् हो के शारीर भारमा का बल बढ़ाने के लिये अपने मन्तानों को निरन्तर जिल्हान देवे। यहांतक ग्रीटन आतु का व्याख्यान पूरा हुआ। १४॥

नभक्षेत्यस्य विद्ववदेष ऋषिः। ऋतवा देवताः। स्वरा-

ङ्क्कृतिरुछन्दः । षड्जः स्वरः ॥ भव वर्षा ऋतु का व्याख्यान भगले मन्त्र में कहा है ॥

नभंश्च नभ्रस्यश्च वार्षिकावृत् अग्नेरंनतः श्रेषेशिम कल्पंतां द्यावांष्ट्रियिवी कल्पंन्तामाऽप् सोषंधयः कल्पंन्तामग्नयः प्रथङ्गम् ज्येष्ठ्यांय सन्नताः। ये अग्नयः समंनसोऽन्तरा द्यावांष्ट्रियि वी इमे वार्षिकावृत् अभिकल्पंमानाइन्द्रंमिव्दे-

### वा अभिसंविशन्तुतयां देवतयाऽङ्गिर्मवद्धुः वे सीदतम्॥ १५॥

पदार्थ: - हे की पुरुषो तुम दे। नें जि (नमः) प्रविधित मेघोंवाला मायण ( घ ) और ( मसस्यः ) वर्षो का मध्य भागी पादू रह ( घ ) ये दे। मों ( वार्षिकी ) वर्षा ऋतु के महीने ( मन ) मेरे ( उथैष्ट्रयाय ) प्रशंनित है। ने के लिये हैं जिन में (अरते:) अटण तथा ( अन्तप्रक्षेप:) जिन के मध्य में शीत का स्पर्श ( अभि ) हे ता है जिन के साथ ( द्वारापृथिशी ) भाकाश और भूमि समर्थ है ते हैं इन के भेग में तुम दे तो (कस्पेताम्) समर्थ है। जैने ऋतु येग्य से ( आव: ) जल और ( ओवधय: ) श्रीवधी वा ( अवनयः ) अविन ( पृथक ) जल मे अलग ममर्थ हे।ते हैं वैमे ( मझना: ) एक प्रकार के श्रेष्ठ नियम ( अमलम: ) एक प्रकार का ज्ञान देने छारे ( अ-वनयः ) तेजस्वी लोग (कल्पन्ताम् ) ममर्थ हेःविं ( ये ) जी ( क्रमे ) । द्या वाएथिकी ) आकार और भूमि वर्षा ऋतु के गुणी में ममर्थ है।ते हैं उन की (वार्षिकी) (ऋतू) वर्षाक्षतुकृष (अभिकल्पनानाः) मध और ने सुख के लिये ममर्थे करते हुए बिद्धान् लोग ( इन्द्रिय ) विजुली के समान प्रकाश भी बल की (तथा) उम (देवतथा) दिश्य वर्षा अनुके नाथ (अभिने विशन्तु) मन्मुख है। कर अच्छे प्रकार (स्थत है। वें ( अन्तरा ) उन दे नें महीनों में श्वेश काकी (अङ्गिस्वत्) प्राण की ननान परस्कर्षिम युक्त ( भुत्रे ) निश्चल ( मीद्तम् ) रहेः । १५॥

भावार्थः — इम मन्त्र में उपमा और वाचकलुंश — मन मनुष्यों की। वाहिये कि विद्वानों की ममान वर्षा ऋतु में वह मामग्री ग्रहण करें जिन मे सब सुख है। वें ॥ १५॥

> इपश्चेत्यस्य विद्वंदेवा अखगः। अस्तका देवताः। सुरिगुत्कृतिद्यान्दः। षड्जः स्वरः॥ अब शरद ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में किया है॥

हुपरचोर्जश्चं शारदावृत् अग्नेरंन्तः रहेषोऽ-सि कल्पंतां द्यांवाप्टथिवी कल्पंन्तामाप ओषंधयः कल्पंन्तामग्नयः प्रथङ् मम ज्येष्ठ्यांय सत्रंताः । ये अग्नयः समनसोऽन्त्रा द्यावाप्टथिवी हमे शारदावृत् अभिकल्पंमाना इन्द्रंमिव देवा अभिसंविंशन्तु तयां देवतंयाङ्गिरस्वद्धुवे सी-दतम् ॥ १६॥

पदार्थ:-- हे मनुष्यो ! जैमे ( इय: ) चाहने योग्य कार महीना ( च ) बीर (कर्ज:) सब पदार्थी के बलवान् हे।ने का हेत् कार्त्तिक (च) ये दे।ने। ( शाःदी ) शःदु ( श्रुतू ) ऋतु के महीने ( मम ) मेरे (ज्येष्ठवाय) प्रशंनित सुख है। ने के लिये है। ते हैं जिन के ( अन्त: इलेप: ) मध्य में कि चित् शी-संस्थां ( सिस ) है।ता है वे ( द्यावाएधियों ) अवकाश और एथिवी की (कस्पेतान्) समर्थकरें (आयः) जल और (ओवधयः) कोवधियां (कस्पन्ताम्) ममर्थे हेर्वि (स्वानाः) सब कार्यों के नियम करने हेर्हे (अ-द्भवः) शरीर के अनिन ( पृथक्) अलग ( कल्पन्ताम् ) मनर्थ हों ( ये ) जै। (अन्तरा) बीच में (सणन्तः) सन के सम्बन्धी (अन्तयः) बाहर के भी अस्ति ( क्षेते ) इन ( द्यावापृथिवी ) आकाश सूनि की ( कल्पेताम् ) समर्थे करें ( शास्त्री ) शरद ( ऋतु ) ऋतु के दोनों महीनी में ( इन्द्रित्व ) पश्मी-श्वर्य के तुरुष (अभिकरणमानाः ) मध ओर से आजन्द की इच्छा करते कुए (देवा: ) बिद्वान् लीग ( असिसंग्विशन्तु ) प्रवेश करें ( तथा ) उन (देवतया) दिवय शरदऋतु ऋप देवना के नियम के माथ ( धुवे ) निश्वल हुल वाले (सीदनम्) माप्त दे।ते हैं वैसे तुम लोगों को (क्यैंडक्याय) प्रशंसित श्रम है। में के लिये भी है। में घोष्य हैं ॥ १६॥

भावार्थ:-- इस मन्त्र में ठपमालं -- हे मनुष्यो को शरद् ऋतु में उप-योगी पदार्थ हैं उन का यथायोग्य शुद्ध करके सेवन करो ॥ १६॥

आयुर्मेइत्यस्य विद्वदेव ऋषिः । छन्दांसि देवताः । भुरिग-ति जगती छन्दः । घेवतः स्वरः ॥ फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयुंमें पाहि प्राणं मे पाह्यपानं में पाहि व्यानं में पाहि चक्षुंमें पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचंम्मे पिन्वमनों मे जिन्बात्मानंस् मे पाहि ज्योतिमें यच्छ ॥ १७॥

पदार्थ:—हे की वा पुरुष तू शाह सत् में (मे) मेरी (कायु:) अ-सरणा की (पाहि) ग्ला कर (मे) मेरे (पाणम्) प्राण की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (अपानम्) अपान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (ठ्यानम्) ठपान की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (चलु:) नेश्रों की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (श्रांत्रम्) कानों की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरी (बाधम्) बाकी की (पान्व) अच्छी शिक्षा से युक्त कर (मे) मेरे (मनः) नन की (शिन्व) शृप्त कर (मे) मेरे (श्रारमाणम्) चितन काल्मा की (पाहि) ग्ला कर और (मे) मेरे लिये (ज्योतिः) विकान का (युड्ड) दान कर ॥ १९॥

भावार्थः — स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री की जैसे अवस्था आदि की वृद्धि होते तैसे परस्पर नित्य आयरण करें।। १९॥

माच्छ इत्यस्य विद्यदेव ऋषिः । छन्दां मि देवताः । सुरिगति जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

को पुनर्वा को कैने विज्ञान बहाना चाहिये इस विश्व। माच्छन्दंः प्रमाच्छन्दंः प्रतिमाच्छन्दों अ- स्रीवयश्कन्दंः पंक्तिश्छन्दंः द्रिष्माक् छन्दौ बृ-हती छन्दौऽनुष्टुप्छन्दौ विराट् छन्दौ गायत्री कन्दंस्त्रिष्टुप्छन्दो जगंती छन्दंः॥ १८॥

पदार्थ:—है मनुष्यो तुम छोग (मा) परिमाण का हेतु ( छन्दः ) का मानन्द कारक ( प्रमा ) प्रमाण का हेतु वृद्धि ( छन्दः ) कछ ( प्रतिमा ) जिन में प्रतिति निश्चयं की किया हेतु ( छन्दः ) स्वतन्त्रना ( अस्त्रीवयः ) कछ और कान्ति कारक समादि पदार्थ ( छन्दः ) सलकारी विद्यान ( पर्क्तिः ) पांच सवयवेर्त में युक्त योग ( छन्दः ) प्रकाश ( चिन्ताक् ) स्नेष्ठ ' छन्दः ) प्रकाश ( सहती ) बही प्रकृति ( छन्दः ) आत्रय ( अनुष्टुप् ) श्व-खेरं का भालस्वन ( छन्दः ) भोग ( विराष्ट् ) विविध प्रकार की विद्याभों का प्रकाश ( छन्दः ) विद्यान ( गायभी ) गाने वाले का रक्षक इंग्रवर ( छन्दः ) चन का बोध ( विष्टुप् ) तीन सुवेर्त का आत्रा ( छन्दः ) भानन्द भीर ( जगनी ) जिन में मस जगत्व चलता है उस ( छन्दः ) पराक्रन की प्रइष्ट कर भीर कान के सब को सुख युक्त करो ॥ १८॥

भावार्थ:-- जो मनुष्य निश्चय के हेतु आनन्द आदि से साध्य धर्मयुक्त कर्मों को निद्व करते हैं वे सुद्धे। से श्रीमायनान होते हैं॥ १८॥

पृथिबी छन्द इत्परंप विद्यदेविधः। पृथिव्यादयो देवताः। आर्थी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥ किर वडी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

पृथिवी छन्दोऽन्ति। त्विञ्छन्दो द्योरछन्दः समाच्छन्दा नक्षत्राणिच्छन्दो वाक्छन्दो मन्द्रछनदः कृषिरछन्दो हिर्णयुञ्छन्दो गोरछन्दोऽजाछन्दोऽद्युरछन्दः ॥ १९॥

पदार्थ:—हे की पुरुषो तुम लोग जैवे (पृथिवी) सूमि (छन्दः) स्वतम्त्र (अन्तरिक्षम्) आकाश (छन्दः) आवन्द (श्रीः) प्रकाश (जन्दः) विश्वाम (स्वमः) वर्ष (छन्दः) सुद्धि (नक्षत्राणि) सारे लेक (छन्दः) स्वतम्त्र (वाक्) वाणी (छन्दः) मत्य (मनः) मन (छन्दः) निष्कपट (कृषिः) कोतना (छन्दः) जत्यि (हिर्षधम्) हुवर्षे (छन्दः) हुल-दायी (गीः) गी (छन्दः) आनन्द हेतु (अका) अकरी (छन्दः) हुल का हेतु और (अखः) घोड़े आदि (छन्दः) स्वाधीन हैं वैवे विद्या विन्थय भीर धर्म के आचरण विषय में स्वाधीनता से वर्षी। १९॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वायक लु॰—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि शुहु विद्या किया और स्वतन्त्रता से पृथित्री आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्व-भावों की जान खेती आदि कर्मों से सुवर्ण आदि रक्षों की प्राप्त हों और गी आदि पशुभों की रक्षा करके ऐश्वर्ण बढ़ावें ॥ १९॥

भारिनर्देवतेत्यस्य विद्वदेव ऋषिः। ग्रग्न्याद्यो देवताः। भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुण्डन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी नहीं बि ॥

अग्निर्देवता वातों देवता सूर्यों देवतां चन्द्रमां देवता वसंवा देवतां कद्रा देवतां ऽऽद्वित्या देवतां मुक्तों देवतां विश्वें देवा देवता दृहस्पतिर्देवते-न्द्रों देवता वर्षणों देवता ॥ २०॥

पदार्थः — हे खीपुरुषो तुम छोगों को योश्य है कि ( अग्नि: ) प्रमिट्ठ अग्नि ( देवता ) दिवय गुण वालः ( वातः ) प्रवन ( देवता ) शुद्धगुणयुक्त ( सूर्यः ) सूर्यं ( देवता ) अच्छे गुणों वाला ( चन्द्रमाः ) चन्द्रमा (देवता) शुद्धगुणयुक्त ( व्यवः ) प्रसिद्ध आठ अग्नि आदि वा प्रथम कला के विद्वान् ( देवता ) दिव्यगुण वाले ( कद्माः ) प्राण अदि ११ श्याद्ध वा मध्यम कला के विद्वान् ( देवता ) शुद्ध गुणों वाले ( आदित्याः ) बार्ड्ड महीने वा उत्तम

कता के विद्वान् छोग (देवता) शुद्ध (महतः) समन कर्ता विद्वान् ऋत्विग् छोग (देवता) दिठय गुण वाले (विश्वे) मस (देवता) अच्छे गुणों वाले विद्वान् मनुष्यवा दिठय पदार्थ (देवता) देव संद्वा वाले हैं (स्टाम्पितः) बड़े बचन वा अद्धावत का गक्षक परमारणा (देवता) (इग्द्रः) बिजुली वा तत्तम धन (देवताः) दिठय गुण युक्त और (सहणः) कल वा स्रष्ट गुणों वाला है इन को तुम निद्यय जानी॥ २०॥

भावार्थ: - इस संगार में जो अच्छे गुणों वाले प्रार्थ हैं से दिरुप गुण कर्म और स्वभाव काले हैं जो से देवता कहाते हैं और जो देवतों का देव ता होने से महादेव मब का धारक रक्षक रक्षक मब की ठपवन्या और प्रख्य करने हारा सर्वग्रक्तिमान् द्यालु न्यायकारी उत्पक्ति धर्म से रहित है उस सब के अधिष्ठाता परमातमा को सब मनुष्य जानें। २०।।

मूर्क्कांसीत्यस्य विद्ववदेव ऋषिः। विदुषी देवता। निचृ-

द्नुप्रुष्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

विद्वान् की कैमी हो इस वि०॥

मूर्द्धामि राद्ध ध्रुवासि ध्रुकणां ध्रुच्धिसरणी। त्रायंषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्ये त्वा क्षेमांय त्वा।। २१॥

पदार्थ:—हे खो जो तु सूर्य के तुस्य (सूर्द्रा) रुपम (अमि। है (राष्ट्र) प्रकाशम न निश्चल के नमान (भ्रुषा) निश्चल शुदु (अमि। है (धरणा) पुष्टि करने हारी (धरणी) आधार हृप प्रधिशं के तुस्य पर्धि भी धारण करने हारी (अमि) है स्म (स्वा) तुम्हे (आयुषे) जीवन के लिये सन (स्वा) तुम्हे (क्ष्में ) क्षम के लिये सन स्वा तुम्हे (कृष्णे से लिये सन स्वा ) तुम्हे (कृष्णे से ति है। ने के लिये और सन (स्वा) तुम्ह को (श्वेनाय) रक्षा है। से लिये में मध्य और से ग्रहण करता हूं।। २१।

भाषार्थ:— जैसे स्थित उत्तमांग शिर से सब का जीवन राज्य से लक्ष्मी खिती में अक भादि परार्थ और निवास से सा होती है में यह मब का आ धार भूत माता के तुस्य मान्य काने हारी पृथिवी है वैमेही विद्वपन् खी को होना चाहिये। २१।

यन्त्रीत्यस्य विद्वदेव ऋषिः। विदुषी देवता। निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषमः स्वरः॥ फिरको कैभी होवे इम विश्रा

### यन्त्री राद् यन्त्रयमि यमंनी ध्रुवामि धरि-त्री। इपे त्वार्जे त्वां रथ्ये त्वा पाषांय त्वा॥२२॥

पदार्थ: — हे कि जे तू ( मन्त्री ) यन्त्र के नुस्य स्थित ( राष्ट्र ) प्रकाश युक्त । मन्त्री ) यन्त्र का निमित्त पृथित्री के समान ( असि ) है ( यमनी ) आवर्षण शक्ति से नियम काने हाती ( भुता । आकाश महूस हुड़ निश्चल ( धर्मी ) सब शुभगुणों का धारण काने वाली ( असि ) है ( त्वा ) तुक्त की ( दिखें ) इच्छा मिद्धि के लिये ( त्वा ) तुक्त को ( कर्मी के लिये ( त्वा ) तुक्त को प्राप्ति के लिये ( त्वा ) तुक्त को ( पंग्वाय ) पृष्टि है। ने के लिये में ग्रहण काता हूं ॥ २२॥

भावार्थ:-जो स्त्री पृथियों के ममान समा युक्त आकाश के समान नि-इचल और यन्त्र कला के तुल्य जितिन्द्रिय होती है यह कुल का प्रकाश करने बाली है।। २२।।

आशुस्तिवृदित्यस्य विद्ववदेव ऋषिः। यज्ञो देवता । पूर्वस्य भुरि ग्राह्मी पङ्क्तिरछन्दः। पश्चमः स्वरः। गर्भा इत्युक्तरस्य भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥ भव संवरमर कैश है यह विषय अगेडे मन्त्र०॥

<u>आञ्चास्त्रिवृद्भान्तः पंज्चदशो व्योमा सप्त-</u>

ट्शो ध्रणं एक विश्व प्रत्रित्र ष्टा द्वारतपी न-वद्रशोऽभीवृत्तः संविश्वशोवची द्वाविश्वशः सम्भ-रंणस्त्रयोविश्वशोयोनिश्चतुर्विश्वशः । गर्भा पञ्च-विश्वश ओजंस्त्रिणवक्रतुरक विश्वशः प्रांतिष्ठा त्रंय-स्त्रिश्वशो वृष्टनस्यं विष्ट्रपं चतुस्त्रिश्वशो नार्वः पद्तिश्वशो विवृत्तिष्टाचत्वा विश्वशो ध्रत्रं चंतु-ष्ट्रोमः ॥ २३ ॥

पदार्थ:- हे मनुष्यो तुम लोग इस वर्तमान मंवत् में ( अ शु: ) शीघ्र (त्रिवृत्) शीत और उष्ण के शीच वर्तमान (भारत: ) पकाश ( शः) पन्द्रह प्रकार का (ठशेमा) आकाश के मनान विस्तार युक दशः) मत्रह प्रकार का ( घरुणः ) घारण गुण ( एकविशः ) इक्कीन प्रकार का ( प्रतृत्ति: ) शीघ्र गिन वाला ( अष्टादश:, अठाः ह प्रवार का ( नप: ) सन्तार्धा गण (नवद्श:) उन्नोश प्रकार का (अभीवर्स:) मन्मुख वर्त्तने बाला गुण ( मविश: । इक्कोश प्रकार की ( बर्च: ) दीहि ( द्वाविश: हैन प्रकार का (सम्भारणः ) अच्छे प्रकार धारण कारक गुण (त्रयीविंशः) तिईस प्रकार का ( योनि ) सर्याग विवीगकारी गुण ( नतुर्विश: ) चौबीर प्रकार की (गर्भाः) गर्भ घारण की शक्ति ( पञ्चियाः) धर्च स प्रका का (ओज:) पराक्रम (त्रिणतः) मत्ताईस महत्य का (कत्ः) कर्म व बुद्धि ( एकत्रिंश: ) एकलीन प्रकार की (प्रशिष्ठा) मबकी स्थि।त का निम्म किया ( त्रयिक्तांश: ) तेतीम प्रकार की ( अध्नस्य ) कहे देशवर की ( वि ष्ट्रपम् ) ठयामि (चतुर्खिशः) चौतीम प्रकार का त्नाकः। आनन्द (घट्डिशः) छत्तीन प्रकार का (विश्रमी: ) विविध प्रकार में बत्तेने का आधार ( अष्टा-चल्या। रंश: ) अहुनालीन प्रकार का (घर्षम्) घारण और (चतुष्टांमः) चार स्तु तियों का आधार है उन को सबत्सर जानो ॥ २३ ॥

भावार्थः — जिस सक्तनर के नम्बन्धी भूत प्रविष्यत् और वर्त्तमान काल आदि अवयव हैं उन के सम्बन्ध से ही ये सब संसार के व्यवहार है।ते हैं ऐसा तुम लोग जानी !! २३ !!

अग्ने भीग इत्यस्य विद्वत्वंत्र ऋषिः । मेधाविनो देवताः । भारितिक्कृतिद्वज्ञन्दः । मध्यमः स्वरः ॥ अब मनुष्यकित मकार विद्या पढ़ के कैता आचरण करें यह वि०॥

अग्नेर्मागोसि दीत्ताया आधिपत्यं ब्रह्मं स्पृतं त्रिवृत्स्तोमंः । इन्द्रंस्य मागोऽसि विष्णोणधिपत्यं श्चत्रक्षसपृतं पंञ्चद्रश स्तोमः । नृचक्षंसां
मागोसि धातुराधिपत्यं जनित्रं छ स्पृतक संप्तदश स्तोमंः । मित्रस्यं मागोऽसि वर्रणस्याधिपत्यं दिवा दिष्टिर्वातं स्पृत एकविकश स्तोमंः

## 11 88 11

पदार्थ:—हे बिद्वन् पुरुष जो तू ( अग्ने ) सूर्यं का ( भागः ) विभाग के ग्रेग्य संबद्धा के तुल्य ( अिम ) है से लूं ( दीक्षायाः ) ग्रह्मचर्यं आदि की दीक्षा का ( स्पृतम् ) मिति में में बन किये हुए (भाषिपत्यम्) । ब्रह्म) ब्रह्म कुछ के भिषकार की माप्त हो जो ( जिस्त् ) शरोर वाणी और मान्य संस्थानों से शुद्ध वर्त्तमान ( स्तामः ) स्तृति के थोग्य ( इस्ट्रस्य ) बिजुली वा उत्तम ऐग्वय्यं के ( भागः ) विभाग के तुल्य ( अित ) है से तू ( वि ध्योः ) उपायक इंश्वर के ( स्पृतम् ) मिति से सेवने ग्रेग्य ( सन्तम् ) का कि ग्रें के भन्कूल राजकुल के ( अध्यायत्यम् ) अधिकार के। माप्त है। जो तू ( पंचदशः ) पण्दह का पूर्व ( स्तामः ) स्तृतिकर्ता ( ज्यक्षमाम् ) मनुष्यां से कहने ग्रेग्य पदार्थों के ( भागः ) विभाग के तुल्य ( अिष ) है

से। तूं ( चातुः ) धारण कर्ता के (स्एतम् ) इंग्नित ( किनतम् ) जन्म भीर ( काधिपत्यम् ) अधिकार के। मास है। जी। तूं ( सप्तद्गः ) सत्त (इ. संस्था का पूरक (स्तामः ) स्तुति के येग्य ( नित्रस्य ) प्राण का ( भागः ) वि-भाग के समान ( असि ) है से। तू ( वस्त्रपत्य ) मेष्ठ जलों से (भाधिपत्यम् ) स्वामीपन की प्राप्त हो। तू ( वातः स्पृणः ) सेविन पवन भीर ( ए-कविंशः ) सङ्घीस संस्था का पूरक ( स्तोमः ) स्तुति के साधन के समान ( असि ) है से। तू ( दिवः ) प्रकाशकाय सूर्य से ( वृष्टिः ) वर्षा है। ने का हक्त आदि स्थाय का ॥ २४ ॥

भाषार्थः - इस मन्त्र में वाचकलुः - जो पुरुष बाल्यावस्था से सेकर स-ज्जानों ने उपदेश की हुई विद्याओं के ग्रहण के लिये प्रयत्न कर के अधि-कारी है। ते हैं वे स्तुति के योग्य कर्नों के। कर और उत्तम है। के विधान के सहित काल के। जान के दूसरों को जन। वैं॥ २४ ॥

वस्तां भाग इत्यस्य विद्वदंव सिद्धः। वस्वादगी लिंगोक्ता देवताः। स्वराद संकृतिद्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥ किर भी पूर्वकि विषय अगले यस्त्र से कहा है॥

वमृनां भागांऽसि कृद्राणामाधिवत्यं चतुंष्पा-त्सपृतं चतुर्विछशस्तोमः । आदित्यानां भागो-ऽसि मुस्तामाधिपत्यं गर्भाः स्पृतः पञ्चविकश-स्तोमः। अदित्ये भागोऽसि पूष्णा आधिपत्यमो-जस्पृतं त्रिणवस्तोमः देवस्यं सवितुर्भागोऽभि बह्रस्पत्राधिपत्यक समीचीर्दिशं स्पृताइचंतु-ष्ट्रोमः ॥ २५॥

पदार्थ:--हे विद्वन् जो तूं (वसूनाम् ) भरिन भादि भाठ वा प्रथम कसा के विद्वानों का ( भाग: ) रेवने योग्य ( असि ) है मो ( सद्राणाम् ) द्श प्राण आदि ग्यारहवां जीव वा मध्य कक्षा के विद्वानों के (आधिपत्यम्) अधिकार की माप्त हो हैंजो ( चतुर्विश:) विवीस प्रकार का ( स्तीम: ) स्तु-तिकर्ता ( भादित्यानाम् ) बारइ महीनां वा उत्तन कता के विद्वानीं के (भागः) सेवने योग्य (असि ) है सो तू (चतुष्यात्) गी आदि पशुनीं का (स्पृतम्) सेवन कर ( मस्ताम् ) मनुष्य वा पशुनी की ( काधिपत्यम् ) मधिष्ठाता हो जो तू ( पञ्चित्रंशः ) प्रश्वीस प्रकार का ैं ( स्तामः ) स्तृति के घीग्य ( अदित्ये ) अखगिहत आकाश का ( मागः ) विमाण के तुस्य (अवि) है सो तू ( पूष्णः ) पुष्टि कारक पृथिवी हैं के ( स्एतम् ) सेवने योग्य (क्षीजः) बल को प्राप्त होके ( आधिपत्यम् ) अधिकार को ( प्राप्तु हि ) प्राप्त हो जी तू (त्रिणवः) सत्ताईस प्रकारका (स्तामः) स्तुति के योग्य (देवस्य) बुखदाता ( सिक्तुः ) पिता का ( भागः ) विभाग ( असि ) है सो तू ( स-स्पतेः) बड़ी वेदक्तवी वाणी के पालक ईश्वर के दिये हुए ( आधिपत्यम् ) अधि-कार की प्राप्त है। जी तूं ( चतुष्टोमः ) चार बेदों से कहने योग्य स्तृति कर्त्ता है सो तूं (गर्भाः) गर्भ के तुल्य विद्या कीर शुप्त गुणों से आव्छादित (स्पृताः) प्रीतिमान् सङ्जनसोग जिन को जानते हैं उन (समीची:) स-म्यक्) प्राप्ति के साधन (स्वृताः ) प्रीप्ति का विषय (दिशः) पूर्व दिशाओं को जान ॥ २५ ॥

भावार्थः - जे सुन्दर स्वभाव आदि गुणों का ग्रहण करते हैं वे विद्वानें। के प्यारे हैं। के सब के अधिष्ठाता होते हैं और जे। सब के ऊपर अधिकारी हैं। वे मनुष्या में पिता के समान वर्ते॥

यवानां भाग इत्यस्य विद्वदेव ऋषिः। ऋभवो देवताः। निचृद्तिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

किर वह शरद् ऋतु में कैने वर्त्त यह वि०॥

## यवानां मागोस्ययंवानामाधिपत्यं प्रजा स्पु-ताइचंत्वारिक्षश स्तोमंः । ऋभूणां मागोऽसि विद्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतक्षस्पृतं त्रंयस्त्रिक्ष-श स्तोमंः ॥ २६ ॥

पदार्थ: — हे ननुष्य जे। तू ( यवानाम् ) निले हुए पदार्थों का नेवन करने हारा शाद आतु के समान ( असि ) है जे। ( अयवानाम् ) प्रयक् र अमे वाले पदार्थों के ( आधिपत्यम् ) अधिकार की प्राप्त हो कर ( रएताः) प्रीति ने ( प्रजाः ) पालने ये। य प्रजाओं के। प्रेमयुक्त करता है जे। ( चतु-प्रथतारिंशः ) चवालीस संख्या का पूर्ण करने वाला ( स्ते। । स्तुति के ये। य ( आभूणाम् ) खुद्धिमानों के ( भागः ) सेवने ये। य ( असि ) है ( विश्वदेवाम् ) नव ( देवानाम् ) विद्वानों के ( भूतम् ) हे। चुके ( स्पृतम् ) सेवन किये हुये ( आधिपत्यम् ) अधिकार की प्राप्त है। कर जे। ( श्रयिकांशः ) तेंशीस संख्या का पूरक ( स्ते। भः ) स्तुति के विषय के समान ( असि ) है से। तू हम् लेंशों से सत्कार के ये। य है ॥ २६ ॥

भावार्थः — इस मन्त्रमें वाचकलुक मनुष्यों की चाहिये कि जी ये पीछे के मन्त्री में शरद् ऋतु के गुण कहे हैं उन का यथात्रत् नेवन करें यह शाद् ऋतु का व्याख्यान पूरा हुना ॥ २६॥

सहरुचेत्यस्य विरुवदेव ऋषिः। ऋतवो देवताः। पूर्वस्य सुरिगति-जगती हृन्दः। निषादः स्वरः। ये अग्न इत्युत्तरस्यश्च

रिग्ज्ञास्ती बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥ अब देगन्त ऋतु के विधान के। अगले जन्त्र में कहा है।।

सहंश्च सहस्यश्च हैमंन्तिकावृत् अग्नेरंन्तः-श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावांप्रथिवी कल्पन्तामाप ओषंधयः कल्पंन्तामग्नयः प्रथङ् मम ज्येष्ठ्यांय सत्रंताः । ये अग्नयः समंनसोऽन्त्रा द्यावांप्ट-थिवी इमे हैमंन्तिकादृत् अंभिकल्पंमाना इन्द्रं-मिव देवा अंभिसंविंशन्तु तयां देवतंयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सींदतम् ॥ २७॥

पदार्थ: - हे निम्नजन जो ( सम ) मेरे ( ज्यैष्ठवाय ) वृद्ध श्रेष्ठ जनीं के होने के लिये ( सह: ) बलकारी अगहन ( च ) और (महस्य: ) बल में प्र वृक्त हुआ पीष (च) ये दोनों महीने (हैमन्तिकी) (ऋतू) मेहन्त ऋतु में हुए अपने विन्ह जानने वाले (अङ्गिरस्वत्) उस ऋतु के प्राचा के समा-न ( घीदतम् ) स्थिर हैं जिस ऋतु के ( अन्त: श्लेष: ) नध्य में स्पर्श होता है उस के सगान तूं (असि ) है सो तू उन ऋतु ने (द्यावापृथिकी) आकाश भीर भूमि (कल्पेताम् ) समर्थे हो (आप: ) जल और (कोषधयः) भोषधियां भीर (भागतः) सफीदाई से युक्त भगित (प्रथक्) प्रथक्त् २ (करवन्ताम्) समर्थ हो ऐसा जान (ये) जो ( भग्नय: ) अभिनयों के तुन्त ( भन्तरा ) भीतर प्रविष्ट होने थाले ( म्ब्रता: ) नियमचारी ( समनमः ) निवस्द्व वि-चार बाले लोग ( इसे ) इन ( धुवे ) दूढ़ ( द्यावापृथिवी) आकाश और भूनि को (कल्पन्ताम्) समर्थित करें (इन्द्रमिव) ऐन्नर्य के तुरुय (हैनन्ति-की ) (ऋतू) हेनन्त ऋतु के दंश्निं सहीनें को (अभिकल्पनानाः ) सन्मुक हो कर समर्थ करने वाले (देवा: ) दिठय गुण बिजुली के समान (अभिसं-विशन्त ) भावेश करें वे सज्जन लोग ( तया ) उस (देवतया) प्रकाशकारूप परमात्मा देव के साथ प्रेम बहु हो के नियम से आहार और विदार करके सुकी हों || २० ||

भावार्थ:--इस मंत्र में वाचकलुं,-विद्वानें। को योग्य है कि यथायो-ग्य हुत के लिये हेमनत झतु में पदार्थों का सेवन करें और वैसे ही दूसरें। को भी सेवन करावें ॥ २७ ॥ एकपेत्पद्य विद्वबद्देव ऋषिः। ईद्वबरो देवता । उन्नि निचृद्धिकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥ भव यह ऋतुओं का चक्र किसने रद्या है इस विश्व॥

्षक्यास्तुवत प्रजा श्रंधीयन्त प्रजापंतिर्धि-पतिरासीत्। तिसुभिरस्तुवतः ब्रह्मां सुज्यतः ब्र-ह्मणस्पतिर्धिपतिरासीत्। पुश्चिभिरस्तुवतः भू-तान्यंसुज्यन्तः भूतानां पतिरिधिपतिरासीत्। मप्तिभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसुज्यन्त धाताऽधि-पतिरासीत्॥ २८॥

पदार्थ:— हे सनुष्यो ( प्रशापतिः ) प्रजा का पालक ( शिषपतिः ) सब का अध्यक्ष परमेर्घर ( भानीत् ) है उनकी ( एक्या ) एक वाणी से ( भरतुवत ) स्तृति करो भीर जिस ने सब ( प्रजाः ) प्रजा के लेगों की वे-दहारा ( अधीयन्त ) विद्यायुक्त किये हैं को ( प्रह्मणस्पतिः ) वेद का ग्राक ( अधिपतिः ) सब का स्वामी परमात्मा ( आसीत् ) है जिस ने यह (प्रह्म) सकल विद्यायुक्त वेद की ( भरतुवत ) रचा है उस की ( तिस्तिः ) प्राण बदान भीर उपान वायु की गति से ( भरतुवत ) स्तृति करो जिस ने ( भ्रतानाम् ) सब भूतों का ( पतिः ) रक्षक ( अधिपतिः ) रक्षकों का भी रक्षक ( आसीत् ) है उस की सब मनुष्य ( पञ्चितः ) रक्षकों का भी रक्षक ( आसीत् ) है उस की सब मनुष्य ( पञ्चितः ) रक्षकों का भी रक्षक ( आसीत् ) है उस की सब मनुष्य ( पञ्चितः ) रक्षकों का भी रक्षक ( आसीत् ) है उस की सब मनुष्य ( पञ्चितः ) रक्षकों का भी रक्षक ( आसीत् ) सुक्त से ( अस्तुवतः ) स्तृति करें जिस ने ( सम्प्राणयः ) पांच मुख्य प्राण, महस्तरव—समष्टि और अहंकार सात पदार्थ ( अस्तुव्यन्तः ) रचे हैं जी ( भाता ) भारण वा पेषण कर्षा ( अधिपतिः ) सब का स्वामी (आसीत्)

है उसकी (कप्रभिः) नाग, कूम्में, ककल, देवद्त्त, धनंत्रय कीर इच्छा तथा प्रयक्षों से ( अस्तुवत ) स्तुति करें।। २८ ॥

भावार्ध:— सब मनुष्यें के ये। ग्य है कि सब जगत के उत्पादक न्या-यकको परमात्मा की न्तृति करें सुने विकारें भीर अनुभव करें। जैसे हेमन्त आतु में सब पदार्थ शीतल होते हैं वैसे ही परमेश्वर की स्पासना करके शान्ति शील है।वें॥ २८॥

नवभिरस्तुवतेत्यस्य विज्वदेव ऋषिः। ईश्वरो देवता । पूर्वस्यार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । त्रयोदशभिरित्युत्तस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह जगत् का रचने थाला कैना है इस वि०॥

पदार्थ:—हे मनुष्णो तुमछा ग तिम ने (पितर:) रक्षक मनुष्य (असु-ज्यन्त) उत्पन्न किये हैं जहां (अदिति:) रक्षा के येग्य (अधिपत्नी) अत्यन्त रक्षक माता (आसीत्) हेग्वे उस परमात्मा की (अविधः) सव प्राक्षों से (अस्तुवत) गुण प्रशंसा करो जिस ने (ऋतव:) वसन्त आदि ऋतु (असुच्यन्त) रचे हैं जहां (आर्थवा:) उन र ऋतुओं के गुण (अधि- पत्यः ) अपने २ विषय में अधिकारी ( आसन् ) हाते हैं उस की ( एकादशिमः ) दश प्राणों और ग्यारहर्वे आत्मा से ( अस्तुत्रत ) स्तुति करी जिस
ने ( मासाः ) चैत्रादि बारह महीने ( अस्तुत्रत ) रचे हैं ( पंषद्शिमः )
पन्द्रह तिथियों के सहित ( संवतसरः ) संवत्सर ( अधिपतिः ) सब काल
का अधिकारी रचा ( आसीत् ) है उस की ( त्रयोद्शिमः ) दश प्राण ग्यारह्वां जीवात्मा और दो प्रतिष्ठाओं से ( अस्तुत्रत ) स्तुति करें। जिन से
( इन्द्रः ) परम संपत्ति का हेतु सूर्य (भिष्पितिः) अधिष्ठाता स्वत्म किया
( आसीत् ) है जिसने ( सत्रम् ) राज्य वा सत्रिय कुल के। ( प्रसुज्यत )
रचा है सस्ते (सप्तद्शिमः) दश पांव की अंगुली दो जचा, दो जानु, दो प्रतिष्ठा और एक नाभि से ऊपर का अग इन सन्नहीं से ( अस्तुत्रत ) स्तुति
करें। जिस ने ( सहस्पतिः ) बड़े २ पदार्थों का रक्षक वैश्य ( अधिपतिः )
अधिकारी रचा ( आसीत् ) है और ( प्राण्याः ) ग्राम के ( प्रश्वः ) गौ
आदि पशु ( अस्तुवत ) स्तुति करें। ।। २८ ।।>

भावार्थ: — हे मनुष्या आप छाग जिस ने काल के विभाग करने वाले सूर्य आदि पदार्थ रचे हैं उस परमेश्वर की उपासना करें। !! २९ !!

नषद्शभिरित्यस्य विश्वदेव ऋषिः। जगदी इवरो देवता। पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

पश्चविद्यात्यस्य ब्राह्मी पङ्क्तिइक्टन्दः।

पश्चमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है यह वि०॥

नवटशमिरस्तुवत शृद्यार्थावसुज्येतामहोरा-त्रे अधिपत्नी आस्ताम् । एकंविधशत्यास्तुव-तैकशफाः पशवीऽमृज्यन्त वरुणोऽधिप्तिरासी-

त् । त्रयोविधशत्यास्तुवत श्रुद्राः प्शवोऽमृज्य-

न्त पूषाधिपतिरासीत् । पञ्चविधशत्यास्तुवता-ऽऽरण्याः पृशवोऽसृज्यन्त वायुरिधपतिरासीत्। सप्तविधशत्यास्तुवतः वावांष्टश्चिव्येतां वसंवो रुद्रा आंदित्या अंनुव्यायँस्त एवाधिपतय ग्रा-सन् ॥ ३० ॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो सुम जिमने उत्यक्त किये ( अहेग्रात्रे ) दिन भीर रात्रि ( अधिपत्नी ) सब काम कराने के अधिकारी ( आस्ताम् ) हैं जिसने ( श्रुद्रार्थ्यों ) श्रुद्र और आर्थ द्वित्र ये देश्में ( असुत्र्येनाम् ) रचे हैं एस की ( नवद्शितः ) दश प्राण पांच महाभूत मन, बुद्धि, चित्त और अश्वंकारें। से ( अस्तुवत ) स्तुति करी जिमने तत्यक्ष किया ( वहण: ) अस्त ( अधि-पति: ) प्राण के समान प्रिय अधिष्ठाता ( आसीत ) है जिसने (एकशकाः) जुड़े एक ख़रों बाले घेरहे आदि ( पशवः ) पशु ( असुज्यन्त ) रचे हैं उस की (एकविंशत्या) मनुष्यों के रह्मीम अवयवों से (अस्तुवत) स्तृति करी जिसने बनाया (पूषा) पुष्टिकारक भूगोल (अधिपति:) स्था करने वास्ता (आसीत्) है जिसने ( जुद्राः ) अति सूक्ष्म जीवों से से कर नकुल पर्यान्त ( पशवः ) पशु (असुक्यन्त) र से हैं तस की (अयाविंशत्या) पशुभी के तेईम अवयवों से ( अस्तुवत ) स्तुति करे। जिम ने बनाया हुआ (बायुः) आयु ( अधिपति: ) पासने हारा ( आसीत् ) है जिन ने (आरयाः) बन के ( पशवः ) सिंह आदि पशु ( असुउधन्त ) रचे हैं ( पश्चविंशत्या ) अनेकी प्रकार की छोटे २ वन्य पशुनों की अवयवों की साथ अर्थात् उन अवयवों की कारीगरी के साथ ( अस्तुवत ) प्रशंसा करें। जिमने बनाये ( द्यावापृथिवी ) आकाश और भूमि (ऐताम्) प्राप्त हैं जिस के बनाने से (वसवः) अगित कादि काठ पदार्थ वा प्रथम कक्षा के विद्वान् ( रुद्राः ) प्राय कादि वा मध्यम विद्वान् (आदित्याः) बारइ सद्दीने वा उत्तम विद्वान् ( अनुव्यायम् )

अनुकूलता से उत्पन्न हैं (ते) (एव) वे अग्नि आदि ही वा बिद्धान् छाग (अधिपतयः) अधिष्ठाता (आसन्) होते हैं उम की (सप्तविंशत्या ) सत्ताईस बन के पशुओं के गुणों से (अस्तुवत्) स्तुति करें। ॥ ३०॥

भावार्थ: —हे मनुष्यो जिसने ब्राह्मण सत्रिय वैश्य और शूट् हाकू मनुष्य भी रचे हैं जिसने स्यूख तथा मूक्त्म प्राणियों के शरीर अत्यन्त छोटे पशु और इन की रक्षा के साधन पदार्थ रचे और जिस की सृष्टि में न्यून विद्या और पूर्ण विद्या वाले विद्वान् होते हैं उसी परमातना की तुम लोग उपासना करो॥३०॥

नयविश्वशत्यंत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।
स्वराङ ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
फिर भी वही उक्त विश्वा

नवंविधशत्यास्तुवतः वनस्पतंयोऽसुज्यन्तः सोमोऽधिपतिरामीतः । एकंत्रिधशतास्तुवतः प्र-जा अंसुज्यन्तः यद्याश्चायवाद्याधिपतयः आमु-नः । त्रयंस्त्रिधशतास्तुवतः भूतान्यंशाम्यन्प्रजा-पंतिः परम्ष्रियधिपतिरासीतः ॥ ३१॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो तुम लोग जिनके बनाने से (सोमः) ओषधियों में उत्तम ओषधि (अधिपतिः) स्वामी (आसीत्) है जिस ने उन (वन-स्पत्यः) पीपल आदि वनस्पतियों को (असुज्यन्त) रचा है उम परमान्तमा की (नवविंशत्या) उमतीस प्रकार के वनस्पतियों के गुक्कों से (अस्तुवत) स्तुति करो । और जिस ने उत्पन्न किये (यवाः) समष्टिह्म बने पर्वत आदि (च) और त्रसरेगु आदि (अयवाः) सिक २ प्रकृति के अव-यव सम्ब रज्ज और तमोगुण (च) तथा परमा कु आदि (अधिपतयः) मुख्य कारकृष्य अध्यक्ष (आस्न्) हैं उन (प्रजाः) प्रसिद्ध ओषधियों की जिसने (अस्तुवन्त) रचा है उस इंश्वर की (एकत्रिंशता) इकत्ती स

प्रका के अवयवों से ( अस्तुवत ) प्रशंमा करो । जिस के प्रभाव से (भूतानि) प्रकृति के परिणाम महत्तत्व के उपद्रव ( अशाम्यन् ) शान्त हों जो (प्रजा-पतिः ) प्रजा का रक्षक ( परमेष्ठी ) परमेश्वर के समान आकाश में व्याप क हो के स्थित परमेश्वर ( अधिपतिः ) अधिष्ठाता ( आसीत् ) है उस की ( त्रयक्षिंशता ) महाभूतों के तेतीस गुणों से ( अस्तुवत ) प्रशंसा करी ॥३१॥

भावार्थः — जिस परमेश्वर ने लोकों की रक्षा के लिये बनस्पति आदि सीषिचियों को रच के चारण और ठयवस्थित किया है उसीकी उपासना मब मनुष्यों को करनी चाहिये॥ ३१॥

इम अध्याय में वसन्तादि ऋतुओं के गुण वर्णन होने से इस अध्याय के अर्घ की संगति पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ आननी चाहिये॥

यइ चेद्हवां अध्याय पूरा हुआ !!



जों विद्यांनि देव सविनर्दृतितानि परां सुव । पद् भन्नं तस्र आसंव ॥ १ ॥

भग्ने जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। मग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥ भव पन्द्रहर्वे मध्याय का मारम्म है इस के प्रथम मन्त्र में राजा और राजपुरुषों को क्या २ करना चाहिये इस वि०॥

अग्ने जातान् प्र णुंदा नः सुपत्नान् प्रत्यजातान्तुद् जातवेदः। अधिनो बृहि सुमना अहेंड्स्तवं स्वाम् शर्मिहित्रवर्स्य उद्भी॥१॥

पदार्थः है ( अग्नं ) राजन् वा सेनापते आप ( नः ) हमारे ( जातान् ) प्रसिद्ध (सपलान् ) शत्रुमों को ( प्र, नृद् ) दूर कीजिये । हे ( जातवेदः ) प्रसिद्ध बलवान् राजन् आप ( अजातान् ) अप्रसिद्ध शत्रुभों को ( नृद ) प्रेरणा कीजिये और हमारा ( अहेडन् ) अनाद्र न करते हुए ( सुमनाः ) प्रसन्न चित्त आप ( नः ) ( प्रति ) ह- मारे प्रति ( अधिष्ट्रहे ) अधिक उपदेश कीजिये जिससे हम लोग ( तव ) आप के ( उद्भौ ) उत्तम पदार्थों से युक्त ( तिवरुथे ) आध्यात्मिक आधिमौतिक और आ- धिदैविक इन तीनों सुनों के हेतु ( शर्मन् ) घर में ( स्थाम ) सुनी होवें ॥ १॥

भावार्थः-राजा मादि न्यायार्थाश्च सभासदों को चाहिये कि गुप्त दूतों से प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध शत्रुमों को निश्चय करके वश में करें और किसी धर्मात्मा का तिर-स्कार और प्रधर्मी का सरकार भी कभी न करें जिस से सब सज्जन लोग विश्वास पूर्वक राज्य में बसें ॥ १॥

सहसा जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। भग्निर्देवता । भूरिक् त्रिष्टुष्छन्दः। धैवतः खरः॥

फिर भी वही पूर्वोक्त विषय मगले मन्त्र में कहा है।। सहंसा जातान् प्रणुंदा नः सुपत्नान् प्रत्यज्ञांतान् जातवेदो नुदस्व । अधि नो ब्र्हि सुमन्स्यमानो न्यथक्ष्यो<u>म</u> प्रणुदा नः स्रपः त्नोन् ॥ २॥

पदार्थ:-हे (जातवेद:) प्रकृष्ट ज्ञान को प्राप्त हुए राजन् आप (नः) हमारे (सिहसा) बल के सहित (जातान्) प्रसिद्ध हुए (सपलान्) श्रञ्जमों को (प्रणुद्ध) जीतिये और उन (प्रति) (अजातान्) युद्ध में छिपे हुए श्रञ्जमों के सेवक मित्रभाव से
प्रसिद्धों को (क्षेत्रस्ख) पृथक् कीजिये तथा (सुमनस्यमानः) मच्छे प्रकार विचारते
हुए आप (नः) हमारे लिये (अधिवृद्धि) अभिकता से विजय के विधान का उपदेश कीजिये (वयम्) हम लोग आप के सहायक (स्याम) होवें जिन (नः) हमारे (सपलान्) विरोध में प्रहत्त सम्बन्धियों को माप (प्रणुद्ध) मारे उन को हम
लोग भी मारे ॥ २॥

भावार्थः नराजा को चाहिये कि जा राज्य के सेवक शासुमों के नियारण करने में यथाशकि, प्रयत्न न करें उन की अच्छे प्रकार दण्ड देवें भीर जी अपने सहायक हों उन का सतकार करें ॥२॥

> पोडशीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। दम्पती देवते। माह्यी त्रिप्टुण् छन्दः। धैवतः स्वरः॥ स्रव स्त्री पुरुष का धर्म सगत्वे संत्र में फहा है॥

षोड्डदी स्तोम आंजो द्रविण चतुर्चत्वारिष्ठंश स्तोमो बर्ची द्रविणम् । अग्नेः पुरीषमस्यष्मो नाम तान्त्वा विश्वे अभि गृंगः नतु देवाः। स्तोमंष्टा धृतर्वतिह सीद् प्रजाबंद्रसे द्रविणा यंजस्य ॥३॥

पदार्थः-जो (पोडशी) प्रशंक्ति संलद्द कलाओं से युक्त (स्तेमः) स्तृति के योग्य (ओजः) पराक्रम (द्र्विश्वम ) धन जो (चतुर्द्वादिशः) चवाकीस संख्या को पूर्ण करने वाला ब्रह्मचर्य का शाच्या (स्तेमः) स्तृति का साधन (नाम) मिस् (वर्चः) पहना मोर (द्रिविश्वम ) यल को देती है जो (अग्नेः) मिन की (पुरीपम्) पूर्ति को प्राप्त (अग्नः) हुन्दे के पदार्थी के भोग की इच्छा से रहित (असि) हो उस (न्वा) पुरुप तथा (नाम्) स्त्री की (विद्ये) सव (देवाः) विद्वान जोग (अभिगृगान्तु) प्रशंसा करें सो न् (स्तोमपृष्ठा) इष्ट स्तृतियों को जनाने वार्जा (पृत्वती) प्रशस्ति धी मादि पदार्थी से युक्त (इह । इस गृहाश्रम में (सी-द्र) स्थित हो और (अस्मे) हमारे जिये (प्रजावत्) बहुन सन्तानों के हेतु (द्र-

विशा) धन को (यजस्व) दिया कर ॥३॥

भाषार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि सोखह कलारूप जगत् में विद्यारूप यक्ष को फैला मौर गुहाश्रम करके विद्यादान कर्मों को निरन्तर किया करें ॥ ३॥

प्रवस्कन्य इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्यासी देवता । निच्छा-

कृतिरुक्तन्दः। पश्चमः स्वरः॥

मतुष्यों को चाहिये कि प्रयक्षपूर्वक साधनों से सुख बढ़ावें यह वि०॥
एव्इक्षन्दों वरिवृद्द्यन्दंः शाम्भूद्द्यन्दंः पश्चिम्द्द्यन्दं आन्छचक्षन्दों मन्द्रक्षन्दों व्यच्चद्र्यन्दः सिन्धुद्र्यन्दंः समुद्रद्यन्दंः सः
रितं छन्दंः क्रुप् कन्दंस्त्रिक्षकुष्क्रन्दंः काव्यं छन्दे। अङ्कुषं छन्दोः
ऽक्षरंपङ्क्तिद्यन्दंः प्रदर्षङ्क्तिद्यन्दे। विष्ट्रारपङ्क्तिद्यन्दंः सुद्यन्दों अञ्च्छन्दंः ॥ ४॥

पदार्थः - हे मनुष्यां तुम क्षांग उत्तम प्रयक्ष सं ( एदः ) ( छन्दः ) आनन्ददायक क्षान ( विरिवः ) सत्य सेवनरूप ( कन्दः ) मुखदायक ( द्वाम् ) मुख का अनुभव (कन्दः) आनन्दकारी ( पिरमूः ) सब ओर से पुरुपार्थी ( कन्दः ) सत्य का प्रकाशक ( आच्छत् ) दोर्यो का हटाना ( कन्दः ) जीवन ( मनः ) संकल्प विकल्पासक ( कन्दः ) प्रकाशकारी ( व्यचः ) ग्रुभ गुणा की व्याप्ति (छन्दः) आनन्दकारक (सिन्धुः) नदी के तृत्य चलना ( कन्दः ) स्वतन्त्रता ( समुद्रः ) ममुद्र के समान गंभीरता कन्दः ) प्रयोजनिसिद्धिकारी ( सिरिम् ) जल के नृत्य कोमन्दता ( कन्दः ) जल के सम्मान शान्ति ( ककुप् ) दिशाओं के तृत्य उज्जवल कीर्ति ( कन्दः ) प्रतिष्ठा देने वाला ( विककुप् ) अध्यातमादि नीन मुखों का प्राप्त करने वाला कर्म ( छन्दः) आनन्दकारक ( काव्यम् ) दीर्घदर्शी कवि लोगों ने बनाया (छन्दः) प्रकाशकविज्ञानदायक (अङ्कुप्म ) टेदी गित वाला जल ( कन्दः ) उपकारी ( अक्षरपङ्किः ) परलोक ( कन्दः ) आनन्दकारी (पदपङ्किः) यह लोक ( कन्दः ) सुखसाधक (विष्टारपङ्किः) सव दिशा (कन्दः) सुख का साधक ( जुर) छुरा के समान पदार्थो का केदक सूर्य ( कन्दः ) विकानस्वरूप ( भूजः ) प्रकाशमय ( छन्दः ) स्वच्छ वानन्दकारी पदार्य सुख के लिये सिद्ध करो ॥ ४॥

भावार्थः - जो मनुष्य धर्मयुक्त कर्म में पुरुषार्थ करने से सब के प्रिय होना अ च्छा समभते हैं वे सब सृष्टि के पदार्थों से मुख होने को समर्थ होने हैं॥ ४॥

भाच्छच्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। विद्वांसा देवताः।

सुरिगभिकातिइक्दरः। ऋषभः स्वरः॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयक्त के साथ स्वतन्त्रता बढ़ावें यह वि० ॥
आष्ठ चछन्देः प्रचछच्छन्देरसंयच्छन्दों वियच्छन्दों पृहच्छन्दों
रथन्तरञ्छन्दों निकायइछन्दों विवधइछन्दों गिर्इछन्दों अज्ञइछन्देः संअस्तुप् छन्दोंऽनुष्टुप् छन्द एवइछन्दों वरिवइछन्दों वर्धः
इछन्दों वयुस्कुचछन्दों विष्पंद्यीइछन्दों विश्वालं छन्देइछ्दिइछन्दों द्रोहणं छन्देइछ्दिइछन्दों अङ्काङ्कं छन्देः ॥ ५ ॥

पदार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि ( आञ्छत् ) अञ्के प्रकार पापों की निवृत्ति कर-ने हारा कर्म (कुन्दः) प्रकाश ( प्रच्छत् ) प्रयक्ष से दृष्ट स्वभाव को दृर करने वाला कर्म ( इन्दः ) उत्साह ( संयत् ) संयम ( छन्दः ) बल ( वियत् ) विविध यस का साधक ( बन्दः ) धैर्यं ( बृहत् ) बहुत वृद्धि ( बन्दः ) स्वतन्त्रता ( रथन्तरम् ) स-मुद्रकप संसार से पार करने वाला पदार्थ ( छन्दः ) स्त्रीकार ( निकायः ) संयोग का हेत बाय ( छन्दः ) खीकार (विविधः ) विशेष करके पदार्थी के रहने का स्थान मन्तरिक्ष ( ऋन्दः ) प्रकाशक्रप ( गिरः ) भागने योग्य अस ( छन्दः ) महस्स (भ्रजः) प्रकाशक्रप भाग्न (क्रन्द: ) ले लेना (संस्तुप ) अच्छे प्रकार शब्दार्थ सम्बन्धों की जनाने हारी वाणी ( छन्दः ) मानन्द कारक ( मन्दूष् ) सनने के पीछे शास्त्रों को जनाने हारी मन की क्रिया ( छन्दः ) उपदेश ( एवः ) प्राप्ति (क्रन्दः) प्रयक्ष (वरिवः ) विद्वानों की सेवा ( छन्दः ) खीकार ( वयः ) जीवन ( छन्दः ) खाधीनता ( चय-स्कृत ) अवस्था वर्डक जीवन के साधन ( छन्दः ) प्रद्वण (विष्पर्द्धाः) विशेष करके जिससे ईच्यों करे वह ( छन्दः ) प्रकाश ( विशालम् ) विस्तीर्थं कर्म ( छन्दः ) म-हण करना (क्वादेः ) विध्नों का हटाना (क्वन्दः) सुखों को पहुंचाने वाला (दुरोह-णम् ) दुःख से चढ्ने योग्य ( ऋन्दः ) बल ( तन्द्रम् ) स्वतन्त्रता करना ( ऋन्दः ) प्र-काश और (मङ्काङ्कम् ) गांशात विद्या का (छन्दः ) सम्यक् स्थापन करना स्वी-कार भीर प्रचार के बिये प्रयक्त करें ॥ ५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ करने से पराधीनता छुड़ा के स्वाधी-नता का निरन्तर स्त्रीकार करें ॥ ॥॥

रिंदमनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः।विद्यांसो देवताः।विराडभिक्ततिरुक्तन्दः।ऋषभःस्वरः॥

विद्वानों को पदार्थविद्या के जानने का उपाय करना चाहिये यह वि०॥

र्दिमनां मत्यायं मत्यिजिन्त् प्रतिना धम्मैणा धमैजिन्दाः रिवत्या दिवा दिवंज्जिन्द मन्धिनान्तिरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्द प्रति- षिनां पृथिव्या पृथिवीं जिन्व विष्टमभेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रव-याऽहाई जिन्वानुया राज्या रात्रीविजन्वोक्षिता वसुंभ्यो वस्नि-विजन्व प्रकेतेनांदित्येभ्यं स्नादित्याविजन्व ॥ ६ ॥

पदार्थ:-हे विद्वान् पुरुष तू (रिश्मना) किरणों से (सत्याय) वर्लमान में हुए स्यं के तुल्य नित्य सुख मौर स्थूल पदार्थों के लिये (सत्यम् ) अध्यभिचारी कर्म को (जिन्व) प्राप्त हो (प्रेतिना) उत्तम ज्ञान युक्त (धर्मणा) न्याय के आचरण से (धर्मम् )धर्म को (जिन्व) ज्ञान (भ्रान्वत्या) खोज के हेतु (दिवा) धर्म केप्रका- या से (दिवम्) सत्य के प्रकाश को (जिन्व) प्राप्त हो ।स्रान्धिना) सन्धि रूप (अन्तिरिश्चणा) आकाश से (अन्तिरिक्षम् ) अवकाश को (जिन्व) ज्ञान (पृथिव्या) स्नार्भविद्या के (प्रातिधिना) सन्धन्ध से (पृथिवीम् ) सूर्मि को (जिन्व) ज्ञान (विष्टम्मेन) शरीर धारण के हेतु आहार के रस से तथा (वृष्ट्या) वर्षा की विद्या से (वृष्टिम्) वर्षा को (जिन्व) जान (प्रवया) कान्तियुक्त (अहा) प्रकाश की विद्या से (ब्राह्म) वर्षा को विद्या से (राजीम्) राजि को (जिन्व) ज्ञान (उशिजा) कान्माओं से (वसुत्र्यः) अगिन आदि आठ वसुओं की विद्या से (वसूत्र्) उन अगिन आदि वसुओं को विद्या से (ज्ञान्व) जान आरि (प्रकेतन) उत्तम विज्ञान से (आदित्यंश्यः) बारह महीनों की विद्या से (आदित्यान्) वारह महीनों को (ज्ञिन्व) तत्त्वस्वकृप से ज्ञान ॥६॥

भावार्थ:-विद्वानों को चाहिय कि जैसे परार्थों की परीक्षा से अपने आप पदा-र्थविद्या को जानें वैसे ही दूसरों के लिये भी उपदेश करें ॥ ६॥

तन्तुनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। विद्वांसी देवताः। ब्राह्मी त्रिषुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥
गृहाश्रमी पुरुष को किस साधन से क्या करना चाहिये यह वि०॥

तन्तुंना रायस्पोषंण रायस्पोषं जिन्व सुध सर्पेणं श्रुतायं श्रुतं जिन्बैडेनौषंधी भिरोषंधी जिन्बो समेनं तुन्भिस्तुन् जिन्व वयोधसा धीतेनाधीत ज्जिन्बा भिजिता तेर्जसा तेजी जिन्व ॥ ७॥

पदार्थ:-हे मनुष्य तू (तन्तुना) विस्तारयुक्त (रायः) धन की (पोषेण) पृष्टि से (रायः) धनकी (पोषम्) पृष्टि को (जिन्व) प्राप्त हो (संसर्पेशा) सम्यक् प्राप्ति से (श्रुताय) अवण के लिये (श्रुतम्) शास्त्र के सुन ने को (जिन्व) प्राप्त हो (पे-डेन) अन्न के संस्कार और (मोषधीभिः) यब तथा सोमजता मादि भोषधियों की

विद्या से (झोषधीः) ओषधियों को (जिन्व) प्राप्त हो (उत्तमेन) उत्तम धर्म के झाचरण युक्त (तन्भिः) शुद्ध शरीरों से (तन्ः) शरीरों को (जिन्व) आप्त हो (वयोधसा) जीवन के धारण करने हारे (झाधीतेन) झच्छे प्रकार पढ़े से (आधीतम्) सब ओर से धारण की हुई विद्या को (जिन्व) प्राप्त हो (अभिजिता) सब्भुख श- भुझों को जीतने के हेतु (तेजसा) तीक्ष्ण कर्म से (तेजः) इद्द्रता को (जिन्व) प्रा-प्त हो ॥ ७॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि विस्तारयुक्त पुरुषार्थ से ऐदवर्थ की मास हो के सब माश्रियों का हित सिद्ध करें ॥ ७ ॥

प्रतिपद्सीत्यस्य परमष्ठी ऋषः। प्रजापतिर्देवता । स्वराडार्ध्युष्टुप् छन्दः।

गान्धारः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

प्रतिपदंसि प्रतिपदं त्वानुपदंस्यनुपदं त्वा संपदंसि सम्पदं त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थः - हे पुरुषार्थिनि विद्वान् स्त्री जिस कारण तू (प्रतिपत्) प्राप्त होने के योग्य लक्ष्मी के तुल्य (असि) है इस लिये (प्रितपदे) प्रवर्थ्य की प्राप्ति के लिये (त्वा) तुझ को जो (अनुपत्) पिछे प्राप्त होने वाली शोभा के तुल्य (असि) है उस (अनुपदे) विद्याऽध्ययन के पदचात् प्राप्त होने योग्य (त्वा) तुझ को जो तू (संपत्) संपत्ति के तुल्य (असि) है उस (सम्पदे) पेदवर्थ्य के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (तेजः) तंज के समान (असि) है इस लिये (तेजसे) तंज होने के लिये (त्वा) तुम को प्रहुण करता हूँ ॥ ८॥

भावार्थः-सब सुख सिद्ध होने के लिये तुल्य गुण कर्म सीर स्त्रभाव वाले स्त्री पुरुष स्तृयंवर विवाह से परस्पर एक दूसर का स्त्रीकार करके आनन्द में रहें॥८॥

ित्रिवृद्सीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। विराड् ब्राह्मी जगती

**छ**न्दः । निषादः खरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि॰ ॥
श्रिवृदंसि श्रिवृते त्वा श्रवृदंसि श्रुवृते त्वा श्रिवृदंसि श्रिवृते त्वा श्रवृदंसि श्रुवृते त्वा श्रिवृते त्वा श्या त्वा श्रिवृते त्वा श्यो त्वा श्रिवृते त्वा श्रिवृते त्वा श्रिवृते त्वा श्रिवृते त्वा श्रिवृत्ते त्वा श्रिवृते त्वा श्रिवृते त्वा श्रिवृते त्वा श्रिवृत

पदार्थ है मनुष्य जो तू (त्रिहत) सरवगुण,रजोगुण और तमोगुण के सह वर्षः बान अध्यक्त कारण का जानने हारा (ब्रसि) है उस ( त्रिवृते ) तीन गुर्गी से युक्त कारण के बान के लिये (त्वा) तुम को जो तू (प्रवृत्) जिस कार्य रूप से प्रवृत्त संसार का काता ( असि ) है उस ( अवृते ) कार्यरूप संसार को जानने के लिये (त्वा) तुभ को जो तू (विवृत् ) जिस विविध प्रकार से प्रवृत्त जगत का उपकार कर्ता (असि) है उस (बिवृतं) जगद्रपकार के लिये (त्वा) तुभ को जो तू (सवृत् ) जिस समान धर्म के साथ वर्त्तमान पदार्थों का जानने हारा ( श्रास ) है उस (सब्ते) साधम्यं पदार्थों के ज्ञान के लिये (त्वा) तक्त को जो तु ( आक्रम: ) अच्छे प्रकार पदार्थों के रहने के स्थान अन्तरित्त का जानने वाला (असि ) है उस ( माक्रमाथ ) अन्तरिक्ष को जानने के लिये (त्वा) तुभ को जो तू (संक्रम:) सम्यक् पदार्थी को जानता ( आसी ) है उस । संक्रमाय ) पदार्थ ज्ञान के जिथे ( स्वा ) तुक्त की जो तू ( उत्क्रमः ) ऊपर मेघमंडल की गति का शाता ( असि ) है उस ( उत्क्रमाय ) मेघ मंडल की गति जानने के लिये (त्वा) तुभ को तथा है खि जी तू (उत्कान्तिः) सम विषम परार्थों के उरलंघन के हेतु विद्या को जानने हारी (असि) है उस (उत्ज्ञान्त्यै) गमन विद्या के जानने के लियं (त्वा) तुभ को सब प्रकार प्रह्मा करते हैं ( प्रिधप-तिना ) अपने स्वामी के सह वर्तमान तू ( ऊर्जा ) पराक्रम से ( ऊर्जम ) बल को (जिन्व) प्राप्त हो॥ ९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-पृथिवी मादि पदार्थों के गुण कर्म मीर खभा-वों के जाने विना कोई भी विद्वान नहीं हो सकता इसिविये कार्य कारण दोनों को य-थावत जान के मन्य मनुष्यों के लिये उपदेश करना चाहिये॥ ९॥

राइयसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । यसयो देवताः । पूर्वस्य विराड् ब्राह्मी त्रिष्ठुण् छन्दः।

धैवतः स्वरः॥ प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अग्नि आदि पदार्थ कैसे गुर्खों वाले हैं यह वि०॥ मे 🔾

राह्यं मि प्राची दिग्वसंवस्ते देवा अधिपतयोऽग्निहें नीनां प्रतिष्यत्ती श्रिवत त्वा स्तोमंः पृथिव्या अश्रेयत्वा क्यं मुक्यमव्यं थायैस्तभ्नातु रथन्तर्श्वं साम प्रतिष्ठित्या अन्तिरिक्ष कर्षयस्त्वा । प्रथमजा देवेषुं दिवो मार्श्रया वर्षम्णा प्रथन्तु विधुक्ती चायमिष्यतिश्च ते त्वा सर्वे संविद्याना नार्थस्य पृष्ठे स्वर्गे होके यर्जमानं च
साद्यन्तु ॥ १० ॥

पदार्थ:-हे कि (ते) तेरा (अधिपतिः) खामी जैसे जिस के (बसवः) समया-हिक (देवाः) प्रकाशमान (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं वैसे तू (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के समान (राज्ञी) राण्णी (असि) है जैसे (हेतीनाम्) बज्जादि शखास्त्री का (प्रतिभक्ता ) प्रत्यक्ष धारण करता (त्रिवृत् ) विद्युत् सुमिस्थ और सूर्य कप से तीन प्रकार वर्तमान (स्तोमः) स्तृतियुक्त गुर्गों से सहित (अग्निः) महाविद्युत् धारण करने बाली है वैसे (त्वा) तुझ को तेरा पति मैं धारण करता हूं तू (पृथिव्याम् ) सूमि पर ( अव्यथाये ) पीड़ा न होने के लियं ( उक्थम् ) प्रशंसनीय ( आज्यम् ) घृत आहि पदार्थों को (अयत्) धारमा कर (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के बिये (रथन्तरम्) रथाहि से तारने वाळे (साम ) सिद्धान्त कर्म को (स्तप्तातु ) घारण कर जैसे (मन्तरिक्षे ) माकाश में (दिवः) विजुली का (मात्रया) वेश सम्बन्ध मीर (वरिम्या।) महा पुरु-षार्थ से (देवपु) विद्वानों में (प्रथमजाः) पूर्व हुए (ऋषयः) वेदार्थवित विद्वान् (त्वा) तुझ को शुभ गुणों से विशाल बुद्धि करें (च) और जैसे (अयम्) यह (विधर्का) विविध रीति से धारण कर्ता तेरा पति तुझ से वर्ते वैसे उस के साथ तू वर्ता कर (च) और जैसे (सर्वे) सब (संविदानाः) अञ्छ विद्वान् लोग (नाकस्य) अविद्य-मान दुःख के (पृष्ठे ) मध्य में (खर्गे ) जो खर्ग अर्थात अति सुख प्राप्ति ( लोके ) द-र्शनीय है उस में (त्वा) तुझ को (च) और (यजमानम्) तेरे पति को (सादयन्तु) स्थापन करें वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष वर्ता करो ॥ १०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलु०- पूर्व दिशा इस जिये उत्तम कहाती है कि जिस से सूर्य प्रथम वहां उदय को प्राप्त होता है। जो पूर्व दिशा से वायु खलता है वह किसी देश में मेघ को उत्पन्न करता है किसी में नहीं और यह अग्नि सब पदार्थों का धारण करता तथा वायु के संयोग से वढ़ता है जो पुरुष इन वायु और अग्नि को य-थार्थ जानते हैं वे संसार में प्राणियों को मुख पहुंचाते हैं॥१०॥

थिराङसीत्यस्या परमेष्ठीः ऋषिः। रुट्टा देवताः। पूर्वस्या मुरिग्बाझी त्रिष्टुप्**कन्दः। भैवतः** 

स्त्ररः। प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राक्षी गृहती कृत्यः। मध्यमः स्वरः॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये यह वि०॥

विराहि दक्षिणा दिग्युद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां प्रतिधक्तां पंचदशस्त्वा स्तोमः एथिव्याष्टं श्रंयतु प्रवंगमुक्थमव्यं थावे स्तम्नातु वृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषंयस्त्वाऽप्रथम्-जादंवेषुं दिवो मात्रया बरिम्या प्रथन्तु विधक्ती चायमधिपतिइच

## ते त्या सर्वे संविद्वाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके वर्जमानं च साद-यन्तु ॥ ११॥

पदार्थ:- हे क्षि जो तु ( चिराट ) विविध पदार्थों से प्रकाशमान ( दक्षिशा ) (दि-क्) इक्षिमा दिशा के तुल्य (असि ) है जिस (ते) तेरा पति (रुद्रा: ) वायु (देवा:) दि-व्य गुण युक्त वायु (मधिपतयः) मधिष्ठाताओं के समान (हेतीनाम् ) वज्रों का (प्रति-धर्ता ) निश्चय के साथ धारण करने वाला (पत्रचद्दाः) पन्द्रह संख्या का प्रक (स्तो-मः ) स्तुति का साधक ऋचाओं के अर्थी का भागी और (इन्द्रः ) सूर्य (त्वा )तुभ को ( पृथिब्याम् ) पृथित्री में ( अयतु ) सवन करे ( अव्यथाये ) मानस भव से रहित तरे लियं (प्रडगम् ) दाथनीय (उक्थम् ) उपरेश के योग्य वचन को (स्तक्ष्मातु ) स्थिर करे तथा ( प्रतिष्ठित्ये ) प्रतिष्ठा के लिये ( वृहत् ) वहत सर्थ से युक्त ( साम ) सामवद को स्थिर करे और जैसं (अन्ति क्षि) आकाशस्थ (देवेपु) कमनीय प-दार्थों में (प्रथमताः ) पहिले हुए (ऋपनः ) ज्ञान के हेन् प्राम् (दिनः )प्रकाश का-रक अग्नि के छेदा और ( विरम्णा ) बद्दत्व के साथ वर्तमान हैं वैसे विद्वान छोग (त्वा) तुभाको (प्रथन्तु) प्रसिद्ध करें जैसे (विधर्का) विविध प्रकार के आकर्ष-गा से प्रथिवी मादि लांकों का धारमा ( च ) तथा परिपम् करने वाला (मधिपतिः) सब प्रकाशक पदार्थी में उत्तम सूर्व (त्वा) तुम को पुष्ट कर वैसे (सविदानाः) सम्यक विचार शील चिद्धान लीग हैं (ते) वे (सर्वे) सव (नाकस्य ) वःखरिहत माकाश के ( पृष्टे ) सेचक नाग में ( स्वर्गे ) सूख कारक ( लंकि ) जानने योग्य देश में (स्वा) नुभाको (च) और (यजमानम) यह विदा के आनने हारे पुरुष को (साद्यन्तु) स्थापित करें ॥ ११ ॥

भावर्थः - इस मन्त्र में याचकलु० - जैसे विद्वान लोग वायु के साथ वर्षमान सूर्य को मीर सूर्य वायु की विद्या को जानने वाले विद्वान का आश्रय करके इस विद्या को जनाधं वैसे स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ विद्वान हो के दूसरों को पढ़ावें ॥ ११ ॥ सम्राडसीत्यस्य परमेण्टी ऋषिः । मादित्या देवताः । पूर्वस्य निवृत्र ब्राह्मी जगती कन्दः । निषादः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी जृहती कन्दः । मध्यमः स्वरः ॥ फिर वे स्त्री पुरुष कैसे हों यह वि०॥

सम्राहंसि प्रतीर्चादिगांदित्यास्ते देवा अधिपतगां वर्रणा हेतीनां प्रतिष्टक्तां संप्रदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याष्टं श्रेपतु मरुत्वर्तार्यपुक्ष मञ्चेषाये स्तम्नातु वेद्धपष्टं साम् प्रतिष्टित्याञ्चन्तारेश्च अष्यस्त्वा प्रथम्जा देवेषुं दिवो मार्श्रया बर्रिम्णा प्रथन्त विध्ना खायमधि-पतिर्च ते त्वा सर्वे संविद्याना नाक्षस्य पुष्ठे स्वर्गे छोके यर्जमा-नं च सादयन्तु ॥ १२ ॥

पदार्थ:-हे स्त्रि जो तू ( प्रतीची ) पश्चिम ( दिक् ) दिशा के समान ( सम्राह ) सम्यक् प्रकाशित ( मर्सि ) है उस ( ते ) तेरा पति ( भावित्याः ) विजुती से युक्त प्रामा वायु (देवाः ) दिन्य सुखदाता ( अधिपतयः ) स्वामियों के तृल्य ( अयम् ) यह (सप्तदशः) सत्रह संख्या का पूरक (च) और (स्वोमः) स्तुति के योग्य (वहसाः) जलसम्दाय के ममान (हेतीनाम्) बिजुलियों का (प्रतिथर्सा) धारसा करने वाला ( अधिपतिः ) स्वामी (त्वा ) तुक को (पृथिन्याम् ) पृथिवी पर (अयतु) सेवन करे ( अव्यथाये ) एवरूप सं अचल तरे लिये ( मरुत्वतीयम् ) बहुत मनुष्या के व्याख्यान से युक्त ( उक्थम् ) कथन याग्य वेदवचन तथा ( प्रतिष्ठित्ये ) प्रतिष्ठा के लिये (वैरूपम्) विविध रूपों के व्याख्यान से युक्त (साम) सामवेद को (स्तक्ष्नातु) प्रहण करे। और जो (दियः) प्रकाश के (मात्रया) भाग से (परिस्ता) बहुत्व के साथ ( अन्तरिक्ते ) आकाश में ( प्रथमजाः ) विस्तार युक्त कारण से उत्पन्न हुये (ऋएयः ) गतियक्त वाय ( देवेप ) दान के हेतु अवयवीं में वर्त्तमान हैं वैसे ( त्वा ) तुम की विद्वान लोग (प्रथन्त्) प्रसिद्ध उपदेश करें। जैसे (विधर्का) जो वि-विध रत्तों का धारने हारा है (च) यह भी ( अधिपतिः ) अध्यक्ष स्वामी राजा प्र-जाओं को सख में रखता है धैसे (ते ) तरे मध्य में (सर्वे ) सब (संविद्यानाः ) अ-च्छे प्रकार बान को प्राप्त हुए (त्या ) तुभको ( च ) और ( यजमानम् ) विद्वानों के सेवक पुरुष को ( नाकस्य ) दुःखर्राहत देश के ( पृष्ठे ) एक भाग में ( स्वर्गे ) सुख प्रापक ( लोकं ) दर्शनीय स्थान में ( खादयन्तु ) स्थापित करें ॥ १२ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचक्षणुः-जैसे विद्वान् कोग पदिचम दिशा और वहां के पदार्थों को दूसरों के लिये जानते हैं वैसे स्त्री पुरुष अपने सन्तानी आदि की विद्यादि गुर्खों से सुरोभिन करें ॥ १२ ॥

स्वराडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। मरुतो देवताः। पूर्वस्य मुरिग्बाझी त्रिष्दुए छन्दः।

धैवतः स्वरः । प्रथमजा इत्युक्तरस्य ब्राह्मी बृहती कृत्यः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर व दोनों कैसे हों यह वि०॥

स्वगड्डस्प्दींची दिङ् महतंस्ते हेवा अधिपतयः सोमों हेत्।नां प्रतिध्र्त्तंकंविधशस्त्वा स्तोमंः पृथिव्याध श्रेयतु निष्केवस्यमुक्य- मन्यंथाये स्तभ्नातु । बैराज्ञ साम् प्रतिष्ठित्या अन्तरिश्च ऋषंयः स्त्वा प्रथम् जा देवेषुं दिवो मात्रंया वर्रिम्णा प्रथन्त् विश्वक्ती चायः मधिपतित्व ते त्वा सर्वे संविद्याना नार्वस्य पृष्ठे स्वर्गे लोकं यर्जन्मानं च साद्यन्तु ॥ १३ ॥

पदार्थ:- हे क्षि जैसे (खराट) खयं प्रकाशमान (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा ( असि ) है वैसा ( ते ) तेरा पति हो जिस दिशा के ( महतः ) वायु (देवाः) दिब्यस्त (अधिपतयः ) अधिप्ठाता हैं उन के सहश जो ( एकविंशः ) इकाम सं-ख्या का पुरक (स्तोमः) स्तृति का साधक (सोमः) चन्द्रमा (हेर्तानाम्) वज्रके समान वर्त्तमान किरसों का (प्रतिघर्त्ता) धारने हारा पुरुष (त्वा) नुझ को (पृ-थिवयाम् ) सूमि में (अवतु) संवन कर (अव्यथाये ) इन्द्रियों के भय से रहित तेरे लिये (निष्केवस्यम्) जिम में फेवल एक खरूप कावगान हो वह (उक्थम्) कहते यांग्य बेदभाग तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लियं (वैराजम् ) विराट्ट रूप का प्र-विपादक (साम ) नामवेद का भाग (स्तप्तातु ) प्रह्मा करे ( च ) और जैसे तेरे मध्य में ( अन्तरिते ) अवकारा में स्थित ( देवेषु ) इन्द्रियों में ( प्रथमजाः ) मुख्य प्रसिद्ध (दिवः ) हान के ( मात्रया ) भागों से ( वरिम्णा ) अधिकता के साथ व-र्चमान ( ऋपयः ) बलवान् प्रासा हैं बैसे ( अयम् ) यहा इन प्रासी का ( विधर्ता ) विविध शीत को धारण कत्तां (च) और (अधिपतिः ) अधिष्ठाता है (ते) व (सर्वे) सब इस विषय में (संविद्यानाः) सम्यक् वृद्धिमान् विद्वान् लोग प्रतिक्वा से (त्वा) तुभा को (प्रथन्त्) प्रांसद्ध करें और (नाकस्य) उत्तम सुखद्भव कोक के (पृष्ठे) ऊपर (खर्गे) मुखदायक (खांके) लांक में (त्वा) तुझ को (च) भीर (यजमानम्) यजमान पुरुष को (साद्यन्तु) स्थित करें ॥ १३॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकछ०-जैसे विद्वान लोग आधार के सहित चन्द्रमा आदि पदार्थों और आधार के सहित प्राणीं की यथावत जान के संसारी कार्यों में उपयुक्त करके सुखकों प्राप्त होते हैं। वैसे अध्यापक स्त्री पुरुष कन्या पुत्रों को विद्या प्रहण के लिये उपयुक्त करके बानन्दित करें॥ १३॥

अधिपत्न्यसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥ प्रतिष्ठित्या इत्युक्तरस्य ब्राह्मी विष्रुप्

छन्दः । भेवतः खरः ॥

फिर वही वि०॥

अधिपरन्यसि यृहती दिग्विद्दे ते हेवा अधिपत्यो बृहस्पति-हॅनीनां प्रतिष्ठक्तां त्रियावत्रयस्त्रिष्ठश्चाौ स्वा स्तांमी पृथ्विष्याध श्रे-यतां वैद्द्वदेवाग्निमाहृते उद्देश श्रव्यंथायै स्तभ्नीताध शाक्वररे-वृते सामंनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषंयस्त्वा प्रथम्जा देवेषु दिवो मार्त्रया वर्ष्टिणा प्रथन्त विष्ठक्ती चायमधिपतिद्य ते स्वा सर्वे संविद्याना नार्कस्य पृष्ठे स्व्नां लोके यर्जमानश्च साद्यन्तु ॥ १४॥

पदार्थ:-हे लि ! जो तृ (बृहती) बड़ी ( अधिपत्नी ) सब दिशाओं के ऊपर वर्ष-मान (दिक्) दिशा के समान (असि) है उस (ते) तेरा पनि (विश्वे) सब (देवाः) ग्रकाशक सुर्ग्यादि पदार्थ ( अधिपतयः ) अधिष्ठाता है।वैसे जो (वृश्वस्पतिः) विद्य का रक्षक (हेतीनाम् ) बंद जोकों का (प्रतिभक्ती ) प्रतीति के साथ धारण करने वाले सूर्य्य के तुल्य वह तेरा पति (त्वा) तुशको(च) और (त्रिशावत्रयस्त्रिशी) बिसाय और तंतीस (स्तोमी) स्तृतिके साधन (पृथिन्याम् ) पृथिवीमें (अन्यवायै) पीडा रहितता के लियं ( वैद्वदंचाग्निमारते ) सब विद्वान और प्राग्नि चायुओं के ब्याख्यान करने वाले ( उदथ ) कहने योग्य वेद के दो भागों का ( अयताम ) आश्रय करे और जैसे ( श्रतिष्ठित्ये ) प्रतिष्ठा होने के लियं ( शाकररैयते ) शक-री और रेवती छन्द से कहे अर्थी से ( सामनी ) सामवेद के दी भागों की ( स्त-क्तीताम ) संगत करें।। जैसे वे ( भन्तरिक्षे ) स्वकाश में (प्रथमजाः ) आदि में हुए ( सूपय: ) धनक्जय मादि सुधम स्थल वायु रूप प्रामा ( देवेषु ) दिव्य गुमा वाले पदार्थों में (दिवः ) धकादा की (मात्रया ) मात्रा मीर (वरिम्णा ) गांधकता से (त्वा) तभा को प्रसिद्ध करते हैं उन को मनुष्य लोग ( प्रथन्त् ) प्रख्यात करें जैसे (ब्रयम् ) यह ( अधिपतिः ) खामी ( विधर्ता ) विविध प्रकार से सब की धारण करने हारा स्टर्थ है जैसे ( संविदानाः ) सम्यक सत्यप्रतिका युक्त क्षानवान विद्वान लोग (त्या) तक को ( नाकस्य ) ( पृष्ठं ) सम्बद्धायक देश के उपरि ( स्वर्गे ) मुखकूप ( लोके ) स्थान में स्थापित काते हैं (ते) वे (सर्वे) सव (यजमानम्) तेरे पुरुष और तक को (सादयन्त्) स्थित करें बैसे तुम स्त्री पुरुष दोनों बर्सा करो ॥ १४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकल्ड॰-जैमें सब के बीच की दिशा सबसे अधिक है बैसे सब गुणों से शरीर और भारमा का बल श्रीधक है ऐसा निश्चित जानना जाहि-ये॥ १४॥

भयंपुर इत्यस्य परमेष्ठी ऋषः। वसन्त ऋतुर्देवता। विकृतिद्छन्दः। मध्यमःस्वरः॥ भयं किरमा भावि के दशन्त से श्रेष्ठ विद्या का उ०॥ े आवं पूरो हरिकंशः स्पैरिश्मस्तर्थ रथगुत्सद्य रथींजाद्य से-नानीग्रामण्यौं। पुञ्जिकस्थला चं ऋतुस्थला चंग्लरसीं। दुङ् धणवं: पुदावों होति: पीर्द्षपो खुषः प्रहेतिस्तभ्यो नमी ग्रस्तु ते नोंऽ-बन्तु ते नों मृहयन्तु ते यं क्षिष्मा यद्दं ना दृष्टि तमें खां जम्में दृष्मः ॥ १५॥

षदार्थ:-जो ( अयम् ) यह ( पुरः ) प्रेकाल में वर्तमान ( हारिकेशः ) हरितवर्श केश के समान हरणाशील और कलशकारी ताप से एक ( सूर्वरिश्मः ) सूर्व की किरणें हैं (तस्व ) उनका (रथगृत्सः ) बुद्धिमान् सार्राय (च ) और (रधौजाः ) रथ के छे चखने के बाहन (च) इन दोनों के तथा ( सेनानी प्रामण्यों ) सेनापति और ब्राम के ब्रध्यक्ष के समान अन्य प्रकार के भी किरख होते हैं उन किरखों की (पुञ्जिकस्थला) सामान्य प्रधान दिशा (च) और (कतुस्थला ) प्रज्ञा कर्म को जतानेवाली उपदिशा । च ) ये होनीं (अप्सरसी ) प्राम्हों में चलने वाली अप्सरा कहाती हैं जो ( दङ्क्णवः ) मांस और घास मादि पदार्थी को खाने वाले व्याच मर्भदे ( पशवः ) हानिकारक पशु हैं उनके ऊपर ( हेति: ) विजुद्ध<u>ी सिरे ।</u> जो (पौरु-षेयः ) पुरुषों के समृद्द (यथः ) मारनेवाले और ( प्रदेतिः ) उत्तम वज् के तुल्य नाश करने वाले हैं (तेक्ष्यः) उन के लिये (नमः) बुज्ज का प्रहार (अन्तु) हो और जो भार्मिक राजा भादि सभ्य राजपुरुष हैं (ते ) ये उन पशुओं से (नः ) हम लोगों की (अवन्तु) रह्या करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे रक्षक इमल्डोग ( यम् ) जिस हिसक से ( द्विष्मः ) विरोध करें ( च )और (यः) जो हिसक (नः) हम से (हेष्टि) विरोध करे (तम्) उसको हम लोग (एपाम्) इन व्याखादि पद्मभों के (जन्मे ) मुख में (दध्मः ) स्थापन करें ॥) १५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे सूर्य के किरण हरे वर्ण वाले हैं उस के सार्थ जाल पीले आदि वर्ण वाले भी किरण रहते हैं वैसे ही सेनापित और प्रामाध्यन्त व-र्ष के रच्चक होवें। जैसे राजाआदि पुरुष मृत्यु के हेतु सिंह आदि पशुओं को रोक के गी आदि पशुओं की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्वान लोग अच्छी शिचा अधर्माचरण से पृथक् रख धर्म में चला के हम सब मनुष्यों की रक्षा करके द्वेषियों का निवारण करें। यह भी सब बसन्त ऋतु का व्याख्यान है॥ १५॥

भयं दिख्योत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। श्रीष्मतृंदैवता। प्रकृतिइछन्दः। धैयतः स्वरः॥ फिर भी वैसाही वि०॥ अंपं देशिया विशवकं मी तस्यं रथस्वनइच रथेचित्रइच सेनानी-ग्रामण्यो । मेनका चं सहजन्या चांण्मरसी यातृथानां हेती र-चांशिस प्रहेतिस्तेभ्यो नमी अस्तु ते नीऽवन्तु ते नी मृडयन्तु ते यं बिष्मो यहचं नो बेष्टि नमेषां जम्में दथ्मः ॥ १६॥

पदार्थः - हे मनुष्यो जैसे (अयमं) यह (विश्वकर्मा) सब वेष्टाक्रप कर्मी का हेतु वायु (दक्षिया) दक्षिया दिशा ने चलता है (नस्य) उस वायु के (रथस्वनः) रय के शम्द के समान शब्द वाला (च) छीर (रथिचित्रः) रमग्रीय रथ में चिन्ह युक्त आक्षयं कार्यों का करने वाला (च) ये दोनों सेनानीयामण्यों) सेनापति और प्रामाध्यक्ष के समान वर्त्तमान (मेनका) जिल से मनन किया जाय वह (च) और (सहजन्या) एक साथ उत्पन्न हुई (च) ये दोनों (अप्सरसी) अन्तिम्च में रहने वाली किरग्रादि अप्सरा हैं जो (यातुधाना) प्रजा को पीड़ा देने वाले हैं उन के जपर (पहेतिः) यज्ञ जो (रद्यांस) दुष्ट कम करने वाले हैं उन के जपर (पहेतिः) पष्ट वज्र के तुल्य (तेश्यः) उन प्रजापीड़क आदि के लिये (नमः) यज्ञ काप्रहार (अस्तु) हो पंसा करके जो न्यायाधीश शिक्षक हैं (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) (वे) (नः) हम को (सृष्टचन्तु) सुष्टी करें (ते) वे हमकोग (यम) जिस दुष्ट से (द्विष्मः) देव करें (च) और (यः) जो दुष्ट (नः) हम से (द्विष्ट) देव करें (तमः) उस को (प्राम्) इन वायुमें के (जम्में) ज्याद्य के समान मुख में (दक्षः) भारण करते हैं वेसा प्रयक्ष करों ॥ १६॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जो स्थूल सृक्ष्म और मध्यस्थ वायु से उपयोग लेने को जानते हैं वे शत्रुओं का निवारण करके सब को आनन्दित करते हैं। यह भी श्रीपम ऋतु का शेष व्याख्यान है ऐसा जानी॥ १६॥

अयं पश्चादित्यस्य परमेर्ण्डा ऋषिः। चपन्तुं ईवता । विराट् कृतिदछन्दः । निपादः । स्वरः॥ किर वैसा ही विषय सगले मन्त्र में कहा है ॥

अयं प्रचाहिरवर्षचास्तस्य रथयांत्रण्यासंमरधरच सेना-नीम्रामण्यौ । मुम्लाचन्त्री चानुम्लाचन्ती चाप्तरसौ । व्याचा हेतिः सुर्याः प्रहेतिस्तम्यो नमो अस्तु ते नौऽवन्तु ते नौ मृडयन्तु ते यं हिष्मो यश्चे नो हेष्टि तमेषां जम्मे दश्मः ॥ १७॥

वदार्थः-हे मनुष्यो जैसे ( भयम ) यह (पश्चात्)पीछे से ( विश्वब्यचाः ) विश्व

में ज्यास विजुलीकप मिन है उस के (सेनानीम्नामययी) संनापित और म्रामपित के समान (रथपोतः) रमणीय तंजस्वरूप में ज्यास (च) और (असमरथः) जिसके समान हुसरा रय न हो वह (च) ये दोनों (प्रम्लोचन्ती) मच्छे प्रकार सब मंबधि मिन पहार्थों को गुष्क कराने वाली (च) तथा (अनुम्लोचन्ती) प्रभात कान का हेतु प्रकाश (च) ये दोनों (मण्सरसी) फ्रियाकारक माकाशस्य किरण हैं जैसे (हेतिः) साधारण वज्र के तुल्य तथा (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान (ज्यान्माः) सिहों के तथा (सपीः) सपीं के समान माणियों को दुःखदायी जिब हैं (ते-भ्यः) उन के लिये (नमः) यज्र प्रहार (मस्तु) हो और जो इन पूर्वे कों से रज्ञा करें (ते) वे (नः) हमारे (मवन्तु) रज्ञ क हों (ते) वे (नः) हमको (मृडयन्तु) सुखी करें तथा (ते) वे हमलेग (यम्) जिस से (द्विष्यः) द्वेष करें (च) और (यः) जो दुए (नः) हम से (द्वेष्ट) द्वेप करें जिस को हम (प्रवाम) इन सिहादि के मुख में धरें। १७॥

भाषार्थः -इस मन्त्र में वाचकलुप्तेषमालङ्कार है-यह दर्भ ऋतु का शेष व्याख्यान है। इस में मनुष्यों को नियमपूर्वक आहत्र विदार करने चाहियं॥ १७॥ स्यमुत्तरादिलस्य परमेष्ठीःऋषिः। शरदनुर्देवता। भूरिगतिधृतिस्कदः। पडजः खरः॥

फिर भी वैसा ही वि०॥

अवर्मुन्स्रारखंबद्वंसुस्तस्य तार्ध्यक्वारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामः वयौ । विद्वाची चधुनाची चाप्सरसावापी हेतिवितः प्रहेतिस्ते भयो नमी ग्रस्तु ते नीऽवन्तु ते नी मृडवन्तु ते यं द्विष्मी यद्वं नो देषि तमेवां जम्मे दथमः ॥ १८॥

पदार्थ:-हे मनुष्यों जैसे ( अयम ) यह ( उत्तरात् ) उत्तर दिशा से (संयद्भसुः) यह को संगत करने हारे के तृख्य शरद् ऋगु है ( तस्य ) उसके (सेनानी ब्रामययों) सेनापित और ब्रामाध्यक्ष के समान ( ताहर्यः ) तीक्षण तेज को बात कराने वाला आहिवन ( च ) और ( अरिएने मिः ) दुःखों को दूर करने वाला कार्तिक ( च ) ये दोनों ( विश्वाचीं ) सब जगत् में व्यापक (च) मौर (धृताचीं) घी वा जल को बाश कराने वाली दीति ( च ) ये दोनों ( अप्सरसी ) प्राणों की गति हैं जहां ( आपः ) जला ( हेतिः ) वृद्धि के तृल्य वर्त्ताने और ( वातः ) प्रिय पवन ( प्रहेतिः ) अच्छे प्रकाश बढ़ाने हारे के समान भानन्द दायक होता है उस वायु को जो लोग युक्ति के

साथ सेयन करते हैं (ते अयः) उनके लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो (ते) बे (नः) हमारी (अवन्तु) रचा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम (यम्) जिस से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) भीर (यः) जो (नः) हम से (द्वे-ष्ठि) द्वेष करें (तम्) उसकों (पषाम्) इन जल वायुओं के (जम्मे) दुःखदायी गु-णक्षप मुख में (दध्मः) धरें वैसे तुम लोग भी वसों ॥ १८॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-यह शारद ऋतु का शेष व्याख्यान है। इस में भी मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति के माण कार्यों में प्रवृत्त हों॥ १८॥ अयमुपरीत्यस्य परमेष्ठीऋषिः। हमन्तर्त्तुर्देचता। निचृत्कृतिहचछन्दः। निपादः स्वरः॥ फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अयमुप्र्यिश्वेमुस्तस्यं सेनिजिई सुषेग्रांश्च सेनानीग्रामण्यों। व्विद्यां च पूर्विचित्तिश्चाप्मरसाववस्पूर्णन् हेतिविद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमी अस्तु ते नीं अन्तु ते नीं मृडयन्तु ते यं ब्रिय्मी यश्चे नो बे च्या तमें प्रांतिस्ते। १९॥

पदार्थः निहं मनुष्यों जैसं (अयम्) यह (उपिर) ऊपर वर्जमान (अवींग्वसुः) वृष्टि के पश्चात् धन का हेतु हैं (तस्य) उस के (सेनजित्) सेना से जीतने वाला (च) और (सुपेगाः) सुन्दर संनापित (च) ये दोनों (सेनानीग्रामण्यों) सेना-पित और ग्रामाध्यक्ष के तृल्य वर्जमान अगहन और पीप महीने (उर्वशी) यहुत खाने का हेतु आन्तर्थ दीति (च) और (पूर्वधित्तिः) आदि ह्वान का हेतु (च) ये दें। तों (अप्तरसीं) प्राणों में रहने वाली (अवस्फूर्जन्) सर्पंकर घोष करते हुए (हेतिः) वज्र के तृल्य (विद्युत्) विजुली के चलाने हारे और (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान रक्षक प्राणी हैं (तेश्यः) उन के लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) मिलें (ते) वे (नः) हम लोगों की (अवन्तु) रच्चा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुली करें (ते) वे इम लोग (यम्) जिस दुएसे (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करें (तम्) उस को हम लोग (प्राम्) इन हिंसक प्राणियों के (जम्मे) मुख में (द्व्यः) घरें। वैसे तुम लोग भी उस को धरो॥ १९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-यह भी हेमन्त ऋतु की शेष व्याख्या है।
मतुष्यों को चाहिये कि इस ऋतु का युक्ति से सेवन करके बलवान हों॥ १९॥
ज्ञानिर्मू द्वेंत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देचता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥
मनुष्यों को किस प्रकार बळ बढ़ाना चाहिये यह वि०॥

## अग्निर्मूर्डो दिनः क्रकुत्पतिः पृथ्विच्या अयम् । अपाक्षरेतां असि

पदार्थः - जैसे हेमन्त ऋतु में (अयम्) यह प्रसिद्ध (अग्निः) अग्नि (दिवः) प्रकाश और (पृथिव्याः) भूमि के बीच (मूर्छा) शिर के तुल्य स्ट्र्यंक्य से वर्ष-मान (ककुत्यांतः) दिशाओं का रक्षक हो के (अयाम्) प्राणों के (रेतांसि) परा-कर्मों को (जिन्वति) पूर्णाता से तृप्त करता है वैसे ही मनुष्यों को बलवान् होना चाहिये॥ २०॥

मावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति से जाडरानि को बढ़ा संचम से माहार चिहार करके नित्य वल बढ़ाते रहें ॥ २० ॥ असमिनिरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। मन्तिर्वेवता। निचृद् गायत्री खत्दः। षड्जः स्वरः॥ फिर मनुष्य क्या करे यह वि०॥

अवम्हिनः संहसिणो वार्जस्य शतिनस्पतिः । मूर्घा कवी रंग्रीणाम् ॥ २१ ॥

पदार्थः - हे मनुष्यो ( अयम् ) यह ( अग्निः ) हेमन्त ऋतु में वर्तमान ( सह-स्निणः ) प्रशस्त असंख्य पदार्थों से युक्त (शिततः ) प्रशांसित गुणों के सहित अ-नेक प्रकार वर्त्तमान ( वाजस्य ) अन्न तथा ( रयीणाम् ) धनों का ( पितः ) रक्षक ( मूर्जा ) उत्तम अङ्ग के तुल्य ( कविः ) समर्थ है वैसे ही तुम लोग भी हो ॥ २१॥

भावार्थ:-इसमन्त्र में वाचकछ०-जैसे विद्या और युक्ति से सेवन किया मन्निब-हुत मन्न धन प्राप्त कराता है वैसे ही सेवन किया पुरुषार्थ मनुष्यों को पेरवर्धवान् कर हेता है ॥ २१॥

स्वामन्त इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। मन्तिर्देशता। तिचृहायश्री छन्दः। पङ्जः स्वरः॥ किर वह कैसा हो यह वि०॥

स्वामंग्<u>ते पुष्करा</u>द्ध्यथं<u>वी निरंमन्थत। मूर्ध्नी विद्यंस्य व्रा</u>घतः। ॥ २२ ॥

पहार्थ:-हे (अने) विद्वत् जैमे (अथवां) रक्षक (वाधतः) अच्छी शिक्षित वाणी से अविद्या का नाश करने हारा बुद्धिमान विद्वान् पुरुष (पुष्करात्) अन्तरि-च के (अधि) वीच तथा (मूर्ध्नः) शिर के तृत्य वर्त्तमान (विद्ववस्य) मंद्र्ध जगत् के बीच अग्नि को (निरमन्थत) निरन्तर मन्धन करके प्रहण्य करे वैसे ही (त्याम) तुक्त को में बोध करता है॥ २२॥ सावार्थः—इस मन्त्र में वाचकजु०—मनुष्यों को चाहियं कि विद्वानों के समान बाकाश तथा पृथिवी के सकाश से विजुली का प्रहण कर धाइचय्यंदर करों को सिद्ध करें॥ २२॥

> भुव इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। मग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुण् इन्दः। धैवतः स्वरः॥ फिर वह कैसा हो यह वि०॥

भुवी यज्ञस्य रर्जाइच नेता यत्रां नियुद्भिः सर्वसे शिवाभिः। दिवि मूर्धानं दिषषे स्वर्षा जिह्वामेग्ने चकृषे इन्यवाहंम्॥ २३॥

पदार्थः नहें (अग्ने) विद्वत् जैसे यह प्रत्यक्ष आंग्न (नियुद्धः) संयोग विभाग कराने हारी किया तथा (दिवाभिः) संगजकारिणीदीसियों के साथ वर्त्तभान (भुवः) प्रगट हुए (यहस्य) कार्यों के साधक संगत व्यवहार (च) आर (रजसः) लंक समृह को (नेता) आकर्षण कर्ता हुआ सम्बन्ध कराता है और (यत्र) जिस (दिवि) प्रकाशमान अपने स्वरूप में (मूर्ज्ञानम् ) उत्तमाङ्क के तृल्य वर्त्तमान सूर्य को धारण करता तथा (हव्यवाहम्) प्रहण करने तथा देने योग्य रसों को प्राप्त कराने वाली (स्वर्णम्) मुखदायक (जिह्नाम्) वाणी को चहुचे प्रवृत्त करता है वैसं तू शुभ-गुणों के साथ (सचसे) युक्त होता और सब विद्याओं को (द्राधेषं) धारण कराता है ॥ २३॥

भावार्थ:- इस मन्त्र में वाचकलु॰—जैसे ईश्वर ने नियुक्त किया हुआ प्रिनि सब जगत् को सुखकारी होता है वैसे ही विद्या के प्राहक अध्यापक लोग सब मनुष्यों को सुखकारी होते हैं ऐसा सब को जानना चाहिये॥ २३॥

अवोधीत्यस्य परमेप्टी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिप्टुण् इन्दः। धैवतः स्वरः॥ फिर वह कैसा हो यह वि०॥

अबीध्यितिः समिधा जनांनां प्रतिधेनुमिवायतीसुवासंत् । यहाईव प्र व्यासुजिजहांनाः प्र भानवंः सिस्रते नाकमच्छं ॥२४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो जैसे (सिमधा) प्रज्यित करने के साधनों से यह (अग्निः) अग्नि (अबोधि) प्रकाशित होता है (आयतीम्) प्राप्त होते हुए (उषासम्) प्रभातसम्य के (प्रति) समीप (जनानाम्) मनुष्यों की (धेनुमिव) दूध देने वाली गौ के समान है। जिस अग्नि के (यहाइव) महान् धार्मिक जनों के समान (प्र) उन्हरूष्ट (वयाम्) व्यापक सुख की नीति को (उज्जिहानाः) अच्छे प्रकार प्राप्त करते

हुए (प्र) उत्तम (भानवः) किरगा (नाकम्) सुख को ( अच्छ ) अच्छ प्रकार (सिक्षते) प्राप्त करते हैं उस को तुम खोग सुखार्थ संयुक्त करो॥ २४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचक्रजुप्तोपमालंकार हैं-जैसे दुग्ध देने वाली संवन की हुई गी दुग्धादि पदार्थों से प्राणियों को सुखी करती है और जैसे आप्त विद्वान विद्यादान से अविद्या का निवारण कर मनुष्यों की उन्नति करते हैं वैसे ही यह अग्नि है ऐमा जानना चाहिये ॥ २४ ॥

अवीचामेत्यस्य परमेर्छा ऋषिः। अग्निर्वेश्वता। निचृत् त्रिष्ठुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥ फिर वह कैसा है यह वि० ॥

अवीचाम क्वें मेध्यां वची वृत्यारं वृषमार्य वृष्ये । गर्वि-ष्टिरो नर्ममा स्रोमेम्पनी द्वितीय हुत्समाह व्यंचमश्रंत् ॥ २५ ॥

पदार्थ: -हम लोग जैसं (गविष्ठिरः) किरणों में रहने वाली विद्युत (दिवीव) सूर्य प्रकाश के समान (उठव्यंचम्) विशेष करके बहुतों में गमन शील (रुक्मम्) सूर्य का ( मश्रेत् ) माश्रय करती है वैसे (मेध्याय ) सब शुभ लक्षणों से युक्त पित्र (वृष्णाय ) वली (वृष्णा ) वर्षा के देतु (कवये ) बुद्धिमान् के लिये (मन्दारु) प्रशंसा के योग्य (वचः) वचन की और (अग्नी) जाठराग्नि में (नमसा ) अन्न मादि से (स्तोमम्) प्रशस्त कार्यों की (भवीचाम) कहें ॥ २५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालंश-विद्वानों को चाहिये कि सुशील शुद्धबुद्धिवि-द्यार्थी क लियं परम प्रयक्ष से विद्या देवें जिस से यह विद्या पढ़ के सूर्य के प्रकाश में घट पटादि को देखते हुए के समान सब को यथावत् जान सकें ॥ २५ ॥ स्प्रिमहेत्यस्य परमण्डी ऋषः। स्रान्देंवता। सुरिगाणी त्रिष्ठुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥ फिर यह कैसा हो यह विश्रा

अपिष्ट प्रथमो घाषि छातृ भिहीता गर्जिष्ठो अध्वरेष्वी अथः। यमप्रवानो भृगवो विरुद्धवृत्वेषु चित्रं विभवं विद्योविद्यो ॥ २६॥

पदार्थः - जो (इह) इस जगत में ( अध्वरेषु ) रक्षा के योग्य व्यवहारों में (ई-द्यः ) खांजन योग्य ( यजिष्ठः ) अतिशय करके यज्ञ का साधक ( होता ) घृतादि का महस्मकर्त्ता ( प्रथमः ) सर्वत्र विस्तृत ( अगम् ) यह प्रत्यक्ष अग्ति ( धातृभिः ) धारसाशील पुरुषों ने ( धायि ) धारसा किया है ( यम् ) जिस को ( वनेषु ) किरसों में ( चित्रम् ) माक्षर्यक्ष से ( विश्वम् ) व्यापक अग्ति को ( विशेविशे ) समस्त प्रजा के लिये ( अप्रवानः ) रूपवान ( भृगवः ) पूर्गाञ्चानी ( विदर्शः ) विदेश करके प्रकाशित करने हैं उस अग्नि को सब मनुष्य स्त्राकार करें ॥ २६ ॥

भाषार्थः-विद्वान् कोग अग्निविद्या को आप भारके दूसरों को सिखावें अ २६ ॥

जनस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। भगिनदेवता।

निचृदाषीं जगती छन्दः। निषादः खरः ॥ फिर वह कैसा हो यह वि०॥

जर्नस्य गोषा अंजनिष्ट जार्गृविद्यानः सुद्धः सुविनायनव्यंसे । घृतप्रतीको बृह्ता दिविस्पृदाां सुमहिमाति भर्तेभ्यः शुचिः॥२७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जो (जनस्य) उत्पन्न हुए संसार का (गोपाः) रक्षक (जाग्याः) जागने क्रप स्त्रभाव घाला (सृदक्तः) सुन्दर बल का हेतु (धृतप्रतीकः) धृत सं बढ़ने हारा (श्रुचिः) पवित्र (अग्निः) हि हुली (नव्यसे) अस्पन्त नधीन (सुविताय) उत्पन्न करने योग्य पेदवर्य के लिये (अजिन्छ) प्रकट हुआ है और (सुहता) बढ़े (दिविस्पृता) प्रकाश में स्पर्श से (भगतंश्यः) सूर्यों से (सुमत्) प्रकाश सुक्ता हुआ (विभाति) शोभित होता है उस को तुम खोग जानो ॥ २७॥

भाषार्थः-मतुष्यों को चाहिये कि जो एक्ष्यर्थ प्राप्ति का विदेश कारता सृष्टि के सूर्यों का निर्मित्त बिजुली रूप तेज है उस को जान के उपकार विया करें ॥ २७ ॥ स्वामग्नद्रसम्य परमष्ठी ऋषिः । अग्निदेवता विराद्यार्थी

जगती छन्दः । निपादः स्वरः ॥ फिर वह कैसा हो यह वि०॥

स्वामंग्ने ग्रङ्गिरसो गुहा हिनमन्वविन्दान्छ श्रि<u>णाखं वर्तेवते ।</u> स जांगसे मध्यमां<u>नः</u> सहो महत्वामाहुः सहसर्द्रमिद्धरः॥ २८॥

पदार्थः—हे ( झांक्ररः ) प्राधावतित्रय ( झग्ने ) विद्वन् जैसे ( सः ) वह ( मध्य-मानः ) मथन किया हुझा अग्नि प्रनिद्ध होता है वैसे तृ विद्या से ( जायसे ) प्रकट होता है जिस को ( महत् ) बंदे ( सहः ) बलयुक्त ( सहसः ) बलवान् वायु से (पु-श्रम् ) उत्पन्न हुए पुत्र के तुन्य ( वंतवने ) किरण २ वा पदार्थ २ में (शिक्षियाग्रम्) झाश्चित ( गुहा ) बुद्धि में ( हितम् ) स्थित हितकारो (त्वाम्) उस अग्नि को (माहुः) कहते हैं ( अङ्गिरसः ) विद्वान् बंग्ग ( अन्वविन्द्न् ) श्रात होते हैं उस का बोध ( त्वाम् ) तुक्ते कराता हूं ॥ २८ ॥

भावार्थ:-मश्चि दो प्रकार का होता है। एक मानस और दूसरा वाहा इस में

माध्यन्तर को युक्त माहार विहारों से और वाह्य को मन्धनादि से सब विद्वान् संबन करें वैसं इतर जन भी सेवन किया करें॥ २८॥

सका इत्यस्य परमहा ऋषिः। अग्निर्देवता । विराहनुषुप् कन्दः।

गान्धारः खरः ॥

मनुष्य सोग कैसे होके मार्ग्न को आने यह वि०॥ संखोगः सं वं: मुम्यश्चांमवृष्ठ स्तामं चारनये। वर्षिष्ठाय क्षि-नीनामुर्जी नप्त्र सहस्वते ॥ २९॥

पदार्थः - हं (सखायः ) मित्रों ( क्षितीनाम् ) मननशील मनुष्य ( वः ) तुम्हारे ( ऊर्जः ) बल के ( नप्त्रे ) पीत्र के तुल्य वर्त्तमान (सहस्वते) बहुत बल वाले ( वर्षि- ष्ठाय ) भत्यम्त बड़े ( अग्नये ) अग्नि के लियं जिस ( सम्यक्षम् ) सुन्दर सत्कार के हेतु ( इपम् ) अन्न को ( च ) और ( स्तोमम् ) स्तुनियों को ( समाहुः ) अञ्छ प्रकार कहते हैं वैस तुम लोग भी उस का अनुष्ठान करो ॥ २९ ॥

भाषार्थः न्यहां पूर्व मन्त्र स ( आहुः ) इस पद की अनुवृत्ति झाती है। कारीगरीं को खाहिय कि सब के मित्र हो कर विद्वानों के कथनानुसार पदार्थ विद्या का झनु-ष्ठान करें जो विज्ञली कारणरूप वल से उत्पन्न होती है यह पुत्र के तुल्य है और जो सूर्यादि के सकाशमें उत्पन्न होती है सो पौत्र के समान है ऐसा जानना चाहिये॥२९॥

संसमिदिखस्य परमेष्ठी ऋषिः। अभिनर्देवता। विराडनुषुप् छन्दः।

गान्धारः स्वरः ॥

बैद्य को क्या करना चाहिये यह वि० ह

सक्षमिन्द्रवसे वृषकाने विद्यान्त्रकी सा। इडस्प्दे समिध्यसे सनो वस्त्या भेर ॥ ३०॥

पदार्थः -हे (हपन्) बलवन् (भग्ने) प्रकाशमान (भर्थः) वैदय जो तू (संस-मायुवसे) सम्यक् भच्छे प्रकार सम्बन्ध करते हो (इडः) प्रशंसा के योग्य (पदे) प्राप्ति के योग्य भिषकार में (सिमध्यसे) सुद्योगित होते हो (सः) सो तू (इत्) ही अग्नि के योग से (नः) हमारं लियं (विद्यानि) सब (वस्तृति) धनों को (आ-भर) मच्छे प्रकार धारणा कर ॥ ३०॥

भावार्यः-राजाओं से रच्चा पाप्त हुए वैदय लोग अग्न्यादि विद्याओं के लिये और अपने राजपुरुषों के लिये संपूर्ण धन धारमा करें ॥ ३० ॥

स्थामित्यस्य परमेष्ठी ऋषः। मन्तिर्देवता। विराडनुष्ट्र छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग अग्नि से क्या सिक्द करें यह बि॰॥

त्वां चित्रश्रवस्तम् हर्वन्ते विक्षु जन्तवः। श्रोचिष्केशं पुरुष्टि-याग्ने हुन्याय बोढेवे ॥ ३१ ॥

पदार्थः - हे (पुरापिय) बहुतों के प्रसन्न करने हारे वा बहुतों के प्रिय ( विज्ञश्च-बस्तम ) आश्चर्यक्रप अन्नादि पदार्थों से युक्त (अग्ने ) तेज्ञस्त्री विद्वान् (विश्व) प्र-जाओं में (हव्याय) स्वीकार के योग्य अन्नादि उत्तम पदार्थों को (बंदिने ) प्राप्त के लिये जिस (शोचिष्केशम्) सुखाने वाली सूर्य की किरगों के तुल्य तेजस्ति (स्थाम् ) आप की (जन्तनः ) मनुष्य लीग (हवन्ते ) स्त्रीकार करते हैं उसी की हम लीग भी स्त्रीकार करते हैं ॥ ३१॥

भावार्थ:-मनुष्य को यांग्य है कि जिस झग्नि को जीव सेवन करते हैं उस से भार पहुंचाना आदि कार्य्य भी सिद्ध किया करें ॥ ३१ ॥

पनाव इत्यस्य परमष्टी ऋषिः। अग्निर्देवता । विराड्बृह्ती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥
फिर वह फैसा हो यह वि०॥

एना वो आर्थिन नर्ममुक्ति नपातमा हुवे। प्रियं चेतिष्ठमगति छे स्वध्यरं विद्वांस्य दूतमुमृतीम् ॥ ३२ ॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो जैसे में (व:) तुम्हारे लिये पना) उस पूर्योक्त (नममा) प्र-हम्म के यांग्य अन्न से (नपातम्) इड स्त्रभाव (नियम्) न्नीति कारक (चेतिष्ठम्) अत्यन्त चेतनता कराने हारे (अर्थातम्) चेतनता रहित (स्त्रध्वरम्) अच्छे रक्षणीय व्यवहारों से युक्त (अमृतम्: कारग्रारूप से नित्य (विश्वस्य) संपूर्ण जगत् क (दूतम्) सब आर चलतहारे (अग्निम्) विजुली को और (ऊर्ज) पराक्रमों को (आहुने) स्वीकार कर्ल वैसे तुम लोग भी मरेलिये प्रहम्म करो॥ ३२॥

भावार्थः - हे मनुष्यो हम खोग तुम्हारे लिये जो अग्नि आदि की विद्या प्रसिद्ध करें उनको तुम लोग भी स्वीकार करे। ॥ ३२ ॥

विश्वस्य द्तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्बृह्ती

छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर वह कैसा हो यह वि०॥

बिइबंस्य दूतम्मृतं विइवंस्य दूतम्मृतंम् । स योजते स्ररुषा विइबभोजम् स दुंद्रवृत्स्वाहृतः॥ ३३ ॥ पदार्थः -हे मनुष्यां जैसं में (विद्यस्य) सब भूगोर्छों के (दूतम ) तपाने वाले सूर्यकप असृतम् ) कारम् कप सं अविनाशि खकप (विश्वस्य) संपूर्ण पदार्थों को (दूतम् ) ताप सं जवाने वाले (अमृतम् ) जल में भी व्यापक कारमारूप अग्नि को खीकार करूं वैसे (विश्वमीजसा ) जगत् के रक्षक (अव्या) रूपवान् सब प-दार्थों के साथ वर्तमान है (सः) वह (योजते ) युक्त करता है जो (खाहुतः) अ- च्छे प्रकार प्रहण किया हुमा (दुद्वत् ) शरीरांदि में चलता है (सः) वह तुम लो-गों को जानना चाहिये॥ ३३॥

भावार्थः-इस मंत्र में पूर्व मंत्र से (आहुवे) इस पद की अनुवृत्ति आती है। तथा (विश्वस्य दूनममृतस्) इन तीन पदों की दो वार आवृत्ति से स्थूल है और सुहम दो प्रकार के अदि का ग्रहण होता है। वह सब अदि कारग्रहप से नित्य है एसा जानना चाहिये॥ ३३॥

स दुद्रचिद्रत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्थ्यनुषुष् इन्दः। गान्धारः स्वरः॥ फिर वह कैसा हो यह वि०॥

स दुंद्रवृत्स्वाहुतः स दुंद्रवृत् स्वाहुतः । सुब्रह्मां यज्ञः सुशमी वस्नां द्वेत्रधराधां जनांनाम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः - हे मनुष्यो ! (सः । वह अग्निं (स्वहुतः ) भच्छे प्रकार बुलाये हुए मित्र के समान (बुद्रवत् ) चलता है तथा (सः ) वह (स्वाहुतः ) अच्छे प्रकार निमंत्रण किये विद्वःन् के तुल्य (बुद्रवत् ) जाता है (सुब्रह्मा ) भच्छे प्रकार चारों वेद के ज्ञाना (यज्ञः ) समागम के योग्य (सुशमी) अच्छे शान्ति शीं पुरुष के समान जो (वस्त्राम् ) पृथिवी आदि यसुमों और (जनानाम् ) मनुष्यों का (देवम् ) अभी-दिस्त (राधः ) धन रूप है उस अग्नि को तुम लोग उपयोग में लाओ ॥ ३४॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकछ०--जो वेगवान् ग्रन्य पदार्थों को वेग देने वाला शान्ति कारक पृथिन्यादि पदार्थों का प्रकाशक अग्नि है उस का विचार क्यों न क-रना चाहिये ? ॥ ३४ ॥

भग्ने वाजस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अन्निर्देवता। उप्पाक् सन्दः। ऋषभः स्वरः॥ फिर वह भग्नि कैसा है यह वि०॥

भाते वार्जस्य गोमत ईश्चांनः सहस्रो यहा । अस्मे धेहि जातः

बेट्रो महि अवं: ॥ ३५॥

पदार्थः -हे (सहसः) बलवान् पुरुष के (यहो ) सन्तान (जातवेदः) विज्ञान को प्राप्त हुए (अग्नं) तेजस्वा विज्ञान् आप भग्नि के तृत्य (गोमतः) प्रशस्त गौ और पृथिवी से युक्त (वाजस्य) अन्न के (ईशानः) स्वामी समयं हुए (अस्मे) ह-मारे लियं (महि) वहे (श्रवः) धन को (धेहि) धारणा की जिये॥ ३५॥

भावार्थः-इस मन्त्रमें वाचकछु०-अच्छी रीति से उपयुक्त किया अग्नि यहुत धन देता है ऐसा जानना चाहिये॥ ३५॥

> स इधान इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्माक् छन्दः। ऋषमः स्वरः॥ फिर वह कैसा हो यह बि०॥

स ह्यानो वमुष्काविराग्निर्राडन्यो शिरा । रेवट्समभ्यं पुर्वश्वीक दीविहि ॥ ३६ ॥

पदार्थः -हे (पुर्वस्वीक) बहुत सेना वाले राजपुरुष विद्वान् (गिरा) वास्वी से (ईडेन्यः) क्षोजने योग्य (बसुः) निवास का हेतु (कविः) समर्थ (इधानः) प्र-दीप (सः) उस पूर्वोक्त (आंग्रः) अग्निके समान (अस्मभ्यम्) हमारे विषे (रे-वत्) प्रशंसित धन युक्त पदार्थों को (दीदिहि) प्रकाशित की जिये ॥ ३६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचक लु०-विद्वान् को चाहिये कि श्रीम के गुगा कर्म और स्वभाव के प्रकाश के तुल्य मतुष्यों के लिये पेदवर्य की उन्नति करे॥ ३६॥

> चुपं राजिन्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता । निचृदुः च्याक् छन्दः। ऋषमः खरः॥ फिर वह कैसा हो यह वि०॥

श्रुपो र्राजन्तुत त्मनारने बस्तोकृतोषसंः । स तिरमजन्म रुच सो दहु प्रति ॥ ३७॥

पदार्थः -हे (तिग्मजम्भः) तीक्ष्य अवयवों के चलाने वासे (राजन् ) प्रकाशमान (अग्ने ) विद्वान् जन (सः) सो पूर्वोक्त गुरायुक्त आप जैसे तीक्ष्या तेज युक्त आग्नि (क्षपः) राजियों (उत) और (वस्तोः) दिन के (उत) ही (उपसः) प्रभात और सार्थकास के प्रकाश की उत्पन्न करता है वैसे (स्मना) तीक्ष्या स्वभाव युक्त अपने आत्मा से (रक्षसः) दृष्ट जनों को राजि के समान (प्रतिदृह् ) निश्चय करके सस्म कीजिये॥ ३७॥ भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०--मनुष्यों को चाहिये कि जैसे प्रभात दिन भौर रात्रि का निमित्त भन्नि को जानते हैं वैसे राजा, त्याय के प्रकाश और अन्याय की निर्देश का हेतु है ऐसा जानें॥ ३७॥

भक्षो न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषः। अग्निर्देवता। निचृदुष्माक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥ फिर वह कैसा हो यह वि०॥

भ्रद्वां नी अग्निराहुंती भ्रद्वा गातिः स्रुप्तमा भ्रद्वो अध्युरः । भ्र-द्वा चन प्रशस्तयः ॥ ३८ ॥

पदार्थः-हे (सुमग) सुन्दर ऐहत्तर्थं वाले विद्वाम् पुरुष जैसे (बाहुतः) ध्रम्य के तृत्य सेवन किया मित्ररूप (बाग्नः) अग्नि (भद्रः) सेवने योग्य (भद्रा) क-त्यासाकारी (रातिः) दान (भद्रः) कल्पासाकारी (ब्रध्वरः) रक्षणीय व्यवहार (उत्) और (भद्राः) कल्पासा करने वाली (प्रशस्तयः) प्रशंसा होवें वैसे भाप (नः) हमारे लिये हुर्जिये॥ ३८॥

भावार्थः - इस मन्त्र में वाचकलु० - मनुष्यों को योग्य है कि जैसे विद्या से अच्छे प्रकार सवन किये जगत् के पदार्थ सुखकारी होते हैं वैसे आप्त विद्वान लोगों को भी जानें ॥ ३८॥

भद्रा उतेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निदैवता। नित्रुदुष्णिक् छन्दः।

ऋषभः खरः॥

फिर वह विद्वान कैसा हो यह वि०॥

भद्रा इत प्रदेश्तयो भद्रं मनः कृणुष्व रुष्ट्रत्ये । येनां समत्सुं सासद्यं ॥ ३९ ॥

पदार्थः -हे (सुभग) शोभन सम्पत्ति वाले पुरुष आप (येन) जिस से हमारे (इन्नतूर्थ्ये) युद्ध में (भद्रम्) कल्याणकारी (मनः) विचारशक्ति युक्त चित्त (उत) और (भद्राः) कल्याण करने हारी (प्रशस्तयः) प्रशंसा के योग्य प्रजा और जिस से (समत्सु) संप्रामों में (सासहः) अत्यन्त सहन शील वीर पुरुष हों वैसा कर्म (कुणुष्य) कीजिये॥ १९॥

भावार्थ:-यहां (सुभग, नः) इन दो पढ़ों की मनुदृत्तिं पूर्व मन्त्र से झाती है। विद्वान् राजा को चाहिये कि पेसे कर्म का मनुष्ठान करे जिस से प्रजा और सेना उत्तम हों॥ ३९॥ येनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचुतुष्याक् छन्दः। अवभः स्वरः 🏻

फिर वह कैसा हो **यह वि०**॥

येनां समत्सुं ससहोऽवं स्थिरा तनुहि भूति दार्वताम् । वनेमां ते अभिष्टिभिः॥ ४०॥

पदार्थ:-हे (सुभग) मुन्दर लक्ष्मी युक्त पुरुष आप (येत ) जिस के प्रताप से हमारे (समत्सु ) युद्धों में (सासहः ) शीध सहना हो उस को तथा (भूरि ) ब-इत प्रकार ( रार्धताम ) बल करते हुए हमारे ( स्थिरा ) स्थिर सेना के साधनों को ( अवतनुहि ) अच्छे प्रकार बढ़ाइये ( ते ) आप की ( अभिष्टिभिः ) इच्छाओं के अ-नुसार वर्षमान हम जोग उस सेना के साधनों का (वनेम) सेवन करें ॥ ४०॥

मावार्थ:-यहां भी ( सुभग, नः ) इन दोनों पदों की अनुवृक्ति बाती है विद्वानों को उचित है कि बहुत बलयुक बीर पुरुषों का उत्साह नित्य बढावें जिस से ये लोग इत्साही हुए राज भौर प्रजा के हितकारी काम किया करें॥ ४०॥

अभिनतमित्यस्य परमेष्टी ऋषिः। अभिनदेवता । निचत्पक्तिरुक्तन्दः । पञ्चमः स्वरः॥ फिर वह क्या करे यह वि०॥

अ्तिन तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः। अस्तमर्थन्त आः शबोऽस्तं नित्यांसां चाजिन इष्ध स्तोत्रभ्य आ भर ॥ ४१ ॥

पदार्थ:-हे विद्वान पुरुष (यः ) जो (वसुः ) सर्वत्र रहते बाजा अग्नि है (यम) जिस ( अग्निम ) वाणी के समान अग्नि को ( धेनवः ) गी ( अस्तम् ) घर को (यन्ति) जाती हैं तथा जैसे (नित्यासः) कारमा रूप से विनाश रहित (वाजिनः) बेग वाले ( माद्यवः ) शीव्रगामी ( मर्वन्तः ) घोडे ( मस्तम् ) घर को प्राप्त होते हैं बैसे मैं (तम् ) उस पूर्वीक अग्नि को (मन्ये ) मानता हूं और (स्ते।तृप्त्यः ) स्तुति कारक विद्वानों के बिये ( इपम् ) अच्छे अन्नादि पदार्थों को भारता करता हूं बैसे ही तु उस अग्नि को (आभर) धारण कर ॥ धर् ॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलु०-अध्यापक लोग विद्यार्थियों के प्रति ऐसा कहें कि जैसे इम लोग आचरण करें वैसा तुम भी करो। जैसे गी आदि पश दिन में इधर उधर भ्रमण कर सायंकाल अपने घर आ के प्रसन्न होते हैं। वैसे विद्या के स्थान की प्राप्त हो के तुम भी प्रसन्न हुझा करो ॥ ४१ ॥

सो अग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। मन्तिदेवता।आर्थी पङ्क्तिइक्क्न्दः। पञ्चमःस्वरः॥

फिर वह फैसा हो यह वि०॥

स्रो अग्नियाँ वर्सुर्गृणे सं यम्।यन्ति धेनर्वः। समर्वन्तो रघुदुव सक्षस्जातासंः सूरयः इष्टक्षं स्तातृभ्य स्नाभर ॥ ४२ ॥

पदार्थः ने दे विद्यार्थी विद्वान् पुरुष जैसे में (यः) जो (वसुः) निवास का देतु (भागिः) भागि है उस की (गृशों) अच्छे प्रकार स्तृति करता हूं (यम्) जिस का (भेगवः) वार्खा (समायन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं (रघुद्रुवः) धीरज से चलने वाले ( अवंन्तः ) प्रशंसित झानी ( मुजातासः ) अच्छे प्रकार विद्यार्थों में प्रसिद्ध (मृर्यः) विद्वान् लोग (स्तोत्तृश्यः) स्तृति करने हारे विद्यार्थियों के जिये (इषम्) झान को (सम्) अच्छे प्रकार भारण करते हैं और जैसे (सः ) वह पढ़ाने हारा इंद्वरादि पदार्थों के गुण वर्षान करता है वैसे तू भी इन पूर्वोक्तों को (समाभर) झान से भारण कर ॥ ४२॥

भावार्थ:-मध्यापकों को चाहिये कि जैसे गी अपने वक्क को तृप्त करती हैं वैसे विद्यार्थियों को प्रसन्न करें और जैसे घोड़े शीघ्र चला के पहुंचाते हैं वैसे विद्यार्थियों को सब विद्याओं के पार शीघ्र पहुंचावें॥ ४२॥

डमें इसस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्यङ्क्तिरुखन्दः। एडचमः स्वरः॥ फिर वह क्या करे यह वि०॥

ड्मे सुंइचन्द्र सर्पिषुं दवी श्रीणीव आसिने। ड्लो न उत्पंपूर्या डक्थेषुं शवसस्पत्त इष्धं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४३ ॥

पदार्थः - हे (सुरचन्द्र) सुन्दर आनन्ददाता अध्यापक पुरुष आप (सर्पिषः) घी के (दर्षी) चलाने पकड़ने की दो कर्की से (अग्रिशिषे) पकाने के समान (आसिन) सुस में (उसे) पढ़ने पढ़ाने की दो कियाओं को (आसर) धारण की जिये। हे (दाः चसः) बल के (पते) रक्षकजन तू (उक्थेषु) कहने सुनने योग्य बेद विभागों में (नः) हमारे (उतो) और (स्तोतृश्यः) विद्वानों के लिये (इषम्) अन्नादि पदाः थीं को (उत्पूर्णाः) उत्कृष्टता से पूरण कर ॥ ४३॥

भाषार्थः - जैसे महत्विज् लोग घृत को शोध कर्छा से अग्ति में होम कर और वा-यु तथा वर्षाजलको रोमनाशक करके सब को सुकी करते हैं वैसे ही मध्यापक लो-गों को चाहिये कि विद्यार्थियों के मन भट्छी शिचा से शोध कर उन को विद्यादान देके आत्माओं को पार्वित्र कर सब को सुकी करें॥ ४३॥

सम्मेतिमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। सम्मिर्देवता। वार्षी गायत्री कन्दः। पड्जः स्वरः॥ किर वह कैसा हो यह वि०॥ अर<u>ने</u> तम्यार<u>वं</u> न स्तोमैः ऋतुं न <u>भ</u>द्रथं हृद्धिस्पृत्तमः । ऋध्यामां त सोहैं: ॥ ४४ ॥

पद्धिः-हे (भ्रग्ने) अध्यापक जन हम लोग (ते) भाष से (ओहै:) विद्या का सुख देने वाले (स्तोमै:) विद्या की स्तृति रूप वेद के भागों से (अद्य) भाज (भ्र- ६१म् ) घोड़े के (न) समान (भद्रम्) कल्यामा कारक (फ्रतुम्) बुद्धि के (न) समान तम् उस (हिद्स्पृशम्) भात्मा के साथ गन्ध करने वाले विद्या बोध को माप्त हो के निरन्तर (ऋध्याम) वृद्धि को प्राप्त हों॥ ४४॥

भाषार्धः - इस मन्त्र में दो उपमालंकार हैं। अध्येता लोगों को चाहिये कि जैसे अच्छे शिक्षित घोड़े से अभीए स्थान में शीघ पहुंच जाते हैं जैसे विद्वान् लोग सब शास्त्रों के बोध से युक्त कल्याण करने हारी बुद्धि से धर्म, अर्थ, काम और मोक्षफलों को प्राप्त होते हैं वैसे उन अध्यापकों से पूर्णिविद्या पढ़ प्रशंसित बुद्धि को पा के आप उद्यति को प्राप्त हों तथा वेद के पढ़ाने और उपदेश से अन्य सब मनुष्यों की भी उद्यति करें॥ ४४॥

अवाहीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्था गायत्री छन्दः। पड्जः स्वरः॥
फिर वह कैसा हो यह वि०॥

अक्ष हारने कतो भेदस्य दक्षस्य साधोः । र्थी क्षेतस्यं बृहतो ब-

पदार्थः—हे ( अग्ने ) विद्वत् जन जैसे नू ( भद्रस्य ) आतन्द कारक ( दक्षस्य ) शक्ति आतम के बद्ध से युक्त ( साथोः ) अच्छे मार्ग में प्रवर्त्तमान ( ऋतस्य ) सत्य को प्राप्त हुए पुरुष की ( वृहतः ) वड़ं विषय वा ज्ञानक्तप ( फतोः ) बुद्धि से ( रथीः ) प्रशंसित रमण साधनयानों से युक्त ( बभूय ) हाजिये वैसे ( अध ) मंगला-चरण पूर्वक ( हि ) निश्चय करके हम भी होते ॥ ४५ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकजु०-जैसे शास्त्र और योग से उत्पन्न हुई बुद्धि को माप्त हो के विद्वान् लोग बढ़ते हैं वैसे ही अध्येता जोगों को भी बढ़ाना चाहि-ये ॥ ४५॥

प्रिनं इत्यस्य प्रमेष्ठी ऋषिः। अग्निदेवता। भुरिगार्षी गायश्री छन्दः। पड्जः स्वरः॥ फिर भी वही वि०॥

पुत्रिनों अर्केर्भवां नो अर्वाङ् स्वूर्ण ज्यातिः । अर्ग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ४६ ॥ पदार्थः - हे ( स्रग्ने ) विद्याप्रकाश से युक्त पुरुष स्राप ( नः ) हमारे जिये ( वि-द्वेभिः ) सब ( स्रनीकैः ) सेनाओं के सहित राजा के तुल्य ( सुमनाः ) मन से सुख दाता ( भव ) ह्जिये ( पिभः ) इन पूर्वोक्त ( सर्कः ) पूजा के योग्य विद्वानों के स-हित ( नः ) हमारे जिये ( ज्योतिः ) झान के प्रकाशक ( सर्वोङ् ) नीचों को उत्तम करने को जानने वाले ( स्थ ) सुख के ( न ) समान हुजिये ॥ ४६ ॥

भाषार्थ:--इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०--जैसे राजा अच्छी शिक्षा बल-युक्त सेनाओं से शत्रुओं को जीत के सुखी होता है वैसे ही वृद्धि आदि गुर्गों से अ-विचा से दूप क्रेशों को जीत के मनुष्य लोग सुखी होवें ॥ ४६॥

> अग्निश्च होतारमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता । विराङ्ःब्राह्मी त्रिष्टुण् ऋन्द् । धेवतः स्वरः॥

> > फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अभिष्ठ होतारं मन्छे दास्वन्तं वस्र्ष्ठ सूनुष्ठ सहसो जातवेद्मं बिग्रं न जातवेदसम् । य अर्ध्वयां स्वध्वरो देवो देवाच्यां कृपा । घृतस्य विभ्रांष्ट्रिमन् बिछ शोचिष्ठाऽऽजुह्वांनस्य स्पिषः॥ ४७॥

पदार्थः -हे मनुष्यो ! (यः) जो ( ऊर्ध्वया ) ऊर्ध्वगित के साथ (स्वध्वरः) गुम कर्म करने से अधिसनीय ( देवाच्या ) बिद्धानों के सरकार के हेतु ( कृपा ) समर्थ किया से ( देवः ) दिव्य गुग्गों वाला पुरुष ( ग्रोचिया ) दीति के साथ ( आजुह्वानस्य ) झच्छे प्रकार हवन किये ( सर्पिषः ) भ्री और ( भृतस्य ) जल के सकाशते ( विम्राध्यम् ) विविध प्रकार के ज्योतियों को ( अनुविध्य ) प्रकाशित करता है उस ( होतारम् ) सुख के दाता ( जातवेदसम् ) उत्पन्न हुप सब पदार्थों में विधमान ( सहसः ) यजवान पुरुष के ( स्नुम् ) पृत्र के समान ( वसुम् ) धनदाता । दाखन्तम् ) दानशील ( जातवेदसम् ) युद्धिमानों में प्रासिद्ध ( भ्रीनम् ) तेजस्वी अगि के ( न ) समान ( विश्वम् ) आत झानी का में ( मन्ये ) सरकार करता हूं यैसे तुम लोग भी उस को मानो ॥ ४०॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु॰ -जैसे घच्छे प्रकार संवन किये विद्वान लोग विद्या धर्म और घच्छी शिक्षा से सब को भार्य करते हैं वैसे युक्ति से सेवन किया श्रान्त अपने गुण कर्म और स्वभावों से सब के सुख की उन्नति करता है॥ ४७॥

अग्नेत्वचा इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराङ्शक्षी बृहती क्रन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

ग्रामें स्वक्षों जन्तम जन जाता जियों भेवा वर्षण्याः। वस्रिक्तिन
वस्रुश्रवा अच्छा निक्षि गुमर्त्तमछ रुधिन्दाः। तं स्वां ज्ञोचिष्ठ दीदिवः सुम्रार्थं नूनमीमहे सर्विभ्यः ॥ ४८॥

पदार्थः—हे अग्नं विद्वान् (त्वम् ) आप जैसे यह (वसुः ) अनदाता (वसुक्षवाः) अस और धन का हेतु (आग्नः) अग्नि (रियम् ) धन को (दाः ) देता है वैसे (नः ) हमारे (अन्तमः ) अत्यन्त समीप (त्राता ) रत्तक (विरूथः ) श्रेष्ठ (उत ) और (शिवः ) मंगलकारी (भव ) हृजिये हे । (शोचिष्ठ ) भिततेजस्त्री (हिवः ) बहुत प्रकाशों से युक्त वा कामना वाले विद्वान् जैसे हम लोग (त्वा ) तुक्षको (सिख्निश्यः) मित्रों से (सुम्नाय ) सुल के जिये (नूनम् ) निश्चय (ईमहे ) मांगते हैं वैसे (तम् ) उस तुक्षको सब मनुष्य चाहे जैसे में (सुम्नमम् ) प्रशस्तित प्रकाशों से युक्त तुक्ष को (अच्छ ) अच्छे प्रकार (निक्ष ) प्राप्त होता हं वैसे तू हम को प्राप्त हो ॥ ४८ ॥

भावार्थः- इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे मित्र अपने मित्रों को चाहते और उन की उन्नति करते हैं वैसे विद्वान सब का मित्र सब को मुख देवे॥ ४८॥

येन ऋषय इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। भग्निर्देवता। आर्थी त्रिष्टुप् छन्दः।

धेवतः स्वरः॥

फिर भी उसी विषय को अगले में न्त्र में कहा है।।

चे<u>न</u> शर्ष्यस्तपसा सत्रमायशिन्धांना अग्निधस्त्रंराभरंन्तः। त-स्मिन्नहं निदं<u>चे</u> नाके अगिन यमाहुर्मनेवस्तार्णबंहिषम् ॥ ४६॥

पदार्थ:-(येत) जिस (तपसा) धर्मा नुष्ठानरूप कर्म से (इन्धानाः) प्रकाशमान (स्वः) सुख को (आभरन्तः) अच्छे प्रकार धारण करते हुए (अप्यः) वेद का अर्थ जानने वाले ऋषि लोग (सत्रम्) सत्य विकान से युक्त (अग्निम्) विद्युत् आदि अग्नि को (आयत्) प्राप्त हों (तिस्मन्) उस कर्म के होते (नाके) दुःख रहित प्राप्त होने योग्य सुख के निमित्त (मनवः) विचारशील विद्वान् लोग (यम्) जिस (स्तीर्गावर्हिषम्) आकाश को आच्छादन करने वाले (अग्निम् ) अग्नि को (आहुः) कहते हैं उस को (अहम्) में (नि, द्ये ) धारण करना हूं॥ ४९॥

भाषार्थः-जिस प्रकार से बेदपारग विद्वान् लोग सत्यका अनुष्ठान कर विज्ञली भादि पदार्थों को उपयोग में लाके समर्थ होते हैं उसी प्रकार मनुष्यों को समृद्धियुक्त होना चाहिये॥ ४९॥

तै पत्नीभिरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। भ्राग्निर्देवता। भुरिगावी त्रिष्टुए छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विद्वानों को फैसा होना चाहिये यह वि०॥

तं पत्नी भिरतुं गच्छेम देवाः पुत्रैश्चीतृं भिष्ठत हा हिरंण्यैः। नार्क्ष गृभ्णानाः सुंकृतस्यं लोके तृतीये पृष्ठे अधिरोचने दिवः॥ ५०॥

पदार्थः-हे (देवाः) विद्वान् लोगो जैसे तुम लोग (तम्) उस पूर्वोक्त मिन्न को (गुआगानाः) महण करते हुए (दिवः) प्रकाशयुक्त (सुक्रतस्य) सुन्दर वेदोक्त कर्म (मिन्न) में वा (रोचनं) रुचिकारक (तृतीये) विद्वान से हुए (एष्टे) जानने को इए (लोके) विचारने वा देखने योग्य स्थान में वर्षमान (पर्वाभिः) अपनी रिख्यों (पुत्रैः) वृद्धावस्था में हुए दुःव से रक्षक पुत्रों (भ्रातृभिः) वन्धुओं (उत, वा) और अन्य सम्बन्धियों तथा (हिरण्यैः) सुवर्णादि के साथ (नाकम् ) आनन्द को प्राप्त होते हो वैसे इन सब के सहित हम लोग भी (अनु, गञ्केम) अनुगत हों॥ ५०॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकजु॰—जैसे विद्वान् लोग अपनी स्त्री पुत्र, भाई, कन्या, माता, पिता, सेवक मौर परोसियों को विद्या मौर मर्स्ती शिक्षा से अमीतमा पुरुषार्थी करके सन्तोपी होते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को होना चाहिये॥ ५०॥

> मा वाच इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। मग्निर्देवता। खराडार्षी त्रिष्टुण् छन्दः। भैवतः स्वरः॥

ईइवर के तुल्य राजा को क्या करना चाहिये यह वि०॥

आ वाचो मध्यंमरुहद्भुरुण्युर्यम्गिनः सत्पंतिश्चेकितानः । पृष्ठे पृथिच्या निहित्तो द्विद्यतद्घरपुदं कृणुतां ये पृत्तन्यवः॥ ५१ ॥

पदार्थः - हे विद्वान् पुरुष (चेकितानः) विद्वानयुक्त (सत्पितः) श्रेष्ठों के रक्षक आप (बाचः) वार्ग्या के (मध्यम्) वीच हुए उपदेश को प्राप्त हो के जैसे (भयम्) यह (सुरुष्युः) पुष्टिकर्त्ता (अग्निः) विद्वान् (पृथिव्याः) मूमि के (पृष्ठे) ऊपर (नि-हितः) निरन्तर स्थिर किया (दिवशुतत्) उपदेश से सब को प्रकाशित करता। और भर्म पर (आ, रहत्) आहद होता है उस के साथ (ये) जो जोग (पृतन्यवः) युद्ध के लिये सेना की इच्छा करते हैं उनको (अधस्पद्म) अपने अधिकार से च्युत जैसे हो वैसा (कृतुताम्) कीजिये ॥ ५१॥

भावार्थः-विद्वात् मतुष्यां को चाहिये कि जैसे ईश्वर ब्रह्माण्ड में सूर्यजोक को स्थापन करके सब को मुख पहुंचाता है। वैसे ही राज्य में विद्या और बल को भा-रह्मा कर शक्तुओं को जीत के प्रजा के मतुष्यों का सुख से उपकार करें॥ ५१॥

अयमिप्रिरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निदेवता।

िनिचृदार्षी त्रिष्टुए छन्दः । धैवतः खरः ॥

धर्मात्माओं के तुल्य अन्य लोगों को वर्त्तना चाहिये॥

अवम्रिनर्वीरतमो वयोधाः संह्रस्त्रियो चोतत्वामप्रयुच्छन् ।

विभाजमानः सहिरस्य मध्य उप प्रयाहि दिव्यानि धार्म ॥ ५२॥

पदार्थ:-जो ( अयम् ) यह ( धीरतमः ) अपने वल से दामुझों को अत्यन्त व्याप्त होने तथा ( वयोभाः ) सब के जीवन को धारण करने वाला ( सहिन्नयः ) असंक्य योद्धाजनों के समान योद्धा ( सरिरस्य ) आकाश के ( मध्ये ) बीच (विभ्राजमानः) विशेष करके विद्या और न्याय से प्रकाशित सो (अश्युच्छन् ) प्रमादरहित होते हुए (अग्निः) अग्नि के तृत्य सेनापित आप (द्योतताम्) प्रकाशित हाजिये और (विश्यानि) अच्छे ( धाम ) जन्म कर्म और स्थानों को ( उप, प्र, याहि ) प्राप्त हुजिये ॥ ५२॥

भावार्थः - मनुष्यों को चाहिये कि धर्मातमा जनों के साथ निवास कर प्रमाद को छोड़ और जितेन्द्रियता से अवस्था बढ़ा के विद्या मौर धर्म के अनुष्ठान से पविश्व होके परोपकारी होते ॥ ५२॥ •

संप्रच्यवध्यमित्यस्य परमिष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगाणी पंक्तिद्द्धन्दः । प्रक्षमः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष केसे विवाह करके क्या करें यह वि०॥
सम्मन्ध्रवह्वमुर्ण सम्मग्रातारने पथी देवियानांन् कृणुह्वम्। पुनः
कृण्वाना पितरा गुवानान्वातांश्रसीत् स्विध तन्तुंसेतम्॥ ५३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो तुम लोग विद्याओं को (उपसंत्रयात) अब्छे प्रकार प्राप्त हो-ओ (देवयानान्) धार्मिकों के (पथ:) प्रार्गों से (संवच्यवष्वम्) सम्यक् चलो, भर्म को (कृत्युष्वम्) करो । हे (अग्ने) विद्वान् पितामह (त्विध ) तुम्हारे वने रहते ही (पितरा) रक्षा करने वाले माता पिता तुम्हारे पुत्र आदि ब्रह्मचर्थ्य को (कृण्वाना) करते हुए (युवाना) पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो और ख्यंषर विवाह कर (पुनः) पद्मात् (यतम् ) गर्माभागादि रीति से यथोक्त (तन्तुम् ) सन्तान को (अन्वातां-सीत् ) अनुकुछ उत्पन्न करें ॥ ५३॥

मावार्थ:—कुमार स्त्री पुरुष धर्म युक्त सेवन किये ब्रह्मचर्य से पूर्श विद्या पह आप धार्मिक हो पूर्ण युवायस्था की प्राप्ति में(कन्याओं की पुरुष और पुरुषों की कन्या परीसा कर अखन्तवीति के साथ जिस्त से परस्पर आकार्षित होंके अवनी इच्छा से विद्याह कर)धर्मानुकूल सन्तानों को उत्पन्न और सेवा से अपने माता पिता का संतोष कर के मात विद्वानों के मार्ग से निरन्तर चर्ल और जैसे धर्म के मार्गों को सरख करें वैसे ही भूमि जल और अन्तरिक्ष के मार्गों को भी बनावें॥ ५३॥

उद्बुध्यस्वेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्थी

त्रिष्टुए कन्दः । धैवतः स्तरः ॥

फिर वही पूर्वोक्त वि० ॥

बद्युंध्यस्वारने प्रति जागृहि त्विमिष्ठापूर्ते स्थर्सजेथाम्यं चं । अस्मिन् स्पर्धे अध्युत्तरस्मिन् विद्वे देवा पर्जमानद्व सीद्त॥५४॥

पदार्थः -हे (अग्ने) अच्छी विद्या से प्रकाशित स्त्री वा पुरुष तू (उद्बुध्यस्त्र) अ-च्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हो सबके प्रति (प्रति, जागृहि) अविद्यारूप निद्रा को छोड़ के विद्या से चेतन हो (त्वम्) तू स्त्री (च) और (अयम्) यह पुरुष होती (अ-स्मिन्) इस वर्षामान (संभस्थे) एक स्थान में और (उत्तरिसन्) आगामि समय में सदा (इष्टापूर्ते) इष्ट सुख विद्वानों का सत्कार, इर्देवर का आराधन, अच्छा सङ्ग करना और सत्य विद्या आदि का दान देना, यह इष्ट और पूर्णवल, ब्रह्मचर्य, विद्या की श्रोमा, पूर्णयुवा अवस्था, साधन और उपसाधन यह सब पूर्त इन दोनों को (सं, स्वेथाम्) सिद्ध किया करो (विद्ये) सब (देवाः) विद्वान् कोरा (च) और (यजमानः) यह करने वाळे पुरुष तू इस एक स्थान में (अधि, सीदत) उन्न-तिपूर्वक स्थिर होसो॥ ५४॥

भावार्थ: - जैसे आग्ने सुगन्भादि के होम से इए सुख देता और यहकर्षा जन यह की सामग्री पूरी करता है विसे उत्तम विवाह किये स्त्री पुरुष इस जगत में आचरण किया करें। जब विवाह के खिये इद मीति वाले स्त्री पुरुष हों तब विद्वानों को बुखा के उसके समीप बेहोका प्रतिशा करके पति और पक्षी वनें॥ ५४॥

थेन षहसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । स्रिग्नेदैवता । निचृदतुषुप् कन्दः ।

गान्धारः खरः ॥ फिर वही वि०॥ ये<u>न</u> वहीस सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । ते<u>ने</u>मं युद्धं नी नयु स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ५८ ॥

पदार्थ:-हे (अग्नं) विद्वान् पुरुष विदुषी स्त्री बातू (देवेषु) विद्वानों में (स्वः) सुल को (गन्तवे) प्राप्त होने के लिये (यन) जिस प्रतिक्षा किये कर्म से (सहस्र-म्) गृहाश्रम के असंख्य व्यवहारों को (वहिस्त) प्राप्त होते हो तथा (येन) जिस विद्वान् से (सर्ववेदसम्) सब वेदों में कहे कर्म को यथावत् करते हो (तेन) उस से (इमम्) इस गृहाश्रमक्ष (यहम्) संगति के योग्य यह को (नः) इम को (नय) प्राप्त की जिये ॥ ५५॥

भावार्थः निवाह की प्रतिकाशों में यह भी प्रतिका करानी चाहिये कि हे स्त्री पु-क्षो! तुम दोनों जैसे अपने हित के लिये माचरण करो वैसे हम माता पिता माचा-र्य और मतिथियों के सुख के लिये भी निरन्तर वर्षांव करों ॥ ५५ ॥

अयन्त इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । श्रांग्नर्देवता । निचृद्तुषुप् अन्दः ।

गान्धार: स्वर: ॥

फिर वही वि०॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो । जातो अरोचथाः । तञ्जानक्षरन् आ रोहार्थानो वर्षयार्थिम् ॥ ५६ ॥

पदार्थः -हे (अग्ने) विद्वत् चा विदुषि (अयम्) यह (ते) तेरा (ऋत्वियः) अहतु अर्थात् समय को प्राप्त हुआ (योनिः) घर है (यतः) जिस्स विद्या के पठन पाठन से (जातः) प्रीसद्ध हुआ वा हुई तृ (अरोचयाः) प्रकाशित हो (तम्) उस को (जानन्) जानता वा जानती हुई (आ, रोह) धर्म पर आकृत् हो (अध) इस के पक्षात् (नः) हमारी (रियम्) संपत्ति को (वर्षय) बहाया कर ॥ ५६॥

भावार्थ: स्त्री पुरुषों से विवाह में यह भी दूसरी प्रतिश्वा करानी चाहिये कि जिस ब्रह्मचर्य और जिस विद्या के साथ तुम दोनों स्त्री पुरुष इतकृत्य होते हो उस र को सदैव प्रचारित किया करों और पुरुषार्थ से धनाहि पदार्थ को बढ़ा के उस को अच्छे मार्ग में खर्च किया करों। यह सब हेमन्त ऋतु का व्यास्थान पूरा हुआ ॥५६॥

तपश्चेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। शिशिरर्त्तुर्देवता। स्वराद्धत्कृतिद्छन्दः।

षड्जः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में शिशिर ऋतुका वर्शन किया है ॥

तर्षश्च तृष्ट्युइच शैश्चिरावृत् अग्नेरंन्तः इल्लेखेऽसि करुपेनां यावापृथिवी करूपेन्तामापु भोषेत्रयः करूपेन्ताम्यनयः पृथ्वङ् मम् उपैच्यांच सर्वताः । ये अग्नयः सर्मनसोऽन्त्ररा यावापृथिवी इमे शैश्चिरावृत् अंश्विकरूपेमाना इन्द्रांमिव देवा अंश्विसंविद्यान्तृत्वां देवत्याङ्किर्स्वद् भ्रुये सीद्तम् ॥ ५७॥

पदार्थः—हे ईश्वर (सम) मेरी (ज्येष्ठचाय) ज्येष्ठचता के लिये (तपः) ताप बढ़ाने का हेतु माघ महीना (च) और (तपस्यः) तापवाला फाल्गुण मास (च) ये दोनों (शैशिरों) शिशिर ऋतु में प्रख्यात (ऋतू) अपने चिह्नों को प्राप्त करने वाले सुखदायी होते हैं आप जिन के (अग्नेः) अग्नि के भी (अग्नेःहलेखः) मध्य में प्रविष्ट (अपि) हैं उन दोनों से (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि (कल्पेताम्) समर्थ हों (आपः) जल (ओवध्यः) ओवध्यां (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (स्वृताः) एक प्रकार के नियमों में वर्षमान (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (पृथक्) अलग २ (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें (ये) जो (समनमः) एक प्रकार के मन के निमित्तवाले हें वे (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (इसे) इन (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि के (अन्तरा) वीच में होने वाले (शिश्तरों) शिशिर ऋतु के साधक (ऋतू) माघ फाल्गुन महिनों को (अभिकल्पमानाः) समर्थ कर्नते हें । उन अग्नियों को (इन्द्रनिय) पेश्वर्य के तृल्य (वेवाः) विद्यान् लोग (अभिक्तिशन्तु) शाक्ष्य सर्वत्र प्रविद्या करें। हे ली पुरुर्व तुन देवां (तया) उम (देवस्या) पुजा के योग्य सर्वत्र व्याप्त जगदीश्वर देवता के साथ (अङ्गिरस्वत् )प्राण्य के समान वर्षमान इन आकाश भू-मि के तृल्य (भूने) हद (सीहतम् ) हिथर होओ ॥ ५७॥

भावार्थः - इस मन्त्र में उपमालं ० - मनुष्यों को चाहिये कि सब ऋतुओं में ईर्षर से ही सुख चाहें ईर्धर विद्युत् आगि के बीच व्याप्त है इस कारण सब पदार्थ भ-पने २ नियम से कार्य में समर्थ होते हैं विद्वान् लोग सब वस्तुओं में व्याप्त विज्ञां रूप आग्नियों के गुगा देश जाने स्त्री पुरुष गृहाश्रम में स्थिर बुद्धि हो के शिशिर ऋतु के सुख को भोगें॥ ५७॥

परमेष्ठीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। विदुषी देवता।

भुरिग्बाझी बृहती ऋन्दः। मध्यमः स्वरः॥

स्वी को क्या करना चाहिये यह वि०॥

प्रमेष्ठी त्वां सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्। विश्वंसमे मा बार्पापानायं ज्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । सूर्यस्तेऽविर्पातस्तयां देवत्याऽङ्गिरुवद् भ्रुवा सीद् ॥ ५८ ॥

पदार्थः-हे स्त्र (परमेष्ठी) महाद् झाकाश में व्यास होकर स्थित परमेश्वर (श्यो-तिष्मतीम् ) प्रशस्तकानयुक्त (त्वा) तुक्त को (दिवः) प्रकाश के (पृष्ठं) उक्तम भाग में (विश्वसमें) सब (प्राणाय) प्राण् (अपानाय) अपान और (व्यानाय) व्यान आदि की यथार्थ किया होने के लिये (सादयतु) स्थित करें। तू सब स्त्रियों के लिये (विश्वम्) समस्त (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाश को (यञ्ज्क) दिया कर जिस (ते) तेरा (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्त्री (अधिपातः) स्वामी है (तया) उस (धेवतया) अच्छे गुण्योंवाले पति के साथ वर्त्तमान (अक्ट्रिस्वत्) सूर्य के स-मान (ध्रुवा) हदता से (सीद्) स्थिर हो॥ ५८॥

भावार्थः-इस्तंत्र में उपमा तथा वाचकछ०-जिस परमेदवर ने जो दारद ऋतु बनाया है उस की उपासना पूर्वक इस ऋतुको युक्ति से संवन करके स्त्री पुरुष सदा सुख बढ़ाया करें॥ ५८॥

बोकंपृयोत्यस्य परमेष्ठीऋषिः । इन्द्रान्ती देवते । विराजनुषुप् छन्दः ।

गान्धारः । स्वरः ॥

किर वही विशा

लोकं पृंग छिद्रं पृगाधी सीद् श्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा वृह-स्पतिरुक्तिन् योनांवसीषदन् ॥ ५९ ॥

पदार्थः —हे स्त्रि (त्वस्) तू इस (लोकस्) लोक तथा परलोक को (पृषा) सु-खयुक्त कर (छिद्रस्) अपनी न्यूनना को (पृषा) पूरी कर और (ध्रुवा) निश्चलता से (सीद्) घर में वैठ (अथो) इस के अनन्तर (इन्द्राग्नी) उत्तम धनी झानी त-था (बृहस्पतिः) अध्यापक (झिस्मन्) इस (योनी) गृहाश्रम में (त्वा) तुझ को (झसीपदन्) स्थापित करें ॥ ५९॥

भावार्थ:-अच्छी चतुर स्त्री को चाहिये कि घर के कार्यों के साधनों को पूरे क-रके सब कार्यों को सिद्ध करें। जैसे विद्वात् स्त्री भीर विदुषी पुरुषों की गृहाश्रम के कर्सट्य कर्मों में प्रीति हो वैसा उपदेश किया करें॥ ५९॥

> ता अस्वेत्यस्य प्रियमेधा ऋषिः । आपी देवताः । विराडनुषुप् छन्दः । गाम्धारः । स्वरः ॥

सब राजा प्रजा का धर्म सगले मन्त्र में कहा है ॥
ता अंस्य सूदंदोहसः सोमंछश्रीवान्ति पृदर्नधः । जनमन्देवानां
विद्योहित्रकारों चने दिवः ॥ ६० ॥

, ,

पदार्थः - जो विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त (देवानाम्) विद्वानों के (जन्मन्) जन्म विषय में (पृथ्रयः ) पूछने हारी (स्वदोहसः ) रसोइया और कार्यों के पूर्ण करने वाले पुरुषों से युक्त (त्रिषु) वेद रीति से कर्म उपासना और ज्ञानों तथा (दियः) सब के क्र्यूतः प्रकाशक परमात्मा के (रोचने ) प्रकाश में वर्तमान (विद्यः ) प्रजा हैं (ताः ) वे (अस्य ) इस सभाष्यक्ष राजा के (सोमम् ) सोमबस्त्री आदि ओषिं कि रसों से युक्त मोजनीय पदार्थों को (आ) सब ओर से (श्रीणन्ति) पकाती हैं। ६०॥

भावाये: -प्रजापालक पुरुषों को चाहिये कि सब प्रजाओं को विद्या और अच्छी शिक्षा के प्रहण में नियुक्त करें और प्रजा भी स्वयं नियुक्त हों इस के विना कर्म उपासना क्षान और ईश्वर का यथार्थ बोध कभी नहीं हो सकता ॥ ६०॥

इन्द्रं विश्वा इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देषता। निचृदनुष्टुप्

छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर वही वि०॥

इन्द्रं विरुषां ग्रवीव्यन् समुद्रव्यंचम्ंगिरंः । ट्यीतंमधर्थीनां बाजांनाञ्चसत्पंतिं पतिम् ॥ ६१ ॥

पदार्थः-(विश्वाः)सब (गिरः) विद्या और शिक्षा से युक्त वार्षा (समुद्रव्य-चसम्) भाकाश के तुल्य व्यक्तिवाले (रथीनाम्) शूरवीरों में (रथीतमम्) उत्तम शूरवीर (वाजानामं) विद्यानी पृष्ठ्यों के (सत्पतिम्) सत्यव्यवहारों और विद्वा-नों के रक्षक तथा प्रजामों के (पतिम्) स्वामी (इन्द्रम्) परम संपत्तियुक्त सभाप-ति राजा को (मवीनुधन् ) बढ़ावें ॥ ६१॥

भावार्थः - राज भीर प्रजा के जन राज धर्म से युक्त ईश्वर के समान वर्तमान न्यायाधीश सभापति को निरन्तर उत्साह देवें पेसे ही सभापति इन प्रजा भीर राज के पुरुषों को भी उत्साही करें॥ ६१॥

प्रोथद्द्य इत्यस्य विसष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् ऋन्दः।

धेवतः स्वरः॥

फिर भी वही बि॰॥

प्रोध्दर्वो न वर्षसेऽविष्यन्यदा महः संबर्णाद्यस्थीत्। स्रा-दस्यवातो सनु वाति शोचिरधं सम ते वर्जनं कृष्णमंस्ति ॥ ६२ ॥

पदार्थः न्हे राजन् आप यदसे ) भूसा आदि के खिये (अश्वः ) घोड़ें के (न) समान प्रजाओं को (प्रोधतः ) समर्थ की जियं (यदा ) जब (महः ) बड़ें (संवरणात् ) आच्छादन से (अविष्यन् ) रच्चा आदि करते हुए (व्यस्थात् ) स्थित होवें (आत् ) पुनः (अस्य ) इस (तं ) आप का (व्रजनम् ) चलने तथा (कृष्णाम् ) आकर्षण करने वाला (शोचिः ) प्रकाश (अस्ति ) है (अभ ) इस के पश्चात् (स्म ) ही आपका (यातः ) चलने वाला मृत्य (अनु, वाति ) पीछे चलता है ॥ ६२॥

भावार्थ।-इस मंत्र में उपमालंश-जैसे रक्षा करने से घोड़ पुष्ट होकर कार्य सि-द्ध करने में समर्थ होते हैं वैसे ही न्याय से रक्षा की हुई प्रजा सन्तृष्ट हो कर राज्य को बढ़ाती हैं ॥ ६२ ॥

् आयोष्ट्रेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। त्रितुषी देवता। विराद् त्रिपुप् इन्दः। धैवतः स्वरः॥

विदुषी क्षी को क्या करना चाहिये यह वि०॥
आयोष्ट्वा सद्ने साद्याम्यवंतइछायायां छंसमुद्रस्य हृद्ये । रइम्रीवर्ती भार्वतिमा या यां भार्या पृथिवीमोर्चन्तरिक्षम् ॥६६॥

पदार्थः न्हें छि (या) जो त् (याम्) धकाश (पृथिवीम्) भूमि और (अन्तरिक्षम्) झाकाश को (उठ) बहुत (आ, भासि) प्रकाशित करती है उस (रहमीवतीम्) शुद्ध विद्या के प्रकाश से युक्त (मास्त्रतीम्) शोभा को प्राप्त हुई (त्वा)
तुक्त को (झायोः) न्वायानुकृत चलने वाले चिरंजीवि पुरुष के (सदने) स्थान में
और (अवतः) रच्या आदि करते हुए के (छायायाम्) आश्रय में (आ, सादयामि)
अच्छे प्रकार स्थापित तथा (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (इदये) बीच (आ) शुद्ध
प्रकार से मैं स्थित कराता हूं॥ ६३॥

भावार्थः नहे स्त्रि अच्छे प्रकार पालन हारे पति के बाध्यक्रप स्थान में समुद्र के तुल्य चंचलता रहित गम्भीरतायुक्त प्यारी तुक्त को स्थित करता हूं तू गृहाधम के धर्म का प्रकाश कर पति आदि को सुखी रख और तुक्त को भी पति आदि मुखी है रक्खें ॥ ६३ ॥

परमेशीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। परमातमा देवता आकृतिद्द्धन्दः। पड्यः स्वरः॥ 🦸

प्रमेशी त्वां साद्यतु दिवसपृष्ठे व्यवस्थतीं प्रथंश्वतीं दिवं यच्छदिवं दश्रद्ध दिवंगाहिशसीः । विद्यंसमे प्राणायापानार्यं व्यानायोदानायं प्रतिष्ठार्यं चरित्रांय । स्पेस्त्वाऽनिपातु मुद्या स्वस्त्या छदिषा शन्तेमेन तयां देवतंयाऽङ्गिर्वद् ध्रुवं सीद-तम् ॥ ६४॥

पदार्थः-हे स्ति (परमेष्ठी) परमातमा (विश्वस्मै) समम् (प्राणाय) जीवन के सुख (अपानाय) दुःखनिवृत्ति (व्यानाय) नाना विद्याओं की व्याप्ति (उदानाय) दिक्तम बल (प्रतिष्ठाय) सर्वेत्र सत्कार मीर (चिरताय) भेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान के लिये (दिवः) कमनीय गृहस्थ व्यवहार के (पृष्ठे) माधार में (प्रथस्वतीम्) बहुत प्रसिद्ध प्रशंसा वाली (व्यवस्वतीम्) प्रशंसित विद्या में व्याप्त जिस (त्वा) तुभ की (साद्यतु) स्थापित करें सो तु (दिवम्) न्याय के प्रकाश को (यच्छ) दिया कर (दिवम्) विद्या कर पर्यं को । हंह ) हट कर (दिवम्) धर्म के प्रकाश को (मा, हिंसीः) मत नष्ट कर (सूर्यः) चराचर जगत का स्वीमी ईश्वर (मह्या) बड़ें अच्छे (स्वस्त्या) सत्कार (शन्तमेन) अतिशय मुख मीर (छिदिंपा) सत्यासत्य के प्रकाश को (त्वा) तुभ को (मिमपातु) सब ओर से रक्षा करें वह तेरा पित और तू होनों (तया) उस (देवतया) परमेश्वर देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण्या के तुन्य (भूवे) निश्चल (सीदतम्) हिथर रहो॥ ह४॥

भाषार्थ:-परमेश्वर आज्ञा करता है कि जैसे शिशिर ऋतु सुखदायी होता है वै-सं स्त्रीपुरुष परस्पर संतोषी हो सब उत्तम कर्मी का अनुष्ठान कर और दुष्ट कर्मी को छोड़ के परमेश्यर की उपासन से निरन्तर झानन्द किया करें॥ ६४॥

सहस्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। विद्वान् देवता । विराडनुष्टृप्

छन्दः। गान्धारः खरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि०॥

सहस्रंस्य प्रमासि सहस्रंस्य प्रतिमासि सहस्रंस्योन्मासि साह-स्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥ ६५ ॥

पदार्थः-हे विद्वत् पुरुष विदुषि स्त्रि वा जिस कारमा त्(सहस्रस्य) असंख्यात दार्थों से युक्त जगत् के (प्रमा) प्रमामा यथार्थ झान के तृल्य (असि) है (सह-त्रस्य) असंख्य विशेष पदार्थों के (प्रातिमा) तोलनसाथन के तृल्य (प्रसि) है

## पश्चदशोऽध्यापः ॥

(सहस्तर्य) असंख्य रथ्य वस्तुओं के (उन्मा) तांसने की तुका के समान (मस्ति) है (साहस्नः) असंख्य पदार्थ और विद्याओं से युक्त (असि) है इस कार्या (सर्हें स्नाय) असंख्यात प्रयोजनों के बिये (स्वा) तुम को परमात्मा व्यवहार में स्थिन करे॥ ६५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु॰--यहां प्रीमन्त्र से परमेष्ठी, सादयतु इन दो प्रो की अनुवृत्ति आती है। तीन साधनों से मनुष्यों के व्यवहार सिद्ध होते हैं। एक तो यथार्थविज्ञान दूसरा पदार्थ तोलने के खिये तोल के साधन वाट और तीसरा तराज् आदि। यह शिशिर ऋतु का वर्णन प्रा हुआ ॥ ४६ ॥

इस अध्याय में ऋतुविद्या का प्रतिपदन होने से इस अध्याय के अधे की ए अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये।

यह पन्द्रह्यां अध्याग पूरा हुन्या।